विषय-सूची

महर्षि वेदव्यास-प्रणीत

महाभारत का अनुवाद

सभापर्व

पहला अध्याय

श्रीकृष्णचन्द्र का मय दानव को सभा बनाने की आज्ञा देना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥

वैशम्पायन कहते हैं कि अर्जुन और श्रीकृष्ण का यथोचित सत्कार करके मय दानव ने हाथ जोड़कर मधुर वाणी से कहा—हे कुन्तीपुत्र अर्जुन, आपने कृष्ण के विषम क्रोध और अग्नि की कराल ज्वाला से मुझको बचा लिया है। इस कारण मैं, बदले में, आपका कुछ उपकार करना चाहता हूँ। अर्जुन ने कहा—असुरराज, तुमने इतना कहा तो मानों मेरा प्रत्युपकार कर चुके। तुम्हारा भला हो। जाओ मैं तुमसे प्रसन्न हूँ; तुम भी मुझसे प्रीति का भाव रखना। मयासुर ने कहा—विभो, ये वचन आप ऐसे महात्मा पुरुषों के योग्य ही हैं; किन्तु हे कुन्तीनन्दन, मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं प्रसन्नतापूर्वक आपका कुछ उपकार करूँ। मैं दानवों का विश्वकर्मा और बड़ा भारी कारीगर हूँ। हे पाण्डव, मैं आपके लिए कुछ करना चाहता हूँ।

अर्जुन ने कहा—हे कृतज्ञ, तुम मौत के मुँह से बच जाने के कारण प्रत्युपकार करना चाहते हो, इसलिए मैं तुमसे अपना कोई काम कराना नहीं चाहता। किन्तु यह भी मेरी

इच्छा नहीं कि तुम्हारी प्रार्थना विफल हो। इसलिए तुम कृष्ण का कोई काम कर दो, वही मेरे प्रति उपकार का काम होगा। यह सुनकर मय दानव ने कृष्ण से अपनी इच्छा प्रकट की।

वासुदेव ने थोड़ी देर तक सोचकर कहा—हे शिल्पकर्म-निपुण, यदि तुम्हें मेरा प्रिय करने की बड़ी इच्छा है तो तुम धर्मराज युधिष्ठिर के लिए ऐसी एक सभा बना दो जिसके भीतर बैठकर और उसे अच्छी तरह देखकर भी संसार का
१० कोई कारीगर उसकी नक़ल न कर सके। ऐसी सभा बना दो जिसमें बैठकर हम लोग तुम्हारे रचित, असुरों और मनुष्यों के, दिव्य अभिप्रायों को देखें।

कृष्ण की आज्ञा पाकर असुरपति मय को अपार हर्ष हुआ। उसने महाराज युधिष्ठिर के लिए विमानतुल्य सुन्दर दर्शनीय सभा बनाने का विचार किया। अब अर्जुन और कृष्ण मय दानव को युधिष्ठिर के पास ले गये और सब हाल कहकर मय दानव से उनका परिचय कराया। महाराज युधिष्ठिर ने मय का यथोचित सत्कार किया। उसने विशेष आग्रह के साथ वह पूजा स्वीकार करके कुछ समय तक विश्राम किया और बिन्दुसर में वृषपर्वा दानव के यज्ञ करने का वृत्तान्त पाण्डवों को सुनाया। इसके उपरान्त मय दानव ने महात्मा कृष्ण और पाण्डवों की इच्छा के अनुसार स्वस्त्ययन-मङ्गल के उपरान्त शुभ दिन में पहले हज़ारों ब्राह्मणों को खीर खिलाई और दक्षिणा दी, फिर दस हज़ार हाथ के घेरे मे सभाभवन का स्थान मापा। इसके बाद वह
२१ सब ऋतुओं में सुखदायक, दिव्यरूप, मनोरम सभाभवन बनाने लगा।

दूसरा अध्याय

श्रीकृष्ण का द्वारका जाना

वैशम्पायन कहते हैं—परम पुलकित पाण्डवों के स्नेह और भक्ति-पूर्ण पूजा से कृष्णचन्द्र कुछ समय तक खाण्डवप्रस्थ में बड़े सुख से रहे। इसके बाद पिता के दर्शन

मयदानव का युधिष्ठिर के पास जाकर सभा बनकर तैयार हो जाने की सूचना देना।—पृष्ठ ४१२

श्रीकृष्ण का द्वारिका जाना।—पृष्ठ ५१३
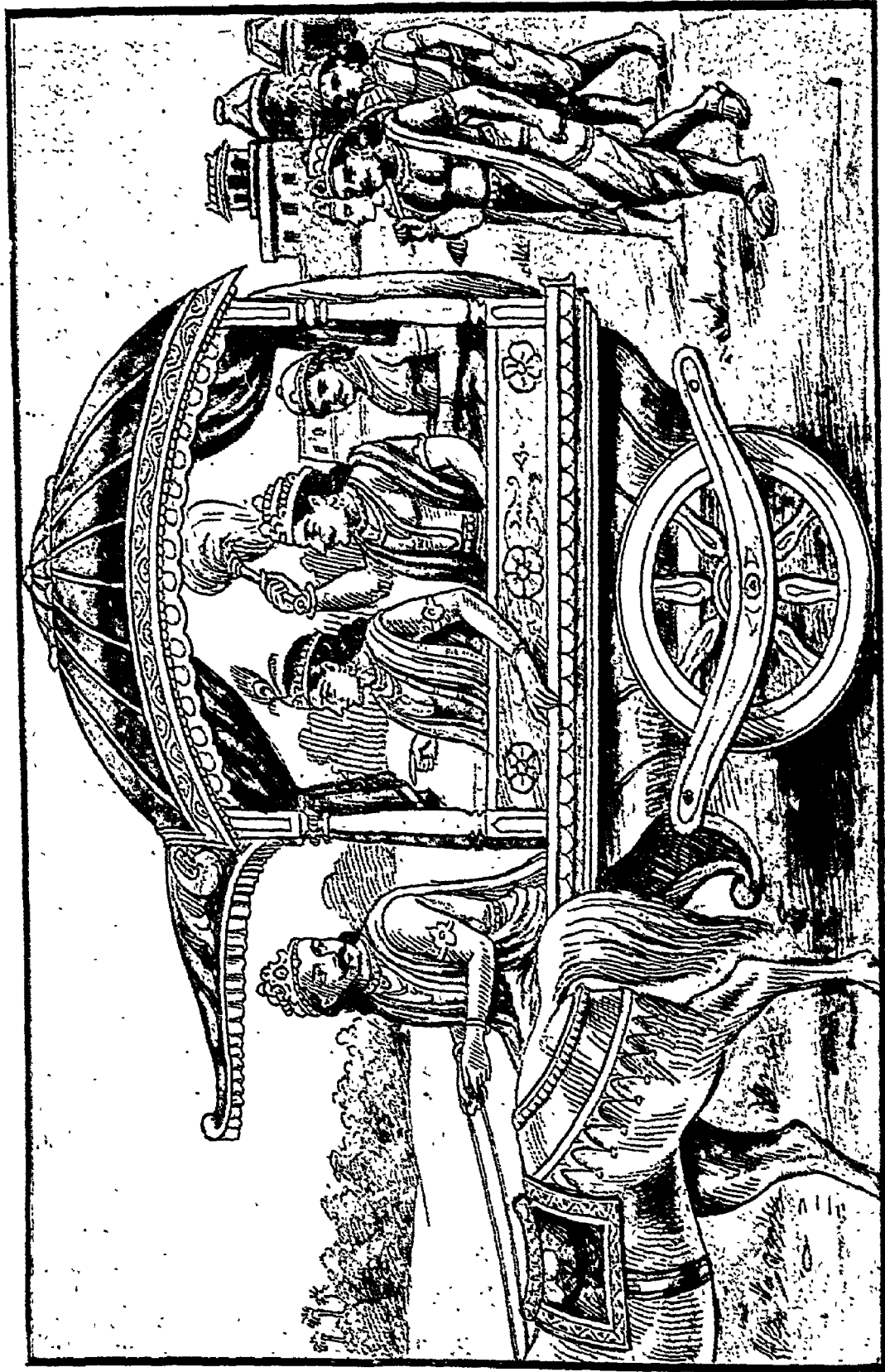
को उन्होंने जाने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने पहले धर्मराज युधिष्ठिर से विदा होकर अपनी बुआ कुन्ती के चरण छुए। कुन्ती ने सिर चूमकर कृष्ण को छाती से लगा लिया। इसके बाद कृष्णचन्द्र मधुरभाषिणी बहन सुभद्रा के पास गये। कृष्ण की आँखों में आँसू भर आये। उन्होंने यथार्थ, हितकारी, थोड़े शब्द-वाले, अखण्डनीय वचनों से बहन को ढाढ़स बँधाया। प्रियभाषिणी सुभद्रा ने भी पिता, माता, स्वजन आदि के लिए सँदेसा कहकर कृष्ण का पूजन और प्रणाम किया। वृष्णिवंश के भूषण कृष्ण, सुभद्रा से विदा होकर, धौम्य से मिले और यथोचित रूप से उनका पूजन किया। फिर द्रौपदी से सान्त्वनापूर्ण बातचीत करके वे अर्जुन के साथ वहाँ से युधिष्ठिर आदि चारों पाण्डवों के पास गये। भगवान् कृष्ण पाँचों पाण्डवों के बीच देवमण्डली में स्थित इन्द्र के समान शोभित हुए।

यात्राकाल में किये जाने के कर्म करने की इच्छा से अब कृष्ण ने स्नान किया; अनेक अलङ्कार पहने। इसके बाद उन्होंने माला, जप, नमस्कार और चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों के द्वारा देवताओं और ब्राह्मणों की पूजा की। उस समय के योग्य सब काम समाप्त करके, अपने नगर को जाने के लिए घर से निकलकर, कृष्णचन्द्र बाहर की ड्योढ़ी पर आये। वहाँ आशीर्वाद देनेवाले ब्राह्मण दधिपात्र, फूल, चावल आदि सगुन की चीज़ें हाथ में लिये खड़े थे। वासुदेव ने धन देकर उनकी प्रदक्षिणा की। फिर शुभ मुहूर्त्त में यात्रा करके, गदा, चक्र, खड्ग, धनुष आदि अस्त्र-शस्त्र धारण किये हुए कृष्णचन्द्र गरुड़ की ध्वजा से सुशोभित, सजे हुए, शीघ्रगामी, सुवर्णमय रथ पर चढ़कर चलने को तैयार हुए। तब स्नेह के मारे महाराज युधिष्ठिर ने सारथी से हट जाने के लिए कहा। वे आप रथ पर जा बैठे और रास पकड़कर घोड़ों को हाँकने लगे। अर्जुन भी उसी रथ पर कृष्ण की दाहिनी ओर बैठकर सुवर्ण-दण्ड-युक्त सफ़ेद चँवर डुलाने लगे। महा-पराक्रमी भीमसेन, पुरोहित, ऋत्विज लोग, नकुल और सहदेव सब उनके पीछे-पीछे चलने लगे। शत्रुओं के बल को मिट्टी में मिला देनेवाले कृष्ण के पीछे-पीछे पाण्डव उसी तरह चले जैसे शिष्य लोग गुरु के पीछे चलते हैं। उस समय उनकी अपूर्व

२० शोभा हुई। फिर कृष्ण ने अर्जुन को गले से लगाया और युधिष्ठिर तथा भीम के पैर छुए। नकुल और सहदेव ने उनके पैर छुए। दो कोस पर शत्रुदमन कृष्ण ने युधिष्ठिर से लौट जाने का अनुरोध करके उनके चरण छुए।

पैरों पर पड़े हुए पतितपावन भगवान् कृष्ण को उठाकर युधिष्ठिर ने स्नेह के साथ उनके माथे को सूँघा और उन्हें घर जाने की अनुमति दी। अब पाण्डवों से अनेक प्रतिज्ञाएँ करके, बड़ी मुश्किल से उन्हें लौटाकर, अमरावती को जा रहे इन्द्र की तरह कृष्ण द्वारका को रवाना हुए। जहाँ तक दृष्टि काम करती थी वहाँ तक युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई खड़े-खड़े रथ की धूल को निहारते रहे। धीरे-धीरे रथ अदृश्य हो चला। अब पाण्डव क्या करते? कृष्ण-दर्शन के बारे में हताश होकर वे बड़े कष्ट से अपनी नगरी को लौटे। गरुड़ के समान वेग से चलनेवाले रथ पर दारुक सारथी और सात्वत के साथ

३० बैठे हुए कृष्ण शीघ्र ही द्वारका के समीप पहुँच गये। इधर बन्धु-बान्धव-सहित महाराज युधिष्ठिर अपने नगर में पहुँचे। सब भाइयों और बन्धु-बान्धवों को विदा करके वे द्रौपदी के साथ आनन्द करने लगे। उधर कृष्ण भी प्रसन्नतापूर्वक द्वारका पुरी में पहुँचे। उग्रसेन आदि श्रेष्ठ यादवों ने उनकी पूजा की। कृष्ण ने बूढ़े पिता वसुदेव, यशस्विनी माता देवकी और बड़े भाई बलदेव को प्रणाम किया; फिर प्रद्युम्न, साम्ब, निशठ, चारुदेष्ण, गद, अनिरुद्ध, भानु आदि पुत्रों को गले से लगाया। इसके बाद वृद्धों की अनुमति लेकर वे रुक्मिणी के भवन में गये।

इधर मय ने सब रत्नों से सजी हुई सभा धर्मराज के लिए विधि-पूर्वक बना देने का

३६ विचार किया।

तीसरा अध्याय

मय दानव का सभा बनाने के योग्य सामग्री लाने के लिए मैनाक पर्वत पर जाना, वहाँ से लौटकर आना और सभा बनाना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, मय दानव ने अर्जुन से कहा—महाभाग, मैं आपसे जाने की आज्ञा चाहता हूँ। अभी कार्य सिद्ध करके लौट आऊँगा। पूर्व समय में कैलास पर्वत के उत्तर तट पर स्थित मैनाक पर्वत के पास, बिन्दुसर के निकट, दानवों के यज्ञ करने के अवसर पर मैं जो विचित्र परम रमणीय मणिमय सामग्री लाया था उससे मैंने सत्यप्रतिज्ञ दानवराज वृषपर्वा की सभा बनाई थी। यदि वह सामग्री वहाँ अभी तक मौजूद है तो मैं उसे लिये आता हूँ। उसी से सब लोगों के मन को हरनेवाली, अनेक रत्नों से पूर्ण, बड़ी विचित्र, प्रशंसनीय सभा आपके लिए बनाऊँगा। बिन्दुसरोवर में एक बड़ी सी, भार को सहनेवाली, अत्यन्त दृढ़, दिव्य गदा भी गड़ी पड़ी है। उस पर सोने के बिन्दु हैं। राजा यौवनाश्व ने शत्रुओं को मारकर वह गदा वहीं रख दी थी। लौटते समय मैं वह गदा भी भीम के लिए लेता आऊँगा। अर्जुन, आपके हाथ में गाण्डीव की जैसी शोभा होती है वैसी ही भीम के हाथ में वह गदा सुहावनी लगेगी। वरुण का गम्भीर शब्द करनेवाला देवदत्त नाम का महाशङ्ख भी वहाँ है। वह मैं आपको ला दूँगा।

अर्जुन से यों कहकर, उनसे विदा हो, मय दानव पूर्व-उत्तर के कोने की ओर चला। कैलास के उत्तर ओर मैनाक के पास पहुँचकर मय दानव ने सुवर्ण के शिखरों से शोभित मणिमय एक ऊँचा पहाड़ देखा। बिन्दुसर इसी पहाड़ पर है। राजा भगीरथ ने भगवती भागीरथी के दर्शन के लिए बहुत दिनों तक इसी पर्वत पर रहकर तप किया था। भगवान् प्रजापति ने यहीं पर सौ यज्ञ किये थे। यज्ञ कर्म के साक्षी-स्वरूप अनेकों मणिमय यूप (खम्भे) और सुवर्णमय चैत्य उस प्रदेश की शोभा बढ़ा रहे हैं। वे कहीं की नक़ल नहीं हैं। यहीं यज्ञ करने से सहस्रनयन इन्द्र को सिद्धि मिली है। भगवान् शङ्कर ने यहीं पर असङ्ख्य प्रजा उत्पन्न की थी। वह प्रजा अब तक वहाँ उनकी उपासना करती है। हज़ार युग बीतने पर नर-नारायण, ब्रह्मा, यम और शङ्कर यहीं पर परब्रह्म की उपासना और यज्ञ करते हैं। कृष्ण ने भी धर्मोपार्जन के लिए अत्यन्त श्रद्धा के साथ लगातार बहुत वर्षों तक इसी स्थान पर यज्ञ किये हैं। सुवर्णमयी मालाओं से मण्डित, रत्नजटित अनेकों यूप और लाखों प्रकाशपूर्ण चैत्यस्थान उस स्थान की अपूर्व शोभा बढ़ा रहे हैं। वहाँ पहुँचकर मय ने स्फटिक मणि की सब सामग्री, जो वृषपर्वा की सभा में लगी हुई थी, ले ली। वह भारी गदा, देवदत्त महाशङ्ख और किङ्कर नाम के राक्षस जिसकी रक्षा कर रहे थे वह असङ्ख्य धन भी मयासुर ने प्राप्त किया। १०

सब सामग्री लेकर मय दानव अर्जुन के पास आया और उस सामग्री के द्वारा अद्भुत
२० अपूर्व त्रिलोक-प्रसिद्ध रत्नमय सभाभवन बनाने में लग गया। अर्जुन को देवदत्त शङ्ख और भीम को उसने गदा दे दी। देवदत्त शङ्ख के शब्द से त्रिभुवन गूँज उठते थे। दस हज़ार हाथ के घेरेवाली वह सभा देखने योग्य बनी। उसमें सोने के पेड़ थे। चन्द्रमा, अग्नि और सूर्य की सभा के समान वह सभा अपने प्रकाश से मानों सूर्य के तेज को भी फीका कर रही थी। दिव्य प्रकाश से वह दिव्य सभा आग के ढेर के समान प्रज्वलित सी हो रही थी। वह इतनी ऊँची थी मानों आकाश-मण्डल को छू लेगी। लम्बी-चौड़ी, रमणीय, थकन और चिन्ता को दूर करनेवाली, पाप-नाशिनी, उत्तमोत्तम वस्तुओं से युक्त, रत्नों की चहारदीवारी से घिरी, विविध चित्रों से दर्शनीय, बहुविभवशालिनी, स्वर्ग में विश्वकर्मा की बनाई देव-सभा और ब्रह्मसभा को भी वह सभा मानों अपने सौन्दर्य और सम्पत्ति से हँस रही थी।

सभा की देखरेख और रखवाली के लिए मय दानव ने आकाशचारी, महाबली, महाकाय, आठ हज़ार 'किंकर' राक्षसों को नियुक्त कर दिया। इनकी लाल कञ्जी आँखें थीं और सीप के आकार के कान थे; ये सब आयुध लिये हुए थे। आवश्यकता पड़ने पर ये उस सभा को एक जगह से दूसरी जगह ले जा सकते थे। मयासुर ने सभा-भवन में चित्त को आश्चर्य में डाल देनेवाला, स्वच्छ जल से भरा, एक सरोवर बना दिया था। उसमें सैकड़ों
३० सुवर्णमय पद्म और मणिमय मृणालवाले, वैदूर्य मणि के पत्तों से शोभित, शतदल कमल थे। उसमें हज़ारों जलचर पक्षी मौज से कलोल कर रहे थे। सोने की मछलियाँ और कछवे उसमें थे जिससे वह बड़ा विचित्र लगता था। चारों ओर विस्तृत, विचित्र, स्फटिक (बिल्लौर) की सीढ़ियाँ देखने से दर्शकों के नेत्र और मन मुग्ध हो जाते थे। मोती-सदृश जल-बिन्दुओं से शोभित उस सरोवर में बहुत ही स्वच्छ जल भरा हुआ था। चारों ओर का फ़र्श, मणिमय होने के कारण, अद्भुत शोभा दे रहा था। हंस, कारण्डव, सारस, बगले, चक्रवाक आदि जलचर जीव किनारे और पानी के भीतर विचरते हुए दर्शकों के मन को मोहित कर लेते थे।

मय दानव का सभा निर्माण करना।—पृष्ठ २१६

मोतियों और रत्नों से पूर्ण होने के कारण कुछ राजा आते-जाते समय सामने देखकर भी समझ न सकते थे कि यह सरोवर है और इसी कारण उसमें गिर भी पड़ते थे। उस सभाभवन के चारों ओर शीतल स्निग्ध छायादार, नीले, तरह-तरह के फल-फूलवाले वृक्षों और कलियों से सुहावनी लताओं के जाल देख पड़ते थे। वहाँ पर स्थल और जल में उत्पन्न होनेवाले तरह-तरह के फूलों की सुगन्ध लिये मनोहर पवन डोला करता था और पाण्डवों के तथा वहाँ उपस्थित पुरुषों के चित्त को प्रसन्न किया करता था। मय दानव ने चौदह महीने में ऐसी अपूर्व अद्भुत रमणीय सभा बनाई और फिर महाराज युधिष्ठिर के पास जाकर सभा बनकर तैयार हो जाने की सूचना दी। ३७

चौथा अध्याय

युधिष्ठिर का सभा-प्रवेश

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, इसके बाद महाराज युधिष्ठिर ने पहले घी-शक्कर से तर खीर, स्वादिष्ट फल-मूल, वराह और मृग का मांस आदि खिलाकर हज़ारों ब्राह्मणों को तृप्त किया; फिर सुगन्धित माला पहनाकर, नये कपड़े देकर पूजा की और एक-एक ब्राह्मण को हज़ार-हज़ार गोदान किये। अब धर्मराज युधिष्ठिर ने उस अपूर्व सभा-भवन में प्रवेश किया। सभामण्डप में हो रही पुण्याह पाठ की ध्वनि उठकर आकाशमण्डल में गूँजने लगी। तरह-तरह के बाजे बजने लगे। युधिष्ठिर ने देवताओं की स्थापना करके चन्दन-फूल आदि सामग्रियों से उनका पूजन किया। मल्ल (पहलवान), झल्ल (लठैत), नट, प्रशंसा करनेवाले सूत वन्दी-जन आदि महाराज युधिष्ठिर के पास आकर उनके गुणों का बखान करने लगे। देव-देवियों की पूजा करके भाइयों-सहित महाराज युधिष्ठिर इन्द्र की तरह सभाभवन में राजसिंहासन पर विराजमान हुए। पाण्डवों के साथ महर्षिगण और देश-देश के आये हुए राजा लोग भी उस सभामण्डप में बैठे। असित, देवल, सत्य, सर्पिर्माली, महाशिरा, अर्वा, वसु, सुमित्र, मैत्रेय, ९ शुनक, बलि, बक, दाल्भ्य, स्थूलशिरा, कृष्णद्वैपायन, शुकदेव, सुमन्तु, जैमिनि, पैल, तित्तिर, याज्ञवल्क्य, पुत्रसहित लोमहर्षण, अप्सुहोम्य, धौम्य, अणीमाण्डव्य, कौशिक, दामोष्णीष, त्रैवलि, पर्णाद, घटजानुक, मौञ्जायन, वायुभक्ष, पाराशर्य, सारिक, बलिवाक, सिनीवाक, सत्य-पाल, कृतकाम, जातूकर्ण्य, शिखावान्, आलम्ब, पारिजातक, महाभाग पर्वत, महामुनि मार्कण्डेय, पवित्रपाणि, सावर्ण, भालुकि, गालव, जङ्घाबन्धु, रैभ्य, कोपवेग, भृगु, हरिबभ्रु, कौण्डिन्य, बभ्रु-माली, सनातन, काक्षीवान्, औशिज, नाचिकेत, गौतम, पैङ्ग, वराह, महातपस्वी शाण्डिल्य, शुनक (दूसरे), कुक्कुर, वेणुजङ्घ, कालाप, कठ, ये सब और अन्यान्य वेद-वेदाङ्ग-पारगामी,

धर्मज्ञ, जितेन्द्रिय, विशुद्धप्रकृति ऋषिगण युधिष्ठिर की सभा में विराजमान होकर बड़ी पवित्र
२० कथाएँ कहते हुए धर्मराज को प्रसन्न करने लगे। इनके सिवा श्रीमान् महात्मा धर्मनिष्ठ राजा मुञ्जकेतु, विवर्द्धन, संग्रामजित्, दुर्मुख, वीर्यशाली उग्रसेन, कक्षसेन, अपराजित क्षेमक, काम्बोजराज कमठ, इन्द्र के सदृश प्रभावशाली और अकेले ही अनेक पराक्रमी योद्धा यवनों के हृदय को हिला देनेवाले महाराज कम्पन, जटासुर, मद्रराज, कुन्तिभोज, किरातराज पुलिन्द, पुण्ड्रक, अङ्ग, वङ्ग, पाण्ड्य, उड्रराज, अन्ध्रक, सुमित्र, शत्रुदमन, शैव्य, किरातराज सुमना, यवनाधिपति चाणूर, देवरात, भीमरथ, भोज, श्रुतायुध, कलिङ्ग, जयसेन, मागध, सुकर्मा, चेकितान, शत्रुमर्दन पुरु, केतुमान्, वसुदान, वैदेह, कृतक्षण, सुधर्मा, अनिरुद्ध, महाबल श्रुतायु, दुर्द्धर्ष अनूपराज, सुदर्शन क्रमजित्, शिशुपाल, पुत्र-सहित करूष-नरेश, वृष्णिवंश के देवरूपी कुमार,
३० आहुक, विपृथु, गद, सारण, अक्रूर, कृतवर्मा, शिनि के पुत्र सत्यक, भीष्मक, आकृति, वीर्यशाली द्युमत्सेन, धनुर्द्धर केकय नरेशगण, चन्द्रवंशी यज्ञसेन, केतुमान्, वसुमान् और अन्यान्य प्रधान-प्रधान क्षत्रिय सभा में आकर महाराज युधिष्ठिर के ऐश्वर्य को बढ़ाते हुए उनकी उपासना करने लगे। जिन राजकुमारों ने मृगछाला पहने हुए ब्रह्मचर्य में रहकर अर्जुन से अस्त्रविद्या सीखी थी वे और उनमें प्रधान प्रद्युम्न, साम्ब, युयुधान, सात्यकि, सुधर्मा, अनिरुद्ध, शैव्य आदि वृष्णिवंश के कुमार भी वहाँ पर थे। अर्जुन का मित्र तुम्बुरु नाम का गन्धर्व वहाँ नित्य उपस्थित रहता था। महाराज, तुम्बुरु की आज्ञा से गाने-बजाने में निपुण, तान-लय-कुशल चित्रसेन आदि सत्ताईस गन्धर्व और अन्यान्य गन्धर्व, अप्सराएँ और किन्नर लोग शुद्ध तान-लयवाले स्वर से गीत गाकर पाण्डवों, महर्षियों और राजाओं को प्रसन्न करते हुए युधिष्ठिर की उपासना किया करते थे। स्वर्ग में जैसे देवता ब्रह्मा की उपासना करते हैं वैसे ही उक्त सभा में स्थित अनेकानेक सत्यवादी
४१ ऋषि, नरपति और गुणी पुरुष धर्मराज की आराधना करते थे।

लोकपाल-सभाख्यानपर्व

पाँचवाँ अध्याय

सभा में नारद का आगमन

वैशम्पायन ने कहा—जनमेजय, महानुभाव पाण्डव और गन्धर्व लोग जब उस सभा में आराम से बैठ गये तब पृथ्वीमण्डल पर विचरते हुए देवऋषि नारद पारिजात, पर्वत, सुमुख और सौम्य आदि महात्मा ऋषियों के साथ वहाँ पर आये। चाहे जहाँ जा सकनेवाले देव-पूजित नारदजी सम्पूर्ण वेद, उपनिषद्, पूर्व-उत्तर-मीमांसा, स्मृति, छन्द, ज्योतिष और व्याकरण आदि शास्त्रों के पूरे पण्डित हैं। इतिहास और पुराणों को वे बहुत अच्छी तरह जानते हैं। राजनीति और व्यवहार-शास्त्र के वे अद्वितीय पण्डित हैं। उनके समान स्मृति शक्तिवाला, प्रगल्भ वक्ता और प्रमाणनिष्ठ चतुर विद्वान् अत्यन्त दुर्लभ है। पहले के कल्पों का विशेष वृत्तान्त जाननेवाले नारद मुनि से बढ़कर सन्धि, भेद आदि राजा के छः गुणों का प्रयोग जाननेवाला कोई नहीं है। मतलब यह कि सन्धि-विग्रह आदि में उनसे बढ़कर चतुर शायद ही और कोई हो। उनकी धीशक्ति (बुद्धि) असाधारण है। शिष्यों को किस तरह 'ज्ञान' का उपदेश किया जाता है—'कर्म' करने का ढङ्ग बताया जाता है—सो उन्हें अच्छी तरह मालूम है। गन्धर्वों की नाचने-गाने की विद्या और युद्ध-विद्या भी वे अच्छी तरह जानते हैं। शास्त्रार्थ करने में वे देवगुरु बृहस्पति से भी निपुण हैं। न्यायशास्त्र-प्रतिपादित—प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण आदि से युक्त वाक्य के गुण-दोष का विचार भी वे भली भाँति कर सकते हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के बारे में ठीक-ठीक सिद्धान्त स्थिर कर चुकने के कारण वे कृतकृत्य हैं। उन्हें सब विद्याओं का ख़ज़ाना कहना भी अनुचित न होगा। उन्हें भूत-भविष्य की सब घटनाएँ और विश्व की सब वस्तुएँ प्रत्यक्ष सी देख पड़ती हैं। नारदजी विभिन्न श्रुतियों में एकवाक्यता प्रतिपादित करते हैं; फिर वे संयोग में भी भेद दिखला सकते हैं। एक कर्म में अनेक धर्मों का सन्निवेश करने में वे चतुर हैं। वे प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से प्रमेय को निश्चित करना और वेदान्तविचार तथा योग का उपयोग जानते हैं। उन्हें सुरासुरों को युद्ध से रोकने की इच्छा रहती है। ११

सभा में बैठे हुए श्रीमान् पाण्डवों को देखकर नारदजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने जय आदि शुभ शब्दों से युक्त आशीर्वाद देकर धर्मराज युधिष्ठिर का अभिनन्दन किया। देवर्षि को देखते ही भाइयों-सहित राजा युधिष्ठिर जल्दी से आसन छोड़कर उठ खड़े हुए। बड़ी नम्रता के साथ साष्टाङ्ग प्रणाम करके उन्होंने शुभ आसन दिया; फिर मधुपर्क, अर्घ्य, पाद्य, गाय, सुवर्ण आदि अर्पण कर उनकी यथोचित पूजा की। युधिष्ठिर की भक्ति और श्रद्धा देखकर नारदजी बहुत प्रसन्न हुए। फिर वे कुशल-प्रश्न के मिस से उनको धर्म-अर्थ-काम का उपदेश करने लगे।

नारदजी ने कहा—राजन्, अर्थ-चिन्तन के साथ ही आप धर्म-चिन्तन भी करते हैं न? अर्थ-चिन्तन ने आपके धर्म-चिन्तन को दबा तो नहीं लिया? सुख-भोग में लगे रहकर आपने अपने पवित्र मन को तो कलुषित नहीं होने दिया? अपने पूर्वजों के आचरण और वृत्ति के अनुगामी होकर आप त्रिवर्ग (धर्म-अर्थ-काम) का सेवन करते हैं न? धन-वैभव का लोभ आपके धर्मोपार्जन की राह में रुकावट तो नहीं डालता? अथवा बिलकुल धर्म के ध्यान में ही लगे रहने से धन की आमदनी में तो बाधा नहीं पड़ने पाती? काम-लालसा में लिप्त होकर धर्म और अर्थ के उपार्जन को तो आपने नहीं छोड़ दिया? हे काल का ज्ञान रखनेवाले महाराज, आप ठीक समय पर धर्म, अर्थ और काम का सेवन करते रहते हैं न? आप सन्धि-विग्रह आदि छः

२० राजगुणों से युक्त होकर सात उपायों (मन्त्र, औषध, इन्द्रजाल, साम, दान, भेद, दण्ड) का प्रयोग जानते हुए अपने पक्ष और शत्रुपक्ष के बल पर सदा ध्यान रखते हैं न? खेती, बनिज, क़िलों की मरम्मत, पुल बनवाना, आमदनी-ख़र्च की जाँच, पुरवासियों के कार्यों पर दृष्टि रखना, राज्य के जनपदों (बस्तियों) को देखते रहना—ये आठ राजकार्य आपके द्वारा अच्छी तरह होते रहते हैं न? आपकी सातों प्रकृतियाँ (स्वामी, अमात्य, सुहृत, कोष, राष्ट्र, दुर्ग, बल) तो अच्छी दशा में हैं? आपके राष्ट्र के लोग धनाढ्य, कामकाजी और प्रभु-भक्त हैं न? आपको और मन्त्री, मित्र, सैनिक, पुरवासी आदि को मृगया-मद्य आदि का कोई व्यसन तो नहीं है? औरों के जासूस लोग तो अपने ऊपर विश्वास पैदा कराकर आपकी और आपके मन्त्रियों की गुप्त सलाह को नहीं जान लेते? अपने मित्र, शत्रु और उदासीन पक्ष के लोग क्या कर रहे हैं—क्या करना चाहते हैं—इसकी ख़बर तो आपको रहती है? आप ठीक समय पर सन्धि (मेल) और विग्रह (युद्ध) करने में तो नहीं चूकते? आप उदासीन राष्ट्रों से तटस्थ रहकर अपने कर्तव्य का पालन करते रहते हैं न? अपने समान, बूढ़े, शुद्ध स्वभाव-

वाले, समझाने में समर्थ, अच्छे वंश में उत्पन्न और अनुगत पुरुषों को ही तो आप मन्त्री बनाते हैं न ? राजन्, विजय की जड़ मन्त्रणा ही है। इसलिए मन्त्री श्रेष्ठ होने चाहिएँ। शास्त्रों के ज्ञाता और मन्त्रणा को गुप्त रखने में निपुण मन्त्रियों के द्वारा आपका राज्य सुरक्षित है न ? शत्रु लोग आपका किसी प्रकार का अनिष्ट तो नहीं कर पाते ? आप ठीक समय पर सोकर ठीक समय पर उठा करते हैं न ? पिछले पहर जागकर आप अर्थों पर विचार करते हैं न ? आप अकेले या बहुत लोगों के साथ तो कभी सलाह नहीं करते ? आपकी गुप्त मन्त्रणा प्रकट होकर राज्य में फैल तो नहीं जाती ? थोड़े परिश्रम से बहुत फल देनेवाले कामों के बारे में निश्चय करके उन्हें आप चटपट करने लगते हैं न ? ऐसे कामों में विघ्न तो नहीं होने पाता ? किसान लोग तो आपके परोक्ष में ठीक व्यवहार करते हैं न ? आपका उन पर विश्वास है न ? वे आप पर स्नेह रखते हैं न ? क्योंकि प्रभु पर भक्ति हुए बिना ऐसा होना असम्भव है। किसानों पर सख़्ती तो नहीं होती ? जो काम छोड़ा नहीं गया उसकी जाँच के लिए धर्मशास्त्र के जानकार चतुर परीक्षक तो आपने नियुक्त कर रक्खे हैं न ? युद्ध-विद्याविशारद वीर-पुरुषों के द्वारा आप कुमारों को और मुख्य योद्धाओं को युद्धकला की शिक्षा दिलाते हैं न ? हज़ार मूर्खों के बदले एक पण्डित को आप अपने यहाँ रखते हैं न? क्योंकि किसी प्रकार की विपत्ति पड़ने पर पण्डित (चतुर) लोग सहज ही उससे बचाव कर सकते हैं। आपके सब क़िले तो धन, अन्न, शस्त्र, जल और यन्त्रों से परिपूर्ण रहते हैं न ? क़िलों में कारीगर और धनुर्द्धर योद्धा सदा रहते हैं न ? एक भी मन्त्री अगर बुद्धिमान्, शूर, जितेन्द्रिय और जानकार होता है तो राजा या राजकुमार को श्रेष्ठ ऐश्वर्य का अधिकारी बना देता है। अपने जासूसों के द्वारा शत्रुपक्ष के अठारह तीर्थों (मन्त्री, पुरोहित, युवराज, सेनापति, द्वारपाल, अन्तर्वेशिक, कारागार का अधिकारी, ख़ज़ाञ्ची, कार्य के कृत्याकृत्य का निश्चय करनेवाला, प्रदेष्टा, नगराध्यक्ष (कोतवाल), कार्यनिर्माणकर्ता, धर्माध्यक्ष, सभाध्यक्ष, दण्डपाल, दुर्गपाल, राज्य की सरहद पर रहकर उसकी रक्षा करनेवाला और वन-विभाग का अधिकारी) की और अपने पक्ष के पन्द्रह तीर्थों (मन्त्री, युवराज और पुरोहित को छोड़कर उल्लिखित अठारह) की जानकारी तो आप प्राप्त करते रहते हैं न ? शत्रुओं को नहीं मालूम होने पाता, और आप सावधान रहकर उनके कामों को देखते रहते हैं न ? आपने विनयी, ईर्ष्या-शून्य, अच्छे वंश में उत्पन्न, बहुश्रुत, विद्वान् पुरुष को ही तो सत्कारपूर्वक अपना पुरोहित बनाया है न ? विधिज्ञ, बुद्धिमान्, सरल और कार्यचतुर ब्राह्मण को ही आपने अपने यहाँ अग्निहोत्र के काम में रक्खा है न ? आपके ज्योतिषी तो ज्योतिर्विद्याविशारद, राज्याङ्ग-कुशल, उत्पातों के फलाफल के पूरे ज्ञाता हैं न ? आप कार्य की छुटाई-बड़ाई का ख़याल करके ही उन कामों में आदमियों को नियुक्त करते हैं न ? आप प्रधान अनुचरों को प्रधान, मध्यमों को मध्यम और निकृष्टों को निकृष्ट काम सौंपते हैं न ? वंश-

३० ४०

परम्परा से नौकर, पवित्र-चित्त, वृद्ध सचिवों को ही तो आप श्रेष्ठ कार्य करने का भार देते हैं न? कठोर दण्ड देकर प्रजा को आपके मन्त्री शङ्कित या उद्विग्न तो नहीं करते ? याजक लोग पतित व्यक्ति को जैसे अवज्ञा की दृष्टि से देखते हैं, और स्त्रियाँ जैसे उग्र स्वभाववाले लम्पट पुरुष का अनादर करती हैं, वैसे ही शासन करनेवाले मन्त्री आपको हीनदृष्टि से तो नहीं देखते ? आपके सेनापति उत्तम वंश में उत्पन्न, साहसी, शूरवीर, गम्भीर, कार्यचतुर और प्रभुभक्त हैं न ? सब प्रकार के युद्ध में निपुण, प्रबल पराक्रमी, सच्चरित्र, साहसी सिपाहियों का आप यथोचित रूप से सम्मान करते हैं न ? ठीक समय पर सिपाहियों को तनख़्वाह दे दी जाती है न ? यदि उन्हें ठीक समय पर वेतन नहीं मिलता तो अच्छी तरह काम होना और सहायता मिलना तो दूर रहा, उलटे पग पग पर अनिष्ट और विद्रोह होने की आशङ्का बनी रहती है। अच्छे कुलों में उत्पन्न प्रधान-प्रधान कर्मचारी और कुल के लोग आप पर अनुराग रखते हैं न ? वे आपके लिए युद्ध ५० में प्राण देने को तैयार रहते हैं न ? और आपका कहा न माननेवाला कोई यथेच्छाचारी पुरुष तो सब युद्ध आदि के कार्यों का सम्पादन करने के लिए नहीं नियुक्त है ? कोई पुरुष यदि अपने पौरुष या उद्योग से आपका कोई काम या उपकार करता है तो उसी समय आप उसे अच्छी तरह पुरस्कार और सम्मान देते हैं न ? ज्ञानी, विद्वान्, नम्र और गुणी व्यक्ति सदा आपसे धन और मान पाते रहते हैं न ? महाराज, आपके लिए मरनेवाले और विपत्ति में पड़नेवाले लोगों के पुत्र-स्त्री आदि परिवार का भरण-पोषण आप करते रहते हैं न ?

महाराज, बल घट जाने पर या युद्ध में हारने पर जो शत्रु डरकर आपकी शरण में आते हैं उनकी रक्षा आप पुत्र की तरह करते हैं न ? माता और पिता के समान इस राज्य की सब प्रजा को आप स्नेहपूर्ण समदृष्टि से देखते हैं न ? कोई आपसे शङ्कित तो नहीं रहता ? शत्रु को मद्य आदि व्यसनों में लिप्त देख, अपने मन्त्र, कोष, भृत्य, इस तीन प्रकार के बल को अच्छी तरह जाँचकर आप शीघ्र ही शत्रु पर आक्रमण कर देते हैं न ? जय-पराजय की शक्ति और सैनिकों के विचार जानकर, उन्हें धन आदि से सन्तुष्ट कर तथा शत्रु की भीतरी कमज़ोरियों का पता लेकर, आप यथासमय युद्ध-यात्रा किया करते हैं न ? शत्रुपक्ष की सेना में भेद-नीति का प्रयोग करने के लिए उस ओर के प्रधान-प्रधान पुरुषों को गुप्त रूप से धन-रत्न आदि आप भेजते रहते हैं न ? आप पहले जितेन्द्रिय होकर, अपने को अपने क़ाबू में करके, फिर ६० अजितेन्द्रिय असावधान शत्रुओं को जीतने की इच्छा रखते हैं न? आप युद्ध-यात्रा करने के पहले शत्रुओं पर साम, दान, भेद और दण्ड का उचित प्रयोग कर लेते हैं न ? आप पहले अपनी जड़ मज़बूत करके फिर शत्रुओं को जीतने जाते हैं न ? शत्रुओं को जीतकर फिर उनको उनके राज्य में स्थापित करके आप उनकी रक्षा करते हैं न ? रथ, हाथी, घोड़े, योद्धा, पैदल, काम करनेवाले, जासूस, मुख्य कर्मचारी, इन आठ अङ्गों से युक्त, चार बलों (मौल, मैत्र, भृत्य, आटविक)

से सम्पन्न और सुशिक्षित सेनापतियों-द्वारा सञ्चालित आपकी चतुरङ्गिणी सेना शत्रुओं को जीतने में समर्थ है न? अन्न की फ़सल काटने और जमा करने के समय पर ही आप शत्रुओं पर आक्रमण करते हैं न? अपने और पराये राज्य में रहकर आपके बहुत से आदमी आपके कामों को पूरा करते और परस्पर एक दूसरे की रक्षा करते हैं न? वे परस्पर झगड़ा करके कार्य को प्रकट तो नहीं कर देते? आपके विश्वासी भृत्य ही आपके व्यवहार की चीज़ों को, कपड़े-गहने आदि वस्तुओं को और सूँघने-खाने आदि की सामग्री को सुरक्षित रखते हैं न? आपके भक्त और ईमानदार आदमी ही कोष, भाण्डार, वाहन, द्वार, शस्त्रशाला और आमदनी (ख़ज़ाने) की देखरेख और रक्षा करते हैं न? आप भीतरी और बाहरी लोगों से अपनी, अपने लोगों से उनकी और उन दोनों से उन दोनों की रक्षा करते रहते हैं न? धर्माचरण के समय भृत्य लोग मद्य, द्यूत, क्रीड़ा (शिकार आदि), स्त्री आदि के खर्चे का हिसाब तो नहीं पेश करते? आप अपनी आमदनी का आधा, तिहाई या चौथाई हिस्सा ख़र्च करके ही अपना निर्वाह करते हैं न? वृद्ध, सजातीय, गुरुजन, व्यापारी, शिल्पी, आश्रित, दीन-दरिद्र और अनाथ लोगों को धन-अन्न आदि की सहायता देकर आप उन पर अनुग्रह दिखाया करते हैं न? ७०

राजन्, आमदनी-ख़र्च का हिसाब रखनेवाले हिसाबी और लेखक लोग नित्य दिन के पहले पहर में आपके पास आकर सब हिसाब दिखा जाते हैं न? काम-काज करने में चतुर, हितैषी, प्रिय कर्मचारियों को बिना अपराध के आप उनके पद से अलग तो नहीं करते हैं? उत्तम, मध्यम, अधम पुरुषों की जाँच करके आप उन्हें वैसे ही कामों में लगाते हैं न? लोभी, चोर, वैरी या व्यवहार की जानकारी में कच्चे अथवा नाबालिग़ आदमियों को तो आप अपने यहाँ कोई काम नहीं देते? आपसे या चोर, लोभी, कुमार और स्त्रियों की प्रबलता से राज्य की प्रजा को पीड़ा तो नहीं पहुँचती? आपके राज्य के किसान तो सुखी और सम्पन्न हैं न? राज्य में जगह-जगह पर जल से भरे बड़े-बड़े तालाब और झीलें खुदी हुई हैं न? खेती तो केवल वर्षा के सहारे पर नहीं होती? किसानों के यहाँ बीज और अन्न आदि की कमी तो नहीं है? आवश्यकता होने पर आप किसानों को साधारण सूद पर ऋण देते रहते हैं न? आपके राज्य में व्यवहार आदि के मुक़द्दमों का फ़ैसला भले स्वभाव के न्यायी पुरुष करते हैं न? क्योंकि जिस राजा के यहाँ न्याय होता है वही सुख का भागी होता है। राजन्, आपके राज्य के प्रत्येक गाँव में शूर और समझदार पाँचों अधिकारी (प्रशास्ता, समाहर्ता—कर वसूल करनेवाला,—संविधाता—कर वसूली की जाँच करनेवाला,—लेखक और साक्षी) मिलकर शान्ति स्थापित किये हुए हैं न? आपने राजधानी की रक्षा के लिए बड़े गाँवों को नगरों के समान और छोटे गाँवों को बड़े गाँवों के समान समृद्धिशाली और सुरक्षित बना रक्खा है न? सब नगरों और गाँवों के रहनेवाले लोग आप पर भक्ति रखते हैं न? दलबन्दी के साथ चोर तो ८०

आपके राज्य के सम-विषम स्थानों और नगरों-गाँवों में किसी प्रकार का उपद्रव नहीं मचाते ? आप स्त्रियों की देख-रेख करते और उन्हें सन्तुष्ट रखते हैं न ? स्त्रियों की रक्षा तो अच्छी तरह होती है न ? स्त्रियों पर विश्वास करके आप उनसे कोई गुप्त बात तो नहीं कह देते ? कोई अमङ्गल समाचार सुनकर उसके बारे में सोचते-सोचते रनिवास में जाकर, सुखभोग में लिप्त हो, उसे भूलकर, आप सुख की नींद सो तो नहीं जाते ? आधी रात तक सोकर पिछली रात को उठकर आप धर्म-अर्थ आदि के बारे में नित्य सोचते रहते हैं न ?

महाराज, यथासमय उठकर और कपड़े तथा गहने पहनकर देश-काल के ज्ञाता मन्त्रियों के साथ आप दर्शन की इच्छा रखनेवाली प्रजा को नित्य दर्शन दिया करते हैं न ? लाल कपड़े और गहने पहने, खुला खड्ग हाथ में लिये शरीररक्षक सैनिक सदा आपके आसपास खड़े रहते हैं न ? आप पूजा के योग्य पुरुषों की पूजा और सत्कार तथा दण्डनीय पुरुषों को दण्ड—यमराज की तरह—दिया करते हैं न ? कौन प्रिय है और कौन अप्रिय, इसकी अच्छी तरह जाँच करके ही आप उनसे वैसा व्यवहार किया करते हैं न ? आप शारीरिक पीड़ा को उपवास आदि नियमों और दवाओं से तथा मानसिक चिन्ता को वृद्धजनों की सङ्गति से दूर करते हुए अपने स्वास्थ्य को ठीक रखते हैं न ? आपके वैद्य चिकित्सा के आठों अङ्गों (निदान, पूर्वचिह्न, रूप, उपशय, सम्प्राप्ति, औषध, रोगी और परिचारक) में चतुर हैं न ? वे सुहृत्, अनुरक्त और आपकी प्रकृति ९० से भली भाँति परिचित हैं न ? लोभ, मोह या मान के वश होकर आप अपने पास आये हुए अर्थियों और प्रत्यर्थियों (किसी काम के लिए आये हुए पुरुषों) को विमुख तो नहीं कर देते ? उनके कार्यों पर आप सदा दृष्टि रखते हैं न ? लोभ, मोह, विश्वास अथवा स्नेह के वशीभूत होकर आप आश्रित मनुष्यों की वृत्ति तो नहीं बन्द कर देते ? आपके नगर और राज्य में रहनेवाली प्रजा, मिलकर, धन आदि लेकर शत्रुओं के अधीन हो आपके साथ विरोध का भाव तो नहीं रखती ? आप दुर्बल शत्रु को बल से, बलवान् को मन्त्रणा से अथवा बल और मन्त्रणा दोनों से पीड़ित करके उसका सर्वनाश तो नहीं कर डालते ? सब प्रधान-प्रधान राजा आपसे अत्यन्त स्नेह रखते हैं न ? वे आज्ञा पाकर आपके लिए अपने प्राण तक देने को तैयार रहते हैं न ? आप सब विद्वानों, गुणियों, ब्राह्मणों और साधुओं की पूजा और सम्मान करते रहते हैं न ? आप इन सब लोगों को स्वर्ग और मोक्ष का फल देनेवाली दक्षिणा देते रहते हैं न ? आप पूर्वपुरुषों द्वारा प्रतिपालित वैदिक धर्म का पालन यत्न से करते रहते हैं न ? गुणी ब्राह्मणों को अपने घर में स्वादिष्ठ भोजन कराकर आप दक्षिणाओं से सन्तुष्ट करते रहते हैं न ? आप एकाग्रचित्त होकर वाजपेय, पुण्डरीक आदि श्रेष्ठ यज्ञ करते रहते हैं न ? आप गुरुजन, वयो-वृद्ध जातिवालों, बड़े-बूढ़ों, तपस्वियों, देवमन्दिरों, शुभ वृक्षों और ब्राह्मणों को सदा भक्ति के १०० साथ प्रणाम करते रहते हैं न ? आप अपने लिए शोक या क्रोध के कारणों को तो उत्पन्न

नहीं करते; अथवा शोक या क्रोध के वशीभूत तो नहीं हो जाते? आपके पास आनेवाले लोग मङ्गलवस्तुओं को भेंट के रूप में लिये आपकी सेवा में उपस्थित होते हैं न? आपकी बुद्धि और आपके कार्य मेरे इन प्रश्नों के अनुकूल ही हैं न? क्योंकि ऐसी बुद्धि और प्रवृत्ति आयु और यश को बढ़ाती तथा धर्म-अर्थ-काम को सम्पन्न करती है। इस प्रकार की सुबुद्धि से जो राजा काम करता है उसके राज्य में किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता—कोई विपत्ति नहीं आती। वह राजा भी सारी पृथ्वी को जीतकर अत्यन्त सुख पाता है। कोई विशुद्धचरित आर्य पुरुष चोरी के अपराध में पकड़ा जाकर आपके किसी लोभी, शास्त्र और लोकव्यवहार से अनभिज्ञ कर्मचारी के द्वारा प्राणदण्ड से दण्डित तो नहीं होता? इसी तरह दुष्ट कर्म करने-वाला कोई अपराधी या चोर प्रमाणसहित पकड़ा जाकर भी द्रव्य के लोभ से कर्मचारियों के हाथों छुटकारा तो नहीं पा जाता? धन के लोभ में पड़कर अर्थात् घूस लेकर आपके मन्त्री या सचिव आदि कर्मचारी किसी धनी या ग़रीब प्रजा के मामलों का अनुचित निर्णय तो नहीं करते? राजन्! नास्तिकता, झूठ, क्रोध, असावधानी, दीर्घसूत्रीपना, ज्ञानी पुरुषों से न मिलना, आलस्य, चित्त की चञ्चलता, लगातार धनोपार्जन की ही चिन्ता में लगे रहना, जो जिस विषय को नहीं जानते उस विषय में उन पुरुषों से सलाह करना, निश्चित विषय का आरम्भ न करना, सलाह को न छिपाना, मङ्गल कार्यों को न करना, और बिना सोचे कुछ कर बैठना—ये चौदह बातें राजाओं के लिए दोष कही गई हैं। इन चौदहों दोषों से आप बचे रहते हैं न? जिनकी जड़ जम चुकी है वे राजा भी इन दोषों के होने से चटपट नष्ट हो जाते हैं। आपका वेदपाठ, आपका धन, आपकी स्त्रियाँ और आपका देखे-सुने का अनुभव सफलता प्राप्त कर चुका है न? ११०

नारद के ये बहुमूल्य वचन सुनकर युधिष्ठिर ने पूछा—हे तपोधन! वेद, धन, स्त्रियाँ और देखे-सुने का अनुभव किस तरह सफल होता है?

नारद ने कहा—वेदों का फल अग्निहोत्र है। धन का फल देना और उपभोग करना है। स्त्रियों का फल रति और पुत्र उत्पन्न करना है। अनुभव का फल सुशीलता और सच्च-रित्रता है। महातपस्वी नारद मुनि यों कहकर फिर धर्मात्मा युधिष्ठिर से पूछने लगे—राजन्, लाभ की प्रत्याशा से दूर देश से आये हुए बैपारियों और सौदागरों से आपके शुल्क (चुङ्गी आदि) लेनेवाले कर्मचारी ठीक-ठीक शुल्क लेते हैं न? नगर और राज्य में आपके कर्मचारियों के द्वारा सम्मानित होकर सौदागर और बैपारी सौदा बेचते-ख़रीदते हैं न? उन्हें कुछ धोखा तो नहीं दिया जाता? उन्हें व्यापार करने का सब तरह का सुभीता है न? आप एकाग्र होकर धर्म-अर्थ का ठीक ज्ञान रखनेवाले वृद्ध पुरुषों के, धर्म-अर्थ के बारे में, उपदेश सुनते रहते हैं न? खेती, गाय, फूल, फल, धर्म आदि की उन्नति के लिए ब्राह्मणों को घृत-मधु देकर आप सन्तुष्ट

रखते हैं न? सब शिल्पियों को शिल्प की सामग्री तो सदा आप चार-चार महीने के लिए अपने राज्य से देते हैं न? किसी के किये हुए अपने उपकार का आप ख़याल करते हैं न? सज्जनों के बीच प्रशंसा करके उस उपकार करनेवाले का आदर-सत्कार आप करते रहते हैं
२० न? हाथी, घोड़े, रथ आदि के शुभाशुभ लक्षणों की पहचान तो आपको है? हे भरतश्रेष्ठ, आप घर में धनुर्वेद और नगररक्षा के कौशल का अभ्यास और मनन किया करते हैं न? आप शत्रुओं को नष्ट करनेवाले अस्त्र-शस्त्र, ब्रह्मदण्ड और सब विषयोगों को जानते हैं न? आप आग, साँप, रोग और राक्षस आदि के डर से अपने राज्य का बचाव किया करते हैं न? अन्धे, गूँगे, लँगड़े, अङ्गहीन, अनाथ, अपाहिजों और संन्यासियों की रक्षा आप पिता की तरह किया करते हैं न? आप निद्रा, आलस्य, डर, क्रोध, कोमलता (दिल की कमज़ोरी) और दीर्घसूत्रता, इन छः दोषों से तो बचे रहते हैं?

वैशम्पायन कहते हैं कि तब महात्मा युधिष्ठिर, ब्राह्मणश्रेष्ठ देवरूप नारद के ये वचन सुनकर, उनके पैर छूकर प्रसन्नता से बोले—भगवन्, आपके इस उपदेश के अनुसार ही मैं सब काम करूँगा। आपके इन वचनों को सुनकर मेरी बुद्धि और भी परिमार्जित होकर बढ़ गई।

हे जनमेजय, राजा युधिष्ठिर ने नारद के आगे प्रतिज्ञा की और आगे उसी के अनुसार उन्होंने काम भी किये। फल यह हुआ कि थोड़े ही दिनों में वे समुद्र-पर्यन्त पृथ्वी के अधीश्वर होकर सुखी हुए।

नारदजी ने युधिष्ठिर से कहा—महाराज, जो राजा इस तरह के आचरणों से चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की और चारों वर्णों की रक्षा करता है वह इस लोक में सुखी होकर
१२८ अन्त को इन्द्रलोक में जाता है।

छठा अध्याय

युधिष्ठिर का नारद से प्रश्न

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, महर्षि नारद के यों कह चुकने पर, यथोचित सम्मान करके, उनके प्रश्नों के उत्तर में युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्, मैं आपके बताये हुए इन धर्ममूलक न्यायपूर्ण उपदेशों के अनुसार ही भरसक चलता रहता हूँ। न्याययुक्त और अर्थ-सङ्गत काम करते समय, पहले के राजा अपने आचरणों से जो मार्ग दिखा गये हैं उसी राह पर चलने में, अपनी ओर से मैं तनिक भी त्रुटि नहीं होने देता। प्रभो, हम लोग उन जितेन्द्रिय पुरुषों के सन्मार्ग पर जाना चाहते हैं, किन्तु उनके समान जितेन्द्रिय न होने के कारण सोलहों आने उनका अनुसरण नहीं कर सकते।

वैशम्पायनजी जनमेजय से कहते हैं कि महर्षि नारद के कुछ विश्राम कर चुकने पर फिर सभा के बीच उनका सत्कार करके उचित समय पर युधिष्ठिर ने उनसे कहा—भगवन्, आप सब जगह जा सकते हैं और विधाता के बनाये लोक-लोकान्तरों में घूमते और उनकी सैर किया करते हैं। मैं पूछता हूँ कि आपने कहीं हमारी इस अपूर्व सभा के समान या इससे अच्छी कोई सभा देखी है या नहीं? यदि देखी हो तो उसका वर्णन करके आप हमें कृतार्थ कीजिए।

यह सुनकर मुसकाते हुए महर्षि नारद ने मधुर वचनों से कहा—हे नरश्रेष्ठ, आपकी इस मणिमयी अद्भुत सभा की समता करनेवाली दूसरी सभा इस मनुष्य-लोक में मैंने नहीं देखी-सुनी। यदि आप सुनना चाहते हैं तो मैं आपके आगे पितृराज़ यम, बुद्धिमान् वरुण, देव- राज इन्द्र और कैलासवासी यक्षराज कुबेर की सभा का वर्णन करता हूँ। लौकिक और अलौ-किक कारीगरियों से भूषित, सब क्लान्ति और कष्टों से रहित, विश्वरूपिणी ब्रह्मा की जो दिव्य सभा है उसका वर्णन मैं तुम्हारे आगे करूँगा। उस सभा में देवता, पितर, साध्य और जितेन्द्रिय-शान्तचित्त-वेदपाठी-यज्ञनिरत मुनि लोग रहते हैं। १०

नारद के ये वचन सुनकर भाइयों और ब्राह्मणों-सहित महात्मा युधिष्ठिर ने हाथ जोड़-कर कहा—भगवन्, आप इन सब सभाओं का वर्णन कीजिए। मैं सुनना चाहता हूँ। ये सभाएँ कितनी लम्बी-चौड़ी हैं? इनमें क्या-क्या सामग्री है? इन सभाओं में पितामह ब्रह्मा, इन्द्र, यमराज, वरुण और कुबेर की उपासना कौन लोग करते हैं? कृपया आप इन सभाओं का वर्णन करके हमारे कौतूहल को दूर कीजिए। इस प्रकार युधिष्ठिर के प्रार्थना करने पर, उनका आग्रह देख, नारद ने कहा—राजन्, मैं एक-एक करके इन सब दिव्य सभाओं का वर्णन करता हूँ। सुनिए। १६

सातवाँ अध्याय

इन्द्र की सभा का वर्णन

नारद ने कहा—हे कुरुनन्दन, इन्द्र की सभा अत्यन्त प्रकाशमान है। अपने किये हुए पुण्यकर्मों के फल से उन्हें ऐसी दिव्य सभा प्राप्त हुई है। सूर्य के समान प्रभापूर्ण वह सभा स्वयं इन्द्र ने बनाई है। वह रमणीय, आकाशचारिणी सभा बुढ़ापा-शोक-थकन-चिन्ता आदि व्याधियों को दूर करती है; वह भयरहित, शान्तिदायिनी, मङ्गलमयी, बड़े मोल के आसनों और ऊँचे विमानों से शोभित है; उस सभा में दिव्य वृक्ष लगे हुए हैं। वह जहाँ चाहो वहाँ जा सकती है। वह सभा डेढ़ सौ योजन लम्बी, सौ योजन चौड़ी और पाँच योजन ऊँची है। उसमें उत्तम आसन पर श्री और लक्ष्मी से अलङ्कृत इन्द्र अपनी स्त्री इन्द्राणी के साथ बैठते हैं।

इन्द्र की वेष-भूषा और शरीर-सौन्दर्य का क्या कहना है। वे मस्तक पर किरीट-मुकुट, अङ्गों में रत्न-जटित अङ्गद आदि गहने और साफ़ कपड़े पहनते हैं। ह्री, कीर्त्ति, कान्ति आदि उनमें पूर्ण रूप से स्थित हैं। तेजस्वी, सुवर्णमालाधारी, दिव्यरूप, अलङ्कृत सब देवता, देवऋषि, सिद्ध, साध्य, मरुद्गण आदि सब अनुचरों सहित उस सभा में इन्द्र की उपासना करते हैं। पाप-रहित, अग्नि के समान तेजस्वी, सोम यज्ञ करनेवाले, शोक-चिन्ता आदि से शून्य देवता तथा
१० देवर्षि उस सभा में विराजते हैं। उस सभा में महर्षि पराशर, पर्वत, सावर्णि, गालव, शङ्ख, लिखित, गौरशिरा, क्रोधी दुर्वासा, श्येन, दीर्घतमा, पवित्रपाणि, द्वितीय सावर्णि, याज्ञवल्क्य, भालुकि, उद्दालक, श्वेतकेतु, ताण्ड्य, भाण्डायनि, हविष्मान्, गरिष्ठ, महाराज हरिश्चन्द्र, हृद्य, उदरशाण्डिल्य, पाराशर्य (व्यास), कृषीवल, वातस्कन्ध, विशाख, विधाता, काल, करालदन्त, त्वष्टा, विश्वकर्मा, तुम्बुरु तथा योनि-ज, अ-योनि-ज, वायु-भक्षी, आहुति-भोजी आदि सब प्रकार के देवता त्रिलोकीनाथ इन्द्र की सेवा में रहते हैं। इस सभा में सहदेव, सुनीथ, महातपस्वी वाल्मीकि, सत्यवादी शमीक, सत्यप्रतिज्ञ प्रचेता, मेधा-तिथि, वामदेव, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, मरुत्त, मरीचि, महातपा स्थाणु, कक्षीवान्, गौतम, तार्क्ष्य, महर्षि वैश्वानर, कालकवृक्षीय, आश्राव्य, हिरण्मय,
२० संवर्त्त, देवहव्य, विश्वक्सेन, वीर्यवान्, दिव्य जल और सब ओषधियाँ विद्यमान रहती हैं। श्रद्धा, मेधा, सरस्वती, धर्म, अर्थ, काम, विद्युत्, मेघ, वायु, बिजली की कड़क, पूर्व दिशा, यज्ञ के सत्ताईस अग्नि*, अग्नि-चन्द्र, इन्द्र-अग्नि, मित्र, सविता, अर्यमा, भग, विश्वेदेवा, साध्यगण, बृहस्पति, शुक्र, विश्वावसु, चित्रसेन, सुमन, तरुण, सब यज्ञ, दक्षिणा, सब ग्रह, सब नक्षत्र और यज्ञों के सब मन्त्र इन्द्र की सभा में उपस्थित रहते हैं। विविध नृत्य, गीत, बाजे और हास-परिहास द्वारा मङ्गलस्तुति सुनाकर तथा विक्रम का बखान करके सुन्दरी अप्सराएँ और विचित्र गन्धर्व लोग इन्द्रदेव का मनोरञ्जन किया करते हैं। दिव्य माला और वस्त्र पहने तेजस्वी ब्रह्मर्षिगण, अग्नि के समान प्रज्वलित राजर्षिगण और देवर्षिगण चन्द्रमा के जैसे दिव्य विमानों पर चढ़कर सदा इस सभा में आया-जाया करते हैं। बृहस्पति और शुक्र वहाँ नित्य बने रहते हैं। चन्द्रमा के समान मनोहर कान्ति और ब्रह्मा के समान तेज से अलङ्कृत ये लोग, और और महात्मा लोग, भृगु और सप्तऋषि सदैव वहाँ आया करते हैं। यह इन्द्र की "पुष्कर-मालिनी" सभा मैंने
३० कई बार अपनी आँखों देखी है। अब यमराज की सभा का वर्णन भी सुनिए।

---

* १ ब्रह्मा के अङ्ग से उत्पन्न अङ्गिरा, २ दक्षिणाग्नि, ३ गार्हपत्य, ४ आहवनीय, ५ निर्मन्थ्य, ६ वैद्युत, ७ शूर, ८ संवर्त्त, ९ लौकिक, १० जाठर, ११ विषग, १२ क्रव्यात्, १३ क्षेमवान्, १४ वैष्णव, १५ दस्युमान्, १६ बलद, १७ शान्त, १८ पुष्ट, १९ विभावसु, २० ज्योतिष्मान्, २१ भरत, २२ भद्र, २३ स्विष्टकृत, २४ वसुमान्, २५ क्रतु, २६ सोम और २७ पितृमान्।

आठवाँ अध्याय

यमराज की सभा का वर्णन

नारद ने कहा—राजन्, सूर्यपुत्र यम के लिए जो सभा बनाई गई है उसका वर्णन करता हूँ; एकाग्र होकर सुनिए। हे पाण्डवश्रेष्ठ, इन्द्र की सभा के समान यह सभा भी शोभा से पूर्ण और कामरूपिणी है। इस सौ योजन की सभा को विश्वकर्मा ने बनाया है। सूर्य के समान प्रकाशवाली, न बहुत ठण्डी और न बहुत गर्म, और मन को प्रसन्न करनेवाली इस सभा में भी बुढ़ापा, शोक, मोह, भूख-प्यास, अनिष्ट, दीनता, थकन और विरोध आदि का नाम नहीं है। इसमें दिव्य और लौकिक सब प्रकार के सामान और भोग मौजूद हैं। यहाँ चाबने, चूसने, चाटने और पीने के सब स्वादिष्ट आहार और मीठे फल-मूल बहुत से हैं। इस सभा में सुगन्धित मालाओं और कल्पवृक्षों की कमी नहीं है। मीठा, ठण्डा और गर्म जल सब ओर भरा है। इस सभा में शुद्ध-हृदय राजर्षि और पवित्र स्वभाववाले ब्रह्मर्षि प्रसन्नतापूर्वक यमराज की उपासना किया करते हैं। हे राजन्! ययाति, नहुष, पुरु, मान्धाता, सोमक, नृग, राजर्षि त्रसदस्यु, कृतवीर्य, श्रुतश्रवा, अरिष्टनेमि, सिद्ध, कृतवेग, कृति, निमि, प्रतर्दन, शिवि, मत्स्य, पृथुलाक्ष, बृहद्रथ, वार्त्त, मरुत्त, कुशिक, साङ्काश्य, साङ्कृति, ध्रुव, चतुरश्व, सदश्योर्मि, कार्त्तवीर्य, भरत, सुरथ, १० सुनीथ, निशठ, नल, दिवोदास, सुमना, अम्बरीष, भगीरथ, व्यश्व, सदश्व, वध्र्यश्व, पृथुवेग, पृथुश्रवा, पृषदश्व, वसुमना, बलवान् क्षुप, रुषद्रु, वृषसेन, पुरुकुत्स, आर्ष्टिषेण, दिलीप, महात्मा उशीनर, औशीनरि, पुण्डरीक, शर्याति, शरभ, शुचि, अङ्ग, रिष्ट, वेन, दुष्यन्त, सृञ्जय, जय, भाङ्गासुरि, सुनीथ, निषध, वहीनर, करन्धम, वाह्लिक, सुद्युम्न, बली मधु, ऐल, मरुत्त, कपोतरोमा, तृणक, सहदेव, सहस्रबाहु अर्जुन, व्यश्व, साश्व, कृशाश्व, शशबिन्दु, दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण, प्रतर्दन, अलर्क, कक्षसेन, गय, गौराश्व, परशुराम, नाभाग, सगर, भूरिद्युम्न, महाश्व, पृथाश्व, जनक, वैन्य, वारिसेन, पुरुजित्, जनमेजय, ब्रह्मदत्त, त्रिगर्त, उपरिचर, इन्द्रद्युम्न, भीमजानु, गौरपृष्ठ, २० अनघ, लय, पद्म, मुचुकुन्द, भूरिद्युम्न, प्रसेनजित्, अरिष्टनेमि, सुद्युम्न, पृथुलाश्व, अष्टक, मत्स्यवंश के सौ नरेश, नीपवंश के और हयवंश के सौ राजा, सौ धृतराष्ट्र, अस्सी जनमेजय, सौ ब्रह्मदत्त, सौ ईरि, सौ वीरि, दो सौ भीष्म, सौ भीम, सौ प्रतिविन्ध्य, सौ नाग, सौ हय, सौ पलाश, सौ काश, सौ कुश, राजेन्द्र शन्तनु, तुम्हारे पिता पाण्डु, उशङ्गव, शतरथ, देवराज, जयद्रथ, मन्त्रियों सहित बुद्धिमान् राजर्षि वृषदर्भ, बहुत दक्षिणावाले महा फलवाले अनेक अश्वमेध यज्ञों से देवताओं को तृप्त करनेवाले हज़ारों शशबिन्दु और अन्य अनेक कीर्त्तिशाली सब शास्त्रों के ज्ञाता पवित्र राजर्षिगण इस सभा में यमराज की उपासना किया करते हैं।

इस सभा में मूर्त्तिमान् मृत्यु, अगस्त्य, मातङ्ग, काल, यज्ञ करनेवाले कर्म-काण्डी, सिद्धगण, योगी लोग, अग्निष्वात्ता, फेनप, ऊष्मप, सुधावान्, बर्हिषद और अन्य पितृगण, काल- ३०

चक, साक्षात् भगवान् अग्नि, दक्षिणायन में मरे हुए दुष्ट कर्म करनेवाले मनुष्य, यमराज के दूत, शिंशप, पलाश, काश, कुश आदि सब यमराज की उपासना करते हैं। पितृपति यमराज के इतने सभासद हैं कि उनके नामों और कर्मों का वर्णन करके उनकी गिनती नहीं की जा. सकती। चाहे जहाँ जा सकनेवाली इस लम्बी-चौड़ी सभा को विश्वकर्मा ने बहुत दिनों तक तपस्या करके बनाया है। यह सभा अपने प्रकाश से अग्नि के समान चमकती है। कठोर तप करनेवाले, शान्त-स्वभाव, सत्यवादी, व्रतनिष्ठ, तेजोमय शरीरवाले, पुण्य कर्म करनेवाले पवित्र संन्यासी, विचित्र केयूर, माला और कुण्डल आदि से अलङ्कृत गन्धर्व और अप्सराएँ, ये सब साफ़ कपड़े पहन करके उस सभा में आते-जाते रहते हैं। महात्मा गन्धर्व और असङ्ख्य अप्सराएँ नाचकर, गा-बजाकर और हास्य-लास्य इत्यादि के द्वारा इस सभा में सबको प्रसन्न किया करती हैं। पवित्र सुगन्ध सबके चित्त को प्रसन्न किया करती है; मधुर पवित्र शब्द कानों को तृप्त करते रहते हैं। बहुतसी मनोहर मालाएँ सभा-भवन की शोभा बढ़ाया करती हैं। सभा में हज़ारों धर्मात्मा दिव्य रूपवाले मनस्वी महात्मा यमराज की उपासना किया करते हैं। महाराज, यह मैंने यमराज की समृद्धिशालिनी सभा का वर्णन किया है; अब कमलों की मालाओं से सजी हुई
४१ मनोहारिणी जलेश्वर वरुण की सभा का वर्णन सुनिए।

नवाँ अध्याय

वरुण की सभा का वर्णन

नारद कहते हैं—हे युधिष्ठिर, वरुण की सभा भी यमराज की सभा के समान सौ योजन की है। वह बहुत ही प्रकाशमान है। उसकी दिव्य चहारदीवारी है और उसमें बढ़िया फाटक लगे हुए हैं। विश्वकर्मा ने उसे जल के भीतर बनाया है। उसमें दिव्य रत्नमय वृक्ष लगे हुए हैं। वे वृक्ष मञ्जरियों और नीले, पीले, सफ़ेद, लाल आदि रङ्ग के फूलों और फलों से लदे हुए हैं। कुञ्ज और लता-वितान उसकी शोभा बढ़ाते हैं। वहाँ हज़ारों प्रकार के मधुर बोलियाँ बोल रहे विचित्र पक्षी कलोलें किया करते हैं। इस सभा में जानेवाले को तत्काल एक प्रकार का अद्भुत आनन्द प्राप्त होता है। यह सभा न तो अत्यन्त ठण्डी है न अत्यन्त गर्म। यह परम रमणीय और सब ऋतुओं में आराम देनेवाली है। वरुण की इस सभा में सुन्दर भवन और श्रेष्ठ आसन शोभायमान हैं। दिव्य कपड़े और गहने पहने हुए वरुण देव अपनी स्त्री वारुणी देवी के साथ इस सभा में एक श्रेष्ठ आसन पर विराजते हैं। दिव्य मालाधारी, दिव्य चन्दन आदि गन्धद्रव्यों से शोभित आदित्यगण इस सभा में जलेश्वर वरुण की उपासना करते हैं। महाराज! वासुकि, तक्षक, ऐरावत, कृष्ण, लोहित, पद्म, चित्र, कैबल, अश्वतर, धृतराष्ट्र, बलाहक, मणिमान्,

कुण्डधार, कर्कोटक, धनञ्जय, पाणिमान्, कुण्डधार, प्रह्लाद, मूषिकाद, जनमेजय, पताकी, मण्डली, फणाधारी आदि नागगण और अन्य अनेक सर्प आनन्द के साथ इस सभा में उपस्थित होकर नित्य विधिपूर्वक वरुण की उपासना किया करते हैं। १०

राजन्! विरोचन के पुत्र राजा बलि, दिग्विजयी नरकासुर, संह्लाद, विप्रचित्ति, कालखञ्ज आदि दानव, सुहनु, दुर्मुख, शङ्ख, सुमना, सुमति, घटोदर, महापार्श्व, क्रथन, पिठर, विश्वरूप, स्वरूप, विरूप, महाशिरा, दशग्रीव, बाली, मेघवासा, दशावर, टिट्टिभ, विटभूत, संह्लाद और इन्द्रतापन आदि अनेक दैत्य और असुर दिव्य पोशाक, माला तथा मनोहर किरीट-कुण्डल आदि गहने पहनकर उस सभा में धर्म-पाश-धारी, उग्रतेजा प्रचेता (वरुण) की उपासना किया करते हैं। अमित वीरता से युक्त ये सब दानव तपस्या से सिद्ध होकर अमर होने का वर पा चुके हैं। राजन्! चारों महासमुद्र, पवित्र जलवाली गङ्गा नदी, कालिन्दी, विदिशा, वेणा, वेग से बहनेवाली नर्मदा, विपाशा, चन्द्रभागा, इरावती, वितस्ता, शतद्रु, सरस्वती, सिन्धु, देवनदी, गोदावरी, कृष्णवेणा, कावेरी, किम्पुना, विशल्या, वैतरणी, तृतीया, ज्येष्ठिला, महानद शोण, चर्मण्वती, महानदी पर्णाशा, सरयू, वारवत्या, लाङ्गली, करतोया, आत्रेयी, लौहित्य महानद, लङ्घती, गोमती, सन्ध्या, त्रिस्रोतसी, ये और अन्य लोक-प्रसिद्ध तीर्थरूपी जलाशय, नदी, तीर्थ, सरोवर, कूप और झील-झरने आदि सब सशरीर होकर जलेश्वर राजाधिराज वरुण की उपासना किया करते हैं। सब दिशाएँ, पृथ्वी, पर्वत और सब जलचर जीव महात्मा वरुण की सेवा में उपस्थित रहते हैं। गाने-बजाने में निपुण गन्धर्वों और अप्सराओं के झुण्ड वरुण देव की स्तुति करते हुए इस सभा में उपस्थित रहते हैं। प्रसिद्ध वंशवाले विविध रत्नभूषित पर्वत भी वहाँ उपस्थित रहकर मधुर कथाएँ सुनाकर वरुण देव का मनोरञ्जन करते हैं। अपने परिवार और गोपुष्कर के साथ वरुण देव का मन्त्री सुनाभ भी उनकी सेवा में उपस्थित रहता है। हे भरतश्रेष्ठ, मैंने लोकों में घूमते-घूमते इस सभा में जाकर इन सब लोगों को शरीरधारी होकर वरुण देव की उपासना करते देखा है। अब कुबेर की सभा का वर्णन सुनिए। २० ३०

दसवाँ अध्याय

कुबेर की सभा का वर्णन

नारद कहते हैं—राजन्, यक्षराज कुबेर की सभा सौ योजन लम्बी और सत्तर योजन चौड़ी है। अपने तप के प्रभाव से उन्होंने वह सभा स्वयं प्राप्त की है। कैलास पर्वत के शिखर के समान उस सभा की उज्ज्वल निर्मल कान्ति चाँदनी से भी बढ़कर शोभायमान और नेत्रों को आनन्द देती है। उस सभा को यक्ष लोग वहन करते हैं, इस कारण वह आकाश में लगी

हुई सी जान पड़ती है। वह दिव्य सभा सुवर्णभूषित ऊँचे-ऊँचे भवनों से शोभित है। स्वर्गीय पवित्र गन्ध से पूर्ण और सभी दर्शकों के मन को मुग्ध बना देनेवाली उस सभा में अनेक बहुमूल्य रत्न जगमगाते हैं, जिससे उसकी अनिर्वचनीय शोभा देख पड़ती है। सफ़ेद पर्वत के शिखर ऐसी वह सभा मानों आकाश में तैर रही है। आँगन में रत्नों की चमक पड़ने से वह सभा अनेक बिजलियों की प्रभा से शोभित सी हो रही है। उसी सभा में मणिमय कुण्डल, विविध रत्न-आभूषण और पवित्र सफ़ेद कपड़े पहने हुए महाराज कुबेर श्रेष्ठ आसन पर विराजमान होते हैं। उनके आसपास हज़ारों सुन्दर स्त्रियाँ उपस्थित रहती हैं। आसन के ऊपर दिव्य कोमल बिछौना बिछा हुआ है, नीचे पैर रखने को चौकी रक्खी हुई है। नन्दन वन का उत्तम पवन कल्पवृक्ष के वनों से होकर, सौगन्धिक वन की सुगन्ध लेकर, अलकनन्दा के जलकणों से शीतल होता हुआ वहाँ आता और कुबेर की सेवा करता है। कुबेर की सभा में देवता और गन्धर्व रहते हैं। किन्नर और अप्सराएँ शुद्ध तान-लय के साथ मधुर गाना गाकर सारी सभा को सन्तुष्ट ९ करती हैं। उस सभा में मिश्रकेशी, रम्भा, चित्रसेना, शुचिस्मिता, चारुनेत्रा, घृताची, मेनका, पुञ्जिकस्थला, विश्वाची, सहजन्या, प्रम्लोचा, उर्वशी, इरा, वर्गा, सौरभेयी, समीची, बुद्बुदा और लता आदि नाचने-गाने में निपुण असङ्ख्य अप्सराएँ और गन्धर्वों की स्त्रियाँ नाच-गाकर, बाजे बजाकर तथा अभिनय करके धनपति की उपासना करती हैं। किन्नर और नर जाति के गन्धर्व, मणिभद्र, धनद, श्वेतभद्र, गुह्यक, कशेरक, गण्डकण्डू, महाबली प्रद्योत, कुस्तुम्बुरु, पिशाच, गजकर्ण, विशालक, वराहकर्ण, ताम्रौष्ठ, फलकक्ष, फलोदक, हंसचूड़, शिखावर्त्त, हेमनेत्र, विभीषण, पुष्पानन, पिङ्गल, शोणितोद, प्रवालक, वृक्षवासी, अनिकेत और चीरवासा आदि हज़ारों यक्ष उस सभा में उपस्थित रहते हैं। हे भरतनन्दन, उस सभा में साक्षात् लक्ष्मीजी विराजमान रहती हैं। कुबेर-नन्दन नलकूबर, मैं, मेरे समान अन्य महापुरुष और ब्रह्मर्षि लोग इस सभा का गौरव बढ़ाते २० हैं। मांसलोलुप राक्षस आदि, और महाबल-पराक्रमी अन्य गन्धर्व, सभा में धनद कुबेर की उपासना किया करते हैं।

महाराज, महाबली शूलपाणि उग्रधन्वा पशुपति भग-नेत्र-नाशन भूत-भावन भवानीपति भगवान् शङ्कर, विकट आकारवाले कुबड़े लाल-लाल आँखों से भयङ्कर घोर नाद करनेवाले मेदा-मांस-भोजी अनेक शस्त्र धारण किये वायु के समान वेग से जानेवाले असङ्ख्य भूतगण प्रमथगण आदि के बीच में, महिष-मर्दिनी सहधर्मिणी अर्धाङ्गिनी भगवती के साथ, प्रिय सखा धनेश्वर की सभा में सदा विराजमान रहते हैं। विश्वावसु, हाहा, हूहू, तुम्बुरु, पर्वत, शैलूष, गीतिनिपुण चित्रसेन, चित्ररथ आदि गन्धर्व प्रसन्न चित्त से यक्षेश्वर कुबेर की उपासना करते हैं। विद्याधरों का राजा चक्रधर्मा अपने छोटे भाइयों-सहित कुबेर की सभा में रहता है। अन्य सैकड़ों किन्नर तथा भगदत्त आदि राजा इस सभा में रहते हैं। किम्पुरुषों का स्वामी द्रुम, राक्षसों का राजा

महेन्द्र और गन्धमादन तथा यक्ष गन्धर्व निशाचर आदि की मण्डलियों के साथ राक्षसराज विभीषण उस सभा में रहते हैं। हिमालय, पारियात्र, विन्ध्य, कैलास, मन्दर, मलय, दर्दुर, महेन्द्र, गन्धमादन, इन्द्रकील, सुनाभ और सुमेरु आदि पर्वत भी कुबेर की उपासना करते हैं। नन्दीश्वर, भगवान् महाकाल, शंकुकर्ण आदि पारिषद, काष्ठ, कुटीमुख, दन्ती, विजय, सफ़ेद रङ्ग का वृषभ, राक्षस और पिशाचगण कुबेर की उपासना करते हैं। पुलस्त्य ऋषि के पुत्र महात्मा कुबेर सदा यक्षों के साथ शङ्कर के पास जाकर उन्हें प्रणाम करते और सदा उनके आज्ञाकारी रहते हैं। महादेव भी उनके साथ मित्रभाव से विनोद करते हैं। शङ्ख और पद्म नाम की दोनों श्रेष्ठ निधियाँ सम्पूर्ण रत्नों के साथ कुबेर की सेवा में रहती हैं। महाराज, मैं उस मनोहर और आकाश में स्थित अद्भुत सभा-भवन को कई बार देख चुका हूँ। अब सृष्टिकर्त्ता प्रजापति ब्रह्मा की सभा का वर्णन करता हूँ, सुनिए। ३० ४०

ग्यारहवाँ अध्याय

ब्रह्मा की सभा का वर्णन

नारदजी कहते हैं—राजन्, अब मैं ब्रह्मा की उस दिव्य सभा का वर्णन करता हूँ जिसकी कोई उपमा नहीं दी जा सकती; क्योंकि उसके समान दूसरा स्थान जगत् में है ही नहीं। [एकाग्र होकर उस महिमामयी ब्रह्मसभा का वर्णन सुनिए।] पूर्व समय सत्ययुग में भगवान् आदित्य मनुष्यलोक की सैर करने को स्वर्ग से पृथ्वी पर आकर मनुष्यरूप से विचर रहे थे। उन्होंने ब्रह्माजी की सभा देखकर प्रसन्न और विस्मित होकर मुझसे उसका वर्णन इस प्रकार किया—नारद! ब्रह्मा की सभा अप्रमेय, दिव्य, मानसिक इच्छा से ही निर्मित, सब प्राणियों के मन को रमानेवाली है। उसके प्रभाव और प्रकाश का पूरा-पूरा वर्णन नहीं हो सकता।

सभा की ऐसी बड़ाई सुनकर उसे देखने के लिए मेरे चित्त में कौतूहल हुआ। मैंने आदित्यदेव से कहा—भगवन्, आपने जिस पापतापनाशिनी पवित्र ब्रह्मसभा का वर्णन किया उसे देखने को मेरा बहुत जी चाहता है। कृपा कर कहिए, किस तपस्या, किस कर्म या औषध आदि के फल से वह सभा देखने को मिल सकती है? भगवान् सूर्य ने मेरा आग्रह देखकर कहा—हे तपोधन, यदि यह सभा देखने की तुम्हारी बड़ी ही इच्छा है तो चित्त को एकाग्र करके हज़ार वर्ष में समाप्त होनेवाला ब्राह्म-व्रत करो; तभी तुम्हारा मनोरथ पूरा हो सकेगा।

महाराज, अब मैं ब्राह्म-व्रत का अनुष्ठान करने के लिए हिमालय पर्वत पर गया। वहाँ सूर्यदेव की बताई विधि के अनुसार मैंने वह व्रत आरम्भ कर दिया। व्रत समाप्त होने पर मैं,

सूर्यदेव के साथ; बहुत दिनों से जिसे देखने की लालसा लगी हुई थी उस ब्रह्मा की सभा में गया। पहले कभी न देखी हुई उस सभा को अच्छी तरह देखकर भी किसी उपमा से उसका वर्णन या परिमाण करना सम्भव नहीं। वह क्षण-क्षण पर नई शोभा और रूप धारण करती है। उसके परिमाण या नक़्शे का निरूपण किसी से नहीं हो सकता। अधिक क्या कहूँ, मैंने वैसी सभा और कहीं नहीं देखी। सब सुखों की खान, न बहुत ठण्डी और न बहुत गर्म इस सभा में प्रवेश करते ही भूख-प्यास, थकन और सब क्लेश तुरन्त दूर हो जाते हैं। उस भवन पर दृष्टि पड़ते ही जान पड़ता है कि हज़ारों सूर्यमणियों से वह बनाया गया है। उसे चौड़े और ऊँचे खम्भों का आधार नहीं है पर फिर भी वह प्राचीन सभा कभी अपने स्थान से विचलित नहीं होती। उस सभा में दिव्य प्रभापूर्ण अनेक प्रकार के अलौकिक भाव देख पड़ते हैं। चन्द्र, सूर्य और अग्नि की प्रभा को भी फीकी करती हुई वह सभा आकाशमण्डल में स्थित है। उसके तेज के आगे सूर्य का प्रचण्ड तेज भी मन्दा जँचता है। उस सभा के बीच में अद्वितीय भगवान् ब्रह्माजी स्वयं देवमायायुक्त होकर अमूल्य रत्नजटित सिंहासन पर विराजमान हैं। प्रजापति लोग उनकी सेवा में रहकर उपासना करते हैं। दक्ष, प्रचेता, पुलह, मरीचि, कश्यप, अत्रि, भृगु, वशिष्ठ, गौतम, अङ्गिरा, पुलस्त्य, क्रतु, प्रह्लाद, कर्दम, अथर्ववेदी आङ्गिरस, सूर्य की किरणें पीकर रहनेवाले वालखिल्य, महातेजस्वी अगस्त्य, मार्कण्डेय, जमदग्नि, भरद्वाज, संवर्त, च्यवन, महाभाग दुर्वासा, धार्मिकश्रेष्ठ ऋष्यशृङ्ग, महातपस्वी योगाचार्य भगवान् सनत्कुमार, असित, देवल, तत्त्वज्ञ जैगिषव्य, ऋषभ, जितशत्रु, महावीर्य और मणि आदि सब महापुरुष उस सभा में हैं। मन, अन्तरिक्ष, विद्याएँ, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, प्रकृति, महत्तत्त्व और सब सृष्टि के कारण पदार्थ, आठ अङ्गोंवाला आयुर्वेद, नक्षत्रगण, चन्द्रमा, सूर्य, उनचास वायु, सब यज्ञ, सङ्कल्प और प्राण आदि सब पदार्थ मूर्त्तिमान् होकर ब्रह्माजी की उपासना करते हैं। धर्म, अर्थ, काम, हर्ष, द्वेष, तप, दम आदि पदार्थ, [भाव और कर्म भी] मूर्त्तिमान् होकर ब्रह्माजी की सेवा में रहते हैं। गन्धर्वों और अप्सराओं के सत्ताईस दल, सब लोकपाल, शुक्र, बृहस्पति, बुध, मङ्गल, शनैश्चर, राहु आदि ग्रह, मन्त्र, रथन्तर साम, हरिमान् और वसुमान् नाम के एक प्रकार के विशेष कर्म, अग्नि-सोम, इन्द्र-अग्नि, सब देवताओं सहित आदित्यगण, मरुद्गण, विश्वकर्मा, आठ वसु, पितृगण, हवि, ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, सब शास्त्र, इतिहास, उपवेद, छहों वेदाङ्ग, सब ग्रह, सब यज्ञ, सोम, वेद-माता गायत्री, सात प्रकार की वाणी, मेधा, धृति, स्मृति, प्रज्ञा, बुद्धि, यश, क्षमा, स्तुति-शास्त्र, समग्र सामगान, विविध गाथाएँ, तर्क-सहित भाष्य, बहुत प्रकार के नाटक, काव्य, कथानक, आख्यायिकाएँ और कारिकाएँ, ये सब मूर्त्तिमान् होकर ब्रह्मा की महासभा में उपस्थित रहते हैं। बड़े-बूढ़ों और गुरुओं की पूजा एवं सत्कार करनेवाले महापुरुषों को उस लोक में जाने का अधिकार है।

क्षण, लव, मुहूर्त्त, दिन, रात, पक्ष, मास, ऋतु, पाँच प्रकार का संवत्सर, चार प्रकार के रात-दिन (१ मनुष्यों का रात-दिन साठ घड़ी का, २ पितरों का एक महीने का, ३ देवताओं का एक साल का, ४ ब्रह्मा का एक कल्प का), इस प्रकार बारह राशियोंवाला, अक्षय, अव्यय, नित्य और दिव्य कालचक्र तथा धर्मचक्र वहाँ नित्य उपस्थित रहते हैं।

हे युधिष्ठिर! अदिति, दिति, दनु, सुरसा, विनता, इरा, कालिका, सुरभी, सरमा, गौतमी, प्रभा, कद्रू, रुद्राणी, श्री, लक्ष्मी, भद्रा, षष्ठी देवी, मूर्त्तिमती पृथ्वी, (गङ्गा,) ह्री, स्वाहा, ४० कीर्त्ति, सुरा, देवी इन्द्राणी, पुष्टि, अरुन्धती, संवृत्ति, आशा, नियति, सृष्टि, रति आदि अनेक देवियाँ प्रजापति ब्रह्मा की उपासना करती हैं। राजन्! आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, मरुद्गण, साध्यगण, विश्वेदेवा, अश्विनीकुमार, मनोजव पितृगण आदि भी भगवान् ब्रह्मा की सभा में रहते हैं। राजन्! पितरों के सात गण हैं। उनमें चार शरीरधारी और तीन बिना शरीर के हैं। अग्निष्वात्त, वैराज और गार्हपत्य, ये तीन पितृगण स्वर्गचारी हैं। सोमप, एकशृङ्ग, चतुर्वेद और कला नामक चार पितृगण ब्राह्मण आदि चारों वर्णों में पूजित होते हैं। ये पितृगण पहले स्वयं तृप्त होकर सोम को प्रसन्न करते हैं। ये सभी पितृगण ब्रह्मा की सभा में रहकर भगवान् प्रजापति की उपासना करते हैं। इनके सिवा राक्षस, पिशाच, दानव, गुह्यक, नाग, सुपर्ण, पशुगण, स्थावर और जङ्गम अन्य महाप्राणी प्रसन्नचित्त से परम तेजस्वी महात्मा पितामह ब्रह्मा की उपासना करते हैं। इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम, उमासहित महादेव आदि श्रेष्ठ ५० देवता वहाँ आते-जाते रहते हैं। राजेन्द्र! कार्त्तिकेय, नारायण, सब देवऋषि लोग, वालखिल्य ऋषिगण तथा योनि-ज और अ-योनि-ज सब प्राणी इस सभा में ब्रह्माजी की उपासना किया करते हैं। राजन्! अधिक कहाँ तक कहें, चर या अचर जो कोई पदार्थ इस त्रिलोकी में देख पड़ता है सो सब ब्रह्मा की सभा में मैंने देखा है। हे पाण्डवश्रेष्ठ! इस सभा में अट्ठासी हज़ार ऊर्ध्वरेता (बालब्रह्मचारी) ऋषि और पचास हज़ार गृहस्थ सन्तानवान् ऋषि वहाँ मैंने देखे हैं। स्वर्गवासी सभी जीव इच्छा के अनुसार उस सभा में जाते और प्रजापति ब्रह्मा को साष्टाङ्ग प्रणाम कर अपने-अपने लोकों को चले जाते हैं। [राजन्, भगवान् ब्रह्मा सब प्राणियों को एक दृष्टि से देखते हैं। उनकी बुद्धि असीम है। वे उग्रतेजस्वी, विश्वयोनि, सब लोगों के पितामह (पूर्वपुरुष) और स्वयम्भू हैं।] वे अपनी सभा में आये हुए देव, दानव, द्विज, नाग, यक्ष, राक्षस, पक्षी, कालेय, गन्धर्व और अप्सरा आदि महाभाग्यशाली अतिथियों को यथायोग्य मधुर वचनों से सादर सन्तुष्ट करके, इच्छा के अनुसार भोग की सामग्रियाँ देकर, विशेष रूप से तृप्त करते हैं। इस सभा में अभ्यागतों की सदा भीड़ रहती है। इसमें असङ्ख्य ब्रह्मर्षि रहते हैं। इसका प्रकाश बहुत बड़ा है। इसमें जाते ही शरीर और मन का खेद जाता रहता है। यह दिव्य सभा अपनी अपूर्व आभा से आप ही जगमगाती हुई

६० बहुत ही सुन्दर है। हे पुरुषसिंह, मनुष्यलोक में जैसे तुम्हारी यह सभा सबसे बढ़कर है वैसे ही देवलोक में ब्रह्मा की सभा अद्वितीय है। मैंने देवलोक की सभी सभाएँ देखी हैं
६२ परन्तु इस समय मनुष्यलोक में तुम्हारी यह सभा ही सबसे बढ़िया जान पड़ती है।

बारहवाँ अध्याय

युधिष्ठिर के प्रश्नों का उत्तर

युधिष्ठिर ने कहा—वक्तापुरुषों में श्रेष्ठ हे नारदजी, आपने जिन सभाओं का वर्णन किया उनमें से यमराज की सभा में सब राजाओं के रहने का आपने उल्लेख किया है। वरुण के सभासद आपने असङ्ख्य नाग, दानव, नदी, समुद्र आदि बतलाये; कुबेर की सभा में असङ्ख्य यक्षों, गन्धर्वों, निशाचरों और अप्सराओं के रहने तथा भगवान् शङ्कर के आने-जाने का उल्लेख किया। पितामह ब्रह्मा की सभा में महर्षियों, देवताओं और तन्त्रों-मन्त्रों आदि का उपस्थित रहना आपने बताया; इन्द्र की सभा में असङ्ख्य देवताओं, बहुत से महर्षियों और प्रधान-प्रधान गन्धर्वों के नाम गिनाये। किन्तु हे मुनिवर, इन्द्र की सभा में सब राजाओं को छोड़कर एक राजा हरिश्चन्द्र के ही होने का क्या कारण है? भगवन्, राजा हरिश्चन्द्र ने ऐसा कौन सा पुण्यकर्म किया है कि अकेले वही इन्द्र के समकक्ष होकर उनके साथ एक ही जगह पर रहते हैं? पितृलोक में आपने हमारे पिता पाण्डु महाराज को देखा ही होगा। उनसे आपसे क्या बातचीत हुई? उन्होंने मुझसे क्या कहने के लिए आपसे कहा है? कृपा करके ये सब बातें विशेष रूप से वर्णन करके मेरे मन का कौतूहल दूर कीजिए।

नारद ने कहा—राजेन्द्र, आप बड़े बुद्धिमान्, इन्द्रलोक-निवासी राजा हरिश्चन्द्र के बारे
१० में जो पूछते हैं सो मैं विशेष रूप से वर्णन करता हूँ। महापराक्रमी राजा हरिश्चन्द्र पृथ्वी पर सब राजाओं के सम्राट् थे। सभी राजा उनके अधीन रहकर उन्हें सिर झुकाते थे। राजन्, एक ही विजयदायक रथ पर अकेले उन्होंने अपनी अस्त्रविद्या के बल से सातों द्वीप पृथ्वी जीत ली थी। उनका दिग्विजय प्रसिद्ध है। वन, उपवन, पर्वत, नगर आदि से पूर्ण इस पृथ्वीमण्डल भर पर अपना राज्य स्थापित करके राजा हरिश्चन्द्र ने महायज्ञ राजसूय किया। सब सामन्त राजा उनकी आज्ञा के अनुसार उस यज्ञ में धन, अन्न और अन्य अनेक प्रकार के उपहार लेकर आये। वे सब यज्ञ में ब्राह्मणों की सेवा के काम में नियुक्त थे।

उस यज्ञ के अवसर पर जिसने जो माँगा उसे राजा ने वही दिया; यही क्यों, बल्कि माँगने से चौगुना-पँचगुना दान किया। पूर्णाहुति के समय राजा ने दूर-दूर से आये हुए वेदज्ञ ब्राह्मणों को उनकी इच्छा के अनुसार खाने-पीने का सामान, दक्षिणा में बहुत सा धन और

सम्पत्ति देकर सन्तुष्ट कर दिया। बहुत सा धन पाकर ब्राह्मण लोग बहुत सन्तुष्ट हुए। उन्होंने यह घोषणा कर दी कि इस समय राजा हरिश्चन्द्र तेज, यश और ऐश्वर्य में सबसे बढ़कर हैं। अब तक कोई राजा उनके समान प्रतापी नहीं हुआ। महाराज, यही कारण है कि इन्द्रधाम में, जहाँ जाने के लिए अन्य राजाओं के मन में लालसा बनी रहती है, राजा हरिश्चन्द्र ही विराजमान हैं। प्रबल प्रतापी और पराक्रमी हरिश्चन्द्र का महायज्ञ राजसूय कर चुकने के बाद, सम्राट् के पद पर अभिषेक हो जाने से, बड़ा गौरव हुआ। हे भरत-नन्दन, जो राजा बहुत धन के बिना न हो सकनेवाला राजसूय यज्ञ करके उसे विधिपूर्वक बिना किसी विघ्न के पूरा कर लेते हैं वही इन्द्र के साथ सुख भोगते हुए उनके समान पद के अधिकारी होते हैं। जो २० क्षत्रिय राजा युद्धभूमि में ठहरकर प्रबल शत्रुओं के पराक्रम को देख तनिक भी नहीं डरते, सामने लड़कर मौत को गले लगाते हैं, उन्हें भी इन्द्र की सभासदस्यता मिलने पर अपार आनन्द मिलता है। और, जो लोग अत्यन्त कठोर तपस्या में मन लगाकर शरीर को छोड़ते हैं वे भी इन्द्रधाम में रहकर नित्य अपार सुख-सम्पत्ति भोगने के अधिकारी होते हैं।

हे युधिष्ठिर, तुम्हारे पिता महाराज पाण्डु भी राजा हरिश्चन्द्र के इस अपूर्व सौभाग्य को देखकर चकरा गये हैं। मुझे मनुष्यलोक में आते देख उन्होंने प्रणाम करके मुझसे कहा था—हे मुनिवर, आप कृपा करके मेरे बड़े बेटे युधिष्ठिर से कहना कि सब भाई तुम्हारे अधीन हैं। उनकी सहायता से तुम सहज ही सब पृथ्वी को जीतकर दिग्विजय कर सकते हो। इसलिए तुम अवश्य राजसूय यज्ञ करो। तुम मेरे बेटे हो। तुम यदि यज्ञ-फल-लाभ के अधिकारी होओगे तो मैं भी राजा हरिश्चन्द्र के समान इन्द्र का सभासद होकर उनके साथ और किसी के अनुभव में न आया हुआ आनन्द पाकर परम सुखी और कृतार्थ बनूँगा।

महाराज, तुम्हारे पिता की यह प्रार्थना सुनकर मैंने कहा कि बहुत अच्छा, जो मैं मनुष्यलोक में जाऊँगा तो तुम्हारा सन्देशा तुम्हारे बेटे से कह दूँगा। युधिष्ठिर, तुमने महाराज पाण्डु का सन्देश सुन लिया; अब उनकी इच्छा पूरी करने का यत्न करो। जो तुम यह यज्ञ कर लोगे तो, अपने पूर्वजों के साथ इन्द्र की सभा के सभासद होकर, परम सुखी हो सकोगे। किन्तु हे धर्मराज, सुना जाता है कि राजसूय महायज्ञ में अनेक प्रकार के विघ्न खड़े हो जाते हैं। यज्ञनाशक ब्रह्मराक्षस सदा उसमें दोष ढूँढ़ा करते हैं। यज्ञ प्रारम्भ होते ही क्षत्रियों के बीच युद्ध की आग जलने लगती है। उस युद्ध में समय-समय पर पृथ्वीमण्डल की सभी वस्तुओं के उजड़ जाने की आशङ्का हो जाती है। मतलब यह कि कुछ भी दोष हो जाने पर एकदम सर्वनाश हो जाता है। इसलिए सब बातों पर विचार करके जो अच्छा समझ ३० पड़े वह करो। नित्य सावधानी के साथ तत्पर रहकर चारों वर्णों की देखरेख और रक्षा करते रहो। तुम्हारा अभ्युदय हो! तुम्हें प्रसन्नता प्राप्त हो। ब्राह्मणों को दक्षिणा आदि से सन्तुष्ट

इन्द्र की वेष-भूषा और शरीर-सौन्दर्य का क्या कहना है। वे मस्तक पर किरीट-मुकुट, अङ्गों में रत्न-जटित अङ्गद आदि गहने और साफ़ कपड़े पहनते हैं। ह्री, कीर्त्ति, कान्ति आदि उनमें पूर्ण रूप से स्थित हैं। तेजस्वी, सुवर्णमालाधारी, दिव्यरूप, अलङ्कृत सब देवता, देवऋषि, सिद्ध, साध्य, मरुद्गण आदि सब अनुचरों सहित उस सभा में इन्द्र की उपासना करते हैं। पाप-रहित, अग्नि के समान तेजस्वी, सोम यज्ञ करनेवाले, शोक-चिन्ता आदि से शून्य देवता तथा देवर्षि उस सभा में विराजते हैं। उस सभा में महर्षि पराशर, पर्वत, सावर्णि, गालव, शङ्ख, लिखित, गौरशिरा, क्रोधी दुर्वासा, श्येन, दीर्घतमा, पवित्रपाणि, द्वितीय सावर्णि, याज्ञवल्क्य, भालुकि, उद्दालक, श्वेतकेतु, ताण्ड्य, भाण्डायनि, हविष्मान्, गरिष्ठ, महाराज हरिश्चन्द्र, हृद्य, उदरशाण्डिल्य, पाराशर्य (व्यास), कृषीबल, वातस्कन्ध, विशाख, विधाता, काल, करालदन्त, त्वष्टा, विश्वकर्मा, तुम्बुरु तथा योनि-ज, अ-योनि-ज, वायु-भक्षी, आहुति-भोजी आदि सब प्रकार के देवता त्रिलोकीनाथ इन्द्र की सेवा में रहते हैं। इस सभा में सहदेव, सुनीथ, महातपस्वी वाल्मीकि, सत्यवादी शमीक, सत्यप्रतिज्ञ प्रचेता, मेधा-तिथि, वामदेव, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, मरुत्त, मरीचि, महातपा स्थाणु, कक्षीवान्, गौतम, तार्क्ष्य, महर्षि वैश्वानर, कालकवृक्षीय, आश्राव्य, हिरण्मय, संवर्त्त, देवहव्य, विश्वक्सेन, वीर्यवान्, दिव्य जल और सब औषधियाँ विद्यमान रहती हैं। श्रद्धा, मेधा, सरस्वती, धर्म, अर्थ, काम, विद्युत्, मेघ, वायु, बिजली की कड़क, पूर्व दिशा, यज्ञ के सत्ताईस अग्नि*, अग्नि-चन्द्र, इन्द्र-अग्नि, मित्र, सविता, अर्यमा, भग, विश्वेदेवा, साध्यगण, बृहस्पति, शुक्र, विश्वावसु, चित्रसेन, सुमन, तरुण, सब यज्ञ, दक्षिणा, सब ग्रह, सब नक्षत्र और यज्ञों के सब मन्त्र इन्द्र की सभा में उपस्थित रहते हैं। विविध नृत्य, गीत, बाजे और हास-परिहास द्वारा मङ्गलस्तुति सुनाकर तथा विक्रम का बखान करके सुन्दरी अप्सराएँ और विचित्र गन्धर्व लोग इन्द्रदेव का मनोरञ्जन किया करते हैं। दिव्य माला और वस्त्र पहने तेजस्वी ब्रह्मर्षिगण, अग्नि के समान प्रज्वलित राजर्षिगण और देवर्षिगण चन्द्रमा के जैसे दिव्य विमानों पर चढ़कर सदा इस सभा में आया-जाया करते हैं। बृहस्पति और शुक्र वहाँ नित्य बने रहते हैं। चन्द्रमा के समान मनोहर कान्ति और ब्रह्मा के समान तेज से अलङ्कृत ये लोग, और और महात्मा लोग, भृगु और सप्तऋषि सदैव वहाँ आया करते हैं। यह इन्द्र की "पुष्कर-मालिनी" सभा मैंने कई बार अपनी आँखों देखी है। अब यमराज की सभा का वर्णन भी सुनिए।

---

* १ ब्रह्मा के अङ्ग से उत्पन्न अङ्गिरा, २ दक्षिणाग्नि, ३ गार्हपत्य, ४ आहवनीय, ५ निर्मन्थ्य, ६ वैद्युत, ७ शूर, ८ संवर्त्त, ९ लौकिक, १० जाठर, ११ विषग, १२ क्रव्यात्, १३ क्षेमवान्, १४ वैष्णव, १५ दस्युमान्, १६ बलद, १७ शान्त, १८ पुष्ट, १९ विभावसु, २० ज्योतिष्मान्, २१ भरत, २२ भद्र, २३ स्विष्टकृत, २४ वसुमान्, २५ क्रतु, २६ सोम और २७ पितृमान्।

आठवाँ अध्याय

यमराज की सभा का वर्णन

नारद ने कहा—राजन्, सूर्यपुत्र यम के लिए जो सभा बनाई गई है उसका वर्णन करता हूँ; एकाग्र होकर सुनिए। हे पाण्डवश्रेष्ठ, इन्द्र की सभा के समान यह सभा भी शोभा से पूर्ण और कामरूपिणी है। इस सौ योजन की सभा को विश्वकर्मा ने बनाया है। सूर्य के समान प्रकाशवाली, न बहुत ठण्डी और न बहुत गर्म, और मन को प्रसन्न करनेवाली इस सभा में भी बुढ़ापा, शोक, मोह, भूख-प्यास, अनिष्ट, दीनता, थकन और विरोध आदि का नाम नहीं है। इसमें दिव्य और लौकिक सब प्रकार के सामान और भोग मौजूद हैं। यहाँ चाबने, चूसने, चाटने और पीने के सब स्वादिष्ठ आहार और मीठे फल-मूल बहुत से हैं। इस सभा में सुगन्धित मालाओं और कल्पवृक्षों की कमी नहीं है। मीठा, ठण्डा और गर्म जल सब ओर भरा है। इस सभा में शुद्ध-हृदय राजर्षि और पवित्र स्वभाववाले ब्रह्मर्षि प्रसन्नतापूर्वक यमराज की उपासना किया करते हैं। हे राजन्! ययाति, नहुष, पुरु, मान्धाता, सोमक, नृग, राजर्षि त्रसदस्यु, कृतवीर्य, श्रुतश्रवा, अरिष्टनेमि, सिद्ध, कृतवेग, कृति, निमि, प्रतर्दन, शिवि, मत्स्य, पृथुलाक्ष, बृहद्रथ, वार्त्त, मरुत्त, कुशिक, साङ्काश्य, साङ्कृति, ध्रुव, चतुरश्व, सदश्वोर्मि, कार्त्तवीर्य, भरत, सुरथ, १० सुनीथ, निशठ, नल, दिवोदास, सुमना, अम्बरीष, भगीरथ, व्यश्व, सदश्व, वध्र्यश्व, पृथुवेग, पृथुश्रवा, पृषदश्व, वसुमना, बलवान् क्षुप, रुषद्गु, वृषसेन, पुरुकुत्स, आर्ष्टिषेण, दिलीप, महात्मा उशीनर, औशीनरि, पुण्डरीक, शर्याति, शरभ, शुचि, अङ्ग, रिष्ट, वेन, दुष्यन्त, सृञ्जय, जय, भाङ्गासुरि, सुनीथ, निषध, वहीनर, करन्धम, वाह्लिक, सुद्युम्न, बली मधु, ऐल, मरुत्त, कपोतरोमा, तृणक, सहदेव, सहस्रबाहु अर्जुन, व्यश्व, साश्व, कृशाश्व, शशबिन्दु, दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण, प्रतर्दन, अलर्क, कक्षसेन, गय, गौराश्व, परशुराम, नाभाग, सगर, भूरिद्युम्न, महाश्व, पृथाश्व, जनक, वैन्य, वारिसेन, पुरुजित्, जनमेजय, ब्रह्मदत्त, त्रिगर्त, उपरिचर, इन्द्रद्युम्न, भीमजानु, गौरपृष्ठ, अनघ, लय, पद्म, मुचुकुन्द, भूरिद्युम्न, प्रसेनजित्, अरिष्टनेमि, सुद्युम्न, पृथुलाश्व, अष्टक, २० मत्स्यवंश के सौ नरेश, नीपवंश के और हयवंश के सौ राजा, सौ धृतराष्ट्र, अस्सी जनमेजय, सौ ब्रह्मदत्त, सौ ईरि, सौ वीरि, दो सौ भीष्म, सौ भीम, सौ प्रतिविन्ध्य, सौ नाग, सौ हय, सौ पलाश, सौ काश, सौ कुश, राजेन्द्र शन्तनु, तुम्हारे पिता पाण्डु, उशङ्गव, शतरथ, देवराज, जयद्रथ, मन्त्रियों सहित बुद्धिमान् राजर्षि वृषदर्भ, बहुत दक्षिणावाले महा फलवाले अनेक अश्वमेध यज्ञों से देवताओं को तृप्त करनेवाले हज़ारों शशबिन्दु और अन्य अनेक कीर्त्तिशाली सब शास्त्रों के ज्ञाता पवित्र राजर्षिगण इस सभा में यमराज की उपासना किया करते हैं।

इस सभा में मूर्त्तिमान् मृत्यु, अगस्त्य, मातङ्ग, काल, यज्ञ करनेवाले कर्म-काण्डी, सिद्धगण, योगी लोग, अग्निष्वात्ता, फेनप, ऊष्मप, सुधावान्, बर्हिषद और अन्य पितृगण, काल- ३०

चक, साक्षात् भगवान् अग्नि, दक्षिणायन में मरे हुए दुष्ट कर्म करनेवाले मनुष्य, यमराज के दूत, शिंशप, पलाश, काश, कुश आदि सब यमराज की उपासना करते हैं। पितृपति यमराज के इतने सभासद हैं कि उनके नामों और कर्मों का वर्णन करके उनकी गिनती नहीं की जा सकती। चाहे जहाँ जा सकनेवाली इस लम्बी-चौड़ी सभा को विश्वकर्मा ने बहुत दिनों तक तपस्या करके बनाया है। यह सभा अपने प्रकाश से अग्नि के समान चमकती है। कठोर तप करनेवाले, शान्त-स्वभाव, सत्यवादी, व्रतनिष्ठ, तेजोमय शरीरवाले, पुण्य कर्म करनेवाले पवित्र संन्यासी, विचित्र केयूर, माला और कुण्डल आदि से अलङ्कृत गन्धर्व और अप्सराएँ, ये सब साफ़ कपड़े पहन करके उस सभा में आते-जाते रहते हैं। महात्मा गन्धर्व और असङ्ख्य अप्सराएँ नाचकर, गा-बजाकर और हास्य-लास्य इत्यादि के द्वारा इस सभा में सबको प्रसन्न किया करती हैं। पवित्र सुगन्ध सबके चित्त को प्रसन्न किया करती है; मधुर पवित्र शब्द कानों को तृप्त करते रहते हैं। बहुतसी मनोहर मालाएँ सभा-भवन की शोभा बढ़ाया करती हैं। सभा में हज़ारों धर्मात्मा दिव्य रूपवाले मनस्वी महात्मा यमराज की उपासना किया करते हैं। महाराज, यह मैंने यमराज की समृद्धिशालिनी सभा का वर्णन किया है; अब कमलों की मालाओं से सजी हुई मनोहारिणी जलेश्वर वरुण की सभा का वर्णन सुनिए। ४१

नवाँ अध्याय

वरुण की सभा का वर्णन

नारद कहते हैं—हे युधिष्ठिर, वरुण की सभा भी यमराज की सभा के समान सौ योजन की है। वह बहुत ही प्रकाशमान है। उसकी दिव्य चहारदीवारी है और उसमें बढ़िया फाटक लगे हुए हैं। विश्वकर्मा ने उसे जल के भीतर बनाया है। उसमें दिव्य रत्नमय वृक्ष लगे हुए हैं। वे वृक्ष मञ्जरियों और नीले, पीले, सफ़ेद, लाल आदि रङ्ग के फूलों और फलों से लदे हुए हैं। कुञ्ज और लता-वितान उसकी शोभा बढ़ाते हैं। वहाँ हज़ारों प्रकार के मधुर बोलियाँ बोल रहे विचित्र पक्षी कलोलें किया करते हैं। इस सभा में जानेवाले को तत्काल एक प्रकार का अद्भुत आनन्द प्राप्त होता है। यह सभा न तो अत्यन्त ठण्डी है न अत्यन्त गर्म। यह परम रमणीय और सब ऋतुओं में आराम देनेवाली है। वरुण की इस सभा में सुन्दर भवन और श्रेष्ठ आसन शोभायमान हैं। दिव्य कपड़े और गहने पहने हुए वरुण देव अपनी स्त्री वारुणी देवी के साथ इस सभा में एक श्रेष्ठ आसन पर विराजते हैं। दिव्य मालाधारी, दिव्य चन्दन आदि गन्धद्रव्यों से शोभित आदित्यगण इस सभा में जलेश्वर वरुण की उपासना करते हैं। महाराज! वासुकि, तक्षक, ऐरावत, कृष्ण, लोहित, पद्म, चित्र, कैवल, अश्वतर, धृतराष्ट्र, बलाहक, मणिमान्,

कुण्डधार, कर्कोटक, धनञ्जय, पाणिमान्, कुण्डधार, प्रह्लाद, मूषिकाद, जनमेजय, पताकी, मण्डली, फणाधारी आदि नागगण और अन्य अनेक सर्प आनन्द के साथ इस सभा में उपस्थित होकर नित्य विधिपूर्वक वरुण की उपासना किया करते हैं। १०

राजन्! विरोचन के पुत्र राजा बलि, दिग्विजयी नरकासुर, संह्लाद, विप्रचित्ति, कालखञ्ज आदि दानव, सुहनु, दुर्मुख, शङ्ख, सुमना, सुमति, घटोदर, महापार्श्व, क्रथन, पिठर, विश्वरूप, स्वरूप, विरूप, महाशिरा, दशग्रीव, वाली, मेघवासा, दशावर, टिट्टिभ, विटभूत, संह्लाद और इन्द्रतापन आदि अनेक दैत्य और असुर दिव्य पोशाक, माला तथा मनोहर किरीट-कुण्डल आदि गहने पहनकर उस सभा में धर्म-पाश-धारी, उग्रतेजा प्रचेता (वरुण) की उपासना किया करते हैं। अमित वीरता से युक्त ये सब दानव तपस्या से सिद्ध होकर अमर होने का वर पा चुके हैं। राजन्! चारों महासमुद्र, पवित्र जलवाली गङ्गा नदी, कालिन्दी, विदिशा, वेणा, वेग से बहनेवाली नर्मदा, विपाशा, चन्द्रभागा, इरावती, वितस्ता, शतद्रु, सरस्वती, सिन्धु, देवनदी, गोदावरी, कृष्णवेणा, कावेरी, किम्पुना, विशल्या, वैतरणी, तृतीया, ज्येष्ठिला, महानद शोण, चर्मण्वती, महानदी पर्णाशा, सरयू, वारवत्या, लाङ्गली, करतोया, आत्रेयी, लौहित्य महानद, लङ्घती, गोमती, सन्ध्या, त्रिस्रोतसी, ये और अन्य लोक-प्रसिद्ध तीर्थरूपी जलाशय, नदी, तीर्थ, सरोवर, कूप और झील-झरने आदि सब सशरीर होकर जलेश्वर राजाधिराज वरुण की उपासना किया करते हैं। सब दिशाएँ, पृथ्वी, पर्वत और सब जलचर जीव महात्मा वरुण की सेवा में उपस्थित रहते हैं। गाने-बजाने में निपुण गन्धर्वों और अप्सराओं के झुण्ड वरुण देव की स्तुति करते हुए इस सभा में उपस्थित रहते हैं। प्रसिद्ध वंशवाले विविध रत्नभूषित पर्वत भी वहाँ उपस्थित रहकर मधुर कथाएँ सुनाकर वरुण देव का मनोरञ्जन करते हैं। अपने परिवार और गोपुष्कर के साथ वरुण देव का मन्त्री सुनाभ भी उनकी सेवा में उपस्थित रहता है। हे भरतश्रेष्ठ, मैंने लोकों में घूमते-घूमते इस सभा में जाकर इन सब लोगों को शरीरधारी होकर वरुण देव की उपासना करते देखा है। अब कुबेर की सभा का वर्णन सुनिए। २० ३०

दसवाँ अध्याय

कुबेर की सभा का वर्णन

नारद कहते हैं—राजन्, यक्षराज कुबेर की सभा सौ योजन लम्बी और सत्तर योजन चौड़ी है। अपने तप के प्रभाव से उन्होंने वह सभा स्वयं प्राप्त की है। कैलास पर्वत के शिखर के समान उस सभा की उज्ज्वल निर्मल कान्ति चाँदनी से भी बढ़कर शोभायमान और नेत्रों को आनन्द देती है। उस सभा को यक्ष लोग वहन करते हैं, इस कारण वह आकाश में लगी

हुई सी जान पड़ती है। वह दिव्य सभा सुवर्णभूषित ऊँचे-ऊँचे भवनों से शोभित है। स्वर्गीय पवित्र गन्ध से पूर्ण और सभी दर्शकों के मन को मुग्ध बना देनेवाली उस सभा में अनेक बहुमूल्य रत्न जगमगाते हैं, जिससे उसकी अनिर्वचनीय शोभा देख पड़ती है। सफ़ेद पर्वत के शिखर ऐसी वह सभा मानों आकाश में तैर रही है। आँगन में रत्नों की चमक पड़ने से वह सभा अनेक बिजलियों की प्रभा से शोभित सी हो रही है। उसी सभा में मणिमय कुण्डल, विविध रत्न-आभूषण और पवित्र सफ़ेद कपड़े पहने हुए महाराज कुबेर श्रेष्ठ आसन पर विराजमान होते हैं। उनके आसपास हज़ारों सुन्दर स्त्रियाँ उपस्थित रहती हैं। आसन के ऊपर दिव्य कोमल बिछौना बिछा हुआ है, नीचे पैर रखने को चौकी रक्खी हुई है। नन्दन वन का उत्तम पवन कल्पवृक्ष के वनों से होकर, सौगन्धिक वन की सुगन्ध लेकर, अलकनन्दा के जलकणों से शीतल होता हुआ वहाँ आता और कुबेर की सेवा करता है। कुबेर की सभा में देवता और गन्धर्व रहते हैं। किन्नर और अप्सराएँ शुद्ध तान-लय के साथ मधुर गाना गाकर सारी सभा को सन्तुष्ट करती हैं। उस सभा में मिश्रकेशी, रम्भा, चित्रसेना, शुचिस्मिता, चारुनेत्रा, घृताची, मेनका, पुञ्जिकस्थला, विश्वाची, सहजन्या, प्रम्लोचा, उर्वशी, इरा, वर्गा, सौरभेयी, समीची, बुद्बुदा और लता आदि नाचने-गाने में निपुण असङ्ख्य अप्सराएँ और गन्धर्वों की स्त्रियाँ नाच-गाकर, बाजे बजाकर तथा अभिनय करके धनपति की उपासना करती हैं। किन्नर और नर जाति के गन्धर्व, मणिभद्र, धनद, श्वेतभद्र, गुह्यक, कशेरक, गण्डकण्डू, महाबली प्रद्योत, कुस्तुम्बुरु, पिशाच, गजकर्ण, विशालक, वराहकर्ण, ताम्रौष्ठ, फलकक्ष, फलोदक, हंसचूड़, शिखावर्त्त, हेमनेत्र, विभीषण, पुष्पानन, पिङ्गल, शोणितोद, प्रबालक, वृक्षवासी, अनिकेत और चीरवासा आदि हज़ारों यक्ष उस सभा में उपस्थित रहते हैं। हे भरतनन्दन, उस सभा में साक्षात् लक्ष्मीजी विराजमान रहती हैं। कुबेर-नन्दन नलकूबर, मैं, मेरे समान अन्य महापुरुष और ब्रह्मर्षि लोग इस सभा का गौरव बढ़ाते हैं। मांसलोलुप राक्षस आदि, और महाबल-पराक्रमी अन्य गन्धर्व, सभा में धनद कुबेर की उपासना किया करते हैं।

महाराज, महाबली शूलपाणि उग्रधन्वा पशुपति भग-नेत्र-नाशन भूत-भावन भवानीपति भगवान् शङ्कर, विकट आकारवाले कुबड़े लाल-लाल आँखों से भयङ्कर घोर नाद करनेवाले मेदा-मांस-भोजी अनेक शस्त्र धारण किये वायु के समान वेग से जानेवाले असङ्ख्य भूतगण प्रमथगण आदि के बीच में, महिष-मर्दिनी सहधर्मिणी अर्धाङ्गिनी भगवती के साथ, प्रिय सखा धनेश्वर की सभा में सदा विराजमान रहते हैं। विश्वावसु, हाहा, हूहू, तुम्बुरु, पर्वत, शैलूष, गीतिनिपुण चित्रसेन, चित्ररथ आदि गन्धर्व प्रसन्न चित्त से यक्षेश्वर कुबेर की उपासना करते हैं। विद्याधरों का राजा चक्रधर्मा अपने छोटे भाइयों-सहित कुबेर की सभा में रहता है। अन्य सैकड़ों किन्नर तथा भगदत्त आदि राजा इस सभा में रहते हैं। किम्पुरुषों का स्वामी द्रुम, राक्षसों का राजा

महेन्द्र और गन्धमादन तथा यक्ष गन्धर्व निशाचर आदि की मण्डलियों के साथ राक्षसराज विभीषण उस सभा में रहते हैं। हिमालय, पारियात्र, विन्ध्य, कैलास, मन्दर, मलय, दर्दुर, महेन्द्र, गन्धमादन, इन्द्रकील, सुनाभ और सुमेरु आदि पर्वत भी कुबेर की उपासना करते हैं। नन्दीश्वर, भगवान् महाकाल, शंकुकर्ण आदि पारिषद, काष्ठ, कुटीमुख, दन्ती, विजय, सफ़ेद रङ्ग का वृषभ, राक्षस और पिशाचगण कुबेर की उपासना करते हैं। पुलस्त्य ऋषि के पुत्र महात्मा कुबेर सदा यक्षों के साथ शङ्कर के पास जाकर उन्हें प्रणाम करते और सदा उनके आज्ञाकारी रहते हैं। महादेव भी उनके साथ मित्रभाव से विनोद करते हैं। शङ्ख और पद्म नाम की दोनों श्रेष्ठ निधियाँ सम्पूर्ण रत्नों के साथ कुबेर की सेवा में रहती हैं। महाराज, मैं उस मनोहर और आकाश में स्थित अद्भुत सभा-भवन को कई बार देख चुका हूँ। अब सृष्टिकर्त्ता प्रजापति ब्रह्मा की सभा का वर्णन करता हूँ, सुनिए। ३० ४०

ग्यारहवाँ अध्याय

ब्रह्मा की सभा का वर्णन

नारदजी कहते हैं—राजन्, अब मैं ब्रह्मा की उस दिव्य सभा का वर्णन करता हूँ जिसकी कोई उपमा नहीं दी जा सकती; क्योंकि उसके समान दूसरा स्थान जगत् में है ही नहीं। [एकाग्र होकर उस महिमामयी ब्रह्मसभा का वर्णन सुनिए।] पूर्व समय सत्ययुग में भगवान् आदित्य मनुष्यलोक की सैर करने को स्वर्ग से पृथ्वी पर आकर मनुष्यरूप से विचर रहे थे। उन्होंने ब्रह्माजी की सभा देखकर प्रसन्न और विस्मित होकर मुझसे उसका वर्णन इस प्रकार किया—नारद! ब्रह्मा की सभा अप्रमेय, दिव्य, मानसिक इच्छा से ही निर्मित, सब प्राणियों के मन को रमानेवाली है। उसके प्रभाव और प्रकाश का पूरा-पूरा वर्णन नहीं हो सकता।

सभा की ऐसी बड़ाई सुनकर उसे देखने के लिए मेरे चित्त में कौतूहल हुआ। मैंने आदित्यदेव से कहा—भगवन्, आपने जिस पापतापनाशिनी पवित्र ब्रह्मसभा का वर्णन किया उसे देखने को मेरा बहुत जी चाहता है। कृपा कर कहिए, किस तपस्या, किस कर्म या औषध आदि के फल से वह सभा देखने को मिल सकती है? भगवान् सूर्य ने मेरा आग्रह देखकर कहा—हे तपोधन, यदि यह सभा देखने की तुम्हारी बड़ी ही इच्छा है तो चित्त को एकाग्र करके हज़ार वर्ष में समाप्त होनेवाला ब्राह्म-व्रत करो; तभी तुम्हारा मनोरथ पूरा हो सकेगा।

महाराज, अब मैं ब्राह्म-व्रत का अनुष्ठान करने के लिए हिमालय पर्वत पर गया। वहाँ सूर्यदेव की बताई विधि के अनुसार मैंने वह व्रत आरम्भ कर दिया। व्रत समाप्त होने पर मैं,

सूर्यदेव के साथ, बहुत दिनों से जिसे देखने की लालसा लगी हुई थी उस ब्रह्मा की सभा में
१० गया। पहले कभी न देखी हुई उस सभा को अच्छी तरह देखकर भी किसी उपमा से उसका वर्णन या परिमाण करना सम्भव नहीं। वह क्षण-क्षण पर नई शोभा और रूप धारण करती है। उसके परिमाण या नक़्शे का निरूपण किसी से नहीं हो सकता। अधिक क्या कहूँ, मैंने वैसी सभा और कहीं नहीं देखी। सब सुखों की खान, न बहुत ठण्डी और न बहुत गर्म इस सभा में प्रवेश करते ही भूख-प्यास, थकन और सब क्लेश तुरन्त दूर हो जाते हैं। उस भवन पर दृष्टि पड़ते ही जान पड़ता है कि हज़ारों सूर्यमणियों से वह बनाया गया है। उसे चौड़े और ऊँचे ख़म्भों का आधार नहीं है पर फिर भी वह प्राचीन सभा कभी अपने स्थान से विचलित नहीं होती। उस सभा में दिव्य प्रभापूर्ण अनेक प्रकार के अलौकिक भाव देख पड़ते हैं। चन्द्र,
१५ सूर्य और अग्नि की प्रभा को भी फीकी करती हुई वह सभा आकाशमण्डल में स्थित है। उसके तेज के आगे सूर्य का प्रचण्ड तेज भी मन्दा जँचता है। उस सभा के बीच में अद्वितीय भगवान् ब्रह्माजी स्वयं देवमायायुक्त होकर अमूल्य रत्नजटित सिंहासन पर विराजमान हैं। प्रजापति लोग उनकी सेवा में रहकर उपासना करते हैं। दक्ष, प्रचेता, पुलह, मरीचि, कश्यप, अत्रि, भृगु, वशिष्ठ, गौतम, अङ्गिरा, पुलस्त्य, क्रतु, प्रह्लाद, कर्दम, अथर्ववेदी आङ्गिरस, सूर्य की किरणें
२० पीकर रहनेवाले वालखिल्य, महातेजस्वी अगस्त्य, मार्कण्डेय, जमदग्नि, भरद्वाज, संवर्त, च्यवन, महाभाग दुर्वासा, धार्मिकश्रेष्ठ ऋष्यश्रृङ्ग, महातपस्वी योगाचार्य भगवान् सनत्कुमार, असित, देवल, तत्त्वज्ञ जैगिषव्य, ऋषभ, जितशत्रु, महावीर्य और मणि आदि सब महापुरुष उस सभा में हैं। मन, अन्तरिक्ष, विद्याएँ, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, प्रकृति, महत्तत्त्व और सब सृष्टि के कारण पदार्थ, आठ अङ्गोंवाला आयुर्वेद, नक्षत्रगण, चन्द्रमा, सूर्य, उनचास वायु, सब यज्ञ, सङ्कल्प और प्राण आदि सब पदार्थ मूर्त्तिमान् होकर ब्रह्माजी की उपासना करते हैं। धर्म, अर्थ, काम, हर्ष, द्वेष, तप, दम आदि पदार्थ, [भाव और कर्म भी] मूर्त्तिमान् होकर ब्रह्माजी की सेवा में रहते हैं। गन्धर्वों और अप्सराओं के सत्ताईस दल, सब लोकपाल, शुक्र, बृहस्पति, बुध, मङ्गल, शनैश्चर, राहु आदि ग्रह, मन्त्र, रथन्तर साम, हरिमान् और वसुमान् नाम के एक प्रकार के विशेष कर्म, अग्नि-सोम, इन्द्र-अग्नि, सब देवताओं सहित
३० आदित्यगण, मरुद्गण, विश्वकर्मा, आठ वसु, पितृगण, हवि, ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, सब शास्त्र, इतिहास, उपवेद, छहों वेदाङ्ग, सब ग्रह, सब यज्ञ, सोम, वेद-माता गायत्री, सात प्रकार की वाणी, मेधा, धृति, स्मृति, प्रज्ञा, बुद्धि, यश, क्षमा, स्तुति-शास्त्र, समग्र सामगान, विविध गाथाएँ, तर्क-सहित भाष्य, बहुत प्रकार के नाटक, काव्य, कथानक, आख्यायिकाएँ और कारिकाएँ, ये सब मूर्त्तिमान् होकर ब्रह्मा की महासभा में उपस्थित रहते हैं। बड़े-बूढ़ों और गुरुओं की पूजा एवं सत्कार करनेवाले महापुरुषों को उस लोक में जाने का अधिकार है।

क्षण, लव, मुहूर्त्त, दिन, रात, पक्ष, मास, ऋतु, पाँच प्रकार का संवत्सर, चार प्रकार के रात-दिन (१ मनुष्यों का रात-दिन साठ घड़ी का, २ पितरों का एक महीने का, ३ देवताओं का एक साल का, ४ ब्रह्मा का एक कल्प का), इस प्रकार बारह राशियोंवाला, अक्षय, अव्यय, नित्य और दिव्य कालचक्र तथा धर्मचक्र वहाँ नित्य उपस्थित रहते हैं।

हे युधिष्ठिर! अदिति, दिति, दनु, सुरसा, विनता, इरा, कालिका, सुरभी, सरमा, गौतमी, प्रभा, कद्रू, रुद्राणी, श्री, लक्ष्मी, भद्रा, षष्ठी देवी, मूर्त्तिमती पृथ्वी, (गङ्गा,) ह्री, स्वाहा, ४० कीर्त्ति, सुरा, देवी इन्द्राणी, पुष्टि, अरुन्धती, संवृत्ति, आशा, नियति, सृष्टि, रति आदि अनेक देवियाँ प्रजापति ब्रह्मा की उपासना करती हैं। राजन्! आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, मरुद्गण, साध्यगण, विश्वेदेवा, अश्विनीकुमार, मनोजव पितृगण आदि भी भगवान् ब्रह्मा की सभा में रहते हैं। राजन्! पितरों के सात गण हैं। उनमें चार शरीरधारी और तीन बिना शरीर के हैं। अग्निष्वात्त, वैराज और गार्हपत्य, ये तीन पितृगण स्वर्गचारी हैं। सोमप, एकशृङ्ग, चतुर्वेद और कला नामक चार पितृगण ब्राह्मण आदि चारों वर्णों में पूजित होते हैं। ये पितृगण पहले स्वयं तृप्त होकर सोम को प्रसन्न करते हैं। ये सभी पितृगण ब्रह्मा की सभा में रहकर भगवान् प्रजापति की उपासना करते हैं। इनके सिवा राक्षस, पिशाच, दानव, गुह्यक, नाग, सुपर्ण, पशुगण, स्थावर और जङ्गम अन्य महाप्राणी प्रसन्नचित्त से परम तेजस्वी महात्मा पितामह ब्रह्मा की उपासना करते हैं। इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम, उमासहित महादेव आदि श्रेष्ठ ५० देवता वहाँ आते-जाते रहते हैं। राजेन्द्र! कार्त्तिकेय, नारायण, सब देवऋषि लोग, वालखिल्य ऋषिगण तथा योनि-ज और अ-योनि-ज सब प्राणी इस सभा में ब्रह्माजी की उपासना किया करते हैं। राजन्! अधिक कहाँ तक कहें, चर या अचर जो कोई पदार्थ इस त्रिलोकी में देख पड़ता है सो सब ब्रह्मा की सभा में मैंने देखा है। हे पाण्डवश्रेष्ठ! इस सभा में अट्ठासी हज़ार ऊर्द्ध्वरेता (बालब्रह्मचारी) ऋषि और पचास हज़ार गृहस्थ सन्तानवान् ऋषि वहाँ मैंने देखे हैं। स्वर्गवासी सभी जीव इच्छा के अनुसार उस सभा में जाते और प्रजापति ब्रह्मा को साष्टाङ्ग प्रणाम कर अपने-अपने लोकों को चले जाते हैं। [राजन्, भगवान् ब्रह्मा सब प्राणियों को एक दृष्टि से देखते हैं। उनकी बुद्धि असीम है। वे उग्रतेजस्वी, विश्वयोनि, सब लोगों के पितामह (पूर्वपुरुष) और स्वयम्भू हैं।] वे अपनी सभा में आये हुए देव, दानव, द्विज, नाग, यक्ष, राक्षस, पक्षी, कालेय, गन्धर्व और अप्सरा आदि महाभाग्यशाली अतिथियों को यथायोग्य मधुर वचनों से सादर सन्तुष्ट करके, इच्छा के अनुसार भोग की सामग्रियाँ देकर, विशेष रूप से तृप्त करते हैं। इस सभा में अभ्यागतों की सदा भीड़ रहती है। इसमें असङ्ख्य ब्रह्मर्षि रहते हैं। इसका प्रकाश बहुत बड़ा है। इसमें जाते ही शरीर और मन का खेद जाता रहता है। यह दिव्य सभा अपनी अपूर्व आभा से आप ही जगमगाती हुई

६० बहुत ही सुन्दर है। हे पुरुषसिंह, मनुष्यलोक में जैसे तुम्हारी यह सभा सबसे बढ़कर है वैसे ही देवलोक में ब्रह्मा की सभा अद्वितीय है। मैंने देवलोक की सभी सभाएँ देखी हैं
६१ परन्तु इस समय मनुष्यलोक में तुम्हारी यह सभा ही सबसे बढ़िया जान पड़ती है।

बारहवाँ अध्याय

युधिष्ठिर के प्रश्नों का उत्तर

युधिष्ठिर ने कहा—वक्तापुरुषों में श्रेष्ठ हे नारदजी, आपने जिन सभाओं का वर्णन किया उनमें से यमराज की सभा में सब राजाओं के रहने का आपने उल्लेख किया है। वरुण के सभासद आपने असङ्ख्य नाग, दानव, नदी, समुद्र आदि बतलाये; कुबेर की सभा में असङ्ख्य यक्षों, गन्धर्वों, निशाचरों और अप्सराओं के रहने तथा भगवान् शङ्कर के आने-जाने का उल्लेख किया। पितामह ब्रह्मा की सभा में महर्षियों, देवताओं और तन्त्रों-मन्त्रों आदि का उपस्थित रहना आपने बताया; इन्द्र की सभा में असङ्ख्य देवताओं, बहुत से महर्षियों और प्रधान-प्रधान गन्धर्वों के नाम गिनाये। किन्तु हे मुनिवर, इन्द्र की सभा में सब राजाओं को छोड़कर एक राजा हरिश्चन्द्र के ही होने का क्या कारण है? भगवन्, राजा हरिश्चन्द्र ने ऐसा कौन सा पुण्यकर्म किया है कि अकेले वही इन्द्र के समकक्ष होकर उनके साथ एक ही जगह पर रहते हैं? पितृलोक में आपने हमारे पिता पाण्डु महाराज को देखा ही होगा। उनसे आपसे क्या बातचीत हुई? उन्होंने मुझसे क्या कहने के लिए आपसे कहा है? कृपा करके ये सब बातें विशेष रूप से वर्णन करके मेरे मन का कौतूहल दूर कीजिए।

नारद ने कहा—राजेन्द्र, आप बड़े बुद्धिमान्, इन्द्रलोक-निवासी राजा हरिश्चन्द्र के बारे
१० में जो पूछते हैं सो मैं विशेष रूप से वर्णन करता हूँ। महापराक्रमी राजा हरिश्चन्द्र पृथ्वी पर सब राजाओं के सम्राट् थे। सभी राजा उनके अधीन रहकर उन्हें सिर झुकाते थे। राजन्, एक ही विजयदायक रथ पर अकेले उन्होंने अपनी अस्त्रविद्या के बल से सातों द्वीप पृथ्वी जीत ली थी। उनका दिग्विजय प्रसिद्ध है। वन, उपवन, पर्वत, नगर आदि से पूर्ण इस पृथ्वी-मण्डल भर पर अपना राज्य स्थापित करके राजा हरिश्चन्द्र ने महायज्ञ राजसूय किया। सब सामन्त राजा उनकी आज्ञा के अनुसार उस यज्ञ में धन, अन्न और अन्य अनेक प्रकार के उपहार लेकर आये। वे सब यज्ञ में ब्राह्मणों की सेवा के काम में नियुक्त थे।

उस यज्ञ के अवसर पर जिसने जो माँगा उसे राजा ने वही दिया; यही क्यों, बल्कि माँगने से चौगुना-पँचगुना दान किया। पूर्णाहुति के समय राजा ने दूर-दूर से आये हुए वेदज्ञ ब्राह्मणों को उनकी इच्छा के अनुसार खाने-पीने का सामान, दक्षिणा में बहुत सा धन और

सम्पत्ति देकर सन्तुष्ट कर दिया। बहुत सा धन पाकर ब्राह्मण लोग बहुत सन्तुष्ट हुए। उन्होंने यह घोषणा कर दी कि इस समय राजा हरिश्चन्द्र तेज, यश और ऐश्वर्य में सबसे बढ़कर हैं। अब तक कोई राजा उनके समान प्रतापी नहीं हुआ। महाराज, यही कारण है कि इन्द्रधाम में, जहाँ जाने के लिए अन्य राजाओं के मन में लालसा बनी रहती है, राजा हरिश्चन्द्र ही विराजमान हैं। प्रबल प्रतापी और पराक्रमी हरिश्चन्द्र का महायज्ञ राजसूय कर चुकने के बाद, सम्राट् के पद पर अभिषेक हो जाने से, बड़ा गौरव हुआ। हे भरत-नन्दन, जो राजा बहुत धन के बिना न हो सकनेवाला राजसूय यज्ञ करके उसे विधिपूर्वक बिना किसी विघ्न के पूरा कर लेते हैं वही इन्द्र के साथ सुख भोगते हुए उनके समान पद के अधिकारी होते हैं। जो २० क्षत्रिय राजा युद्धभूमि में ठहरकर प्रबल शत्रुओं के पराक्रम को देख तनिक भी नहीं डरते, सामने लड़कर मौत को गले लगाते हैं, उन्हें भी इन्द्र की सभासदस्यता मिलने पर अपार आनन्द मिलता है। और, जो लोग अत्यन्त कठोर तपस्या में मन लगाकर शरीर को छोड़ते हैं वे भी इन्द्रधाम में रहकर नित्य अपार सुख-सम्पत्ति भोगने के अधिकारी होते हैं।

हे युधिष्ठिर, तुम्हारे पिता महाराज पाण्डु भी राजा हरिश्चन्द्र के इस अपूर्व सौभाग्य को देखकर चकरा गये हैं। मुझे मनुष्यलोक में आते देख उन्होंने प्रणाम करके मुझसे कहा था—हे मुनिवर, आप कृपा करके मेरे बड़े बेटे युधिष्ठिर से कहना कि सब भाई तुम्हारे अधीन हैं। उनकी सहायता से तुम सहज ही सब पृथ्वी को जीतकर दिग्विजय कर सकते हो। इसलिए तुम अवश्य राजसूय यज्ञ करो। तुम मेरे बेटे हो। तुम यदि यज्ञ-फल-लाभ के अधिकारी होओगे तो मैं भी राजा हरिश्चन्द्र के समान इन्द्र का सभासद होकर उनके साथ और किसी के अनुभव में न आया हुआ आनन्द पाकर परम सुखी और कृतार्थ बनूँगा।

महाराज, तुम्हारे पिता की यह प्रार्थना सुनकर मैंने कहा कि बहुत अच्छा, जो मैं मनुष्यलोक में जाऊँगा तो तुम्हारा सन्देशा तुम्हारे बेटे से कह दूँगा। युधिष्ठिर, तुमने महाराज पाण्डु का सन्देश सुन लिया; अब उनकी इच्छा पूरी करने का यत्न करो। जो तुम यह यज्ञ कर लोगे तो, अपने पूर्वजों के साथ इन्द्र की सभा के सभासद होकर, परम सुखी हो सकोगे। किन्तु हे धर्मराज, सुना जाता है कि राजसूय महायज्ञ में अनेक प्रकार के विघ्न खड़े हो जाते हैं। यज्ञनाशक ब्रह्मराक्षस सदा उसमें दोष ढूँढ़ा करते हैं। यज्ञ प्रारम्भ होते ही क्षत्रियों के बीच युद्ध की आग जलने लगती है। उस युद्ध में समय-समय पर पृथ्वीमण्डल की सभी वस्तुओं के उजड़ जाने की आशङ्का हो जाती है। मतलब यह कि कुछ भी दोष हो जाने पर एकदम सर्वनाश हो जाता है। इसलिए सब बातों पर विचार करके जो अच्छा समझ ३० पड़े वह करो। नित्य सावधानी के साथ तत्पर रहकर चारों वर्णों की देखरेख और रक्षा करते रहो। तुम्हारा अभ्युदय हो! तुम्हें प्रसन्नता प्राप्त हो। ब्राह्मणों को दक्षिणा आदि से सन्तुष्ट

करते हुए उनसे आशीर्वाद प्राप्त करो। राजन्, तुमने जो पूछा था सो मैंने विस्तार के साथ कह दिया। अब मैं विदा होता हूँ। मेरा विचार द्वारका पुरी को जाने का है।

वैशम्पायन कहते हैं—युधिष्ठिर से विदा होकर अपने साथ आये हुए ऋषियों-सहित नारदजी वहाँ से चल दिये। उनके चले जाने पर राजा युधिष्ठिर अपने छोटे भाइयों के साथ
३४ राजसूय यज्ञ करने के बारे में सलाह करने लगे।

राजसूयारम्भपर्व

तेरहवाँ अध्याय

राजसूय के लिए युधिष्ठिर की इच्छा

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, देवर्षि नारद के वचन सुनकर महाराज युधिष्ठिर ने एक लम्बी साँस ली। वे सोचने लगे कि राजसूय यज्ञ किस तरह हो। इसी चिन्ता ने उन्हें बेचैन कर दिया। महात्मा राजर्षियों की महिमा, पुण्यकर्म करने से यजमानों को श्रेष्ठ लोकों की प्राप्ति और राजसूय यज्ञ का फल भोगनेवाले राजा हरिश्चन्द्र के स्वर्ग-वास आदि बातों के बारे में विचार करने से राजसूय यज्ञ करने के लिए उनकी उत्कण्ठा प्रबल हो उठी। अब महाराज युधिष्ठिर ने सभासदों का सम्मान करके और उनसे सम्मान पाकर राजसूय यज्ञ करने का सङ्कल्प कर लिया। अद्भुत तेज-प्रताप से अलङ्कृत, श्रेष्ठ धर्मात्मा युधिष्ठिर ने धर्मचिन्तन में अपना मन लगा दिया। उनके हृदय में केवल यही चिन्ता प्रबल हो उठी कि प्रजा का भला किस उपाय से हो सकता है।

वे क्रोध, मत्सर (डाह) आदि से बचकर, पक्षपात छोड़कर, सभी का उपकार करने लगे। उन्होंने अपने कुल का सब देना चुका देने की आज्ञा दे दी। सब जगह सब लोग धर्म को, धर्मराज को, साधुवाद देते दिखाई पड़ते थे। लगातार धर्म-कर्म करने से सब प्रजा दिन-दिन उन्हें अपने पिता के समान समझकर उन पर अटल भक्ति रखने लगी। उनका अप्रिय या अनिष्ट की चेष्टा करनेवाला कोई नहीं देख पड़ता था। इसी कारण युधिष्ठिर का नाम 'अजातशत्रु' पड़ गया। [खुद राजा युधिष्ठिर प्रजा का मनोरञ्जन करने में तत्पर हुए,] भीमसेन अपने बाहुबल से प्रजा के कष्टों को दूर करते हुए उसकी रक्षा और पालन करने लगे। अर्जुन शत्रुओं का
१० नाश करने में और बुद्धिमान् सहदेव धर्म के आचरण में प्रवृत्त हुए। महात्मा नकुल स्वाभाविक नम्रता से सबको अपने अनुकूल बनाने लगे। इस प्रकार पाँचों पाण्डवों के यत्न से सब प्रजा युद्ध आदि के झगड़ों से बची रहकर मजे में अपने-अपने काम करने लगी। नगरों और गाँवों में प्रजा के बीच कहीं लड़ाई-झगड़ा नहीं होता था। समय पर यथेष्ट पानी बरसता था। सब
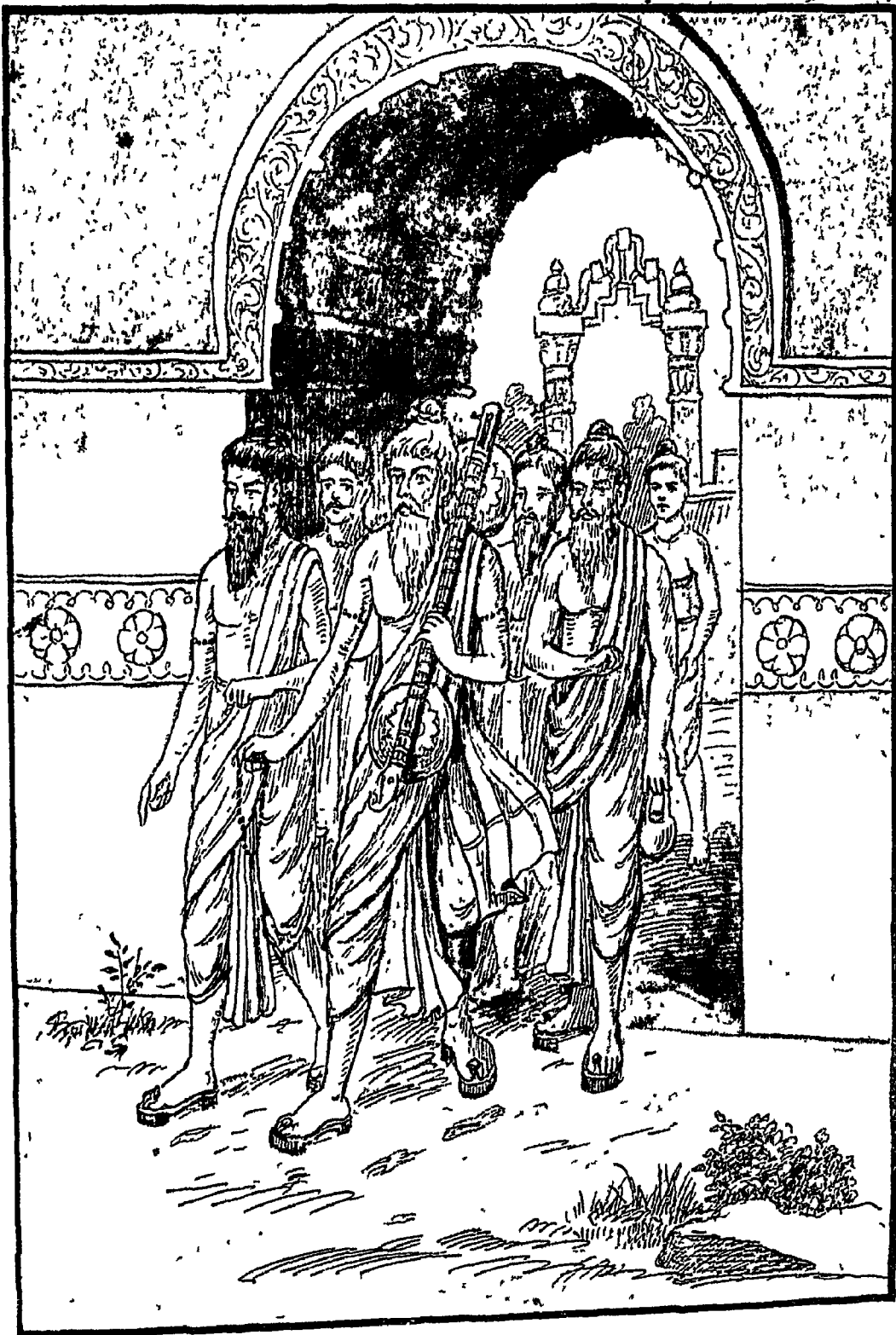
शिष्य-वर्ग-सहित नारद का सभा से प्रस्थान ।—पृष्ठ ५३८

जनपद भरे-पुरे और सम्पन्न हो गये। धर्मराज युधिष्ठिर के राज्यकाल में किसी ज़रूरी चीज़ की कमी नहीं रह गई। शासन की उत्तमता से महाजनी, यज्ञ-फल, गोरक्षा, पशुपालन, खेती, बनिज आदि सभी बातों की उन्नति होने लगी। धोखा देकर प्रजा के धन को ठगना या बल-पूर्वक छीन लेना, व्याधि-भय, अग्नि-भय, अकाल-मृत्यु आदि का कहीं नाम न सुन पड़ता था। उस समय कहीं यह सुन भी न पड़ता था कि चोर, ठग या राजा के कृपापात्र लोग कहीं कुछ अत्याचार कर रहे हैं। ग़रीबी के कारण राजा की मालगुज़ारी बाक़ी रहना, 'कर' के लिए प्रजापीड़न, वर्षा का न होना या अत्यन्त वर्षा होना, ये उपद्रव राजा युधिष्ठिर के राज्य में न होते थे। अपने रोज़गार के ऊपर बँधा हुआ राजस्व (टैक्स) देने के लिए व्यापारियों के आने से और राजा का प्रिय करने तथा उनकी उपासना के लिए कर देनेवाले राजाओं के लगा-तार आने-जाने से राजा युधिष्ठिर की राजधानी और राज की दिन-दिन श्री-वृद्धि होने लगी। अधिक क्या कहें, उनके राज्यकाल में सुख-सम्भोग-लोलुप और लोभ-मद आदि राजसी वृत्तियों के अत्यन्त वशीभूत विलासी व्यक्तियों के द्वारा भी देश की विशेष रूप से उन्नति होने लगी। युधिष्ठिर को सब लोग सर्वव्यापक, सब गुणों से अलङ्कृत, सहनशील, शान्तस्वभाव जानते और मानते थे। तेजस्वी, महायशस्वी, सम्राट् धर्मराज ने जिन-जिन स्थानों पर अधिकार कर लिया था वहाँ के ब्राह्मणों से लेकर शूद्र अहीर तक उनको अपने पिता-माता अथवा उनसे भी अधिक समझकर उन पर भक्ति और श्रद्धा रखते थे।

बोलने की अलौकिक शक्ति रखनेवाले राजा युधिष्ठिर अपने छोटे भाइयों और मन्त्रियों को बुलाकर उनसे अपने राजसूय यज्ञ करने के बारे में बारम्बार सलाह करने लगे। यज्ञ करने की इच्छा रखनेवाले बुद्धिमान् युधिष्ठिर के अर्थपूर्ण वाक्य सुनकर मन्त्रियों ने एकमत होकर उनसे कहा—हे कुरुश्रेष्ठ, जो राजा सार्वभौम नरेश के योग्य गुणों का पात्र होकर अभ्युदय को प्राप्त होता है वही राजसूय यज्ञ करने का अधिकारी समझा जाता है; राजसूय यज्ञ करने से ही राजा सम्राट् कहलाता है। आपमें सम्राट् के सब गुण हैं, इसलिए आप राजसूय यज्ञ अच्छी तरह कर सकते हैं। हम लोग और आपके इष्ट-मित्र यह बात मानते हैं कि इस समय आप राजसूय यज्ञ करने योग्य हैं। आप शीघ्र ही इस यज्ञ का अनुष्ठान कीजिए। आपके मित्र भी इसका अनुमोदन करेंगे। इस समय राज्य में किसी प्रकार का उपद्रव नहीं है। क्षत्रिय-बल-सम्पन्न होने पर यह यज्ञ सहज ही किया जा सकता है। व्रतधारी सामवेदी ऋत्विक् ब्राह्मण लोग इस यज्ञ में मन्त्रपाठपूर्वक छः प्रकार के अग्नि की स्थापना करते हैं। राजसूय यज्ञ की दीक्षा लेने से और यज्ञान्त में अवभृथ स्नान तथा राज्याभिषेक होने से अग्निहोत्र आदि सभी यज्ञों के करने का फल मिल जाता है। इसी कारण राजसूय यज्ञ की दीक्षा लेनेवाला सर्वजित् कहलाता है। महाराज, आप पराक्रमी और प्रतापी हैं; हम लोग भी आपके

२०

आज्ञाकारी हैं। यज्ञ का आरम्भ कीजिए; शीघ्र ही आप की इच्छा पूरी होगी। इसलिए अब आप अधिक सोच-विचार न करके राजसूय यज्ञ आरम्भ कर दीजिए।

महाराज जनमेजय! युधिष्ठिर के मन्त्री, इष्ट-मित्र आदि ने एकत्र होकर और अलग-अलग भी उन्हें यही सलाह दी। पाण्डव युधिष्ठिर ने उनकी धर्म-सम्पादक, इष्ट और न्याय-सङ्गत श्रेष्ठ यह सलाह मन ही मन मान ली। किन्तु उनके मन में यह आन्दोलन बराबर चलता रहा कि इस यज्ञ का अनुष्ठान अभी मेरे लिए उचित है या नहीं; इस महायज्ञ को करने की योग्यता मुझमें है या नहीं; परन्तु बार-बार राजसूय यज्ञ करने की ओर ही उनका मन ललक उठता था। इस कारण मन्त्र-(सलाह) कार्य में चतुर धर्मराज युधिष्ठिर फिर अपने भाइयों, मन्त्रियों, महात्मा ऋत्विक् ब्राह्मणों और धौम्य, व्यास आदि को जमा करके उनसे पूछने लगे। धर्मराज ने कहा—सार्वभौम राजा के करने योग्य राजसूय महायज्ञ करने के लिए मेरा जी बहुत चाहता है। मुझे उसके करने की श्रद्धा है। अब तुम लोग बताओ कि किस उपाय से मेरा यह ३० मनोरथ सफल हो सकता है?

वैशम्पायन कहते हैं कि हे जनमेजय, धर्मराज युधिष्ठिर के इस प्रस्ताव को सुनकर सबने यह समयोचित सलाह दी—महाराज, आप व्यर्थ चिन्ता कर रहे हैं। आप अवश्य राजसूय यज्ञ करने के योग्य पात्र हैं। कार्य आरम्भ कर दीजिए; सहज ही आपकी इच्छा पूरी होगी। इस प्रकार भाइयों, मन्त्रियों, ऋत्विजों और ऋषियों को अपनी इच्छा के अनुकूल सलाह देते देखकर जितेन्द्रिय सत्यवादी महाराज युधिष्ठिर को बड़ा सन्तोष हुआ। किन्तु इसके बाद फिर वे सोचने लगे कि जो मनुष्य अपनी सामर्थ्य, सुयोग, देश, काल, आमदनी और ख़र्च पर अच्छी तरह विचार कर किसी काम को शुरू करता है उसे पीछे पछताना नहीं पड़ता। बुद्धिमान् चतुर लोग इन बातों पर विशेष रूप से विचार किये बिना काम नहीं करते, इसी से उन्हें मुसीबत में नहीं पड़ना पड़ता। केवल अपने ही निश्चय पर भरोसा करके किसी तरह इतने बड़े यज्ञ के काम में हाथ डालना ठीक नहीं। यों सोचकर धर्मराज ने कर्त्तव्य का निश्चय करने के विचार से पुरुषोत्तम कृष्ण को स्मरण किया। उन्होंने सोचा कि कृष्णचन्द्र सब मनुष्यों से श्रेष्ठ हैं। वे अप्रमेय, महाबाहु, अपनी इच्छा से मनुष्यलोक में उत्पन्न साक्षात् नारायण हैं। देवताओं के ऐसे कृष्णचन्द्र के अलौकिक कार्यों को देखकर युधिष्ठिर को निश्चय हो गया था कि संसार में ऐसी कोई वस्तु या बात ही नहीं जिसे कृष्ण न जानते हों, ऐसा कोई काम ही नहीं जिसे वे सहज ही न कर सकते हों, ऐसी कोई बात ही नहीं जिसे वे सह न सकते हों।

कृष्ण के बारे में ऐसा दृढ़ निश्चय कर चुकने पर युधिष्ठिर ने आशीर्वाद और अपना सन्देशा कहने के लिए आज्ञा देकर एक दूत को उसी समय जगद्गुरु कृष्ण के पास भेजा। ४० शीघ्रगामी रथ पर बैठकर वह दूत द्वारकापुरी में यादवों के बीच बैठे कृष्ण के पास गया। उस
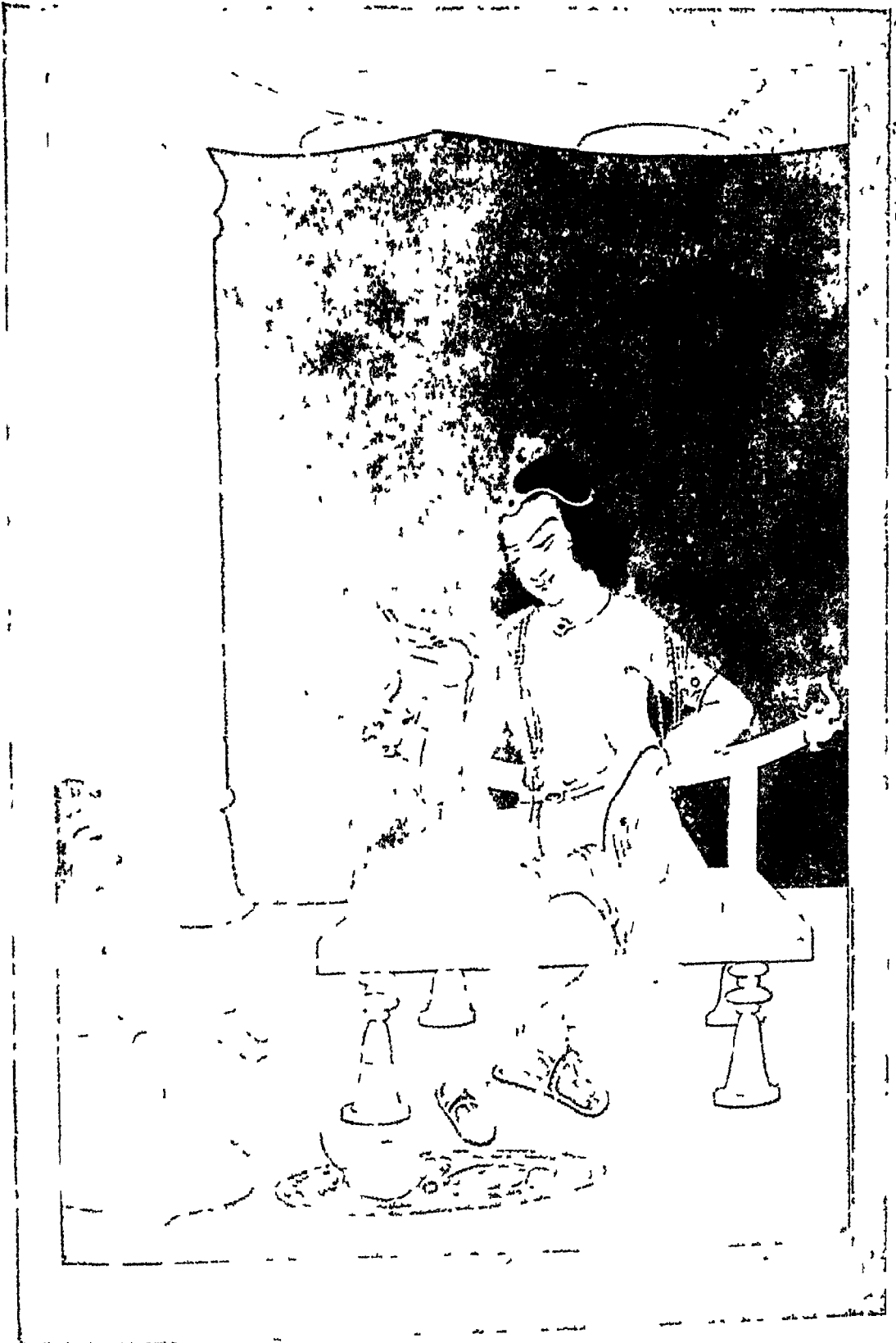
कृष्ण के पास युधिष्ठिर का दूत ।—पृष्ठ ५४०

दूत के मुँह से सब हाल सुनकर, अपने दर्शन की इच्छा रखनेवाले धर्मराज को दर्शन देने के विचार से, पीताम्बरधारी कृष्णचन्द्र उसी समय उस दूत के साथ चल पड़े। वायु के समान वेगशाली रथ पर बैठकर वासुदेव इन्द्रसेन के साथ इन्द्रप्रस्थ पहुँचे और सभा में जाकर युधिष्ठिर से मिले। बुआ के लड़के धर्मराज और भीमसेन ने पिता की तरह स्नेह से कृष्ण का सत्कार और स्वागत किया। उनके आदर-यत्न से अत्यन्त प्रसन्न होकर कृष्णचन्द्र ने अपनी बुआ कुन्ती के पास जाकर उनके पैर छुए। नकुल-सहदेव ने शिष्य की तरह उनकी पूजा की और प्रिय मित्र अर्जुन उनके गले से लग गये। इस प्रकार पाण्डवों के पास पहुँचकर कृष्णचन्द्र बड़े प्रसन्न हुए।

अवसर के समय, कृष्णचन्द्र को अच्छी तरह आराम करके सुखपूर्वक बैठे देखकर, महात्मा युधिष्ठिर उनके पास जाकर बैठे और इस प्रकार अपना मतलब कहने लगे—कृष्ण, मैं राजसूय यज्ञ करना चाहता हूँ; किन्तु केवल चाहने से ही राजसूय यज्ञ नहीं हो सकता। जिस तरह यह यज्ञ सम्पन्न हो सकता है सो तुमसे छिपा नहीं है। राजसूय यज्ञ वही कर सकता है जिसमें सब कुछ सम्भव हो, जो सर्वत्र पूजा पाता हो और जो सब पृथ्वी-मण्डल का चक्रवर्ती राजा हो। मेरे बन्धु-बान्धवों की सलाह है कि मैं यह यज्ञ करूँ; यह यज्ञ करने के लिए वे मुझे सब तरह समर्थ समझते और कहते हैं। परन्तु बिना तुम्हारी सलाह लिये मैं इस बारे में कुछ निश्चय नहीं कर सकता। तुम यदि इसका अनुमोदन करोगे तो फिर मैं पूर्ण रूप से यह यज्ञ करने का निश्चय कर लूँगा। मैं तुम्हारी सलाह पर ही पूरा भरोसा करता हूँ। इसका एक विशेष कारण है। बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो मित्रता के ख़याल से मित्र के दोष या कमी का उल्लेख करना नहीं चाहते। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो स्वार्थसाधन के लिए चापलूसी करते हैं। कुछ ऐसे होते हैं जो उसी बात को प्रिय कहकर उसके करने की सलाह देते हैं जिसमें अपना भला हो। वासुदेव, इस संसार में ऐसे ही लोगों की सङ्ख्या अधिक है; किन्तु ऐसे लोगों की सलाह पर भरोसा करके कोई काम कर उठाना बुद्धिमान् पुरुष का काम नहीं। तुम काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर (डाह) आदि नीच

प्रवृत्तियों के वशीभूत नहीं हो। इसी से मैं तुम्हारी श्रेष्ठ सम्मति सुनना चाहता हूँ। जो कर्त्तव्य
५१ समझो सो मुझसे कहो।

चौदहवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण की सलाह

श्रीकृष्ण ने कहा—महाराज, आपमें सभी श्रेष्ठ गुण हैं। इसलिए आप सब तरह राजसूय यज्ञ करने के योग्य पात्र हैं। आप सब जानते हैं; तो भी मैं आपसे कुछ कहता हूँ, सुनिए। जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने पूर्व समय में क्षत्रिय वंश का समूल नाश कर दिया था। इस समय जो क्षत्रिय कहे जाते हैं वे पहले के क्षत्रियों की अपेक्षा हीनपराक्रमी और निकृष्ट हैं। उन्होंने एकत्र होकर जो कुलों के नियम आदि चलाये हैं उन्हें भी आप जानते हैं। इस समय के अधिकांश क्षत्रिय और राजा अपने को इला और इक्ष्वाकु की सन्तान कहते हैं। इला और इक्ष्वाकु की सन्तानों से सौ कुल (ख़ानदान) पैदा हुए। उनमें भोजवंश के राजा ययाति का कुल ही पृथ्वीमण्डल भर में प्रसिद्ध और श्रेष्ठ है। राजन्, सब क्षत्रियकुल अपने पूर्वजों के राज्य-ऐश्वर्य का उपभोग करते आते थे; किन्तु वर्त्तमान समय में मगध-नरेश राजा जरासन्ध ने अपने बाहुबल से सब राजाओं को वश में कर लिया है। वह इस समय एकाधिपत्य राज्य कर रहा है। जो कोई सबका प्रभु और अखण्ड पृथ्वीमण्डल का अद्वितीय अधिपति हो वही
१० राजसूय यज्ञ कर सकता है। पराक्रमी शिशुपाल जरासन्ध का सहायक और सेनापति है। मायायुद्ध करने में निपुण, प्रबल प्रतापी करूष देश का राजा वक्र, जरासन्ध की सभा में शिष्य के समान उसकी उपासना करता है। हंस और डिम्भक नाम के दो और पराक्रमी राजा जरासन्ध के आज्ञाकारी हैं। वक्रदन्त, करभ और मेघवाहन भी उसके अनुगत हैं। महाराज, लोक-प्रसिद्ध अद्भुत दिव्य मणि को मस्तक पर धारण करनेवाले, मुरु और नरक-देश के शासक, पश्चिम दिशा में राज्य फैलाकर वरुण के समान राजराज, अमित-बलशाली आपके पिता के मित्र, यवनाधिपति वृद्ध भगदत्त भी सदा जरासन्ध के अनुकूल रहते हैं। पश्चिम और दक्षिण दिशा के सबसे श्रेष्ठ शासक, आप पर अत्यन्त स्नेह रखनेवाले, स्नेह के कारण सदा आपकी भलाई चाहनेवाले, कुन्तिवंश-वर्द्धन, शत्रुदमन आपके मामा पुरुजित् भी जरासन्ध के अनुगत हैं। चेदि देश में प्रसिद्ध, अपने को पुरुषोत्तम कहकर मोहवश सदा मेरे चिह्नों को धारण करनेवाला, वङ्ग-पुण्ड्र-किरात देशों का अधिपति, मिथ्या वासुदेव, महापराक्रमी पौण्ड्रक भी इस समय जरासन्ध के
२० अधीन हो गया है। चतुर्थांश पृथ्वीमण्डल के अधिपति, भोज और राजा इन्द्र के सखा, पाण्ड्य-क्रथ-कौशिक-देश-विजेता, विद्वान्, बली, शत्रुकुलनाशक, परशुराम के समान तेजस्वी आकृति के

बड़े भाई भीष्मक राजा भी जरासन्ध के भक्त हैं। हम इन भीष्मक के नातेदार हैं, सदा उनका प्रिय करने की इच्छा रखते हैं, विनय और नम्रता के साथ उनके अनुगत रहते हैं, तो भी वे हमारी ओर नहीं हुए। वे भी जरासन्ध की प्रसिद्धि और प्रताप का हाल सुनकर, मोहित होकर, कुलपरम्परा से चली आ रही शूरता-वीरता-गम्भीरता और मान-आत्माभिमान को भूलकर उसके शरणागत हुए। अठारह भोजकुल, और उत्तर देश के सब राजा जरासन्ध के डर से ही पश्चिम दिशा को चले गये हैं। शूरसेन, भद्रकार, बोध, शाल्व, पटच्चर, सुस्थल, सुकुद, कुलिन्द, कुन्ति, शाल्वायन आदि वंशों के राजा, दक्षिण-पाञ्चाल के राजा, और पूर्व-कोशल के राजा भी भाइयों और अनुचरों के साथ अपने-अपने राज्य छोड़कर जरासन्ध के डर से कुन्ति देश में जाकर रहे हैं। मत्स्य और संन्यस्तपाद देश के राजा डर के मारे दक्षिण दिशा को चले गये हैं। पाञ्चाल देश के भी सब राजा जरासन्ध के डर से अपने राज्य छोड़कर दूर-दूर इधर-उधर भाग गये हैं। २९

कुछ समय हुआ, दानवराज कंस ने यादवों को सताकर जरासन्ध की अस्ति और प्राप्ति नाम की दो कन्याओं से व्याह किया था। इस प्रकार जरासन्ध से सम्बन्ध जोड़ करके मूढ़ दुष्ट कंस का साहस और भी बढ़ गया। वह अपने जातिवालों और कुटुम्बियों को दबाकर प्रधान बन बैठा। महाराज, ऐसा करने से कंस को सब लोग घृणा की दृष्टि से देखने और उसकी निन्दा करने लगे। भोजवंश के वृद्ध क्षत्रिय लोग उस दुष्ट के अत्याचार को अधिक न सह सके, तब वे जाति-रक्षा की इच्छा से मेरी शरण में आये। जाति का हित करने के लिए मैंने आहुक की बेटी सुतनु का विवाह अक्रूर से करा दिया और बलभद्र की सहायता से कंस तथा सुनामा, दोनों को मारकर जाति का उपकार किया। इस आपत्ति से छुटकारा मिला तो जरासन्ध युद्ध करने आ गया। तब मैंने अपने से छोटे अठारह यादव-कुलों से मिलकर सलाह की कि यदि हम, शत्रुओं को नष्ट करनेवाले, तीक्ष्ण अस्त्रों से लगातार तीन सौ साल तक लड़ते रहें तो भी जरासन्ध की सेना का बिलकुल नाश नहीं कर सकते; क्योंकि देवताओं के समान तेजस्वी महाबली हंस और डिम्भक दोनों जरासन्ध के पार्श्वरक्षक हैं। वे अस्त्र के द्वारा मारे नहीं जा सकते। उन्हें ऐसा ही वरदान है। वे दोनों वीर और जरासन्ध, तीनों एकत्र होकर अगर युद्ध करें तो शायद तीनों लोक उनके विरुद्ध शस्त्र उठाकर भी उनका कुछ नहीं कर सकते। महाराज, यह केवल मेरा ही मत न था, किन्तु सब राजाओं का ऐसा ही विश्वास था।

हम लोगों से लड़ने के लिए सत्रहवीं बार जब जरासन्ध चढ़कर आया तब हमको हंस और डिम्भक के नाश का एक उपाय सूझ गया। युद्ध में बलभद्र ने हंस नाम के किसी और राजा को मारा। किसी ने कह दिया कि हंस मारा गया। यह सुनकर डिम्भक ने समझा कि उसका भाई हंस मारा गया। वह भाई के शोक से व्याकुल होकर यमुना में फाँद पड़ा और डूबकर मर गया। डिम्भक के यों मरने की ख़बर जब हंस ने सुनी तब वह भी भाई के शोक ४०

से विकल हो उठा। उसने भी यमुना में फाँदकर जान दे दी। हंस और डिम्भक के यों मरने का हाल सुनकर जरासन्ध की हिम्मत टूट गई। वह उदास होकर अपने नगर को लौट गया। हम लोग भी आनन्द के साथ अपनी मथुरा पुरी में रहने लगे।

उधर कमल-नयनी हंस की स्त्री पति के शोक से विह्वल होकर अपने पिता जरासन्ध को वारम्बार यह कहकर युद्ध के लिए उत्तेजित करने लगी कि मेरे पति को मारनेवाले से वदला लो। हम लोगों ने भी जरासन्ध के वल-वीर्य को स्मरण कर और उसकी चढ़ाई देखकर, पहले की सलाह के अनुसार, मथुरा से भाग जाना ठीक समझा। शत्रु के डर से हम लोग वहुत सी सम्पत्ति वहीं छोड़कर—थोड़ी सी आपस में वाँटकर और वही लेकर—सजातीय, पुत्र, वन्धु-वान्धव आदि के साथ वहाँ से भागकर रैवतक पर्वत से शोभित कुशस्थली नाम की रमणीय नगरी में ५० जाकर वसे हैं। कुशस्थली (द्वारका) में जाकर और क़िले आदि की मरम्मत कराकर हमने उस पर अपना अधिकार जमा लिया है। अनेक दुर्गम दुर्गों से रक्षित वह नगरी इस समय ऐसी है कि देवता भी सहज में उसके भीतर नहीं घुस सकते। वीर वृष्णिवंश के पुरुषों की तो बात ही नहीं, दुर्ग के भीतर से स्त्रियाँ भी अच्छी तरह युद्ध करके आत्मरक्षा कर सकती हैं। सव यादव उस गढ़ की दुर्गमता और उस स्थान का सुरक्षित होना देखकर, अपने को जरासन्ध के हाथ से उवरा हुआ समझकर, वड़े आनन्द से उस गढ़ में रहते हैं। इस प्रकार प्रवल प्रतापी जरासन्ध के अत्याचार से हैरान होकर हम, वलवान् होने पर भी, निरे असमर्थ की तरह भागकर रैवतक पहाड़ के आश्रय में जाकर ठहरे हैं। रैवतक पहाड़ का फैलाव तीन योजन के लगभग है। योजन-योजन भर पर सौ-सौ सैन्यव्यूह और सौ सौ द्वार वने हुए हैं। वीर पुरुषों का पराक्रम ही उस गढ़ का प्रधान फाटक है। अठारहों यादवकुलों के योद्धा क्षत्रिय उस गढ़ के रक्षक हैं। युधिष्ठिर, हमारे वंश में अठारह हज़ार भाई पैदा हुए हैं। आहुक के देवतुल्य एक सौ वेटे हैं। यादवों में चारुदेष्ण, उसका छोटा भाई, चक्रदेव, सात्यकि, मैं, वलभद्र, साम्व और प्रद्युम्न, ये सात अतिरथी हैं। कृतवर्मा, अनाधृष्टि, समीक, समितिञ्जय, कङ्क, शङ्कु और कुन्ति, ये सात महारथी हैं; अन्ध और भोज के दो पुत्र और वृद्ध राजा उग्र- ६० सेन, ये दस महावीर जरासन्ध के विरोधी और हमारे साथी हैं।

हे पाण्डव, आपमें सम्राट् के सव गुण हैं। आप विना विरोध के विशाल साम्राज्य भोग सकेंगे। क्षत्रियों के वीच आपका सम्राट् होना अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु जव तक जरासन्ध जीता रहेगा तव तक आपका राजसूय यज्ञ कर सकना वहुत कठिन है। सिंह जैसे सहज ही हाथियों पर हमला करके उन्हें पहाड़ की खोह में वन्दकर रक्खे, वैसे ही जरासन्ध ने, वहुत से राजाओं को युद्ध में हराकर अपने गढ़ के भीतर क़ैद कर रक्खा है। पहले एक समय जरासन्ध ने, राजाओं की वलि देकर यज्ञ करने की इच्छा से, भगवान् शङ्कर की आरा-

धना की थी। फिर आशुतोष भोलानाथ की कृपा पाकर वह अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुका है; क्योंकि उसने अनेक राजाओं को जीतकर बलिदान के लिए क़ैद कर रक्खा है। दिग्विजय के लिए निकलकर वह जीते हुए राजाओं को पकड़ लाकर क़ैद करने लगा था। यह देखकर हम डर के मारे मथुरा पुरी छोड़कर द्वारका नगरी को भाग गये। इसलिए हे कुरुनन्दन, जो आपको राजसूय यज्ञ करने की बड़ी ही इच्छा हो तो पहले दुष्ट दुर्जय जरासन्ध को मारकर क़ैद किये गये राजाओं को छुड़ाइए। यह किये बिना आपकी राजसूय यज्ञ करने की इच्छा किसी तरह पूरी नहीं हो सकती। यदि राजसूय यज्ञ करना आपको बहुत ही पसन्द है तो पहले मेरी समझ में यही करना चाहिए। अब देश, काल, कार्य और कारण का विचार तथा निश्चय करके आपको जो ठीक जान पड़े वह कीजिए। ७०

पन्द्रहवाँ अध्याय

युधिष्ठिर और कृष्ण की बातचीत

युधिष्ठिर ने कहा—वासुदेव, तुम्हारी बुद्धि बहुत ही उज्ज्वल और तीक्ष्ण है; तुम्हारी विवेकबुद्धि अलौकिक है। तुम्हारे उपदेश का खण्डन नहीं हो सकता। तुम्हीं एकमात्र इस जगत् भर के संशय को दूर करनेवाले योगीश्वर हो। इस पृथ्वीमण्डल पर अपने-अपने काम में लगे हुए अनेकों राजा-महाराजा हैं किन्तु कोई भी सम्राट् के पद को नहीं पा सका। सम्राट् का पद बहुत ही दुर्लभ है। जो मनुष्य दूसरे की मर्यादा को जानता है वह कभी अपने मुँह अपनी बड़ाई नहीं करता। जो युद्धभूमि में पहुँचकर शत्रु-सेना पर बेधड़क आक्रमण करके उसे हरा सकता है वही प्रशंसा का पात्र है। हे वृष्णिवंशावतंस, तरह-तरह के बहुमूल्य रत्नों से पूर्ण इस विशाल वसुन्धरा में कोई अभिज्ञता के बिना श्रेय को नहीं प्राप्त कर सकता। मेरी समझ में शान्ति से ही सब श्रेय या भलाइयाँ मिलती हैं। इसलिए शान्ति की सेवा ही मेरे लिए विधि और मेरा कर्त्तव्य कर्म है। राजसूय महायज्ञ आरम्भ करके अन्त को परम सुखदायक फल पाने की आशा करना दुराशामात्र है। हमारे वंश के सब राजाओं का भी यही सिद्धान्त रहा है। जान पड़ता है, वे कभी सारी पृथ्वी को जीतकर वश में नहीं कर सके। दूसरे, दुष्ट जरासन्ध के उपद्रव को देखकर मुझे बड़ी शङ्का हो गई है। मुझे सदा तुम्हारे ही बाहु-बल की आशा और तुम्हारा ही भरोसा रहता है। फिर जब तुम्हीं को जरासन्ध के डर से भागना पड़ा तब मेरा उसे मारकर राजसूय यज्ञ की आशा करना दुराशामात्र है। हे महाबाहो! तुम, बलदेव, भीमसेन और अर्जुन, इन चारों में से कोई क्या युद्ध में जरासन्ध को हरा सकता और मार सकता है? इस दुरात्मा को मारने की मुझे सदा बड़ी चिन्ता

रहती है। तुमसे अधिक और मैं क्या कहूँ! तुम जो उपदेश करोगे उसके विरुद्ध मैं कभी कुछ न करूँगा। तुम जिस राह पर चलाओगे उसी पर चलूँगा।

१० युधिष्ठिर के यों कह चुकने पर भीमसेन ने कहा—महाराज, जो राजा उद्योग को छोड़ बैठता है, अथवा दुर्बल और निरुपाय होकर प्रबल शत्रु से युद्ध करने लगता है वह अवश्य ही मर मिटता है। इसके विपरीत जो बल में हीन राजा भी आलस्य और उपेक्षा के भाव को छोड़कर अच्छी नीति के द्वारा प्रबल शत्रु पर आक्रमण करता है तो वह युद्ध में जय पाता है। राजन्, हमारी मण्डली भर में श्रीकृष्ण से बढ़कर नीति को कोई नहीं जानता। मैं भी बलवान् हूँ और अर्जुन सर्वत्र विजय ही पाते हैं। इस कारण तीन अग्नि जैसे यज्ञकार्य को पूरा करते हैं वैसे ही हम तीनों मिलकर अवश्य ही जरासन्ध का काम तमाम कर सकेंगे।

श्रीकृष्ण ने कहा—राजन्, मूर्ख नासमझ लोग परिणाम का विचार किये बिना ही काम में हाथ लगा देते हैं। उससे शत्रु-जय आदि कोई चाहा हुआ काम पूरा नहीं होता। मैंने सुना है, पहले युवनाश्व के पुत्र (मान्धाता) ने कर लेना छोड़कर, भगीरथ ने प्रजापालन करके, कार्त्तवीर्य (सहस्रबाहु) ने कठोर तप के प्रभाव से, भरत ने बाहुबल से और मरुत्त ने धन-बल से साम्राज्य पाया था। सोचकर देखिए, ये सब एक ही एक गुण के अधिकारी होकर सम्राट् हो गये; किन्तु आप में तो सभी गुण हैं। आप अपने सम्राट् हो सकने में सन्देह करते हैं? धर्म, अर्थ और नीति के द्वारा प्रतापी जरासन्ध को मारने का उद्योग करना इस समय आपका सबसे पहला और सबसे बढ़कर कर्तव्य है। विचारकर देखिए, एक सौ वंशों के इतने क्षत्रिय हैं; उनमें से एक भी जरासन्ध को परास्त नहीं कर सका; बल्कि वह दुष्ट उनमें से प्रायः सबको हराकर सुखपूर्वक अखण्ड साम्राज्य कर रहा है। ऐश्वर्यशाली राजाओं ने अपार धन-रत्न देकर उसकी अधीनता स्वीकार की, पर यह दुष्ट हथकड़ी-बेड़ी पहनाकर उन्हें अपने यहाँ क़ैद में डाले

२० है। ऐसा कोई राजा ही नहीं देख पड़ता जिससे वह ज़बरदस्ती 'कर' न लेता हो। अधम जरासन्ध ने अनेक महाराजाओं की दुर्दशा कर रक्खी है। सब उससे डरते हैं। धर्मराज, जो आप से भी बढ़कर निर्बल हैं वे उस नराधम का क्या बिगाड़ सकेंगे? हे भरतकुल-तिलक, बलिदान के लिए लाये गये राजा लोग पशुओं की तरह बड़े कष्ट से पशुपति के मन्दिर में क़ैद हैं। दुरात्मा जरासन्ध शीघ्र ही उनका बलिदान कर देगा। इसी कारण मैं युद्ध करने की सलाह देता हूँ। युद्ध के सिवा इस घोर निन्दित कर्म को रोकने का दूसरा उपाय ही नहीं। वह दुष्ट ८६ राजाओं को पकड़ लाया है। १०० में १४ की कमी है। १०० पूरे होने पर वह एक साथ उन सबकी हत्या करके अपना अभीष्ट सिद्ध करना चाहता है। हे धर्मराज, इस समय जो कोई उस पापी के इस निष्ठुर हत्याकाण्ड में विघ्न डालकर राजाओं को क़ैद से छुड़ावेगा उसे

२६ अवश्य चिरस्मरणीय कीर्त्ति प्राप्त होगी। जो जरासन्ध को जीतेगा वह सम्राट् हो जायगा।

सोलहवाँ अध्याय

युधिष्ठिर और अर्जुन की बातचीत

युधिष्ठिर ने कहा—हे कृष्ण, साम्राज्य की इच्छा मुझे इतनी प्रबल नहीं कि मैं केवल साहस पर भरोसा करके, अत्यन्त स्वार्थपरता में मूढ़ होकर, तुमको उस प्रबल पराक्रमी दस्यु के पास भेज दूँ ? भीम और अर्जुन दोनों मेरी आँखें हैं; तुमको मैं अपना मन समझता हूँ। समझ देखो, मन और नेत्रों से हीन पुरुष का जीवन कैसे हो सकता है ? अपार सेना और परमपराक्रमी वीरों से सेवित जरासन्ध को स्वयं यमराज भी नहीं हरा सकते। तुम लोग जाकर इसका क्या कर लोगे ? मैं समझता हूँ कि इस काम में हाथ डालने से महा अनर्थ होगा। इसी कारण राजसूय यज्ञ करना मुझे ठीक नहीं जान पड़ता। अब मेरी यही सम्मति है कि यज्ञ करके सम्राट् होने का विचार ही छोड़ देना ठीक होगा। मैं तुमसे सच कहता हूँ, इस विषय का आन्दोलन करने से मैं अत्यन्त आकुल हो रहा हूँ। जान पड़ता है, राजसूय यज्ञ करना मेरे भाग्य में बदा ही नहीं।

वैशम्पायन कहते हैं कि [खाण्डव वन जलाते समय अर्जुन अग्नि से गाण्डीव धनुष, अक्षय तरकस, दिव्य रथ और ध्वजा आदि युद्ध की सामग्री पा चुके थे।] उन्होंने युधिष्ठिर के ये वचन सुनकर कहा—राजन् ! श्रेष्ठ धनुष, शस्त्र, बाण, पौरुष, स्वपक्ष, राज्य, यश और बल ये चीज़ें अत्यन्त दुर्लभ होती हैं। किन्तु सौभाग्यवश मुझे ये वस्तुएँ अपनी इच्छा के अनुसार प्राप्त हो गई हैं। विद्वान् लोग अच्छे श्रेष्ठ वंश में जन्म की प्रशंसा करते हैं; पर मेरी समझ में बल-वीर्य और साहस की ही प्रशंसा होनी चाहिए। वीर वंश में उत्पन्न होकर भी वीर्यहीन पुरुष क्या कर सकता है ? इसके विपरीत कमज़ोर वंश में उत्पन्न पुरुष यदि पराक्रमी और बली है तो वह अवश्य अपने को माननीय बना लेगा। जो शत्रु को जीत सके वही सचमुच क्षत्रिय है। बलवान् पुरुष में यदि अन्य अनेक सद्गुण न हों तो भी वह शत्रुओं को जीत सकता है; १० किन्तु दुर्बल पुरुष चाहे सब अच्छे गुणों की खान हो तो भी उसके द्वारा कोई काम नहीं होता। जहाँ पराक्रम है वहाँ सब गुण आप ही आ जाते हैं। अत्यन्त जी लगाना (उत्साह), पौरुष और दैव, यही तीन जय-प्राप्ति के कारण हैं। बेहद बहादुरी होने पर भी जिसमें एकाग्रता या तत्परता नहीं है वह विजयी तो होता नहीं उलटा शत्रुओं से हारकर नीचा देखता है। जैसे निर्बल में दीनता रहती है वैसे ही सबल में मोह (असावधानी) का होना पाया जाता है। ये दोनों बातें नाश का कारण हैं; इसलिए विजय की इच्छा रखनेवाले को इनसे सब तरह बचना चाहिए। राजसूय महायज्ञ करने के लिए दुरात्मा जरासन्ध को मारकर, क़ैद में पड़े हुए राजाओं को छुड़ाकर, कीर्त्ति प्राप्त करने से बढ़कर हमारा कर्तव्य और क्या हो सकता है ? ख़ासकर इस विषय में चुप रहकर कुछ न करने से लोग हमें बल-वीर्य-हीन समझेंगे। महा-

राज, युद्धचेष्टा से रहित क्षत्रिय को लोग गुणहीन समझते हैं। फिर आप निःसंशय गुण से निर्गुण (शान्तिप्रिय) होना क्यों अच्छा समझते हैं ? शान्ति की इच्छा रखनेवाले मुनियों को गेरुआ कपड़ा पहनकर वन में रहना चाहिए। हम लोग साम्राज्य की इच्छा से शत्रुओं के
१७ साथ अवश्य युद्ध करेंगे।

सत्रहवाँ अध्याय

जरासन्ध के जन्म की कथा

श्रीकृष्ण ने कहा—राजन्, अर्जुन के ये वचन भरतवंश में उत्पन्न वीर पुरुष के योग्य ही हैं। कुन्ती ऐसी माता के पुत्र को जैसा साहस, धैर्य और विचार करना चाहिए, उसमें अर्जुन ने कुछ कसर नहीं की। हम लोग निश्चित रूप से नहीं जानते कि कब, दिन को या रात को, मौत आकर हम पर हमला करेगी; अर्थात् मौत के लिए कोई निश्चित समय नहीं है। हमने यह भी नहीं सुना कि युद्ध न करनेवाला कोई मरा न हो। इसलिए क्षत्रिय-धर्म के अनुसार नीति के अनुकूल काम करके शत्रुओं पर चढ़ाई करना और उससे अपने चित्त को सन्तुष्ट बनाना ही वीर पुरुषों का कर्त्तव्य है। साम-दान आदि के अनुगामी और क्षय-रहित पुरुष का कार्यारम्भ कभी निष्फल नहीं हो सकता। ऐसा पुरुष शत्रु पर आक्रमण करने से अवश्य विजयी होता है; किन्तु जो नीति और उपाय से रहित है वह अवश्य युद्ध में नष्ट हो जाता है; उसके सब प्रयत्न निष्फल होते हैं। यदि दोनों पक्ष नीति के अनुसार चलते हैं, तथा दोनों का पराक्रम भी समान होता है तो भी एक पक्ष का विजयी होना सर्वथा असम्भव नहीं; क्योंकि एक की कुछ श्रेष्ठता और दूसरे की कुछ निकृष्टता बनी ही रहती है; दोनों की सम्पूर्ण समता हो नहीं सकती। हम लोग भी नीति का आश्रय लेकर शत्रु के देश में जायँगे और उस पर आक्रमण करके उसी तरह उसे नष्ट कर सकेंगे जैसे नदी का प्रवाह किनारे के महावृक्ष को उखाड़कर गिरा देता है। अपने दोषों को छिपाकर शत्रु के दोषों को देखकर यथासमय आक्रमण करने से अवश्य ही हमारा मनोरथ सिद्ध होगा। बहुत सी सेनावाले, अत्यन्त प्रबल शत्रु के साथ प्रकट रूप से युद्ध करना ठीक नहीं। यह पण्डितों की सम्मति मुझे भी मान्य है। इसलिए हम लोग गुप्त रूप से शत्रु के पास जाकर द्वन्द्वयुद्ध करके उसे मार सकेंगे। इस प्रकार हमारा काम पूरा हो जायगा। पराक्रमी जरासन्ध, सब प्राणियों के अन्तरात्मा के समान, सब राजाओं को जीतकर प्रधानता प्राप्त करके अकेला ही राजलक्ष्मी का भोग कर रहा है। वह स्वेच्छाचार करता हुआ एकाधिपत्य कर रहा है। अपनी जाति के राजाओं की रक्षा करने के लिए उसे मारकर पीछे उसकी सेना और सहायकों के द्वारा यदि हम लोग मारे भी
१० जायँगे तो अवश्य स्वर्गलोक के भागी होंगे।

युधिष्ठिर ने कहा—हे कृष्ण, यह जरासन्ध कौन है? उसका बल और पराक्रम कितना है? मुझे बड़ा आश्चर्य मालूम पड़ रहा है कि अग्नितुल्य तुम पर आक्रमण करके वह पतङ्ग के समान भस्म होने से कैसे बच गया?

कृष्ण ने कहा—राजन्, जरासन्ध के वीर्य, पराक्रम आदि का हाल सुनिए। वारम्बार उसके अप्रिय और अनिष्ट करने पर भी क्यों हम लोगों ने उस पर ध्यान नहीं दिया—इसका भी कारण कहता हूँ। मगध देश में एक प्रबल प्रतापी बृहद्रथ राजा थे। उनके पास तीन अक्षौहिणी सेना थी। सुन्दर, पराक्रमी, श्रीमान्, युद्ध में देवतुल्य अजेय और सदा यज्ञ की दीक्षा धारण करनेवाले राजा बृहद्रथ इन्द्र के समान प्रजा का पालन करते थे। वे तेज में सूर्य के समान, क्षमा में पृथ्वी के समान, ऐश्वर्य में कुबेर के समान और क्रोध में काल-मृत्यु के समान थे। उनके वंशपरम्परा से प्राप्त गुण, सूर्य की किरणों के समान, सारे जगत् में व्याप्त थे। काशिराज की दो यमज (जोड़िया) कन्याएँ राजा बृहद्रथ की रानी थीं। राजा ने उन दोनों रानियों से यह प्रतिज्ञा कर रक्खी थी कि मैं तुम दोनों को समदृष्टि से देखूँगा, दोनों को बराबर प्यार करूँगा। दो हथिनियों के बीच गजराज या गङ्गा-यमुना के बीच शरीरधारी समुद्र जैसे शोभित हो, वैसे ही दोनों रानियों के बीच राजा बृहद्रथ शोभायमान थे। विषयभोग करते-करते राजा की जवानी बीत गई, किन्तु उनको वंश चलानेवाला पुत्र नहीं प्राप्त हुआ। मङ्गलकार्य, हवन और अनेक पुत्रदायक यज्ञ करने पर भी जब उनके पुत्र नहीं हुआ तब दोनों रानियों-सहित राजा बृहद्रथ बहुत ही उदास हो गये।

एक दिन राजा ने सुना कि गौतमवंशी काक्षीवान् के पुत्र, महातपस्वी, महात्मा चण्डकौशिक तपस्या के उपरान्त विश्राम के लिए विचरते हुए उनके राज्य में आये और एक वृक्ष के नीचे बैठे हैं। राजा अपनी दोनों रानियों के साथ चटपट उनके पास पहुँचे। पाद्य, अर्घ्य आदि मुनिजनोचित सत्कार करके राजा ने उन्हें प्रसन्न किया। राजा की भक्ति और सेवा से सन्तुष्ट होकर सत्यवादी जितेन्द्रिय ऋषिवर ने उनसे वरदान माँगने के लिए कहा। दोनों रानियों

२०

के साथ साष्टाङ्ग प्रणाम करके आँखों में आँसू भरे हुए राजा ने गद्गद स्वर से कहा—भगवन्, मैं बड़ा अभागा हूँ। अब तक पुत्र का मुख न देख पड़ने के कारण मुझे बड़ी चिन्ता और दुःख सताये रहता है। हताश होकर, विषय-भोग को छोड़कर, मैं इस समय दोनों रानियों के साथ तप करने की इच्छा से वन को जा रहा हूँ। मुझे अब वरदान माँगकर क्या करना है?

राजा के ये दुःख-भरे दीन वचन सुनकर मुनि को दया आ गई। वे उसी पेड़ के नीचे आँखें मूँदकर ध्यान करने लगे। राजा के पुत्र न होने के कारण को जानने के लिए वे ध्यान कर रहे थे कि उस वृक्ष से एक पका हुआ आम का फल उनकी गोद में आकर गिरा। वह फल न तो सूखा हुआ था और न किसी तोते आदि पक्षी ने उसे जूठा ही किया था। मुनिवर ने उस फल को हाथ में ले लिया। उन्हें जान पड़ा कि वह फल राजा को पुत्र-प्राप्ति के लिए ईश्वर ने ही दिया है। मुनिवर ने अपने तपोबल से अभिमन्त्रित करके वह फल राजा के हाथ में दिया और कहा—राजन्, तुम्हारा मनोरथ पूरा हो गया। यह फल अपनी रानी को खिला दो। तुम्हारे ३० पुत्र होगा। अब तुम वनवास का विचार छोड़कर अपनी राजधानी को लौट जाओ।

महाराज, मुनि की आज्ञा पाकर उनके दिये फल और आशीर्वाद को सादर ग्रहण करके राजा बृहद्रथ घर को लौट आये। उन्होंने अपनी पहले की प्रतिज्ञा के अनुसार वह फल दोनों रानियों को दिया। उन रानियों ने भी उस फल को बराबर, बाँटकर, खा लिया। कुछ समय के बाद मुनि का कहना पूरा हुआ। दोनों रानियों के गर्भ रह गया। रानियों के गर्भवती होने की ख़बर पाकर राजा बृहद्रथ को बड़ा आनन्द हुआ। राजन्, दस महीने पूरे होने पर दोनों रानियों के शरीर से दो टुकड़े अलग-अलग उत्पन्न हुए। रानियों ने देखा, दोनों टुकड़ों के एक आँख, एक कान, एक हाथ, एक पैर, आधा चेहरा और आधा पेट अलग-अलग है। यह अद्भुत घटना देखकर दोनों रानियाँ राजा के डर से काँपने लगीं। उन्होंने आपस में यह सलाह की कि ऐसे खण्डित और मृत पुत्र के होने की ख़बर महाराज को देने से वे हम पर नाराज़ हो जायँगे। इसलिए इन दोनों टुकड़ों को धाय के हाथ बाहर फिंकवा देना ही ठीक है। इसी सलाह के अनुसार काम हुआ। दोनों रानियों की आज्ञा से उन

टुकड़ों को कपड़े में लपेटकर, गुप्त रूप से रनिवास के बाहर ले जाकर, चौराहे पर वह धाय डाल आई। महाराज, मेदा-मांस आदि को खानेवाली जरा नाम की राक्षसी दैवयोग से उधर से निकली। उसने उन अद्भुत शरीर-खण्डों को चौराहे पर पड़े देखकर उठा लिया। उस राक्षसी ने, आसानी से ले जाने की इच्छा से, दोनों टुकड़ों को एक में मिला दिया। मिलाते ही वे टुकड़े परस्पर जुड़ गये और एक सुन्दर बालक बन गया। विधाता का विधान ही ऐसा था। इसी से वह राक्षसी उधर से निकली; उसने टुकड़ों को उठाया और एक में मिलाया। टुकड़ों के, मिलाते ही, सजीव होकर बालक बन जाने से उस राक्षसी को भी बड़ा आश्चर्य हुआ। उस बालक को बारम्बार देख रही उस राक्षसी ने अपनी गोद में उठाना चाहा, पर वह बालक पर्वत ऐसा भारी हो गया।
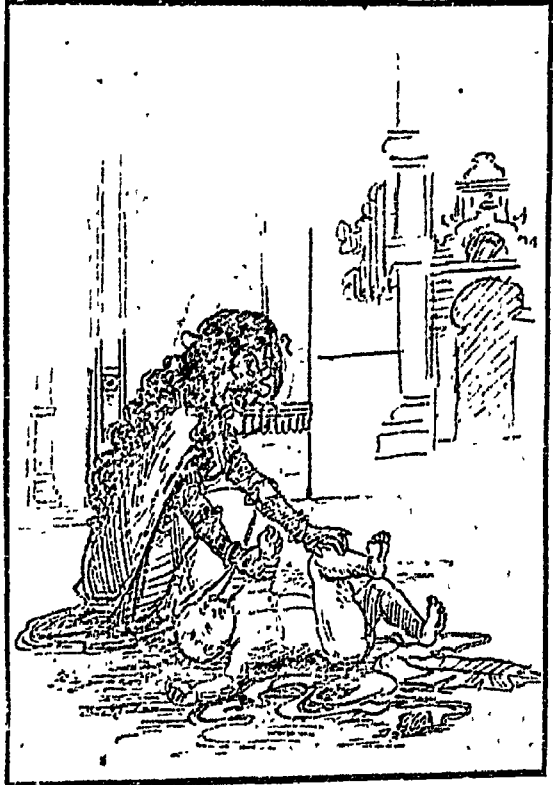
४०

राक्षसी उसे उठा नहीं सकी। वह भूखा बालक लाल-लाल हथेलीवाली मुट्ठी मुँह में डालकर मेघ के गरजने के समान गम्भीर शब्द से रोने लगा। उसके घोर शब्द को सुनकर रनिवास से राजा और अन्य लोग जल्दी से निकल आये। उदास, दूध से भरे स्तनोंवाली और पुत्र-लाभ से निराश दोनों रानियाँ भी एकाएक उसी ओर दौड़ पड़ीं।

उस दशा में रानियों को और सन्तान के लिए चिन्तित राजा को, बहुत लोगों के साथ, उधर आते देखकर और बालक के भी महाबली होने का परिचय पाकर 'जरा' राक्षसी सोचने लगी कि मैं

इस धार्मिक महात्मा राजा के राज्य में रहती हूँ और यह राजा पुत्र पाने के लिए बहुत ही चिन्तित है। इस कारण राजा बृहद्रथ के इस पुत्र को मारना ठीक न होगा। अतएव इस बालक को न मारकर राजा को ही सौंप दूँ।

अब क्या था, उस मायाविनी राक्षसी ने मनुष्य का रूप धारण कर लिया। बादलों में जैसे सूर्य की शोभा होती है वैसे ही उस राक्षसी की गोद में वह बालक शोभायमान हुआ। वह राक्षसी उस बालक को गोद में लिये राजा बृहद्रथ के पास जाकर कहने लगी—राजन्, मैं तुमको यह पुत्र देती हूँ, इसे लो। मुनिवर के आशीर्वाद से, तुम्हारी दोनों रानियों के गर्भ से, अलग-अलग दो टुकड़ों के रूप में यह बालक उत्पन्न हुआ था। दो टुकड़े अलग-अलग देखकर डर के मारे रानियों ने धाय के हाथों इसे चौराहे पर फिकवा दिया था। इसे देखकर मैंने जिलाया है—इसकी रक्षा की है।

श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्, उस बालक को देखकर स्नेह की प्रबलता के मारे रानियों के ५० स्तनों से दूध की धारा बह चली। उन्होंने उसी समय आनन्दमग्न होकर बच्चे को गोद में ले लिया। सब वृत्तान्त सुनकर राजा बृहद्रथ बहुत प्रसन्न हुए। इसके बाद उन्होंने परम सुन्दर स्त्री का रूप रखनेवाली जरा राक्षसी से कहा—हे कमल-नयनी, मुझे मेरा पुत्र देनेवाली तुम कौन ५२ हो? तुम चाहे अपना परिचय दो या न दो, तुम मुझे कोई देववधू जान पड़ती हो।

अठारहवाँ अध्याय

जरा राक्षसी का परिचय

राक्षसी ने कहा—महाराज, मैं जरा नाम की राक्षसी हूँ। मैं चाहे जैसा रूप रखकर चाहे जहाँ आ-जा सकती हूँ। मैं तुम्हारे राज्य में समुचित सम्मान के साथ रहती हूँ। मैं मनुष्यमात्र के घरों में रहती हूँ। ब्रह्मा ने, दानवों के नाश के लिए, गृहदेवी नाम से पहले मेरी सृष्टि की थी। जो स्त्री अपने घर की दीवार में नवयौवना पुत्रवाली स्त्री के रूप में मेरी मूर्त्ति बना देती है उसका भला होता है। जो कोई स्त्री अपने घर में मेरी स्थापना और पूजा करती है उसकी बढ़ती होती है, और जो ऐसा नहीं करती उसका भला नहीं होता। राजन्, तुम्हारे घर की दीवार में मेरी मूर्त्ति पुत्रों-सहित लिखी हुई है और नित्य गन्ध, फूल, माला आदि पूजन-सामग्रियों से मेरी पूजा होती रहती है। तुम्हारा कुछ उपकार करने की चिन्ता मुझे सदा लगी रहती थी। हे धार्मिकश्रेष्ठ, आज तुम्हारे पुत्र का खण्डित शरीर मुझे देख पड़ा। दैव की इच्छा से दोनों टुकड़ों को एक में मिलाते ही यह कुमार तैयार हो गया। महाराज, इस घटना का कारण तुम्हारा भाग्य ही है, मैं तो निमित्त हो गई हूँ। तुम्हारे इस बालक की कौन

कहे, मैं तो सुमेरु को भी खा सकती हूँ। तुम्हारे घर में अपना पूजन होने से, तुम पर सन्तुष्ट होकर, यह पुत्र मैं तुमको फेरे देती हूँ। [यह बालक पृथ्वी पर मेरे नाम से प्रसिद्ध होगा।]

कृष्णचन्द्र कहते हैं—इतना कहकर राक्षसी अन्तर्द्धान हो गई। राजा बृहद्रथ भी प्रसन्नतापूर्वक उस बालक को लेकर अपने घर आये। अब राजा ने बालक के जातकर्म आदि संस्कार कराये। फिर उनकी आज्ञा से 'जरा' राक्षसी के नाम पर मगध देश में बड़ा भारी उत्सव किया गया। जरा ने सन्धित किया अर्थात् जोड़ दिया, इसी कारण राजा ने उस पुत्र का नाम जरासन्ध रक्खा। माता-पिता के आनन्द को बढ़ानेवाला वह बालक शुक्लपक्ष के चन्द्रमा अथवा आहुति से बढ़ रही आग के समान बढ़ने लगा। १० १२

उन्नीसवाँ अध्याय

जरासन्ध के वृत्तान्त की समाप्ति

श्रीकृष्ण ने कहा—कुछ समय बीतने पर वही चण्डकौशिक मुनि फिर मगध देश में आये। महर्षि के आने का समाचार पाते ही पुत्र, स्त्री, पुरोहित, मन्त्री आदि के साथ राजा उनकी सेवा में जल्दी से पहुँचे; उन्होंने पाद्य, अर्घ्य, आचमन, गोदान, मधुपर्क आदि देकर मुनि की पूजा की। अपनी कृतज्ञता जताते हुए राजा ने राज्य-सहित उस पुत्र को मुनि के चरणों में अर्पण कर दिया। फिर उन्होंने कहा—भगवन्, आज मैं अपने सौभाग्य और आनन्द का वर्णन नहीं कर सकता। आपके इस अकस्मात् शुभ आगमन से मैं कृतार्थ हो गया। आपके चरणों को देखकर मेरी आँखें धन्य हुई और मेरा मन पवित्र हो गया।

राजा के सत्कार और विनीत वचनों से सन्तुष्ट होकर चण्डकौशिक ऋषि बोले—राजन्, दिव्य दृष्टि से यह सब वृत्तान्त मैं पहले ही जान चुका हूँ। तुम्हारा यह पुत्र आगे चलकर जैसा होगा, इसके रूप, गुण और पराक्रम जैसे होंगे, सो कहता हूँ, सुनो। यह तुम्हारा पुत्र रूप, गुण, पराक्रम और ऐश्वर्य में बहुत बढ़ा-चढ़ा होगा। यह राजाओं के योग्य सभी श्रेष्ठ गुणों का अधिकारी होगा। जैसे सब पक्षी गरुड़ की गति का अनुकरण नहीं कर सकते वैसे ही और सभी राजा इस बालक के शौर्य-वीर्य और गाम्भीर्य की बराबरी न कर सकेंगे। इसके विरोधी अवश्य ही मर मिटेंगे। यदि देवगण भी इस पर प्रहार करेंगे तो उनके शस्त्र इसका कुछ न कर सकेंगे। जैसे नदी के प्रवाह का वेग पहाड़ से टकराकर व्यर्थ हो जाता है वैसे ही उनके शस्त्र इसके शरीर में लगकर बे-काम हो जायँगे। राजसिंहासन पर जिनका अभिषेक हुआ है वे राजा-महाराजा इसे सिरमौर मानकर सिर झुकावेंगे। प्रतापी सूर्य जैसे सब ज्योतिर्मय पदार्थों की प्रभा को हर लेते हैं वैसे ही यह बालक सब राजाओं के प्रभाव और सौभाग्य को फीका कर देगा। १०

पतिङ्ग जैसे आग के ऊपर गिरकर भस्म हो जाते हैं वैसे ही चतुरङ्गिणी सेना लेकर इस बालक पर चढ़ाई करनेवाले सब राजा बर्बाद हो जायँगे। वर्षा में बढ़ी हुई नदियों और नदों के जल को जैसे समुद्र अपने पेट में रख लेता है वैसे ही यह बालक सब राजाओं की राजलक्ष्मी को छीन लेगा। सब अन्नों को उत्पन्न करनेवाली समुद्र-पर्यन्त पृथ्वी जैसे भली और बुरी सब वस्तुओं को धारण करती है वैसे ही यह भी चारों वर्णों की प्रजा का पालन करेगा—उनका आश्रयरूप होगा। शरीरधारी लोग जैसे, सब प्राणियों के आत्मा, वायु के अधीन हैं वैसे ही सब राजा इसके अधीन होकर इसकी आज्ञा का पालन करेंगे। यह महाबली कुमार महादेव के दर्शन पाकर धन्य होगा।

महाराज, राजा बृहद्रथ से यों कहकर चण्डकौशिक ऋषि किसी और काम के लिए वहाँ से चल दिये। मुनि से विदा होकर राजा बृहद्रथ प्रसन्नता से अपने नगर को गये। जाति-वालों और सम्बन्धियों को जमा करके राजा बृहद्रथ ने मगध के राजसिंहासन पर जरासन्ध का अभिषेक कर दिया। उसको राज्य देकर दोनों रानियों के साथ राजा तप करने के लिए तपो-वन को चले गये। पिता का राज्य पाकर जरासन्ध भी अपने पराक्रम और बाहुबल से सब राजाओं को वश में करके एकच्छत्र राज्य स्थापित करने का उद्योग करने लगा।

वैशम्पायन कहते हैं—बहुत समय तक तप करने के उपरान्त राजा बृहद्रथ अपनी रानियों २० के साथ स्वर्गवासी हुए। चण्डकौशिक के कहने के अनुसार जरासन्ध सब गुणों का अधिकारी होकर राज्य करने लगा। [उसी समय मथुरा का राजा कंस जरासन्ध का मित्र और सम्बन्धी हो गया।] कृष्णचन्द्र ने [हंस, डिम्भक और] कंस को मार डाला। [जरासन्ध की कन्याएँ विधवा हो गईं।] इसी कारण श्रीकृष्ण से और जरासन्ध से शत्रुता हो गई। जरासन्ध ने उस वैर का बदला लेने के लिए गिरिव्रज (अपनी राजधानी) से ही एक बड़ी भारी गदा निन्नानबे बार घुमाकर ज़ोर से फेंकी। वह गदा निन्नानबे योजन पर मथुरा के पास आकर गिरी। उस समय कृष्ण मथुरा में ही थे [किन्तु उस गदा से उनका कुछ नहीं बिगड़ा]। पुरवासियों ने उस गदा को देखकर सब हाल आकर श्रीकृष्ण से कहा। वह गदा जहाँ पर गिरी थी वह स्थान गदावसान के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह पहले ही कहा जा चुका है कि जरासन्ध के सहायक हंस और डिम्भक दोनों नीतिशास्त्र में निपुण, सलाह देने में अद्वितीय और शस्त्र-प्रहार से न मर सकनेवाले थे। [मेरी समझ में] इन दोनों के साथ जरासन्ध तीनों लोकों से युद्ध कर सकता था। उस समय देवता भी उसका सामना नहीं कर सकते थे। इसी कारण, दुर्बल को सबल का सामना न करना चाहिए—इस नीति का ख़याल करके, बलवान् होने पर भी २८ वृष्णि, कुकुर, भोज, अन्धक आदि वंशों के यादवों ने जरासन्ध से भिड़ना ठीक नहीं समझा।

जरासन्धवधपर्व

बीसवाँ अध्याय

भीमसेन और अर्जुन के साथ कृष्ण का जरासन्ध के पास जाना

कृष्ण ने कहा—हे युधिष्ठिर, अब हंस और डिम्भक दोनों मर चुके और साथियों-समेत दुरात्मा कंस भी मारा गया। प्रचण्ड जरासन्ध के मारने का यही ठीक समय है। युद्ध में तो, मेरी समझ में, सब देवता और दैत्य भी मिलकर उसको नहीं जीत सकते। इसलिए मेरी सलाह तो यह है कि द्वन्द्वयुद्ध में वह हराया और मारा जा सकेगा। मैं नीति का जानकार हूँ, भीमसेन बलवान् हैं और अजेय अर्जुन हमारे सहायक साथी हैं। तीन अग्नि जैसे यज्ञकार्य करते हैं, वैसे ही हम तीनों मिलकर अवश्य दुष्ट जरासन्ध को मारने का काम पूरा कर लेंगे। हम तीनों एकान्त में जाकर उससे युद्ध करने की इच्छा प्रकट करेंगे तो वह हममें से एक से युद्ध करने को अवश्य राज़ी हो जायगा। अपमान, राज्यलोभ और बाहुबल के घमण्ड के कारण वह अवश्य भीमसेन से ही युद्ध करना चाहेगा। सिर उठानेवाले घमण्डी आदमी को जैसे मौत मार डालती है वैसे ही घमण्डी जरासन्ध को भीमसेन मार लेंगे। यदि आप मेरे हृदय की बात जानते हैं और मुझ पर आपको भरोसा है तो शीघ्र ही धरोहर के तौर पर भीमसेन और अर्जुन को मुझे सौंप दीजिए।

वैशम्पायन कहते हैं कि वासुदेव के वचन सुनकर और अपने सामने प्रसन्न-मुख भीमसेन तथा अर्जुन को खड़े देखकर युधिष्ठिर ने कहा—हे पुरुषोत्तम, तुम यह क्या कहते हो? तुम पाण्डवों के सहायक और स्वामी हो; हम लोगों को तुम्हारा ही सहारा है। तुम्हारा कहना बिलकुल ठीक है; तुम जो कहोगे और सलाह दोगे उसे मैं युक्तिसिद्ध और कर्त्तव्य समझता हूँ। सौभाग्य-लक्ष्मी जिनसे विमुख होती है उनके सहायक तुम कभी नहीं हो सकते। मुझे विश्वास १० है, तुम्हारी आज्ञा पर चलने से मेरा सब काम बन जायगा। मैं समझता हूँ कि जरासन्ध मर गया, राजाओं को छुटकारा मिल गया और राजसूय यज्ञ भी सकुशल पूरा हो गया। हे जगदीश्वर, जिस ढँग से यह काम शीघ्र हो जाय उस तरह सावधानी के साथ आरम्भ कर दो। भीम, अर्जुन और तुम, तीनों के बिना मैं वैसे ही जीवित नहीं रह सकता जैसे धर्म, अर्थ और काम से रहित दुःखित रोगी मनुष्य नहीं जी सकता। मुझे दृढ़ विश्वास है कि अर्जुन के बिना कृष्ण और कृष्ण के बिना अर्जुन नहीं रह सकते। ऐसा कोई काम नहीं जिसे कृष्ण और अर्जुन मिलकर पूरा न कर सकते हों; ऐसा कोई बली नहीं जिसे न जीत सकते हों। बली पुरुषों में श्रेष्ठ ये यशस्वी भीमसेन, तुम दोनों की सहायता पाकर, सब कुछ कर सकते हैं। सेनापति की जानकारी और चतुराई की सहायता पाकर सिपाही लोग झटपट शत्रु पर विजय पा सकते हैं। बिना सेनापति की

सेना को पण्डित लोग अन्धे और जड़ मनुष्य के समान कहते हैं। [इसलिए नीतिनिपुण पुरुष को ही नेता या सेना-पति का काम सौंपा जाता है।] जिधर नीचा होता है उधर ही जैसे बुद्धिमान् लोग पानी को ले जाते हैं, और धीवर लोग जैसे छिद्र की ओर ही पानी की गति कर देते हैं, वैसे ही चतुर सेनापति जिधर शत्रु-पक्ष की कमज़ोरी और दोष देखते हैं उधर ही सेना का सञ्चालन करते हैं। कृष्ण, हम लोगों में तुम नीति-विधान का श्रेष्ठ ज्ञान रखनेवाले, पुरुषार्थी और लोक-प्रसिद्ध हो। तुम्हारा ही सहारा लेकर हम लोग काम सिद्ध करने का यत्न करेंगे। बुद्धि, नीति, बल आदि गुणों से युक्त और कार्य तथा उसके उपाय को जाननेवाले तुम्हीं को मैं इस काम का अगुआ बनाता हूँ। नीति, जय और बल की तरह तुम्हारे पीछे अर्जुन और अर्जुन के पीछे भीमसेन, तीनों कार्यसिद्धि के लिए जायँ। मुझे निश्चय है कि पराक्रम के द्वारा अवश्य २० तुम लोग विजय और सिद्धि प्राप्त करोगे।

वैशम्पायन कहते हैं—युधिष्ठिर के वचन सुनकर सब बहुत प्रसन्न हुए। तब तेजस्वी स्नातक ब्राह्मणों का वेष बनाकर, वैसे ही कपड़े पहनकर, तीनों जने—कृष्ण, अर्जुन, भीम—जाने के लिए तैयार हो गये। उस समय इष्ट-मित्रों ने आशीर्वाद देकर तीनों वीरों का अभिनन्दन किया। जातिवाले राजाओं पर किये गये जरासन्ध के अत्याचार का विचार करके क्रोध से भरे हुए तीनों वीर सूर्य, चन्द्र और अग्नि के समान प्रकाशमान हुए। युद्ध में अजेय कृष्ण और अर्जुन के साथ भीमसेन को जाते देखकर युधिष्ठिर ने निश्चय कर लिया कि अब जरासन्ध जीता नहीं रह सकता। वे जानते थे कि नर-नारायण के अवतार अर्जुन और कृष्ण समर्थ, महात्मा, संसार के सब कामों के—यहाँ तक कि धर्म-अर्थ-काममोक्ष के भी—प्रवर्त्तक हैं। फिर भीमसेन के साथ इस काम को पूरा करना उनके लिए क्या बड़ी बात है।

तीनों महापुरुष कुरुदेश से चलकर, कुरुजाङ्गल के बीच होकर, रमणीय पद्मसर, कालकूट पर्वत, गण्डकी नदी, महाशोण नद, सदानीरा नदी आदि को लाँघते हुए मनोहर सरयू नदी

के पार पहुँचकर—पूर्वकोशल देश लाँघकर—मिथिला, माला और चर्मण्वती नदी के उस पार गये। फिर वेग से बहनेवाली गङ्गा नदी और शोण नद के पार कुछ दूर पूर्व की ओर जाकर वे मगधराज्य की सीमा के भीतर घुसे। गोरथ पर्वत के पास पहुँचकर उन्होंने जलपूर्ण, गोधन-सम्पन्न मगध देश की राजधानी को देखा। ३०

इक्कीसवाँ अध्याय

नगरी का वर्णन और तीनों वीरों का जरासन्ध के पास पहुँचना

कृष्ण ने कहा—अर्जुन! देखो, मगध देश की राजधानी गिरिव्रज की कैसी अपूर्व शोभा है। यह देश पशुओं से, यथेष्ट जल से और बड़े-बड़े महलों से शोभित है। यहाँ व्याधि आदि बाधाएँ नहीं हैं। इस देश में किसी प्रकार का कोई उपद्रव नहीं देख पड़ता। ऊँचे शिखरों से शोभित, शीतल छायावाले वृक्षों से पूर्ण, परस्पर मिले हुए वैहार, वराह, वृषभ, ऋषिगिरि और चैत्यक नाम के पाँच महापर्वत मानों एक साथ मिलकर इस नगरी की रक्षा कर रहे हैं। लाल-लाल नये पल्लवोंवाले, सुगन्धित फूले हुए फूलों से मनोहर, कामी पुरुषों को प्रिय ये लोध्रवृक्षों के वन मानों चारों ओर से इस नगरी को छिपाये हुए हैं। वह देखो, इस स्थान पर महातपस्वी गौतम ऋषि ने औशीनरी नाम की शूद्रा के गर्भ से काक्षीवान् आदि पुत्र उत्पन्न किये थे। शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न होने पर भी जो ये राजा राज्य कर रहे हैं, सो इस वंश पर गौतम ऋषि की कृपा ही इसका कारण है। पूर्व-समय में अङ्ग, वङ्ग आदि देशों के राजा इस गौतम ऋषि के आश्रम में आकर, यहाँ की शोभा देखकर, अपार आनन्द पाते थे। वह देखो, गौतम ऋषि के आश्रम के आसपास लोध और पीपलों के वनों की कैसी अपूर्व शोभा देख पड़ती है। अर्बुद, शक्रवापी, शत्रुदमन, स्वस्तिक और मणि नाम के नागों का निवासस्थान यहीं पर है।

भगवान् मनु ने इस मगध देश को खेती के लिए मेघों का मुँह ताकनेवाला नहीं बनाया है। यहाँ इतना पानी है कि वर्षा न भी हो तो अन्न काफ़ी उपजता है। मणिमान् और कौशिक १० की भी इस देश पर बड़ी कृपा है। इस प्रकार शत्रुओं के आक्रमण की शङ्का से रहित नगर और दैव की अनुकूलता पाकर जरासन्ध अपने को कृतार्थ समझता हुआ सदा प्रसन्न रहता है। वह समझता है कि उसका कोई काम अटक नहीं सकता। उसे किसी का खटका नहीं है; पर हम आज उस दैव-बल के घमण्ड में चूर दुरात्मा का घमण्ड मिटा देंगे।

वैशम्पायन कहते हैं—यादवश्रेष्ठ श्रीकृष्ण इस प्रकार भीम और अर्जुन को अनेक स्थान और वस्तुएँ दिखाते हुए नगर के समीप पहुँच गये। वह नगरी बहुत ही समृद्धिशालिनी थी। उसमें लगातार उत्सव हुआ करते थे। वहाँ चारों वर्ण की प्रजा रहती थी। उस पर कोई शत्रु सहज में हमला नहीं कर सकता था। कृष्ण नगरी के फाटक में होकर भीतर नहीं गये। राजा और प्रजा जिसकी पूजा करते थे उस उन्नत और मनोहर नगर-चैत्य की ओर तीनों वीर तेज़ी के साथ गये। उस चैत्य में तीन बहुत बड़े नगाड़े रक्खे हुए थे। राजा बृहद्रथ ने मांस-भोजी ऋषभ नाम के राक्षस को मारकर उसकी खाल से मढ़वा-कर ये तीनों नगाड़े वहाँ पर रखवा दिये थे। उन नगाड़ों की फूल आदि से नित्य पूजा हुआ करती थी। उन पर चोट पड़ने से ऐसा गम्भीर शब्द होता था कि वह महीने भर तक सुन पड़ता था। इन वीरों ने वहाँ जाकर पहले उन नगाड़ों को तोड़ डाला। फिर जरासन्ध को मारने की इच्छा रखनेवाले ये वीर उस चैत्य (मन्दिर) की

दीवार के पास पहुँचे। वह नगर-चैत्य बहुत पुराना था; चन्दन-माला आदि से उसकी नित्य २० पूजा हुआ करती थी। इन वीरों ने अपने विशाल बलवान् हाथों से ही उस चैत्य को गिरा दिया। फिर ये प्रसन्नतापूर्वक उसी राह से नगरी के भीतर घुसे।

इसी बीच में वेदपाठी ब्राह्मणों ने अनिष्टसूचक अनेक उत्पात होते देखकर उनकी सूचना जरासन्ध को दी। उत्पातों की शान्ति के लिए पुरोहितों ने राजा जरासन्ध को ी पर चढ़ाकर उसके चारों ओर आग घुमा दी। शान्ति के लिए प्रतापी राजा जरासन्ध

ने दीक्षा और नियम धारण करके उस दिन उपवास किया। इधर स्नातक का वेष बनाये, निहत्थे, केवल बाहुबल के भरोसे जरासन्ध से युद्ध करने की इच्छा रखनेवाले कृष्ण, अर्जुन और भीम नगरी के भीतर पहुँचे। राजमार्ग में पहुँचकर उन्होंने देखा, दोनों ओर अनेक वस्तुओं से भरी हुई दूकानें लगी हुई हैं। उनमें खाने-पीने-पहनने के सामान भरे पड़े हैं। तीनों वीर इस तरह नगरी की शोभा और समृद्धि देखते हुए राजभवन की ओर चले। एक माली की दूकान पर सुन्दर सुगन्धित फूलों की मालाएँ रक्खी हुई थीं। इन वीरों ने उससे मालाएँ छीनकर पहन लीं। रङ्गीन कपड़े, माला और कुण्डल आदि पहने ये तीनों वीर, गोशाला की खोज में जा रहे सिंहों के समान, जरासन्ध के घर की खोज में चले। उन वीरों की भुजाओं में चन्दन और अगुरु लगा हुआ था, वे साखू के लट्ठों के समान जान पड़ती थीं। शालवृक्ष के समान ऊँचे डील के, चौड़ी छातीवाले, गजराज सदृश तीनों वीरों को देखकर मगधदेश के निवासियों को बड़ा अचरज होता था। महाराज! वे तीनों वीर, बहुत से लोगों से परिपूर्ण राजभवन की तीन ड्योढ़ियाँ लाँघकर, बिना किसी सङ्कोच के अहङ्कार का भाव दिखाते हुए जरासंन्ध के पास पहुँचे। उन्हें देखते ही जरासन्ध आदर का भाव दिखाकर अपने आसन से

३०

उठ खड़ा हुआ। आये हुए तीनों वीरों को आदर-सत्कार के योग्य समझकर जरासन्ध ने आसन, पाद्य, अर्घ्य, मधुपर्क आदि पूजन की सामग्री से विधिपूर्वक सत्कार करके स्वागत और कुशलप्रश्न किया। भीमसेन और अर्जुन चुप रहे। बुद्धिमान् कृष्ण ने कहा—राजन्, ये इस समय मौनी हैं, इसलिए नहीं बोलेंगे। आधी रात के बाद ये आपसे बातचीत करेंगे।

इन तीनों वीरों को यज्ञशाला में ठहराकर राजा जरासन्ध अपने रनिवास में चला गया। आधी रात हो जाने पर वह फिर इन लोगों के पास आया। हे भरतश्रेष्ठ, राजा जरासन्ध का ऐसा नियम था कि आधी रात को भी यदि स्नातक ब्रह्मचारी आवे तो वह उसी समय उसके पास जाकर उसका सत्कार करता था। उसका यह नियम सब जगह प्रसिद्ध था। पास

जाकर उनके अपूर्व वेष को देखकर जरासन्ध को बड़ा अचरज हुआ। जरासन्ध को देखकर तीनों वीर खड़े हो गये और "स्वस्ति तथा कुशल हो" कहकर परस्पर एक दूसरे की ओर ताकने

४० लगे। जरासन्ध ने कृष्ण, अर्जुन और भीम से बैठने के लिए कहा। ये लोग बैठ गये। उस समय यज्ञ की वेदी में स्थापित तीन अग्नियों के समान तीनों महापुरुष देख पड़े।

अब सत्यवादी प्रतापी राजा जरासन्ध ब्रह्मचारियों के विरुद्ध वेषवाले इन लोगों की निन्दा सी करता हुआ कहने लगा—हे स्नातक ब्राह्मणो, मैं जानता हूँ कि स्नातक व्रतधारी ब्राह्मण गृहस्थाश्रम में जाने से पहले न तो कभी माला पहनते और न अपने शरीर में चन्दन लगाते हैं; किन्तु मैं देखता हूँ कि तुम लोग रङ्गीन कपड़े, माला, चन्दन आदि धारण किये हुए हो। तुम्हारी कलाइयों में धनुष की डोरी की रगड़ के चिह्न भी देख पड़ते हैं। तुम अपने को ब्राह्मण बता चुके हो, पर मुझे तुममें क्षत्रियों के भाव देख पड़ते हैं—तुम्हारे चेहरों पर क्षत्रियों का तेज साफ़ झलक रहा है। सच कहो, तुम लोग कौन हो? राजा के सामने सच बोलना ही अच्छा होता है। मैंने एक बात और भी सुनी है; तुम लोग नगरी के द्वार से भीतर न घुस-कर कुराह से आये हो। राजा का अपराध करने से न डरकर, चैत्यक-शिखर को तोड़कर, उधर से तुम लोग क्यों आये? ब्राह्मण लोग वाणी के द्वारा अपना पराक्रम प्रकट करते हैं, पर तुम लोगों ने वह न करके कार्य के द्वारा पराक्रम प्रकट किया। यह बात भी तुम्हारे ब्राह्मण न होने का एक प्रमाण है। इसके सिवा मैंने जो तुम्हारा पूजन किया उसे भी तुमने स्वीकार नहीं किया। सच कहो, तुम कौन हो और किसलिए मेरे पास आये हो?

जरासन्ध के यों पूछने पर बुद्धिमान् कृष्ण ने गम्भीर वाणी से कहा—राजन्, तुम हमें स्नातक व्रतधारी ब्राह्मण समझते हो; किन्तु केवल ब्राह्मण ही नहीं, बल्कि क्षत्रिय और वैश्य भी स्नातक व्रतधारी होते हैं। उन लोगों के विशेष नियम भी होते हैं और साधारण नियम

५० भी। विशेष नियमों का पालन करने से क्षत्रिय स्नातक सम्पत्तिशाली होते हैं। फूल-माला पहननेवाले श्रीमान् होते हैं; इसी से हम लोग फूल-माला पहने हुए हैं। क्षत्रियों का पराक्रम भुजाओं में होता है, वचनों में नहीं। इसी कारण उनके लिए प्रगल्भतापूर्ण वचन कहने की विधि नहीं है। विधाता ने अपना पराक्रम क्षत्रियों के हाथों में ही स्थापित किया है। जो तुम उस बल को देखना चाहते हो तो अभी देख लो। हे बृहद्रथ-नन्दन, जो धीर वीर पुरुष हैं उनका यही धर्म है कि वे शत्रु के घर में असली राह से न जाकर दूसरी ही राह से जाते हैं; मित्र के ही यहाँ असली राह से जाते हैं। राजन्, अपने काम के लिए शत्रु के घर जाकर उसकी दी हुई

५४ पूजा की सामग्री को स्वीकार न करना हमारा कुल-परम्परा का नियम है।

बाईसवाँ अध्याय

कृष्ण और जरासन्ध की बातचीत

जरासन्ध ने कहा—हे स्नातको, मैंने कब तुम्हारे साथ शत्रुता की है, सो मुझे याद नहीं। बार-बार सोचकर भी मुझे याद नहीं आता कि तुम्हारा अपकार मैंने किया है। जब मैंने तुम्हारे साथ कभी कोई शत्रुता का व्यवहार नहीं किया तब फिर तुम लोग मुझे शत्रु क्यों कह रहे हो? तुम मुझे शत्रु कह रहे हो इसका मतलब क्या है? ठीक-ठीक कहो, क्योंकि सज्जन पुरुष सत्य को ही सबसे बढ़कर समझते हैं। देखो, धर्म या अर्थ में किसी के द्वारा बाधा पड़ने से ही मनुष्य का मन दुखी होता है। जो कोई क्षत्रियकुल में पैदा होकर और धर्म-अर्थ के तत्त्व को जानकर भी बिना अपराध के दूसरे के धर्म या अर्थ की सिद्धि में बाधा डालता है वह इस लोक में निन्दा और कष्ट पाकर परलोक में नरकगामी होता है। त्रिलोकी में क्षत्रिय-धर्म ही सन्मार्ग का प्रवर्त्तक है। धर्मज्ञ पण्डित इसी कारण क्षत्रिय-धर्म की प्रशंसा किया करते हैं। मैं

सदा अपने धर्म पर स्थित रहता और अपनी प्रजा के धर्म और अर्थ में बाधा नहीं डालता हूँ। फिर तुम मुझे शत्रु क्यों कहते हो? जान पड़ता है, तुम प्रमाद या मतिभ्रम के कारण ऐसा कह रहे हो।

श्रीकृष्ण ने कहा—हे महाबाहो, जो अपने कुल में श्रेष्ठ महापुरुष अकेले सब कुल-कार्यों का भार सँभालते हैं (अर्थात् सम्पूर्ण क्षत्रियवंश की रक्षा का ज़िम्मा लिये हुए हैं), उन्हीं की आज्ञा से हम लोग यहाँ, तुम्हारे पास, आये हैं। राजन्, तुमने बलपूर्वक बहुत से राजाओं को हराकर, बलिदान की इच्छा से, अपने यहाँ क़ैद कर रक्खा है। ऐसा क्रूर कर्म करके भी तुम कैसे अपने को निर्दोष और किसी का अपकार न करनेवाला कहते हो? राजा होकर कौन पुरुष, बिना किसी अपराध के, अपने सजातीय भाइयों की हत्या करना चाहेगा? तुम क्या समझकर उन राजाओं को पकड़कर महादेव के आगे उनका बलिदान करना चाहते हो? हम लोग धर्म का आचरण करनेवाले और धर्म की रक्षा करने में समर्थ हैं। इस कारण जो

हम तुम्हारे इस क्रूर काम में हस्तक्षेप न करें तो हमें भी तुम्हारे किये इस पाप का भागी होना
१० पड़ेगा। हमने कभी कहीं नर-बलि होते देखा-सुना नहीं है। फिर तुम कैसे भगवान् शङ्कर को मनुष्यों के बलिदान से सन्तुष्ट करना चाहते हो? हे जरासन्ध, तुम क्षत्रिय होकर पशुओं की तरह क्षत्रियों की बलि देना चाहते हो! तुम्हारे सिवा और कौन मूढ़ ऐसा करने का इरादा करेगा? जो कोई जिस-जिस अवस्था में जो-जो कर्म करता है, उस-उस अवस्था में उसे उन-उन कर्मों का फल भोगना पड़ता है। तुम अपनी जाति का नाश करते हो और हम लोग पीड़ितों की सहायता करते हैं। अपनी जाति का नाश न होने देने के लिए हम लोग यहाँ तुमको मारने आये हैं। तुम समझते हो कि इस पृथ्वीमण्डल पर तुम्हारे समान बली और वीर क्षत्रिय कोई नहीं है; किन्तु यह केवल तुम्हारी बुद्धि का भ्रम है। सोचकर देखो, अपनी जाति का पक्षपाती कौन सा क्षत्रिय, क्षत्रिय नरपतियों की रक्षा के लिए यत्नवान् होकर, सम्मुख-सङ्ग्राम में अपने प्राण तक गँवाकर अक्षय स्वर्ग पाकर अपने को सुखी बनाने की इच्छा न करेगा? हे नरश्रेष्ठ, क्षत्रिय लोग स्वर्ग पाने की इच्छा से ही युद्ध-यज्ञ की दीक्षा लेते हैं। राजन्! वेद-पाठ, बहुत यश, तपस्या और युद्ध में लड़ते-लड़ते मरना—इन चारों में से हर एक काम स्वर्गदायक है। [वेद-पाठ आदि कर्म यदि विधिपूर्वक नहीं होते तो उनसे स्वर्गलाभ नहीं भी हो सकता; किन्तु क्षत्रियों के योग्य वीरता दिखाकर युद्धभूमि में मरने से स्वर्ग-प्राप्ति में सन्देह नहीं रह जाता।] युद्ध में मरनेवाले को अवश्य स्वर्ग प्राप्त होता है। देखो, इन्द्र अपने गुणी पुत्र जयन्त के प्रभाव से युद्ध में असुरों को हराकर जगत् का पालन करते हैं। सो चाहे जो हो, [हम लोगों से शत्रुता होने के कारण] तुम्हारे लिए स्वर्ग जाने की राह जैसी सुगम हो गई है वैसी और किसी के लिए न हुई होगी। तुम मगध देश की असङ्ख्य सेना के बल पर गर्वित होकर सब राजाओं का अपमान
२० करते हो; किन्तु ऐसा करना तुम्हें उचित नहीं। मनुष्यों में एक से एक बढ़कर बलवान् और पराक्रमी पड़े हुए हैं। इस पृथ्वीमण्डल पर तुम्हारे समान और तुमसे बढ़कर भी प्रबल और पराक्रमी लोग हैं। उन लोगों के बारे में जानकारी न होने के कारण दिन-दिन तुम्हारा अहङ्कार और स्वेच्छाचार बढ़ता जा रहा है। तुम्हारा दर्प और स्वेच्छाचार अब असह्य हो उठा है। इसी से मैं कहता हूँ कि अपने समान कुल में उत्पन्न क्षत्रियों से ऐसे घमण्ड और स्वेच्छाचार का व्यवहार करना छोड़ दो; पुत्र-मन्त्री-सेना-सहित यमलोक जाने का उपाय मत करो। महाबली सहस्रबाहु अर्जुन, उत्तर और बृहद्रथ आदि महाराज बड़े ही पराक्रमी थे; पर अति घमण्ड के कारण शुभ-अशुभ का विवेक एकदम छोड़ देने पर अपनी सेना और अनुचरों-सहित मारे गये। सच तो यह है कि हम तीनों ब्राह्मण नहीं हैं; तुमको मारने के लिए ब्राह्मण का वेष बनाकर यहाँ आये हैं। हम तीनों जने क्षत्रिय हैं—ये दोनों वीर तो भीमसेन-अर्जुन नाम के पाण्डव हैं, और मैं इनके मामा वसुदेव का पुत्र और तुम्हारा शत्रु श्रीकृष्ण हूँ। हे मगधराज, हम तुमको युद्ध करने के

लिए ललकारते हैं। या तो उन सब राजाओं को छोड़ दो जिन्हें तुमने क़ैद कर रक्खा है, अथवा हमारे साथ युद्ध करके यमपुर को जाओ।

जरासन्ध ने कहा—जिन राजाओं को मैं अपने बाहुबल से हरा चुका हूँ उन्हीं को मैंने यहाँ, बलिदान के लिए, क़ैद कर रक्खा है। हारे हुए राजाओं के सिवा यहाँ कोई क़ैद नहीं है। और, पृथ्वीमण्डल पर ऐसा है ही कौन जो मुझसे युद्ध कर सके? हे कृष्ण! बाहुबल से शत्रु को हराकर उसे अपने वश में रखना या उसके साथ मनमाना बरताव करना ही क्षत्रियों का धर्म है। क्षत्रियधर्म का ख़याल करके महादेव की आराधना के लिए मैंने जिन राजाओं को अपने यहाँ क़ैद कर रक्खा है उन्हें, तुमसे डरकर, मैं इस समय कैसे छोड़ सकता हूँ? मैं तुम लोगों से युद्ध करने के लिए तैयार हूँ। चाहे तुम व्यूह-रचनापूर्वक सेना लेकर मेरी सेना से युद्ध करो; चाहे एक, दो या तीनों जने मिलकर अथवा अलग-अलग युद्ध करो। मैं सब तरह तुमसे लड़ने के लिए तैयार हूँ। ३०

वैशम्पायन कहते हैं—अब भीमकर्मा भीमसेन आदि से लड़ने के लिए तैयार जरासन्ध ने अपने पुत्र सहदेव को राजगद्दी पर बिठाकर राज्याभिषेक कर दिया। उपस्थित युद्ध में जरासन्ध ने अपने सेनापति कौशिक और चित्रसेन को स्मरण किया। यही दोनों वीर पहले हंस और डिम्भक नाम से प्रसिद्ध थे। वृष्णिवंशावतंस कंसनाशन पुरुषसिंह सत्यसन्ध दृढ़व्रत कृष्णचन्द्र यह सोचकर जरासन्ध से नहीं लड़े कि यादवों के हाथ से उसकी मौत ब्रह्मा ने नहीं लिखी थी; भीमसेन के हाथ से ही उसकी मौत बदी थी। ३६

तेईसवाँ अध्याय

भीमसेन और जरासन्ध का युद्ध

वैशम्पायन कहते हैं कि यदुकुल-तिलक कृष्ण ने जरासन्ध को युद्ध के लिए तैयार देखकर उससे पूछा—राजन्, हम तीनों आदमियों में से किससे युद्ध करने को तुम्हारा जी चाहता है? तुमसे युद्ध करने के लिए कौन तैयार हो? यह सुनकर महाबली जरासन्ध ने भीमसेन [को ही उनमें बलवान् और बड़ा देखकर उन] से युद्ध करने की इच्छा प्रकट की।

जरासन्ध को युद्ध के लिए तैयार देखकर गोरोचना, माला, अन्य मङ्गल-वस्तुएँ और पीड़ा तथा मूर्च्छा को दूर करने की ओषधियाँ लेकर कुल-पुरोहित उसके पास आया। यशस्वी ब्राह्मण कुल-पुरोहित के स्वस्त्ययन-शान्तिपाठ कर चुकने पर क्षत्रियधर्म को याद करके पराक्रमी जरासन्ध युद्ध के लिए तैयार हो गया। उसने किरीट-मुकुट उतारकर केशों को कसकर बाँधा। जरासन्ध उस समय उमड़कर तट-भूमि को डुबानेवाले समुद्र के समान जान पड़ने लगा;

उसने भीमसेन से कहा—भीमसेन, आओ, मैं तुमसे युद्ध करूँगा। बड़े पुण्यों से आज तुमसे युद्ध करने की मेरी इच्छा पूरी हुई है। इन्द्र से लड़ने के लिए जैसे बल नाम का असुर चला था

वैसे ही जरासन्ध भीमसेन से लड़ने के लिए चला। उधर भीमसेन, कृष्ण से सलाह करके, स्वस्त्ययन कर्म के उपरान्त युद्ध करने के लिए जरासन्ध की ओर चले। निहत्थे दोनों वीर, परस्पर जय पाने की इच्छा से, दो सिंहों के समान प्रसन्नता और उत्साह के साथ भिड़कर बाहुयुद्ध करने लगे। दोनों ने पहले परस्पर पैर छुए, हाथ मिलाये; फिर वे ताल और खम ठोंककर उस राजभवन को हिलाने से लगे। कन्धों पर बारम्बार हाथ मारकर एक दूसरे के अङ्गों से लिपटकर एक दूसरे को ललकारने लगे। चित्रहस्त, कक्षाबन्ध आदि अनेक दाव-पेंच करते हुए दोनों वीर परस्पर ऐसे-ऐसे हाथ मारने लगे कि दोनों के शरीरों से चिनगारियाँ सी निकलने लगीं और बिजली गिरने का सा शब्द होने लगा। फिर परस्पर पीड़ा पहुँचाते हुए दोनों वीर मस्त हाथियों की तरह गरजकर 'बाहुपाश' आदि अनेक लपेटों के साथ लड़कर 'उरोहस्त', 'पूर्णकुम्भ' आदि विचित्र युद्ध-कौशल दिखाने लगे। थप्पड़, घूँसे आदि मारते, क्रोध के मारे काँप रहे, सिंहों के समान गरज रहे दोनों वीर परस्पर क्रोधपूर्ण दृष्टि से देखते और एक दूसरे को अपनी ओर खींचते हुए घोर युद्ध करने लगे। वे वीर अपने अङ्गों और हाथों से चोट पहुँचाकर, हाथों से पेट पकड़कर, कमर और पसली पकड़कर इधर-उधर और पीछे हटाकर, सिमटकर, झपटकर, ताल ठोंककर, 'अतिक्रान्तमर्याद'-'पृष्ठभङ्ग'-'संपूर्णमूर्च्छा'-'पूर्णकुम्भ'-'तृणपीड'-'पूर्णयोग'-'मुष्टिक' आदि विचित्र युद्ध करके अपना बल और कौशल दिखाने लगे। दोनों ही वीर कुश्ती की कला में सुशिक्षित और बल में भी बराबर थे।

जनमेजय, दोनों वीरों के विचित्र बाहुयुद्ध को देखने के लिए मगध-राजधानी के बालक, बूढ़े, जवान, स्त्रियाँ, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि हज़ारों दर्शक वहाँ पर आकर जमा हो गये। युद्ध के अखाड़े के आसपास इतनी भीड़ हो गई कि कहीं पर तिल रखने की जगह न
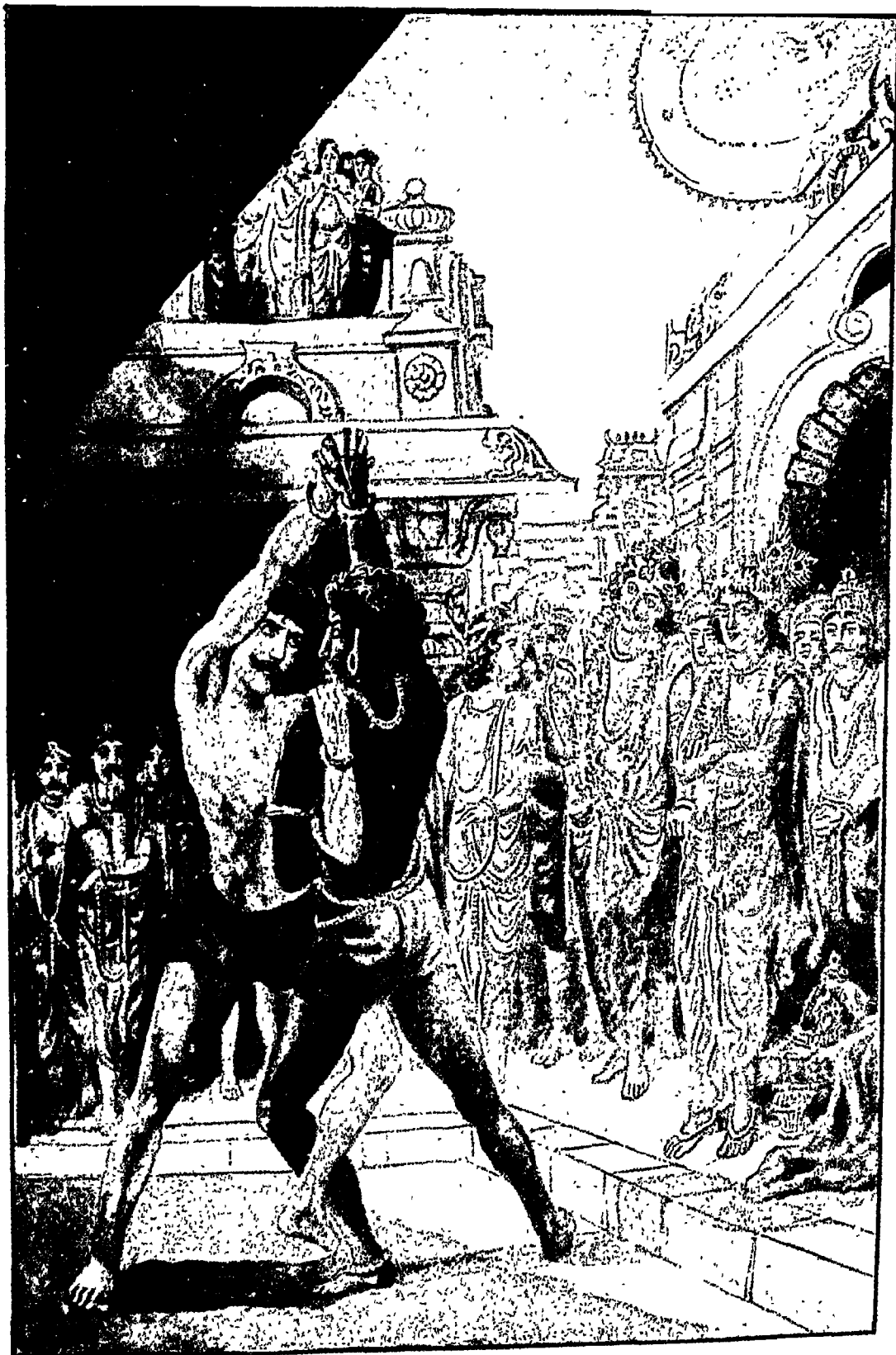
जरासन्ध-भीम का मल्ल-युद्ध ।—पृष्ठ १६४

थी। महावीर भीमसेन और जरासन्ध, दोनों हाथ मारकर, दबाने और पकड़ने की चेष्टा करके ऐसा युद्ध करने लगे कि उनके परस्पर प्रहार करने से पहाड़ पर बिजली गिरने का सा भयङ्कर शब्द होने लगा। दोनों ही वीर, बली और जय की इच्छा रखनेवाले थे; दोनों ही अपने को बचाकर दूसरे पर वार करने का मौक़ा देख रहे थे। वे परस्पर उदास या शान्त न होकर और भी अधिक उत्साह और प्रसन्नता प्रकट करने लगे। अब वह लोगों की भीड़ वहाँ से दूर हटा दी गई। दोनों बली वीर वृत्रासुर और इन्द्र के समान रोमाञ्चकारी विकराल युद्ध में जुट गये। प्रकर्षण, आकर्षण, विकर्षण, अनुकर्षण आदि कौशलों से परस्पर एक-दूसरे को खींचते हुए वे घुटनों से चोट मारने लगे। दोनों वीर एक दूसरे को झिड़कते और ललकारते जाते थे। उनके परस्पर प्रहार से पत्थर पर पत्थर पटकने का सा शब्द हो रहा था। दृढ़ छाती और लम्बी पुष्ट भुजाओंवाले, बाहु-युद्ध में चतुर, दोनों वीर लोहे के बेलन ऐसी भुजाओं से परस्पर भिड़ गये।

यह युद्ध कार्त्तिक बदी प्रतिपदा को शुरू हुआ और इसी तरह लगातार दिन-रात होता रहा। दोनों में से किसी ने भी न तो कुछ खाया-पिया और न तनिक विश्राम ही किया। चौदहवें दिन, रात को, थककर जरासन्ध ने वह युद्ध कुछ समय के लिए बन्द करना चाहा। ३० जरासन्ध को थका हुआ देखकर परमचतुर कृष्ण ने भीमसेन को चिताते हुए कहा—हे कुन्ती-नन्दन, शत्रु थक गया है; इस समय आक्रमण करना ठीक नहीं। वेग से आक्रमण किया जायगा तो इसकी जान जाने की आशङ्का है। इसलिए इस समय तुम घोर आक्रमण न करके सब शक्ति लगाकर बाहु-युद्ध करो। कृष्णचन्द्र के यों कहने से अधिक उत्तेजित भीमसेन ने देखा कि जरासन्ध को मारने का यह अच्छा अवसर है। तब उसे मार डालने के विचार से भीमसेन ने झपटकर बड़े वेग से उस पर हमला किया। ३५

चौबीसवाँ अध्याय

जरासन्ध-वध और कृष्ण आदि का युधिष्ठिर के पास लौटकर जाना

वैशम्पायन कहते हैं—तब जरासन्ध को मार डालने का दृढ़ निश्चय करके भीमसेन ने कहा कि हे कृष्ण, शत्रु ने अभी तक हार नहीं मानी है; ऐसी दशा में इस पापी को मैं कैसे छोड़ सकता हूँ? यह सुनकर कृष्ण ने उन्हें, जरासन्ध को शीघ्र मारने के लिए, उत्साहित करते हुए कहा—तुममें जो दुर्लभ दैवबल है, जो बल तुमने अपने पिता वायु से पाया है, वह इस समय दिखाओ। श्रीकृष्ण के इस इशारे का मतलब समझकर महावीर भीमसेन ने वायुवेग से झपटकर जरासन्ध को पकड़ लिया। फिर वे उसे ऊपर उठाकर वेग से घुमाने लगे। सौ बार ऊपर घुमाकर भीमसेन ने जरासन्ध को पृथ्वी पर पटक दिया और घुटना मारकर उसकी पीठ की हड्डी तोड़ डाली। फिर गरजते हुए भीमसेन ने उसे पृथ्वी पर खूब रगड़ चुकने के बाद

बीच से उसकी टाँगें चीर डालीं। उस समय भीमसेन के भयङ्कर गर्जन को सुनकर सब

प्राणी डर गये, राजधानी के सब लोग डर के मारे काँपने लगे और स्त्रियों के गर्भ गिर गये। मरते समय जरासन्ध के चिल्लाने का और भीमसेन के गरजने का शब्द सुनकर सब लोगों को जान पड़ा कि शायद हिमालय पहाड़ फट गया है अथवा पृथ्वी फटी जा रही है।

१०

अब तीनों जनों ने सलाह करके उसी घोर रात को मरे हुए जरासन्ध को, सोये हुए की तरह, राजभवन के द्वार पर लिटा दिया। यह काम करके तीनों वीर वहाँ से चल दिये। जरासन्ध के पताकायुक्त रथ को जोतकर और उस पर भीमसेन तथा अर्जुन को बिठाकर कृष्णचन्द्र उस जगह गये जहाँ राजा लोग क़ैद थे। वहाँ जाकर कृष्ण ने उन अपने इष्ट-मित्र राजाओं को क़ैद से छुड़ा दिया। बन्धन से छुटकारा पाकर उन राजाओं ने सब रत्नों के योग्य स्वामी कृष्ण को उपहार के रूप में अनेक रत्न अर्पण किये और अपनी कृतज्ञता प्रकट की। इस प्रकार शत्रु को जीतकर—राजाओं को छुड़ाकर—महाबाहु कृष्ण, भीमसेन और अर्जुन उन राजाओं को साथ लिये गिरिव्रज से बाहर निकले। तीनों में से किसी वीर के शरीर

में एक भी घाव नहीं लगने पाया। भीम और अर्जुन दोनों योद्धाओं और कृष्ण सारथी के बैठने से
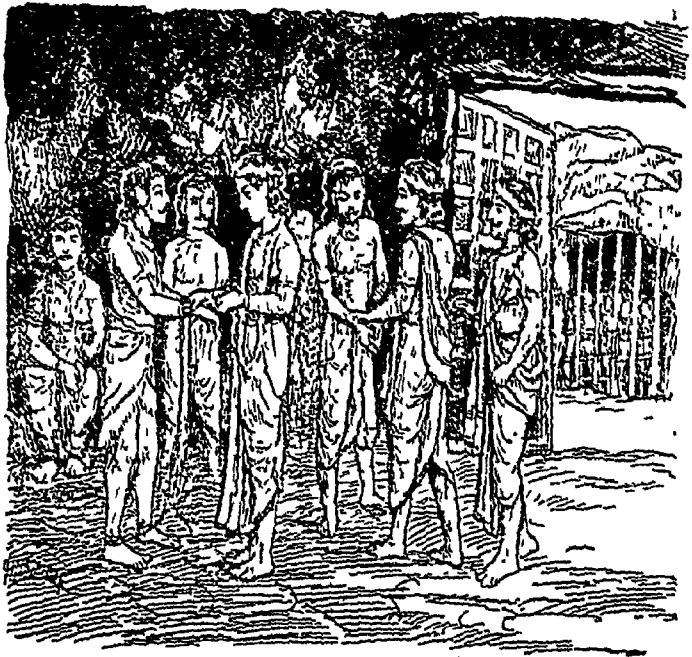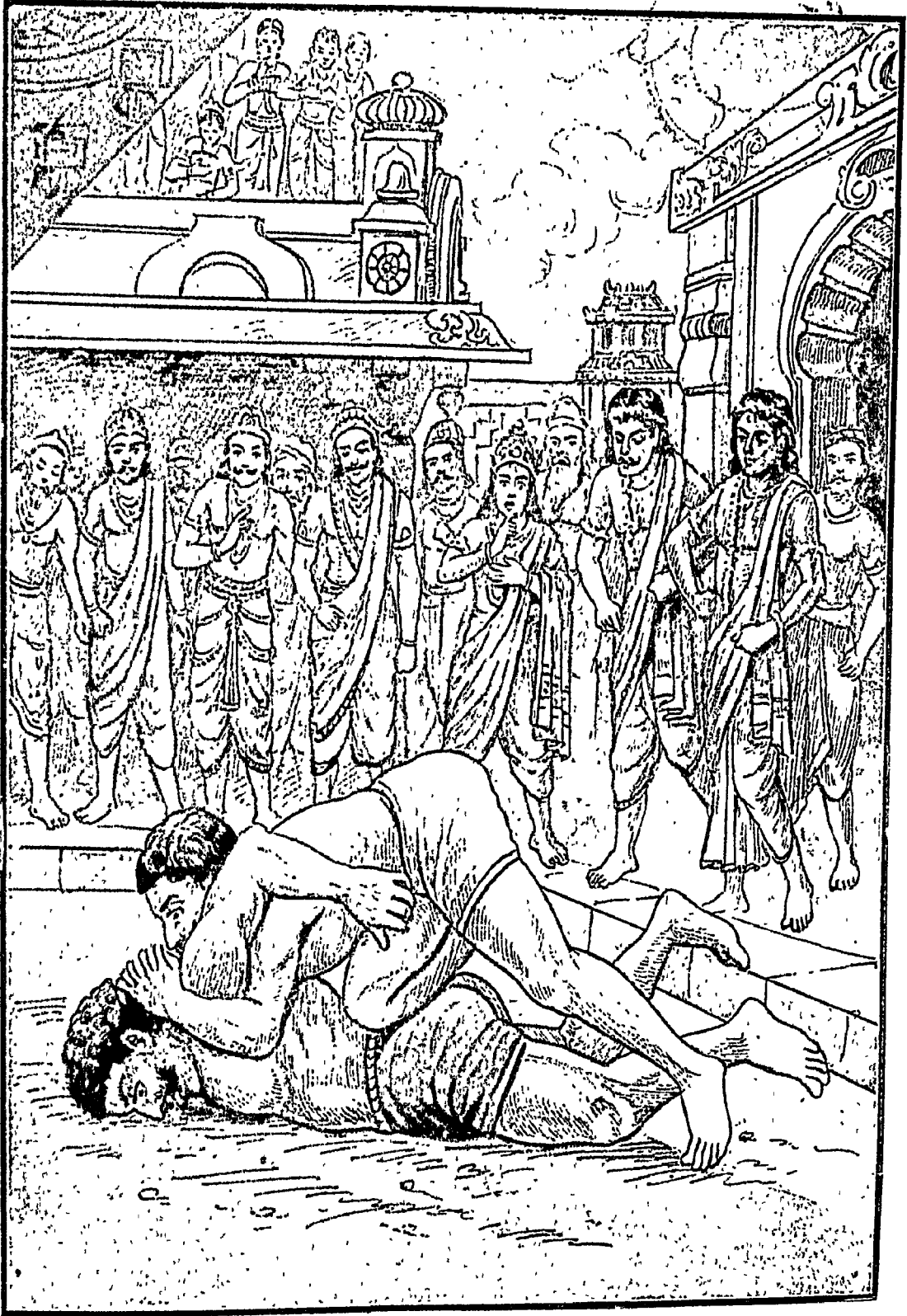
भीमसेन ने जरासन्ध को पृथ्वी पर पटक दिया और घुटना मार कर उसकी पीठ की हड्डी तोड़ डाली।—पृ० ५६५

वह रथ बहुत भला देख पड़ा। वह रथ तारागण के समान चमकीला था। पूर्व समय में विष्णु और इन्द्र उसी रथ पर बैठकर दानवों से युद्ध करते थे। इन्द्र ने निन्नानवे बार उस रथ पर बैठकर दानवों से युद्ध किया और उन्हें मारा। उस रथ की कान्ति तपे हुए सोने के समान थी। उस विजय-दायक रथ का शब्द मेघ-गर्जन से भी बढ़कर गम्भीर था। वह किङ्किणीजाल-युक्त रथ मिल जाने से तीनों वीरों को बड़ा आनन्द हुआ। कृष्ण को भीम और अर्जुन के साथ बैठे देखकर मगध देश के निवासियों को बहुत ही आश्चर्य हुआ। दिव्य घोड़ों से शोभित और हवा के समान वेग से जानेवाला वह रथ कृष्ण के बैठने से बहुत ही भला देख पड़ा। उस रथ पर इन्द्र-धनुष के समान चमकीली देवनिर्मित ध्वजा फहरा रही थी। वह ध्वजा इतनी ऊँची थी कि चार कोस से देख पड़ती थी। फिर श्रीकृष्ण ने गरुड़ को याद किया। स्मरण करते ही वे आ गये। मुँह फैलाकर, महाशब्द करनेवाले भूतगण के साथ, गरुड़ भी उस ध्वजा के ऊपर बैठ गये। हज़ारों किरणों से युक्त सूर्य जैसे दोपहर को ऐसे प्रचण्ड हो जाते हैं कि कोई उनकी ओर ताक नहीं सकता वैसा ही तेज उस रथ का हो गया। उस रथ पर की दिव्य ध्वजा न तो वृक्षों में अटकती थी और न शस्त्रों से काटी जा सकती थी। इस समय वह मनुष्यों को भी देख पड़ने लगी। वह दिव्य रथ पहले इन्द्र के पास था। इन्द्र से वसु ने पाया। वसु ने राजा बृहद्रथ को दिया। उनसे जरासन्ध को मिला। उसी दिव्य रथ पर भीमसेन और अर्जुन के साथ बैठकर कृष्णचन्द्र गिरिव्रज के पहाड़ी स्थान से निकलकर समतल भूमि में आये।

२०

वहाँ ब्राह्मण आदि नगरनिवासियों ने आकर विधिपूर्वक कृष्ण आदि का सत्कार और पूजन किया। बन्धन से छूटे हुए राजा लोग भी भक्तिपूर्वक कृष्ण की पूजा करके स्तुति करते हुए कहने लगे—हे देवकीनन्दन, आपने भीम और अर्जुन के साथ जो धर्म का पालन किया; जरासन्ध-रूपी घोर कुण्ड के बीच दुःख की कीचड़ में धँसे हुए राजाओं का उद्धार किया; से यह आपके

३०

लिए कुछ विचित्र बात नहीं। भगवन्, गिरिव्रज की पहाड़ी खोह में पड़े हुए हम लोगों का उद्धार करने से आपका उज्ज्वल यश और भी चमक उठा है। हे पुरुषसिंह, हम आपके आगे सिर झुकाये खड़े हैं। आज्ञा दीजिए, हम सेवक आपकी क्या सेवा करें। जो आज्ञा आप देंगे वह अत्यन्त कठिन होगी तो भी उसे हम अवश्य पूर्ण करेंगे।

वैशम्पायन कहते हैं—उन राजाओं को दिलासा देकर महामनस्वी कृष्णचन्द्र ने कहा कि राजा युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं। वे महात्मा इस धार्मिक कार्य को करके सम्राट् की पदवी प्राप्त करना चाहते हैं। मैं चाहता हूँ कि तुम लोग चलकर इस कार्य में उनकी सहायता करो। सब राजाओं ने कृष्ण की इस आज्ञा को सादर मान लिया। जरासन्ध का पुत्र बुद्धिमान् सहदेव भी कुल-पुरोहित और मन्त्रियों को आगे करके बड़ी नम्रता के साथ कृष्णचन्द्र की शरण में आया। उसने कृष्ण की और वीर पाण्डवों की पूजा की और अनेक रत्न आदि अर्पण किये। कृष्ण ने डरे हुए सहदेव को अभय देकर भेंट किये गये रत्नों को स्वीकार कर लिया। फिर श्रीकृष्ण की सलाह से भीम और अर्जुन ने सहदेव को विधिपूर्वक मगध देश की राजगद्दी देकर राज्याभिषेक कर दिया। कृष्ण की कृपा और राज्य पाकर सहदेव अपनी राजधानी में गया।

४०

इस प्रकार प्रबल प्रतापी जरासन्ध को मारकर, राजाओं को छुड़ाकर और वहाँ से अनेक बहुमूल्य दुर्लभ रत्न लेकर कृष्णचन्द्र, भीमसेन और अर्जुन लौटकर इन्द्रप्रस्थ में पहुँच गये। महाराज युधिष्ठिर से मिलकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए कृष्ण ने कहा—महाराज, बड़े भाग्य की बात है कि महाबली भीमसेन ने बाहुयुद्ध में प्रतापी राजा जरासन्ध को मार डाला और उसके यहाँ जितने राजा क़ैद थे उन्हें बन्धन से छुड़ा दिया। आपके सौभाग्य से भीम और अर्जुन दोनों भाई शत्रु को मारकर सकुशल घर लौट आये हैं; उनके शरीर में कहीं तनिक सा घाव भी नहीं हुआ।

शत्रुओं के लिए दुर्जय महावीर जरासन्ध के मरने का हाल सुनकर और कृष्ण के साथ अपने भाइयों को सकुशल लौट आये देखकर युधिष्ठिर को अपार आनन्द हुआ। उन्होंने

उचित रूप से कृष्ण की पूजा की और दोनों भाइयों को गले से लगाया। फिर युधिष्ठिर ने ५० जरासन्ध के यहाँ की क़ैद से छूटकर आये हुए राजाओं को, उनकी अवस्था के अनुसार, पूजा और सत्कार-द्वारा सन्तुष्ट करके अपने-अपने घर जाने की अनुमति दी। युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर वे राजा प्रसन्नता से रथों और वाहनों पर चढ़कर अपने-अपने राज्य को चल दिये। बुद्धिमान् श्रीकृष्ण भी इस प्रकार पाण्डवों के हाथ से महावीर शत्रु जरासन्ध का नाश कराकर, धर्मराज की अनुमति लेकर, कुन्ती-द्रौपदी-सुभद्रा-भीमसेन-अर्जुन-नकुल-सहदेव और पुरोहित धौम्य से मिलकर अपनी पुरी को चल दिये। अनेक रत्नों से सजा हुआ वह दिव्य रथ युधिष्ठिर ने कृष्ण को दे दिया। जाते समय भाइयों-सहित युधिष्ठिर ने कृष्ण की प्रदक्षिणा की। फिर पहियों की घरघराहट से दसों दिशाओं को

प्रतिध्वनित करते हुए भगवान् कृष्ण द्वारका पुरी को गये। इस प्रकार प्रबल प्रतापी जरासन्ध को मारकर बलिदान के लिए लाये गये राजाओं को छुटकारा दे देने से युधिष्ठिर की कीर्त्ति चारों ओर फैल गई।

हे भरतकुल-तिलक, अब भाइयों-सहित महाराज युधिष्ठिर द्रौपदी को प्रसन्न रखते हुए धर्म-अर्थ-काम का सञ्चय करने लगे। वे न्यायपूर्वक प्रजापालन करते हुए बड़े सुख से रहने लगे। ६०

दिग्विजयपर्व

पच्चीसवाँ अध्याय

पाण्डवों की दिग्विजय-यात्रा का संक्षिप्त वर्णन

वैशम्पायन कहते हैं—उत्तम धनुष, अक्षय तरकस, दिव्य रथ और ध्वजा मिलने से अधिक साहसी होकर अर्जुन ने राजा युधिष्ठिर से कहा—महाराज! धनुष, अस्त्र, श्रेष्ठ

शक्ति, सहायक, भूमि, यश और सेना, ये सब अपने दुर्लभ अभीष्ट मैं प्राप्त कर चुका हूँ। इन चीज़ों को पाकर अब मैं अपना कर्त्तव्य यही समझता हूँ कि राज्य का कोष बढ़ाऊँ। मैं इस समय दिग्विजय के लिए जाकर सब राजाओं से कर वसूल करूँगा। मैं शुभ मुहूर्त्त, शुभ तिथि और शुभ नक्षत्र में दिग्विजय के लिए उत्तर दिशा को जाऊँगा। अर्जुन के ये वचन सुनकर महाराज युधिष्ठिर ने स्नेहपूर्ण गम्भीर स्वर से कहा—भैया, अच्छी बात है। पूजनीय ब्राह्मणों से स्वस्त्ययन पाठ कराकर, उनके आशीर्वाद लेकर, शत्रुओं को दुखी और मित्रों को सुखी बनाते हुए तुम दिग्विजय करने जाओ। तुम अवश्य विजय प्राप्त करोगे और तुम्हारी प्रिय इच्छा पूरी होगी।

युधिष्ठिर के अनुमोदन करने पर महावीर अर्जुन अग्नि के दिये हुए दिव्य रथ पर बैठकर बहुत सी सेना साथ लेकर दिग्विजय के लिए उत्तर दिशा को चले। इसी प्रकार धर्मराज ने सत्कार करके भीमसेन, नकुल और सहदेव को भी अन्य दिशाओं के राजाओं को जीतने के लिए सेना और सामन्तों के साथ भेजा। अर्जुन ने उत्तर दिशा को, भीमसेन ने पूर्व दिशा को, सहदेव ने दक्षिण दिशा को और अस्त्र-विद्या के पण्डित नकुल ने पश्चिम दिशा को दिग्विजय में जीता। धर्मराज युधिष्ठिर अपनी राजधानी खाण्डवप्रस्थ में मन्त्रियों और ११ मित्रों के साथ श्रेष्ठ ऐश्वर्य का भोग करते हुए प्रजा का पालन करने लगे।

छब्बीसवाँ अध्याय

अर्जुन का भगदत्त से युद्ध

जनमेजय ने कहा—ब्रह्मन्, आप मेरे पूर्वपुरुषों के दिग्विजय का वृत्तान्त विस्तार के साथ कहिए। जगत्प्रसिद्ध पाण्डवों की वीरता का हाल मैं जितना सुनता हूँ उतना ही और सुनने को जी चाहता है। वैशम्पायन ने कहा—राजन्, चारों पाण्डव एक साथ दिग्विजय करने निकले

थे—एक साथ ही उन्होंने दिग्विजय किया था; पर मैं सबसे पहले अर्जुन के दिग्विजय का वृत्तान्त कहता हूँ। बाहुबल और अस्त्रविद्या में अद्वितीय अर्जुन ने दिग्विजय के लिए रवाना होकर पहले कुलिन्द देश के राजा को अपने वश में किया। वहाँ उन्हें कुछ बहुत कड़ाई से काम नहीं लेना पड़ा। इस प्रकार कुलिन्द, कालकूट और आनर्त्त देश को जीतकर, सेना-सहित राजा सुमण्डल को अपने अधीन करके, इन सबसे अर्जुन ने कर लिया। इन सुमण्डल आदि हारे हुए राजाओं को साथ लेकर अर्जुन शाकलद्वीप में गये। उन्होंने वहाँ के राजा प्रतिविन्ध्य को अपने अधीन बनाया। सप्तद्वीप के बीच शाकलद्वीप में जितने राजा थे उन सबसे अर्जुन को विकट लड़ाई लड़नी पड़ी। धर्मराज का प्रिय करने की इच्छा से अर्जुन ने उन सबको जीतकर अपने वश में किया। फिर उन सबको साथ लेकर अर्जुन ने प्राग्ज्योतिषपुर पर चढ़ाई की। यहाँ के राजा महाबली भगदत्त थे। उन्होंने किरात, चीन और समुद्रतट पर रहनेवाली अन्यान्य अनेक जातियों की सेना को साथ लेकर आठ दिन तक अर्जुन से युद्ध किया। तब भी अर्जुन को न थकते देखकर भगदत्त हँसते हुए उनके पास आये और कहने लगे—हे महावीर, तुम इन्द्र के पुत्र हो, इस कारण युद्ध में ऐसा बल और पराक्रम प्रकट करना तुम्हारे योग्य ही है। मैं इन्द्र का सखा हूँ और युद्ध-कला में इन्द्र से कम नहीं हूँ; पर सच तो यह है कि मैं भी तुम्हारे सामने युद्ध में टिक नहीं सका। पुत्र, तुम अपना प्रयोजन कहो, मैं वह करने के लिए तैयार हूँ। तुम जो कहोगे उसमें मुझे नाहीं न होगी। १०

अर्जुन ने कहा—कुरुवंश में श्रेष्ठ महाराज युधिष्ठिर धर्मात्मा, दृढ़व्रत, सत्यवादी और याज्ञिक हैं। वे राजसूय यज्ञ करके औरों के लिए दुर्लभ सम्राट् का पद प्राप्त करना चाहते हैं। मैं उन्हीं की आज्ञा से दिग्विजय करने निकला हूँ। उन्हें आप 'कर' दीजिए। आप मेरे पिता के सखा हैं और मुझ पर प्रसन्न भी हुए हैं। मैं आपको आज्ञा नहीं देता, आप अपनी ख़ुशी से 'कर' देकर मुझे अनुगृहीत कीजिए। भगदत्त ने कहा—हे कुन्तीनन्दन, तुमको मैं जैसे स्नेहपात्र समझता हूँ वैसे ही राजा युधिष्ठिर को भी। मैं अवश्य 'कर' दूँगा। इसके सिवा और बताओ, मैं क्या तुम्हारा प्रिय करूँ? १६

सत्ताईसवाँ अध्याय

अर्जुन का अनेक देशों को जीतना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाबाहु अर्जुन ने प्रसन्न होकर भगदत्त से कहा—इतना करने से ही आप मानों हमारा सब कुछ प्रिय कर चुके। इस प्रकार भगदत्त को जीतकर वहाँ से अर्जुन उत्तर दिशा में आगे बढ़े। उन्होंने अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि और उपगिरि आदि सब स्थानों

को जीता। पहाड़ी स्थान के भीतर, बाहर और आसपास रहनेवाले सब राजाओं को जीतकर, उनसे धन लेकर और उन्हें अपने साथ लेकर अर्जुन मारू बाजे बजाते, रथों की घरघराहट और हाथियों की चिंघाड़ से पृथ्वी कँपाते हुए उलूक देश के राजा बृहन्त के पास गये। राजा बृहन्त ने चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर अर्जुन से घोर संग्राम किया; किन्तु वे अर्जुन के पराक्रम को नहीं सह सके। तब उनको दुर्जय समझकर बृहन्त ने युद्ध बन्द कर दिया। अनेक रत्न लेकर वे अर्जुन के पास आये। वहाँ से बृहन्त को साथ लेकर अर्जुन ने सेनाबिन्दु राजा पर चढ़ाई १० की। उसे गद्दी से उतारकर अर्जुन ने उत्तर उलूक देश के मोदापुर, वामदेव, सुदामा, सुसंकुल आदि राजाओं को सहज ही अपने वश में कर लिया। उलूक देश में ही ठहरकर अर्जुन ने, केवल अपने वीरों को भेजकर उन्हीं के द्वारा, पञ्चगण नाम के देशों को जीत लिया। सेनाबिन्दु राजा के देवप्रस्थ नामक नगर में ही रहकर आसपास के अन्य देशों को जीत चुकने के बाद अर्जुन ने पुरुवंशी विष्वगश्व राजा पर चढ़ाई की। विष्वगश्व के पास महावीर पहाड़ी लोगों की सेना थी। अर्जुन ने उन पहाड़ियों को और विष्वगश्व को भी जीत लिया। फिर पहाड़ों पर रहनेवाले, उत्सवसंकेत नाम की लुटेरी म्लेच्छ जाति के, सात दलों को अर्जुन ने जीता।

अब महावीर अर्जुन काश्मीर देश में पहुँचे। वहाँ उन्होंने दस सामन्त राजाओं सहित लोहित नाम के राजा को परास्त किया। आगे बढ़ने पर त्रिगर्त, दारु और कोकनद आदि देशों के अनेक क्षत्रिय पहले से ही बहुत रत्न-धन लेकर अर्जुन के पास आये; उन्होंने बिना युद्ध के ही आत्म-समर्पण कर दिया। फिर अर्जुन ने अभिसारी नगरी के राजा को जीता; उरगावासी और रोचमान नाम के राजाओं को भी परास्त किया। इन्द्र के पुत्र अर्जुन ने विचित्र शस्त्रों से २० सुरक्षित सिंहपुर के राजा को जीता। आगे बढ़कर सेना-सहित पाण्डवश्रेष्ठ अर्जुन ने सुह्म और चोल देश के राजाओं को अपने वश में किया। श्रेष्ठ योद्धा धनञ्जय ने घोर संग्राम करके महाबली बाह्लीक देश के राजाओं को परास्त किया। चुनी हुई सेना साथ लेकर अर्जुन ने दरद और काम्बोज के राजाओं को, पूर्व-उत्तर दिशा में रहनेवाले म्लेच्छों को तथा जङ्गली जातियों को हराकर अपने वश में कर लिया। फिर उन्होंने लोह, परमकाम्बोज, ऋषिक और उत्तर आदि देशों के मिलकर लड़नेवाले राजाओं को भी अपने पराक्रम से जीत लिया। ऋषिक देश में तारकासुर-संग्राम के समान बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ। युद्ध में ऋषिक देश के राजाओं को जीतकर अर्जुन ने तोते के रङ्ग के हरे आठ घोड़े 'कर' में प्राप्त किये। उत्तर आदि अन्य देशों को जीतने पर भी उपहार में अर्जुन को मोर के रङ्ग के, बहुत तेज़ जानेवाले, बहुत से बढ़िया घोड़े मिले। अर्जुन ने युद्ध में हिमवान् और निष्कुट आदि पहाड़ी स्थानों को जीतकर श्वेत पर्वत २६ पर आकर अपनी सेना का पड़ाव डाल दिया।

अट्ठाईसवाँ अध्याय

किम्पुरुषखण्ड को जीतना

वैशम्पायन कहते हैं—महावीर अर्जुन श्वेत गिरि को लाँघकर किंपुरुष देश में पहुँचे। वहाँ महाराज द्रुम के पुत्र राज्य करते थे। वहाँ के घोर संग्राम में अनेक वीर क्षत्रियों का विनाश हुआ। दारुण युद्ध करने के पश्चात् वे अर्जुन के अधीन हो गये। उन्होंने 'कर' देना स्वीकार कर लिया। फिर यक्षों के द्वारा सुरक्षित हाटक नाम के स्थान को सामनीति से जीतकर विजयी अर्जुन ने मनोरम मानस-सरोवर पर पहुँचकर अनेक ऋषि-कन्याओं के दर्शन किये। वहाँ से हाटक देश के आसपास गन्धर्वों के सुरक्षित देशों को जीता। गन्धर्वों से उन्हें 'कर' के रूप में तित्तिरि, कल्माष, मण्डूक आदि नामोंवाले श्रेष्ठ घोड़े मिले।

जय की इच्छा रखनेवाले अर्जुन वहाँ से उत्तर-हरिवर्ष को गये। उस देश के भीतर पैर रखते ही महावीर्य, महाकाय, महाबली, प्रसन्नमुख द्वारपालों ने अर्जुन के पास आकर कहा—हे अर्जुन, इस देश में घुसने का व्यर्थ उद्योग क्यों करते हो? इस राज्य को तुम किसी तरह नहीं जीत सकते। लौट जाओ, इस स्थान में मनुष्य नहीं आ सकते। यहाँ तक तुम आ गये, इतना ही बहुत है। इस गन्धर्वनगर में प्रवेश करनेवाला मनुष्य जीता नहीं रह सकता। तुम्हारा साहस देखकर हम तुमसे प्रसन्न हैं। तुम यहाँ तक दिग्विजय कर चुके, यही काफ़ी हो गया। यहाँ पर जीतने की कोई चीज़ नहीं है। यह उत्तर-कुरु देश है। यहाँ युद्ध नहीं हो सकता। यहाँ प्रवेश करने पर भी तुम मनुष्य-दृष्टि से कुछ न देख सकोगे। मनुष्य यहाँ की कोई चीज़ नहीं देख सकता। हे पुरुषसिंह, जो और कुछ यहाँ तुम्हारा कर्त्तव्य हो तो हमसे कहो, हम तुम्हारे कहने से उसे पूरा कर देंगे।

१०

राजन्, तब अर्जुन ने हँसकर उनसे कहा—मैं श्रीमान् धर्मराज युधिष्ठिर का अखण्ड साम्राज्य स्थापित करने की इच्छा से दिग्विजय करने निकला हूँ। तुम्हारे इस स्थान में प्रवेश करने

का यदि मनुष्यों को अधिकार नहीं है तो तुम लोग महाराज युधिष्ठिर के लिए केवल कुछ 'कर' दे दो। मैं लौट जाऊँगा। द्वारपालों ने अर्जुन पर सन्तुष्ट होकर दिव्य वस्त्र, रेशमी और ऊनी कपड़े, बढ़िया गहने आदि सामग्री 'कर' के रूप में उन्हें दी। पुरुषसिंह अर्जुन इस प्रकार उत्तर दिशा भर जीतकर, म्लेच्छों और क्षत्रियों से अनेक संग्राम करके, सब राजाओं से 'कर' वसूल करते और फिर उन्हें उनका राज्य देते हुए, बहुत सी चतुरङ्गिणी सेना साथ में लेकर श्रेष्ठ पुरी इन्द्रप्रस्थ को लौट आये।

तीतर, मोर और तोते के रङ्ग के विचित्र वायुगामी घोड़े, रत्न, धन आदि सब लाकर अर्जुन ने
२१ युधिष्ठिर को अर्पण कर दिया। फिर उनकी आज्ञा लेकर वे अपने महलों को गये।

उनतीसवाँ अध्याय

भीमसेन के दिग्विजय का वर्णन

वैशम्पायन कहते हैं—दिग्विजय के लिए जिस समय अर्जुन उत्तर दिशा को गये उसी समय भीम-पराक्रमी भीमसेन, युधिष्ठिर की आज्ञा से, अमित चतुरङ्गिणी सेना लेकर पूर्व दिशा को गये। वे पहले पाञ्चाल देश की महानगरी में गये। अनेक उपायों से अपने सम्बन्धी पाञ्चालराज को अनुगत बनाकर, उनसे कर लेकर, वे गण्डक और विदेह देश में पहुँचे। थोड़े ही समय में उन्हें अधीन बनाकर भीमसेन ने दशार्ण देश पर चढ़ाई की। उस देश के राजा सुधर्मा ने भीमसेन से बेढब बाहु-युद्ध किया। उसके बल से सन्तुष्ट भीमसेन ने उसे हराकर अपनी सेना का एक प्रधान सेनापति बना लिया। असङ्ख्य सेना के बोझ से पृथ्वी को मानो कँपाते हुए भीमसेन ने अश्वमेध यज्ञ करनेवाले पराक्रमी रोचमान राजा को, उसके अनुचरों और सैनिकों-सहित, सहज ही हराकर उस स्थान की पूर्व सीमा के और देशों को भी अपने वश में कर लिया। वहाँ से वे दक्षिण ओर स्थित सुविशाल पुलिन्द देश में आये; वहाँ
१० के राजा सुकुमार और सुमित्र को उन्होंने जीता। इसके बाद महावीर भीमसेन चेदिदेश के

महापराक्रमी राजा शिशुपाल के पास पहुँचे। धर्मराज की आज्ञा से दिग्विजय के लिए निकले हुए भीमसेन के इरादे को जानकर शिशुपाल पहले से ही उन्हें लेने के लिए पहुँच गया। कुरु-वंश और चेदिवंश में परस्पर नातेदारी थी। भीमसेन और शिशुपाल ने मिलकर परस्पर कुशल पूछी। अपना राज्य-धन सब अर्पण करके शिशुपाल ने भीमसेन से उनकी इस यात्रा का कारण पूछा। उन्होंने धर्मराज के विचार का हाल कहकर शिशुपाल से 'कर' देने के लिए कहा। शिशुपाल ने उन्हें सादर 'कर' दिया। भीमसेन तेरह दिन चेदिराज्य में रहकर, शिशुपाल के किये आदर-सत्कार से प्रसन्न होकर, अपनी सेना-सहित आगे बढ़े। १६

तीसवाँ अध्याय

पूर्व दिशा जीतकर भीमसेन का लौट आना

वैशम्पायन कहते हैं—फिर भीमसेन ने कुमार देश में जाकर श्रेणिमान् राजा को हराया; कोशल देश के राजा बृहद्बल को भी परास्त किया। फिर अयोध्या के राजा धर्मज्ञ, याज्ञिक, महाबली दीर्घयज्ञ नाम के राजा को उन्होंने सहज में ही अपने अधीन कर लिया। आगे चल-कर गोपालकच्छ, उत्तर कोशल और मल्ल देश के राजाओं को उन्होंने परास्त किया। इसके बाद हिमवान् के निकटवर्त्ती जलोद्भव देश में पहुँचकर उन्होंने थोड़े ही समय में वहाँ के सब राजाओं से कर वसूल किया। इस प्रकार बहुत से देशों को जीतकर भीमसेन ने अपना साम्राज्य फैलाया।

फिर महाबली पाण्डुपुत्र ने सम्पूर्ण भल्लाट देश को और शुक्तिमान् पर्वत के निवासी पुरुषों को जीता। सुपार्श्व देश के महाराज क्रथ को बलपूर्वक युद्ध में परास्त करके भीमसेन ने, किसी से युद्ध में विमुख न होनेवाले, काशी के राजा सुबाहु को भी अपने अधीन बना लिया। वहाँ से आगे बढ़कर पाण्डवश्रेष्ठ भीमसेन ने मत्स्य, महाबली मलद, अनघ, अभय आदि देशों के राजाओं से 'कर' लेकर पशुभूमि को अपने अधिकार में कर लिया। फिर मदधार, महीधर, सोमधेय आदि को जीतने के उपरान्त भीमसेन उत्तरमुख को घूम पड़े। उधर उन्होंने वत्सभूमि, १० भर्गराज, निषादपति, मणिमान् आदि बहुत से राजाओं को अपने अनुगत बनाया। वहाँ से दक्षिण मल्ल देश और भोगवान् पर्वत के राजाओं को सहज में ही परास्त करते हुए वे आगे बढ़े। शर्मक और वर्मक राजा आप ही उनके अधीन हो गये। पुरुषसिंह भीमसेन ने विदेह देश के राजा जनक से अनायास ही 'कर' पाकर उन्हें अपने अनुगत बनाया। आगे बढ़कर उन्होंने कौशलपूर्वक शक और बर्बर जातियों को अपने अधीन किया। विदेह देश में ही ठहरकर भीम-सेन ने इन्द्रपर्वत के पास रहनेवाले किरात जाति के सात राजाओं को जीत लिया। वहाँ से सुह्म और प्रसुह्म देश के राजाओं को उनके सहायकों-सहित जीतकर महाबली भीमसेन मगध

देश में पहुँचे। वहाँ दण्ड, दण्डधार आदि राजाओं को जीतकर उनको अपने साथ लिये हुए भीमसेन गिरिव्रज में पहुँचे। वहाँ जरासन्ध के पुत्र सहदेव को ढाढ़स बँधाकर, और उसे करद राजा बनाकर, अधीनस्थ सब राजाओं को साथ लिये हुए भीमसेन ने अङ्गदेश के राजा कर्ण के ऊपर चढ़ाई कर दी। चतुरङ्गिणी सेना के बोझ से पृथ्वी को कँपाते हुए बलवान् भीमसेन ने युद्ध में कर्ण को भी जीतकर वश में कर लिया। फिर उन्होंने कई प्रबल पहाड़ी राजाओं को परास्त २० किया। आगे बढ़कर मोदा-पर्वत पर जाकर उन्होंने वहाँ के बहुत ही बली राजा को बाहुयुद्ध में मार डाला। अब पुण्ड्र-नरेश वासुदेव, कौशिकीकच्छ के राजा, वङ्गदेश के समुद्रसेन और चन्द्रसेन, ताम्रलिप्त-नरेश, कर्वट-नरेश, सुह्माधिप और समुद्रतट के निवासी अनेक म्लेच्छों को जीतते हुए भीमसेन लौहित्यदेश में पहुँचे।

इस प्रकार सब देशों को जीतते आ रहे भीमसेन ने समुद्रतट के सब म्लेच्छ राजाओं से 'कर' के रूप में विविध विचित्र रत्न, चन्दन, अगुरु, कपड़े, मणि, मोती, कम्बल, सोना, चाँदी, मूँगे आदि बहुत से पदार्थ प्राप्त किये। पूर्व दिशा को अच्छी तरह जीतकर परमपराक्रमी ३० भीमसेन इन्द्रप्रस्थ को लौट आये। उन्होंने वह ढेरों धन धर्मराज के अर्पण कर दिया।

इकतीसवाँ अध्याय

सहदेव के दिग्विजय का वर्णन

वैशम्पायन कहते हैं—हे भरतकुल-तिलक, भीमसेन और अर्जुन के साथ ही धर्मराज ने सत्कारपूर्वक आज्ञा देकर चतुरङ्गिणी सेना के साथ दक्षिण दिशा जीतने के लिए सहदेव को भेजा था। बली सहदेव ने पहले सम्पूर्ण शूरसेन देश को जीतकर अपने अधीन किया, फिर मत्स्यराज को बलपूर्वक युद्ध में परास्त किया। वहाँ दन्तवक्त्र, सुकुमार, सुमित्र आदि राजाओं ने सहज ही अधीनता स्वीकार करके उन्हें कर दिया। मत्स्यदेश के उक्त सब राजाओं को जीतकर सहदेव ने चोरदेश, निषादभूमि, पर्वतश्रेष्ठ गोशृङ्ग आदि स्थानों के राजाओं को और राजा श्रेणिमान् को अपने पराक्रम से वशवर्त्ती बनाया। वहाँ से नरराष्ट्र को जीतकर वे चटपट राजा कुन्तिभोज के देश में पहुँचे। कुन्तिभोज ने प्रसन्नतापूर्वक कर देकर उनकी अधीनता स्वीकार कर ली। फिर चर्मण्वती नदी के किनारे जम्भक राजा के पुत्र के साथ सहदेव का घोर संग्राम हुआ। पहले के वैरी कृष्णचन्द्र ने पहले ही युद्ध करके उसका बल घटा दिया था। उसे जीतकर सहदेव और आगे दक्षिण दिशा में बढ़े। सेक और अपरसेक देशों के राजाओं को जीतकर उनसे 'कर' में सहदेव ने अमित धन और असङ्ख्य श्रेष्ठ रत्न प्राप्त किये।

फिर उन सबको साथ लेकर वे नर्मदा नदी के तट पर पहुँचे। अवन्ती देश के राजा बड़े ही वीर विन्द और अनुविन्द ने बहुत सी सेना लेकर सहदेव का सामना किया। उन्हें भी जीत- १० कर उनसे बहुत से रत्न लेकर सहदेव भोजकट नगर को गये। वहाँ दो दिन युद्ध करके उन्होंने दुर्द्धर्ष भीष्मक राजा को परास्त किया; वहाँ से कोशल-नरेश, वेणा नदी की तटभूमि के राजा और कान्तारक लोगों को जीता। फिर प्राकोटक, नाटकेय, हेरम्बक, मारुध आदि राजाओं को वशवर्त्ती बनाकर सहदेव ने बलपूर्वक रम्यग्राम पर चढ़ाई की। वहाँ भी विजय पाकर वे आगे बढ़े और नाचीन, अर्वुक आदि जङ्गली राजाओं को युद्ध में हराकर उन्होंने अपने वश में कर लिया; आगे चलकर राजा वाताधिप और पुलिन्द लोगों को वश में किया। फिर एक दिन घोर युद्ध करके पाण्ड्य देश के राजा को अधीन बनाकर सहदेव दक्षिण दिशा में और आगे बढ़े। वहाँ से वे लोकप्रसिद्ध किष्किन्धा गुहा में पहुँचे। वहाँ वानरों के राजा मैन्द और द्विविद के साथ सात दिन तक उन्होंने घोर युद्ध किया; पर उन्हें किसी तरह हरा न सके। सहदेव का शौर्य, वीर्य, साहस आदि देखकर वे वानर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सहदेव से कहा—हे पाण्डुनन्दन, हम महाराज युधिष्ठिर के काम में विघ्न डालना नहीं चाहते। हम तुम्हें 'कर' के रूप में बहुत से श्रेष्ठ रत्न देते हैं; इन्हें लेकर तुम आगे जाओ। उनसे रत्न लेकर सहदेव आगे २० बढ़कर माहिष्मतीपुरी में पहुँचे। उस नगरी के राजा पराक्रमी नील के साथ सहदेव को घमासान युद्ध करना पड़ा। वहाँ के घोर युद्ध में असंख्य सेना का नाश हो गया। प्राणों के लिए संशयजनक उस युद्ध में भगवान् अग्नि राजा नील के सहायक थे। अग्नि का कोप होने से सहदेव की सेना के हाथी, घोड़े, रथ, पैदल और उनके कवच जलते हुए चारों ओर दिखाई पड़ने लगे। यह देखकर सहदेव बहुत घबराये। बहुत सोचने पर भी उस समय उन्हें इस आपत्ति से बचने का कोई उपाय न देख पड़ा।

जनमेजय ने पूछा—भगवन्, सहदेव तो यज्ञ के लिए यह युद्ध कर रहे थे; फिर अग्नि ने क्यों क्रुद्ध होकर युद्ध-भूमि में उनका विरोध किया? वैशम्पायन ने कहा—सुना जाता है कि राजा नील के एक परम रूपवती सर्वाङ्ग-सुन्दरी कन्या थी। वह पिता के अग्निहोत्र-भवन में अग्नि को प्रज्वलित करने के लिए, पिता के पास, सदा बनी रहती थी। भगवान् अग्नि उसके रूप-लावण्य पर ऐसे रीझे हुए थे कि पङ्खे आदि से लाख धौंकने पर भी, राजकुमारी के मनोहर ओठों की फूँक के बिना, कभी प्रज्वलित न होते थे। क्रमशः अग्निदेव उस कमल-नयनी राजकन्या के ऊपर ऐसे लट्टू हो गये कि ब्राह्मण का रूप धारण कर उस कन्या से इच्छापूर्वक रमण करने लगे। जब अग्निदेव राजा का अनादर करके उनके यहाँ और अन्य नगरवासियों के यहाँ भी जाकर मनमाना आचरण करने लगे और राजा को यह ख़बर मिली तब धार्मिक ३० राजा ने कुपित होकर ब्राह्मण-रूपधारी अग्नि को, शास्त्र-विधि के अनुसार, दण्ड देने का उद्योग

किया। इससे रुष्ट होकर अग्निदेव प्रलय काल के समान भयानक रूप रखकर राजा के राज्य में प्रज्वलित हो उठे। यह अद्‌भुत घटना देखकर राजा विस्मित होकर डर गये। वे अग्नि की शरण में आये और साष्टाङ्ग प्रणाम करके उन्हें शान्त करने की चेष्टा करने लगे। यथासमय शुभ मुहूर्त्त में राजा ने ब्राह्मण-रूपी अग्नि के साथ राजकुमारी का विवाह कर दिया। राजा नील की बेटी को स्त्री-रूप से पाकर अग्निदेव बहुत प्रसन्न और शान्त हुए। राजा से अग्नि ने वरदान माँगने के लिए कहा। उनको प्रसन्न देखकर राजा ने यह वरदान माँगा कि कोई भी शत्रु मुझ पर चढ़ाई करके मेरा कुछ अनिष्ट न कर सके—किसी शत्रु से मुझे और मेरी सेना को कोई डर न हो। तथास्तु कहकर अग्निदेव अन्तर्द्धान हो गये। राजन्, तब से जो कोई राजा बिना जाने-बूझे नील राजा की माहिष्मती नगरी पर चढ़ाई करता था तो अग्निदेव प्रचण्ड होकर उसकी सेना को भस्म करने लगते थे। [इसी कारण जय की इच्छा रखनेवाला कोई राजा माहिष्मती पुरी पर चढ़ाई करने की हिम्मत नहीं करता था।] नील राजा की कन्या से अग्नि का ब्याह हो चुकने पर माहिष्मती पुरी की स्त्रियाँ, अग्नि के वरदान से, स्वेच्छाचारिणी हो गईं। वे विना रोक-टोक के स्वेच्छा-विहार करती हैं। राजा लोग अग्नि के डर से तब से माहिष्मती पुरी की ओर आँख उठाकर देखने की भी हिम्मत नहीं कर सकते।

[यह उपाख्यान समाप्त करके वैशम्पायन ने कहा—] महाराज, अपनी सेना को अग्नि के डर से पीड़ित और आग से घिरी हुई देखकर सहदेव तनिक भी विचलित नहीं हुए; पहाड़ की तरह अटल बने रहे। सब वृत्तान्त जानकर स्नान-आचमन आदि से पवित्र होकर वे विनीत
४० भाव से अग्नि की स्तुति करने लगे।

"हे कृष्णवर्त्मा अग्निदेव, यह दिग्विजय का उद्योग—यज्ञ करके—आपकी ही आराधना के लिए किया जा रहा है। आप देवताओं के पवित्र मुख हैं। यज्ञ भी आपका ही रूप है। पवित्र करनेवाले होने के कारण आप 'पावक' कहाते हैं। देवताओं को उनका भाग पहुँचाने के कारण आपको 'हव्यवाहन' कहते हैं। वेद आप ही (यज्ञ) के लिए उत्पन्न हुए हैं, इसी से आपका नाम 'जातवेदा' है। आपको चित्रभानु, सुरेश, अनल, विभावसु, आकाश को स्पर्श करनेवाला, हुताशन, ज्वलन, शिखी, वैश्वानर, पिंगेश, प्लवङ्ग, भूरितेजा, कार्त्तिकेय कुमार का उत्पत्तिस्थान, भगवान् रुद्रगर्भ और हिरण्यरेता आदि नामों से लोग पूजते हैं। मुझे आप अभि-

रूप से तेज, वायुरूप से प्राण, पृथ्वीरूप से बल और जलरूप से कल्याण दीजिए। भगवन्, जल की उत्पत्ति आपसे ही हुई है। आप महासत्त्व और श्रेष्ठ तत्त्व हैं। आप देवताओं में श्रेष्ठ, देवताओं का मुख और पवित्ररूप हैं। आप सत्य के द्वारा मुझे पवित्र कीजिए। ऋषि, ब्राह्मण, देवता और असुर आदि सब लोग नित्य हवन करके आपकी आराधना करते हैं। आप सत्य के द्वारा मुझे पवित्र कीजिए। धूमकेतु, शिखी, पापनाशक, वायु से उत्पन्न, सब प्राणियों में नित्य स्थित आदि नामों और गुणों से सब लोग आपकी स्तुति करते हैं। कृपापूर्वक सत्य के द्वारा आप मुझे पवित्र कीजिए। भगवन्, प्रसन्नता और पवित्रता के साथ मैं आपकी स्तुति करता हूँ। कृपा कर आप मुझे तुष्टि, पुष्टि, श्रुति और प्रीति प्रदान कीजिए।"

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, जो कोई प्रीति और भक्ति के साथ इस अग्निदेव की स्तुति को पढ़ता हुआ हवन करता है वह समृद्धियुक्त होकर सब पापों से छुटकारा पा जाता है। ५०

हे जनमेजय, माद्री के बेटे सहदेव ने यों स्तुति करके अग्निदेव से कहा—हे यज्ञ-निर्वाहक अग्नि देव, महाराज युधिष्ठिर के यज्ञ में विघ्न डालना आपको उचित नहीं।

पुरुषसिंह सहदेव कुशासन विछाकर डरी और घबराई हुई अपनी सेना के आगे अग्नि के निकट ही बैठ गये। समुद्र का जल जैसे अपने किनारों की भूमि से आगे नहीं बढ़ता वैसे ही सहदेव को लाँघकर सेना के बीच अग्नि ने प्रवेश नहीं किया। सहदेव के नम्रतापूर्ण स्तुति-वाक्यों से अग्निदेव बहुत प्रसन्न हुए। वे सहदेव के पास आकर कहने लगे—हे कुरुनन्दन, उठो-उठो। मैंने यह तुम्हारी परीक्षा ली थी। मैं तुम्हारे और धर्मराज के अभिप्राय को अच्छी तरह जानता हूँ; परन्तु मैं वरदान दे चुका हूँ कि जब तक राजा नील के वंशधरों का राज्य रहेगा तब तक सब तरह इस नगरी की रक्षा करूँगा, तथापि तुम्हारा मनोरथ मैं अवश्य पूरा करूँगा।

सहदेव ने आसन से उठकर हाथ जोड़कर अग्नि को प्रणाम किया और प्रसन्नतापूर्वक उनकी पूजा की। अग्नि के शान्त हो जाने पर, उनकी आज्ञा के अनुसार, राजा नील ने सहदेव की अधीनता स्वीकार कर ली। वे सहदेव से आकर मिले। भेंट में अनेक रत्न और धन देकर उन्होंने वीरश्रेष्ठ सहदेव की पूजा की। सहदेव विजय पाकर और आगे बढ़े। दक्षिण दिशा में स्थित त्रिपुर-राज्य में पहुँचकर वहाँ के परम पराक्रमी राजा को उन्होंने अपने अधीन किया। फिर पैरवेश्वर को जीतकर सुराष्ट्र देश के राजा कौशिकाचार्य आकृति को उन्होंने बड़े युद्ध के उपरान्त अपने अधीन किया। सुराष्ट्र देश में ही ठहरकर सहदेव ने भोजकटपुर में स्थित रुक्मी और परमधार्मिक, इन्द्र के सखा, धर्मात्मा भीष्मक के पास दूत भेजे। अपने पुत्र रुक्मी-सहित भीष्मक ने प्रसन्नतापूर्वक युधिष्ठिर की अधीनता स्वीकार कर ली और 'कर' के रूप में अनेक श्रेष्ठ रत्न अर्पण किये। उनके यों अधीनता स्वीकार कर लेने का कारण यह भी था कि उनकी कन्या रुक्मिणी वासुदेव को ब्याही थी। ६०

यहाँ से आगे बढ़कर शूर्पारक, तालाकट, दण्डक आदि के पास जाकर उन्हें महाबली सहदेव ने अपने अधीन बनाया। फिर समुद्र के टापुओं में और किनारे पर रहनेवाले म्लेच्छ राजाओं को, मनुष्य-मांस खानेवाले निषादों को और कर्ण-प्रावर्ण, कालमुख आदि मनुष्यरूप-धारी राक्षसों को भी जीतकर उन्होंने वश में किया। सम्पूर्ण कोलगिरि, सुरभीपट्टन, ताम्रद्वीप, रामपर्वत आदि स्थानों पर अधिकार करते हुए सहदेव ने तिमिङ्गिल नाम के राजा को जीता और उससे 'कर' लिया। फिर दूतों को ही भेजकर एक-पाद पुरुषों, वनवासी केरल जाति के लोगों, सञ्जयन्ती नगरी के राजा और पाषण्ड देश तथा करहाटक देश के राजा को सहदेव ने अपने ७० अनुगत बना लिया; पाण्ड्य, द्रविड़, उड्र-केरल, अन्ध्र, तालवन, कलिङ्ग, उष्ट्रकर्णिक, रमणीय आटवी पुरी और यवनों की नगरी में दूत भेजकर उनसे भी अनायास कर ले लिया। समुद्र-तट के कच्छ देश में पहुँचकर सहदेव ने रावण के छोटे भाई विभीषण के पास लङ्कापुरी में दूत भेजे। महात्मा विभीषण ने प्रसन्नता-पूर्वक युधिष्ठिर के शासन को स्वीकार कर लिया और 'कर' के रूप में अनेक अमूल्य रत्न, चन्दन और अगुरु की सुगन्धित लकड़ियाँ तथा बढ़िया गहने एवं कपड़े भेजकर सहदेव का सत्कार किया। [विभीषण के यों सहज में अधीन हो जाने को सहदेव ने कृष्णचन्द्र की कृपा का फल समझा।] महाराज, पराक्रमी सहदेव इस प्रकार वीरता और विनय के द्वारा दक्षिण दिशा के सब राजाओं को जीतकर इन्द्रप्रस्थ को लौट आये। वहाँ आकर जय के द्वारा मिला हुआ सब अपरिमित धन और श्रेष्ठ सामग्री उन्होंने धर्मराज को अर्पण कर दी। धर्मराज ने प्रसन्न ७८ होकर उनका उचित सत्कार किया। इसके उपरान्त सहदेव अपने भवन को गये।

बत्तीसवाँ अध्याय

नकुल के दिग्विजय का वर्णन

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, अब मैं नकुल के दिग्विजय का वर्णन करता हूँ। एक बार वासुदेव कृष्ण पश्चिम दिशा के राजाओं को जीत चुके थे। खाण्डवप्रस्थ से निकलकर बहुत सी सेना साथ लिये हुए नकुल उसी पश्चिम दिशा को चले। योद्धाओं के सिंहनाद और गरजने के शब्द से तथा रथों के पहियों की घरघराहट से पृथ्वी मानों काँप उठी। वे पहले बहुत धन-धान्य से पूर्ण, रमणीय, गाय आदि उपयोगी पशुओं से सम्पन्न और भगवान् कार्त्तिकेय को प्रिय रोहीतक देश में पहुँचे। वहाँ बड़े ही शूर-वीर मत्तमयूरजाति के लोगों से नकुल का घोर युद्ध हुआ। उन लोगों को हराकर नकुल ने मरुभूमि के राजाओं को सोलहों आने अपने अधीन बनाया; फिर शैरीष, महेत्थ आदि राजाओं को अपने अधीन करके उनसे 'कर' लिया। आगे बढ़ने पर राजर्षि आक्रोश के साथ उन्हें घोर युद्ध करना पड़ा। उनसे भी

दिग्विजयी नकुल युधिष्ठिर के पास पहुँचे ।—पृष्ठ ४८१
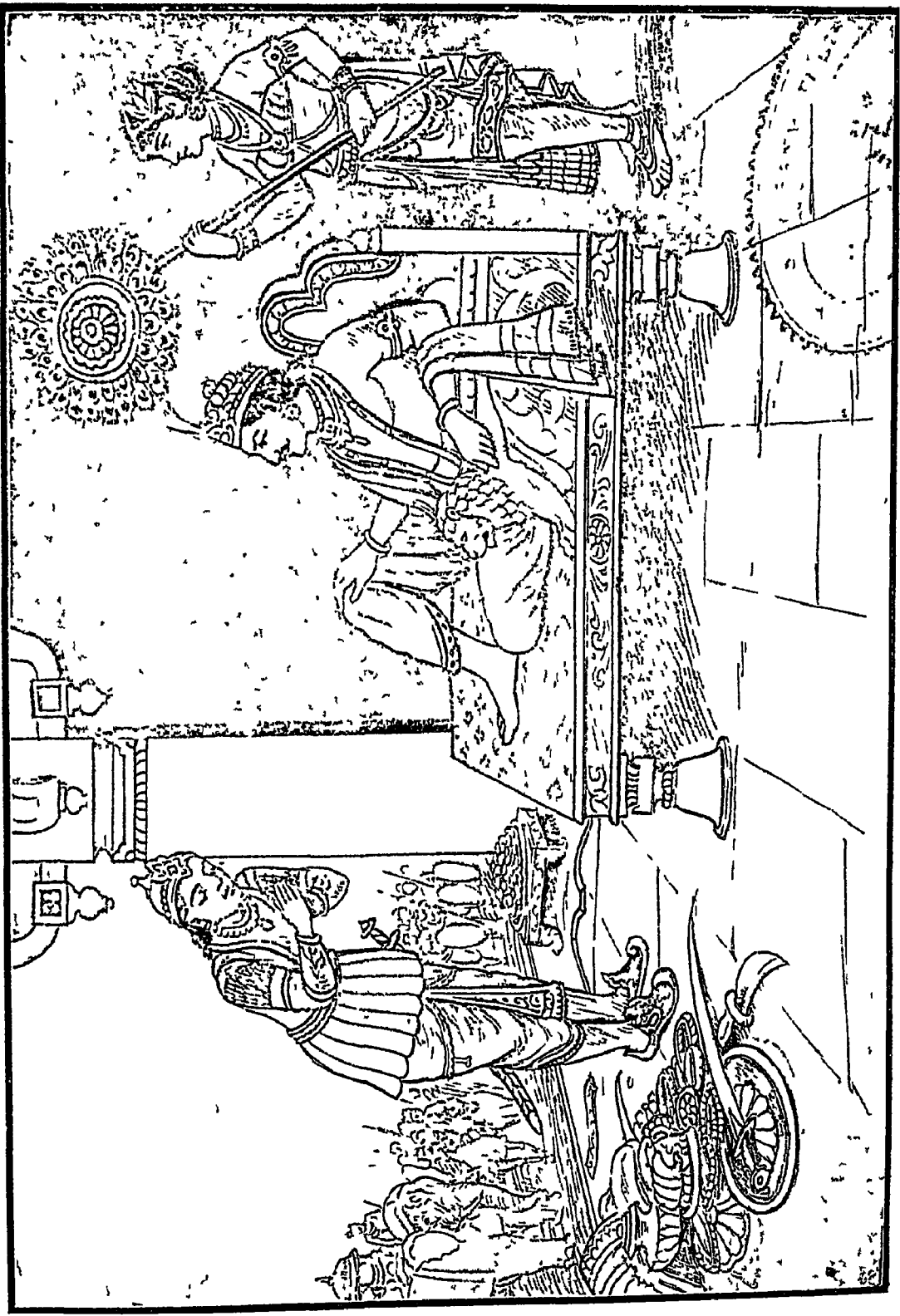
अपने कोष और भंडार को धन-रत्न आदि सामग्रियों से ठसाठस भरा हुआ देख कर युधिष्ठिर ने राज-सूय-यज्ञ की दीक्षा लेने का संकल्प किया।—पृष्ठ ९८२

'कर' लेकर नकुल ने दशार्ण, शिवि, त्रिगर्त्त, अम्बष्ठ, मालव, पञ्चकर्पट, मध्यमक क्षत्रियों और वाटधान ब्राह्मणों को जीतकर उनसे 'कर' लिया। फिर नकुल ने पुष्कर वन में पहुँचकर उत्सवसङ्केत नाम की म्लेच्छ जातियों को परास्त किया। समुद्रतट के निवासी महाबली ग्रामणीय लोगों को और सरस्वती नदी के आसपास रहनेवाले शूद्रों और आभीरों को उन्होंने जीता। मछली पकड़कर उनसे जीविका चलानेवालों को और अन्य पहाड़ी जातियों को भी हराकर नकुल ने उनसे 'कर' लिया। इसके बाद उन्होंने सारे पञ्चनद देश को, अमर पर्वत के निवासियों को, उत्तर ज्योतिष देश को, दिव्यकट और द्वारपाल नाम के नगरों को भी जीतकर उनके राजाओं से 'कर' लिया। आगे बढ़कर नकुल ने रामठ, हारहूण आदि लोगों को केवल आज्ञा देकर ही अपना अनुगत बना लिया। फिर वासुदेव के पास नकुल ने अपना दूत भेजा। निर्भय कृष्णचन्द्र ने भी युधिष्ठिर के शासन को सादर स्वीकार कर लिया। वहाँ से नकुल मद्रदेश में पहुँचे। वह नकुल के मामा की नगरी थी। मद्रदेश की राजधानी शाकल नगर में पहुँचकर मामा शल्य को भी नकुल ने अपने अधीन कर लिया। सत्कार के योग्य नकुल को शल्य ने आदर के साथ अनेक रत्न दिये। वहाँ से चलकर नकुल ने समुद्र के भीतर टापुओं में रहनेवाले दारुण म्लेच्छों को, पह्लव, बर्बर, किरात, यवन और शक आदि जातियों को परास्त करके उनसे अनेक रत्न और बहुत सा धन प्राप्त किया। १०

इस प्रकार सम्पूर्ण पश्चिम दिशा को जीतकर नकुल इन्द्रप्रस्थ को लौट आये। उन्होंने दिग्विजय में इतना धन प्राप्त किया कि दस हज़ार ऊँट बड़े कष्ट से उस धन को लाद कर लाये।

महाराज, पहले ही वासुदेव के द्वारा जीती गई पश्चिम दिशा को पराक्रम से जीतकर अपरिमित धन लाकर नकुल ने धर्मराज युधिष्ठिर को अर्पण किया। उन्होंने बहुत प्रसन्न होकर नकुल का सत्कार किया। २०

राजसूयपर्व

तेंतीसवाँ अध्याय

राजसूय यज्ञ का निश्चय और निमन्त्रण भेजना

वैशम्पायन कहते हैं—धर्मराज युधिष्ठिर, विशेष यत्न के साथ, शत्रुओं का विनाश करके प्रजा की रक्षा और सत्य का पालन करने लगे। उनकी प्रजा भी तन-मन से अपने कर्म करने लगी। न्याय के अनुसार 'कर' लेने और धर्म-पूर्वक शासन करने से समय पर भरपूर वर्षा होती थी और ख़ूब अन्न उत्पन्न होता था। युधिष्ठिर के राज्य में सब नगर और गाँव धन-धान्यपूर्ण और समृद्धिशाली हो उठे। राजा के पुण्य और सुशासन के फल से गोरक्षा, खेती, वनिज आदि

सब काम अच्छी तरह होने लगे। धर्मराज ने ऐसा राज्य किया कि ठग, डाकू, चोर और राज-कर्मचारी आदि भी झूठ बोलने आदि बुरे कामों से घृणा रखते थे। धर्मराज युधिष्ठिर के राज्य में अवर्षण, अतिवर्षा, रोग-व्याधि, अग्निकोप, अकाल-मृत्यु आदि किसी अशुभ घटना का नाम तक कहीं न सुन पड़ता था। धर्मराज के अनुगत राजा लोग उनका प्रिय करने और उन्हें भेंट देने आदि के लिए ही उनके पास आते थे; विद्रोह करके उन पर चढ़ाई करने कोई न आता था। धर्मपूर्वक धन सञ्चय करने पर भी युधिष्ठिर के ख़ज़ाने में इतना धन जमा हो गया कि लगातार सौ वर्ष तक ख़र्च करने पर भी उसका अन्त नहीं हो सकता था। उन्होंने अपने कोष और भाण्डार को धन-रत्न आदि सामग्रियों से ठसाठस भरा हुआ देखकर राजसूय यज्ञ की दीक्षा लेने का सङ्कल्प किया। तब उनके इष्ट-मित्रों ने अलग-अलग, और मिलकर भी, उनसे कहा—महाराज, अब यह आपके यज्ञ करने के लिए उपयुक्त समय है। इसलिए शीघ्र यज्ञ ९ आरम्भ कर दीजिए।

इस प्रकार लोग युधिष्ठिर से कह रहे थे कि इसी समय यज्ञेश्वर कृष्णचन्द्र युधिष्ठिर के पास आये। सबके अन्तर्यामी, सब प्राणियों में आत्मारूप से स्थित, समदर्शी, दयालु, चराचर जगत् में सबसे श्रेष्ठ, पुराण ऋषि, वेदरूप, संसार की सृष्टि और संहार के कारण, भूत-वर्त्तमान और भविष्य इन तीनों कालों के नियामक, केशव, केशी दैत्य को मारनेवाले, सब यादवों को आपत्तिकाल में दीवार की तरह सङ्कट से बचानेवाले, शत्रुनाशन, पुरुषश्रेष्ठ कृष्णचन्द्र द्वारका की रक्षा का भार वसुदेवजी को सौंपकर युधिष्ठिर को भेंट देने के लिए असंख्य धन-रत्न लेकर इन्द्रप्रस्थ में उपस्थित हुए। उनके साथ अपार सेना भी आई। अपने रथ के पहियों की घरघराहट से दसों दिशाओं को प्रतिध्वनित करते हुए श्रीकृष्णचन्द्र ने जब खाण्डवप्रस्थ में प्रवेश किया तब सब लोग उन्हें देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए। जहाँ सूर्य के दर्शन न होते हों वहाँ सूर्योदय होने से और जहाँ वायु का नाम न हो वहाँ हवा चलने से जैसे लोगों को अपार आनन्द होता है वैसे ही शत्रुओं के शोक बढ़ानेवाले कृष्णचन्द्र के आने से पाण्डवों को और पुरवासियों को प्रसन्नता हुई। युधिष्ठिर ने आनन्द के साथ कृष्ण की अगवानी की, उनका सत्कार किया।

कुशल-प्रश्न के उपरान्त जब कृष्णचन्द्र सुखपूर्वक बैठे तब धौम्य, व्यास आदि ऋत्विजों और भीम, अर्जुन आदि भाइयों के बीच विराजमान युधिष्ठिर ने उनसे कहा—हे द्वारकानाथ, तुम्हारी कृपा से सारी पृथ्वी मेरे अधीन है; मेरे ख़ज़ाने में बहुत सा धन भी जमा हो गया है। हे देवकी-नन्दन, अब मैं वह सब धन राजसूय यज्ञ करके ब्राह्मणों के और अग्निदेव के सन्तुष्ट करने में लगाना चाहता हूँ। मैं तुम्हारी सहायता के भरोसे पर अपने भाइयों के साथ राजसूय यज्ञ १० करना चाहता हूँ। उसके लिए तुम मुझे आज्ञा दो। हे महाबाहो, मेरी इच्छा तो यह है कि तुम्हीं दीक्षा लेकर यह यज्ञ करो। तुम्हारे दीक्षा लेने से हम लोग पाप-रहित हो जायँगे।

अथवा मुझे ही भाइयों के साथ इस यज्ञ की दीक्षा लेने की अनुमति दो। तुम्हारी आज्ञा पाने पर मुझे विश्वास है कि यह यज्ञ ठीक-ठीक हो सकेगा।

वैशम्पायन कहते हैं कि धर्मराज के इन विनय-पूर्ण वचनों से प्रसन्न होकर, उनके श्रेष्ठ गुणों का बखान करके, कृष्ण ने कहा—महाराज, आप सब राजाओं में श्रेष्ठ सम्राट् हैं। आपमें सब प्रकार से यह महायज्ञ करने की योग्यता है। आप इस यज्ञ को करेंगे तो उससे हम भी कृतकृत्य हो जायँगे। मैं आपका सहायक और शुभचिन्तक मौजूद हूँ; आप अपने अभीष्ट यज्ञ का आरम्भ कीजिए। जो कुछ काम करना हो उसे करने की आज्ञा मुझे दीजिए; आपकी आज्ञा का पालन करने को मैं तैयार हूँ।

युधिष्ठिर ने आनन्द से गद्गद होकर कहा—हे कृष्ण, तुम मेरे स्मरण करते ही यहाँ आकर उपस्थित हो गये इसी से मेरा विचार सफल हो गया और मुझे कार्य सिद्ध होने का विश्वास हो गया। हे जनमेजय, कृष्ण के यों अनुमोदन करने पर, उनकी अनुमति पाकर, महाराज युधिष्ठिर भाइयों-सहित यज्ञ की तैयारी करने—सामान जुटाने लगे।

धर्मराज ने छोटे भाई सहदेव को और मन्त्रियों को आज्ञा दी—ब्राह्मणों की आज्ञा के अनुसार यज्ञ की और यज्ञ के अङ्गस्वरूप अन्य कर्मों की सब सामग्री आदमियों से मँगाकर, पुरोहित धौम्य की आज्ञा से, यथास्थान और यथाक्रम रखवाओ। इन्द्रसेन, विशोक और अर्जुन के सारथी पूरु आदि सब अनुचर, मेरा प्रिय करने के लिए, अन्न आदि भोजन-सामग्री लाकर जमा करें। ब्राह्मणों की तृप्ति और प्रसन्नता के लिए विविध रसों और सुगन्ध से मनोहर भोग के सामान जमा किये जायँ। युधिष्ठिर की आज्ञा की देर थी; सहदेव ने उसी समय सब सामग्री जमा करा दी और धर्मराज से जाकर कहा कि आपकी आज्ञा का पालन सोलहों आने हो गया। ३०

हे जनमेजय, साक्षात् शरीरधारी वेदों के समान तेजस्वी ब्राह्मणों को ऋत्विक् बनाकर सत्यवती के पुत्र व्यासजी ने ब्रह्मा का वरण लिया। धनञ्जय गोत्र में उत्पन्न सुसामा ऋषि सामवेद गानेवाले उद्गाता हुए। ब्रह्मनिष्ठ याज्ञवल्क्य ऋषि अध्वर्यु हुए। वसु के पुत्र पैल ऋषि और धौम्य ऋषि ने होता का काम ग्रहण किया। इन ऋषियों के पुत्र और शिष्य होत्रगाता हुए। वे भी सब वेद-वेदाङ्गों के पूरे ज्ञाता थे। सब ऋषियों ने स्वस्ति-पुण्याह-शान्तिपाठ के उपरान्त शास्त्रोक्त विधि के अनुसार देवताओं का और यज्ञभूमि का पूजन आरम्भ किया। कारीगरों ने धर्मराज की आज्ञा पाकर उस विशाल यज्ञमण्डप के आसपास बड़े-बड़े देवताओं के विमान-तुल्य, सुगन्धपूर्ण, भवन बनाये थे। [उन भवनों में फल, मिठाई, जल आदि रक्खा हुआ था।]. इसके उपरान्त राजा युधिष्ठिर ने सहदेव मन्त्री को आज्ञा दी कि दूत लोग शीघ्रता के साथ चारों ओर भेजे जायँ; वे शीघ्रगामी वाहनों पर चढ़कर लोगों को निमन्त्रण दे आवें। सहदेव ने राजा की आज्ञा के अनुसार दूतों को बुलाकर उनसे कहा—तुम लोग झटपट जाकर ४०

हमारे साम्राज्य के ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और श्रेष्ठ शूद्रों को निमन्त्रण देकर अपने साथ ले आओ। युधिष्ठिर की आज्ञा से वे दूत [शीघ्रगामी वाहनों पर चढ़कर] अनेक देशों को गये और वहाँ से निमन्त्रित लोगों को अपने साथ लेकर ठीक समय पर लौट आये। युधिष्ठिर ने भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, विदुर, कृपाचार्य और दुर्योधन आदि भाइयों को निमन्त्रण देने के लिए नकुल को हस्तिनापुर भेजा। इसके उपरान्त देश-देशान्तर से आये हुए सब ब्राह्मणों ने यथा-समय शुभ मुहूर्त्त में कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ की दीक्षा दी।

दीक्षा लेकर धर्मराज युधिष्ठिर यज्ञ-मण्डप में पधारे। अपने भाइयों, इष्ट-मित्रों, मन्त्रियों, अनुचरों, हज़ारों ब्राह्मणों और देश-देशान्तरों से आये हुए क्षत्रियों के बीच शरीरधारी धर्म के समान युधिष्ठिर की शोभा हुई। साम्राज्य के चारों ओर से विद्वान्, वेदपाठी अनेक ब्राह्मण यज्ञ-स्थान में आने लगे। उनके रहने के लिए कारीगरों ने अलग-अलग असंख्य निवास-स्थान बनाये थे। उन भवनों में तरह-तरह की खाने-पीने की सामग्रियाँ और सब सुखदायक पदार्थ भरे पड़े थे। उन भवनों में गर्मी, जाड़ा, बरसात आदि हर एक ऋतु में आराम मिलता था। धर्मराज से सत्कार-पूजा पाकर वे ब्राह्मण उन्हीं भवनों में रहने लगे। कोई तरह-तरह की कथाएँ कहते थे और कोई नट तथा नचैयों की कलाएँ देखते थे। भोजन कर रहे और शास्त्रार्थ में लगे ५० हुए प्रसन्नचित्त ब्राह्मणों का कोलाहल दिन-रात सुन पड़ता था। "यह दो, वह दो, भोजन करो" इत्यादि शब्द वहाँ हर समय चारों ओर सुन पड़ते थे।

धर्मराज ने हर एक निमन्त्रित को अलग-अलग सैकड़ों-हज़ारों गायें, सुवर्ण की शय्याएँ, और दास-दासियाँ दीं। देवलोक के स्वामी इन्द्र के समान पृथ्वी के सम्राट् अद्वितीय वीर ५५ महाराज युधिष्ठिर का यज्ञ इस प्रकार आनन्द और उत्साह के साथ होने लगा।

चौंतीसवाँ अध्याय

सब राजाओं का आना और उनका आदर-सत्कार

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, बड़े भाई की आज्ञा के अनुसार नकुल शीघ्र ही हस्तिनापुर को गये। वहाँ जाकर यथोचित सम्मान, सत्कार और विनय के साथ उन्होंने भीष्म, धृतराष्ट्र, आदि [कुरुवंशियों] को और कृपाचार्य, द्रोणाचार्य आदि आचार्यों को यज्ञ में चलने के लिए निमन्त्रण दिया। तब सब कौरव, ब्राह्मणों को आगे करके, प्रसन्नता के साथ यज्ञ-स्थान को चले। राजा युधिष्ठिर के यज्ञ का निमन्त्रण पाकर अनेक देशों से देवतुल्य राजा लोग, भेंट में देने के लिए, अनेक रत्न लेकर खाण्डवप्रस्थ में पहुँचने लगे। यज्ञ का मण्डप, ऐश्वर्य, सभा और धर्मराज को देखने की उन्हें बड़ी इच्छा थी। धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर, दुर्योधन आदि

धृतराष्ट्र के सौ पुत्र, गान्धार-राज सुबल, महाबली शकुनि, अचल, वृषक, महारथी कर्ण, बलवान् शल्य, प्रतापी वाह्लीक, सोमदत्त, भूरि, भूरिश्रवा, शल, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, सिन्धुराज जयद्रथ, अपने पुत्रों-सहित राजा द्रुपद, शाल्व, समुद्र-तीर के निवासी म्लेच्छों और पहाड़ी जातियों को साथ लिये हुए प्राग्ज्योतिषनगर के राजा भगदत्त महाराज युधिष्ठिर के यज्ञ में निमन्त्रित होकर आये। राजा बृहद्बल, पौण्ड्रक वासुदेव, वङ्ग और कलिङ्ग देश के राजा, आकर्ष और कुन्तल देशों के राजा, गालव और अन्ध्र देशों के राजा, द्राविड़ और सिंहल देशों के राजा, काश्मीर-नरेश, महातेजस्वी राजा कुन्तिभोज, राजा गौरवाहन, वाह्लीक देश के अनेक शूरवीर राजा, पुत्रों-सहित राजा विराट, महाबली राजा मावेल्ल, राजकुमार-सहित महापराक्रमी राजा शिशुपाल और अन्य अनेक राजा तथा राजपुत्र महाराज युधिष्ठिर के यज्ञ में निमन्त्रित होकर आये। बलभद्र, अनिरुद्ध, कङ्क, सारण, गद, प्रद्युम्न, साम्ब, पराक्रमी चारुदेष्ण, उल्मुक, निशठ, अङ्गावह और अन्य अनेक वृष्णिवंशी महारथी यादव भी यज्ञस्थान में आये। इनके सिवा अनेक मध्यदेश के राजा-महाराजा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में आये। युधिष्ठिर की आज्ञा से इन अभ्यागत निमन्त्रित राजाओं के सत्कार और रहने के लिए निवासभवनों का पहले से ही प्रबन्ध हो चुका था। उन भवनों में स्वादिष्ट और रसीली खाने-पीने की सामग्री भरी हुई थी। बावली और वृक्ष आदि भी उनमें थे। आये हुए राजाओं का यथोचित सत्कार महाराज युधिष्ठिर ने स्वयं किया। इसके बाद सब लोग अपने-अपने लिए निर्दिष्ट डेरों में जाकर ठहरे। १० २०

अभ्यागत राजाओं के ठहरने के लिए जो भवन बने थे वे एक से एक मिले हुए थे। उन भवनों में अनेक सामग्रियाँ भरी पड़ी थीं; वे सफ़ेद रङ्ग की ऊँची दीवारों से घिरे हुए और सुवर्णजाल से अलङ्कृत थे; उनमें मनोहर मणिमय स्थान थे और सुख के साथ चढ़ने योग्य सीढ़ियाँ थीं; वे खिले हुए फूलों की मालाओं से विभूषित थे। अनेक प्रकार के चन्दन, अगुरु आदि पदार्थों से सुगन्धित वे भवन कैलास पर्वत के शिखरों को भी मात कर रहे थे। उन भवनों के भीतर बढ़िया आसन पड़े थे। सफ़ेदी से वे हंस और चन्द्रमा के समान उजले थे। वे भवन तङ्ग न थे। उन सबके द्वार एक से थे। और भी अनेक प्रकार की छोटी-बड़ी कारीगरियाँ उनके बनाने में दिखाई गई थीं। उनके बनाने में जगह-जगह अनेक धातुओं का उपयोग किये जाने से वे हिमवान् पर्वत के चित्र-विचित्र शिखरों की तरह जँचते थे। उन भवनों में विश्राम कर रहे राजा लोग वहीं से पीताम्बर पहने हुए, दीक्षा में स्थित, सदस्य ब्राह्मणों की मण्डली से घिरे राजा युधिष्ठिर के दर्शन पाते थे। अपार दान-दक्षिणा के कारण सुप्रसिद्ध उस राजसूय यज्ञ में आये हुए ब्राह्मणों और क्षत्रियों से वह सभा-मण्डप इस प्रकार शोभित हो रहा था जिस प्रकार देवताओं से स्वर्ग की शोभा होती है। २५

पैंतीसवाँ अध्याय

राजसूय यज्ञ का वर्णन

वैशम्पायन कहते हैं—हे भरतकुल-तिलक, महाराज युधिष्ठिर ने आगे से जाकर भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य को लिया और उन्हें प्रणाम किया। भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, दुर्योधन, विविंशति आदि का स्वागत-सत्कार करके युधिष्ठिर ने कहा—आप लोगों के शुभागमन से मैं कृतार्थ हो गया। इस यज्ञ में आप लोग सब तरह मुझ पर कृपा करें। यह सब मेरा धन आप ही लोगों का है। आप लोग कृपा कर मेरे काम में सहायता करें, यही मेरी प्रार्थना है।

यज्ञ की दीक्षा लिये हुए महाराज युधिष्ठिर ने अब उन लोगों में से हर एक को उसके योग्य काम सौंप दिया। भक्ष्य-भोज्य आदि खाने-पीने की सामग्री बाँटने का काम दुःशासन को दिया गया। ब्राह्मणों की सेवा और सत्कार का काम अश्वत्थामा को सौंपा गया। राजाओं के सत्कार का काम सञ्जय को मिला। सब कामों का प्रबन्ध ठीक समय पर ठीक-ठीक होता है या नहीं, यह देख-रेख का काम बुद्धिमान् भीष्म और द्रोणाचार्य को मिला। सुवर्ण, रत्न आदि के रखने और दक्षिणा देने का काम कृपाचार्य को सौंपा गया। इन कामों में इन लोगों की सहायता करने के लिए और भी बहुत आदमी नियुक्त हुए। वाह्लीक, धृतराष्ट्र, सोमदत्त और जयद्रथ आदि बड़े-बूढ़े लोगों की सेवा और सत्कार का प्रबन्ध नकुल ने ऐसा किया कि वे लोग स्वामी की तरह रहकर सब प्रकार के सुख भोगने लगे। सब धर्मों के जानकार, नीति के अद्वितीय पण्डित विदुर के हाथ से सब तरह का ख़र्च होता था। करद राजा लोग जो भेंट ले आते थे उसे लेकर ठिकाने से रखने का काम राजा दुर्योधन को मिला। भगवान् वासुदेव, सबसे
१० श्रेष्ठ फल प्राप्त करने की इच्छा से, आये हुए ब्राह्मणों के पैर धोने का काम करने लगे।

धर्मराज युधिष्ठिर और उनकी सभा देखने को जो लोग आये उनमें ऐसा कोई न था जो एक हज़ार स्वर्णमुद्रा (मोहरें) से कम भेंट लाया हो। हर एक राजा मानो इस तरह की

लागडाँट करके कि 'मेरे ही दिये रत्न-धन से महाराज युधिष्ठिर के यज्ञ का ख़र्च पूरा हो जाय' असंख्य धन और रत्न ला-लाकर उन्हें अर्पण करने लगा। [युधिष्ठिर का कोप एक ओर दान-दक्षिणा से ख़ाली होता जाता था और दूसरी ओर भेंट में आये हुए धन और रत्नों से भरता जाता था।] सब सामान से भरे भवनों से, आकाश में यज्ञ देखने के लिए उपस्थित देवताओं और इन्द्र आदि लोकपालों के विमानों से, यज्ञशाला के आसपास बने हुए ब्राह्मणों के निवास-भवनों और राजाओं के विमान-तुल्य रत्नखचित डेरों से महाराज युधिष्ठिर की सभा की बड़ी अपूर्व शोभा हुई। [असंख्य रत्नों की प्रभा से प्रकाशमान] ऐश्वर्य-सम्पन्न सभा-मण्डप के बीच बैठे हुए महाराज युधिष्ठिर अपने वैभव से राजराज कुबेर और महाराज वरुण के समान जान पड़ते थे। छः अग्नियों की स्थापना हो जाने पर राजसूय यज्ञ किया गया। युधिष्ठिर ने यज्ञ की पूर्णाहुति होने के समय ब्राह्मणों को जी खोलकर दक्षिणा दी। जो कोई जिस इच्छा से गया उसकी वह इच्छा युधिष्ठिर ने पूरी कर दी। अन्न के ढेर के ढेर लगे हुए थे। लाखों लोग तरह-तरह के स्वादिष्ट भोजन कर रहे थे। रत्न लुटाये जा रहे थे। उस यज्ञ में वैदिक कर्म-काण्ड में निपुण, मन्त्रशिक्षा के पूरे पण्डित महर्षियों ने मन्त्र पढ़कर—आहुतियाँ छोड़कर—देवताओं को अच्छी तरह छका दिया। सब देवता, ब्राह्मण और अन्य वर्णों के असंख्य लोग आहुति, दक्षिणा, अन्न-धन-रत्न आदि के द्वारा परम प्रसन्न और तृप्त हुए। १९

अर्घ्याहरणपर्व

छत्तीसवाँ अध्याय

सबसे पहले श्रीकृष्ण की पूजा

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय! यज्ञ के अन्त में, अभिषेक के दिन, सत्कार के योग्य महर्षि ब्राह्मण लोग राजाओं के साथ अन्तर्वेदी नाम के सभा-मण्डप में गये। ब्रह्मा की सभा में बैठे हुए देवता और देवर्षि जैसे शोभित होते हैं वैसे ही महात्मा युधिष्ठिर की अन्तर्वेदी में बैठे हुए राजर्षियों-सहित नारद आदि महापुरुष शोभायमान हुए। तपस्वी विद्वान् ऋषि और महर्षि लोग उस अवसर में परस्पर शास्त्र के विषयों की चर्चा और विचार करने लगे। "यह बात ऐसी ही है", "यह बात कभी ऐसी नहीं है", "यह बात ऐसी ही है, अन्यथा कभी नहीं है" इत्यादि तर्क-वितर्क करते हुए विद्वान् लोग वितण्डावाद करने लगे। कोई-कोई विद्वान् शास्त्र के द्वारा प्रतिपादन करते हुए युक्तियाँ दिखाकर अपनी प्रतिभा के प्रभाव से साधारण बात को असाधारण और असाधारण बात को साधारण प्रमाणित कर रहे थे। कोई बुद्धिमान् विद्वान् पुरुष

दूसरे के कहे हुए विषय को उस तरह बीच से ही ले भागते थे अर्थात् उसका खण्डन करने लगते थे जिस तरह आकाश में उड़ रहे बाज़ पक्षियों में एक के मुँह से छूटे हुए लोथड़े को दूसरा पृथ्वी तक पहुँचने नहीं देता, बीच से ही ले भागता है। सब प्रकार के भाष्यों और भाषाओं के ज्ञाता, महाव्रतधारी अनेक विद्वान् धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र के विषयों का विचार और वर्णन करते देख पड़ते थे। नक्षत्रमण्डली से आकाश की जैसी शोभा होती है वैसे ही वेदज्ञ और तेजस्वी देवर्षि, महर्षि, राजर्षि और ब्राह्मणों से परिपूर्ण वह सभा शोभायमान हुई। महाराज युधिष्ठिर की उस सभावेदी के पास न कोई शूद्र बैठा था और न कोई व्रत-विहीन अपवित्र पुरुष उपस्थित था।

यज्ञ के अन्त में श्रीमान् युधिष्ठिर का यह अपूर्व ऐश्वर्य और यज्ञ करने से प्राप्त प्रताप
१० देखकर नारदजी बहुत प्रसन्न हुए। महाराज, उस सभा में सब क्षत्रियों का समागम देखकर नारदजी को उस सभा का स्मरण हो आया जो पहले ब्रह्मलोक में भगवान् के अंशावतार के सम्बन्ध में विचार करने के लिए हुई थी। उन्हें वे क्षत्रिय और ब्राह्मण लोग, ब्रह्मलोक में आकर जमा हुए, देवताओं के समान ही जान पड़ते थे। उस समय देवर्षि नारद मन में कमलनयन विष्णु भगवान् का स्मरण करने लगे। नारदजी मन में कहने लगे कि देव-शत्रु असुरों का नाश करनेवाले भगवान् नारायण ही पृथ्वी का भार उतारने की अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए क्षत्रियवंश में कृष्णरूप से प्रकट हुए हैं। सब प्राणियों की सृष्टि करनेवाले इन्हीं नारायण ने पहले ब्रह्मलोक की उस सभा में सब देवताओं को आज्ञा दी थी कि "तुम लोग जाकर पृथ्वी पर जन्म लो। तुम लोग फिर परस्पर लड़-झगड़कर कट-मरकर अपने लोकों को चले आओगे।" इस प्रकार सब देवताओं को आज्ञा देकर वही भगवान् नारायण पृथ्वी पर यदुवंश के वृष्णिकुल में उत्पन्न हुए हैं और नक्षत्रमण्डली के बीच चन्द्रमा के समान यादवों में विराजमान हैं। इन्द्र आदि देवता जिनके बाहुबल का आश्रय ढूँढ़ते हैं वही हरि इस समय मनुष्यलोक में मनुष्यलीला कर रहे हैं। इन महाबली असङ्ख्य क्षत्रियकुलों का संहार भी इन्हीं के द्वारा होगा। इस प्रकार कृष्ण को नारायण जानकर, मन ही मन उनकी महिमा का वर्णन करते हुए, नारदजी
२० उस सभा में विराजमान थे।

सब लोग जब उस सभा में बैठ गये तब भीष्म पितामह ने धर्मराज से कहा—हे भरत-कुलश्रेष्ठ, अब तुम इन आये हुए राजाओं का यथायोग्य पूजन और सत्कार करो। आचार्य, ऋत्विक्, स्नातक, सम्बन्धी, मित्र, और राजा, ये छः अर्घ्य पाने के अधिकारी कहे गये हैं। इनके सिवा जो अभ्यागत लोग एक साथ साल भर रहते हैं वे भी अर्घ्य पाने के योग्य माने गये हैं। ये न्योते में आये हुए राजा लोग यहाँ हमारे साथ बहुत दिनों से निवास कर रहे हैं। इस कारण इनके लिए भी एक-एक अर्घ्य मँगाना चाहिए; किन्तु इस अभ्यागत-मण्डली में जो सबसे श्रेष्ठ और समर्थ पुरुष हों उन्हें सबसे पहले अर्घ्य दिया जाय।

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, आप इन योग्य पुरुषों में किन महात्मा को सबसे पहले अर्घ्य देना ठीक समझते हैं? यह प्रश्न सुनकर भीष्म ने कुछ देर तक सोचकर यदुकुलावतंस कृष्ण को ही सबमें श्रेष्ठ और पहले अर्घ्य पाने के योग्य ठहराया। उन्होंने कहा—इन सब महापुरुषों की मण्डली में तेज, बल, पराक्रम आदि बातों में कृष्णचन्द्र ही श्रेष्ठ हैं। नक्षत्रों के बीच सूर्य की तरह इन सबके बीच कृष्ण ही प्रकाशित हो रहे हैं। अन्धकारमय स्थान को सूर्य की तरह और वायु-हीन स्थान को वायु की तरह कृष्णचन्द्र हमारी इस सभा को प्रकाशित और आनन्दित कर रहे हैं।

सभा में इस प्रकार श्रीकृष्ण की श्रेष्ठता का बखान करके भीष्म ने सहदेव को आज्ञा दी कि प्रधान अर्घ्य लाकर कृष्ण को दो। सहदेव ने उसी समय श्रेष्ठ अर्घ्य लाकर कृष्णचन्द्र को अर्पण किया। सभा के बीच उस प्रतिष्ठासूचक ३० प्रधान अर्घ्य को सबसे पहले पाकर कृष्णचन्द्र ने, शास्त्रोक्त विधि के अनुसार, ग्रहण किया। यह देखकर चेदि-राज शिशुपाल से नहीं रहा गया। वह क्रोध के मारे उठकर खड़ा हो गया और युधिष्ठिर तथा भीष्म का तिरस्कार करके कृष्ण को भला-बुरा कहने लगा। ३२

सैंतीसवाँ अध्याय

कृष्ण की निन्दा करके शिशुपाल का सभा से निकल जाना

[क्रोध से अधीर होकर प्रचण्ड स्वर से] शिशुपाल कहने लगा—हे युधिष्ठिर, इन महात्मा राजाओं के आगे कृष्ण किसी तरह राजाओं की तरह पूजा पाने के योग्य नहीं। हे पाण्डव, जो अपनी इच्छा से तुमने सबसे पहले कृष्ण की पूजा की सो यह किसी तरह महात्मा पाण्डवों के योग्य काम नहीं हुआ। हे पाण्डवो, तुम धर्म की सूक्ष्म गति को नहीं जानते। इस बारे में तुम बालक ही हो। गङ्गा के पुत्र भीष्म ने भी इस समय धर्म का उल्लङ्घन करके अपनी नासमझी का परिचय दिया है। हे भीष्म, तुमको अब तक लोग धर्मज्ञ और धर्मात्मा समझते थे। तुमने कृष्ण का प्रिय करने के लिए यह जो अनुचित काम कराया है इससे सज्जन अवश्य ही

तुम्हें अनादर की दृष्टि से देखेंगे; साधु पुरुष तुम्हारी निन्दा करेंगे। कृष्ण राजा नहीं हैं; फिर सब राजा-महाराजाओं के बीच इस तरह सबसे पहले वे कैसे पूजा पा सकते हैं? अथवा तुमने वृद्ध समझकर सबसे पहले कृष्ण को अर्घ्य दिया है, तो उनके बूढ़े पिता वसुदेव के आगे उनकी पूजा को तुम कैसे ठीक समझते हो? या शुभचिन्तक और अनुगत समझकर तुमने कृष्ण का सम्मान किया है तो भी राजा द्रुपद के आगे कृष्ण कैसे पूजनीय हो सकते हैं? कृष्ण कुछ द्रुपद से बढ़कर तुम्हारे शुभचिन्तक और अनुगत नहीं हैं। हे युधिष्ठिर, यदि तुमने आचार्य मानकर कृष्ण की पूजा की है तो द्रोणाचार्य के आगे वे पूजनीय नहीं हो सकते; या ऋत्विक् समझकर कृष्ण की पूजा की है तो भी वृद्ध द्वैपायन व्यास के आगे कृष्ण की पूजा कैसे ठीक कही जा सकती है? हे युधिष्ठिर, मृत्यु जिनके अधीन है उन पुरुषश्रेष्ठ भीष्म को छोड़कर तुमने पहले कृष्ण की पूजा कैसे की? हे कुरुनन्दन, सब शास्त्रों के ज्ञाता और श्रेष्ठ वीर अश्वत्थामा को छोड़कर तुमने पहले कृष्ण को अर्घ्य देना क्यों ठीक समझा? पुरुषश्रेष्ठ राजराज दुर्योधन और भरत-वंश के आचार्य कृपाचार्य को छोड़कर तुमने पहले कृष्ण की पूजा क्यों की? किंपुरुष-कुल के मुखिया महाराज द्रुम और महाराज पाण्डु के तुल्य गौरवशाली राजा भीष्मक को छोड़कर तुमने पहले कृष्ण की पूजा करना क्यों उचित समझा? नरपतियों में श्रेष्ठ रुक्मी, एकलव्य, मद्र-नरेश शल्य आदि के रहते तुमने क्या समझकर पहले कृष्ण को अर्घ्य दिया? हे युधिष्ठिर, सब राजाओं से बढ़कर बली, युद्ध में अपने पराक्रम से राजाओं को जीतनेवाले इन परशुराम के प्यारे शिष्य कर्ण को छोड़कर तुमने पहले कृष्ण की पूजा क्यों की? हे पाण्डव, कृष्ण न तो ऋत्विक् हैं, न आचार्य, न वृद्ध हैं और न राजा ही। फिर तुमने क्यों इन्हें सबसे श्रेष्ठ माना और सबसे पहले इनकी पूजा की? इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि तुमने नातेदारी के कारण सुहृद समझ-कर, इन्हें प्रसन्न करने के लिए, यह अनुचित काम किया है। हे पाण्डव, जो तुम इस तरह कृष्ण की पूजा करना ही चाहते थे तो देश-देशान्तर से इन राजाओं को, अपमानित करने के लिए, क्यों बुलाया था?

हे नरपतियो! हम लोगों ने डरकर, किसी लोभ से अथवा सान्त्वना के वशीभूत होकर, युधिष्ठिर को कर नहीं दिया है। हमने तो यह सोचकर 'कर' दिया है कि ये धर्मात्मा हैं और सम्राट् बनकर धर्मानुसार प्रजा-पालन करना चाहते हैं। सो ये हम लोगों को नहीं मानते। हे युधिष्ठिर, कृष्ण में राजा के लक्षण नहीं हैं, इन्हें इस राजाओं की सभा में सबसे पहले अर्घ्य देना सरासर हम सबका अपमान करना है। धर्मपुत्र युधिष्ठिर को लोग धर्मात्मा कहते थे, सो इनका वह यश अकस्मात् नष्ट हो गया। कौन धर्मात्मा पुरुष कृष्ण ऐसे धर्म-भ्रष्ट पुरुष की यों पूजा करेगा? वृष्णिवंश में उत्पन्न दुरात्मा कृष्ण ने अन्याय से महात्मा जरासन्ध की हत्या करवाई है। ऐसे पुरुष को सर्वोत्तम मानकर अर्घ्य देने से युधिष्ठिर को लाभ यही

हुआ कि संसार में धर्मात्मा कहकर लोग जो इनकी बड़ाई करते थे वह नष्ट हो गई। हे युधिष्ठिर, तुम्हारी दीनता और मूर्खता जगत् में प्रसिद्ध हो गई। हे माधव! यदि पाण्डव डरकर, बहकाने से या नासमझी के कारण सबसे पहले तुमको अर्घ्य देने के लिए तैयार हो गये थे तो तुमको तो सोच लेना था कि तुम इस पूजा और सम्मान के योग्य हो कि नहीं! अपने को अयोग्य समझकर भी तुमने कैसे इस पूजा को स्वीकार कर लिया? अथवा अबोध, नीच प्रकृति के पुरुष को विशेष दोष देना व्यर्थ ही है। कुत्ता जैसे घी के बने पकवान को एकान्त में खाकर बहुत प्रसन्न होता है वैसे ही सर्वथा अयोग्य इस पूजा को पाकर तुम अपने को बहुत कुछ समझ रहे हो। हे जनार्दन, इस पूजा को पाकर तुम यह न समझो कि इससे इन श्रेष्ठ और प्रतापी राजाओं का अपमान हुआ। सोचकर देखो तो तुम्हें मालूम होगा कि पूजा देकर प्रकारान्तर से पाण्डवों ने तुम्हारा ही अपमान किया है; क्योंकि जो जिसके योग्य नहीं, उसे उसका अधिकारी बनाना मानों उसकी हँसी उड़ाना है। नपुंसक का ब्याह करना और अन्धे को रूप दिखाना जैसा होगा वैसा ही तुम्हारा यह राजाओं का सा पूजन है; क्योंकि न तो तुम राजा हो और न तुममें राजाओं की सी कोई योग्यता ही है। ख़ैर, युधिष्ठिर [की न्यायनिष्ठा], भीष्म [की विज्ञता] और वासुदेव [की बुद्धिमानी देख ली !] तीनों जने जैसे के तैसे हैं।

महाराज! शिशुपाल यों कहकर, श्रेष्ठ आसन से उठकर, अपने अनुयायी राजाओं के साथ उस सभा से चल दिया। ३१

अड़तीसवाँ अध्याय

भीष्म पितामह के वचन

वैशम्पायन कहते हैं—[क्रोध से लाल-लाल आँखें करके भीष्म आदि महात्माओं की ओर तिरछी नज़र से देखते हुए] शिशुपाल को सभा से निकलते देखकर जल्दी से युधिष्ठिर उसके पास गये और मीठे वचन कहकर उसे समझाने लगे कि हे राजन्, सोचकर देखो [यों बिगड़कर सभा से चल देना क्या तुम्हारे योग्य काम है ?] जो कठोर वचन तुमने भीष्म आदि महात्माओं को सुनाये वे ठीक नहीं कहे जा सकते। उनसे तुम घोर अधर्म के भागी हो सकते हो। वैसे कठोर वचन कहना निरर्थक है। तात्पर्य यह कि उन वचनों से भीष्म आदि का कुछ नहीं बिगड़ सकता, बेकार तुम्हारी ही ज़बान ख़राब होती है। महात्मा शान्तनु के पुत्र भीष्म के लिए यह कहना कि उन्हें धर्म का ज्ञान नहीं है, कभी तुम्हारे लिए उचित नहीं। भीष्म पितामह का अनादर करना बिलकुल अनुचित है। देखो, तुमसे भी बड़े बूढ़े ये बहुत

से राजा बैठे हैं। इनमें से कोई भी सबसे पहले कृष्ण की पूजा होते देखकर असन्तुष्ट नहीं हुआ। तुमको भी, इन्हीं की तरह, कृष्ण के सम्मान से सन्तुष्ट होना चाहिए। हे चेदि-नरेश, अच्छी तरह समझ-बूझकर ही पितामह ने श्रीकृष्ण को सबसे श्रेष्ठ ठहराया है। कृष्ण को और उनकी महिमा को पितामह बहुत अच्छी तरह जानते हैं। वे कृष्ण को जितना जानते हैं उतना तुम नहीं जानते।

अब भीष्म ने कहा—पृथ्वीमण्डल भर पर सबसे बड़े और बूढ़े श्रीकृष्ण को सर्वोत्तम पूजनीय जो नहीं मानता उससे कभी ऐसी नम्रता का व्यवहार न करना चाहिए। जो प्रतापी क्षत्रिय युद्ध में क्षत्रियों को जीतकर फिर उन्हें छोड़ देता है वह उनका गुरु होता है। [यह बात शास्त्र-सङ्गत है।] युद्ध में यदुकुल तिलक श्रीकृष्ण ने किस राजा को नहीं जीता है? इस सभा में तो ऐसा एक भी राजा नहीं देख पड़ता। केवल हमीं इन अच्युत कृष्ण को सर्वोपरि पूजनीय नहीं मानते हैं वरन् ये महाबाहु तो त्रिलोकी के रहनेवाले सभी लोगों के पूजनीय हैं। श्रेष्ठ-श्रेष्ठ सभी क्षत्रियों को इन्होंने युद्ध में जीता है। सारा जगत् १० पूर्ण रूप से इन्हीं कृष्ण में प्रतिष्ठित है। इसी कारण हमने इतने बड़े-बूढ़ों के रहने पर भी सबसे पहले इन्हीं महात्मा का पूजन किया है, औरों का नहीं। हे युधिष्ठिर, तुम अब कुछ न कहो। तुम अपनी बुद्धि को स्थिर रक्खो। राजन्, हमने बहुत से ज्ञानी पुरुषों का सङ्ग किया है। हमने उन लोगों के मुँह से गुणनिधान वासुदेव के अनेक गुणों का बखान सुना है। जन्म से लेकर अब तक इन्होंने जो उत्तम और अलौकिक काम किये हैं, उन्हें भी हमने अनेक बार बहुत लोगों के मुँह से सुना है।

हे शिशुपाल, ये हमारे नातेदार हैं या इन्होंने हम पर अनेक उपकार किये हैं इस कारण, अथवा अपनी इच्छा से ही हम इनकी पूजा नहीं करते। इस पृथ्वीमण्डल पर सब सज्जन, इन्हें सब प्राणियों को सुख देनेवाले श्रेष्ठ पुरुष जानकर, इनकी पूजा करते हैं। हम लोगों ने इनके यश, शूरता, पराक्रम और विजय आदि गुणों को जानकर, उन्हीं के कारण, इनकी पूजा की है। इस सभा में एक बालक भी ऐसा नहीं जिसको हम अच्छी तरह न जानते हों, या जिसकी जाँच हम न कर चुके हों। अच्छी तरह सोच-समझकर गुणों में सबसे श्रेष्ठ जानकर ही बड़े-

बड़े बूढ़ों को छोड़कर कृष्ण की पूजा की गई है। जो ज्ञान में बड़ा हो वह ब्राह्मणों में पूजनीय होता है। जो बल में बड़ा हो वह क्षत्रियों में पूजनीय होता है। वैश्यों में धन से और शूद्रों में अवस्था से, बड़प्पन माना जाता है। कृष्ण के सबसे बढ़कर पूजनीय होने के दो कारण हैं। वेद-वेदाङ्ग के ज्ञान में और बल में भी कृष्ण से बढ़कर इस लोक में और कौन है? कृष्ण में दान, चातुरी, शौर्य, जानकारी, कीर्ति, श्रेष्ठ बुद्धि, नम्रता, श्री, ह्री, धैर्य, तुष्टि और पुष्टि आदि सब उत्तम गुण पूर्ण रूप से पाये जाते हैं। ये कृष्ण लोकप्रिय, आचार्य, पिता और गुरु २० सब कुछ हैं। इसी कारण हमने श्रेष्ठ अर्घ्य देकर इनकी पूजा की है।

हे राजा लोगो, आप लोगों को इसमें अपना अपमान न समझकर प्रसन्नता से इस काम का अनुमोदन करना चाहिए। ये वासुदेव अकेले ही ऋत्विक्, गुरु, सम्बन्धी, स्नातक, राजा और प्रिय सब कुछ हैं। इसी कारण हमने सबसे पहले इनकी पूजा की है। ये मङ्गलमय वासुदेव ही सारे जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार का कारण हैं। सब चराचर जगत् इन्हीं का रूप है। यही सृष्टि का अचिन्त्य और अव्यक्त वह कारण हैं जिसे प्रकृति कहते हैं। ये सनातन पुरुष हैं। ये सबके अन्तर्यामी और सर्वव्यापी होकर भी सबसे परे हैं। इसी से ये अच्युत सबसे बढ़कर पूज्य हैं। बुद्धि, मन, महत्तत्त्व, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, आकाश, जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज प्राणी आदि सब कुछ इन्हीं कृष्ण में स्थित है। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ग्रह, दिशा, उपदिशा आदि सब कुछ इन्हीं कृष्ण में स्थित है। जैसे वेदों में अग्निहोत्र-साधक मन्त्र, छन्दों में गायत्री, मनुष्यों में राजा, जलाशयों में समुद्र, नक्षत्रों में चन्द्रमा, तेजस्वी पदार्थों में सूर्य, पर्वतों में सुमेरु और पक्षियों में गरुड़ अत्यन्त श्रेष्ठ समझे जाते हैं वैसे ही ब्रह्माण्ड के नीचे के, ऊपर के और इधर-उधर के जितने लोक हैं उन सबके निवासियों में अत्यन्त श्रेष्ठ यदि कोई है तो ये श्रीकृष्ण ही हैं। यह शिशुपाल मूर्ख है। इसकी बुद्धि बालकों की सी है। इसी कारण यह कृष्ण के महत्त्व को नहीं जानता और सदा सब जगह इसी तरह इनका विरोध और निन्दा किया करता है। जो बुद्धिमान् मनुष्य श्रेष्ठ धर्म को जानने का यत्न किया ३० करता है वही धर्म के ठीक मर्म को जान सकता है; यह शिशुपाल कैसे जान सकता है? बालक, बूढ़े, जवान लोगों में या महात्मा राजाओं में ऐसा कौन है जो कृष्ण को पूजा के योग्य नहीं समझता या कृष्ण की पूजा नहीं करेगा? शिशुपाल यदि इस कृष्ण की पूजा को अनुचित समझता है तो जो कुछ इसके किये हो सकता हो सो करे। ३३

उनतालीसवाँ अध्याय

शिशुपाल का युद्ध के लिए उद्योग

वैशम्पायन कहते हैं कि जनमेजय, महाबली भीष्म पितामह इतना कहकर चुप हो रहे। अब सहदेव ने कहा—हे राजा लोगो, केशी दैत्य को मारनेवाले केशव कृष्ण का पराक्रम अपार है। कृष्ण हमारे परम पूजनीय हैं। इन परम पूज्य केशव की पूजा जिनको असह्य हुई हो उन बलवानों के माथे पर मैं यह अपना पैर रखता हूँ। यदि किसी में शक्ति हो तो वह आगे आकर मेरी इस बात का उचित उत्तर दे। जो बुद्धिमान् और भले-बुरे का विचार करने में समर्थ हैं वे महानुभाव कभी कृष्ण की पूजा का विरोध नहीं कर सकते। वे अवश्य मेरे इस काम का अनुमोदन करेंगे। बस, सहदेव ने गर्व के साथ पैर उठाकर पृथ्वी पर रख दिया। यह देखकर अभिमानी, बली और बुद्धिमान् राजाओं में से किसी ने सहदेव के इस कथन का प्रतिवाद नहीं किया। उस समय सहदेव के माथे पर आकाश से फूलों की वर्षा हुई। देवगण आकाश से "साधु-साधु" कहकर उनको धन्यवाद देने लगे। त्रिकालदर्शी और सब संशयों को दूर करने की शक्ति रखनेवाले नारद मुनि, जो कि सब लोकों का सब हाल जानते हैं, उठकर सबके आगे स्पष्ट वाणी से कहने लगे—जो मनुष्य कमलनयन कृष्ण की पूजा नहीं करते वे जीते ही मरे के समान हैं। उनसे कभी बात तक न करनी चाहिए।

वैशम्पायन कहते हैं—अब ब्राह्मणों और क्षत्रियों की श्रेष्ठता को विशेष रूप से जाननेवाले नरश्रेष्ठ सहदेव ने अन्यान्य पूजनीय लोगों की पूजा करके उस पूजा और सत्कार के कार्य को समाप्त किया। इस प्रकार सबसे पहले कृष्ण की पूजा होते देखकर महाबली वीरश्रेष्ठ शिशुपाल क्रोध के मारे काँपने लगा। उसकी आँखें लाल हो गईं। उसने राजाओं से कहा—हे महाबली राजाओ, मैं तुम्हारा सेनापति बनना स्वीकार करता हूँ। तुम लोग इसी समय पाण्डवों और यादवों का नाश करने के लिए सेना-सहित तैयार हो जाओ और युद्ध ठान दो। १०

राजाओं को उत्साहित करके, यज्ञ में विघ्न डालने के लिए, शिशुपाल उन लोगों के साथ अलग जाकर सलाह करने लगा। उसके अनुगामी राजा लोग क्रोध के मारे लड़ने को तैयार

हो गये। उनकी बात किसी ने नहीं सुनी, यह देखकर क्षोभ के मारे उनके चेहरे फीके पड़ गये। वे लोग आपस में सलाह करके कहने लगे कि इस समय हम लोगों को वही काम करना चाहिए, जिसमें युधिष्ठिर का यज्ञ और कृष्ण की पूजा सकुशल न हो। मन ही मन अत्यन्त बिगड़े हुए वे राजा लोग खिसियाकर लड़ने को तैयार हो गये। सिंहों के मुँह से उनका शिकार छिन जाने पर जैसे वे गरजते हुए भयानक हो जाते हैं, वही दशा क्रोध से विह्वल हो रहे उन राजाओं की हुई। उनके समझदार इष्ट-मित्र उन्हें वैसा न करने के लिए समझा रहे थे, पर उन्होंने उनका कहा नहीं सुना। कृष्ण ने उन राजाओं का रङ्ग-ढङ्ग देखकर समझ लिया कि ये युद्ध के लिए तैयार हैं। उन राजाओं की सेना समुद्र के समान अपार थी। १८

शिशुपालवधपर्व

चालीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर का घबराना और भीष्म का उन्हें समझाना

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, जैसे प्रलयकाल की हवा से समुद्र में उथल-पुथल मच जाय वैसे ही उस राजाओं के समूह को क्रोध से विचलित होते और कोलाहल करते देखकर युधिष्ठिर विघ्न की आशङ्का से घबरा गये। जैसे बृहस्पति से इन्द्र सलाह करते हैं वैसे ही उस समय युधिष्ठिर ने बुद्धिमान् पुरुषों में मुख्य, वृद्ध और कुरुवंश के पितामह भीष्म से कहा—पितामह ! देखिए, ये राजा लोग कुपित होकर समुद्र की तरह युद्ध के लिए उमड़ चले हैं। बताइए, मैं इस समय क्या उपाय करूँ? विचार करके वह उपाय बताइए, जिससे यज्ञ में कुछ विघ्न न हो और प्रजा का भी भला हो।

धर्मराज युधिष्ठिर के ये वचन सुनकर पितामह भीष्म ने कहा—हे पुरुषश्रेष्ठ, तुम डरो नहीं। कुत्ते भी कहीं सिंह को मार सकते हैं? तुम्हारा मार्ग निष्कण्टक है। इस बारे में क्या करना होगा, सो मैंने पहले से ही ठीक कर रक्खा है। भैया, पराक्रमी सिंह को सोया हुआ देखकर जैसे आये हुए कुत्ते भूकते हैं, वैसे ही ये राजा लोग शान्त भाव से स्थित यादव-सिंह कृष्ण के सामने क्रोध प्रकट करते हुए चिल्ला रहे हैं। जब तक सोये हुए सिंह के समान कृष्ण शान्त हैं तभी तक इन राजाओं का यह भाव देख पड़ता है। जब तक कृष्ण को क्रोध नहीं आता तभी तक यह मन्दबुद्धि शिशुपाल इन राजाओं को उत्तेजित कर रहा है। युधिष्ठिर, तुम सच समझो, शिशुपाल के कहने पर अगर ये राजा लोग चलेंगे तो बहुत जल्द मारे जायँगे। १० जिस तेज के बल पर यह शिशुपाल तड़प रहा है उसे कृष्ण भगवान् अवश्य हर लेना चाहते हैं। हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ, तुम्हारा भला हो। इसमें सन्देह नहीं कि इस शिशुपाल की और इन

राजाओं की बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। ये जगत्पति कृष्ण जिसका नाश करना चाहते हैं उसी की बुद्धि, इस शिशुपाल के समान, भ्रष्ट हो जाती है। हे युधिष्ठिर, तीनों लोकों में जो चारों प्रकार के प्राणी हैं उनकी उत्पत्ति और संहार का कारण यही नारायण कृष्ण हैं।

परम पराक्रमी और बलशाली भीष्म के ये वचन सुनकर चेदि-नरेश शिशुपाल क्रोध के मारे और भी आपे से बाहर होकर उन्हें कठोर वचन सुनाने लगा। १५

इकतालीसवाँ अध्याय

शिशुपाल का भीष्म की निन्दा करना

शिशुपाल ने कहा—हे भीष्म, तुम बूढ़े होने पर भी अपने कुल के कलङ्क हो। हम ऐसे राजाओं को तुम डर दिखाते हो! तुम्हें लज्जा नहीं आती? सठिया जाने के कारण तुम जो कुरुवंश के श्रेष्ठ पुरुष होकर भी ऐसे धर्मविरुद्ध वचन कहते हो सो ठीक ही है; अथवा तुमने जन्म भर नपुंसक का सा जीवन बिताया है, इस कारण तुम यदि नामर्दों की तरह ऐसी धर्मविरुद्ध बातें कहो तो आश्चर्य ही क्या है! जैसे नाव में बँधी हुई नाव बिना मल्लाह के हो, या जैसे अन्धों को ले चलनेवाला अन्धा हो, वही हाल कौरवों का है; क्योंकि तुम उनके अगुआ हो। कृष्ण के पूतना राक्षसी की हत्या आदि कर्मों की बड़ाई करके तुमने सचमुच मेरे मन को बड़ी व्यथा पहुँचाई है। भीष्म, तुम घमण्डी और मूर्ख हो, और इसी से [ईश्वर कहकर] कृष्ण की स्तुति कर रहे हो। कृष्ण की स्तुति करनेवाली तुम्हारी इस जीभ के सैकड़ों टुकड़े क्यों नहीं हो जाते! बिलकुल नासमझ बालक और साधारण लोग भी जिसकी निन्दा करेंगे उसी गोप कृष्ण की इतनी बड़ाई तुम कर रहे हो? फिर भी तुम बड़े ज्ञानी होने का दावा करते हो! कृष्ण ने लड़कपन में अगर एक पक्षी (बकासुर) को और युद्ध से अनभिज्ञ घोड़े (केशी) तथा बैल (वत्सासुर) को मार डाला तो उसमें अचरज की बात क्या हुई? उसमें इसकी बहादुरी क्या है? जड़ लकड़ी के छकड़े को यदि कृष्ण ने बचपन में पैर से गिरा दिया तो वह एक अद्भुत काम कैसे माना जा सकता है? हे भीष्म, कृष्ण अगर वल्मीकपिण्ड-सदृश गोवर्द्धन पहाड़ को सात दिन तक हाथ पर उठाये रहा तो उसे भी मैं कुछ विचित्रता नहीं मानता; उससे कृष्ण की असाधारण शक्ति का कुछ पता नहीं चलता। इस कृष्ण ने पहाड़ के ऊपर क्रीड़ा करते-करते जो बहुत से अन्न के ढेर को पेट में रख लिया उसे मैं इसका पेटूपन ही समझता हूँ। इसके उस काम का हाल सुनकर अगर भोले-भाले गँवार अहीर अचम्भे में आ जायँ तो कोई बड़ी बात नहीं। हे धर्मज्ञ भीष्म, जिस बलवान् कंस का अन्न खाकर यह पला उसी अपने मामा को इस कृतघ्न ने मार डाला! भला यह कौनसी वीरता है? हे कुरु- १०

कुलाधम भीष्म, तुम धर्म का मर्म कुछ भी नहीं जानते, इसी से मैं तुमको यह धर्मशास्त्र का उपदेश करता हूँ, सुनो। सज्जन और धर्मात्मा पुरुषों का उपदेश है कि स्त्री, गाय, ब्राह्मण, अन्न-दाता और शरणागत पर शस्त्र नहीं चलाना चाहिए; पर तुम इसके विरुद्ध इन्हीं कुकर्मों के करनेवाले कृष्ण की बड़ाई कर रहे हो। हे कौरवाधम, मैं जैसे कुछ जानता ही नहीं, इस तरह मेरे आगे ज्ञान-वृद्ध, वृद्ध और महिमामय कहकर तुम उसी कृष्ण की स्तुति कर रहे हो! हे भीष्म, तुम्हारे कहने से गो-हत्या (वत्सासुर की हत्या) और स्त्री (पूतना) की हत्या करनेवाले कृष्ण की पूजा की जाती है! कैसा अनर्थ है! खुशामदी आदमी के सिवा और कौन ऐसे कुकर्मी की स्तुति करेगा? तुम इस कृष्ण को बुद्धिमानों में श्रेष्ठ और जगदीश्वर कहते हो और यह भी तुम्हारे कहने से अपने को वैसा ही समझता है; किन्तु तुम्हारे ये स्तुति-वाक्य सर्वथा मिथ्या हैं। स्तुति करनेवाला कितनी ही बढ़-चढ़कर स्तुति क्यों न किया करे किन्तु स्वयं स्तुति स्तुति-कर्त्ता का कुछ भी नहीं कर सकती; जिस तरह भूलिङ्ग पक्षी यद्यपि मुँह से कहा करता है कि "साहस मत करो" किन्तु वह स्वयं इतना साहस करता है कि सिंह की दाढ़ों में लगे मांस को निकालकर खा लेता है; उसी तरह मनुष्य अहिंसा का ढोंग करके हिंसा करता रहता है। हे भीष्म, तुम्हारी प्रकृति अत्यन्त नीच है। पाण्डवों की प्रकृति इसलिए नीच हो गई है कि तुम उनके पथ-प्रदर्शक हो। [तुम्हारी ही सलाह से पाण्डव लोग अधर्मी कृष्ण को सबसे श्रेष्ठ और पूजनीय मानते हैं।] तुम अपने को धर्मात्मा प्रसिद्ध किये हुए हो, पर धर्म का तुम्हें कुछ भी ज्ञान नहीं; तुम तो सज्जनों के मार्ग से भी भ्रष्ट हो। ज्ञानियों में श्रेष्ठ कौन पुरुष अपने को धर्मात्मा मानकर भी वैसा काम करेगा जैसा तुम कर चुके हो? यदि तुम्हें धर्म का ज्ञान है और तुम बुद्धिमान् हो तो काशिराज की बेटी अम्बा को, यह जानकर भी कि वह दूसरे को चाहती है, क्यों स्वयंवर से हर लाये थे? धर्मज्ञ और ज्ञानी पुरुष कहीं ऐसा निन्दित काम कर सकता है? तुम्हारे भाई विचित्रवीर्य सच्चे धर्मात्मा और सज्जनों के मार्ग पर चलनेवाले थे; इसी से उन्होंने तुम्हारी हर लाई हुई कन्या अम्बा की ओर आँख उठाकर देखा तक नहीं। तुम्हारे धर्म-ज्ञान का क्या कहना है! तुम्हारे सामने ही तुम्हारे भाई की स्त्रियों में, नियोगविधि से, दूसरे ने पुत्र उत्पन्न किये। २०

हे भीष्म, इसी से मैं कहता हूँ कि तुम्हारा यह धर्म का ढोंग और यह बालब्रह्मचर्य सब वृथा है। कौन जाने, तुम मोहवश या नपुंसक होने के कारण यह ब्रह्मचर्य का ढोंग रचे हुए हो। हे धर्मज्ञ! मालूम नहीं, अन्त को तुम्हारी क्या गति होगी। तुम्हारे मुँह से धर्म की ऐसी व्याख्या सुनने से, अर्थात् कृष्ण की पूजा का प्रतिपादन करने से मुझे निश्चय हो गया है कि तुम धर्म के ज्ञाता वृद्ध पुरुषों की सङ्गति में कभी नहीं बैठे। धर्म में तुम्हारी कुछ भी उन्नति नहीं देख पड़ती। इष्टकर्म, दान, वेदपाठ, बहुत दक्षिणावाले यज्ञ, देवाराधना आदि सब पुण्यकर्म—

पुत्र उत्पन्न किये बिना—निष्फल ही हैं। ये सब पुण्य पुत्र उत्पन्न करने की सोलहवीं कला के भी ..मान नहीं हैं। हे भीष्म, जिसके पुत्र नहीं है उसका बहुत से व्रत-उपवास आदि करना व्यर्थ है। मिथ्या धर्म के फेर में पड़कर तुम इस वृद्धावस्था को पहुँचने पर भी अब तक पुत्र-हीन हो। मुझे विश्वास है कि तुम भी, हंस की तरह, अपनी ही जातिवालों के हाथ से मारे जाओगे।
३० ज्ञानी लोगों ने पहले जो एक हंस का वृत्तान्त कहा है, उसे मैं तुम्हारे आगे कहता हूँ—सुनो।

पहले किसी समय समुद्र के किनारे एक बूढ़ा हंस रहता था। वह आप तो कुछ धर्म-कर्म करता न था, लेकिन और पक्षियों को सदा धर्म का उपदेश दिया करता था। वह सदा सब जातिवालों से कहा करता था कि भाइयो, धर्म का आचरण करो, अधर्म भूलकर भी मत करो। धर्मवादी सब पक्षी सदा हंस के मुँह से ये बातें सुनकर प्रसन्न हुआ करते थे। समुद्र के जल पर विचरनेवाले पक्षी उसे धर्माचार्य मानकर उसके लिए आहार ले आया करते थे। वे पक्षी अपने अण्डों को उसके पास छोड़कर इधर-उधर आया-जाया करते थे। वह ढोंगी बुड्ढा हंस उन—विश्वास के कारण असावधान—पक्षियों के अण्डों को, उनके पीछे, खा लिया करता था। किन्तु पाप-कर्म कभी छिपा नहीं रह सकता। अण्डों को धीरे-धीरे कम होते देखकर एक चतुर पक्षी को एक दिन सन्देह हुआ। उसने छिपकर जाँच की। उसने देखा, वह दुराचारी हंस नित्य जी भरकर अण्डे खा जाता है। इससे पक्षी को बड़ा दुःख हुआ। उसने और पक्षियों से हंस का सब हाल कह दिया। पक्षियों ने जब अपनी आँखों सब देख लिया तब कुपित होकर, सबने मिलकर, उस पापी हंस को मार डाला।

यह कथा समाप्त करके शिशुपाल ने कहा—हे भीष्म, जिस प्रकार उस ढोंगी हंस को पक्षियों ने मार डाला था उसी प्रकार ये आये हुए राजा लोग तुम्हारी जान ले लेंगे। इस सम्बन्ध में पुराण के जाननेवाले यह गाथा कहते हैं कि "हे पापी पक्षी, तू अपनी हत्या होते देखकर रो रहा है! किन्तु तेरा यह अण्डे खा जाने का नीच कर्म ऐसा है कि जिसका वर्णन
४१ नहीं किया जा सकता।"

बयालीसवाँ अध्याय

शिशुपाल की बातें सुनकर भीमसेन का कोप करना

शिशुपाल ने कहा—हे भीष्म, तुम लोग ईश्वर समझकर जिसकी पूजा करते हो उसी कृष्ण को दास समझकर महाबली जरासन्ध ने उससे लड़ना नामञ्जूर कर दिया था। महाराज जरासन्ध मेरे माननीय मित्र थे। कृष्ण, भीम और अर्जुन ने जिस उपाय से राजा जरासन्ध की हत्या की है उसे याद करके किस धर्मात्मा पुरुष को दुःख न होगा? इस धोखेबाज़ कृष्ण

ने दरवाज़े से न जाकर दूसरी ओर से नगरी में प्रवेश किया और राजपुरी में जरासन्ध के पास जाकर अपने को ब्राह्मण बताया। राजा ने जब पाद्य-अर्घ्य आदि देना चाहा तब इस दुष्ट ने अपना ब्राह्मण होना अस्वीकार किया। जरासन्ध के पराक्रम को यह अच्छी तरह जानता था। महामति जरासन्ध ने जब इससे और भीमसेन तथा अर्जुन से भोजन करने के लिए कहा, तब इसी ने उसमें रुकावट डालकर अपने साथ भीम और अर्जुन को भी भोजन नहीं करने दिया।

शिशुपाल भीष्म से और भी कहने लगा—हे मूर्ख! सुनो, यदि कृष्ण को तुम जगत् का रचयिता समझते हो तो यह फिर अपने को ब्राह्मण मानने में क्यों डरता है? तुम इन पाण्डवों को उस राह पर चलने की सलाह देते हो जिसकी साधु निन्दा करते हैं, और ये भी उसी उपदेश को धर्म समझते हैं, यही मुझे अत्यन्त आश्चर्य जान पड़ता है। अथवा जब तुम ऐसा वृद्ध और नपुंसक इनका अगुआ और सब कामों में सलाहकार है, तब इनका ऐसा होना विचित्र नहीं।

वैशम्पायन कहते हैं—शिशुपाल के ऐसे कठोर कड़वे तिरस्कार के वचन सुनकर महाबली भीमसेन क्रोध के मारे काँपने लगे। उनके विशाल और सहज ही लाल नेत्र क्रोध से और भी फैल गये, और भी लाल हो उठे। वे दाँतों से ओठ चबाने लगे। उनके विशाल माथे पर तीन बल खाई हुई भौंहें त्रिपथगा गङ्गा के समान शोभित हुईं। वे दाँत पीसने लगे। भीमसेन की वह भयङ्कर मूर्त्ति देखकर डर के मारे राजा लोग चुप रह गये, उनके मुँह से बोल निकलना कठिन हो गया। उन्हें भीमसेन प्रलयकारी मृत्यु के समान जान पड़ने लगे।

१०

भीम-पराक्रमी भीमसेन को भयानक वेग से झपटने के लिए तैयार देखकर, भगवान् शङ्कर जैसे युद्ध के लिए उद्यत कार्त्तिकेय को रोक लें वैसे ही, हाथ फैलाकर प्रशान्तमूर्त्ति पितामह भीष्म ने उन्हें रोक लिया। फिर वे अनेक प्रकार के मधुर और श्रेष्ठ वचनों से भीमसेन को शान्त करने का उद्योग करने लगे। प्रचण्ड और उठी हुई लहरों से पूर्ण अथाह समुद्र जैसे, वर्षाकाल न रहने पर भी, अपने किनारे की भूमि को लाँघ नहीं सकता वैसे ही भीमसेन भी पितामह के वचनों का उल्लङ्घन नहीं कर सके। क्रोधित भीमसेन की भयङ्कर

मूर्त्ति देखकर भी शिशुपाल बिलकुल नहीं डरा। वह बेखटके और भी कठोर बातें कहने लगा। सिंह जैसे मृग के बच्चे को कुछ नहीं समझता, वैसे ही शिशुपाल ने भीमसेन के बल की कुछ परवा नहीं की। भीमसेन अत्यन्त अधीर हो-होकर बारम्बार शिशुपाल पर हमला करने को तैयार होते थे और भीष्म पितामह बलपूर्वक उन्हें रोके हुए थे।

चेदि-नरेश शिशुपाल ने भीमसेन को बहुत ही क्रोधित देख हँसकर कहा—भीष्म, तुम बेकार क्यों भीमसेन को रोकने का कष्ट उठा रहे हो? ज़रा छोड़ तो दो। ये आये हुए राजा लोग भी देख लें, पतङ्ग के समान यह कैसे मेरे प्रताप की जलती हुई आग में फाँदकर राख हो

२० जाता है। शिशुपाल के ये गर्व-भरे बचन सुनकर कुरु-श्रेष्ठ भीष्मजी भीमसेन से यों कहने लगे।

तेंतालीसवाँ अध्याय

शिशुपाल के जन्म की कथा

भीष्म ने कहा—यह घमण्डी शिशुपाल जब अपनी मा के पेट से पैदा होकर पृथ्वी पर गिरा था तब गधे का सा शब्द करके चिल्लाया और रोया था। जन्म के समय इसके तीन आँखें और चार हाथ थे। इसकी विचित्र सूरत देखकर और भयानक शब्द सुनकर सपरिवार माता-पिता ने डर के मारे इसे त्याग देने का विचार किया। स्त्री, मन्त्री और पुरोहित के साथ चेदि-राज चिन्ता में डूब रहे थे, इसी समय आकाशवाणी हुई कि राजन्, तुम पुत्र-जन्म होने से प्रसन्न न होकर अकारण क्यों इतना डर रहे हो? इस बालक से तुम्हारा कुछ भी अनिष्ट होने की सम्भावना नहीं। तुम्हारा यह पुत्र बड़ा बली और श्रीमान् होगा। इसलिए हे महाराज, तुम चिन्ता छोड़कर यत्न के साथ इसका पालन-पोषण करो। अभी इसकी मृत्यु न होगी; अभी समय नहीं है। जो इसे शस्त्र से मारेगा वह भी पृथ्वी पर उत्पन्न हो चुका है।

आकाशवाणी सुनने पर इसकी माता ने, स्नेह के वश होकर, इसे गोद में उठा लिया। इसकी मृत्यु का हाल सुनने से घबराकर उसने, उसी आकाशवाणी को लक्ष्य करके, कहा—जिसने मेरे पुत्र के बारे में ये वचन कहे हैं उसे प्रणाम करके मैं इतना और पूछती हूँ कि इस बालक की मृत्यु किसके हाथ से होगी—देवता के या मनुष्य के? यह मैं खुलासा सुनना चाहती हूँ। तब फिर आकाशवाणी हुई,—जिसकी गोद में जाने से इस बालक के दो हाथ और एक

१० आँख ग़ायब हो जायगी वही इसे मारेगा।

तीन आँखों और चार हाथोंवाले अद्भुत बालक के जन्म का और उसके सम्बन्ध में विचित्र देववाणी होने का हाल सुनकर अनेक राजा लोग कौतूहल-वश इसे देखने आने लगे।

हर-एक की, यथायोग्य पूजा और सत्कार करके, गोद में चेदि-राज इस बालक को देने लगे। उन्होंने हज़ारों राजाओं की गोद में बालक को दिया पर इसकी एक आँख और दो हाथ ग़ायब नहीं हुए। बालक के मारनेवाले का पता न चला।

अन्त को द्वारका पुरी में इस अद्भुत वृत्तान्त का हाल पहुँचने पर श्रीकृष्ण भी महाबली बलभद्र के साथ अपनी बुआ के उस बालक को देखने वहाँ गये। यथायोग्य प्रणाम और कुशल-प्रश्न के बाद श्रीकृष्ण और बलभद्र सुन्दर आसन पर बैठे। बुआ ने दोनों वीरों का यथोचित सत्कार किया और फिर प्रीति-पूर्वक अपने बेटे को कृष्ण की गोद में दे दिया। श्रीकृष्ण के अङ्ग से छू जाते ही शिशुपाल के दो हाथ गिर पड़े और एक आँख ग़ायब हो गई।

यह देखकर शिशुपाल की मा ने दुःखित होकर कृष्ण से वरदान माँगा। रानी ने अपने भतीजे कृष्ण से कहा—हे महाबाहो, तुम भयभीत लोगों के एकमात्र आश्रयदाता हो, उन्हें तुमसे अभय और आश्वासन मिलता है। मैं डरकर तुमसे एक वरदान माँगती हूँ। वह मुझे दो।

बुआ के ये विह्वल वचन सुनकर यदुपति ने कहा—हे देवि, तुम डरो मत। मुझसे तुम्हें कोई डर नहीं है। बुआजी, कहिए, मैं क्या वर दूँ? क्या करूँ? चाहे हो सकता हो और चाहे न हो सकता हो, लेकिन मैं तुम्हारा कहा करूँगा। कृष्ण के ये दया-पूर्ण वचन सुनकर रानी ने कहा—बेटा, तुम यदु-कुल के हज़ारों वीरों में श्रेष्ठ और उनके मुखिया हो। तुमसे मेरा यही अनुरोध है कि अगर शिशुपाल कभी तुम्हारा कुछ अपराध करे तो तुम बुरा न मानना; क्षमा कर देना। श्रीकृष्ण ने कहा—बुआजी, तुम्हारा पुत्र यदि मार डालने के योग्य अपराध भी करेगा तो मैं वैसे सौ अपराधों तक कुछ नहीं कहूँगा; बराबर क्षमा करता जाऊँगा। तुम शोक न करो। २०

कथा समाप्त करके भीष्म ने कहा—देखो भीमसेन, यह नासमझ पापी नरक-योग्य शिशुपाल श्रीकृष्ण के इसी वरदान से घमण्ड में आकर बेखटके बारम्बार तुमको युद्ध के लिए ललकार रहा है। २५

चवालीसवाँ अध्याय

शिशुपाल का और अधिक कटु वाक्य कहना

भीष्म ने कहा—शिशुपाल जिस बुद्धि से वासुदेव को ललकार रहा है यह इसकी अपनी बुद्धि नहीं है; यह तो जगत्पति कृष्ण की प्रेरणा से ही ऐसा कर रहा है। हे भीमसेन, काल-वश हुए बिना कौन सा भूपाल पृथ्वी पर इस तरह मेरी धर्षणा—गाली-गलौज—कर सकता है जैसी इस कुल-कलङ्क शिशुपाल ने की है? इसमें विष्णु के तेज का अंश अवश्य है और

उसी के बल-बूते पर यह हम लोगों की अवहेलना करके सिंह की भाँति गरज रहा है; सो अब उस अपने अंश को भगवान् वासुदेव फिर वापस ले लेना चाहते हैं।

वैशम्पायन कहते हैं—भीष्म के मुँह से ऐसी मर्म की बात सुनकर शिशुपाल और भी कुपित हो उठा। क्रुद्ध होकर वह कहने लगा—हे भीष्म, मैं चाहता हूँ कि तुम अत्यन्त ख़ुशामदी टट्टू—बन्दीजन—की तरह जिसकी स्तुति कर रहे हो उस कृष्ण का जैसा प्रभाव है, वही हम शत्रुओं का प्रभाव हो। औरों की स्तुति करना ही अगर तुम्हारे जीवन का मुख्य उद्देश्य है तो कृष्ण को छोड़कर इन सब आये हुए राजाओं की आराधना करो। इन महाराज वाह्लीक-नरेश दरद के जन्म के समय यह पृथ्वी मानों फटने लगी थी, सो इनकी स्तुति करो। अथवा देव-निर्मित परम रमणीय कुण्डलों को कानों में पहननेवाले, महाधनुष को खींचनेवाले, सुन्दर १० शरीर पर सदा बाल-सूर्य सदृश तेज से चमक रहा स्वाभाविक कवच धारण करनेवाले, बाहु-युद्ध में इन्द्र-सदृश पराक्रमी जरासन्ध को भी नीचा दिखानेवाले इन इन्द्र-तुल्य अङ्गराज कर्ण की स्तुति करो; या ब्राह्मण-श्रेष्ठ द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा, इन बाप-बेटे की यथाशक्ति स्तुति करो। मैं समझता हूँ, इन दोनों में से कोई भी क्रोध करके चाहे तो चराचर जगत् और पृथ्वी का नाश कर सकता है। युद्ध में द्रोण की या अश्वत्थामा की बराबरी करनेवाला कोई राजा मुझे नहीं देख पड़ता। कैसे खेद की बात है कि तुम उनमें से किसी की स्तुति करना नहीं चाहते। जगत् में जिनकी तुलना नहीं हो सकती अर्थात् जिनका सामना करनेवाला कोई नहीं है, वे प्रबल प्रतापी महाराज दुर्योधन, परमपराक्रमी अस्त्रविद्या में निपुण महाराज जयद्रथ, लोक-प्रसिद्ध किम्पुरुषराज द्रुम और भरतकुल के आचार्य शरद्वान् के पुत्र कृपाचार्य आदि बड़े-बड़े वीर क्या तुम्हारी दृष्टि में कृष्ण से कुछ हीन हैं? फिर क्यों कृष्ण की प्रशंसा करते हो? धनुर्द्धर पुरुषों में श्रेष्ठ रुक्मी को छोड़कर कृष्ण की क्यों बड़ाई कर रहे हो? भीष्मक, दन्तवक्र, भगदत्त, यूपकेतु, मागध जयत्सेन, विराट, द्रुपद, शकुनि, बृहद्बल, विन्द, अनुविन्द, पाण्ड्य, श्वेत, २० उत्तम, महाभाग शङ्ख, वृषसेन, एकलव्य, कलिङ्गराज आदि सब महाराज एक से एक बढ़कर हैं। इन सबको छोड़कर तुम केवल कृष्ण की क्यों प्रशंसा कर रहे हो? भीष्म, यदि तुम्हारी आदत ही स्तुति करने की पड़ गई है तो शल्य आदि राजाओं की स्तुति क्यों नहीं करते?

भीष्म, मैं क्या करूँ जो तुमने बड़े-बूढ़ों के साथ रहकर भी यह नहीं सुना कि आर्य पुरुषों को अपनी निन्दा, अपनी बड़ाई, पराई निन्दा और पराई ख़ुशामद न करनी चाहिए। भीष्म, तुम मोह और भक्ति के वश होकर इस स्तुति के अयोग्य कृष्ण की बेहद स्तुति कर रहे हो। यहाँ पर विद्यमान कोई पुरुष तुम्हारे इस कथन का अनुमोदन करने के लिए तैयार नहीं है। राजा कंस के नौकर, बछड़े चरानेवाले, दुरात्मा कृष्ण को जगद्गुरु और जगत् का आधार कहते तुमको तनिक भी सङ्कोच नहीं होता? किन्तु मेरा यह सब कहना व्यर्थ है; तुम्हारी

यह बुद्धि ठिकाने नहीं आ सकती। मैं समझता हूँ, तुम उसी भूलिङ्ग पक्षी के समान हो जो सदा हिमवान् पर्वत के पास रहता है। वह सदा उपदेश की वाणी तो कहा करता है कि "साहस मत करना" किन्तु स्वयं सिंह के मुँह के भीतर से, चोंच से, मांस की बोटी खींच लाता है। सिंह की कृपा से वह पक्षी जीता है। उसे नासमझ साधारण प्राणी समझकर सिंह ३० कुछ नहीं बोलता। हे अधर्म-तत्पर भीष्म, वैसे ही तुम भी आप अधर्म का आचरण करके औरों को धर्म का उपदेश करते हो। इन राजाओं के कुछ न बोलने से ही तुम्हारी ज़िन्दगी बची हुई है। ये चाहें तो अभी तुम्हें यमपुर का पाहुना बना दें। जो हो, लोगों का अप्रिय काम करने-वाला कोई और तुम्हारे समान न होगा।

शिशुपाल के ऐसे कठोर वचन सुनकर भीष्मजी कहने लगे—ठीक है, इन राजाओं की इच्छा से या कृपा से मैं जीवित हूँ! अस्तु, मैं पुकारकर कहता हूँ कि इन राजाओं को मैं तिनके के बराबर भी नहीं गिनता।

भीष्म के मुँह से ये वचन सुनकर राजाओं की मण्डली में महा कोलाहल होने लगा। कोई-कोई राजा क्रोध से आग-बबूला हो उठे। कोई साधु राजा प्रसन्न हुए। कोई अभिमानी राजा इससे अपना अपमान मानकर भीष्म की निन्दा करने लगे। कुछ लोग ऊँचे स्वर से कहने लगे कि यद्यपि इस पापी बुड्ढे की देह का मांस लटक गया है, बाल पक गये हैं, तो भी इसका घमण्ड नहीं घटा। यह क्षमा के योग्य नहीं है। हे राजाओ, इसे पकड़कर या तो पशु की तरह मार डालो अथवा जला दो।

कुपित राजाओं के ये वचन सुनकर महामति भीष्म ने कहा—हे समागत राजाओ, तुम क्यों कोलाहल और बकवाद कर रहे हो? मुँह से मुँह नहीं मानता, बात बढ़ती ही जाती है। मैं जो तुमसे कहता हूँ सो सुनो। तुम लोग चाहे मुझे पशु की तरह मारो, चाहे आग में जला दो; मैं तुम सबके सिर पर यह पैर रखता हूँ, जिसके किये जो हो सके सो करे। हमारे ४० द्वारा पूजित ये गोविन्द मौजूद हैं। जिसकी इच्छा शीघ्र मरने की हो वह गदा-चक्र-धारी कृष्ण को लड़ने के लिए बुलावे और मरकर इन्हीं जगत्पति के शरीर में लीन हो जाय। ४२

पैंतालीसवाँ अध्याय

शिशुपाल का मारा जाना

वैशम्पायन कहते हैं कि भीष्म के ये वचन सुनकर महाबली शिशुपाल ने, कृष्ण से युद्ध करने के लिए उद्योग करते हुए, कहा—हे जनार्दन, आगे बढ़ो। मैं तुमको युद्ध के लिए

ललकारता हूँ। आज अवश्य ही पाण्डवों-समेत तुमको मारकर मैं सब बखेड़ा मिटा दूँगा। तुम्हारी गिनती राजाओं में नहीं है, तो भी पाण्डवों ने सब राजाओं का अनादर करके तुम्हारी पूजा की है। इसी कारण तुम्हारे साथ पाण्डवों को भी मैं दुनिया से हटा दूँगा। दुर्मति वासुदेव, तुम [पशुपालक] दास होकर किसी तरह पूजा के योग्य नहीं हो। तुम्हारे निन्दित आचार-व्यवहार, रीति-नीति और अवस्था का हाल जानकर भी पाण्डवों ने तुम्हारी पूजा की है, इस कारण वे मारे जाने के योग्य हैं। चेदि-देश का राजा महाबाहु शिशुपाल इस तरह अनेक प्रकार के कटु वचन कहकर क्रोध के मारे गरजने लगा।

शिशुपाल के ऐसे कटु वचन सुनकर पाण्डवों के समीप, सब राजाओं के आगे, श्रीकृष्ण अत्यन्त कोमल स्वर में उनसे कहने लगे—हे नरपतियो! देखो, यह पापी हम यादवों का शत्रु है। हम लोगों ने कभी इसके साथ यद्यपि कुछ बुराई नहीं की, तो भी यह दुराचारी सदा हमारा अनिष्ट करने की धुन में लगा रहता है। हमारे प्राग्ज्योतिषपुर में जाने की ख़बर पाते ही यह दुष्ट जाकर द्वारका पुरी को जला आया। पहले राजा भोज रैवतक पहाड़ पर विहार कर रहे थे; तब इस दुष्ट ने वहाँ जाकर उनके कुछ अनुचरों को मारा। फिर यह उनको और उनके कुछ अनुचरों को बाँधकर अपने नगर में ले गया। मेरे पिता के अश्वमेध यज्ञ में विघ्न डालने के लिए इसने यज्ञ के घोड़े को हर लिया। तपस्वी बभ्रु की स्त्री जब सौवीर देश को जा रही
१० थी तब इस नीच ने, रास्ते में आक्रमण करके, बलपूर्वक उसका सतीत्व नष्ट किया। यह निष्ठुर पापी निःसङ्कोच होकर करूष-राज की पोशाक पहनकर, करूष-राज से जिसका ब्याह होनेवाला था उस, विशाला पुरी के राजा (मामा) की कन्या भद्रा को धोखा देकर उड़ा लाया। इस पापी ने बहुत से घोर पाप किये हैं। बुआ की बात मान लेने से ही मैंने इसके इन अत्याचारों को क्षमा किया और इसे नहीं मारा। इस समय जो यह मेरी बुराई कर रहा है सो आप लोग प्रत्यक्ष देख ही रहे हैं। यह दुष्ट समय-समय पर हम लोगों के साथ जैसा बुरा बर्ताव करता रहता है सो मैंने सब राजाओं को सुना दिया। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार मैं इसके सौ अपराध क्षमा कर चुका। आज यह नराधम किसी तरह जीता नहीं बच सकता; आज मेरा यह क्रोध व्यर्थ नहीं जा सकता। यह मूर्ख ऐसा अज्ञानी और मोहान्ध है कि बिना किसी सङ्कोच के रुक्मिणी को ब्याहने के लिए तैयार हो गया था; किन्तु शूद्र के वेद पढ़ने के यत्न की तरह इसका वह उद्योग बिलकुल ही बेकार हुआ।

वैशम्पायन कहते हैं कि सभा में स्थित राजा लोग कृष्ण की ज़बानी शिशुपाल के स्वभाव और चरित्र का हाल जानकर उसकी निन्दा करने लगे; किन्तु पापी चेदि-राज, श्रीकृष्ण के वचन सुनकर, लज्जित होने के बदले ज़ोर से हँसकर कहने लगा—हे वासुदेव, तुमने इस राजमण्डली के सामने बिना किसी झिझक के रुक्मिणी के ब्याह का हाल कहा, इसमें तुमको तनिक भी लज्जा

कृष्ण ने शत्रु-सेना का नाश करनेवाले सुदर्शन-चक्र को याद किया। याद करते ही वह तीक्ष्ण चक्र चक्र-पाणि कृष्ण के हाथ में आ गया।—पृष्ठ ६०५

नहीं आई? रुक्मिणी से तो पहले मेरा ही विवाह पक्का हुआ था। [स्वयंवर का तुम्हें निमन्त्रण तक नहीं मिला था; किन्तु तुम छिपकर उसे हर लाये। चोरी किसी के लिए बड़ाई की बात नहीं हो सकती।] खैर, सबको मालूम हो गया कि तुम्हारे अधिकांश काम ऐसे ही प्रशंसनीय हैं। तुम भरी सभा में आप ही अपनी स्त्री को 'पहले दूसरे की स्त्री' कह रहे हो। यह क्या तुम्हारे लिए कम प्रशंसा का काम है! इसलिए तुम चाहो तो क्षमा करो और चाहे न करो। तुम्हारे क्रोध या प्रसन्नता की मैं कुछ परवा नहीं करता। तुम मेरा क्या बिगाड़ सकते हो? २०

शिशुपाल की ये शेख़ी की बातें सुनकर श्रीकृष्ण ने शत्रु-सेना का नाश करनेवाले सुदर्शन चक्र को याद किया। याद करते ही वह तीक्ष्ण चक्र चक्र-पाणि कृष्ण के हाथ में आ गया। तब भगवान् ने बड़े गम्भीर स्वर से कहा—हे नर-पतियो, मैं अब तक इस नालायक़ के कुवाच्य क्यों सुनता रहा, सो तो आप सुन ही चुके। पहले मैं इसकी माता—अपनी बुआ—से उनके पुत्र के मार डालने के योग्य सौ अपराध तक क्षमा करने का वादा कर चुका हूँ। इस समय मेरी वह प्रतिज्ञा पूरी हो चुकी। मैंने गिनकर देख लिया, इस दुर्बुद्धि के सौ से अधिक अपराध हो चुके। अब मैं इसे क्षमा नहीं कर सकता।

अब श्रीकृष्ण ने राजाओं के आगे वह सुदर्शन चक्र चलाया। चक्र ने उसी समय शिशुपाल का सिर काट डाला। वज्र के प्रहार से पहाड़ जैसे फट पड़े वैसे ही चक्र लगने से, सिर कट जाने पर, शिशुपाल पृथ्वी पर गिर पड़ा। सब राजाओं के सामने ही उसके शरीर से बिजली के समान तेज निकला। वह तेज कृष्ण के पैरों के पास चक्कर लगाकर उन्हीं में समा गया। यह तमाशा देखकर सभी को बड़ा अचरज हुआ। इसी समय बिना बादल के वज्रपात, भूकम्प आदि अनेक कुलक्षण होते दिखाई पड़ने लगे। उनको देखकर अनिष्ट की आशङ्का से सब राजा डर गये। ऐसे अचरज को देखकर कोई-कोई राजा तो चित्र-लिखे से चुपचाप कृष्ण की ओर ताकने लगे। उनकी बुद्धि ही इस मामले में कुछ काम न करती थी। कोई- ३० कोई शिशुपाल के नातेदार राजा, उसके मारे जाने से, क्रोधान्ध होकर हाथ मलने और दाँत पीसने लगे। कुछ राजा मन ही मन कृष्ण की बड़ाई करने लगे। कोई कुपित हुए, कोई प्रसन्न हुए और कोई मध्यस्थ भाव से तमाशा देखते रहे। सभा के स्थान में बड़ा कोलाहल मच गया।

प्रसन्नचित्त ऋषि लोग मन ही मन केशव की प्रशंसा करके, स्तुति करने के उपरान्त, अपने-अपने स्थान को चल दिये। महात्मा ब्राह्मण और सब राजा लोग कृष्ण के पराक्रम को देखकर आनन्द के साथ धन्य-धन्य कहने लगे। इधर पाण्डवों ने, धर्मराज युधिष्ठिर की आज्ञा से, शीघ्र ही दमघोष के बेटे शिशुपाल के शरीर को ले जाकर उसका अन्त्येष्टि कर्म किया। आये हुए सब राजाओं के साथ धर्मराज युधिष्ठिर ने चेदि-राज्य के सिंहासन पर शिशुपाल के पुत्र को बिठा दिया। फिर पाण्डुवंश के मुखिया युधिष्ठिर ने उस महासमृद्धिशाली, धन-धान्य-पूर्ण राज-

सूय महायज्ञ का बचा हुआ काम समाप्त किया। इस प्रकार निर्विघ्न रूप से यज्ञ को समाप्त होते देखकर युधिष्ठिर को बड़ा आनन्द हुआ। शार्ङ्ग धनुष, गदा और चक्र धारण किये हुए भगवान् कृष्णचन्द्र समाप्ति तक यज्ञ की रक्षा करते रहे।

फिर अवभृथ स्नान हो चुकने पर राजाओं ने धर्मात्मा प्रतापी युधिष्ठिर के पास जाकर कहा—हे राजा युधिष्ठिर, आप अजमीढ़वंश के रत्न हैं। आपने इस धर्मकार्य का अनुष्ठान करके सारे अजमीढ़वंश को यशस्वी बना दिया। आपकी जय हो। सौभाग्य के कारण आपका यह अभ्युदय हुआ है। सारा अखण्ड साम्राज्य अब आपके अधिकार में है। महाराज, हम लोग जैसे सम्मान के साथ निमन्त्रण पाकर आये थे, वैसे ही आपके यहाँ आदर-सत्कार पाकर और यज्ञ देखकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई। अब हम लोग अपने राज्यों को जाना चाहते हैं। कृपा करके अनुमति दीजिए।

४०

राजाओं के ऐसे विनीत और न्याय-सङ्गत वचन सुनकर धर्मराज ने उन सबका यथोचित सत्कार किया। फिर अपने भाइयों से कहा—ये राजा लोग निमन्त्रण पाकर प्रसन्नता से यज्ञ देखने आये थे। अब ये लोग बिदा होकर अपने-अपने राज्य को जाना चाहते हैं। इसलिए तुम लोग इन्हें इनके राज्यों तक पहुँचा आओ। आज्ञा-पालन करनेवाले पाण्डव, बड़े भाई की आज्ञा को शिरोधार्य करके, राजाओं को पहुँचाने के लिए उनके साथ गये।

धृष्टद्युम्न राजा विराट को भेजने गये। महावीर अर्जुन महाराज द्रुपद को पहुँचाने गये। भीमसेन, भीष्म और धृतराष्ट्र के साथ गये। सहदेव अश्वत्थामा-सहित धनुर्वेद के आचार्य गुरु द्रोण को भेजने गये। नकुल राजा सुबल और उनके पुत्र को भेजने गये। सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु और द्रौपदी के पुत्र-गण सब पहाड़ी राजाओं और प्रधान-प्रधान क्षत्रियों के साथ गये। वेद-वेदाङ्ग के पूरे ज्ञाता हज़ारों ब्राह्मणों को भी विशेष रूप से पूजा-सत्कार आदि से सन्तुष्ट करके

५० युधिष्ठिर ने बिदा किया।

इस प्रकार धीरे-धीरे सबको बिदा करने के बाद एक दिन वसुदेव के आनन्द को बढ़ानेवाले द्वारकानाथ कृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा—हे कुरुकुल-तिलक, बड़े सौभाग्य की बात है कि राज-

सूय यज्ञ को निर्विघ्न समाप्त करके आप साम्राज्य पद को पा गये। सब ब्राह्मण और राजा लोग भी बिदा होकर अपने-अपने स्थानों को चले गये। अब मुझे भी द्वारका जाने की आज्ञा दीजिए।

यह सुनकर धर्मराज ने कहा—वासुदेव, तुम्हारे प्रसाद से मेरा यह यज्ञ निर्विघ्न रूप से समाप्त हुआ है। तुम्हीं सब यज्ञों के ईश्वर हो। यदि हम पर तुम्हारी कृपा न होती, तुम हमारे अनुकूल न होते तो ये सब क्षत्रिय कभी मेरी अधीनता न स्वीकार करते और उत्तम रत्न, धन आदि भेंट में देकर मेरी उपासना न करते। हे निष्पाप, जब तुम मेरे पास नहीं होते तब, घड़ी भर के लिए भी, मैं सुखी नहीं रह सकता। तुमको क्या कहकर मैं विदा करूँ? मेरे मुँह से तो इस बारे में कोई बात ही नहीं निकलती। क्या करूँ, द्वारकावासियों को ही तुम्हारे पास रहने के सुख से कैसे वञ्चित रक्खूँ।

युधिष्ठिर के यों कह चुकने पर वासुदेव, उनको साथ लिये हुए, कुन्ती के पास गये। वहाँ जाकर प्रसन्नता से कृष्ण ने कहा—बुआजी, आपके पुत्र धर्मराज महायज्ञ करके अब पृथ्वीमण्डल के चक्रवर्त्ती राजा हो गये हैं। इस समय आपके प्रसाद से इन्हें बहुत धन और असीम ऐश्वर्य प्राप्त है। आप प्रसन्न हों। अब मुझे आज्ञा दीजिए तो मैं भी द्वारका को जाऊँ। इस प्रकार कुन्ती से विदा होकर कृष्णचन्द्र सुभद्रा और द्रौपदी के पास गये। उनसे भी यथोचित बातचीत करके और विदा होकर कृष्णचन्द्र रनिवास से बाहर आये। फिर स्नान-पूजन के उपरान्त उन्होंने यात्रा के समय ब्राह्मणों से स्वस्ति पाठ कराया। इसी समय दारुक सारथी मेघ के रङ्ग का रथ जोतकर ले आया। कमलनयन हरि ने रथ आने पर उसकी प्रदक्षिणा की। फिर उस पर ६० चढ़कर वे द्वारका पुरी को चल दिये।

युधिष्ठिर और उनके भाई कृष्णचन्द्र के पीछे-पीछे पैदल चले। खिले हुए कमल के समान विशाल नेत्रोंवाले वासुदेव ने घोड़ों को रोककर धर्मराज को गले लगाया और कहा—महाराज, सदा सावधानी के साथ प्रजा का पालन और उसका मनोरञ्जन करते रहिएगा। मेघ जैसे सब प्राणियों की जीविका के आधार हैं, वृक्ष जैसे पक्षियों के आश्रयस्थल हैं, देवराज इन्द्र जैसे देवताओं की रक्षा करते हैं, वैसे ही आप बन्धु-बान्धवों तथा प्रजा की रक्षा कीजिए, उन्हें आश्रय दीजिए। राह में श्रीकृष्ण और धर्मराज से यों बातचीत हुई। फिर दोनों एक दूसरे से विदा होकर अपने-अपने नगर को चल दिये।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्ण द्वारका पुरी की ओर चल दिये। अब केवल दुर्योधन और राजा सुबल के पुत्र शकुनि ये दोनों, पाण्डवों के साथ उनकी सभा में कुछ दिन के लिए और ठहर गये। ६८

द्यूतपर्व

छियालीसवाँ अध्याय

व्यास के साथ युधिष्ठिर की बातचीत

वैशम्पायन कहते हैं—राजसूय महायज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो जाने पर एक दिन शिष्य-मण्डली-सहित व्यासदेवजी पाण्डवों के पास आये। उन्हें देखकर धर्मराज जल्दी से आसन से उठ खड़े हुए। फिर अपने भाइयों के साथ प्रणाम करके उन्होंने पाद्य, अर्घ्य, आसन आदि सामग्री से अपने पितामह का पूजन किया। व्यासजी जब युधिष्ठिर के दिये हुए सोने के आसन पर बैठ गये तब, आज्ञा पाकर, युधिष्ठिर भी और आसन पर बैठे। भाइयों-सहित उनके बैठ जाने पर व्यासजी ने कहा—हे कुरु-कुलदीपक, सौभाग्यवश तुम्हारे

दुर्लभ असीम साम्राज्य पा जाने से कुरुदेश की बड़ी उन्नति और श्रीवृद्धि हो रही है। तुमने अपने वंश का मुख उज्ज्वल कर दिया। हे क्षत्रिय-श्रेष्ठ, मैं निमन्त्रण पाकर तुम्हारे यज्ञ में आया था, अब तुमसे पूछकर अपने आश्रम को जाना चाहता हूँ।

युधिष्ठिर ने व्यासजी के चरण छूकर कहा—भगवन्, देवर्षि नारद ने मुझसे कहा था कि राजसूय यज्ञ करने पर स्वर्ग, आकाश और पृथ्वी में तीन प्रकार के उत्पात दिखाई देंगे। मैं आपसे अपने हृदय का संशय दूर करने के लिए पूछता हूँ कि शिशुपाल के मरने से उन उत्पातों का कुफल शान्त हो गया या नहीं।

१० युधिष्ठिर के इन आग्रह-पूर्ण वचनों को सुनकर व्यासदेव ने कहा—राजन्, तेरह वर्ष के बाद इन उत्पातों का घोर फल होगा। उस समय तुम्हारे कारण क्षत्रियों का नाश हो जायगा। दुर्योधन के अपराध के कारण, भीमसेन और अर्जुन के बल से, तुम्हारे लिए यथासमय पृथ्वी-मण्डल के अधिकांश क्षत्रिय मारे जायँगे। हे राजेन्द्र, रात के पिछले पहर तुम यह स्वप्न देखोगे कि वृषध्वज त्रिपुरनाशन उग्ररूप शङ्कर हाथ में मनुष्य की खोपड़ी लिये हुए, कैलास-शिखर-तुल्य

नन्दी की पीठ पर बैठे, हाथ में त्रिशूल लिये दक्षिण दिशा की ओर देख रहे हैं। महाराज, ऐसा स्वप्न देखकर तुम डरना मत; क्योंकि काल को कोई टाल नहीं सकता, इसलिए डरना या चिन्ता करना व्यर्थ है। तुम्हारा भला हो। तुम सदा धैर्य के साथ स्थिरचित्त से नीति-नियम के अनुसार सुखपूर्वक प्रजा का पालन करते रहो। अब मैं कैलास पर्वत पर जाता हूँ। बस, अपनी शिष्य-मण्डली के साथ व्यासजी कैलास पर्वत को चल दिये।

उनके चले जाने पर राजा युधिष्ठिर शोक से बहुत ही व्याकुल होकर लम्बी और गर्म साँसें लेने लगे। वे हर घड़ी व्यास की कही बातों का ध्यान करके सोचने लगे कि पौरुष के द्वारा कभी कोई दैवशक्ति को मिथ्या नहीं कर सकता। महर्षि जो कह गये हैं, वह अवश्य होगा। २० उसे कोई टाल नहीं सकता। इसके बाद उन्होंने अपने छोटे भाइयों से कहा—भाइयो, महर्षि जो कह गये हैं सो सब तुम लोगों ने भी सुना है। उनके कथन को सुनकर मैंने अपने प्राण दे देने का सङ्कल्प कर लिया है। यदि मैं ही किसी समय सब क्षत्रियों के नाश का कारण बनूँगा तो फिर मेरा जीना किस काम का?

यह सुनकर अर्जुन ने कहा—बुद्धि को भ्रष्ट करनेवाले भयानक मोह के वश होकर ही आप ऐसी बातें कह रहे हैं। आप अकारण मोह के वश न हूजिए। चित्त को सावधान करके सोचिए, जिस काम में कल्याण जान पड़े वही कीजिए।

अर्जुन ने बहुत कुछ कहा, किन्तु समय-समय पर व्यास की बातें याद करके युधिष्ठिर का व्याकुल होना नहीं बन्द हुआ। उन्होंने अत्यन्त व्याकुल होकर भाइयों से कहा—भाइयो, तुम्हारा मङ्गल हो। मेरी प्रतिज्ञा सुनो। मैं आज से अपने भाइयों या अन्य राजाओं के लिए कठोर वाणी का प्रयोग न करूँगा। अपनी जातिवालों की आज्ञा के वश में होकर मैं सब काम करूँगा। पुत्र, प्रजा, बड़े और छोटे, सभी लोगों के साथ समान व्यवहार करूँगा। तब मेरे द्वारा भेदभाव—जो सब लड़ाई-झगड़ों की जड़ है, उस—के उत्पन्न होने का खटका न रह जायगा। मित्रों में भेदभाव पड़ने से ही युद्ध की आग जल उठती है। मैं झगड़े को एकदम मिटाकर ऐसे ही काम करूँगा जो सबको प्रिय होंगे। ऐसा करने से मुझे लोक-निन्दा का पात्र न बनना पड़ेगा। [यदि इन तेरह वर्षों तक जीता रहा तो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि ऐसा ही करूँगा।]

मङ्गल की इच्छा रखनेवाले भीमसेन आदि भाइयों ने धर्मराज के इस कथन का अनुमोदन किया। सब अभ्यागतों के चले जाने पर महाराज युधिष्ठिर इस प्रकार श्रेष्ठ सभा में बैठकर ३० देवता, पितृगण और ब्राह्मण आदि की पूजा तथा प्रजा का पालन करने लगे। यज्ञ के उपरान्त सब कामों से छुट्टी पाकर, कल्याण-कर्म करके, भाइयों-सहित युधिष्ठिर अपनी नगरी में आये। दुर्योधन और शकुनि दोनों, धर्मराज के साथ, सुखपूर्वक उनकी सभा में बैठकर आनन्द मनाने लगे। ३३

सैंतालीसवाँ अध्याय

दुर्योधन का अपमान और वैर की जड़ पड़ना

वैशम्पायन कहते हैं—हे भरतश्रेष्ठ, शकुनि के साथ टिका हुआ दुर्योधन वहाँ रहकर, चारों ओर फिरकर, सभा का निर्माण-कौशल देखने लगा। उस सभा में जो-जो चीज़ें और बातें दुर्योधन ने देखीं वे उसके लिए अपूर्व थीं। हस्तिनापुर में वैसी कोई सामग्री उसने न देखी थी। धृतराष्ट्र का बेटा दुर्योधन इसी तरह एक दिन सभा-मण्डप में घूम रहा था। घूमते-घूमते वह बिल्लौर पत्थर के फ़र्श पर पहुँचा तो उसे वहाँ निर्मल जल भरा मालूम पड़ा। तब उसने अपने कपड़े समेटकर ऊपर कर लिये। उसका चित्त उदास हो गया। आगे चलते-चलते वह एक जगह पानी भरा हुआ समझकर बचने लगा तो स्थल पर गिर पड़ा। [क्योंकि वहाँ तो जल था ही नहीं।] इससे वह बहुत ही झेंपा। फिर वह उठकर दुखी मन से गरम साँस लेता हुआ सभा में घूमने लगा। आगे एक बावली मिली। उसमें बहुत ही स्वच्छ पानी भरा हुआ था। दुर्योधन ने उसे भी पहले का सा फ़र्श समझा। ज्योंही उसने आगे पैर रक्खा त्योंही वह धम से उसमें जा पड़ा। उसके कपड़े भीग गये। दुर्योधन को पानी में गिरते देखकर साथ में जो नौकर-चाकर थे उनसे भी हँसी रोकी न जा सकी।

यह तमाशा देखकर भीमसेन ज़ोर से हँस उठे; किन्तु युधिष्ठिर ने उसी समय अनुचरों को सूखे कपड़े लाने की आज्ञा दी। उन कपड़ों को दुर्योधन ने पहन लिया। उसके गिरने के समय केवल भीमसेन ही नहीं, बल्कि अर्जुन, नकुल, सहदेव आदि सभी हँस पड़े थे। इससे दुर्योधन को बड़ा क्रोध चढ़ आया, पर उसने मौक़ा न देखकर उस अपने भाव को छिपा लिया। आगे बढ़ने पर दूसरी जगह फिर फ़र्श को पानी-भरा कुण्ड समझकर दुर्योधन ने मानों कूदने १० के लिए कपड़े समेट लिये। यह देखकर फिर सब लोग हँस पड़े। एक स्थान पर बिल्लौर का एक ऐसा द्वार लगा था कि वह खुला जान पड़ता था। उस बन्द दरवाज़े को खुला समझकर ज्योंही दुर्योधन आगे बढ़ा त्योंही माथे में ऐसे ज़ोर से टक्कर लगी कि वह चक्कर खाकर

गिर पड़ा। आगे चलने पर फिर एक खुला हुआ दरवाज़ा मिला। उसे बन्द जानकर धक्का देने के लिए ज्योंही दुर्योधन आगे बढ़ा त्योंही ज़ोर से गिर पड़ा। उसको बड़ी चोट आई। सभा में घूमते समय इस तरह बारम्बार धोखा खाकर दुर्योधन बहुत ही लज्जित और व्यथित हुआ। इस कारण उस अद्भुत सभा की शोभा देखना उसके लिए प्रसन्नता का कारण न होकर दुःख का ही कारण हुआ। इसके बाद धर्मराज की आज्ञा लेकर वह शकुनि के साथ हस्तिनापुर को चल दिया।

राह में जाते-जाते पाण्डवों के अपार ऐश्वर्य, सौभाग्य और अभ्युदय का ख़याल करके दुर्योधन अत्यन्त व्याकुल और खिन्न हो उठा। किस तरह पाण्डवों का सर्वनाश हो, उनका यह ऐश्वर्य न रहे, यही सोचते-सोचते उसकी बुद्धि नीच वासनाओं के कारण अत्यन्त मलिन हो उठी। वह सोचने लगा कि पाण्डव बहुत ही प्रसन्न रहते हैं; सभी राजा लोग गुणों के कारण पाण्डवों के अधीन होकर प्रसन्नता से सदा उनकी भलाई में लगे रहते हैं—उनके शुभचिन्तक हैं। बालक, बूढ़े, जवान, सभी उनकी कृपा की चाह रखते हैं। इसी चिन्ता के मारे वह गहरे विषाद के समुद्र में गोते खाने लगा।

राह में जाते समय दुर्योधन उस अनुपम सभा की शोभा और युधिष्ठिर के वैभव के विषय में चिन्ता करता हुआ यहाँ तक बेसुध था कि मामा शकुनि के बार-बार बातचीत करने पर भी कुछ उत्तर न देता था। उसके चित्त को ठिकाने पर न देख शकुनि ने कहा—भैया दुर्योधन, तुम किस कारण लम्बी साँसें लेते हुए घर को चल रहे हो? २०

दुर्योधन ने कहा—मामा, महापराक्रमी अर्जुन की अस्त्रविद्या के बल से पृथ्वीमण्डल के सब राजा हार गये और युधिष्ठिर के आज्ञाकारी हो गये। केवल भाइयों की सहायता से राजा युधिष्ठिर ने इन्द्र की तरह, बिना किसी विघ्न के, राजसूय महायज्ञ की दीक्षा लेकर उसे पूरा कर लिया। [फिर सम्राट् पद पर राज्याभिषेक होने से वे अपार यश के अधिकारी बन गये।] यह देख-सुनकर मेरे हृदय को ऐसा कठिन क्लेश हो रहा है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। इसी चिन्ता के मारे मैं, दिन-रात गर्मी की तपन से कम हो रहे जल की तरह, सूख रहा हूँ। देखो

मामा, महामाननीय शिशुपाल ने राजाओं का अपमान होते देखकर, सभा से उठकर, कृष्ण की निन्दा की थी। इसके लिए कृष्ण ने उनको मार डाला। उस समय वहाँ पर शिशुपाल की सहायता करके उनके प्राण बचानेवाला एक भी आदमी नहीं था। कृष्ण का यह सर्वथा अनुचित काम महात्मा पाण्डवों के ही प्रताप से सिद्ध हुआ। देखो, यज्ञ के अवसर पर आये हुए सब राजाओं ने असंख्य बहुमूल्य रत्न आदि, भेंट के रूप में, देकर पाण्डवों का ख़ज़ाना भर दिया है। दिनोंदिन बढ़ रही पाण्डवों की सौभाग्य-लक्ष्मी देखकर मेरी ईर्ष्या धीरे-धीरे प्रबल और प्रचण्ड होती जा रही है। मामा, यही सन्ताप मेरे शरीर को दिन-दिन सुखाता और हृदय को जलाता ३० जा रहा है। अब जीने की तनिक भी इच्छा नहीं है। जी चाहता है, पानी में डूबकर, आग में जलकर अथवा विष खाकर जान दे दूँ और इस तरह अपने सब क्लेशों का अन्त कर डालूँ। शत्रु-पक्ष की उन्नति और बढ़ती तथा अपनी हीनता देखकर कौन बलवान् आदमी अपने जीवन को सुखदायक समझकर जीना चाहेगा? ऐसी दशा में जीना निरी विडम्बना है। सोचकर देखो, मैं न तो स्त्री हूँ और न नामर्द। साथ ही मर्द होने का अभिमान ही कैसे करूँ! यदि अस्त्रधारी पुरुष होता तो शत्रुओं की ऐसी लक्ष्मी और अभ्युदय को देखकर चुप न रह सकता। कौन पुरुष शत्रुओं को अपने से बढ़ा हुआ देखकर दुःखित न होगा? शत्रु पृथ्वीमण्डल भर का चक्रवर्त्ती राजा होकर ऐश्वर्यशाली हो रहा है और राजसूय यज्ञ करके यशस्वी हो चुका है। उसका ऐसा अभ्युदय देखकर किस मानी पुरुष के हृदय में जलन न पैदा होगी? मैं अकेला शत्रु की राज्यलक्ष्मी को छीन नहीं सकता और इस काम में मुझे सहायता देनेवाले लोग भी नहीं देख पड़ते; इसलिए मैं अपना मरना ही ठीक समझता हूँ।

कुन्ती के पुत्रों को ऐसी अखण्ड राजलक्ष्मी का अधिकारी देखकर मुझे जान पड़ता है कि दैव ही सब कुछ है, पुरुषार्थ कोई चीज़ नहीं। दैव अनुकूल होने के कारण ही मेरे शत्रु आज ऐसे ऐश्वर्य और यश के अधिकारी हो रहे हैं। पौरुष और उद्योग को मैं इसलिए निष्फल कहता हूँ कि मैंने पाण्डवों को मार डालने के लिए बहुत यत्न किये, पर वे सब निष्फल हुए। वे लोग सब तरह बचकर जल में कमल की तरह दिन-दिन बढ़ते जा रहे हैं। यही कारण है कि मैं दैव को श्रेष्ठ और पौरुष या उद्योग को व्यर्थ बता रहा हूँ; नहीं तो पाण्डवों की वृद्धि और धृतराष्ट्र के पुत्रों की हानि क्यों होती? मामा! पाण्डवों की सभा, उनके ऐश्वर्य और अपने अपमान को सोच-सोचकर मैं मानों आग से जल रहा हूँ। सभा में मुझे गिरते देखकर पाण्डव तो हँसे ही, नौकर-चाकरों तक ने हँसकर मेरा अपमान किया! यह क्या मर जाने की बात नहीं है? ख़ैर, आप मुझे मरने की आज्ञा दीजिए और पिता धृतराष्ट्र से जाकर मेरा सब हाल ४० कहिए कि अपमान और शत्रुओं का ऐश्वर्य न सह सकने के कारण मैंने अपनी जान दे दी।

अड़तालीसवाँ अध्याय

शकुनि का समझाना और फिर जुआ खेलने की सलाह देना

[दुर्योधन के खेद-पूर्ण वचन सुनकर] शकुनि ने कहा—भैया दुर्योधन, युधिष्ठिर से ऐसा द्वेष रखना तुम्हें उचित नहीं। सोचकर देखो, पाण्डव लोग सदा अपने भाग्य से ही सुख भोग रहे हैं। तुम उनके नाश के लिए क्या-क्या उपाय नहीं कर चुके? अनेक उपाय करके भी तुम उन्हें नहीं मार सके। बारम्बार तुमने यत्न किये पर वे भाग्य से बच गये। [तुमने लाख के घर में कुन्ती-सहित पाण्डवों को सुलाकर उसमें आग लगवा दी; पर वे निकलकर बच गये।] भाग्य से ही उन्हें द्रौपदी सी परम सुन्दरी स्त्री मिली है। पुत्रों सहित द्रुपद राजा और वासुदेव की सहायता से उन्होंने पृथ्वीमण्डल का एकच्छत्र राज्य पाया है। अपने पैतृक धन का कुछ ही हिस्सा पाकर उन्होंने, अपने बाहु-बल से, उसे इतना बढ़ा लिया है। इस कारण उनसे वैर करना किसी तरह तुम्हारे योग्य काम नहीं। देखो, अर्जुन ने अग्निदेव को प्रसन्न करके गाण्डीव धनुष, अक्षय तरकस और दिव्य अस्त्र प्राप्त किये हैं। युधिष्ठिर ने अर्जुन की सहायता से सब राजाओं को हराकर पृथ्वीमण्डल पर एकच्छत्र राज्य स्थापित कर लिया है। इसके लिए तुम क्यों डाह कर रहे हो? प्रतापी अर्जुन ने मय दानव को आग के मुँह से बचा लिया था। उसी ने, अपनी इच्छा से, युधिष्ठिर को ऐसी अद्भुत सभा बना दी है। मय की आज्ञा से असंख्य किङ्कर नाम के राक्षस सदा उस सभा की रक्षा और देख-भाल किया करते हैं। यह देखकर तुम क्यों अकारण क्रुद्ध रहे हो? और तुमने जो अपने असहाय होने की बात कही, उस पर भी मैं विश्वास नहीं कर सकता; क्योंकि तुम्हारे सब छोटे भाई तुम्हारे वश में हैं। महाबीर द्रोणाचार्य, उनके पुत्र पराक्रमी अश्वत्थामा, सूत-पुत्र कर्ण, महारथी कृपाचार्य, भाइयों सहित मैं, सोमदत्त के पुत्र आदि सब सदा तुम्हारे भले की इच्छा और यत्न किया करते हैं। [फिर तुम अपने को सहाय-हीन कहकर क्यों सन्ताप करते हो?] इन सब की सहायता से तुम भी सारी पृथ्वी को जीतकर अपने वश में कर सकते हो। १०

शकुनि के इन वचनों से उत्साहित होकर दुर्योधन ने कहा—मामा, आप पसन्द करें और आज्ञा दें तो मैं, आपकी और अन्य महारथियों की सहायता से, पहले प्रधान शत्रु पाण्डवों को ही जीतने का उद्योग करूँ। उनको जीत लेने पर सारी पृथ्वी, सब राजा और वह सब समृद्धियों से पूर्ण विचित्र सभा, सब पर मेरा अधिकार हो जायगा।

शकुनि ने कहा—तुम्हारी इस इच्छा को दुराकाङ्क्षा के सिवा और क्या कहा जा सकता है? क्योंकि वासुदेव, अर्जुन, भीमसेन, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, द्रुपद और उनके पुत्र आदि सब महारथी हैं। ये सब महायोद्धा, अस्त्र-विद्या में निपुण और युद्ध करने में चतुर हैं। इनके

विरुद्ध हथियार उठा करके देवता भी इनका कुछ नहीं बिगाड़ सकते। तुम भला इनका क्या कर सकते हो? हाँ, एक उपाय तुम्हारी इच्छा पूरी होने का है। उसके द्वारा तुम केवल युधिष्ठिर को जीत सकते हो। उस उपाय को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। उसे सुनो और जो वह तुमको रुचे तो उसी को करने की धुन में लग जाओ।

दुर्योधन ने कहा—मामाजी! जिससे आत्मीय, सुहृद् और बन्धु-बान्धवों का तो नाश न हो, और अपना काम सिद्ध हो जाय, ऐसा कोई उपाय हो तो मुझे बताइए।

शकुनि ने कहा—कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिर को चौसर खेलने का तो बड़ा शौक है किन्तु वे उस खेल में बिलकुल ही अनाड़ी हैं। यह भी तय है कि खेलने के लिए बुलाने पर वे कभी नाहीं न करेंगे। राजन्, मैं पाँसों के खेलने में बड़ा निपुण हूँ। चौसर के खेल में मेरे समान चतुर आदमी जगत् में दूसरा नहीं है। इस कारण तुम पाँसे खेलने के लिए धर्मराज को चटपट
२० बुलाओ। भैया, मैं बाज़ी लगाकर कह सकता हूँ कि जो तुम युधिष्ठिर को मेरे साथ चौसर खेलने के लिए राज़ी कर लो तो मैं तुमको उनका साम्राज्य, वैभव और सभा आदि सब कुछ जीत दूँ। किन्तु पहले तुम अपने पिता के पास जाकर उनसे सब हाल कहो। उनसे अनुमति प्राप्त कर लो तो फिर मैं युधिष्ठिर का सर्वस्व जीतकर तुमको दे सकता हूँ।

दुर्योधन ने कहा—हे आर्य, आप ही पिताजी के पास जाइए और यह सब हाल कहकर
२३ उनकी अनुमति ले आइए। मैं उनके आगे यह प्रसङ्ग न उठा सकूँगा।

आवश्यक सूचना

(१) हमने प्रथम खंड की समाप्ति पर उसके साथ एक महाभारत-कालीन भारत-वर्ष का प्रामाणिक सुन्दर मानचित्र भी देने की सूचना दी थी। इस सम्बन्ध में हम ग्राहकों को सूचित करते हैं कि पूरा महाभारत समाप्त हो जाने पर हम प्रत्येक ग्राहक को एक परिशिष्ट-अध्याय बिना मूल्य भेजेंगे जिसमें महाभारत-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण खोज, साहित्यिक आलोचना, चरित्र-चित्रण तथा विश्लेषण आदि रहेगा। उसी परिशिष्ट के साथ ही मानचित्र भी लगा रहेगा जिसमें पाठकों को मानचित्र देख कर उपरोक्त बातें पढ़ने और समझने आदि में पूरी सुविधा रहे।

प्रेमी ग्राहकों से नम्र निवेदन

हम हिन्दी-भाषा-भाषी सज्जनों से एक ही सहायता की प्रार्थना करते हैं। वह यही कि हम जिस विराट आयोजन में संलग्न हुए हैं आप लोग भी कृपया इस पुण्य-पर्व में सम्मिलित होकर पुण्य-सञ्चय कीजिए, अपनी राष्ट्र-भाषा हिन्दी का साहित्य-भण्डार पूर्ण करने में सहायक हूजिए और इस प्रकार सर्वसाधारण का हित साधन करने का उद्योग कीजिए। सम्मिलित होने का यह अर्थ नहीं कि आप इस कार्य के लिए कुछ अर्थ-साहाय्य दें; (यद्यपि इस कार्य में हज़ारों का खर्च कूता गया है) वह कुछ नहीं, आप तो सिर्फ़ इतना ही करें कि अपने दस-पाँच हिन्दी-प्रेमी इष्ट-मित्रों में से कम से कम दो स्थायी ग्राहक इस वेद-तुल्य सर्वाङ्गसुन्दर महाभारत के और बना देने की कृपा करें। जिन पुस्तकालयों में हिन्दी की पहुँच हो वहां इसे ज़रूर मँगवावें। एक भी समर्थ व्यक्ति ऐसा न रह जाय जिसके घर यह पवित्र ग्रन्थ न पहुँचे। आप सब लोगों के इस प्रकार साहाय्य करने से ही यह कार्य अग्रसर होकर समाज का हितसाधन करने में समर्थ होगा।

यदि आपने हमारी यह प्रार्थना स्वीकार करके हमें प्रोत्साहित किया तो हम भी इस महाभारत को सजधज के साथ निकाल कर आपको सन्तुष्ट करने का यत्न करेंगे।

प्रकाशक

महाभारत के स्थायी ग्राहक बनने के नियम

(१) जो सज्जन हमारे यहाँ महाभारत के स्थायी ग्राहकों में अपना नाम और पता लिखा देते हैं उन्हें महाभारत के अङ्कों पर २०) सैकड़ा कमीशन काट दिया जाता है। अर्थात् ।।) प्रति अङ्क के बजाय स्थायी ग्राहकों को १) में प्रति अङ्क दिया जाता है।

(२) जो सज्जन फुटकर महाभारत मँगावेंगे उनसे प्रत्येक अङ्क का पूरा मूल्य लिया जायगा अर्थात् कमीशन एक पैसा भी न मिलेगा।

(३) स्थायी ग्राहकों को महाभारत के सभी अङ्क लेना परमावश्यक होगा।

(४) स्थायी ग्राहक बनने के लिए किसी प्रकार की फ़ीस आदि नहीं देनी होती है। केवल नाम और पता लिखा देना ही पर्याप्त है।
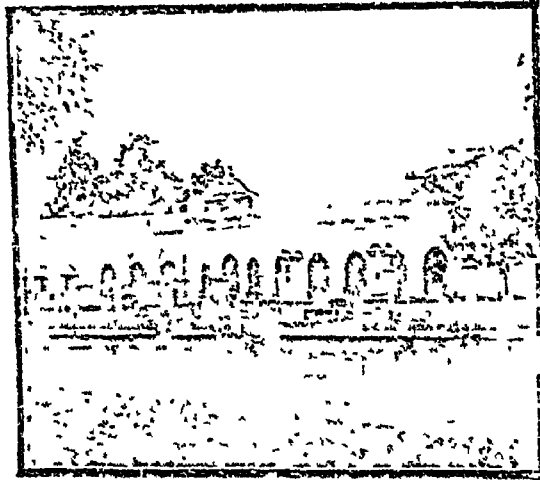
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग की नई इमारत

(५) ध्यान रहे कि डाकख़र्च स्थायी और फुटकर सभी तरह के ग्राहकों को अलग देना पड़ेगा।

(६) साल भर या छः मास का मूल्य १२) या ६) जो सज्जन पेशगी मनीआर्डर-द्वारा भेज देंगे या प्रकाशित अङ्क इतनेही की वी० पी० से भेजने की आज्ञा देंगे केवल उन्हीं सज्जनों को डाकख़र्च नहीं देना पड़ेगा। पर पैकट गुम न हो इस भय से उसे रजिस्टरी द्वारा भेजने का प्रबन्ध किया गया है, परन्तु, इसके लिए प्रति संख्या =) के हिसाब से केवल रजिस्टरी-ख़र्च ग्राहकों को अवश्य देना होगा।

(७) प्रत्येक खण्ड के लिए जो जिल्दें अलग से तैयार कराई जायँगी वे स्थायी ग्राहकों को ।।।) के बजाय ।।) ही में मिलेंगी।

(८) स्थायी ग्राहकों के पास प्रतिमास प्रत्येक अङ्क प्रकाशित होते ही बिना विलम्ब वी० पी० द्वारा भेजा जायगा। बिना कारण वी० पी० लौटाने से उनका नाम ग्राहक-सूची से अलग कर दिया जायगा।

सब प्रकार के पत्रव्यवहार का पता—

मैनेजर, महाभारत-विभाग, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

विषय-सूची।

सभापर्व।

वनपर्व।

—:o:—

रङ्गीन चित्रों की सूची ।

उनचासवाँ अध्याय

दुर्योधन का धृतराष्ट्र के पास जाकर अपने विचार प्रकट करना

वैशम्पायन कहते हैं कि राजा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का अनुभव करके और गान्धारी के पुत्र दुर्योधन के प्रिय अभिप्राय को अच्छी तरह जानकर सुबल के पुत्र शकुनि ने, सभा में सिंहासन पर बैठे हुए, महाप्राज्ञ राजा धृतराष्ट्र के पास जाकर कहा—महाराज ! [एक बार अपने ज्ञान के नेत्र खोलकर] देखिए, कुमार दुर्योधन कैसे मलिन, दुर्बल, दीन और उदास होते जा रहे हैं। बड़े बेटे के शत्रु-जनित, असह्य, हृदय के शोक को आप क्यों नहीं देखते ? आप उसके कारण की जाँच कीजिए।

जन्म के अन्धे महाराज धृतराष्ट्र यह सुनकर, अपने प्रिय पुत्र दुर्योधन को पास बुलाकर, कहने लगे—बेटा, तुमको क्या हो गया है ? तुम क्यों चिन्ता के समुद्र में डूबकर सदा उदास और दुखी रहते हो ? मेरे आगे यह हाल कहने में कुछ रुकावट न हो तो विशेष रूप से सब कहो। शकुनि के मुँह से मैंने सुना है कि तुम दिन-दिन दुबले और मलिन होते जा रहे हो। मैं बहुत सोचकर भी तुम्हारे इस दुःख और चिन्ता का कुछ कारण निश्चित नहीं कर पाता। देखो, यह विशाल राज्य और ऐश्वर्य तुम्हारे हाथ में है। भाइयों में कोई ऐसा नहीं जो तुम्हारा कहना न मानता हो। सब बन्धु-बान्धव भी तुम्हारा प्रिय काम करने को तैयार रहते हैं। तुम्हारे हुक्म देते ही खाने-पीने की बढ़िया स्वादिष्ठ चीज़ें [पुलाव वग़ैरह] हाज़िर हो जाती हैं। बढ़िया सवारी, मूल्यवान् शय्या और पोशाक आदि किसी चीज़ की तुम्हारे यहाँ कमी नहीं। फिर क्यों तुम्हारी यह दशा हो रही है? औरों के लिए दुर्लभ माला, चन्दन, युवती स्त्री आदि सुखभोग की सामग्रियाँ तुम्हारे यहाँ बहुत हैं। बढ़िया-बढ़िया महल हैं। आज्ञा देते ही सब चीज़ें तुम पा जाते हो। फिर तुम्हारे इस मानसिक दुःख और चिन्ता का कारण क्या है? तुम्हारा ऐश्वर्य और प्रभुता असीम है। कहो, तुम्हारे इस सन्ताप का क्या कारण है ? १०

दुर्योधन ने कहा—पिताजी, आपने जो कुछ कहा सो ठीक है। खाने-पीने-पहनने की और मूल्यवान् शय्या, आसन आदि किसी चीज़ की मुझे कमी नहीं; किन्तु शत्रु के ऐश्वर्य

और अभ्युदय को देखकर मैं बहुत दीन हो रहा हूँ। इसी कारण मुझे मानसिक पीड़ा सता रही है। जो कोई [बढ़ रहे शत्रु को दबाकर] बेखटके, स्वतन्त्र होकर, अपनी प्रजा का पालन और देख-भाल करता है वही सचमुच पुरुष [या राजा] कहलाने के योग्य है। मेरे सब कुछ है, किसी चीज़ की कमी नहीं है, यही सोचकर जो कोई सन्तुष्ट रहता है, उसका ऐश्वर्य और अभिमान दोनों नष्ट हो जाते हैं। वास्तविक उन्नति प्राप्त करने की कौन कहे, अभिमान और दया के वशीभूत होकर वह पग-पग पर अपमानित होता है। मैं अब तक भोग-सुख में मग्न रहकर सन्तुष्ट था; पर अब युधिष्ठिर का सौभाग्य और वैभव देखने से मेरा सन्तोष और सुख एकदम नष्ट हो गया है। यहाँ तक कि खाने-पीने और सोने-जागने आदि सभी अवस्थाओं में पाण्डवों की वह अतुल सौभाग्य-लक्ष्मी की शोभा मेरी आँखों के आगे नाचा करती है। पिताजी, शत्रु की बढ़ती और अपनी घटती देखकर ही मैं दिन-दिन दुबला, कमज़ोर, मलिन और उदास होता जा रहा हूँ। देखिए, युधिष्ठिर अट्ठासी हज़ार गृहस्थाश्रमी स्नातक ब्राह्मणों का पालन करते हैं। उन्होंने हर एक ब्राह्मण की सेवा के लिए तीस-तीस दासियाँ नियुक्त कर रक्खी हैं। इनके सिवा और भी दस हज़ार ब्राह्मण उनके घर में बड़े सुख से सोने के थालों में भोजन करते हैं। काम्बोज देश के राजा ने भेंट के तौर पर काले, नीले, लाल आदि अनेक रङ्गों की मृगछालाएँ और मूल्यवान् ऊनी कम्बल तथा आसन युधिष्ठिर के पास भेजे हैं। राजसूय यज्ञ के समय आये हुए राजाओं ने, उपहार के रूप में, अनेक विचित्र चौपाये लाकर युधिष्ठिर को दिये हैं। उन पशुओं से युधिष्ठिर की पशुशाला भर गई है। उनकी पशुशाला में हज़ारों बढ़िया घोड़े, हाथी, ऊँट, गाय आदि उपयोगी जानवर बँधे हुए हैं। मतलब यह कि राजसूय यज्ञ में बड़ा भारी ऐश्वर्य पाण्डवों के हाथ लगा है। यज्ञ में आये हुए राजाओं ने जिन मूल्यवान् रत्नों के ढेर लाकर युधिष्ठिर को अर्पण किये हैं वैसे रत्नों को मैंने कभी देखा-सुना तक नहीं। २०

महाराज, पाण्डवों को इस प्रकार अपार ऐश्वर्य का अधिकारी होते देखकर ही मेरे हृदय में ऐसी हलचल मच गई है और मेरा बुरा हाल हो गया है। महाराज, मैंने यज्ञ में देखा है कि भीड़ के मारे आगे बढ़ने में असमर्थ सैकड़ों पथिक ब्राह्मण सुवर्ण के कमण्डलु लिये तथा किसान और ग्वाले बहुत सी भेंटें लिये दरवाज़े पर खड़े ही थे; आगे नहीं बढ़ सकते थे। काँसे के पात्र में मधु लिये हुए देवताओं की स्त्रियाँ जैसे देवराज इन्द्र की बाट जोहती खड़ी रहती हैं, वैसे ही युधिष्ठिर के लिए समुद्र वरुण को मधु ले आया था। वासुदेव ने समुद्र के जल से भरा हुआ रत्नमय सुवर्ण का 'शैक्य' (छींके में रक्खा हुआ पात्र) और शङ्ख हाथ में लेकर राजा युधिष्ठिर का अभिषेक किया था। पिताजी, उस समय उस अभिषेक की वैसी धूम-धाम देखकर मुझे तो ज्वर सा चढ़ आया था। पिताजी, आप जानते हैं कि लोग शैक्य लेकर पूर्व, पश्चिम और दक्षिण दिशा के समुद्रों में जा सकते हैं और जाते हैं; किन्तु उत्तर समुद्र में

यदि तुम इस सौभाग्य-लक्ष्मी को लेना चाहते हो तो मेरी सलाह सुनो, तुम्हारा मनोरथ पूरा होगा।—पृ० ६१७

कोई मनुष्य नहीं जा सकता,—वहाँ तक केवल पक्षियों की गति है; पर कैसे आश्चर्य की बात है कि अर्जुन अपने बाहु-बल के प्रभाव से वहाँ सहज ही चला गया। वहाँ से 'कर' के रूप में वह बहुत सा धन और रत्न ले आया। देखिए, उस यज्ञ में ऐसा नियम था कि एक लाख ब्राह्मणों का भोजन हो चुकने पर एक बार शङ्ख बजाया जाता था। वह शङ्ख बजने का शब्द लगातार सुनने से मुझे ऐसा अचरज हुआ कि मेरे शरीर में रोमाञ्च हो आया। देखने के लिए आये हुए राजाओं से भरा हुआ वह सभामण्डप असंख्य तारागणों से व्याप्त आकाश की तरह जान पड़ता था। वे राजा लोग युधिष्ठिर की सेवा में, वैश्यों की तरह, असंख्य धन-रत्न ले आये थे और नौकरों की तरह सब काम कर रहे थे। ब्राह्मणों को भोजन परोसना आदि सभी काम वे कर रहे थे। महाराज, वर्णन करके पाण्डवों के सौभाग्य तथा लक्ष्मी का और अधिक परिचय आपको क्या दूँ। मुझे जान पड़ता है कि वैसा वैभव देवराज इन्द्र के यहाँ, पितृपति यमराज के यहाँ, जलेश वरुण के यहाँ और यक्षपति कुवेर के यहाँ भी न होगा। पिताजी, पाण्डवों का ऐसा सौभाग्य देखकर मेरी छाती फटी जाती है, कलेजा जला जाता है। इस कारण मैं किसी तरह शान्ति नहीं पाता। ३०

दुर्योधन के यों कह चुकने पर शकुनि ने फिर कहा—भैया, पाण्डवों का सौभाग्य देखकर यों सन्ताप करने की क्या आवश्यकता है? यदि तुम उस सौभाग्य-लक्ष्मी को लेना चाहते हो तो मेरी सलाह सुनो; तुम्हारा मनोरथ पूरा होगा। मैं पाँसों के खेल में बहुत ही चतुर हूँ। देश-काल आदि का भी मुझे विशेष ज्ञान है। दूसरों के मन की बात भी मैं जान जाता हूँ; रुपये-पैसे की थाह भी पा जाता हूँ। मैं जानता हूँ कि युधिष्ठिर को भी जुआ (चौसर) खेलने का बड़ा शौक़ है; लेकिन उन्हें उसकी विशेष जानकारी नहीं है। द्यूत या युद्ध के लिए बुलाने से उन्हें आना ही पड़ेगा। इसलिए तुम उन्हें द्यूतक्रीड़ा के लिए बुलाओ। मैं कपट से उन्हें जुए में हरा दूँगा और उनका सर्वस्व छीन लूँगा। उनका सब राज्य और धन तुमको मिल जायगा। तुम जुआ खेलने के लिए युधिष्ठिर को तुरन्त बुलाओ। ४०

वैशम्पायन कहते हैं कि शकुनि के इन वचनों से उत्साहित होकर दुर्योधन ने उसी समय धृतराष्ट्र से अनुमति माँगते हुए कहा—पिताजी, मामा ने जो कहा वही उपाय करने से मैं पाण्डवों की सौभाग्य-लक्ष्मी पा सकता हूँ। आप मुझे पाण्डवों को, जुआ खेलने के लिए, बुलाने की अनुमति दीजिए। धृतराष्ट्र ने कहा—बेटा, विदुर मेरे मन्त्री हैं; उनसे सलाह लिये बिना मैं किसी तरह इस बारे में अनुमति नहीं दे सकता। विदुर से सलाह करके मैं पहले निश्चय कर लूँ कि इस बारे में कर्त्तव्य क्या है; क्योंकि विदुर वही सलाह देंगे जिससे दोनों पक्षों का भला हो और मेरा अभीष्ट भी यही है। दुर्योधन ने कहा—पिताजी, पाण्डवों को जुआ खेलने के लिए बुलाने की सलाह विदुर आपको कभी न देंगे। उनसे सलाह करके यदि आप इस

बारे में कुछ निश्चय करेंगे तो मेरा मनोरथ पूरा न होगा। वे आपको इस काम से रोक सकते हैं। इस बारे में अगर आप मुझे अनुमति न देंगे तो मैं अपने प्राण दे दूँगा। मेरे मरने पर आप विदुर को लेकर बड़े सुखी होंगे और पृथ्वी का अकण्टक राज्य भोग सकेंगे। मैं समझ गया, आप मुझे कण्टक समझते हैं।

वैशम्पायन कहते हैं—दुर्योधन के ऐसे खेद-पूर्ण दीन वचन सुनकर बेचारे धृतराष्ट्र पुत्रस्नेह से विवश हो गये। क्या करें, दुर्योधन की प्रार्थना स्वीकार कर ली। धृतराष्ट्र ने उसी समय सेवकों को आज्ञा दी कि तुम लोग अच्छे कारीगरों को बुलाकर एक विशाल सभामण्डप बनवाओ। उसमें हज़ार खम्भे और सौ दरवाज़े हों। सब लोगों के मन को हरनेवाला वह सभामण्डप स्थान-स्थान पर अमूल्य रत्नों से सुशोभित किया जाय। भवन बन जाने पर मुझे ख़बर दो।

दुर्योधन के सन्तोष के लिए भृत्यों को यह आज्ञा देकर धृतराष्ट्र ने विदुर को बुला लाने ५० के लिए आदमी भेजे। उन्होंने विदुर को जताये बिना अभी तक कोई भी काम नहीं किया था। धृतराष्ट्र जानते थे कि द्यूत-क्रीड़ा सब दोषों की खान है। उस समय केवल पुत्र-स्नेह के मारे उन्होंने वैसी आज्ञा दे दी थी। मतलब यह कि वे विदुर से कहे बिना कोई काम करना न चाहते थे। इसी कारण उन्होंने विदुर को बुलाने के लिए दूत भेजा। उसकी ज़बानी सब हाल सुनकर विदुर ने सोचा कि झगड़े और फूट का द्वार खुल गया, सर्वनाश की जड़

निकल आई। वे जल्दी से धृतराष्ट्र के पास पहुँचे। उनके चरण छूकर विदुर ने कहा—महाराज, आपने जिस काम की आज्ञा दे दी है उसका मैं अनुमोदन नहीं कर सकता। भाईजी, जिस काम से पुत्रों में परस्पर विरोध पैदा हो, उसे करने की आज्ञा देना बड़े लोगों को उचित नहीं। धृतराष्ट्र ने कहा—विदुर, भाग्य अगर हमारे प्रतिकूल न हो तो भाइयों में क्यों विरोध उत्पन्न होगा? द्यूत अशुभ हो या शुभ, हितकारक हो या अहितकारक, तुम इसकी परवा न करो। मैं, तुम, द्रोण और भीष्म आदि वहाँ रहेंगे ही, इस कारण वहाँ पर किसी तरह का झगड़ा खड़ा हो उठने की कोई सम्भावना नहीं। तुम तेज़ चलनेवाले रथ पर बैठकर आज ही खाण्डवप्रस्थ को जाओ और युधिष्ठिर को अपने साथ लेते आओ। हे विदुर, इसे

तुम मेरा विचार या इच्छा मत समझो। यह घटना दैव की प्रेरणा से हुई है। यह सुनकर विदुर ने मन में कहा कि अब कौरवों और पाण्डवों का सर्वनाश होगा। यों सोचकर महात्मा विदुर दुःखित होते हुए बुद्धिमान् वृद्ध भीष्म पितामह के पास जाने को उठे। ६०

पचासवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र और विदुर की फिर बातचीत

जनमेजय ने कहा—हे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ, जिस जुए के प्रभाव से पितामह पाण्डवों की ऐसी शोचनीय दशा हुई, भाइयों में फूट पड़ गई और उससे बड़ा भारी अनर्थ उठ खड़ा हुआ, वह जुआ किस तरह हुआ था? उस द्यूत-सभा में किस-किस ने उस खेल का अनुमोदन किया था और किन-किन महात्माओं ने द्यूत-क्रीड़ा का विरोध किया था? कृपा करके यह सब हाल कहकर मेरे चित्त के कौतूहल को शान्त कीजिए। पृथ्वी भर के क्षत्रियों के संहार का कारण यही द्यूत था।

सूत-पुत्र सब ऋषियों से कहते हैं कि राजा जनमेजय का आग्रह देखकर सब वेदों और वेदाङ्गों के ज्ञाता, व्यास के शिष्य, वैशम्पायन विस्तार के साथ सब वृत्तान्त कहने लगे।

वैशम्पायन ने कहा—महाराज, उस द्यूत-क्रीड़ा का वृत्तान्त सुनने की इच्छा यदि बहुत ही प्रबल है तो सुनो। विदुर के अभिप्राय को अच्छी तरह जानकर महाराज धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को फिर अकेले में बुलाकर कहा—बेटा, विदुर को यह द्यूत-क्रीड़ा बिलकुल नापसन्द है। इसलिए इसकी ज़रूरत नहीं। बुद्धिमान् विदुर हम लोगों को बुरी सलाह कभी न देंगे। इसलिए बेटा, मैं अनुरोध करता हूँ कि तुम विदुर की सलाह मान लो। बेटा, असाधारण बुद्धिमान् और नीतिज्ञ बृहस्पति जैसे इन्द्र को कभी कोई बुरी सलाह नहीं देते, वैसे ही नीतिज्ञ विदुर कभी मुझे बुरी सलाह न देंगे। बुद्धिमान् उद्धव जैसे वृष्णिवंश में नीति के अद्वितीय पण्डित और प्रशंसनीय हैं, वैसे ही कुरुवंश में विदुर हैं। वे इस जुए के खेल को अनिष्ट का कारण बताकर मना करते हैं, इसलिए जुआ खेलने की ज़रूरत नहीं। जुए का खेल मित्रों में—आत्मीयों में—फूट १० पैदा कर देता है। फूट पैदा होने से असमय में ही राज्य और ऐश्वर्य मिट जाता है। इसलिए तुम जुआ खेलने का विचार छोड़ दो। पुत्र के प्रति पिता-माता का जो कर्त्तव्य है उसे मैं बराबर करता आया हूँ। लड़कपन से बड़े यत्न और स्नेह के साथ तुम्हारा पालन किया, तुम्हें पढ़ाया-लिखाया। मैंने तुमको बुद्धिमान् और विद्वान् जानकर, सब पुत्रों में बड़े होने के कारण, युवराज की गद्दी भी दे दी। [भाइयों में से कोई तुम्हारी आज्ञा नहीं टालता। तुम्हारे इशारे पर ही सब काम हो जाते और कमी पूरी हो जाती है।] देवताओं के योग्य दुर्लभ

भोजन-वस्त्र आदि सामग्री तुम्हारे यहाँ भरी पड़ी है। तुम बाप-दादे के विशाल राज्य के स्वामी होकर और अपने बाहु-बल से उसे बढ़ाकर इन्द्र की तरह प्रजा का पालन कर रहे हो। तब फिर बेटा, समझ में नहीं आता कि तुम अकारण ही सन्ताप क्यों कर रहे हो?

पिता के कह चुकने पर दुर्योधन ने कहा—पिताजी, मैं अत्यन्त नराधम हूँ। इसी कारण शत्रुओं का अभ्युदय देखकर भी अत्यन्त निस्तेजभाव से अपना पेट पालता रहता हूँ। पण्डितों ने कहा है कि शत्रु की बढ़ती देखकर भी उसके प्रतिकार का उपाय न कर केवल विषय-भोग में डूबे रहना बड़े ही कायर का लक्षण है। पिताजी, मैं यदि तेज से हीन कायर न होता तो फिर युधिष्ठिर की राजलक्ष्मी को जगमगाते देखकर भी कुछ उपाय क्यों न करता? अत्यन्त क्लेश से जीवित रहकर मर्मभेदी यन्त्रणा क्यों सहता? दिन पर दिन सारी पृथ्वी पर युधिष्ठिर का साम्राज्य बढ़ता जा रहा है, यह देखकर मुझे जीने की बिलकुल चाह नहीं है। हृदय अत्यन्त कठिन होने के कारण ही मैं अभी तक जीवित हूँ। देखिए, युधिष्ठिर के भवन में कदम्ब, चित्रक, कौकुर, कारस्कर और लौहजङ्घ आदि बहुमूल्य विचित्र वृक्ष, आज्ञाकारी की तरह, २० खड़े हुए हैं। बड़े पाण्डव युधिष्ठिर ने मुझे ज्येष्ठ और श्रेष्ठ समझकर, विधिपूर्वक सत्कार के साथ, आये हुए रत्नों को जमा करने का काम सौंपा था। वहाँ इतने अधिक रत्न आये कि उनकी गिनती नहीं की जा सकती। अनेक देशों से आये हुए राजा लोग इतनी भेंट लाये थे कि उसे ख़ज़ाने में रखते-रखते मैं थक गया। बहुत लोगों को द्वार पर खड़े रहकर बाट जोहनी पड़ी कि मैं आकर उनसे रत्न लूँ। हे महाबाहो, मय दानव विन्दुसरोवर से जो बड़े अद्भुत रत्न लाया था उन्हीं को उसने, सभा-भवन बनाते समय, उसमें स्थान-स्थान पर लगा दिया है। सभा के बीच मय दानव ने, स्वच्छ जल से भरे हुए, सरोवर का धोखा देनेवाला एक ऐसा फ़र्श बनाया है कि वहाँ पर सचमुच मुझे तालाब का भ्रम हो गया। पिताजी, मैंने वहाँ यह समझ-कर कि पानी भरा हुआ है, अपने कपड़े समेट लिये। यह देखकर भीमसेन बड़े ज़ोर से हँसने लगा। उसने ऐसा भाव प्रकट किया जैसे मैं शत्रु की समृद्धि देखने से मूढ़ हो रहा हूँ और मैंने कभी रत्न नहीं देखे हैं। लाचार होकर मुझे भीमसेन का किया वह उपहास सह लेना पड़ा। उस समय मुझे जैसा क्रोध चढ़ आया था उसी के अनुसार यदि मैं काम करता—भीमसेन को मारने की चेष्टा करता—तो मुझे भी शिशुपाल की तरह अ-काल में मरना पड़ता। महाराज, उसी दिन से शत्रु के किये उपहास को सोच-सोचकर मैं घुल रहा हूँ। आगे बढ़कर मैं फिर वैसे ही खिले कमलों से शोभित सरोवर को सभा का फ़र्श समझकर, धोखा खाकर, पानी में गिर पड़ा। मुझे गिरा हुआ देखकर द्रौपदी आदि स्त्रियाँ और वासुदेव, भीमसेन तथा ३० अर्जुन सब ज़ोर से हँस पड़े। इससे मैं बहुत ही व्यथित और दुःखित हुआ। पिताजी, कहते छाती फटी जाती है, मेरी वह दुर्दशा देखकर युधिष्ठिर की आज्ञा से नौकरों ने मुझे पहनने योग्य

सूखे कपड़े लाकर दिये। फिर एक बार बिल्लौर की दीवार में बने हुए नक़ली द्वार को असली दरवाज़ा समझकर मैं उससे निकलने लगा तो माथे में बड़ी चोट लगी। मेरे सिर में घाव हो गया। दूर से मेरी यह दशा देखकर नकुल और सहदेव दु:खित हुए और मेरा हाथ पकड़-कर मुझे अचम्भे में डालते हुए से सहदेव बार-बार कहने लगे—राजन्, इधर से आइए। भीम-सेन ने हँसकर मुझसे कहा—हे धृतराष्ट्र के पुत्र, इधर दरवाज़ा है।

महाराज, मेरे सन्ताप के यही सब कारण हैं। इनके सिवा डाह का एक कारण यह भी है कि मैंने पहले जो चीज़ें और कहीं नहीं देखीं वे पाण्डवों की सभा में मुझे देख पड़ीं। ३६

इक्यावनवाँ अध्याय

दुर्योधन का यज्ञ में आई हुई भेंट का वर्णन करना

दुर्योधन ने कहा—पिताजी, पाण्डवों की सभा में मैंने किस देश के राजा को क्या सामग्री लाकर भेंट में देते देखा है, सो कहता हूँ, सुनिए। उन बहुमूल्य रत्नों को देखकर मैं तो एक-दम चकरा गया। संख्या से या देश-भेद से मैं नहीं जानता तो भी मुख्यत: कुछ कहता हूँ। काम्बोज देश के राजा ने भेड़-बिल्ली-मूषक आदि के रोमों के बने, सुवर्ण-चित्रित, बहुत से ऊनी कपड़े, घोड़े, खच्चर और ऊँट लाकर दिये। हज़ारों गो-सेवा करनेवाले ब्राह्मण और शूद्र, धर्मराज युधिष्ठिर को प्रसन्न करने के लिए, बहुत से उपहार लेकर आये थे और बड़ी भीड़ के मारे भीतर घुस न सकने के कारण द्वार पर ही खड़े थे। खेती आदि करनेवाले, गो-धन-सम्पन्न, सैकड़ों लोग घी से भरे सोने के घड़े हाथ में लिये, राह न मिलने के कारण, बाहर ही खड़े हुए थे। समुद्र के किनारे रहनेवाले राजाओं ने आकर कार्पासिक देश की, सोलह वर्ष की अवस्थावाली, छरहरे डील की, बड़े-बड़े बालोंवाली, सोने के गहनों से अलङ्कृत हज़ारों दासियाँ लाकर अर्पण कीं; ब्राह्मणों के पहनने योग्य रङ्कु नाम के मृग की खालें और गान्धार देश के विचित्र रङ्गवाले तेज़ बढ़िया घोड़े लाकर भेंट किये। समुद्र के उस पार या किनारे पर रहनेवाले अन्य जङ्गली लोगों ने और जिन देशों में वर्षा के पानी से खेती होती है तथा जिन देशों में कुए-नहर आदि की सिंचाई से खेती होती है उन देशों के रहनेवाले वैराम, पारद, आभीर, कितव आदि जातियों के लोगों ने भी बहुत से रत्न, सोना, भेड़-बकरी-गाय-ऊँट आदि पशु, फल-फूल, फूलों का शहद और मूल्यवान् कम्बल आदि सामग्रियाँ लाकर भेंट कीं। इन लोगों को भी, भीड़ के मारे, भीतर घुसने का मौक़ा नहीं मिला; सब दरवाज़े पर ही खड़े थे। प्राग्ज्योतिषपुर के राजा यवनराज महारथी भगदत्त भी वायु के समान चलनेवाले, अच्छी जाति के घोड़े और असंख्य रत्न आदि की भेंट लेकर, युधिष्ठिर को प्रसन्न करने के लिए, आये थे। राह न मिलने के कारण वे भी द्वार १०

पर खड़े थे। दरवाज़े पर भारी भीड़ देख विवश होकर भगदत्त ने मूल्यवान् जड़ाऊ गहने तथा सोने और हाथी-दाँत की मूठोंवाली उत्तम तलवारें भेज दीं और स्वयं अपने देश को चले गये। महाराज, इनके सिवा और बहुतेरे राजाओं को मैंने भीड़ के मारे बाहर दरवाज़े पर ही खड़े देखा है। दो आँखोंवाले, तीन आँखोंवाले, माथे पर आँखवाले, औष्णीक, अन्तवासी, रोमक और नरभक्षक तथा एक ही पैरवाले, विचित्र आकारवाली जातियों के लोग भी देख पड़ते थे। वे काली गरदनवाले, लम्बे-चौड़े डील के, दूरगामी, सुशिक्षित दस हज़ार खच्चर भेंट लेकर आये थे।
२० वंक्षु नदी के किनारे रहनेवाले लोग भेंट के लिए बहुत सा सोना, चाँदी आदि लाये थे। एक पैरवाले लोग वीरबहूटी के रङ्ग के, गुलाबी, सफ़ेद, इन्द्रधनुष और सन्ध्याकाल के मेघ के रङ्ग के तथा अन्य विविध रङ्गों के, वायुगामी जङ्गली घोड़े और बहुत सा सोना भेंट में लेकर आये थे। चीन, शक, ओड्र, वर्बर, वनवासी, हारहूण, कृष्ण-हिमाचलवासी, नीपवासी, अनूपवासी अनेक लोग महामूल्य रत्न लेकर युधिष्ठिर की सेवा में आये थे। [वंक्षु नदी के किनारे रहनेवाले] पूर्व के राजा लोग द्वार पर खड़े थे। वे काली गरदनवाले, बड़े-बड़े, सौ कोस तक दौड़नेवाले दस हज़ार खच्चर, रेशमी चिकने कपड़ों के थान, कोमल भेड़ों की खालें, पैनी और लम्बी तलवारें, ऋष्टि और परश्वध आदि शस्त्र, पश्चिम देश के बने तरह-तरह के चौड़े खाँड़े और बहुत सी सुगन्ध की सामग्री लेकर आये थे। शक, तुषार और सींगों तथा रोमोंवाले आदमी बहुत से दूरगामी गजराज, असंख्य घोड़े और बहुत से रत्न लेकर युधिष्ठिर के यहाँ आये
३० थे। पूर्वी देशों के राजा लोग महामूल्य सवारियाँ, आसन, पलँग, पोशाक, बहुमूल्य मणियों और मोतियों से शोभित हाथी-दाँत के बने विचित्र कवच, विविध शस्त्र, सुशिक्षित घोड़ों से युक्त और सोने तथा व्याघ्रचर्म से शोभित रथ, विचित्र हाथी, कम्बल, बहुत से रत्न, नाराच बाण, अर्द्ध नाराच बाण और अन्य अनेक प्रकार की श्रेष्ठ चीज़ें लेकर युधिष्ठिर की सभा में आये थे
३५ और भीड़ के मारे घुस न सकने के कारण बाहर ही खड़े थे।

बावनवाँ अध्याय

अन्य राजाओं की लाई हुई सामग्री का वर्णन

दुर्योधन ने कहा—पिताजी, राजाओं ने 'कर' के रूप में युधिष्ठिर को यज्ञ के लिए बहुत सा धन और रत्न लाकर दिये। मेरु-मन्दर पर्वतों के बीच में बहनेवाली शैलोदा नदी के दोनों किनारों पर रहनेवाले, कीचक जाति के बाँसों की रमणीय छाया में बैठने का आनन्द पानेवाले—खस, एकासन, प्रदर, दीर्घवेणु, पारद, कुलिन्द, तंगण, परतंगण आदि—राजा लोग सोने के ढेर के ढेर लेकर आये थे। यह वही सोना था जिसे चींटियाँ निकालती हैं। हिमालय पर रहनेवाले

महाबली पहाड़ी राजा लोग काले और सफ़ेद रङ्ग के बढ़िया चँवर लेकर आये और बड़े अदब के साथ राजा युधिष्ठिर की सेवा में उपस्थित रहे। उनमें से अनेक राजा लोग हिमाचल का स्वादिष्ठ शहद, उत्तरकुरु देश से जलयुक्त विचित्र मालाएँ और उत्तर कैलास से अद्भुत ओषधियाँ तथा अन्यान्य प्रकार की बहुत सी उपहार की सामग्री लेकर भीतर जाने को द्वार पर खड़े बाट जोहते थे। महाराज! उदयाचल के निवासी, करूप देश के, समुद्रतट के निवासी और लोहित पर्वत के पास रहनेवाले राजा लोग अनेक उपहार की सामग्रियाँ लेकर आये थे। जो कुछ फल-मूल मिल जाते हैं उन्हीं को खाकर रहनेवाले, चमड़ा पहननेवाले, क्रूरकर्मा, असभ्य किरात भी अगुरु, कृष्णागुरु, चन्दन आदि के बोझ, दस हज़ार दासियाँ और शिकार में मिले हुए अनेक प्रकार के मृग तथा पक्षी लेकर आये थे। किरात, दरद, दर्व, शूर, यमक, औदुम्बर, दुर्विभाग, पारद, बाह्लीक, काश्मीर, कुमार, घोरक, हंसकायन, शिवि, त्रिगर्त, यौधेय, मद्र, केकय, अम्बष्ठ, कौक्कुर, तार्क्ष्य, वस्त्रप, पह्लव, वशातल, मौलेय, क्षुद्रक, मालव, पौण्ड्रक, कुक्कुर, शक, अङ्ग, वङ्ग, पुण्ड्र, शाणवत्य, गय आदि अच्छे श्रेष्ठ वंशों के राजा लोग बहुत-बहुत रत्न लाकर युधिष्ठिर की सभा में आये थे। वङ्ग, कलिङ्ग, मगध, ताम्रलिप्त, पुण्ड्रक, दौवालिक, सागरक, पत्रोर्ण, शैशव और कर्णप्रावरण आदि नामों से परिचित नरेशों ने द्वार पर जाकर देखा कि द्वारपाल लोग राह रोके हुए कह रहे हैं कि महाशयो, आप लोग तनिक ठहर जाएँ; यथासमय आप भीतर जा सकेंगे। वे लोग भेंट में पहाड़ ऐसे ऊँचे, लम्बे दाँतों और सुनहरी झूलों से शोभित, अच्छी जाति के मतवाले हज़ार हाथी देकर बारी-बारी से भीतर जाने पाये। कहाँ तक कहूँ, इसी तरह असंख्य राजा-महाराजा श्रेष्ठ और मनोहर भेंट की चीज़ें लेकर यज्ञशाला में आये थे।

महाराज, इनके सिवा इन्द्र के सखा गन्धर्वों के राजा चित्ररथ ने वायु के समान तेज़ चार सौ बढ़िया घोड़े दिये। तुम्बुरु गन्धर्व ने आम के पत्तों के रङ्गवाले, सुन्दर और सोने के गहनों से भूषित एक सौ बढ़िया घोड़े अर्पण किये। शूकर देश के राजा ने एक सौ उत्तम गजराज दिये। मत्स्य देश के राजा विराट ने दो हज़ार मस्त हाथी देकर युधिष्ठिर का सम्मान किया। पिताजी, राजा वसुदान ने छब्बीस हाथी और सुवर्णभूषित दो हज़ार तेज़ घोड़े देकर युधिष्ठिर की प्रतिष्ठा बढ़ाई। राजा द्रुपद ने उपहार के तौर पर चौदह हज़ार दास-दासी, स्त्रियों-सहित दस हज़ार सेवक और असंख्य हाथी-घोड़े, महामूल्य रत्न आदि युधिष्ठिर को दिये। अर्जुन के परम मित्र कृष्ण ने भी आते समय अर्जुन के मान की रक्षा के लिए चौदह हज़ार मस्त गजराज दिये। वास्तव में कृष्ण की अर्जुन के साथ ऐसी गहरी मित्रता है कि जो अर्जुन कहें वह बात कृष्ण अवश्य करेंगे। अर्जुन के लिए कृष्ण स्वर्ग का राज्य भी छोड़ दे सकते हैं और कृष्ण के लिए अर्जुन अपने प्राण तक अर्पण कर सकते हैं। चोलराज और पाण्ड्यराज, दोनों नरेश, सोने के घड़ों में मलय गिरि के सुगन्धित चन्दन का अर्क़, दर्दुर पहाड़ का कालागुरु,

तरह-तरह के चमकीले मणि-माणिक्य, सुनहरे तारों से बुने हुए महीन कपड़े आदि लेकर युधिष्ठिर के यज्ञ में आये थे। सिंहल देश के राजा लोग तरह-तरह के रङ्गवाले वैडूर्यमणि, मोतियों की लड़ें और श्रेष्ठ कम्बल आदि उपहार लेकर यज्ञ देखने आये थे। सैकड़ों राजा लोग ऐसी मूल्यवान् सामग्रियाँ लाने पर भी द्वार पर ही रोक लिये गये थे और वहीं खड़े थे। अधिक क्या कहूँ, उपहार देनेवालों में मुझे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, चारों वर्णों के लोग देख पड़े थे। प्रीति और सम्मान के साथ म्लेच्छ जाति के राजा भी 'कर' लेकर युधिष्ठिर की सभा में आये थे। सब जातियों और सब देशों के लोगों के आने से जान पड़ता था कि सारा संसार मानो एक ही जगह पर सिमटकर आ गया है। अनेक देशों और दिशाओं से राजाओं ने आकर ४० जो धन-रत्न का ढेर लगा दिया उसे देखकर मुझे इतना दुःख हुआ कि मैं मुर्दार हो गया हूँ।

महाराज, अब मैं युधिष्ठिर के नौकर-चाकरों का और वहाँ के खिलाने-पिलाने के प्रबन्ध का वर्णन करता हूँ—सुनिए। युधिष्ठिर के पास तीन पद्म अयुत हाथियों और घोड़ों के सवार हैं। एक अर्बुद रथी हैं और पैदल सेना तो इतनी है कि उसकी गिनती करना बहुत ही कठिन है। मैंने देखा, यज्ञ के स्थान में कहीं खाने-पीने का कच्चा सामान तौल-तौलकर दिया जा रहा है, कहीं अन्न पकाया जा रहा है और कहीं भोजन करनेवालों के आगे परोसा जा रहा है। चारों ओर ऐसा कोलाहल हो रहा है कि कान नहीं दिया जाता। सब जगह पुण्याह-पाठ हो रहा है। मैंने देखा, वहाँ कोई ऐसा न था जिसने भोजन न किया हो, या जो कपड़े-गहने आदि पहने न हो। सभी का सत्कार किया जा रहा था। अट्ठासी हज़ार स्नातक ब्राह्मण थे। उनमें से हर-एक की सेवा के लिए तीस-तीस दासियाँ नियुक्त थीं। ब्राह्मण लोग भी सेवा, भोजन, दक्षिणा आदि से सन्तुष्ट होकर युधिष्ठिर को शत्रुओं के नष्ट होने का आशीर्वाद दे रहे थे। दस हज़ार ऊर्ध्वरेता यती नित्य सोने के थालों में दिव्य भोजन करते थे। द्रौपदी ख़ुद, कुछ खाये-पिये बिना, बड़े यत्न और परिश्रम के साथ यह देखभाल कर रही थीं कि कोई—लूला-लँगड़ा तक—भूखा-नङ्गा तो नहीं रह गया है। पिताजी, विवाह-सम्बन्ध होने के कारण पाञ्चालराज द्रुपद और मित्रता के कारण यादव लोग तो कर देने से बच गये, परन्तु ४९ और सब राजाओं ने कर देकर, सिर झुकाकर, युधिष्ठिर की अधीनता स्वीकार कर ली है।

तिरपनवाँ अध्याय

दुर्योधन का और भी हाल कहना

दुर्योधन ने कहा—पिताजी, मैंने देखा कि जो महानुभाव राजेन्द्र जगत् में सत्यवादी, दृढ़-व्रत, विद्वान्, श्रेष्ठ वक्ता, वेद-वेदाङ्ग-विशारद, बुद्धिमान्, धर्मात्मा और यशस्वी कहलाते हैं, वे भी

बड़ी प्रसन्नता के साथ युधिष्ठिर की उपासना कर रहे हैं। जगह-जगह पर राजाओं की लाई हुई हज़ारों जङ्गली गायें आदि उपयोगी पवित्र पशु बँधे हुए हैं। राजा लोग अपने हाथ से अभिषेक-सामग्री से भरे हुए बरतनों को विधिपूर्वक सत्कार के साथ सजाकर ले आये थे। बाह्लीक-राज ने सोने की आभा से जगमगा रहा सुसज्जित रथ लाकर खड़ा किया। राजा सुदक्षिण ने सफ़ेद रङ्ग का काम्बोज देश का घोड़ा लाकर भेंट किया। महाबली सुनीथ राजा रथ के नीचे की लकड़ी ले आये। चेदिराज शिशुपाल ने ध्वजा लाकर दी। दक्षिण के राजा ने दृढ़ कवच, मगध के राजा ने माला और पगड़ी, वसुदान ने जवान हाथी, मत्स्यराज विराट ने सुवर्णमण्डित 'जुआ', राजा एकलव्य ने [मणिजटित] जूते, अवन्ती के राजा ने अभिषेक के लिए तीर्थों का जल, चेकितान ने तरकस, काशिराज ने धनुष और शल्य ने पैनी तलवार लाकर दी। फिर महा-तपस्वी धौम्य, वेदव्यास, नारद, देवल और असित मुनि राज्याभिषेक का कार्य करने लगे। जहाँ १० अभिषेक हो रहा था वहीं पर सब महर्षि प्रसन्नचित्त बैठे हुए थे। परशुराम और अन्य वेदपाठी महात्मा लोग मन्त्र पढ़ते हुए अभिषेक करने के लिए धर्मराज युधिष्ठिर के पास गये। जैसे सप्तर्षि देवलोक में इन्द्र के पास जाते हैं वैसे ही महात्मागण उस यज्ञ में आने लगे। अभिषेक के समय महाबाहु सात्यकि ने युधिष्ठिर के मस्तक पर सफ़ेद छत्र लगाया। भीमसेन और अर्जुन व्यजन डुला रहे थे। नकुल और सहदेव एक-एक चँवर हाथ में लिये पास खड़े थे। सत्ययुग में प्रजापति ब्रह्मा ने जो शङ्ख इन्द्र को दिया था वही वारुण शङ्ख कलशोदधि से युधिष्ठिर को प्राप्त हुआ। अब वासुदेव ने विश्वकर्मा के बनाये बहुमूल्य शैक्य से युधिष्ठिर का अभिषेक किया। यह सब देखकर मुझे घोर कष्ट हुआ। महाराज, मनुष्यों की गति पूर्व, पश्चिम और दक्षिण दिशा में ही है; उत्तर दिशा में पक्षी ही जा सकते हैं; लेकिन पाण्डव वहाँ भी गये और वहाँ से सैकड़ों मङ्गलसूचक शङ्ख ले आये हैं। उन शङ्खों की मङ्गल-सूचक ध्वनि सुनकर मेरे रोंगटे खड़े हो गये। तेज और साहस से हीन राजा लोग उन शङ्खों के गम्भीर शब्द को सुनकर बेहोश से हो गये। सब राजाओं को और मुझे अचेत देखकर बलशाली, सुन्दर पाँचों पाण्डव, धृष्ट-द्युम्न, सात्यकि और वासुदेव, ये आठों एक दूसरे की ओर देखकर हँसने लगे।

पिताजी, फिर अर्जुन ने प्रसन्नतापूर्वक श्रेष्ठ ब्राह्मणों को पाँच सौ बैल दिये। हर-एक २० बैल के सींग सोने से मढ़े थे। महाराज हरिश्चन्द्र की तरह धूमधाम से राजसूय यज्ञ समाप्त करके बाहु-बलशाली राजा युधिष्ठिर की जैसी अपूर्व शोभा हुई और उन्हें जैसा ऐश्वर्य मिला उसका वर्णन नहीं हो सकता। रन्तिदेव, नाभाग, यौवनाश्व, मनु, वेन के पुत्र राजा पृथु, भगीरथ, ययाति या नहुष, कोई भी महाराज पहले ऐसे ऐश्वर्य के अधिकारी न हुए होंगे। पिताजी, राजा युधिष्ठिर महाराज हरिश्चन्द्र के समान सत्यवादी होने का यश इस लोक में प्राप्त कर चुके हैं; यह देखकर डाह के मारे मर जाना ही मुझे अच्छा लगता है। अन्धा आदमी हल चलाने

के लिए 'युग' बाँधे तो वह जैसे प्रायः उलटा-पुलटा ही हो जाता है वैसे ही विधाता भी मानो अन्धा होकर सब काम करता है। तभी तो बड़ों का खेल बिगड़ता जाता है और छोटों की बात बनती जाती है। पिताजी, क्या कहूँ, इन्हीं बातों को देख-सुनकर मुझे दम भर भी चैन नहीं २६ पड़ता। यही कारण है कि मैं दिन-दिन मलिन, दुर्बल और शोक से व्याकुल होता जा रहा हूँ।

चौवनवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र का दुर्योधन को समझाना

[दुर्योधन के यों कह चुकने पर] धृतराष्ट्र ने कहा—बेटा, तुम मेरे बड़े लड़के और बड़ी रानी के पेट से पैदा हो। पाण्डवों का सौभाग्य देखकर, अकारण ईर्ष्या के वश होकर, अपने आत्मा को क्लेश पहुँचाना कभी अच्छा नहीं कहा जा सकता। सोचकर देखो, कपट और द्वेष का नाम भी धर्मात्मा युधिष्ठिर नहीं जानते। उनकी समृद्धि देखकर अत्यन्त शत्रु की तरह उसे न सह सकना क्या तुम्हें सोहता है? तुम तनिक चित्त को स्थिर करके सोचो तो तुम्हें जान पड़ेगा कि तुम्हारी सम्पत्ति और तुम्हारे सहायक युधिष्ठिर से कम नहीं हैं। फिर तुम अत्यन्त लोभी अर्थ-पिशाच की तरह क्यों भाई का ऐश्वर्य हर लेना चाहते हो? अगर यज्ञ करने की इच्छा प्रबल हुई हो तो इच्छा करते ही पुरोहित लोग तुमको सप्ततन्तु महायज्ञ की दीक्षा देंगे। तुम्हें भी राजा लोग इसी तरह प्रीति और सम्मान के भाव से बहुत धन-सम्पत्ति और रत्न आदि भेंट करेंगे। बेटा, अत्यन्त नीच प्रकृतिवाले मनुष्य के सिवा और कोई पराये धन पर नीयत नहीं डुलाता। पराये धन को लेने की इच्छा बिलकुल न दिखाकर अपने कर्त्तव्य कामों में तत्परता दिखाना ही ऐश्वर्यशाली पुरुष का लक्षण है। विपत्ति के समय धैर्य धारण करना और सावधानी के साथ उद्योग करना ही सत्पुरुष का काम है। सोचकर देखो, अपने शरीर में लगे हुए हाथों की तरह पाण्डव लोग तुम्हारे हैं और तुम्हारे सहायक हैं। इस कारण उनके धन को प्राप्त करने की इच्छा से उनके साथ वैर बढ़ाने में तुम्हारा कुछ लाभ तो है नहीं; बल्कि उससे भाइयों से बिगाड़, मित्रों से बिगाड़, बड़े भारी झगड़े और युद्ध आदि के द्वारा वंश के नाश की ही आशङ्का है। इसलिए मैं तुमको बार-बार मना करता हूँ कि तुम पाण्डवों से ईर्ष्या या शत्रुता मत करो। मित्रों से द्रोह करना अनर्थ की जड़ है। ख़ास कर तुम और पाण्डव एक ही पितामह के वंश में उत्पन्न हुए हो। युधिष्ठिर का यज्ञ देखकर यदि तुम्हारा चित्त बहुत ही चञ्चल हो उठा हो तो तुम भी पाण्डवों की तरह यज्ञ आरम्भ करके बहुत से धन-रत्न ब्राह्मणों को दो, प्रार्थियों की इच्छा पूरी करो, बेखटके माला-चन्दन-उत्तम स्त्री आदि विषयों के भोग में ११ लगकर बुरे विचारों को भूल जाओ।

पचपनवाँ अध्याय

दुर्योधन का प्रत्युत्तर

दुर्योधन ने कहा—महाराज, चमचा जैसे दाल-तरकारी आदि के स्वाद को नहीं जान सकता वैसे ही केवल बहुत सुनने या शास्त्र का ज्ञान रखनेवाला, किन्तु समझदारी से ख़ाली, आदमी कभी शास्त्र के अर्थ को नहीं जान सकता। आप विशेष रूप से सब जान-बूझकर भी, बड़ी नाव में बँधी हुई छोटी नाव की तरह, मुझे क्यों रोक रहे हैं? स्वार्थ के साधन में यहाँ तक आप उदास हैं? अथवा मेरे अनिष्ट की चेष्टा ही इस समय आपका प्रधान उद्देश्य है? आपकी आज्ञा के अनुसार काम करने से इस समय हमारा उबार नहीं देख पड़ता। चौसर के खेल में शत्रु का सर्वस्व हर लेने को आप भावी अनर्थ का कारण बतलाते हैं। जो लोग पथ-प्रदर्शक होकर भी स्वयं औरों के उपदेश मानकर चलते हैं उन्हें पग-पग पर विपत्ति की आशङ्का हो सकती है। ऐसे अगुवा का अनुसरण करना या उसका कहना मानना किसी तरह बुद्धिमान् का काम नहीं। महाराज, आपकी बुद्धि विवेक से पक चुकी है, आपने बड़े-बूढ़ों की सोहबत की है, आप जितेन्द्रिय भी हैं। फिर न मालूम, आप क्यों हमारा उत्साह मिटाने की—उद्योग-भङ्ग की—चेष्टा कर रहे हैं। बृहस्पति का वचन है कि साधारण लोक-व्यवहार से राजाओं का व्यवहार बिलकुल जुदा होता है। इसलिए राजा को सावधानी से स्वार्थ की चिन्ता करनी चाहिए। जय प्राप्त करना ही क्षत्रिय का प्रधान धर्म है। इसलिए चाहे धर्म हो, चाहे अधर्म, कर्त्तव्य-पालन से विमुख होने का क्या प्रयोजन है? सारथी जैसे चाबुक मारकर सब तरफ़ घोड़ों को चला सकता है वैसे ही जय की इच्छा रखनेवाला आदमी बे-रोकटोक सभी मार्गों का आश्रय ले सकता है। भीतरी हो या बाहरी, जिस उपाय से शत्रु का दमन किया जा सके उसी उपाय को काम में लाना जय की इच्छा रखनेवाले पुरुष के लिए शास्त्र-सम्मत है—यही 'उपाय' सच्चा हथियार है, कुछ वही हथियार नहीं है जिससे कि मार-काट हो सके। महाराज, शत्रु और मित्र की पहचान का कोई नियम नहीं लिखा है। जिससे जिसको सन्ताप पहुँचे वही उसका शत्रु माना जाता है। राजन्, सम्पत्ति की बढ़ती का मूल कारण असन्तोष ही है। इसलिए मैं वही करूँगा जिसमें असन्तोष बढ़े; क्योंकि नीतिकार कहते हैं कि जो उन्नति की चाह रखता है वही सचमुच नीति-कुशल है। धन या ऐश्वर्य में कभी ममता न करनी चाहिए; क्योंकि उन्हें दूसरे लोग छीन सकते हैं। इस प्रकार बलपूर्वक शत्रु पर हमला करके उसके सर्वस्व छीन लेने को शास्त्रकारों ने राजा का धर्म माना है। देखिए, इन्द्र ने द्रोह न करने की प्रतिज्ञा करके भी नमुचि दानव का सिर काट डाला था। शत्रु को धोखा देकर मार डालना या उसका सर्वनाश करना एक पुरानी चाल है। साँप जैसे बिल में आये हुए मेढक

१०

आदि को लील लेता है वैसे ही पृथ्वी अविरोधी राजा और परदेश न जानेवाले ब्राह्मण को खा जाती है। महाराज, जाति का ख़याल करने से तो कोई किसी का शत्रु नहीं हो सकता। जब दोनों का उद्देश्य या जीविका-विषयक निश्चय एक ही होता है तभी परस्पर लाग-डाँट और शत्रुता पैदा होती है। शत्रु को जो कोई उपेक्षा की दृष्टि से देखता और प्रबल होने देता है वह क्रमशः बढ़नेवाले रोग के समान उस शत्रु के हाथों नष्ट हो जाता है। वल्मीक जैसे वृक्ष की जड़ में रहकर किसी समय अपने आश्रयस्थल उस वृक्ष को खोखला बनाकर गिरा देती है वैसे ही तुच्छ शत्रु भी, उपेक्षा दिखाने से, यथासमय ज़ोर पकड़कर लापरवाही करनेवाले को पछाड़ देता है।

महाराज, मैं चाहता हूँ कि शत्रु के ऐश्वर्य और सौभाग्य को देखकर आप प्रसन्न न हों। मैंने यह जो आपसे कहा है उसे हर-एक पराक्रमी पुरुष स्वीकार करेगा। जिसे उन्नति की चाह होती है उसकी, अपनी जातिवालों के बीच, अवश्य वृद्धि होती है। मेरा मतलब यह है कि पराक्रम और उद्यम ही अभ्युदय के मूल कारण हैं। मैं या तो पाण्डवों के ऐश्वर्य और सौभाग्य को प्राप्त करूँगा या युद्ध ठानकर प्राण दे दूँगा। पिताजी! क्या जानें, हमारी उन्नति होगी या नहीं? २१ किन्तु पाण्डव लोग तो नित्य बढ़ रहे हैं। यह देखकर मुझे अपना जीवन भार मालूम पड़ रहा है।

छप्पनवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र का जुए के लिए अनुमति देना

अब शकुनि ने कहा—हे विजय पानेवालों में श्रेष्ठ दुर्योधन, अगर युधिष्ठिर की सौभाग्य-लक्ष्मी ही तुम्हारे इस खेद और सन्ताप का कारण है तो कहो, मैं अभी पाँसों के खेल में उनका सर्वस्व जीतकर तुम्हें दे दूँ। तुम युधिष्ठिर को चौसर खेलने के लिए बुलाओ। अभी तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो जायगा। युद्ध करने की आवश्यकता ही नहीं। देखो, मैं जुए में बहुत ही निपुण हूँ। युधिष्ठिर इस मामले में कुछ भी नहीं जानते। इसलिए मैं साफ़ बचकर उन्हें अवश्य जीत लूँगा। इस युद्ध में दाँव लगाना ही मेरा धनुष है, पाँसे ही मेरे बाण हैं, पाँसों की विद्या ही मेरी प्रत्यञ्चा है और पाँसे फेंकने की जगह ही मेरा रथ है।

दुर्योधन ने कहा—पिताजी, ये पाँसों के खेल में चतुर मामाजी पाँसों के खेल के द्वारा पाण्डवों की सब सम्पत्ति और राज्य हर लेने की बात कह रहे हैं। इसलिए आप इसका अनुमोदन कीजिए। आप अनुमति दे देंगे तो सब काम बन जायगा। धृतराष्ट्र ने कहा—मैं विदुर से सलाह किये बिना किसी काम के लिए अनुमति नहीं दे सकता। इसलिए पहले उनसे सलाह करके कर्त्तव्य का निश्चय कर लेने दो। दुर्योधन ने कहा—पिताजी, विदुर पाण्डवों के

जैसे शुभचिन्तक हैं वैसे मेरे नहीं हैं। इस कारण वे अवश्य इस बारे में सम्मति देने से आपको रोकेंगे। ख़ास कर पराक्रमी होकर कौन बुद्धिमान् पुरुष पराई बुद्धि से काम करेगा? इसके सिवा इसी का क्या ठीक कि एक काम करने के बारे में दो आदमियों की एक ही सलाह होगी! छल आदि से अलग रहकर अपना बचाव करनेवाला मन्द पुरुष वर्षा में भीगी हुई चटाई की तरह विनष्ट हो जाता है। व्याधियाँ या यमराज इसकी राह नहीं देखते कि मनुष्य कल्याण को प्राप्त कर ले, तब हम उस पर आक्रमण करेंगे। इसलिए जब तक जीवन है और शरीर स्वस्थ है तभी तक अपने भले की चेष्टा कर लेनी चाहिए। १०

धृतराष्ट्र ने कहा—बेटा, अपने से बल में अधिक आदमी के साथ झगड़ा ठानना मुझे किसी तरह नहीं रुचता। देखो, शत्रुता ही विकार पैदा कर देती है, और विकार वह शस्त्र है जो लोहे का बना हुआ न होने पर भी बहुत जल्द विध्वंस कर देता है। बेटा दुर्योधन, यह जुआ झगड़े और घोर अनर्थ की जड़ है। उसी को तुम अर्थ-प्राप्ति का साधन समझते हो। जुए में प्रवृत्त होने पर अवश्य तीक्ष्ण बाणों और तलवारों के वार की नौबत आ जायगी।

दुर्योधन ने कहा—पिताजी, पहले के और राजा भी तो जुआ खेलते थे। उनका नाश होने की या उनमें युद्ध छिड़ने की बात तो किसी ने सुनी नहीं। चाहे जो हो, महाराज! आप शकुनि मामा की बात पर विश्वास करके शीघ्र ही जुआ खेलने का स्थान—एक विशाल सभा-मण्डप—बनने की आज्ञा दीजिए। जो लोग खेलते हैं और जो उनके साथी हैं, उनके लिए पाँसों का खेल स्वर्ग (सुख) के दरवाज़े के समान है। इसलिए मैं पाण्डवों के साथ जुआ खेलने को किसी तरह दूषित नहीं समझता।

धृतराष्ट्र ने कहा—पुत्र, तुम्हारे कहे ये वचन मुझे नहीं रुचते। अब तुम्हें जो अच्छा लगे वह करो; किन्तु जो मेरा कहा न मानोगे तो तुम्हें पीछे पछताना पड़ेगा। तुम्हारा यह विचार धर्मसङ्गत नहीं है। बुद्धिमान् और विद्वान् विदुर पहले ही ज्ञानदृष्टि से देखकर कह चुके हैं कि क्षत्रियों का नाश करानेवाला यह घोर कर्म है। मुझे जान पड़ता है, तुम मोहवश होकर यह अनिष्ट किये बिना न मानोगे।

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, मनस्वी धृतराष्ट्र ने दैव को ही प्रबल और दुस्तर समझा। होनी ने उनकी बुद्धि को मूढ़ बना दिया। उन्होंने दुर्योधन की प्रार्थना के अनुसार सेवकों को आज्ञा दी कि तुम लोग कोस भर के घेरे में एक बढ़िया सभा-भवन बनवाओ। उसमें हज़ार खम्भे और सौ द्वार हों। सोने और वैदूर्य आदि मणियों से विचित्र उस सभा-भवन में सुन्दर स्फटिकमय तोरण बनवाये जायँ।

धृतराष्ट्र की आज्ञा पाते ही हज़ारों कारीगर प्रसन्नचित्त होकर, सब सामान जमा करके, फुर्ती से सभा-भवन बनाने लगे। थोड़े ही समय में बहुत रत्नों से भूषित, विचित्र सुवर्ण-

मय आसनों से अलङ्कृत वह रमणीय सभा बन गई। तब अनुचरों ने आकर धृतराष्ट्र को सभा

२० के बन जाने की ख़बर दी। अब प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्र ने अपने मुख्य मन्त्री विदुर को बुलाकर कहा—भाई, तुम मेरी आज्ञा से शीघ्र इन्द्रप्रस्थ को जाओ और वहाँ से युधिष्ठिर को अपने साथ ले आओ। वे आकर अनेक रत्नों से भूषित, विविध शय्या और आसनों से अलङ्कृत

२२ सभा-भवन को देखें और सुहृद् लोगों के साथ द्यूतक्रीड़ा करें।

सत्तावनवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र का विदुर को युधिष्ठिर के पास भेजना

वैशम्पायन कहते हैं—हे भरतकुल-तिलक, पुत्र का अभिप्राय जानकर और दैव को अलंघ्य मानकर धृतराष्ट्र ने विदुर से कहा कि तुम शीघ्र खाण्डवप्रस्थ को जाओ। यह सुनकर विदुर ने कहा—महाराज, आपकी यह आज्ञा मानने को किसी तरह मेरा जी नहीं चाहता। आप अत्यन्त स्नेहवश होकर इस काम के लिए अनुमति दे रहे हैं। मुझे विश्वास है कि इस काम से भाई-बन्धुओं में फूट पड़ेगी और अन्त को कुल का नाश हो जायगा।

धृतराष्ट्र ने कहा—विदुर, यदि दैव प्रतिकूल न हो तो इस काम से किसी प्रकार की दुर्घटना होने की आशङ्का नहीं। भाई, विधाता और दैव की इच्छा से ही इस जगत् के सब काम होते हैं। संसार के सभी लोग स्वतन्त्र नहीं हैं। इसलिए तुम क्यों अनिष्ट की आशङ्का करते हो? मेरी आज्ञा का पालन करो। झटपट धर्मराज युधिष्ठिर के पास जाकर उन्हें

५ भाइयों-सहित यहाँ बुला लाओ।

अट्ठावनवाँ अध्याय

विदुर का युधिष्ठिर के पास जाना

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, विदुर क्या करते! धृतराष्ट्र के बारम्बार आज्ञा देने पर लाचार होकर उन्हें पाण्डवों के पास जाने के लिए तैयार होना पड़ा। वे लम्बे-चौड़े, मज़बूत और ताक़तवर, घोड़ोंवाले रथ पर सवार हुए। चाबुक लगाते ही वे घोड़े वायु के से वेग से इन्द्रप्रस्थ की ओर दौड़े। वे राजधानी की सड़क पर चले और कुबेरभवन-सदृश पाण्डवों के महलों के पास पहुँच गये। स्तुति-पाठ करनेवाले चारणों और ब्राह्मणों ने उन्हें बड़े आदर से लिया [और ख़ूब आदर-सत्कार करके धर्मराज युधिष्ठिर के पास पहुँचा दिया]। सत्यसन्ध धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर ने सच्चे स्नेह, भक्ति और श्रद्धा के साथ विदुर की पूजा की। बिदुरजी

के आराम से उत्तम आसन पर बैठते ही युधिष्ठिर ने उनसे पुत्र-सहित महाराज धृतराष्ट्र की कुशल के बारे में अनेक प्रश्न किये। फिर विदुर के आकार में विलक्षणता अर्थात् उनके चेहरे पर उदासी देखकर युधिष्ठिर ने पूछा—चाचाजी, आपका चेहरा मलिन क्यों देख पड़ता है? आप कुशलपूर्वक तो यहाँ आये हैं न? दुर्योधन आदि भाई महाराज धृतराष्ट्र के साथ कोई बुरा व्यवहार तो नहीं करते? सब प्रजा और अन्य क्षत्रिय राजा लोग तो उनके आज्ञाकारी और अधीन हैं न?
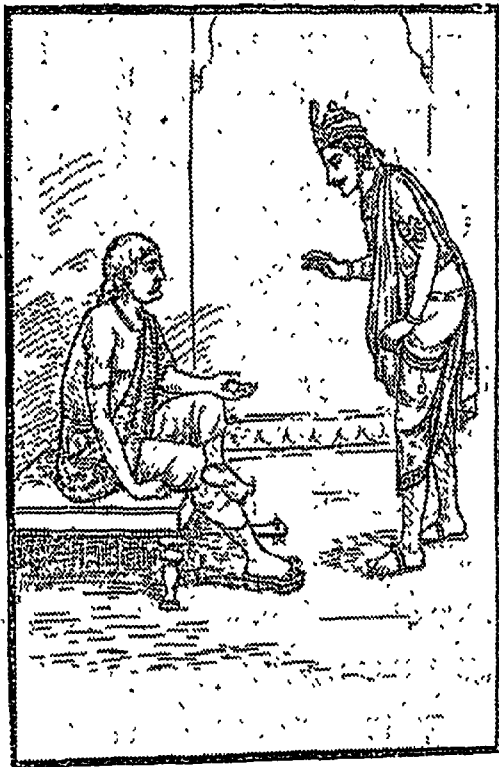
विदुर ने कहा—राजन्, इन्द्र के तुल्य प्रतापी महाराज धृतराष्ट्र अपने पुत्रों-सहित मज़े में हैं। दुर्योधन आदि सब पुत्र उनकी आज्ञा मानते हैं और सब प्रजा उनकी आज्ञा को शिरोधार्य समझती है। वे नीरोग और शोक-शून्य होकर सदा अपनी उन्नति के कामों में लगे रहते हैं। इस समय तुम लोगों की सब प्रकार की कुशल के बारे में पूछकर जो कहने के लिए उन्होंने मुझे तुम्हारे पास भेजा है सो कहता हूँ, सुनो। धृतराष्ट्र ने कहा है—हे युधिष्ठिर, तुम भाइयों के साथ यहाँ आकर अपनी सभा के सदृश यह सभा देखो, और दुर्योधन के साथ मित्रभाव से जुआ खेलो। तुम लोगों के समागम से मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी; सब कौरव भी बेहद ख़ुश होंगे। राजन्, महाराज धृतराष्ट्र ने जिन धूर्त जुआरियों को उस सभा में रखने का विचार किया है उनको तुम वहाँ देखना। इसी के लिए मैं तुम्हारे पास भेजा गया हूँ कि तुमको वहाँ ले चलूँ। अब तुम राजा धृतराष्ट्र की आज्ञा का पालन करो।

युधिष्ठिर ने कहा—चाचाजी, द्यूतक्रीड़ा झगड़े-बखेड़े की जड़ है। यह जान-बूझकर कौन बुद्धिमान् पुरुष जुआ खेलेगा? कृपा करके बतलाइए, इस बारे में आपकी क्या सलाह है? हम सब आपकी आज्ञा का पालन करने को तैयार हैं। विदुर ने कहा—मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि जुए को पण्डितों ने सब अनर्थों की जड़ माना है। इसी कारण मैंने बारम्बार धृतराष्ट्र को यह इरादा छोड़ देने की सलाह दी थी, किन्तु महाराज धृतराष्ट्र ने मेरे कहने का ख़याल न करके मुझे तुम्हारे पास भेजा है। तुम जो अच्छा समझो वही करो। युधिष्ठिर ने पूछा—विदुरजी, दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के पुत्रों के अलावा और कौन-कौन धूर्त बहुत सा धन रक्खे हुए वहाँ पर हैं

जिनके साथ खेल होगा ? विदुर ने कहा—राजन्, जुए में चतुर गान्धार-राज शकुनि, राजा विविंशति, चित्रसेन, सत्यव्रत, पुरुमित्र और जय, ये धूर्त वहाँ खेल के लिए तुम्हारे आने की राह देख रहे हैं। युधिष्ठिर ने कहा—तब तो सभी भयङ्कर धूर्त जुआरी वहाँ पर मुझे उपस्थित देख पड़ते हैं। अब क्या करना चाहिए ? जो हो, सभी जगत् दैव के अधीन है; कोई स्वाधीन नहीं है। [मैं देखता हूँ; राजा धृतराष्ट्र ने दुर्योधन के स्नेह के कारण, उसका प्रिय करने के लिए, इस द्यूतक्रीड़ा की व्यवस्था की है; क्योंकि पिता को पुत्र बहुत प्यारा होता है।] धृतराष्ट्र की आज्ञा के अनुसार जुआ खेलने के लिए मेरी प्रवृत्ति नहीं होती; किन्तु आप कहते हैं, इसी कारण मैं द्यूतक्रीड़ा करूँगा। यदि जीतने की इच्छा से मुझे कोई न बुलाता तो अपनी ओर से मैं कभी शकुनि के साथ जुआ न खेलता; परन्तु खेलने के लिए बुलाये जाने पर मैं नाहीं न करूँगा। यही मेरा सदा का नियम है।

वैशम्पायन कहते हैं कि इसके बाद युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र के पास जाने के लिए, तैयारी करने लगे। युधिष्ठिर की आज्ञा से दूसरे दिन आत्मीय, स्वजन, भाई-बन्धु और द्रौपदी आदि स्त्रियाँ सब जाने के लिए तैयार हो गये। जाते समय युधिष्ठिर ने कहा—जैसे किसी बहुत ही चमकीले पदार्थ से आँखें चौंधिया जाती हैं वैसे ही मनुष्य की बुद्धि को दैव हर लेता है। बँधे हुए की तरह हर-एक मनुष्य को दैव की इच्छा से हर-एक काम करना पड़ता है।

दुर्योधन के द्यूतक्रीड़ा के आह्वान को न सह सकने के कारण युधिष्ठिर, विदुर के साथ, हस्तिनापुर को चल दिये। शत्रुदमन युधिष्ठिर बाह्लीकराज के दिये हुए बढ़िया रथ पर चढ़कर

२०

अपने भाइयों के साथ हस्तिनापुर को चले। उनके आगे-आगे सब ब्राह्मण और पुरोहित थे। यथा-समय युधिष्ठिर का रथ राजभवन के द्वार पर पहुँच गया। रथ से उतरकर धर्मराज पहले भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृप, अश्वत्थामा आदि से मिले। उन्होंने यथोचित रूप से प्रणाम करके, गले से लगाकर और छोटों को आशीर्वाद देकर, सबका सम्मान किया। इसके बाद वे सोमदत्त, दुर्योधन, शल्य, शकुनि, दुःशासन और उसके भाइयों से मिले। जयद्रथ से और कौरवों तथा अन्य राजाओं से मिलकर उन्होंने सादर सम्भाषण किया। फिर सरलस्वभाव धर्म-

कौरवों के अन्तःपुर में द्रौपदी—पृ० ६२२

राज भाइयों-सहित गान्धारी के भवन में गये। असंख्य तारागण के बीच रोहिणी के समान गान्धारी अपनी बहुओं के बीच में बैठी थीं। युधिष्ठिर ने पतिव्रता गान्धारी को प्रणाम किया। गान्धारी ने बड़ी प्रसन्नता के साथ उनका अभिनन्दन किया। अन्त को युधिष्ठिर ने अपने बूढ़े चाचा धृतराष्ट्र से मिलकर उनके चरणों में प्रणाम किया। महाराज धृतराष्ट्र ने प्रसन्नतापूर्वक पाँचों पाण्डवों को आशीर्वाद दिया और स्नेह से उनके मस्तकों को चूमा। इस प्रकार सबसे मिल-जुलकर, प्रणाम-आशीर्वाद-कुशलप्रश्न आदि के उपरान्त सबसे आज्ञा लेकर, महाराज युधिष्ठिर अपने रहने के लिए बताये गये भवन में गये। दुःशला आदि राजकुमारियाँ और धृतराष्ट्र की बहुएँ द्रौपदी के अलौकिक रूप-सौन्दर्य और जड़ाऊ गहनों की अद्भुत शोभा देखकर प्रसन्न होने के बदले अप्रसन्न ही हुईं। आई हुई आत्मीय स्त्रियों से बातचीत करके पाण्डवों ने नियमानुसार कसरत की, स्नान किया और फिर सन्ध्या-वन्दन आदि नित्य-कर्म समाप्त किये। अङ्गों में चन्दन-अङ्गराग आदि लगाकर उन्होंने अमूल्य कपड़े और गहने पहने। इस प्रकार प्रातःकाल के काम करके उन्होंने ब्राह्मणों को बहुत सा धन दिया और उनसे स्वस्ति-पाठ कराया। फिर उत्तम भोजन करने के उपरान्त वे आराम करने लगे। सायङ्काल को मनोहर गाना-बजाना सुनकर वे सुख की नींद सोये। रात भर विश्राम कर चुकने पर, रात के पिछले पहर में आकर, स्तुतिपाठ करते हुए बन्दीजन उन्हें जगाने लगे। पाण्डवों ने पलँगों पर से उठकर प्रातःकाल के ज़रूरी काम किये। फिर प्रसन्नतापूर्वक धृतराष्ट्र की सभा में सब भाई पहुँचे। धूर्त शकुनि आदि ने वहाँ उनका ख़ूब आदर और अभिनन्दन किया। ३८

उनसठवाँ अध्याय

जुए का खेल होना

वैशम्पायन कहते हैं—युधिष्ठिर आदि पाण्डव सभा में जाकर वहाँ उपस्थित राजाओं से मिले। उन्होंने बड़ों को प्रणाम किया, बराबरवालों को गले से लगाया और छोटों को स्नेहपूर्वक आशीर्वाद दिया। इस प्रकार शिष्टाचार कर चुकने पर पाँचों पाण्डव मूल्यवान् बढ़िया आसनों पर बैठ गये। सबको आराम से बैठे देखकर शकुनि ने महाराज युधिष्ठिर से कहा—राजन्, सभा में सब लोग आ गये हैं। ये चौसर का खेल शुरू होने की राह देख रहे हैं। अब आप पाँसे फेंककर, बाज़ी लगाकर, खेल शुरू कीजिए।

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—राजन्, यह जुआ बहुत ही निन्दित कर्म और अनर्थ की जड़ है। इसकी हार-जीत में क्षत्रियों का पराक्रम भी तो नहीं देख पड़ता। यह कार्य नीति-सङ्गत भी नहीं। फिर तुम क्यों द्यूतक्रीड़ा की प्रशंसा कर रहे हो? कपट करनेवाले धूर्त जुआरी का मान

भी नहीं होता। इसलिए हे शकुनि, तुम नीचों की तरह अन्याय और धूर्तता से, हमें जीतने का विचार छोड़ दो। शकुनि ने कहा—राजन्! आप जुआ खेलनेवाले को, कपटी और शठ कहकर, निन्दा करते हैं; किन्तु मेरी समझ में तो इस जुए के खेल को जाननेवाला पुरुष बड़ा बुद्धिमान् होता है; क्योंकि वह चालों को और चौसर के घरों की गिनती को जानता है, जय और पराजय का विचार कर सकता है तथा सहनशील होता है। हे कुन्तीपुत्र, पाँसा पड़ना भाग्य के अधीन है, अपनी इच्छा से कपट करके जय-पराजय कोई नहीं कर सकता। इसलिए तर्क-वितर्क करना छोड़कर आइए, हम लोग चौसर खेलें। कुछ शङ्का न कीजिए। देर न करके दाँव लगाइए और पाँसे फेंकिए।

युधिष्ठिर ने कहा—जगत्प्रसिद्ध मुनिश्रेष्ठ देवल कह गये हैं कि धूर्तों के साथ कपटपूर्वक चौसर खेलना और हारना-जीतना पाप कर्म है। धर्म के अनुगामी होकर, सुमार्ग पर चलकर, युद्ध आदि वीरता के कामों में जय प्राप्त करना ही क्षत्रियों का प्रधान और प्रशंसनीय धर्म है। प्रायः छल के बिना जुए का १० खेल नहीं होता। आर्य लोग न तो म्लेच्छ-भाषा में बातचीत करते हैं और न छल-कपट करते हैं। क्रूरता और धूर्तता से बचकर युद्ध करना ही सज्जनों का काम है। देखो, हम लोग यथाशक्ति अपने सब धन को ब्राह्मणों के उपकार और शिक्षा के प्रचार में लगाते रहते हैं; उससे ब्राह्मणों का और प्रजा का विशेष उपकार होता है। तुम लोगों के साथ कपट का जुआ खेलें तो तुम हमारा वह सब धन जीत लोगे। इसलिए लोकोपकार में ख़र्च होनेवाले धन को धूर्तता के साथ जुए में जीत लेना तुम्हें उचित नहीं। इसके सिवा मैं जुआ खेलकर उससे धन प्राप्त करना या सुख-भोग करना भी नहीं चाहता। मतलब यह कि जुआ खेलनेवाले धूर्त की इस लोक में कहीं प्रशंसा नहीं होती और जुआ खेलना कोई अच्छा काम भी नहीं।

शकुनि ने कहा—हे युधिष्ठिर, अश्रोत्रियों के आगे श्रोत्रिय लोग, तत्त्वज्ञान से हीन पुरुषों के पास तत्त्वज्ञानी लोग, अल्पज्ञ मूढ़ पुरुषों के निकट विद्वान् लोग, दुर्बलों के समीप बलवान् लोग और अस्त्र-विद्या न जाननेवालों के आगे अस्त्र-विद्या जाननेवाले लोग जय की इच्छा से जाते

हैं और निकृति (कपट या चालाकी) से उनको जीतते हैं। इस व्यवहार को कोई बुरा नहीं समझता। वैसे ही द्यूतक्रीड़ा को अच्छी तरह जाननेवाला आदमी यदि द्यूतक्रीड़ा में अनभिज्ञ पुरुष को चालाकी से जीत ले तो वह दोष की बात नहीं कही जा सकती। संसार में सब जगह चालाकी से काम लिया जाता है। यदि आप जानते हैं कि मेरी चालाकी या चतुराई से आपकी हार होगी और आप हारने से डरते हैं तो खेलने से इन्कार कर दीजिए। युधिष्ठिर ने कहा—शकुनि, यह तो मेरा सदा का व्रत है कि किसी काम के लिए यदि कोई मुझे ललकारेगा [या किसी काम में मुझसे कोई सामना करने के लिए कहेगा] तो मैं उससे विमुख न होऊँगा। होनी बड़ी प्रबल होती है; मैं उसी होनी या दैव के अधीन हूँ। तुम लोग द्यूतक्रीड़ा के लिए मुझे बुलाते हो तो मैं नाहीं नहीं कर सकता; उसका फल चाहे जो हो। अच्छा, अब यह बताओ कि इस सभा में मेरे साथ कौन खेलेगा? कौन मुझसे हारने या जीतने की बाज़ी लगावेगा? इसका निश्चय करके खेल शुरू हो।

दुर्योधन ने कहा—राजन्, दाँव लगाने के लिए मैं धन-रत्न आदि दूँगा; मेरी ओर से मेरे मामा शकुनि आपके साथ खेलेंगे।

युधिष्ठिर ने कहा—एक आदमी की ओर से दूसरे आदमी का खेलना मुझे ठीक नहीं जान पड़ता। तुम्हीं विचार कर देखो, यह बात कैसे ठीक हो सकती है? और जो तुम योंही खेलना चाहते हो तो अच्छी बात है, खेल होने दो।

साठवाँ अध्याय

जुए में युधिष्ठिर की हार

वैशम्पायन कहते हैं—जुआ खेलने का निश्चय हो जाने पर सब राजा लोग अपने-अपने स्थान पर जा बैठे। महाराज धृतराष्ट्र राजसिंहासन पर विराजमान हुए। लाचार होकर उदास भाव से भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और बुद्धिमान् विदुर भी वहाँ बैठे थे।

स्वर्ग में सब देवताओं के जमाव से इन्द्र की सभा की जैसी शोभा होती है वैसी ही शोभा उस समय उस महासभा की हुई। सिंह की सी गरदनवाले, महाबली राजा लोग अपनी इच्छा से अलग-अलग, और दो-दो आदमी एक-एक आसन पर भी, बैठे थे। उन विचित्र सिंहासनों पर बैठे हुए वे राजा लोग सभी साहसी, बलवान् और वेद-वेदाङ्ग के पण्डित थे। इस प्रकार दर्शकों से सभा भर जाने पर भाई-भाई में जुआ होने लगा।

धर्मराज ने दुर्योधन से कहा—समुद्र से उत्पन्न उत्तम मणियों का बना हुआ, सुवर्ण-मण्डित, यह मूल्यवान् हार मैं दाँव पर लगाता हूँ। इसके बदले में तुम क्या लगाते हो? तुम भी वह धन दिखाओ जिसकी बाज़ी लगाकर मुझसे खेलना चाहते हो।

दुर्योधन ने कहा—मेरे पास बहुत सी मणियाँ, महामूल्य रत्न और अतुल धन है। उसे आप जीत लें; धन की हानि को मैं कुछ नहीं समझता। वैशम्पायन कहते हैं कि तब चौसर के खेल में धूर्त-चतुर शकुनि ने पाँसे हाथ में लेकर फेंके और कहा—यह दाँव मैंने जीत लिया। ९

इकसठवाँ अध्याय

बार-बार धर्मराज युधिष्ठिर की हार

वैशम्पायन कहते हैं कि [वह दाँव हारकर] युधिष्ठिर ने कहा—शकुनि, कपट का सहारा लेकर जीत जाने से इतना गर्व क्यों करते हो? मैं और बाज़ी लगाता हूँ, आओ खेलो। मैं बार-बार बाज़ी लगाकर तुमसे खेलूँगा। मेरे यहाँ हज़ारों सुवर्ण-मुद्राओं से भरे हुए घड़े, अक्षय सम्पत्ति से भरा हुआ ख़ज़ाना और असंख्य मणि-रत्न हैं। इस सम्पत्ति को मैं बाज़ी पर लगाता हूँ। परम पराक्रमी ज्येष्ठ पाण्डव के यों कहने पर शकुनि ने फिर "मैंने जीत लिया" कहकर पाँसे फेंके। शकुनि को वह दाँव भी जीत लेते देखकर युधिष्ठिर ने फिर शकुनि से कहा—चलने के समय जिसका शब्द पानी-भरे बादल और असीम समुद्र के गम्भीर गर्जन के समान सुन पड़ता है, हज़ारों रथ मिलकर भी जिसके बराबर नहीं हो सकते, जिस पर बैठकर हम यहाँ आये हैं, उस व्याघ्रचर्म-मण्डित, किङ्किणीजाल-शोभित, मनोहर पवित्र रथ को मैं दाँव पर लगाता हूँ। आठ तेज़ घोड़े जिसे ले चलते हैं उस राजरथ को दाँव में लगा देने पर शकुनि ने फिर "मैंने जीत लिया" कहकर कपट के पाँसे फेंके। रथ हार जाने पर युधिष्ठिर ने कहा—अनेक गहनों से सजी हुई, मेरी आज्ञा से स्नातकों, मन्त्रियों और अभ्यागत राजाओं की सेवा करनेवाली, नाचने-गाने की कला में निपुण, एक लाख जवान दासियाँ मेरी सम्पत्ति हैं। मैं उन्हें दाँव पर लगाता हूँ। [कपट में चतुर] शकुनि ने उसी तरह फिर "मैं जीत गया" कहकर पाँसे फेंके। दासियों को हार जाने पर युधिष्ठिर ने कहा—बुद्धिमान्, गहनों और कपड़ों से १०

शकुनि ने हँस कर पाँसे फेंके और मैं जीत गया कह कर दाँव जीत लिया—पृ० ६३७

सँवारे हुए, दिन-रात सोने के थालों में अतिथियों को भोजन करानेवाले एक लाख दास मेरी सम्पत्ति हैं। उन्हें मैं दाँव पर लगाता हूँ। शकुनि ने फिर "मैंने जीत लिया" कहकर पाँसे फेंके और उन्हें भी जीत लिया।

अब युधिष्ठिर ने कहा—सदा मस्त बने रहनेवाले, सोने की ज़ंजीरों से सजे हुए, सुशिक्षित, बड़े-बड़े दाँतोंवाले, ऊँचे, शत्रुओं के नगरों को तहस-नहस कर डालनेवाले, मेघों के रङ्ग के हज़ारों बढ़िया हाथी मेरे पास हैं। ये राजाओं की सवारी के लायक़ हैं और युद्धभूमि में किसी प्रकार के शब्द से नहीं डरते। एक-एक हाथी के साथ आठ-आठ हथिनियां हैं। वे हाथी मेरी सम्पत्ति हैं। उन्हें मैं दाव पर लगाता हूँ। शकुनि ने हँसकर फिर पांसे फेंके और "मैं जीत गया" कहकर उन्हें भी जीत लिया।

युधिष्ठिर ने कहा—मेरे यहां इतने ही सुवर्ण-मण्डित विचित्र ध्वजाओं से शोभित रथ भी हैं। उनमें सुन्दर सुशिक्षित घोड़े जुतते हैं। हर-एक रथ एक-एक विचित्र युद्ध करनेवाले योद्धा के अधिकार में रहता है। इन रथी सैनिकों को, चाहे युद्ध करना पड़े और चाहे न करना पड़े, हर महीने हज़ार मुद्रा की वृत्ति मैं देता हूँ। ये रथी और रथ मेरी सम्पत्ति हैं। मैं इन्हें भी दाँव पर लगाता हूँ। कपटी शकुनि युधिष्ठिर से वैर रखता था। उसने फिर "मैं जीत गया" कहकर कपट के पाँसे फेंके और दाँव जीत लिया। २०

युधिष्ठिर ने फिर कहा—अर्जुन ने चित्ररथ गन्धर्व को युद्ध में हराकर उससे तीतर के रङ्गवाले, सोने के साज से सजे हुए, फुर्तीले, असंख्य बढ़िया घोड़े पाये हैं। मैं उस अपनी सम्पत्ति—घोड़ों—को भी दाव पर लगाता हूँ। शकुनि ने फिर पांसे फेंककर युधिष्ठिर से कहा—मैंने यह दाँव भी जीत लिया। यह दाव भी हार जाने पर युधिष्ठिर ने कहा—मेरे यहाँ दस हज़ार बढ़िया रथ और छकड़े हैं। उनमें जुतनेवाले अच्छे-अच्छे वाहन भी हैं। दिव्य भोजन करके शक्ति बढ़ाते रहनेवाले, चौड़ी छातीवाले, साठ हज़ार वीर पुरुष भी मेरे यहां हैं। मैं यह सब सम्पत्ति दाँव पर लगाता हूँ। [शकुनि तो कपट के पांसों से खेल ही रहा था।] उसने फिर भी येनकेन पांसे फेंक दिये और "मैं जीत गया" कहकर वह दांव जीत लिया।

अन्त को युधिष्ठिर ने कहा—हे शकुनि, [मेरे यहाँ] तांबे और लोहे के सन्दूकों में रक्खी हुई चार सौ निधियाँ हैं। बहुत से सोने के ढेर भी हैं। मूल्यवान् जातरूप नाम का सोना भी अपार है। यह सब धन मैं दांव पर लगाता हूँ। शकुनि ने हँसकर फिर पाँसे फेंके और "मैं जीत गया" कहकर दांव जीत लिया। ३१

———

बासठवाँ अध्याय

विदुर का धृतराष्ट्र को समझाना

वैशम्पायन कहते हैं कि इस तरह सर्वस्व हर लेनेवाला जुए का खेल धीरे-धीरे बढ़ता ही जाता था। यह देखकर विदुर से न रहा गया। उन्होंने महाराज धृतराष्ट्र से कहा—महाराज, मैं जानता हूँ कि जो मरनेवाला है उसे दवा नहीं रुचती। वैसे ही आपको यद्यपि मेरी बात पसन्द नहीं होगी तो भी अपना कर्तव्य समझकर कहता हूँ; सुनिए। राजन्, जो पापी पैदा होते ही गीदड़ के से अशुभ स्वर से चिल्ला उठा था वह यह कुरु-कुल-हन्ता दुर्योधन अवश्य आपके कुल का नाश करावेगा। यह दुर्योधन अपने कुल के लिए सियार के समान अमङ्गलरूप है। यह आपके ही घर में रहता है, तो भी मोहवश आपको इसका कुछ ख़याल नहीं कि इसके द्वारा कुल भर का नाश हो सकता है। मैं आपको समझाता हूँ, पर आप ध्यान नहीं देते। सुनिए, [शुक्रनीति में लिखा है कि] शहद उतारनेवाला शहद के लालच से ऊँचे पर चढ़ जाता है; उसे यह ख़याल नहीं होता कि इतने ऊँचे से गिरूँगा तो जीता न बचूँगा। फल यह होता है कि वह गिरकर जान गँवा देता है। वैसे ही यह दुष्ट दुर्योधन, ऐश्वर्य पाने की इच्छा से, जुए में मतवाला सा हो रहा है। इन महारथी पाण्डवों से वैर करने में होनेवाले अपने नाश का इसे ख़याल ही नहीं। राजन्, आप स्वयं बुद्धिमान् हैं; आप तो सोचिए। मुझे मालूम है, पूर्व-समय में किसी भोजवंशी राजा ने अपने नालायक़ उपद्रवी पुत्र को नगरवासियों की भलाई के लिए छोड़ दिया था। आप जानते ही हैं कि अन्धक, भोज आदि वंश के यादवों ने मिलकर दुरात्मा कंस का त्याग कर दिया था; पीछे से कृष्ण के हाथों उस दुरात्मा को मरवा डाला। अब वे सब बड़े आनन्द से रहते हैं। आप भी अर्जुन को आज्ञा दीजिए; वे इस दुष्ट का दमन कर दें। इस दुष्ट के न रहने पर कुल के नाश
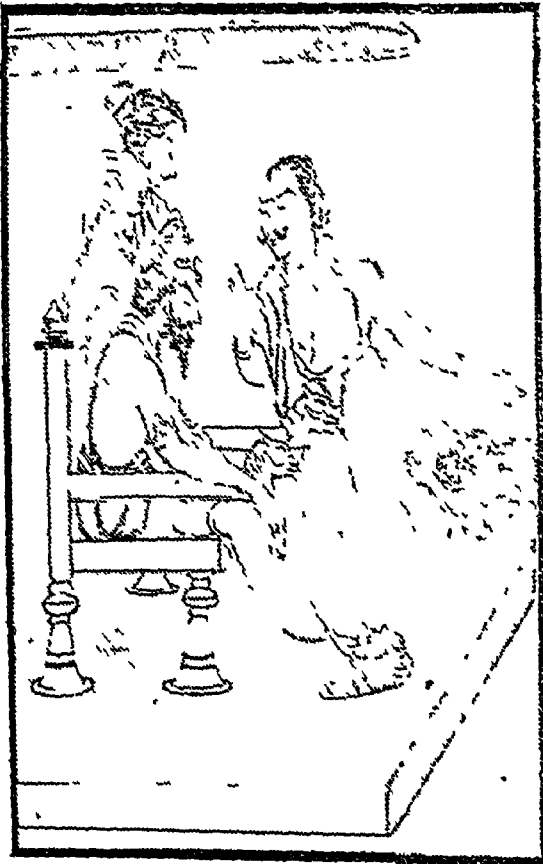
का खटका न रहेगा; कुरुवंश के लोग सुख से रहेंगे। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ; आप दुर्योधनरूप कौए के बदले पाण्डवरूप मोरों को पालिए। यह दुर्योधन सियार है। इसे छोड़कर सिंह-तुल्य पाण्डवों को ग्रहण कीजिए। इसी में भलाई है। अपने को शोक-समुद्र में न डुबाइए। सर्वज्ञ और सब भावों के जानकार शुक्राचार्य ने असुरों से, दुष्ट जम्भासुर का त्याग करने के लिए उपदेश देते समय, कहा था कि कुल की भलाई के लिए एक दुष्ट पुरुष को, गाँव भर की भलाई के लिए कुल को, जनपद की रक्षा और भलाई के लिए गाँव को और अपनी भलाई के लिए पृथ्वी भर को त्याग देना चाहिए। १८

महाराज, एक और कथा सुनिए। एक वन में कुछ ऐसे पक्षी रहते थे जो सोना उगलते थे। एक राजा शिकार के लिए गया और उन विचित्र पक्षियों को देखकर अपने घर ले आया। उस मूर्ख ने समझा कि सोना इनके पेट में भरा है। बस, सोने के लालच से उसने सब पक्षियों को मरवा डाला, परन्तु उससे उसके हाथ कुछ नहीं आया। उस समय जो सोना मिलता था उसे तो उसने खो ही दिया और आगे जो सोना मिलते रहने की आशा थी उसे भी मिटा दिया। इसलिए हे कुरुकुल-तिलक, उसी तरह दुरात्मा दुर्योधन की सलाह से धन के लिए आप पाण्डवों से वैर न ठानिए। यदि न मानिएगा तो मोहवश उन पक्षियों को मारनेवाले राजा की तरह आपको पीछे पछताना पड़ेगा। राजन, माली जैसे स्नेह और यत्न के साथ वृक्ष-लता आदि में पानी सींचता है और पीछे जब वे फूलते हैं तब उनसे ढेर के ढेर फूल पाता है, वैसे ही आप भी पाण्डवों को स्नेह-जल से सींचकर अपनी भलाई के फूल प्राप्त कीजिए। कोयला बनानेवाले बैपारी जैसे वृक्षों को काटकर जला डालते हैं वैसे पाण्डवों को जड़ से उखाड़कर उन्हें जला डालने का उपाय न कीजिए। पाण्डवों को अपने बुरे बर्ताव से क्रोधित करके पुत्र, मन्त्री, सेना आदि के साथ यमपुर जाने का यत्न मत कीजिए। मैं सच कहता हूँ, औरों की कौन कहे, जो पाण्डव मिलकर युद्ध करें तो मरुद्गण-सहित साक्षात् इन्द्र भी उनका सामना नहीं कर सकते। १७

तिरसठवाँ अध्याय

विदुर का फिर समझाना

विदुर ने कहा—राजन्, यह द्यूतक्रीड़ा सब अनिष्टों और झगड़ों की जड़ है। इससे आपस में फूट होती है और फूट का फल बहुत ही भयङ्कर होता है। उसी जुए का सहारा लेकर यह दुर्योधन भयङ्कर वैर का बीज बो रहा है। प्रातिपेय, शान्तनव, बाह्लीक आदि सब राजाओं को दुर्योधन के अपराध से अत्यन्त कष्ट भोगना पड़ेगा। मदान्ध बैल जैसे आप ही पहाड़ से अपने सींग भिड़ाकर तोड़ लेता है वैसे ही यह दुर्योधन अपनी भलाई और राज्य को

अपने हाथ से मिटाना और खोना चाहता है। राजन्, बालक जिसका कर्णधार हो उस नाव पर बैठकर समुद्र के पार जानेवाला आदमी जैसे घोर सङ्कट में पड़ता है, वैसे ही उस पुरुष की भी बुरी गति होती है, जो ख़ुद वीर तथा बुद्धिमान् होकर अपनी बुद्धि से काम नहीं लेता और दूसरे का मन रखना चाहता है। दुर्योधन बाज़ी लगाकर युधिष्ठिर को हरा रहा है और आप उसके जीतने से प्रसन्न हो रहे हैं। परन्तु याद रखिए, आपकी यह प्रसन्नता शीघ्र ही खेद के रूप में बदल जायगी; क्योंकि इस जुए की जीत अवश्य कुल के नाश का कारण होगी और इसी से आपका सर्वनाश होगा। आप बाहर से मित्रभाव दिखा रहे हैं, परन्तु हृदय में दूसरा ही भाव है। आत्मीय होकर भी आप युधिष्ठिर से झगड़ा होना पसन्द करते हैं। आप चाहते हैं कि युधिष्ठिर लक्ष्मी और राज्य से हीन हो जायँ।

हे प्रतीप और शान्तनु के वंश के लोगो! सुनो। मैं कौरवों की सभा में भलाई की बात कह रहा हूँ। जो तुम अपना भला चाहते हो तो दुष्ट दुर्योधन के पिछलग्गू मत बनो—जलती हुई आग के कुण्ड में मत फाँदो। यदि जुए के ताव में आकर युधिष्ठिर अपने क्रोध को न सँभाल सके तो भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव भी क्रोध से प्रज्वलित हो उठेंगे। यदि ये लोग बिगड़कर युद्ध ठान देंगे तो फिर कौन तुम्हारी रक्षा करेगा?

महाराज धृतराष्ट्र, जुए के बिना भी आप बहुत सी सम्पत्ति प्राप्त कर सकते हैं। आपके पास कुछ कम ऐश्वर्य नहीं है। पाण्डवों को जीतने से आपका कोई लाभ नहीं है। [इसी से मैं कहता हूँ] धन का लोभ छोड़ दीजिए और पाण्डवों को ही अमूल्य धन समझकर स्नेह से अपनाइए। इस पहाड़ी राजा शकुनि को मैं ख़ूब जानता हूँ। चौसर के खेल में, पाँसों की चालाकी में, इसके समान चतुर कोई नहीं है। इसलिए इससे कहिए, यह अपने नगर को जाय। मान जाइए, पाण्डवों को युद्ध करने के लिए उत्तेजित मत कीजिए। १०

चौंसठवाँ अध्याय

दुर्योधन और विदुर की बातचीत

तब दुर्योधन ने विदुर से कहा—हे विदुर, हम अच्छी तरह जानते हैं कि तुम हमारी निन्दा और पाण्डवों की बड़ाई करते फिरते हो। हमें मालूम है कि तुम किन्हें चाहते हो; तुम हमें बालक समझकर सदा हमारा अनादर किया करते हो। लोगों की की हुई निन्दा और स्तुति से ही जाना जाता है कि वे किसे चाहते हैं और किसे नहीं। मनुष्य के हृदय के भाव को उसकी ज़बान ही प्रकट कर दिया करती है। हम जानते हैं कि तुम हमारे प्रतिकूल हो। गोद में रक्खे हुए साँप की तरह तुम भयङ्कर हो। बड़े यत्न और आदर से पाले जाने पर भी तुम

बिल्ली की तरह अपने पालनेवाले स्वामी को हानि पहुँचाने का उपाय किया करते हो। पण्डितों का कहना है कि स्वामी के साथ द्रोह करने से बढ़कर दूसरा पाप नहीं है। विदुर, क्या तुम इस पाप से नहीं डरते? शत्रुओं को जीतकर हमने परम पुरुषार्थ या जीवन का फल प्राप्त किया है। उसके लिए तुम हमें कड़ी-कड़ी बातें क्यों सुना रहे हो? तुम हमारे शत्रुओं से मेल रखने में ख़ुश रहते हो और हमसे जला करते हो। अनुचित और अप्रिय वचन कहने से ही मनुष्य मनुष्य का शत्रु हो जाता है। शत्रुओं के आगे गुप्त बात को कभी न कहना ही मित्र का धर्म है। हे निर्लज्ज, तुम हमारे आश्रित होकर भी वही शत्रु का काम कर रहे हो। तुम्हारे जी में जो आता है वही कहते हो। हम तुम्हें सावधान किये देते हैं कि तुम हमारा अनादर मत करो। हम तुम्हारे हृदय के भाव को जानते हैं। बड़े-बूढ़ों के साथ बैठकर उनसे कुछ समझदारी की बातें सीखो। अपने उस यश की रक्षा करो जो तुमको प्राप्त हो चुका है। शत्रु के हित के कामों में अपने को मत लगाओ। देखो विदुर, अपने को बड़ा मत समझो और हमारे लिए कठोर शब्दों का प्रयोग मत करो। हम तुमसे अपने हित के बारे में नहीं पूछते। तुम्हारा भला हो।

हम सहनशीलों को क्रोधित मत करो। जगत् के शासक वही एक ईश्वर हैं जो गर्भ में हो जीव का शासन करते हैं। जैसे पानी की गति पीछे की ओर नहीं होती वैसे ही हमारा इरादा नहीं पलट सकता। उन्हीं ईश्वर की आज्ञा के अनुसार हम काम करते हैं। जो उद्योगी पुरुष पहाड़ को सिर की टक्कर से तोड़ डालता है और साँप को अपने हाथ से खिलाने की हिम्मत रखता है उसी की बुद्धि कर्त्तव्य का अनुशासन कर सकती है; किन्तु जो कोई किसी को ज़बरदस्ती उपदेश करता है तो वह शत्रु गिना जाता है। अपने से मित्रता रखने-वालों का भी विरोध करना और उन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देखना मूर्खों का काम है। देखो, जो कोई प्रज्वलित आग को कपूर आदि डालकर और भी प्रचण्ड करता है और पास ही खड़ा रहता है तो वह उसमें जलकर भस्म हो जाता है। नीति में लिखा है कि शत्रुपक्ष से मिलकर १० अपना अहित करनेवाले आदमी को कभी अपने यहाँ न रहने देना चाहिए। इसलिए तुम्हारा

जहाँ जी चाहे वहाँ चले जाओ। कुलटा स्त्री कितने ही आदर और स्नेह से क्यों न रक्खी जाय, परन्तु वह अपने स्वामी को छोड़े बिना नहीं मानती। वही हाल तुम्हारा है।

दुर्योधन के ये वचन सुनकर विदुर ने कहा—जो लोग सुनने में कठोर किन्तु अन्त में भलाई करनेवाली बात सुनकर असन्तुष्ट हो जाते और अपने आश्रित पुरुष को त्याग देते हैं उनकी मित्रता देर तक नहीं निभती। राजाओं के चित्त की वृत्ति अस्थिर होती है। वे पहले सान्त्वना देकर पीछे मूसलों की मार देते हैं या यों कहो कि गुड़ दिखाकर ईंटा मारते हैं। हे मूढ़ राजपुत्र, तू अपने को पण्डित और मुझे मूर्ख समझता है। असल में जो किसी को पहले अपना हितकारी मित्र ठहराकर पीछे से उसको दोष लगाता है वही मूर्ख है। वेदपाठी ब्राह्मण के घर रहनेवाली बदचलन औरत की तरह बुरी बुद्धिवाला आदमी कभी कल्याण की राह पर नहीं लाया जा सकता। ऐसे पुरुष को हित की बात वैसे ही नहीं रुचती जैसे कुमारी को साठ बरस का बूढ़ा पति नहीं रुचता। जो तू हित और अहित के सभी कामों में प्रिय बात ही सुनना चाहता है तो स्त्री, जड़, लूले-लँगड़े अपाहिज आदि से ही सलाह लिया कर। वही सब बातों में ठकुरसुहाती कह सकते हैं। जगत् में, भीतर के बुरे, पर प्रिय वचन बोलनेवाले, ख़ुशामदी आदमी बहुत से मिल जायँगे; परन्तु अप्रिय होने पर भी हित की बात कहनेवाले और सुननेवाले लोग बहुत ही दुर्लभ हैं। जो धर्म पर ध्यान रखकर स्वामी के प्रिय और अप्रिय की परवा किये बिना, अप्रिय होने पर भी, हित की बात कहता है वही राजा का सच्चा सहायक है। ख़ैर, अब तुम व्याधि से न उत्पन्न होनेवाले, कड़वे, तीक्ष्ण, गर्म, यश को मिटानेवाले, कठोर क्रोध को पी जाओ और शान्त होओ। इस क्रोध को सज्जन लोग ही पी सकते हैं, दुर्जन लोग नहीं। मैं सदा यही चाहता हूँ कि विचित्रवीर्य के पुत्र महाराज धृतराष्ट्र का और उनके पुत्रों का यश और धन बढ़े। मैं तुमको प्रणाम करता हूँ। जिस तरह तुम अपने यश और धन की वृद्धि का होना समझो उस तरह वही काम करो। मैं ब्राह्मणों से प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझे कल्याण का आशीर्वाद दें। फिर भी हे कुरु-नन्दन, मैं तुमसे यही कहता हूँ कि पण्डित पुरुष को उन विषैले साँपों को कुपित न करना चाहिए जिनकी दृष्टि में दारुण विष की २० आग रहती है। मतलब यह कि तुम पाण्डवों को अपने बुरे व्यवहार से क्रोध न दिलाओ।

पैंसठवाँ अध्याय

युधिष्ठिर का अपने को, भाइयों को और द्रौपदी को हार जाना

अब शकुनि ने युधिष्ठिर से कहा—युधिष्ठिर, आप जुए में पाण्डवों का बहुत सा धन हार चुके हैं। अब यदि आपके पास ऐसी कुछ सम्पत्ति और हो, जिसे आप अभी तक नहीं

हारे, तो बताइए। युधिष्ठिर ने कहा—शकुनि, मेरे पास अभी बहुत सा धन है, जिसे मैं जानता हूँ। तुम धन के बारे में क्यों पूछते हो? मेरे पास अयुत, प्रयुत, खर्व, निखर्व, अर्बुद, शङ्ख, पद्म, महापद्म, कोटि, मध्य और परार्ध आदि संख्याओं से गिने जाने पर भी न चुकनेवाला धन है। मैं अपना वह सब धन दाँव पर लगाता हूँ, आओ खेलो।

युधिष्ठिर के ये वचन सुनकर शकुनि हँसा; उसने उसी तरह "मैं जीता" कहकर कपट के पाँसे फेंके। युधिष्ठिर हार गये। तब फिर उन्होंने कहा—मेरे पास असंख्य गाय, बैल, घोड़े, भेड़, बकरी आदि पशु हैं। इसके सिवा पर्णाशा नदी तक, सिन्धुनद की पूर्व सीमा पर भी, बहुत सी सम्पत्ति है। वह सब मैं दाँव में लगाता हूँ। वैशम्पायन कहते हैं—शकुनि ने फिर कपट के पाँसे फेंककर "मैं जीता" कहा और युधिष्ठिर को जीत लिया। तब युधिष्ठिर ने कहा—ब्राह्मणों को और उनके धन को छोड़कर नगर, गाँव, जनपद, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जाति की प्रजा और उनकी सब सम्पत्ति मैं बदता हूँ। यह सब मेरा ही है। शकुनि ने "मैं जीता" कहकर पाँसे फेंके और वह भी सब जीत लिया। अब युधिष्ठिर ने कहा—शकुनि, ये सभा में उपस्थित सब राजपुत्र जो कुछ कुण्डल, जड़ाऊ गहने आदि पहने बैठे हैं सो सब मेरी सम्पत्ति है। अबकी मैं यह सब दाँव पर लगाता हूँ। मायावी शकुनि ने कपट के पाँसे फेंककर पहले की तरह "मैं ही जीता" कहकर उस धन को भी जीत लिया। १०

युधिष्ठिर ने कहा—अब मैं साँवले, नौजवान, लाल आँखोंवाले, सिंह के से कन्धों से शोभित, महाबाहु नकुल को दाँव पर लगाता हूँ। शकुनि ने पहले की तरह पाँसे फेंकते ही नकुल को जीतकर कहा—महाराज, आपके प्यारे भाई राजकुमार नकुल को मैंने जीत लिया। अब आप दाँव पर क्या लगाते हैं? युधिष्ठिर ने कहा—हे शकुनि, अब मैं अपने प्यारे भाई सहदेव को दाँव पर लगाता हूँ। ये मेरे राज्य में धर्माधिकारी का काम करते हैं और पण्डित माने जाते हैं। यद्यपि ये इस योग्य नहीं, फिर भी मैं इन्हें बदता हूँ। शकुनि ने पाँसे फेंककर सहदेव को भी जीत लिया। फिर उसने युधिष्ठिर से कहा—महाराज, अपने प्यारे भाई माद्री के पुत्रों

को तो आप हार गये। अब और क्या बदिएगा ? शायद भीमसेन और अर्जुन को आप दाँव पर न रख सकें; क्योंकि वे आपको इन दोनों भाइयों से अधिक प्यारे हैं।

[इस पर कुपित होकर] युधिष्ठिर ने कहा—रे नीति को न जाननेवाले मूढ़! तू हम भाइयों में, परस्पर सम्मति देखकर, फूट डलवाना चाहता है। निस्सन्देह यह तेरा घोर अधर्म है। शकुनि ने कहा—महाराज, मतवाला हो रहा आदमी गढ़े में गिर पड़ता है; और अधिक नशे में होता है तो अचेत जड़ की तरह होकर पड़ जाता है। जो हो, आप पाण्डवों के बड़े और माननीय हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। धर्मराज, आपको मालूम होगा कि जुआरी लोग जुए की हार-जीत के समय जैसे उत्कट प्रलाप बकते हैं वैसे और कहीं जागते या सोते २० किसी मनुष्य के मुँह से सुनने को नहीं मिलते। [इसलिए मैं आपसे अपनी पहली बात के लिए क्षमा चाहता हूँ।]

युधिष्ठिर ने कहा—हे सुबल के पुत्र! युद्ध में नाव की तरह पार लगानेवाले, शत्रुओं को जीतनेवाले, पराक्रमी, राजपुत्र अर्जुन त्रिभुवन में अद्वितीय वीर हैं। वे इस योग्य नहीं कि दाँव में बदे जायँ, तो भी मैं उनको दाँव पर लगाता हूँ। शकुनि ने मन ही मन ख़ुश होकर "मैं जीत गया" कहकर पाँसे फेंके। अर्जुन को भी जीतकर उसने कहा—महाराज, पाण्डवों में प्रधान योद्धा अर्जुन को मैंने जीत लिया। अब बचे हुए अपने प्यारे भाई भीमसेन को भी बद दीजिए। युधिष्ठिर ने कहा—हे शकुनि! दानवों के शत्रु इन्द्र के समान बली और प्रतापी, युद्ध में हम लोगों के अगुआ का काम करनेवाले, सिंहस्कन्ध, परमक्रोधी, भौंहें टेढ़ी करके तिरछी नज़र से देख रहे इन भीमसेन को मैं दाँव पर लगाता हूँ। पृथ्वी पर बल में जिनकी बराबरी कर सकनेवाला कोई पुरुष नहीं है, गदायुद्ध में जो अद्वितीय हैं, उन शत्रुदमन राजपुत्र भीमसेन को भी मैं बदता हूँ। मैं इनको दाँव में लगाने के योग्य नहीं समझता, तो भी लगाये देता हूँ। यह सुनकर शकुनि ने फिर "मैं जीता" कहकर कपट के पाँसे फेंके और भीमसेन को भी जीत लिया। उसने फिर कहा—महाराज! बहुत से मणि, रत्न, धन, हाथी-घोड़े, रथ और भाइयों को भी आप हार गये। अब ऐसा कुछ धन आपके पास हो जिसे आप न हारे हों तो बताइए। युधिष्ठिर ने कहा—हे शकुनि, मैं अपने भाइयों को प्यारा और सबमें बड़ा हूँ। इस समय मैं ख़ुद अपने को ही दाँव पर लगाता हूँ। हारूँगा तो दास हो जाऊँगा।

कपटी और कपट के जुए में निपुण शकुनि ने फिर भी "मैं जीता" कहकर कपट के पाँसे फेंके। युधिष्ठिर को भी जीतकर शकुनि ने उनसे कहा—हे कुन्तीपुत्र, आपने जुए में अपने शरीर ३० तक को हारकर बड़ा पाप किया। धन के रहते अपने को हार जाना बड़ी मूढ़ता का काम है।

पाँसे हाथ में लिये शकुनि ने इस प्रकार कपट के जुए में अलग-अलग प्रसिद्ध और अद्वितीय वीर पाण्डवों को जीत चुकने पर कहा—राजन्, अभी आपकी एक सम्पत्ति बाक़ी है, उसे

आप नहीं हारे हैं। अब आप पाञ्चाली द्रौपदी को दाँव पर लगा दीजिए। जो इस बार आपकी जीत हुई तो आप दासत्व से छुटकारा पा जायँगे।

युधिष्ठिर ने जुए के ताव में आकर कहा—जो न बहुत छोटी है और न बहुत लम्बी; न बहुत मोटी है और न बहुत दुबली; जिसके केश घुँघराले हैं; जिसके नेत्र शरद ऋतु के कमल के पत्तों के समान विशाल हैं; जिसके शरीर से कमल की सुगन्ध निकलती है; जिसके हाथ में कमल का फूल शोभा बढ़ाया करता है; जो रूप में साक्षात् लक्ष्मी के समान है; जो सीधी, सुन्दरी, सुशीला, पतियों के अनुकूल है और प्रिय वचन बोलती है; जो धर्म-अर्थ-काम की सिद्धि का कारण है; जिसमें वे सब सद्गुण हैं जिन्हें पुरुष अपनी स्त्री में देखना चाहते हैं; जो सबसे पहले सोकर उठती और सबके पीछे सोती है; जो गोपाल और मेषपाल आदि तक के कामों की देख-भाल रखती है; जिसका पसीने से शोभित मुख पद्म और मल्लिका के फूल के समान जान पड़ता है; जिसके शरीर में बहुत रोएँ नहीं हैं; जिसकी कमर पतली और बाल लम्बे हैं; ऐसी सर्वाङ्ग-सुन्दरी त्रिभुवन-सुन्दरी, पाण्डवों की प्यारी पत्नी द्रौपदी को भी मैं दाँव पर लगाये देता हूँ।

वैशम्पायन कहते हैं—युधिष्ठिर के मुँह से यह सुनते ही वृद्ध लोग और सब सभासद खेद के मारे धिक्कार है, धिक्कार है कहने लगे। सभा में हलचल मच गई। चारों ओर ४० कोलाहल होने लगा। अनेक राजाओं के नेत्रों से आँसू बहने लगे। भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि महात्माओं के शरीर से पसीना बह चला। विदुर ने हाथ से सिर पकड़ लिया; वे मुर्दे के समान हो गये। साँप की तरह लम्बी साँसें लेते हुए सिर झुकाकर वे चिन्ता में डूब गये। उस समय धृतराष्ट्र अपने मन के भाव को नहीं छिपा सके। वे प्रसन्न होकर बारम्बार पूछने लगे—क्या जीत गये? क्या जीत गये?

दुःशासन, कर्ण आदि को अपार आनन्द हुआ। सभा में जो और लोग बैठे थे उनकी आँखों से आँसू टपकने लगे। मदोन्मत्त विजयी शकुनि ने फिर उसी तरह "मैं जीत गया" कहकर कपट के पाँसे फेंके। युधिष्ठिर अन्त में द्रौपदी को भी हार गये। ४५

छासठवाँ अध्याय

विदुर का दुर्योधन को झिड़कना

तब दुर्योधन ने विदुर से कहा—विदुर, तुम अभी जाकर पाण्डवों की प्यारी स्त्री द्रौपदी को सभा में ले आओ। वह अभागिन कोई पुण्य न करने के कारण ही पाण्डवों की स्त्री हुई थी। अब वह आकर मेरे घर में झाड़ू दे और वहीं दासियों के साथ, दासी की तरह, रहे। यह सुनकर विदुर ने कहा—अरे मूढ़! तूने ये जो कुवाच्य कहे हैं उन्हें कोई पुरुष, जो मनुष्य

होने का अभिमान रखता होगा, नहीं कहेगा। तू काल-पाश में बँधा हुआ है, इसी से कुए में पैर लटकाकर भी अपने पतन को नहीं जान पाता। तू क्षुद्र मृग होकर शेरों को क्रोध दिला रहा है। अरे पापी, मर्यादा को न छोड़। रे नीच बुद्धिवाले दुर्योधन, विषैले साँप कुपित होकर तेरे सिर पर मौजूद हैं; उन्हें छेड़कर और भी कुपित मत कर। यमपुर जाने की तैयारी मत कर। द्रौपदी कभी तेरी दासी नहीं हो सकती। मैं कहता हूँ कि राजा युधिष्ठिर ने अपने को हार चुकने पर द्रौपदी को दाँव पर लगाया है, इसलिए उस समय द्रौपदी पर उनका अधिकार नहीं था।

बाँस जैसे अपने नाश के लिए ही फलता है वैसे यह आत्मघाती दुर्योधन इस समय वृद्धि को प्राप्त होकर अन्याय पर उतारू हो रहा है। यह मदोन्मत्त होकर समीपवर्त्ती अन्त-काल को नहीं जानता। समझाने से भी नहीं समझता कि यह जुए का खेल वैर का कारण और डर तथा महा अनर्थ को उत्पन्न करनेवाला होगा। पण्डितों का कहना है कि किसी के साथ ऐसा बर्ताव न करना चाहिए जिसमें उसे आन्तरिक दुःख हो; किसी के लिए कठोर वचन न कहना चाहिए; दूसरों को हीन न समझना चाहिए। नरक के देनेवाले दाहक वचन नहीं निकालने चाहिएँ जिनसे दूसरे की आत्मा को कष्ट पहुँचे। पण्डित और श्रेष्ठ पुरुष अपने मुँह से कभी ऐसे घमण्ड से भरे और टेढ़े दुर्वचन नहीं निकालते, जिनकी चोट खाकर दूसरा दिन-रात दुःखित होकर शोक-पीड़ित बना रहे। एक बकरे ने कहीं पड़े हुए एक शस्त्र को निगल लिया था। भीतर जाकर उस शस्त्र ने गला काट दिया। इससे वह मूर्ख बकरा मर गया। उसी तरह हे दुर्योधन, तू पाण्डवों से वैर करके अपने हाथों अपना नाश मत कर। पाण्डव लोग किसी वनवासी, गृहस्थ, विद्वान् या तपस्वी, किसी से ऐसे कठोर और बुरे वचन नहीं कहते। नीच और कुत्ते की प्रकृतिवाले लोग ही ऐसे दुर्वाक्य कहते और भूकते हैं। धृतराष्ट्र का पुत्र छली दुर्योधन, अपने लिए खुले हुए, घोर नरक के द्वार का ख़याल नहीं करता। इस जुए में
१० उसके साथी दुःशासन आदि अनेक कौरव भी उसी के साथ नरक भोगेंगे। तोंबी चाहे जल में डूब जाय, शिलाएँ चाहे पानी में तैरने लगें, और नावें चाहे पानी में डूबने लगें, पर राजा धृतराष्ट्र का मूढ़ पुत्र दुर्योधन मेरे कहे हुए अपने हित के वचन नहीं सुनता। ऐश्वर्य के लोभ में मोहित दुर्योधन अपने हितचिन्तकों की भलाई की बातें नहीं सुनता; इससे मुझे साफ़ जान पड़ता है कि शीघ्र ही कुरुवंश का नाश होगा। उसके साथ ही पृथ्वीमण्डल के और भी
१२ क्षत्रियों का दारुण संहार होगा।

———

सड़सठवाँ अध्याय

द्रौपदी को लाने के लिए दुर्योधन का प्रातिकामी को भेजना

वैशम्पायन कहते हैं कि हे जनमेजय ! मदान्ध, दुरात्मा दुर्योधन ने विदुर को बारम्बार धिक्कार देकर प्रातिकामी की ओर देखा। वह उस भरी सभा में प्रातिकामी से कहने लगा—हे प्रातिकामी, तुम इसी दम जाकर द्रौपदी को इस सभा में ले आओ। इन हारे हुए विवश पाण्डवों से तुम्हें कुछ भी डर नहीं है। ये विदुर पाण्डवों के डर से ही मुझे ऐसे कठोर वचन सुना रहे हैं। ख़ास कर ये हमारी बढ़ती नहीं चाहते, इसी कारण सदा हमारा विरोध किया करते हैं।

दुर्योधन का सारथी प्रातिकामी, राजा की आज्ञा पाकर, झटपट द्रौपदी के पास गया। जैसे सिंह के घर में कुत्ता घुसे वैसे शङ्कित भाव से वह भीतर गया। पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी के पास जाकर प्रातिकामी ने कहा—हे राजकुमारी द्रौपदी, धर्मराज युधिष्ठिर ने जुए के ताव में बेसुध होकर आपको दाँव में लगा दिया और दुर्योधन ने आपको जीत लिया। अब आपकी गिनती दुर्योधन की जीती हुई वस्तुओं में है। आपको ले आने के लिए महाराज दुर्योधन ने मुझे भेजा है। अब मैं आपको दासी का काम करने के लिए दुर्योधन के पास ले चलूँगा।

यह सुनकर द्रौपदी ने कहा—हे प्रातिकामी, तू यह क्या कह रहा है? कौन ऐसा राजपुत्र होगा जो स्त्री को दाँव में लगाकर जुआ खेले? मुझे निश्चय है कि राजा युधिष्ठिर ने जुए के ताव में कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का ख़याल न रखकर ही मुझे बद दिया होगा। क्या जुए में बदने के लिए उनके पास और कुछ सम्पत्ति न थी जो वे मुझे बदकर हार गये?

प्रातिकामी ने कहा—द्रौपदीजी, महाराज युधिष्ठिर के पास दाँव में लगाने के लिए जब और कुछ नहीं रह गया तब उन्होंने पहले एक-एक करके चारों भाइयों को हार दिया, फिर वे अपने को भी दाँव पर लगाकर हार गये, उसके बाद आपको भी बदकर हार गये।

द्रौपदी ने कहा—अच्छा, तू सभा में जाकर राजा से पूछ कि उन्होंने पहले किसको हारा है? अपने को या मुझको? यह जानकर मुझे बता, तब फिर मुझे ले चल। राजा के भाव को जानकर फिर मैं चलूँगी।

प्रातिकामी क्या करता; उसे द्रौपदी का सँदेसा लेकर सभा को लौट जाना पड़ा। वहाँ पहुँचकर उसने सब राजाओं के आगे युधिष्ठिर से पूछा—महाराज, द्रौपदी आपसे पूछती हैं कि आपने अपने को किसका स्वामी समझकर उन्हें हार दिया है? और आपने पहले अपने १० को हारा है या उनको?

वैशम्पायन कहते हैं—उस समय युधिष्ठिर मुर्दे के समान अचेत हो रहे थे। प्रातिकामी के मुँह से द्रौपदी के इस प्रश्न को सुनकर वे कुछ उत्तर नहीं दे सके; भला या बुरा कुछ नहीं कह सके।

इस पर दुर्योधन ने प्रातिकामी से कहा—द्रौपदी यहीं आकर जो कुछ पूछना हो सो धर्मराज से पूछे। इस सभा में ही सब लोग द्रौपदी की और इनकी बातचीत सुनें।

दुर्योधन की आज्ञा पाकर, उसके अधीन होने के कारण, प्रातिकामी को फिर द्रौपदी के पास जाना पड़ा। इससे प्रातिकामी को बड़ा ही दुःख हुआ। उसने द्रौपदी के पास जाकर करुण स्वर से कहा—हे राजकुमारी, सभ्य लोग आपको सभा में ही बुलाते हैं। मुझे जान पड़ता है, कौरवों के सर्वनाश का समय समीप आ गया है। आपको सभा में बुलाने से मुझे निश्चय हो गया कि दुरात्मा दुर्योधन का सब ऐश्वर्य मिट्टी में मिल जायगा और शीघ्र ही उसे अपने जीवन से भी हाथ धोने पड़ेंगे। द्रौपदी ने कहा—हे सूत-पुत्र, यह विधाता का ही विधान है। बूढ़े और बालक सभी उसी विधाता के विधान के अनुसार सुख या दुःख पाते हैं। जगत् में धर्म ही सबसे बढ़कर है। रक्षा करने से वह धर्म ही हमारी रक्षा और भलाई करेगा। मैं चाहती हूँ कि कौरव लोग उस धर्म से भ्रष्ट या विमुख न हों। तू फिर सभा में बैठे हुए लोगों से जाकर पूछ आ कि धर्म के अनुसार इस समय मेरा क्या कर्त्तव्य है। वे लोग धर्मात्मा, नीतिज्ञ और श्रेष्ठ पुरुष हैं; इसलिए जो कुछ करने के लिए मुझसे कहेंगे उसे मैं अवश्य करूँगी।

वैशम्पायन कहते हैं—द्रौपदी के वचन सुनकर प्रातिकामी फिर सभा को लौट गया। वहाँ उसने द्रौपदी का अभिप्राय प्रकट किया। दुर्योधन के इरादे को और हठ को जानकर वहाँ उपस्थित धर्मात्मा लोग भी कुछ न कह सके; सिर झुकाकर रह गये। युधिष्ठिर ने दुर्योधन के मन का हाल जानकर और द्रौपदी को सभा में बुलाने का आग्रह देखकर एक अपने दूत को उस समय द्रौपदी के पास यह सँदेसा देकर भेजा कि हे द्रौपदी, एक कपड़ा पहने हुए, अधोनीवी और रजस्वला होने पर भी तुम रोती हुई सभा में अपने ससुर धृतराष्ट्र के सामने चली आओ। इस दशा से तुम्हें सभा में आते देखकर सब सभासद मन ही मन दुर्योधन की निन्दा करेंगे। यह आज्ञा पाकर दूत चटपट द्रौपदी के पास गया। उसने जाकर उन्हें २० युधिष्ठिर का अभिप्राय बताया।

इधर महात्मा पाण्डवों की विचित्र दशा थी। वे दीन और दुःखित होकर पृथ्वी पर ही नज़र गड़ाये हुए थे। सत्य-पाश में फँसे रहने के कारण वे इस विपत्ति के प्रतिकार का कुछ उपाय नहीं कर सकते थे। पाण्डवों का यह हाल देखकर नीच दुर्योधन को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने फिर प्रातिकामी से कहा कि द्रौपदी को यहीं ले आओ। सभा में, उसके सामने ही, कुरुवंश के वृद्ध लोग उसके प्रश्न का उत्तर देंगे। प्रातिकामी बड़े सङ्कट में पड़ गया। दुर्योधन का वह नौकर था और उधर द्रौपदी के कोप से भी बहुत डरता था। तब उसने जी कड़ा करके, दुर्योधन के कहे पर ध्यान न देकर, सभासदों से पूछा—आप लोग क्या कहते हैं? मैं द्रौपदी से जाकर क्या कह दूँ?

अब दुर्योधन ने अपने भाई से कहा—दुःशासन, यह मूर्ख सूतपुत्र तो भीमसेन के डर के मारे द्रौपदी को यहाँ लाने की हिम्मत नहीं कर सकता। इसलिए अब तुम जाओ, और तुरन्त द्रौपदी को बलपूर्वक सभा में ले आओ। हारे हुए लाचार शत्रु तुम्हारा क्या कर लेंगे?

जिसकी लाल-लाल आँखें हो रही थीं वह राजपुत्र दुःशासन, बड़े भाई की आज्ञा पाकर, तुरन्त पाण्डवों के भवन में गया। महारथी पाण्डवों के घर में घुसकर उसने द्रौपदी से कहा—हे पाञ्चाली, आओ-आओ। तुम्हें जुए में हम लोगों ने पाण्डवों से जीत लिया है। अब लज्जा छोड़कर सभा में चलो और दुर्योधन

को देखो। हे कमल-नयनी, अब तुम कौरवों को भजो और उनकी सेवा करो; क्योंकि हम लोगों ने तुमको धर्म से जीतकर पाया है।

अब [दुरात्मा दुःशासन की लाल-लाल आँखें देखकर और उसका ज़बर्दस्ती ले जाने का विचार जानकर] द्रौपदी बहुत दुखी हुई। वह अपने उदास चेहरे पर बह रहे आँसुओं को हाथों से पोंछती हुई आर्त्त भाव से रनिवास की ओर भागी, जहाँ धृतराष्ट्र की स्त्री आदि कौरवों की स्त्रियाँ थीं। नीच दुःशासन भी क्रोध के मारे गरजता हुआ द्रौपदी के पीछे दौड़ा; थोड़ी ही दूर पर उसने द्रौपदी के लम्बे, काले, लहरदार बालों को पकड़ लिया। जो बाल राजसूय यज्ञ के उपरान्त अवभृथ स्नान में, मन्त्रों से पवित्र तीर्थ-जल में, भीगे थे उन्हीं बालों को दुःशासन ने पाण्डवों के पराक्रम का ख़याल न करके बलपूर्वक पकड़ लिया। हवा से हिल रहे केले के समान काँपती हुई, और सनाथ होने पर भी अनाथ हो रही, बड़े-बड़े बालोंवाली द्रौपदी को खींचता हुआ दुःशासन सभा के पास ले आया। तब अपने को खींच रहे दुःशासन से द्रौपदी ने धीमे स्वर में कहा— ३०

रे मन्द-बुद्धि, मैं इस समय रजस्वला हूँ और एक ही साड़ी पहने हुए हूँ। इसलिए नीच, तू मुझे गुरुजनों के आगे सभा में मत ले चल; किन्तु दुःशासन को कुछ दया न आई। उसने और भी ज़ोर से बाल पकड़कर खींचते हुए द्रौपदी से कहा—हे पाञ्चाली, तुम अगर रजस्वला हो, तुम्हारे पास एक ही कपड़ा है, अथवा तुम नङ्गी हो, तो इससे हमें क्या? हमने तुमको जुए में जीता है; अब तुम हमारी दासी हो। दासियों को लज्जा कैसी? अब तुमको हमारी दासियों में रहकर दासियों के ही काम करने पड़ेंगे।

तब अपनी रक्षा के लिए द्रौपदी नर-नारायण के अवतार अर्जुन और कृष्ण को पुकारने लगी।

वैशम्पायन कहते हैं—उस समय द्रौपदी के बाल खुले हुए थे, अङ्ग पर से आधी साड़ी भी हट गई थी। लज्जा और क्रोध के मारे उसका हृदय मानों जला जा रहा था। इसी दशा में [सभा में पहुँचकर] द्रौपदी ने धीरे-धीरे यों कहा—रे दुष्ट, इस सभा में सब शास्त्रज्ञ, क्रियावान्, इन्द्र-तुल्य प्रतापी, गुरु-तुल्य और मेरे गुरुजन बैठे हैं। उनके आगे मैं इस दशा में कभी नहीं

ठहर सकती। रे नीच, तेरा चरित्र अनार्य पुरुषों का सा है। तू मुझे नङ्गी मत कर। देख, अगर सब देवताओं-सहित इन्द्र भी तेरी सहायता करेंगे तो भी राजपुत्र पाण्डव कभी तेरे इस काम को नहीं सहेंगे। धर्म की गति बहुत सूक्ष्म है; चतुर पण्डित ही उसे समझ सकते हैं। महात्मा धर्मपुत्र युधिष्ठिर कभी सज्जन-सेवित धर्म-मार्ग से डिग नहीं सकते। मैं गुणों के सिवा रत्ती भर भी स्वामी के दोष को अपनी ज़बान पर नहीं ला सकती। रे अभागे दुःशासन, रजस्वला जानकर भी तू मुझे कौरव वीरों के आगे बलपूर्वक खींच रहा है, यह बड़ा भारी कुकर्म है; पर इन सभासदों में से कोई इस कार्य के लिए तेरी निन्दा नहीं करता। जान पड़ता है, तेरे हाथों यों मेरा अपमान होना सबको पसन्द है! धिक्कार है, सौ बार धिक्कार है! अहो, आज भरतवंशवालों का धर्म और क्षत्रियों का चरित्र नष्ट हो गया! क्योंकि सभा में बैठे हुए सब कौरव ऐसे आचरण को देख रहे हैं जो कौरव-वंश के धर्म के विरुद्ध है! [तू धर्म की और अपने कुल की मर्यादा का उल्लंघन कर रहा है, किन्तु कोई कुछ नहीं कहता।] समझ गई, भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य और महात्मा विदुर में अब पुरुषार्थ नहीं रहा। तभी तो ये सब कुरुवंश के बड़े-बूढ़े लोग राजा के इस भयङ्कर अधर्म को बैठे देख रहे हैं और कुछ कर नहीं सकते। ४०

वैशम्पायन कहते हैं—इस प्रकार करुणाजनक खेद-पूर्ण वचन कहकर द्रौपदी मन ही मन क्रोध से जल रहे पाण्डवों की ओर क्रोध-पूर्ण दृष्टि से देखने लगी। मानों वह अपने कुटिल कटाक्षों से उनके क्रोध की आग को और भी प्रज्वलित करने की चेष्टा करने लगी। क्रोध के मारे द्रौपदी का शरीर काँप रहा था। पाण्डव लोग द्रौपदी के इन कातर वचनों से, विशेष कर कुटिल कटाक्ष से, इतने दुःखित हुए जितने कि सारा साम्राज्य और धन-रत्न हाथ से निकल जाने से भी नहीं हुए थे। दीन दशा में पड़े हुए पाण्डवों की ओर द्रौपदी को निहारते देख दुरात्मा दुःशासन उसे और भी ज़ोर से खींचने और 'दासी' कहकर, ठहाका मारकर, हँसने लगा। यह देखकर कर्ण भी ज़ोर से हँसने और दुःशासन की बड़ाई करने लगा। गान्धार-राज शकुनि भी वैसे ही भाव से दुःशासन की बड़ाई करने लगा। दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासन को

छोड़कर और जो लोग उस सभा में थे वे सब, सभा में द्रौपदी को यों खींची जाती देखकर, बहुत ही दुःखित हुए।

तब महानुभाव भीष्म ने द्रौपदी से कहा—हे सुन्दरी, धर्म की गति सूक्ष्म होने के कारण तुम्हारे इस प्रश्न पर विचार करके उसका ठीक-ठीक उत्तर मैं नहीं दे सकता। स्वयं हारा हुआ आदमी, किसी का स्वामी न होने के कारण, पराये धन को दाँव पर लगाकर हार नहीं सकता और इसके साथ ही स्त्री सदा पति के अधीन है। इसी गड़बड़ के कारण मैं तुम्हारे प्रश्न के बारे में ठीक-ठीक विचार नहीं कर पाता। देखो, युधिष्ठिर सम्पूर्ण पृथ्वी के साम्राज्य को सहज ही छोड़ सकते हैं, पर धर्म को नहीं छोड़ सकते। मेरा यही विश्वास है। वे ख़ुद अपने मुँह से तुम्हें हार जाना स्वीकार कर चुके हैं। इसी लिए मैं तुम्हारे प्रश्न के उत्तर का कुछ निर्णय नहीं कर सकता। इस मनुष्य-लोक के बीच द्यूतक्रीड़ा में शकुनि अद्वितीय है। युधिष्ठिर को उसने जीत लिया है। युधिष्ठिर दाँव लगा-लगाकर सर्वस्व हार गये हैं। इसी से तुम्हारी यह दशा हुई है। इस कारण मैं तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर नहीं देता।

द्रौपदी ने कहा—कपटी, दुरात्मा, अनार्य, द्यूतप्रिय (क़िमारबाज़) लोगों ने द्यूत की चालबाज़ी को न जाननेवाले धर्मराज युधिष्ठिर को बुलाकर जुआ खिलाया है। धर्मराज की ५० जुआ खेलने के लिए न तो वैसी इच्छा थी और न उन्होंने इसका उद्योग ही किया था। फिर आप कैसे कहते हैं कि उन्होंने जुआ खेलकर सब कुछ हार दिया है? धर्मराज यह नहीं जानते थे कि मन में बुरा इरादा रखनेवाले, क्रूर, कपटी लोग उन्हें बुलाकर जुए में चालबाज़ी से उनका सर्वस्व हर लेंगे। [महाराज युधिष्ठिर तो धर्मात्मा, भोले और सत्यवादी हैं और, और लोगों को भी वैसा ही समझते हैं। यही कारण है कि] वे इन दुष्टों के जाल में फँस गये और सबने मिलकर चालबाज़ी से उनका सब माल जीत लिया। इस समय सभा में बहुओं और बेटोंवाले सब कुरुवंश के बड़े-बूढ़े लोग बैठे हैं। मैं सबसे प्रार्थना करती हूँ कि वे मेरे इस कथन पर अच्छी तरह विचार करके मेरे प्रश्न का उत्तर दें। [वह सभा ही नहीं जहाँ बूढ़े लोग न हों। वे बूढ़े ही नहीं हैं जो धर्म की बात न कहें। वह धर्म ही नहीं जिसमें सत्य का अंश न हो और वह सत्य ही नहीं जिसमें छल का लेश हो।]

वैशम्पायन कहते हैं—द्रौपदी यों कहकर, दीनभाव को प्राप्त हो रहे अपने पतियों की ओर निहारकर, करुण स्वर से रोने लगी। उस समय दुष्ट दुःशासन फिर अप्रिय और कठोर वचन कहकर उसे सताने लगा। भीमसेन ने देखा, रजस्वला द्रौपदी को दुश्शासन बार-बार खींच रहा है। ऐसी दुर्दशा के अयोग्य द्रौपदी की साड़ी गिर जाने से आधा शरीर खुल गया है। इससे भीमसेन ५४ को क्रोध चढ़ आया। वे धैर्य धारण करने में असमर्थ होकर युधिष्ठिर की ओर देखने लगे।

द्रौपदी-चीरहरण—पृ० ६५२

अड़सठवाँ अध्याय

भीमसेन, अर्जुन और विकर्ण आदि का बोलना। द्रौपदी का कृष्ण को याद करना

भीमसेन ने कहा—हे युधिष्ठिर, जुआरियों के घर में जो वेश्याएँ होती हैं उन्हें भी दाँव पर लगाकर वे जुआ नहीं खेलते। अपनी स्त्री की तो बात ही दूसरी है, उन वेश्याओं पर भी उन्हें दया और ममता होती है। देखिए, काशिराज और अन्य राजा लोग जो कुछ भेंट देने के लिए धन और उत्तम रत्न लाये थे सो सब आपने हार दिया। सवारी (वाहन), धन, कवच, शस्त्र और साम्राज्य को, यहाँ तक कि अपने को और हमको भी आपने दाँव पर लगा दिया और शत्रुओं ने कपट के पाँसों से सब जीत लिया। किन्तु उससे मुझे कुछ क्रोध नहीं आया; क्योंकि आप बड़े भाई होने के कारण सब सम्पत्ति के और हमारे भी स्वामी हैं। परन्तु द्रौपदी को भी जुए में बदकर हार जाना मुझे असह्य है; इसे मैं बेजा समझता हूँ। इस दुर्दशा के अयोग्य पाञ्चाली आपके ही कारण इस समय नीच, नृशंस, क्षुद्र कौरवों के हाथ से घोर क्लेश पा रही है। द्रौपदी के इस अपमान और क्लेश को देखकर मुझे बड़ा क्रोध चढ़ आया है। राजन्, उस क्रोध को मैं आप पर उतारूँगा। [जिन हाथों से आपने बेढङ्गा जुआ खेला है] उन्हें मैं अभी आग से जला दूँगा। सहदेव, झटपट आग ले आओ।

[भीमसेन के ये वचन सुनकर] अर्जुन ने कहा—भीमसेन, आपने पहले कभी ऐसे (कु)-वचन नहीं कहे हैं। इस समय आप माननीय धर्मराज के लिए ऐसे वचनों का प्रयोग क्यों कर रहे हैं? जान पड़ता है, नीच शत्रुओं ने आपके हृदय से धर्म का गौरव भी हर लिया है। भाई, शत्रुओं की इच्छा पूरी होने का उपाय मत कीजिए। उत्तम पुरुषों के धर्म को मत भूलिए; उसी का आचरण कीजिए। धर्मात्मा बड़े भाई का अपमान करना कभी ठीक नहीं। महाराज को शत्रुओं ने जुआ खेलने के लिए बुलाया था। महाराज ने क्षत्रिय-धर्म का ख़याल करके जुआ खेला। [यद्यपि इस समय शत्रुओं ने चालबाज़ी से हमारा सर्वस्व हर लिया है, पर] यह द्यूतक्रीड़ा

हमारी श्रेष्ठ कीर्त्ति का कारण होगी। भीमसेन ने कहा—भाई, यह मैं जानता हूँ। जो महाराज ने क्षत्रिय-धर्म का पालन करने के लिए यह काम न किया होता तो मैं अब तक कब का
१० जलती हुई आग में इनके हाथ जला चुकता।

वैशम्पायन कहते हैं—जनमेजय, इस प्रकार युधिष्ठिर आदि पाण्डवों को दुःखित और दुःशासन के हाथ से अपमान होने के कारण द्रौपदी को शोक-विह्वल देखकर धृतराष्ट्र के पुत्र धर्मात्मा विकर्ण से नहीं रहा गया। उन्होंने ऊँचे स्वर से सभासदों से कहा—हे सभासदो, आप लोग विचार करके, पक्षपात छोड़कर, द्रौपदी के प्रश्न का स्पष्ट उत्तर क्यों नहीं देते? हम लोग यदि विवेक से द्रौपदी के प्रश्न का ठीक उत्तर न देंगे तो अधर्मभागी होने के कारण नरकगामी होंगे। भीष्म पितामह और महाराज धृतराष्ट्र, ये दोनों कुरुवंश में बूढ़े हैं। इन्होंने सलाह करके अभी तक कुछ नहीं कहा। महामति विदुर भी चुप हैं। भरतकुल के गुरु कृपाचार्य और द्रोणाचार्य, दोनों ब्राह्मणश्रेष्ठ हैं। इन्होंने अभी तक द्रौपदी के प्रश्न का ठीक उत्तर क्यों नहीं दिया? और भी जो राजा लोग इस सभा में आये हैं वे भी काम और क्रोध (मित्रता और शत्रुता) के भाव को छोड़कर अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार इस बारे में कहें। हे राजा लोगो, कल्याणरूपिणी द्रौपदी बारम्बार आप लोगों से जो प्रश्न कर रही हैं उसके बारे में विचार करके, जिसकी समझ में जो आवे, उत्तर दीजिए।

विकर्ण ने बारम्बार ऊँचे स्वर से सब राजाओं से यों कहा, पर किसी ने भला या बुरा कुछ उत्तर नहीं दिया। तब वे क्रोध के मारे हाथ मलते हुए लम्बी साँस लेकर कहने लगे—आये हुए राजा लोगो, और हे कौरवो, तुम लोग कुछ उत्तर दो या न दो; इस बारे में मुझे जो कुछ उचित और न्याय-सङ्गत मालूम पड़ता है सो मैं कहता हूँ। शास्त्रकारों ने शिकार खेलना,
२० मदिरा पीना, जुआ खेलना और अत्यन्त स्त्री-सम्भोग, ये चार राजाओं के व्यसन कहे हैं। इन व्यसनों में आसक्त मनुष्य धर्म का ख़याल नहीं रखता। इसी कारण कोई उसके किये काम को प्रामाणिक नहीं मानता। वैसे ही जुआरियों के बुलाने पर, यहाँ आकर, जुए के व्यसन में लिप्त हो युधिष्ठिर ने द्रौपदी की बाज़ी लगाई है। साधारण रूप से द्रौपदी पाँचों पाण्डवों की पत्नी हैं। युधिष्ठिर ने पहले अपने को हारकर फिर द्रौपदी को दाँव पर लगाया है। इसके सिवा युधिष्ठिर तो द्रौपदी को दाँव पर लगाते ही नहीं; किन्तु विजय की इच्छा रखनेवाले शकुनि ने ही पहले द्रौपदी की याद दिलाकर उन्हें दाँव पर लगा देने के लिए युधिष्ठिर को उभाड़ा है। इन्हीं कारणों से मैं कहता हूँ कि द्रौपदी नहीं जीती गई।

विकर्ण के ऐसे निर्भय न्याय-सङ्गत वचन सुनकर सभा में कोलाहल सुन पड़ने लगा। सब सभासद एक-मत होकर विकर्ण की बड़ाई और शकुनि की निन्दा करने लगे। तब कर्ण को बड़ा क्रोध आया। कोलाहल शान्त होने पर उसने हाथ पकड़कर विकर्ण से कहा—हे विकर्ण,

इस समय यहाँ सभा में बहुत से बुरे लक्षण देख पड़ते हैं। जान पड़ता है, लकड़ी से पैदा होकर उसी को जला डालनेवाली आग के समान तुम भी अपने ही कुल को हानि पहुँचाने के लिए उत्पन्न हुए हो। इसी से तुम ऐसा बुरा भाव दिखा रहे हो। यहाँ पर अनेक राजा और बड़े-बूढ़े बैठे हैं। द्रौपदी के बार-बार पूछने पर भी इन्होंने कुछ नहीं कहा; क्योंकि ये सब जानते हैं कि द्रौपदी धर्म से ही जीती गई है। हे विकर्ण, तुम लड़कपन के मारे हम लोगों से फूटकर, बालक होने पर भी बूढ़ों की तरह, इस सभा में ऐसी बात कह रहे हो। तुम अभी धर्म को अच्छी तरह नहीं जानते; इसी से द्रौपदी को जीती हुई न बताकर अपनी बुद्धि-हीनता का परिचय दे रहे हो। जब सभा के बीच युधिष्ठिर ने दाँव में लगाकर अपना सर्वस्व हार दिया है तब तुम द्रौपदी को बिना जीती हुई कैसे समझते हो? द्रौपदी भी तो युधिष्ठिर के सर्वस्व के भीतर आ गई। इस प्रकार

३०

धर्म से जीती गई द्रौपदी को न जीती हुई कैसे कहते हो? तुम कहते हो कि शकुनि ने पहले द्रौपदी को दाँव पर रखने के लिए कहा था; किन्तु युधिष्ठिर यदि अपने मुँह से द्रौपदी का नाम लेकर उसे दाँव पर न लगाते और सब पाण्डव चुप रहकर उसे स्वीकार न कर लेते तो हम कभी द्रौपदी को जीती हुई समझकर उस पर अधिकार करने के लिए तैयार न होते। फिर तुम द्रौपदी को न जीती हुई वस्तु कैसे कहते हो? द्रौपदी को एक कपड़ा पहनने की दशा में सभा के बीच लाने को जो तुम अधर्म कहते हो तो उसका उत्तर भी सुनो। हे कुरु-नन्दन, देवताओं ने स्त्री के लिए एक ही पति की व्यवस्था दी है; किन्तु द्रौपदी उस नियम के विरुद्ध पाँच पुरुषों की स्त्री है। इसलिए उसे व्यभिचारिणी के सिवा और क्या कहा जा सकता है? और व्यभिचारिणी को एक कपड़ा पहने रहने की दशा में या नङ्ग-धड़ङ्ग सभा में लाना, मेरी समझ में, कुछ विचित्र [या दोष का काम] नहीं। पाण्डवों की जो कुछ सम्पत्ति थी उसको, पाण्डवों को और द्रौपदी को शकुनि ने धर्मपूर्वक जीत लिया है। हे दुःशासन, ये विकर्ण अपने को बुद्धिमान् समझते हैं, परन्तु अभी इनकी बुद्धि बालकों की सी है; इसलिए तुम पाण्डवों के और द्रौपदी के कपड़े भी उतार लो।

वैशम्पायन कहते हैं—कर्ण के ये वचन सुनते ही पाण्डवों ने अपने 'उत्तरीय' वस्त्र उतार कर अलग रख दिये। अब पापी दुःशासन सभा के बीच में द्रौपदी के कपड़े को ज़बर्दस्ती उतारने लगा। अपने ऊपर यह आफ़त आते देखकर दुखिया द्रौपदी अत्यन्त करुण स्वर से कृष्ण को पुकारने लगी—हे कृष्ण, हे करुणा के समुद्र, हे दीन-बन्धु, हे जगदीश्वर, हे गोपी-वल्लभ! कौरवगण मेरा अपमान कर रहे हैं, इसकी ख़बर क्या तुमको नहीं है? हा नाथ, हा रमानाथ, हा व्रजनाथ, हा द्वारका-नाथ, हा दुःखनाशन, हा मधुसूदन! मैं कौरवों के भयानक समुद्र में डूबी जा रही हूँ; हे जनार्दन! मेरा उद्धार करो। हे कृष्ण, हे कृष्ण, हे योगीश्वर! तुम विश्व के आत्मा और ब्रह्माण्ड के रक्षक हो। कौरवों के बीच में कष्ट पाती हुई मैं आपकी शरण में हूँ। हे गोविन्द! मेरी रक्षा करो।

४०

सुन्दरी द्रौपदी इस प्रकार त्रिभुवन के ईश्वर नारायण कृष्ण को पुकारकर, दोनों हाथों से मुँह ढककर, दुःख के मारे चिल्लाकर रोने लगी। द्रौपदी के करुण विलाप को सुनते ही शेषशायी नारायण शय्या छोड़कर, द्रौपदी की लाज बचाने के लिए, पैदल दौड़ पड़े। कृष्ण, विष्णु, हरि आदि नाम लेकर ज्योंही द्रौपदी ने पुकारा त्योंही धर्म कपड़ा बनकर बढ़ने लगा। महाराज, धर्म के प्रताप से और कृष्ण की कृपा से द्रौपदी का चीर बढ़ने लगा। द्रौपदी को नङ्गी करने के लिए दुष्ट दुःशा-सन जितना ही कपड़ा खींचता था, उतना ही उसी रङ्ग के और और अनेक रङ्ग के कपड़े निकलते चले आते थे। कपड़ों का ढेर लग

गया, पर द्रौपदी नङ्गी नहीं हुई। धर्म की अपूर्व महिमा के इस अद्भुत दृश्य को देखकर सब सभासद द्रौपदी की बड़ाई और धृतराष्ट्र के पुत्र की निन्दा करने लगे; बड़ा कोलाहल मच गया। कपड़ा खींचते-खींचते जब दुःशासन थक गया तब लज्जित होकर बैठ गया। यह देखकर भीमसेन से नहीं रहा गया। क्रोध के मारे उनके ओठ फड़क रहे थे। वे हाथ मलते हुए [गम्भीर स्वर से] कहने लगे—"हे पृथ्वी पर रहनेवाले क्षत्रियो, आप लोगों के आगे यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि अगर मैं युद्ध में इस कौरवाधम पापी दुःशासन का हृदय चीरकर इसका ख़ून न पियूँ तो मुझे अपने पूर्वपुरुषों की गति न प्राप्त हो। मेरी ऐसी घोर प्रतिज्ञा न पहले किसी ने की है और न आगे ही कोई करेगा। मैं यह प्रतिज्ञा पूरी किये बिना न रहूँगा।" सभा में स्थित सब राजा लोग भीमसेन की यह भयानक प्रतिज्ञा सुनकर उनकी प्रशंसा और दुःशासन की निन्दा करने लगे। ५०

उधर सब सज्जन यह कहकर धृतराष्ट्र आदि कौरवों की निन्दा करने लगे कि वे लोग द्रौपदी के प्रश्न पर विचार करके उसका स्पष्ट उत्तर क्यों नहीं देते। तब उन लोगों को रोककर, हाथ उठाकर, सब धर्मों और नीतियों के ज्ञाता विदुरजी यों कहने लगे—हे सभ्यगण, अनाथ की तरह रोकर द्रौपदी आप लोगों से जो बारम्बार प्रश्न कर रही है उसका कुछ उत्तर आप लोग नहीं देते। इससे धर्म का अनादर होता है। सभा में प्रज्वलित आग के समान जो प्रश्न उपस्थित होता है उसे सत्य और धर्म से युक्त उत्तर देकर सभ्य लोग शान्त करते हैं। यही सनातन नीति है। आर्य पुरुष को चाहिए कि धर्म के अनुसार काम, क्रोध और बल की परवा न करके उस प्रश्न का उत्तर दे। हे नर-पतियो, महात्मा विकर्ण ने जैसे अपनी बुद्धि के अनुसार द्रौपदी के प्रश्न का निर्णय किया है वैसे ही आप लोग भी निर्णय करके उस प्रश्न का उत्तर दें। जो धर्म का ज्ञान रखनेवाला पुरुष सभा में बैठकर प्रश्न का धर्मसङ्गत उत्तर नहीं देता उसे झूठ बोलने के पाप के आधे अंश का भागी बनना पड़ता है। और जो धर्मज्ञ पुरुष सभा में बैठकर अधर्मयुक्त उत्तर देता है उसे झूठ बोलने का पूरा पाप लगता है। इस विषय में पौरा-णिकों ने प्रह्लाद और आङ्गिरस मुनि के संवाद का एक इतिहास कहा है, सो मैं कहता हूँ। ६०

दैत्यराज प्रह्लाद के एक पुत्र था। उसका नाम विरोचन था। एक कन्या के पीछे अङ्गिरा के पुत्र सुधन्वा ऋषि और विरोचन के बीच झगड़ा उठ खड़ा हुआ। दोनों ही, श्रेष्ठ बताकर, अपने को उस कन्या के योग्य कह रहे थे। इस बारे में अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर वे दोनों, फ़ैसले के लिए, प्रह्लाद के पास गये। इस झगड़े का फ़ैसला करने के लिए उनसे अनुरोध करते हुए दोनों ने पूछा—सच बतलाइए, हम दोनों में कौन श्रेष्ठ है? झूठ न बोलिएगा।

उस झगड़े से डरकर प्रह्लाद सुधन्वा की ओर देखने लगे। उनको कुछ उत्तर न देते देख सुधन्वा ने कोप के मारे ब्रह्मदण्ड के समान आग-बबूला होकर प्रह्लाद से कहा—हे दानवराज,

अपने पुत्र का पक्ष लेकर जो तुम झूठ बोलोगे अथवा कुछ भी उत्तर न दोगे तो इन्द्र, वज्र के प्रहार से, तुम्हारे सिर के सौ टुकड़े कर देंगे। सुधन्वा के यों कहने पर प्रह्लाद डर के मारे, पीपल के पत्ते की तरह, काँपने लगे। वे सुधन्वा से मुहलत माँगकर महात्मा कश्यपजी के पास इस बारे में सलाह लेने गये। प्रह्लाद ने कश्यप के पास जाकर पूछा—भगवन्, आप देवताओं और असुरों के धर्मों को अच्छी तरह जानते हैं। मैं इस समय ब्राह्मण के और अपने पुत्र के झगड़े के कारण धर्म-सङ्कट में फँस गया हूँ। आप कृपा करके बताइए कि जो कोई प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर नहीं देता अथवा जान-बूझकर झूठ बोलता है, उसे मरने पर कौन लोक प्राप्त होते हैं?

कश्यप ने कहा—प्रह्लाद, जो कोई क्रोध या डर के मारे जान-बूझकर प्रश्न का उत्तर नहीं देता, अथवा झूठ बोलता है वह मरने पर पर-लोक में सहस्र वारुण पाशों से बाँधा जाता है। अथवा जो साक्षी, गवाही देते समय, गाय के कान की तरह दोनों ओर डुलता है अर्थात् साफ़-साफ़ सच न कहकर दोनों पक्ष का जी रखने की कोशिश करता है, वह भी अन्त समय हज़ार वारुण पाशों से बाँधा जाता है। एक-एक वर्ष के बाद उसे एक-एक पाश से छुटकारा मिलता है। इसलिए जो कुछ सत्य मालूम हो वही कहना चाहिए। जिस सभा में अधर्म के द्वारा धर्म सताया जाता है, और सब लोग धर्म का पक्ष न लेकर चुप बैठे रहते हैं, वहाँ बैठे हुए सब लोगों को अधर्म होता है। निन्दनीय कार्य की जहाँ निन्दा नहीं होती वहाँ पर जो सबमें श्रेष्ठ पुरुष बैठा होता है उसे उस अधर्म का आधा फल भोगना पड़ता है। उस अधर्म के करनेवाले लोग चौथाई फल के भागी होते हैं। बाक़ी चौथाई फल सब सभासदों को भोगना पड़ता है। और जहाँ निन्दनीय पाप कर्म की निन्दा की जाती है वहाँ सबमें श्रेष्ठ प्रधान पुरुष को कुछ भी पाप नहीं लगता; अन्य सब सभासद भी पाप से बच जाते हैं। वह पाप करनेवाला ही उस पाप के सोलहों आने फल का भागी होता है। हे प्रह्लाद, धर्म से सम्बन्ध रखनेवाला प्रश्न उपस्थित होने पर जो कोई पक्षपात से झूठ बोलता है उसके सब पुण्य तो नष्ट हो ही जाते हैं; साथ ही उसके पहले की सात पीढ़ियाँ और आगे होनेवाली सात पीढ़ियाँ नरक में गिरती हैं। जिसका सर्वस्व हर

लिया गया है, जिसका पुत्र मर गया है, जो ऋणी है, जो स्वार्थ से भ्रष्ट हो गया है, जिस स्त्री का पति मर गया है, जिस पर राजा का कोप हुआ है और जो राजदण्ड पा चुका है; जिस स्त्री के पुत्र नहीं है, जो सिंह के सामने पड़ गया है, जिस स्त्री के सौत है और झूठे गवाहों ने जिसके पक्ष को हरा दिया है, ये सब समान दुःखी माने गये हैं। ये सब दुःख समान हैं। सामने देखनेवाला, सुननेवाला अथवा अनुमान करनेवाले साक्षी यदि सत्य को छोड़कर झूठ बोलते हैं तो वे इन सभी दुःखों को भोगते हैं। जो साक्षी सच बोलता है वह धर्म और अर्थ से हीन नहीं होता।

महात्मा कश्यप के ये वचन सुनकर प्रह्लाद ने अपने पुत्र से कहा—बेटा विरोचन, सुधन्वा तुमसे श्रेष्ठ हैं, मुझसे अङ्गिरा श्रेष्ठ हैं और तुम्हारी माता से सुधन्वा की माता श्रेष्ठ हैं। अब ये सुधन्वा तुम्हारे प्राणों के स्वामी हैं।

यह सुनकर सुधन्वा ने कहा—प्रह्लाद, तुम पुत्रस्नेह छोड़कर अपने धर्म पर स्थित रहे इससे मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हुआ। मैं तुम्हारे पुत्र के प्राण नहीं लेना चाहता। यह सौ वर्ष तक जीकर सुख भोगे।

इस प्रकार प्रह्लाद और अङ्गिरा के संवाद को सुना करके विदुर ने कहा—हे सभासदो, तुमने सभासदों का परम धर्म सुन लिया। अब तुम धर्म का ख़याल रखकर विचार-पूर्वक द्रौपदी के प्रश्न का उत्तर दो।

वैशम्पायन कहते हैं—विदुर के ये वचन सुनकर भी सब सभासद चुप रहे; किसी ने कुछ नहीं कहा। यह देख कर्ण ने दुःशासन से कहा—बस, अब हो चुका। द्रौपदी दासी है, इसको अपने महलों में ले जाओ। सभा के बीच में लज्जा के मारे सिर नीचा करके डर से काँपती, पाण्डवों को बकती-झकती और विलाप करती हुई तपस्विनी द्रौपदी को ले जाने के लिए नीच दुःशासन ज़बर्दस्ती खींचने लगा।

उनहत्तरवाँ अध्याय

द्रौपदी का विलाप और भीष्म के वचन

द्रौपदी ने कहा—रे दुर्मति नराधम दुःशासन, तनिक ठहर जा। मैं पहले ही करने योग्य काम करना भूल गई हूँ। इस कुरु-सभा में बैठे हुए वृद्ध पुरुषों को और सभासदों को मैं प्रणाम करती हूँ। इस बली ने बलपूर्वक खींचकर मुझे विह्वल कर दिया था, इसी कारण मैं पहले प्रणाम नहीं कर सकी। इस अपराध का कारण यही दुष्ट है; मैंने जान-बूझकर यह अपराध नहीं किया।

वैशम्पायन कहते हैं—बली दुःशासन ने फिर ज़ोर से द्रौपदी को खींचा। दुःख से विह्वल हो रही द्रौपदी उस झटके से पृथ्वी पर गिर पड़ी। सर्वथा इस दुर्दशा के अयोग्य द्रौपदी सभा के बीच गिरकर इस प्रकार विलाप करने लगी—हाय! स्वयंवर की सभा के सिवा और कहीं कभी मुझे किसी ने नहीं देखा; वही मैं आज इस सभा के बीच में सबके सामने इस तरह खींची जा रही हूँ! जिसे पहले घर में सूर्य और वायु ने भी नहीं देखा था, वही मैं आज इस दशा से भरी सभा में, सबके आगे, लाई गई हूँ! पाण्डव लोग घर में मेरे अङ्गों में हवा का स्पर्श भी न सह सकते थे; वे ही पाण्डव आज चुपचाप देख रहे हैं और दुष्ट दुःशासन मुझे छू रहा है! ये सब कुरुवंश के लोग भी चुपचाप इस अन्याय को सह रहे हैं। मेरी समझ में यह सब समय का फेर है। मैं इन लोगों की बहू होने के कारण बेटी के बराबर हूँ और क्लेश पाने के योग्य न होने पर भी ऐसी दुर्दशा में पड़कर क्लेश सह रही हूँ! इससे बढ़कर कष्ट की बात और क्या हो सकती है कि अच्छे कुल में उत्पन्न मैं पतिव्रता स्त्री सभा के बीच में आकर ऐसा अपमान सह रही हूँ! राजाओं का धर्म कहाँ चला गया? मैंने पहले का सनातन धर्म यह सुना था कि किसी की धर्मपत्नी सभा में नहीं लाई जाती। उस धर्म को आज कुरुवंश के लोगों ने नष्ट कर डाला! मैं पाण्डवों की धर्मपत्नी, धृष्टद्युम्न की बहन और वासुदेव की सखी १० इस प्रकार अपमान के साथ सभा के बीच लाई गई! इससे बढ़कर अनर्थ और क्या होगा? हे कुरुवंश के लोगो, मैं धर्मराज की सवर्णा भार्या हूँ। आप लोग बतावें, मैं दासी हुई हूँ या नहीं? आप लोग जो कहेंगे वही मानकर मैं उसके अनुसार काम करूँगी। हे कौरवो, यह कुरुवंश के यश को मिटानेवाला दुष्ट दुःशासन बलपूर्वक खींचकर मुझे क्लेश दे रहा है। अब अधिक समय तक मुझसे यह क्लेश नहीं सहा जायगा। हे सभासदो और कौरवो, आप लोग मुझे जीती हुई या न जीती हुई, जैसी समझते हैं सो कह दें। आप लोग जो कहेंगे वह करने के लिए मैं तैयार हूँ।

द्रौपदी के ये वचन सुनकर बुद्धिमान् महात्मा भीष्म ने कहा—हे कल्याणी, धर्म की गति बहुत ही सूक्ष्म है। समय-समय पर अनेक शास्त्रों के ज्ञाता पण्डित भी उसके बारे में कुछ

निश्चय नहीं कर पाते। धर्म के बल से बली पुरुष धर्म के अनुसार ही चलते हैं; परन्तु समय-समय पर धर्म की गति सूक्ष्म होने के कारण उन्हें भी अधर्म के मार्ग में पैर रखना पड़ता है। वास्तव में तुम्हारा प्रश्न अत्यन्त सूक्ष्म और गहन है और यह काम भी बड़े भारी विचार का है। इस कारण अभी तक तुम्हारे इस प्रश्न पर विचार करके भी मैं कोई सिद्धान्त निश्चित नहीं कर सका। तो भी कौरवों के लोभ और मोह की अत्यन्त अधिकता देखने से मुझे जान पड़ता है कि इस कुल का नाश शीघ्र ही होनेवाला है। बेटी, तुम जिस कुल की बहू हो उस कुल के लोग धर्म के ऐसे अनुगत हैं कि घोर कष्ट पड़ने पर भी धर्म के मार्ग से नहीं डिग सकते। हे पाञ्चाली, तुम्हारा यह आचरण तुम्हारे योग्य ही है कि ऐसे सङ्कट में, ऐसी शोचनीय दशा में, पड़कर भी तुम धर्म को ही देख रही हो। यह देखो, धर्म के जाननेवाले द्रोणाचार्य आदि बूढ़े पुरुष अचेत की तरह सिर झुकाये बैठे हैं। इस समय मेरी राय यह है कि धर्मात्मा युधिष्ठिर ही तुम्हारे इस प्रश्न का निर्णय कर दें। वही बतावें कि तुम जीती गई हो या नहीं। इस बारे में उन्हीं का कहना सबसे अधिक प्रामाणिक माना जायगा। २१

सत्तरवाँ अध्याय

द्रौपदी से दुर्योधन के वचन। भीमसेन की क्रोधपूर्ण उक्ति

वैशम्पायन ने कहा—सभा के बीच में कुररी की तरह आँसू बहाती और रोती हुई द्रौपदी की दुर्दशा देखकर भी आये हुए राजाओं में से कोई धृतराष्ट्र और दुर्योधन के डर से, भला या बुरा, कुछ नहीं कह सका।

सब राजाओं और राज-कुमारों को चुपचाप बैठे देखकर मुसकाता हुआ दुर्योधन द्रौपदी से यों कहने लगा—पाञ्चाली! तुम भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव और अपने पति युधिष्ठिर से ही यह प्रश्न करो। वे तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दें। अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव इस सभा में आर्य लोगों के सामने तुम्हारे लिए कह दें कि युधिष्ठिर किसी के स्वामी नहीं हैं और वे मिथ्यावादी हैं, तो तुम दासीभाव से छुटकारा पा सकती हो। मुझे विश्वास है कि इन्द्र-तुल्य प्रतापी महात्मा धर्मराज धर्म को नहीं छोड़ सकते। ये ख़ुद कह दें कि वे तुम्हारे स्वामी हैं या नहीं। वे जो कहें, उसी पर तुम्हारा दासी होना या न होना अवलम्बित है। द्रौपदी, तुम्हारा कातर भाव और करुण विलाप देख-सुनकर सभी कौरव अत्यन्त दुःखित हो रहे हैं। ख़ास कर तुम्हारे अभागे स्वामियों की दुर्दशा देखकर सब लोग दुःख-समुद्र में इतने डूब गये हैं कि किसी के मुँह से बात नहीं निकलती।

वैशम्पायन कहते हैं—दुर्योधन के ये वचन सुनकर बहुत लोग उसकी बड़ाई करने और दुपट्टे उछालने लगे; किन्तु अधिकांश लोग द्रौपदी और पाण्डवों की दशा देखकर हाहाकार और

आर्त्तनाद कर रहे थे। सब राजा लोग कुरु-श्रेष्ठ दुर्योधन के इन सुनने में धर्म-भाव से भरे वचनों से प्रसन्न हो उठे। अब सब राजा लोग महाराज युधिष्ठिर की ओर देखने लगे। सब लोग कौतूहल के वश होकर मन में कहने लगे कि देखें, युधिष्ठिर क्या कहते हैं; अर्जुन, भीमसेन, नकुल
१० और सहदेव की इस बारे में क्या राय है !

जब वह कोलाहल कुछ कम हुआ तब महापराक्रमी भीमसेन हाथ उठाकर कहने लगे—यदि गुरु-तुल्य माननीय यशस्वी धर्मराज हमारे प्रभु न होते तो हम कभी कौरवों के अत्याचार को और उनके अपराध को क्षमा न करते। हमारे धर्म-कर्म और प्राणों के भी स्वामी धर्मराज अगर अपने को, द्रौपदी को दाँव पर लगाने से पहले, जुए में हारा हुआ समझते हैं तो हम चारों भाई भी निःसन्देह जीत लिये गये। यदि मैं स्वाधीन होता तो द्रौपदी के केशों में हाथ लगानेवाला मनुष्य पृथ्वी पर कहीं भी भागकर क्यों न जाता मगर मेरे हाथ से जीता न बच सकता। लोहे के बेलन ऐसे दृढ़ और फैले हुए मेरे इन हाथों को देखो; इनके बीच में पड़कर इन्द्र भी जीते नहीं बच सकते थे; पर क्या करूँ, धर्म-पाश में बँधा हुआ हूँ; बड़े भाई के गौरव का ख़याल है और अर्जुन भी रोक रहे हैं, इसी से यह अत्याचार सह रहा हूँ। जो धर्मराज आज्ञा दे दें तो अभी मैं, सिंह जैसे क्षुद्र मृगों का शिकार करता है वैसे ही, इन धृतराष्ट्र के दुष्ट पुत्रों को पकड़कर पीस डालूँ।

क्रोध से विह्वल भीमसेन के ये वचन सुनकर भीष्म, द्रोण और विदुर ने उन्हें शान्त करते
१८ हुए कहा—भैया भीमसेन, क्षमा करो। तुम्हारा कहना ठीक है; तुम सब कर सकते हो।

इकहत्तरवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र का द्रौपदी को वरदान देना। द्रौपदी और पाण्डवों का दासत्व से छुटकारा

कर्ण ने कहा—भद्रे द्रौपदी! दास, पुत्र और पराधीन स्त्री, ये तीनों धन-हीन कहे गये हैं। निर्धन दास की पत्नी और दास का सब धन उस दास के प्रभु का होता है। इस कारण तुम मेरा उपदेश सुनो। मैं तुम्हें उचित कर्त्तव्य बताता हूँ। इस समय तुम्हारे स्वामी कौरव धृतराष्ट्र के पुत्र हैं, पाण्डव नहीं हैं; इसलिए तुम राजा दुर्योधन के परिवार में प्रवेश करके उन्हें भजो। हे भामिनी, इस समय तुरन्त तुम ऐसे दूसरे पति को स्वीकार करो, जो तुमको जुए में हारकर दासी बनानेवाला न हो; अथवा दासी का कोई ख़ास पति नहीं होता, सो तुम वही वृत्ति ग्रहण कर लो। देखो, युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव सब हारकर दास हो गये हैं। उनके साथ ही तुम भी दासी हो चुकी। जुए में अपने को हारे हुए पाण्डव इस समय तुम्हारे पति नहीं रहे। कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिर क्या ऐहिक जीवन का कुछ प्रयोजन नहीं समझते थे? पराक्रम और पौरुष की परवा न करना क्या उनके योग्य काम हुआ है? यदि वे ऐसा न समझते होते तो पाञ्चालराज द्रुपद की कन्या को जुए के दाँव पर क्यों लगा देते!

वैशम्पायन कहते हैं—कर्ण के ये वचन सुनकर अत्यन्त क्रोधी भीमसेन आर्तभाव धारण करके वारम्वार लम्बी साँसें लेने लगे। क्या करते, राजा युधिष्ठिर के अनुगत और धर्म-पाश में बँधे हुए होने के कारण वे कुछ नहीं कर सकते थे। उनकी आँखें लाल हो गईं। वे इस प्रकार युधिष्ठिर की ओर देखने लगे मानों उनको जलाकर भस्म कर डालेंगे। भीमसेन ने युधिष्ठिर से कहा—राजन्, मैं सूतपुत्र कर्ण के ये वचन सुनकर उस पर क्रोध नहीं करता; क्योंकि हम सचमुच हारकर दास हो चुके हैं और कर्ण जो कह रहा है वह दास-धर्म ही है। परन्तु हे नरेन्द्र, मुझे कोप आपके ऊपर है; क्योंकि जो आप द्रौपदी को दाँव पर रखकर जुआ न खेलते तो शत्रुओं की क्या मजाल थी कि ऐसे दुर्वचन कहकर हमारा अपमान करते?

भीमसेन के ये वचन सुनकर, अचेत से होकर चुप बैठे हुए, युधिष्ठिर से राजा दुर्योधन ने कहा—राजन्! भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव, सब तुम्हारे अधीन हैं। इसलिए अब तुम्हीं इस प्रश्न का उत्तर दो कि द्रौपदी हारी हुई वस्तुओं में गिनी जा सकती है या नहीं? युधिष्ठिर से यों कहकर ऐश्वर्य के मद से मोहित दुर्योधन ने मुसकाकर कर्ण की ओर देखा। फिर केले के खम्भे के समान, सब श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त, वज्र के समान दृढ़, हाथी की सूँड़ के समान बनी हुई बाईं जाँघ पर से कपड़ा हटाकर उसने द्रौपदी की ओर देखा और घृणित इशारा किया। १०

यह देखकर क्रोधी भीमसेन आग के समान प्रज्वलित हो उठे। वे लाल-लाल आँखें फाड़कर दुर्योधन की ओर देखते हुए, सब सभासदों को सुनाकर, ऊँचे स्वर से कहने लगे—रे

दुर्योधन, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि मैं महायुद्ध में गदा से तेरी यह जाँघ न तोड़ डालूँ तो मुझे मरने पर अपने पितरों के लोक न प्राप्त हों। यह कहते समय भीमसेन के शरीर के रोमों के छिद्रों से वैसे ही चिनगारियाँ निकलने लगीं जैसे किसी जल रहे वृक्ष के छेदों से आग की लपटें निकलती हैं।

भीमसेन की यह भयानक प्रतिज्ञा सुनकर विदुर ने कहा—हे कुरुवंशियो, यह देखो, भीमसेन ने भयानक प्रतिज्ञा की है। इसमें सन्देह नहीं कि दैव की प्रेरणा से ही दुर्योधन आदि ने अन्याय करके यह अनर्थ उत्पन्न किया है। मुझे जान पड़ता है कि यह कुरुवंश नष्ट हो जायगा। हे दुर्योधन, तुमने सभा के बीच में स्त्री को लाकर द्यूत-धर्म के भी विरुद्ध काम किया है। सभा में स्त्री को लाकर उसके लिए यों झगड़ा ठानना किसी दृष्टि से अच्छा नहीं कहा जा सकता। इस कुकर्म और अत्याचार से तुम लोगों के पूर्वोपार्जित सब धर्म कर्म नष्ट हो गये! कैसे खेद की बात है कि कुरुवंश के सब लोग इस कुमन्त्रणा के पृष्ठपोषक बन रहे हैं। हे कुरुवंशियो, सभा के बीच में किसी तरह का अधर्म होने से सब सभासदों को दोष लगता है। हे दुर्योधन और दुःशासन, तुमसे मैं इस समय भी प्रार्थना करता हूँ, मेरी बात पर ध्यान दो। महाराज युधिष्ठिर अगर अपने को हारने से पहले द्रौपदी को दाँव पर लगा देते तो अवश्य तुम लोग जीती हुई वस्तु समझकर द्रौपदी को ले सकते थे; किन्तु धर्मराज पहले अपने को हार गये हैं, इसलिए इन्हें द्रौपदी को दाँव पर लगाने का कोई अधिकार नहीं रहा। जो जिस वस्तु का स्वामी नहीं वह उसे बदकर हार जाय तो उस हारी हुई चीज़ पर जीतनेवाले का वैसे ही अधिकार नहीं हो सकता जैसे स्वप्न में जीते हुए धन को कोई पा नहीं सकता। इसी से मैं कहता हूँ कि दुष्ट शकुनि के कहने से उन्मत्त होकर धर्म को न छोड़ो।

विदुर के यों कह चुकने पर दुर्योधन ने द्रौपदी से कहा—हे पाञ्चाली! मैं भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव के ऊपर इस बात का फ़ैसला छोड़ता हूँ। वे कह दें कि युधिष्ठिर स्वामी नहीं हैं, तो बस तुम दासीभाव से छूट जाओगी।

यह सुनकर अर्जुन ने कहा—महात्मा धर्मराज युधिष्ठिर ने जब हमको दाँव पर लगाया था तब वे अपने को हारे नहीं थे, इसलिए हम सबके स्वामी थे। जब वे अपने को बदकर हार गये तब भला किसके स्वामी रह सकते हैं? कुरुवंश के सब लोग इस पर विचारकर देखें।

सभा में इस तरह बातचीत हो ही रही थी कि महाराज धृतराष्ट्र के अग्निहोत्र-भवन में घुसकर गीदड़ ऊँचे स्वर से चिल्लाने लगा। साथ ही बहुत से गधे और भयानक अशुभ पक्षी भी घोर शब्द करने लगे। इन अनिष्ट-सूचक शब्दों को तत्त्वज्ञ विदुर, गान्धारी, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि सबने सुना। डर से व्याकुल होकर भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, विदुर आदि सब लोग "स्वस्ति, स्वस्ति" कहने लगे। तब गान्धारी और विद्वान् विदुर ने राजा धृतराष्ट्र से उन घोर उत्पातों का हाल कहा। अनिष्ट की आशङ्का से सब लोग काँप उठे।

महाराज धृतराष्ट्र बहुत ही घबराकर दुर्योधन को डाँटने और यों कहने लगे—रे उद्दण्ड मूर्ख दुर्योधन, इसमें सन्देह नहीं कि तूने अपने हाथों अपना नाश कर लिया! तू सभा में कुरुकुल की स्त्री—ख़ास कर पाण्डवों की धर्मपत्नी द्रौपदी—से ऐसी बुरी बातें कर रहा है! भरतवंश की बहू के साथ ऐसा व्यवहार कर रहा है! तुझे लज्जा नहीं आती?

वैशम्पायन कहते हैं—बुद्धिमान् प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्र ने विचारकर दुर्योधन के काम को बन्धुओं के नाश का कारण समझा और [दुर्योधन को यों डाँटा तथा, फिर, अपने वंश की भलाई के लिए] द्रौपदी को पास बुलाकर कहा—द्रौपदी, तुम अपनी धर्मबुद्धि के कारण मेरी सब बहुओं में श्रेष्ठ हो। तुम बड़ी पतिव्रता हो। मैं प्रसन्न होकर तुमको वर देना चाहता हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो वह वर मुझसे माँगो।

द्रौपदी ने कहा—हे भरतवंश-भूषण, जो आप प्रसन्न होकर वर देना चाहते हैं तो मैं आपसे यही माँगती हूँ कि धर्मात्मा महाराज युधिष्ठिर दास-भाव से छुटकारा पावें। मेरे बड़े लड़के प्रतिविन्ध्य को, आपके पुत्र, दास-पुत्र न कहें। प्रतिविन्ध्य पहले अनोखा राजकुमार था। जिसका लालन-पालन राजाओं ने किया है वह दास-पुत्र होने लायक़ नहीं।

महाराज धृतराष्ट्र ने 'तथास्तु' कहकर यह वर दे दिया और फिर कहा—हे कल्याण-रूपिणी, यह वर तो मैंने तुमको दे दिया; अब तुम दूसरा वर मुझसे माँगो, मैं ख़ुशी से दूँगा। तुम एक वरदान के योग्य नहीं हो।

द्रौपदी ने कहा—महाराज, आप जो दूसरा वर मुझे देना चाहते हैं तो मैं यह माँगती हूँ कि अपने धनुष-बाण-रथ आदि सहित भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव भी दासभाव से छूटकर स्वाधीन हो जायँ।

धृतराष्ट्र ने यह वरदान भी दिया और कहा—हे राजनन्दिनी, तुम मेरी बहुओं में श्रेष्ठ और धर्मपरायणा हो। दो वरदानों से तुम्हारा यथोचित सत्कार नहीं हुआ, इसलिए तुम एक वरदान और माँगो।

द्रौपदी ने कहा—भगवन्, लोभ से ही धर्म का नाश होता है। इसलिए अब मैं और वर न माँगूँगी। तीसरा वर माँगना मुझे उचित नहीं। शास्त्र में लिखा है कि वैश्य को एक वर, क्षत्रिय की स्त्री को दो वर; राजा को तीन वर और ब्राह्मण को सौ वर तक माँगने और लेने का अधिकार है। महाराज, मेरे पति दासभाव से छुटकारा पा गये; अब वे अपनी ३६ इच्छा के अनुसार स्वाधीन भाव से पुण्य कर्म करके कल्याण पा सकेंगे।

बहत्तरवाँ अध्याय

क्रोधित भीमसेन को शान्त करके युधिष्ठिर का धृतराष्ट्र के पास जाना

कर्ण ने कहा—हमने जिन परम सुन्दरी मानुषी स्त्रियों का हाल सुना है उनमें से किसी के द्वारा ऐसा काम होते नहीं सुना। पाण्डव और कौरव सभी अत्यन्त क्रोधित हो रहे थे। द्रौपदी ने उस क्रोध को शान्त करके पाण्डवों को दासभाव से छुटकारा दिला दिया। पाण्डव लोग तो मानों बिना नाव के गहरे जल में गोते खा रहे और डूब रहे थे; द्रौपदी उनके लिए पार लगानेवाली नाव बन गई।

अत्यन्त क्रोधी भीमसेन, कौरवों की सभा में, कर्ण के ये वचन सुनकर बहुत ही दुःखित हुए और कहने लगे कि "हाय, स्त्री ने पाण्डवों को उबारा!" फिर उन्होंने अर्जुन से कहा—हे अर्जुन, देवल ऋषि ने कहा है कि तीन चीज़ों से पुरुष की सद्गति होती है। पुत्र, कर्म और विद्या, यही तीन वस्तुएँ (पर-लोक में) पुरुष की सहायता करती हैं। पुरुष जब मरने से अपवित्र हो जाता है और जातिवाले भी उसे त्याग देते हैं, तब इन्हीं तीन ज्योतियों से जीवधारी को सहायता मिलती है। हमारी धर्मपत्नी द्रौपदी को छूकर दुःशासन ने अपवित्र कर दिया है; इसी कारण उनके गर्भ से उत्पन्न सन्तान भी अपवित्र हो गई समझनी चाहिए। [द्रौपदी के पुत्र हमारे

श्राद्ध करने और हमको पिण्ड-जल आदि देने के अधिकारी नहीं रहे। इस प्रकार हमारी पहली ज्योति नष्ट हो गई। भीमसेन के ये वचन सुनकर] अर्जुन ने कहा—भाई, [तुम्हारा यह ख़याल ठीक नहीं है। द्रौपदी या उनके पुत्र किसी प्रकार दूषित नहीं माने जा सकते।] नीच और हीन-चरित्रवाले लोग चाहे जो कठोर वचन कहें, चाहे जो भला-बुरा कहें, अच्छे वंश में उत्पन्न श्रेष्ठ लोग उन पर ध्यान नहीं देते। जो सत्पुरुष होते हैं वे स्वयं सब कुछ जानते हैं और सुकृत को ही अपने हृदय में स्थान देकर दुष्टों के किये हुए वैरभाव के कामों को भुला देते हैं।

[अर्जुन के समझाने से भीमसेन को शान्ति नहीं मिली।] वे फिर युधिष्ठिर से कहने लगे—राजेन्द्र, यहाँ कहा-सुनी करने की क्या ज़रूरत है? आप कहें तो मैं [अभी यहीं पर या] बाहर निकलकर इन दुष्ट शत्रुओं को जड़मूल से नष्ट कर डालूँ। आप निष्कण्टक होकर पृथ्वीमण्डल का शासन कीजिए। १०

अब मृगों के बीच उपस्थित सिंह के समान भीमसेन अपने भाइयों के साथ बारम्बार शत्रुमण्डली की ओर देखने लगे। अर्जुन के बार-बार समझाने पर भी उनके जी की जलन किसी तरह न मिटती थी; उनका खेद और क्रोध किसी तरह शान्त न होता था। क्रोधित भीमसेन के रोमकूपों और नाक-कान आदि के छिद्रों से धुएँ तथा चिनगारियों के साथ आग की लपटें निकल रही थीं। टेढ़ी भौंहों से उनका चेहरा बहुत ही भयानक हो रहा था। वे प्रलयकाल के समय शरीरधारी मृत्यु के समान जान पड़ते थे। उनकी ओर आँख उठाकर देखने का साहस किसी को न होता था।

भीमसेन को [प्रहार करने के लिए तैयार देखकर] युधिष्ठिर ने रोककर कहा—भाई, ऐसा मत करो, शान्त हो जाओ। इस प्रकार भीमसेन को शान्त करके हाथ जोड़े हुए महाराज युधिष्ठिर अपने चाचा धृतराष्ट्र के पास गये। १७

तिहत्तरवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र का युधिष्ठिर को समझाकर इन्द्रप्रस्थ के लिए विदा करना

युधिष्ठिर ने कहा—महाराज, आप हमारे स्वामी हैं। आज्ञा दीजिए, हम क्या करें। हम सदा आपकी आज्ञा के अनुसार चलना चाहते हैं।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे अजातशत्रु युधिष्ठिर, तुम्हारा भला हो। तुम्हारे सब अरिष्ट शान्त हों। अब तुम जाओ। मैं आज्ञा देता हूँ, तुम अपना सब धन ले जाकर पहले की तरह राज्य करो। मैं बूढ़ा हूँ, भलाई के लिए मैं जो कहता हूँ उसे सदा याद रखना। तुम सब प्रकार के

धर्मों की सूक्ष्म गति को विशेष रूप से जानते हो और बड़े ही बुद्धिमान् हो। तुम विज्ञ, विनयी और बूढ़ों पर भक्ति-श्रद्धा रखनेवाले हो। बेटा, मैं कह चुका हूँ कि तुम बुद्धिमान् हो। जहाँ बुद्धि होती है वहीं शान्ति रहती है। इसलिए तुम क्षमा को अपनाओ। देखो, लकड़ी पर ही कुल्हाड़ी (हथियार) चलती है, पत्थर पर नहीं। जो लोग वैर को जानते ही नहीं, किसी के दोषों को न देखकर गुणों को ही देखते हैं, किसी से विरोध या झगड़ा नहीं करते, वे सचमुच महापुरुष हैं। शत्रु के किये वैर को भूलकर उसकी की हुई भलाई पर ही सज्जन लक्ष्य रखते हैं। परोपकार का स्वभाव रखनेवाले सज्जन अनिष्ट करनेवाले शत्रु से भी कभी बदला लेने का विचार नहीं करते। हे युधिष्ठिर, नीच अधम मनुष्य ही बातचीत में कठोर वचन कहते हैं। जो लोग कठोर वचन के उत्तर में आप भी कठोर शब्दों से काम लेते हैं वे मध्यम कहलाते हैं; किन्तु जो उत्तम पुरुष हैं वे किसी के कहे कठोर वचनों को सुनकर चुपचाप सह लेते हैं। उन्हें अगर कोई कठोर वचन कहता है तो वे उनको उसी घड़ी भूल जाते हैं, और अगर उस कठोर वचन कहनेवाले ने कभी कुछ उनके साथ भलाई की है तो वे उस भलाई को सदा याद किया करते हैं। जिनके दर्शन सबको प्रिय होते हैं वे साधु लोग कभी आर्य पुरुषों की मर्यादा को नहीं तोड़ते। इस सज्जनों के समागम में तुमने भी उसी सज्जनों के धर्म का पालन किया है। बेटा, तुम आर्य-कुल के भूषण हो। दुर्योधन ने जो तुम्हें कठोर वचन कहे हैं और तुम्हारे साथ निठुर व्यवहार किया है उसे तुम भूल जाना। मैं तुम्हारा चाचा बूढ़ा और अन्धा हूँ। तुम अपने गुणों की ओर, मेरी ओर और गान्धारी की ओर देखकर अपने हृदय में वैरभाव को स्थान मत देना। मुझे यह द्यूतक्रीड़ा बिलकुल पसन्द नहीं थी। केवल मित्रों की परीक्षा के लिए और पुत्रों का बलाबल जानने की इच्छा से ही मैं कुछ नहीं बोला और द्यूतक्रीड़ा को उपेक्षा की दृष्टि से देखता रहा। राजन्, कौरव कभी शोचनीय नहीं हैं; क्योंकि तुम उनके शासक हो और सब शास्त्रों के ज्ञाता विदुर मन्त्री हैं। तुममें धर्म, अर्जुन में धैर्य, भीमसेन में बल, नकुल में श्रद्धा और सहदेव में गुरुजन की शुश्रूषा का भाव पूरा-पूरा है। बेटा, अब तुम खाण्डवप्रस्थ

१०

को जाओ। तुम्हारा भला हो। दुर्योधन आदि तुम सब भाइयों में सदा मेल बना रहे और तुम्हारी बुद्धि धर्म में लगी रहे।

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, धृतराष्ट्र के यों कह चुकने पर महाराज युधिष्ठिर ने सभा में उपस्थित सब लोगों से मिलकर, शिष्टाचार और बातचीत करके, द्रौपदी और भाइयों के साथ खाण्डवप्रस्थ के लिए यात्रा कर दी। पाँचों पाण्डव मेघतुल्य रथों पर चढ़कर प्रसन्नता-पूर्वक अपनी राजधानी को चले। १८

अनुद्यूतपर्व

चौहत्तरवाँ अध्याय

दुर्योधन का धृतराष्ट्र के पास जाकर फिर युधिष्ठिर से जुआ खेलने के लिए अनुमति माँगना

जनमेजय ने कहा—भगवन् वैशम्पायन, जब धृतराष्ट्र के पुत्रों को यह मालूम हुआ कि, धृतराष्ट्र की आज्ञा पाकर, पाँचों पाण्डव सब रत्न-धन-सम्पदा लेकर द्रौपदी के साथ इन्द्रप्रस्थ को चले गये तब उनके मन की क्या दशा हुई? कृपा करके कहिए।

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, बुद्धिमान् धृतराष्ट्र की आज्ञा पाकर पाण्डवों को इन्द्रप्रस्थ जाते देख दुःशासन को बड़ा दुःख हुआ। वह जल्दी से वहाँ पहुँचा जहाँ दुर्योधन अपने मन्त्रियों के साथ बैठा हुआ था। उसने जाकर दुर्योधन से कहा—महाराज, बड़े यत्न से हमने जो धन शत्रुओं से प्राप्त किया था उसे बूढ़े राजा ने पाण्डवों को देकर हमारे हाथ से खो दिया। यही ख़बर देने मैं आपके पास दौड़ा आया हूँ।

यह सुनकर दुर्योधन, कर्ण, शकुनि आदि सब मिलकर सलाह करके पाण्डवों पर बहुत नाराज़ हुए। वे जल्दी से महाराज धृतराष्ट्र के पास पहुँचे। वहाँ पहुँचकर नम्रता के साथ दुर्योधन ने कहा—महाराज, विद्वान् देवताओं के पुरोहित बृहस्पति ने देवराज इन्द्र से जो राज-नीति कही है उसे आपने नहीं सुना। महाराज, बृहस्पति ने कहा है कि छल, बल, कौशल आदि चाहे जिस उपाय से हो, शत्रुओं का विनाश अवश्य करना चाहिए। हम यदि पाण्डवों की सम्पत्ति जीतकर वही सम्पत्ति सब राजाओं को देकर उन्हें सन्तुष्ट करें और उन राजाओं को पाण्डवों से लड़ा दें तो उससे हमारी क्या हानि होगी? कुपित होकर नाश करने के लिए उद्यत विषैले साँपों को गले में या पीठ पर स्थान देकर कौन निश्चिन्त रह सकेगा? अगर हम १० पाण्डवों को छोड़ देंगे तो वे लोग हाथ में शस्त्र लेकर, रथ पर चढ़कर, कुपित साँप की तरह हमारे वंश भर का नाश कर डालेंगे। मैंने सुना है कि कवच पहने, तर्कस बाँधे, गाण्डीव धनुष

हाथ में लिये अर्जुन बारम्बार लम्बी साँसें लेकर उस धनुष की ओर ताकता जा रहा है। भीमसेन भी रथ पर चढ़कर भारी गदा ताने हुए अपने नगर की ओर जा रहा है। नकुल, सहदेव और युधिष्ठिर भी अर्धचन्द्रभूषित ढाल और तलवार लिये एक दूसरे की ओर देखकर इशारे करते गये हैं। वे सब वीर बहुत से शस्त्रों से भरे हुए रथों पर चढ़कर [हमारी] सेना को नष्ट करते हुए गये हैं। मैं समझता हूँ, वे शीघ्र ही सेना जमा करके हमसे युद्ध करने को तैयार हो जायँगे। हम लोग एक बार उनके साथ बुरा व्यवहार कर चुके हैं; वे उसे कभी क्षमा न करेंगे। सभा में द्रौपदी का जो अपमान किया गया है उसे भला वे कब सह सकते हैं? इसलिए मेरी इच्छा यह है कि हम लोग वनवास की बाज़ी लगाकर फिर पाण्डवों के साथ चौसर खेलें। इस प्रकार दुबारा चौसर के खेल में हराकर हम उन्हें अपने वश में कर सकेंगे। अब की हम यह बाज़ी लगावेंगे कि हममें से जो कोई हारे वह बारह वर्ष तक मुनि-वेष से वन में रहे और तेरहवें वर्ष अज्ञातवास करे। अज्ञातवासवाले वर्ष में छिपकर रहना होगा। उस साल जो पता लगा लिया जायगा तो फिर बारह वर्ष वन में रहकर उसी शर्त पर एक साल अज्ञातवास करना पड़ेगा। जब तक अज्ञातवास के वर्ष में पता लगाया न जा सके तब तक इसी प्रकार वनवास और अज्ञातवास करना पड़ेगा। इस तरह की बाज़ी लगाकर चौसर खेलने के लिए आप हमें २० आज्ञा दे दीजिए। इस समय अपनी भलाई के लिए हमें इसी उपाय का आश्रय लेना पड़ेगा। मामा शकुनि जुआ खेलने में बड़े चालाक हैं। वे अवश्य पाण्डवों को फिर जीत लेंगे। इस प्रकार जुए में हारकर पाण्डवों को तेरह वर्ष तक बाहर रहना पड़ेगा। तब तक हमारे राज्य की जड़ जम जायगी। सब राजा हमारे पक्के मित्र हो जायँगे। पुरस्कार आदि देकर मज़बूत सेना को हम अपने पक्ष में कर लेंगे। फिर यदि बारह वर्ष वन में रहकर तेरहवें वर्ष का अज्ञातवास वे निर्विघ्न रूप से बिता सकेंगे और लौटकर राज्य के लिए हमसे युद्ध भी करेंगे तो, सहायहीन होने के कारण, उन्हें हारना पड़ेगा। इसलिए महाराज, मेरी इस बात को मान लीजिए; क्योंकि इसी में आपके पुत्रों की भलाई हो सकती है।

[होनी और पुत्र-स्नेह के वश होकर] राजा धृतराष्ट्र ने कहा—अच्छी बात है। झटपट पाण्डवों को बुलाकर, चाहे वे आधे ही रास्ते में पहुँचे हों, इस शर्त पर फिर जुआ खेलो।

वैशम्पायन कहते हैं—धृतराष्ट्र की यह सलाह सुनकर द्रोणाचार्य, सोमदत्त, बाह्लीक, कृपाचार्य, विदुर, अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, भीष्म, विकर्ण आदि सबने उसका विरोध किया और कहा—महाराज, फिर जुआ खेलने की कोई ज़रूरत नहीं; अब सब प्रकार शान्ति है, उसे नष्ट करना ठीक नहीं। यद्यपि सब समझदार मित्रों की इच्छा नहीं थी, पर धृतराष्ट्र ने उनका कहा न माना; पुत्र का प्रिय करने की इच्छा से पाण्डवों को बुलाने के लिए दूत भेज दिये।

पचहत्तरवाँ अध्याय

गान्धारी का धृतराष्ट्र को समझाना

वैशम्पायन कहते हैं कि हे जनमेजय, यह ख़बर पाकर पुत्रों का हित चाहनेवाली, धर्म-परायण गान्धारी शोक से व्याकुल होकर धृतराष्ट्र के पास जाकर कहने लगीं—महाराज, कुलाङ्गार दुर्योधन ने पैदा होते ही गीदड़ का सा शब्द किया था। तब महामति विदुर ने कहा था कि कुल के लिए यह बालक कलङ्क होगा, इसलिए इसे अभी मार डालो; क्योंकि यह जीता रहा तो किसी समय इसके कारण कुरुकुल का नाश होगा। महाराज, आप विदुर के वचनों को सच समझकर वह उपाय कीजिए जिसमें वंश का नाश न हो। अपने दोष से आप अपने को विपत्ति और शोक के समुद्र में मत डुबाइए। प्रभो, अशिष्ट बालकों की सलाह मत मानिए। अपने कुल के नाश का कारण मत बनिए। कौन पुरुष बँधे हुए पुल या 'बाँध' को तोड़ेगा? कौन आदमी शान्त आग को भड़काकर प्रचण्ड करना चाहेगा? शान्त-स्वभाव पाण्डवों को कुपित करना कभी ठीक नहीं। राजन्, आप सब जानते हैं, तो भी मैं आपको फिर याद दिलाये देती हूँ। दुर्बुद्धि पुरुष को शास्त्र भी ठीक राह पर नहीं लगा सकता; शास्त्र पढ़ने पर भी उसे भले-बुरे और हिताहित का ज्ञान नहीं होता। वृद्ध पुरुष को कभी बालकों की बुद्धि में न लगना चाहिए। आप ऐसा उपाय करें

जिसमें आपके पुत्र आपके कहे पर चलें। ऐसा न कीजिए कि वे फूटकर आपको छोड़ दें और मनमानी करने लगें। पुत्रों के और वंश के भले के लिए आप कुलाङ्गार दुर्योधन को त्याग दीजिए। उस समय पुत्र-स्नेह के कारण आपने विदुर का कहा नहीं माना, दुर्योधन को नहीं छोड़ दिया, उसी का फल यह सामने आया है। वह दुष्ट अपने दुराचार से सारे वंश का नाश कराने पर उतारू है। आपकी बुद्धि पहले जैसे शान्ति, धर्म और न्याय से युक्त थी वैसी ही बनी रहे। किसी की बुरी सलाह से आप प्रमाद न कीजिए। देखिए, कितने कष्ट उठाने से और युद्ध आदि क्रूर कर्म करने से राजलक्ष्मी प्राप्त होती है; मगर बहुत ही साधारण भूल से

वह हाथ से निकल जाती है। कोमलता और समझदारी से काम करने पर ही वह राजलक्ष्मी
१० पुत्रों और पौत्रों तक बनी रहती है।

धर्म-अर्थ-युक्त गान्धारी के वचन सुनकर धृतराष्ट्र ने उन पर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने कहा—प्रिये, यदि वंश का नाश होना ही बदा है तो हो। मैं दुर्योधन को मना नहीं कर सकता। दुर्योधन आदि पुत्र जो चाहते हैं वही हो। पाण्डव लोग फिर आकर मेरे
१२ पुत्रों के साथ जुआ खेलें।

छिहत्तरवाँ अध्याय

युधिष्ठिर का फिर आकर चौसर खेलना और उसमें हार जाना

वैशम्पायन कहते हैं—हे भरतकुल-दीपक, दुर्योधन ने धृतराष्ट्र से आज्ञा लेकर बहुत दूर चले गये पाण्डवों को बुला लाने के लिए सूतपुत्र प्रातिकामी को भेजा। प्रभु की आज्ञा पाते ही वह फुर्ती से पाण्डवों के पास पहुँचा।

उसने युधिष्ठिर से कहा—महाराज, फिर सभा जुड़ी है। वृद्ध राजा ने आपको फिर चौसर खेलने के लिए बुलाया है।

यह सुनकर युधिष्ठिर ने कहा—विधाता की प्रेरणा से ही प्राणी शुभ और अशुभ फल पाते हैं। उन्हें कोई टाल नहीं सकता। अगर राजा धृतराष्ट्र ने फिर जुआ खेलने के लिए बुलाया है तो, उसे नाश और अनर्थ का कारण जानकर भी, मैं राजा की आज्ञा को टालना नहीं चाहता। जो बदा होगा सो होगा, मैं अवश्य चलकर चौसर खेलूँगा।

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, विपत्ति जब आनेवाली होती है तब प्रायः लोगों की बुद्धि भ्रष्ट हो जाया करती है। सोने के मृग का होना असम्भव जानकर भी रामचन्द्र उसे मारने के लिए उसके पीछे गये थे। राजा युधिष्ठिर यह कहकर, शकुनि की कपट-माया को जानकर भी, फिर द्यूतक्रीड़ा करने के लिए अपने भाइयों के साथ लौटकर दुर्योधन की सभा में गये। उन महारथियों को फिर जुआ खेलने के लिए आते देखकर उनके इष्ट-मित्रों को बड़ा दुःख हुआ। सब लोकों का नाश करनेवाले महाभारत युद्ध का आरम्भ करने के लिए दैव ने प्रेरणा की और पाण्डव जुआ खेलने को अपने-अपने आसन पर जा बैठे।

शकुनि ने कहा—महाराज, बूढ़े राजा ने जो आपको आपका हारा हुआ धन लौटा दिया सो अच्छा किया। अब हे भरतश्रेष्ठ, एक सब सम्पत्ति से बढ़कर बाज़ी लगाकर हम लोग चौसर खेलेंगे। शर्त यह होगी कि हम लोग हार जायँगे तो मृगछाला पहन करके बारह वर्ष
१२ तक वन में रहेंगे और फिर एक वर्ष तक इस तरह अज्ञातवास करेंगे कि आप लोग हमारा पता

न पा सकें। जो इस वर्ष में हमारा पता लग जायगा तो हम फिर बारह वर्ष तक वनवास करेंगे। ऐसे ही जो आप हमसे हार जायँगे तो आप लोगों को भी द्रौपदी-सहित बारह वर्ष तक मुनि-वेष से वनवास करने के बाद एक वर्ष तक अज्ञातवास करना पड़ेगा। अगर आपका पता लगा लिया जायगा तो फिर आपको बारह वर्ष वन में बिताने पड़ेंगे। इस प्रकार तेरह वर्ष बिता चुकने पर आप लोग या हम लोग अपना राज्य पा सकेंगे। आइए, हम लोग यही शर्त बदकर पाँसे फेंकें।

शकुनि के ये वचन सुनते ही सब सभासद उद्विग्न होकर, हाथ उठाकर, कहने लगे—अहो इन भाई-बन्धुओं को धिक्कार है! यदि धर्मराज अपनी बुद्धि से नहीं समझते तो ये लोग वर्तमान महाभय की सूचना देकर उन्हें क्यों नहीं रोकते?

वैशम्पायन कहते हैं—अपने शुभचिन्तक बन्धुओं के ये वचन सुनकर भी क्षत्रियधर्म और लज्जा के विचार से धर्मराज रुके नहीं। उन्होंने सब कुछ जानकर भी फिर जुआ खेलना स्वीकार कर लिया। वे समझ गये कि कौरवों के नाश का समय अब समीप आ गया है।

युधिष्ठिर ने कहा—हे शकुनि, मेरे समान पुरुष अपने धर्म का ख़याल करके, किसी के बुलाने पर, जुआ खेलने से कैसे विमुख हो सकता है? अच्छा, मैं द्यूतक्रीड़ा के लिए तैयार हूँ। २०

शकुनि ने कहा—हे पाण्डव! गायें, घोड़े, भेड़, भैंसे, हाथी, सोना, रत्न, दास, दासी, साम्राज्य आदि सब कुछ छोड़कर हम केवल वनवास की शर्त पर यह खेल शुरू करते हैं; हम या आप जो हारे वह बारह वर्ष वनवास करके तेरहवें वर्ष अज्ञातवास करे। आइए, यह बाज़ी लगाकर हम लोग फिर खेलें। युधिष्ठिर ने शकुनि की शर्त मान ली। तब शकुनि ने पाँसे फेंके और कहा—मैं जीत गया। २१

सतहत्तरवाँ अध्याय

पाण्डवों का शत्रुओं को मारने के सम्बन्ध में प्रतिज्ञा
करके धृतराष्ट्र के पास जाना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, जुए में हारकर पाण्डव लोग वनवास के लिए जाने की तैयारी करने लगे। उन्होंने अपनी राजसी पोशाक उतारकर मृगचर्म [और वल्कल] पहन लिये। राज्य से भ्रष्ट होकर मृगछाला पहन करके वनवास के लिए जाते हुए पाण्डवों को देख दुःशासन कहने लगा—अब महाराज दुर्योधन ही इस पृथ्वी के चक्रवर्ती राजा हुए। पाण्डव लोग जुए में हारकर भारी विपत्ति में पड़ गये हैं। आज हमारे बड़े भाग्य हैं। बहुत दिनों के बाद अभिमानी पाण्डव दुःख और विपत्ति के नरक में ढकेले जा सके हैं। अब वे सुख और राज्य से भ्रष्ट होकर बहुत वर्षों के लिए विनष्ट से हो गये। धन-मद से मत्त होकर जो पाण्डव, दुर्योधन आदि राजकुमारों को, हँसते थे वे निर्जित और धन-हीन होकर वन को जा रहे हैं। इन्होंने शकुनि से जो शर्त की है उसके अनुसार इनके शरीर से विचित्र कवच, बढ़िया कपड़े और गहने उतारकर इन्हें मृगछाला [और वल्कल] पहना दो। ये लोग पहले समझते थे कि पृथ्वी पर इनकी बराबरी करनेवाला कोई नहीं। इस समय इनका घमण्ड चूर हो गया है। ये सार-हीन तिलों के समान होकर बिलकुल उससे उलटी दशा में पहुँच गये हैं। राजसूय यज्ञ की दीक्षा के समय मृगचर्म आदि पहनने से जैसी इनकी शोभा हुई थी वैसी शोभा इस समय नहीं है। राजसूय यज्ञ में भी इनकी यह पोशाक थी और वही इस समय है। इस समय तो ये जङ्गली असभ्य जाति के आदमी जान पड़ते हैं। सोमवंशी महा बुद्धिमान् राजा द्रुपद ने पाण्डवों को अपनी कन्या पाञ्चाली देकर कुछ अच्छा काम नहीं किया। द्रौपदी के पति पाण्डव वीर्य-
१० हीन नपुंसक हैं; इनमें कुछ भी शक्ति नहीं है।

हे द्रौपदी, तुम इनके साथ वन जाने के लिए क्यों तैयार हो? वहाँ मृग-चर्मधारी, निर्धन और बिना ठौर-ठिकाने के इन पाण्डवों को देखकर तुम्हें क्या सुख मिलेगा? अच्छा हो, इन्हें छोड़कर तुम जिसे चाहो उसे अपना पति बना लो। तुम समय के फेर में पड़कर क्लेश मत सहो। देखो, इस सभा में क्षमाशील, धनी, मानी और प्रतापी अनेक कुरुवंशी मौजूद हैं। इनमें से जिसको तुम चाहो उस 'एक' को पसन्द करके अपना पति बना लो। जैसे सार-हीन तिल और चमड़े के बने हुए नक़ली मृग बेकार होते हैं वैसे ही इस समय पाण्डव हैं। इन अन्न से ख़ाली, मोटे धान ऐसे, असार और पतित अर्थात् श्रीभ्रष्ट पाण्डवों की सेवा में क्या रक्खा है? मोटे, असार धानों को कूटने में जैसे केवल मेहनत ही हाथ लगती है वैसे ही इनका साथ देने में क्लेश के सिवा तुम्हारे हाथ और क्या लगेगा?

नीच-प्रकृति दुःशासन, पाण्डवों को सुनाकर, जब द्रौपदी से कठोर दुर्वचन कहने लगा तब क्रोध के मारे महाबली भीमसेन व्याकुल हो उठे। हिमवान् पर्वत की कन्दरा में रहनेवाला सिंह जैसे गीदड़ से कहे वैसे ही वे, दुःशासन के पास जाकर, गम्भीर स्वर से कहने लगे—अरे अभागे क्रूर, शकुनि के कपट-कृत्य से तू फूला नहीं समाता और इस राजसभा के बीच में पापियों के योग्य वाहियात बातें बक रहा है। इसका फल तुझे युद्ध के मैदान में अच्छी तरह दिया जायगा। जैसे यहाँ पर तू वाक्य-बाणों के प्रहार से हमारे मर्मस्थल को छेद रहा है वैसे ही मैं भी युद्धभूमि में तुझे मारते समय इन बातों की याद दिला-कर तुझे पीड़ा पहुँचाऊँगा। देख, तू जिनके बल पर भूला हुआ है और जो लोग क्रोध और लोभ के वश होकर तेरे पिछलग्गू हो रहे हैं उन्हें भी मैं जीता न छोड़ूँगा।
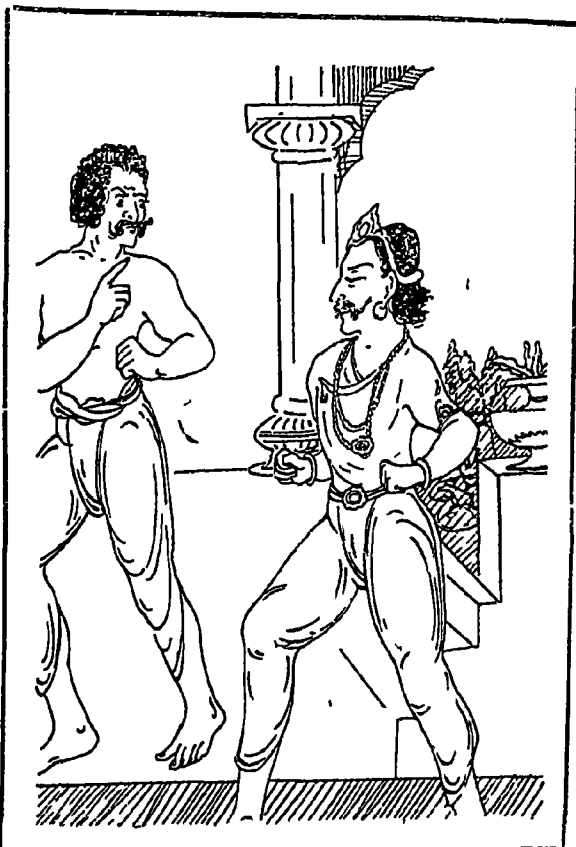
वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, धर्म के अनुरोध से भीमसेन कुछ प्रतिकार न करके उस समय वचनों से ही उसे डाँटने और उसका तिरस्कार करने लगे। निर्लज्ज दुःशासन [जानता था कि धर्मपाश में बँधे रहने के कारण भीमसेन प्रहार न करेंगे; इसी से वह] अत्यन्त उच्छृङ्खल होकर सबके सामने नाचने और मटकने लगा; और भीमसेन को "अरे बैल, अरे बैल" कहने लगा। इससे भीमसेन का क्रोध और भी प्रचण्ड हो गया।

उन्होंने कहा—अरे नीच, तू ही कपट के जुए में धन पाकर ऐसे कठोर प्रलाप के वचन कह सकता है और ऐसा अहङ्कार कर सकता है। और किसी मनुष्य से ऐसी निर्लज्जता नहीं हो सकती। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि अगर युद्ध में तेरा हृदय फाड़कर मैं ख़ून न चूस लूँ तो मुझे वे लोक न प्राप्त हों जिनमें पुण्यात्मा लोग जाते हैं। मैं सबके सामने कहता हूँ कि युद्ध में शीघ्र ही धृतराष्ट्र के पुत्रों का नाश करके अपने इस क्रोध को शान्त करूँगा। २०

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, इसके बाद वनवास के लिए जाने को जब पाण्डव लोग सभा से निकलने लगे, तब मारे ख़ुशी के अन्धा हो रहा दुर्योधन सिंह की गति से जानेवाले भीमसेन के पीछे उनकी नक़ल करता और उन्हें मटकाता हुआ चला।

क्रोधी, महाबली भीमसेन ने मुड़कर दुर्योधन से इतना ही कहा—अरे मूढ़, इस प्रकार उपहास करने से और नक़ल करने से तू अपने को कृतार्थ मत समझ। मैं जल्द ही जब तुझे तेरे साथियों-समेत मारूँगा तब इन बातों की याद पहले दिला दूँगा।

हे जनमेजय, मानी भीमसेन ने अपना अपमान देखकर भी उस समय क्रोध को रोक लिया, क्योंकि वे राजा युधिष्ठिर के वश में थे। किन्तु सभा से निकलते-निकलते भीमसेन ने यह अपनी प्रतिज्ञा ऊँचे स्वर से सबको सुना दी कि मैं ख़ुद युद्ध-भूमि में पापबुद्धि दुर्योधन को मारूँगा, अर्जुन कर्ण को मारेंगे, कपटी शकुनि को सहदेव मारेंगे। फिर सभा के बीच में कहे देता हूँ कि गदायुद्ध में इस पापी दुर्योधन को मारकर मैं इसके सिर पर पैर रक्खूँगा और कठोर वचन कहनेवाले, वचन-वीर इस दुष्ट दुःशासन के हृदय के रक्त को मैं, सिंह की तरह गरजता हुआ, अवश्य पियूँगा। देवता लोग शीघ्र ही मेरी यह प्रतिज्ञा पूरी करेंगे।

अर्जुन ने कहा—हे भीम, सज्जनों का यह नियम है कि वे जो कुछ करना चाहते हैं उसे करने के पहले अपने मुँह से नहीं कहते। आज से तेरह वर्ष पूरे होने पर चौदहवें वर्ष के
३० आरम्भ में जो कुछ होगा उसे सब लोग आप देख लेंगे।

भीमसेन ने फिर कहा—उस समय पृथ्वीदेवी दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन और शकुनि, इन चारों दुष्टों का रक्त पियेगी।

अर्जुन ने कहा—हे भीम, तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए मैं इस हिंसा-द्वेष-परवश, अपने मुँह से अपनी बड़ाई करनेवाले, बुरी सलाह देनेवाले और दूसरों के छिद्र तथा दोषों को देखनेवाले दुष्ट कर्ण को अवश्य मारूँगा। अर्जुन सबके सामने प्रतिज्ञा करता है कि वह, भीमसेन का प्रिय करने के लिए, युद्ध में पैने बाणों की मार से कर्ण को और उसके साथी सहायकों को अवश्य मारेगा। जो लोग मोह के वश होकर मुझसे लड़ेंगे उन राजाओं को भी बाण मारकर मैं यमलोक भेज दूँगा। चाहे हिमाचल अपने स्थान से हट जाय, चाहे सूर्य प्रभा-हीन हो जाय और चाहे चन्द्रमा की शीतलता जाती रहे, पर मेरी प्रतिज्ञा झूठ नहीं हो सकती। तेरह वर्ष समाप्त होने पर यदि दुर्योधन सत्कार के साथ हमारा राज्य हमें नहीं दे देगा तो अवश्य मैं अपनी इन प्रतिज्ञाओं को पूर्ण करूँगा।

अर्जुन के यों कह चुकने पर शकुनि को मारने की इच्छा रखनेवाले महाप्रतापी सहदेव ने भी क्रोध से आँखें लाल करके, फुफकार मार रहे साँप की तरह, लम्बी साँसें छोड़ते हुए हाथ उठाकर कहा—अरे गान्धार-राजकुल के यश को मिटानेवाले दुष्ट शकुनि, मूढ़ता के मारे जिन्हें तू पाँसे समझता है वे पाँसे नहीं, पैने बाण हैं। युद्धभूमि में यही तेरे प्राणों के गाहक होंगे। भीम-
४० सेन ने तेरे और तेरे भाई-बन्धुओं के लिए जो कुछ कहा है उसे मैं अवश्य पूरा करूँगा। रे दुष्ट,

जो तू क्षत्रियधर्म का ध्यान रखकर युद्ध-भूमि में होगा तो मैं, भीमसेन का प्रिय करने की इच्छा से, प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुझे और तेरे भाई-बन्धुओं को ज़रूर मारूँगा।

सहदेव के यों कह चुकने पर परम सुन्दर नकुल ने कहा—जुआ खेलते समय जिन दुरात्मा धृतराष्ट्र के बेटों ने, दुर्योधन की प्रसन्नता के लिए, द्रौपदी को कठोर वचन सुनाये हैं उन काल की प्रेरणा से मरने की इच्छा रखनेवाले दुरात्माओं को मैं अवश्य यमपुर का पाहुना बनाऊँगा। महाराज युधिष्ठिर की आज्ञा से, द्रौपदी का प्रिय करने के लिए, मैं पृथ्वी को धृतराष्ट्र के पुत्रों से ख़ाली कर दूँगा।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, महाबाहु पुरुषसिंह पाण्डव इस प्रकार शत्रुनाश की कठिन प्रतिज्ञा करके बूढ़े राजा धृतराष्ट्र के पास गये। ४६

अठहत्तरवाँ अध्याय

विदुर से उपदेश पाकर युधिष्ठिर आदि की वन जाने की तैयारी

युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र की सभा में जाकर कहा—मैं भरतवंश के सब लोगों से विदा होता हूँ। बूढ़े पितामह भीष्म, राजा सोमदत्त, महाराज बाह्लीक, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, अन्य राजा लोग, विदुर, महाराज धृतराष्ट्र और उनके सब पुत्र, युयुत्सु, सञ्जय तथा सब सभासदगण, मैं आप लोगों से विदा होकर वन को जाता हूँ। वहाँ से लौटकर फिर आप लोगों के दर्शन करूँगा।

वैशम्पायन कहते हैं—लज्जा से सिर झुकाये हुए सब लोग युधिष्ठिर से कुछ न कह सके। सब ने मन ही मन उनके भले की इच्छा करके उनको आशीर्वाद दिये।

विदुर ने कहा—हे युधिष्ठिर, आर्या कुन्ती राजकुमारी हैं। वे बूढ़ी हैं और सदा सुख में रही हैं। इसलिए उनका तुम्हारे साथ वन को जाना ठीक नहीं। कल्याणी कुन्ती यहीं, मेरे घर में, आदर-सत्कार के साथ रहेंगी। तुम लोग यह बात मान लो। जाओ, तुम लोगों का सदा सब जगह सब तरह भला हो।

पाण्डवों ने कहा—हे निष्पाप, आप हमारे पिता के तुल्य पूजनीय चाचा हैं। हम लोग सदा आपके अनुगत हैं। हे प्राज्ञ, आप हमारे गुरु हैं। इसलिए आपने जो कहा वह हमें स्वीकार है। आप और भी जो कुछ हमारा कर्त्तव्य समझते हों उसका उपदेश कीजिए।

विदुर ने युधिष्ठिर से कहा—हे भरतकुल के यश को बढ़ानेवाले, देखो, अधर्म के द्वारा जीता गया या ठगा गया पुरुष कभी अपनी हार से व्यथित या खिन्न नहीं होता। तुम धर्म के मर्म को विशेष रूप से जानते हो। अर्जुन सदा युद्ध में विजय प्राप्त करते हैं। भीमसेन अपने बल से शत्रुओं का नाश करते हैं। नकुल धन के सङ्ग्रह में अद्वितीय हैं। सहदेव संयमी हैं। १०

तुम्हारे पुरोहित धौम्य ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं। पतिव्रता द्रौपदी धर्म-अर्थ के कामों में निपुण हैं और धर्म में निष्ठा रखती हैं। तुम सब एक दूसरे को प्यारे हो। तुमको देखकर सब लोग प्रसन्न होते हैं। तुम लोग सन्तोषी हो, इसलिए शत्रु लोग तुम लोगों में फूट नहीं डाल सकते। तुम्हारे ये मन को स्वस्थ रखनेवाले नियम सब प्रकार कल्याणदायक हैं। इन्द्र के समान शत्रु भी तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। पहले हिमाचल पर मेरुसावर्णि ऋषि ने, वारणावत नगर में भगवान् कृष्णद्वैपायन व्यास ने, भृगुतुङ्ग पर परशुराम ने और दृषद्वती के तट पर भगवान् शङ्कर ने तुमको ज्ञान और धर्म की शिक्षा दी है। तुमने अञ्जन पर्वत पर महर्षि असित के मुँह से उपदेश सुना है। कल्माषी नदी के तट पर भृगु महर्षि ने तुमको अपना शिष्य बनाया है। देवर्षि नारद सदा तुम्हारी देखरेख रखते हैं। महर्षि धौम्य तुम्हारे पुरोहित हैं। हे पाण्डव, ऋषियों के दिये हुए पूजनीय उपदेशों को, सङ्कट या संग्राम के समय, मत भूलना। तुम बुद्धि में पुरूरवा से, धर्म के आचरण में ऋषियों से, सन्तोष में इन्द्र से, शक्ति में सब राजाओं से, क्रोध के रोकने में यमराज से, उदारता और दान में कुबेर से तथा इन्द्रियसंयम में वरुण से भी बढ़कर हो। तुम चन्द्रमा से शान्ति, जल से परोप-कार की वृत्ति, पृथ्वी से क्षमा, सूर्य से तेज, वायु से बल और सब प्राणियों से आत्मसम्पत्ति प्राप्त
२० करो। तुम्हारा भला हो। कुल-देवता तुम्हें नीरोग रक्खें। फिर लौटकर जब तुम आओगे तब मैं तुम्हें सकुशल देखूँगा। हे युधिष्ठिर! समय-समय पर, आपत्ति या धर्म और अर्थ के सङ्कट के अवसर पर, अपने उचित कर्त्तव्य का पालन करते रहना। तुमने जो मुझसे पूछा था सो मैंने कह दिया। अब तुम जाओ और कल्याण को प्राप्त होओ। तुम लौटकर आओगे तब हम तुम्हें कृतार्थ और सकुशल देखेंगे; क्योंकि आज तक तुमने कुछ अधर्म नहीं किया है।

वैशम्पायन कहते हैं—सत्यसन्ध युधिष्ठिर ने विदुर के इस उपदेश को सादर मान लिया।
२४ फिर वे भीष्म और द्रोणाचार्य को प्रणाम करके वहाँ से चल दिये।

उन्नासीवाँ अध्याय

कुन्ती का द्रौपदी को उपदेश और विलाप

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, पाण्डवों को वन जाने के लिए तैयार देखकर उदासभाव से द्रौपदी यशस्विनी कुन्ती के पास गई। वहाँ कुन्ती को और अन्य बड़ी-बूढ़ी कुल की स्त्रियों को प्रणाम करके, उनसे विदा होकर, द्रौपदी जब पतियों के साथ जाने लगीं तब पाण्डवों के भवन में बड़ा आर्त्तनाद सुन पड़ने लगा। द्रौपदी को जाने के लिए तैयार देखकर कुन्ती शोक से विह्वल और अचेत सी हो गईं। उनका गला रुँध सा गया। बड़े कष्ट से अपने को सँभाल-

द्रौपदी अनेक प्रकार से विलाप करती बाहर निकली—पृ० ६७६

शौनक और युधिष्ठिर का संवाद—पृ० ६६०
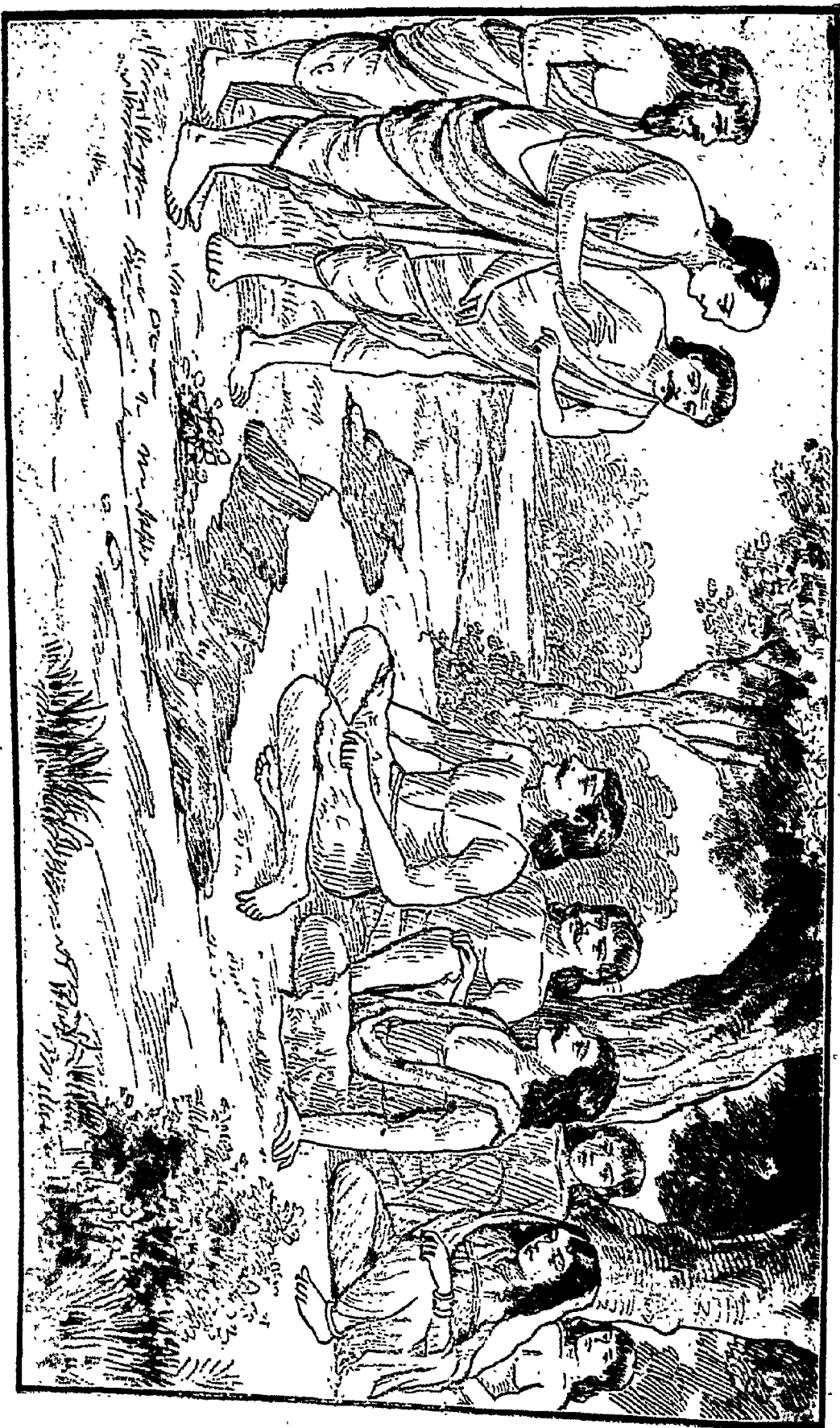
कर उन्होंने द्रौपदी से कहा—बेटी, दुःख में पड़ने के कारण शोक से अत्यन्त अधीर न होना। तुम साध्वी, सुशीला और पतिव्रता हो। तुम धर्म को जानती हो और सदाचारिणी हो। तुमने अपने गुणों से पिता के और पति के कुल को उज्ज्वल किया है। स्वामी के साथ स्त्री को कैसा व्यवहार करना चाहिए, यह तुम्हें बताने की ज़रूरत नहीं। देखो बेटी, कौरवों का कोई बड़ा भारी पुण्य और अनिर्वचनीय सौभाग्य था, जिससे वे अभी तक तुम्हारे क्रोध की आग में पड़-कर भस्म नहीं हुए। द्रौपदी, मैं सदा तुम्हारे मङ्गल की इच्छा करती हूँ। तुम ख़ुशी से अपने पतियों के साथ जाओ। राह में तुम पर कोई विपत्ति न आवेगी। सभी बुद्धिमती स्त्रियाँ यह जानती हैं कि होनी को कोई टाल नहीं सकता। बेटी, तुम भी यही समझकर, सदा धर्म-मार्ग में चलती रहकर, पतियों की भलाई में अपना समय बिताती रहो। वर्तमान हीन दशा का ख़याल करके अपने आत्मा को कष्ट न पहुँचाना। धर्म और गुरुजन सदा तुम्हारी रक्षा करेंगे। तुम्हारे सुदिन जल्दी लौटेंगे। बेटी, तुमसे और अधिक क्या कहूँ? देखो, सहदेव अभी बालक ही है। इसलिए तुम सदा उसकी देख-भाल और रक्षा करना। वह अपनी दुर्दशा का ख़याल करके कभी दुःखित न होने पावे।

रजस्वला होने के कारण रक्त से भीगे कपड़े को पहने द्रौपदी "जो आज्ञा" कहकर रोती हुई रनिवास से बाहर निकली। उसके बाल बिखरे हुए थे। द्रौपदी अनेक प्रकार से विलाप करती बाहर निकली। शोक से विह्वल कुन्ती भी उसके पीछे-पीछे बाहर तक आईं। बाहर आकर उन्होंने देखा, नङ्ग-धड़ङ्ग प्रतापी पाण्डव आगे-आगे जा रहे हैं। शत्रुओं ने उनकी राजसी पोशाक ले ली है। वे मृगछाला पहने कुछ लज्जा से सिर झुकाये हुए हैं। शत्रु लोग आनन्द के मारे उन्मत्त से होकर चारों ओर से उनको घेरे हुए हैं। पाण्डवों के हित-चिन्तक मित्र शोक से व्याकुल होकर आँखों में आँसू भरे हुए "हाय, यह क्या हुआ!" कह-कर विलाप कर रहे हैं। पुत्र-वत्सला कुन्ती पुत्रों की यह दशा देखकर शोक से अत्यन्त अधीर हो उठीं। उनकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। अनेक प्रकार से विलाप करती हुईं वे पुत्रों के पास जाकर बोलीं—हाय, कैसे बुरे दिन आ गये हैं! जो भूलकर भी अधर्म की राह पर पैर नहीं रखते, सदा यज्ञ-देवाराधना आदि धर्म-कर्म करने में ही अपना समय बिताते हैं, निष्कपट भक्ति और श्रद्धा के साथ जो देवताओं की और गुरुजन की पूजा करते रहते हैं, उन्हीं उदारस्वभाव, सच्चरित्र पुरुषों में प्रधान पाण्डवों की ऐसी दुर्दशा क्यों हुई? हाय, मैं इस समय किसे दोष दूँ? मैं अत्यन्त अभागिन और पापिन हूँ। मेरे ही भाग्य के दोष से यह दुर्घटना हुई है। हाय पुत्रो, तुम क्यों इस अभागिन के पेट से पैदा हुए थे? तुम गुणी और ज्ञानी पुरुषों में श्रेष्ठ हो; केवल इस अभागिन के गर्भ से उत्पन्न होने के दोष से ही इतना क्लेश पा रहे हो। हाय पुत्रो, तुम लोग असाधारण बलवान् और वीर्यवान् होकर किस तरह घोर वन

में अत्यन्त हीनवीर्य पुरुष की तरह समय बिताओगे! हाय! जो मैं पहले जानती कि तुम लोगों को वनवास करना पड़ेगा तो महाराज पाण्डु के मरने पर मैं कभी इन्द्रप्रस्थ को लौटकर न आती। पुत्रो, तुम्हारे पिता धन्य हैं, क्योंकि वे मज़े से स्वर्ग-सुख भोग रहे हैं और उनके साथ स्वर्ग को जानेवाली माद्री भी धन्य है; क्योंकि इस अभागिन की तरह उसे असह्य क्लेश और कठिन यातना नहीं भोगनी पड़ती। मैं अत्यन्त अभागिन और पापिन हूँ। मेरे जीवन को धिक्कार है! पुत्रो, तुम इस अभागिन को अकेली छोड़कर कहाँ जाओगे? मैं तुम्हारे साथ चलूँगी। तुम्हें छोड़कर मैं किसी तरह जीवित न रह सकूँगी। हाय बेटी द्रौपदी, तुम भी क्या मुझे छोड़कर चली जाओगी? जीवधारियों का कभी न कभी अन्त होता ही है किन्तु विधाता ने भूल से मेरी आयु का अन्त नहीं बनाया, इसी से मैं अब तक जी रही हूँ। हे विपत्ति दूर करनेवाले दयामय कृष्ण! तुम कहाँ हो? शीघ्र आकर हम लोगों की रक्षा करो, हमें उबारो। देव, तुम रक्षा न करोगे तो और कौन करेगा? देखो, तुम्हारा विपत्ति-नाशन नाम कलङ्कित न होने पावे। पाण्डव बड़े ही धर्मात्मा हैं। वे अधर्म का नाम भी नहीं जानते। उन्हें दुःख देना किसी तरह तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं। एक बार कृपा-दृष्टि से उनकी ओर निहारो। हे भीष्म! हे द्रोण! हे कृपाचार्य! तुम्हारे रहते पाण्डवों पर ऐसी विपत्ति कैसे आई? हाय महाराज पाण्डु, तुम नहीं जानते कि तुम्हारे प्रिय पुत्रों की कैसी दुर्दशा हो रही है! शत्रु लोग तुम्हारे निरपराध पुत्रों को कपट के जुए में हराकर निकाले दे रहे हैं। पुत्र सहदेव, तुम वन को न जाओ। कुपुत्र की तरह मुझे दुःख देकर मत जाना। बेटा, तुमको देखे बिना मैं घड़ी भर भी न जी सकूँगी। जो तुम्हारे भाई सत्य को ही परम धर्म जानते हैं तो वे जायँ। तुम यहीं रहकर मेरे जीवन की रक्षा करो। यही करने से तुमको श्रेष्ठ धर्म मिलेगा।

पुत्र-वत्सला कुन्ती इस प्रकार विलाप करने लगीं। उनको प्रणाम करके पाण्डव वन को चल दिये। महामति विदुर, जो स्वयं दुखी थे, शोक से विह्वल बनी कुन्ती को तरह-तरह के आश्वास-वाक्यों से धीरज बँधाते हुए अपने घर ले गये। बूढ़े राजा धृतराष्ट्र के रनिवास की स्त्रियाँ भी द्यूतसभा में द्रौपदी की वैसी

पाण्डवों का द्रौपदी के साथ वन को जाना—पृ० ६८१

दुर्दशा होने का वृत्तान्त सुनकर, और यह जानकर कि द्रौपदी भी पाण्डवों के साथ वन को गई है, व्यथित होकर कौरवों की निन्दा करती हुई रोने लगीं। अपने पुत्रों के अन्याय पर विचार करने से धृतराष्ट्र का चित्त भी बहुत चञ्चल हुआ। उन्होंने शोक और मोह के वश होकर जब चैन न पाई तब विदुर को बुलाकर वे उनसे आगे के कर्त्तव्य के बारे में पूछने लगे। ३७

अस्सी अध्याय

विदुर और धृतराष्ट्र की बातचीत

वैशम्पायन कहते हैं कि अत्यन्त डर से व्याकुल धृतराष्ट्र ने विदुर को आया हुआ जानकर पूछा—हे विदुर, पाण्डव लोग द्रौपदी और धौम्य के साथ वन को किस तरह जा रहे हैं? उनके जाने के ढङ्ग से उनका अभिप्राय क्या है?

विदुर ने कहा—महाराज, पाण्डवों में सबसे बड़े महाराज युधिष्ठिर अपने मुँह को कपड़े से ढके आगे-आगे जा रहे हैं। भीमसेन अपनी विशाल भुजाओं को बार-बार ताकते हुए जा रहे हैं। वीर अर्जुन बालू उड़ाते हुए युधिष्ठिर के पीछे जा रहे हैं। सहदेव अपने मुख में और नकुल सारे शरीर में मिट्टी लगाये हुए जा रहे हैं। सुकुमारी द्रौपदी बाल खोले और उनसे अपना मुँह ढके रोती हुई जा रही हैं। यजमान के मङ्गल की इच्छा रखनेवाले पुरोहित धौम्य हाथ में कुश लिये सामवेद के, रुद्र और यम देवता-सम्बन्धी, मन्त्रों को पढ़ते हुए जा रहे हैं।

यह सुनकर धृतराष्ट्र ने पूछा—इस प्रकार अलग-अलग ढङ्ग से ये लोग जा रहे हैं सो उनका क्या अभिप्राय है? हे विदुर, मुझसे कहो।

विदुर ने कहा—राजन्, आपके पुत्रों ने कपट करके धर्मराज का राज्य और धन हर लिया है, तो भी वे धर्म से विचलित नहीं हुए। दुर्योधन आदि भाइयों पर सदा स्नेह रखनेवाले १० धर्मराज को उन्होंने कपट करके राज्य से भ्रष्ट कर दिया है। इसी कारण क्रोध के मारे युधिष्ठिर अपनी आँखें नहीं खोलते। वे सोचते हैं कि अगर मैं क्रोध की दृष्टि से देख दूँगा तो घोर कर्म करनेवाले दुर्योधन आदि अभी भस्म हो जायँगे; इसी लिए वे अपना मुँह कपड़े से छिपाकर जा रहे हैं। भीमसेन यह सोचकर कि "बाहु-बल में मेरे समान और कोई नहीं है", युद्ध में घोर कर्म करने के इरादे से बार-बार भुजाओं को ताकते जा रहे हैं। अर्जुन जो बालू उड़ाते जा रहे हैं, उसका अभिप्राय यही है कि वे युद्ध में उसी तरह शत्रुओं पर बाणों की वर्षा करेंगे। सहदेव ने इसलिए मुँह में मिट्टी लगा ली है कि उन्हें कोई पहचान न सके; [क्योंकि वन जाने में उन्हें कुछ लज्जा मालूम पड़ रही है।] नकुल बहुत ही सुन्दर पुरुष हैं; राह में उनको देखकर स्त्रियाँ मोहित न हो जायँ, इस विचार से वन जाते समय उन्होंने सारे शरीर में मिट्टी लगा ली

है। रक्त से तर, मलिन, एक ही कपड़ा पहने, रोती हुई रजस्वला द्रौपदी दुःशासन के पकड़े हुए बालों को खोले यह कहती जा रही है कि जिनके कारण मुझे यह दुःख प्राप्त हुआ है उनकी स्त्रियाँ चौदहवें वर्ष पुत्र, पति, बन्धुजन आदि के मरने से शोक से पीड़ित और रक्त से तर होकर, धूल से भरी हुई, बाल खोले, मेरी तरह रोती हुई भाई-बन्धुओं को तिलोदक देकर २१ हस्तिनापुर में जावेंगी। धीर पुरोहित धौम्य नैर्ऋत कुश हाथ में लिये भयङ्कर याम्य साम पढ़ते हुए जो जा रहे हैं उसका अभिप्राय यही है कि कौरवों के मारे जाने पर उनके पुरोहित भी, इसी तरह, घोर साम-मन्त्रों का पाठ करते हुए आगे-आगे चलेंगे।

[धृतराष्ट्र ने कहा—विदुर, पाण्डवों को वन में जाते देखकर नगर के रहनेवालों ने क्या कहा? वह भी कहो। विदुर ने कहा—महाराज, चारों वर्ण की प्रजा क्या कह रही है, वह भी सुन लीजिए।] सब नगरवासी अत्यन्त दुःखित होकर आपस में कह रहे हैं कि हाय, देखो, हमारी रक्षा करनेवाले पाण्डवों को कपट से कौरवों ने राज्य से भ्रष्ट कर दिया है। पाण्डव लोग उनके अन्याय से वन को जा रहे हैं। कुरुवंश के बड़े-बूढ़े लोग चुपचाप यह देख रहे हैं। अहो उन बालबुद्धि बुड्ढों को धिक्कार है। महाराज पाण्डु के उत्तराधिकारियों को लोभ के कारण राज्य से भ्रष्ट करनेवाले कौरवों को कोटि-कोटि धिक्कार है। पाण्डवों के वियोग से हम लोग अनाथ हुए जा रहे हैं। लोभी और घमण्डी कौरवों पर हमें तनिक भी अनुराग नहीं है। राजन्, नगरवासी लोग इस तरह कहकर विलाप कर रहे हैं। मनस्वी पाण्डव इस प्रकार अपने ढङ्ग से अपने हृदय का भाव प्रकट करते हुए वन को जा रहे हैं। महाराज, महात्मा पाण्डव जिस समय हस्तिनापुर से बाहर जाने लगे उस समय बिना बादल के बिजली चमकने लगी, बारबार भयानक भूकम्प होने लगा, नगर को बाईं ओर करके आकाश से उल्काएँ गिरने लगीं, बिना पर्व के ही राहु ने सूर्य को ग्रस लिया। राजन्! देवमन्दिर, चैत्य, महल, अटारी आदि पर मांसभोजी गिद्ध, चील्ह, ३० कौए आदि पक्षी मँडराने लगे, सियार बोलने लगे। महाराज, आपकी बुरी सलाह से जो कुरुकुल का नाश होनेवाला है उसी की सूचना देनेवाले ये भयङ्कर उत्पात चारों ओर देख पड़ने लगे।

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, राजा धृतराष्ट्र और विदुर से यों बातचीत हो रही थी कि उसी समय सभा में आकर, कौरवों के आगे खड़े होकर, महर्षिमण्डली-सहित नारद ने ये घोर वचन सुनाये—आज से चौदहवें वर्ष दुर्योधन के अपराध से और भीमसेन तथा अर्जुन के बल से सब कौरवों का नाश हो जायगा। ब्राह्मी कान्ति को धारण किये हुए देवर्षि-श्रेष्ठ नारद यों कहकर झटपट आकाशमार्ग में जाकर अन्तर्द्धान हो गये।

उनके ये वचन सुनकर दुर्योधन, कर्ण और शकुनि बहुत ही डरे। दुर्योधन ने एकमात्र द्रोणाचार्य को ही अपनी रक्षा करनेवाला समझकर उन्हें राज्य सौंप दिया और उन्हीं को अपना प्रधान सहारा समझकर वह सत्कार आदि से उन्हें सन्तुष्ट रखने की चेष्टा करने लगा।

द्रोणाचार्य ने सब भरतवंशियों के आगे दुःशासन, कर्ण आदि के साथ बैठे हुए मानी दुर्योधन से कहा—देखो, ब्राह्मणों का कहना है कि देवपुत्र पाण्डव अवध्य हैं; किन्तु मैं वादा करता हूँ कि मैं शरणागत धृतराष्ट्र और उनके पुत्रों को नहीं छोड़ सकता। मैं यथाशक्ति राजभक्ति से विमुख न होऊँगा; परन्तु दैव बड़ा बली है; जो होना है सो अवश्य होगा। धर्म से जीते गये पाण्डव धर्मपालन के लिए वन को जा रहे हैं। ब्रह्मचर्य धारण करके वे बारह वर्ष तक वन में रहेंगे। इसके बाद लौटकर क्रोध और अमर्ष के वशीभूत पाण्डव बदला लेने की चेष्टा करेंगे ही। युद्ध
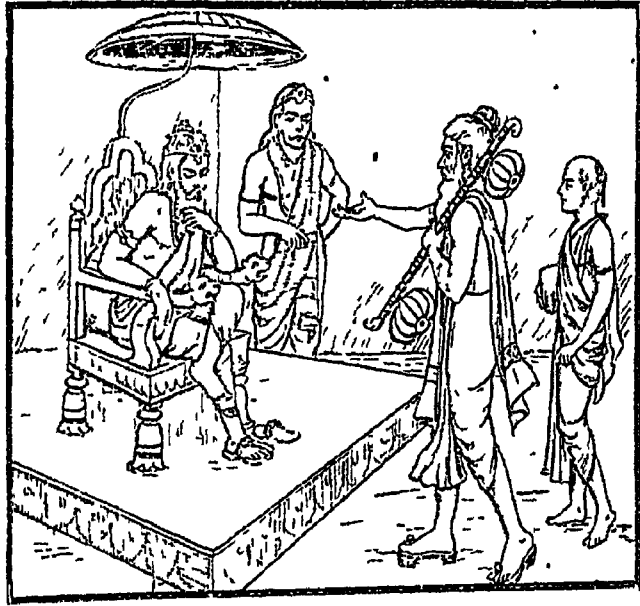
४०

होगा और उसका फल बहुत ही दुःखदायक होगा। देखो, मेरे मित्र राजा द्रुपद ने जब मेरा अपमान किया था तब, बदला लेने के लिए, मैंने भी उन्हें अर्जुन के द्वारा हराकर राज्य से भ्रष्ट कर दिया था। इस पर कुपित होकर राजा द्रुपद ने मुझे मारनेवाला पुत्र पैदा होने की इच्छा करके एक घोर यज्ञ किया। याज और उपयाज ऋषियों की तपस्या के प्रभाव से द्रुपद के पुत्र हुआ। अग्निकुण्ड से एक पुत्र धृष्टद्युम्न और एक कन्या द्रौपदी निकली। धृष्टद्युम्न पाण्डवों का साला है। उसे पाण्डव बहुत प्यारे हैं। उसी से मुझे डर है। उसका रङ्ग अग्नि की ज्वाला का ऐसा है। वह देवताओं का दिया हुआ धृष्टद्युम्न कवच, धनुष, बाण आदि लिये हुए पैदा हुआ है। मनुष्यमात्र मृत्यु से बच नहीं सकते। मैं भी मनुष्य हूँ, इसलिए मुझे धृष्टद्युम्न के हाथ से अपनी मृत्यु का डर है। यह बात प्रसिद्ध है कि धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्य का काल है। वह पाण्डवों की ओर से अवश्य लड़ेगा, इसलिए तुम लोग सावधान हो जाओ। देखो, महारथी और रथी पुरुषों की जहाँ गिनती होती है वहाँ अर्जुन का नाम सबसे पहले लिया जाता है। वह शिष्य मुझे प्राणों से भी प्रिय है; किन्तु तुम्हारे लिए मुझे उस अर्जुन से भी भिड़ना पड़ेगा, इससे बढ़कर दुःख की बात और क्या हो सकती है? तथापि मैं तुम्हारे लिए लड़ूँगा और धृष्टद्युम्न के हाथ से अगर मरना बदा है तो वह भी सत्य होगा; पर दुर्योधन, मैं तुमको समझाये देता हूँ कि तुम्हारा यह राज्य और सुख-सम्पत्ति सब शीतकाल की ताड़ के पेड़ की छाया के समान है। तुमने अपने हाथ से विपरीत समय को सिर पर बुला लिया है। इस

कारण तुम झटपट अपने कल्याण के काम कर लो। महायज्ञ करो, ख़ूब जी भरकर सुख भोग-
५० लो। अब से तेरह वर्ष पूरे होने पर तुम्हारा नाश हो जायगा।

प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्र ने द्रोणाचार्य के वचन सुनकर कहा—विदुर, गुरुजी का कहना बहुत ठीक है। तुम तुरन्त पाण्डवों को लौटा लाओ। और अगर वे वन से लौटने के लिए राज़ी न हों तो भोगसामग्री, धन आदि देकर उनका सत्कार करो और हाथी, घोड़े, पैदल हथियारबन्द
५२ सिपाही आदि उनके साथ कर दो जिसमें उन्हें कुछ कष्ट न मिले।

इक्यासी अध्याय

धृतराष्ट्र और सञ्जय का संवाद

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्! उधर कपट के जुए में हारकर, सर्वस्व गँवाकर, पाण्डव वन को गये और इधर महाराज धृतराष्ट्र अत्यन्त खिन्न होकर अकेले में बैठे लम्बी साँसें लेने लगे। वे गहरी चिन्ता में डूबे हुए थे। इसी समय उनके पास सञ्जय आये। उन्होंने हाथ जोड़कर पूछा—महाराज, पाण्डवों को राज्य से भ्रष्ट करके इस समय तो आप समुद्रपर्यन्त पृथ्वी के अद्वितीय स्वामी बन चुके हैं। अब आप क्यों उदास हैं?

धृतराष्ट्र ने कहा—महाबली, युद्ध-विद्याविशारद पाण्डवों के साथ जो शत्रुता कर चुका है वह कैसे निश्चिन्त और सुखी हो सकता है?

सञ्जय ने कहा—महाराज, आपकी ही बदौलत इस घोर शत्रुता का आरम्भ हुआ है। [जो आप इस द्यूतक्रीड़ा का अनुमोदन न करते—अनुमति न देते—तो कभी यह विपत्ति न आती।] पाण्डवों के साथ शत्रुता करने का फल यही होगा कि सब लोग अकाल में ही मारे जायँगे। जिस समय दुर्योधन [, दुःशासन, शकुनि आदि पाप-बुद्धि पुरुषों] ने पाण्डवों की पत्नी पतिव्रता द्रौपदी को सभा के बीच में सबके सामने लाने की सलाह की थी उसी समय महात्मा भीष्म, द्रोण और विदुर ने बारम्बार मना किया था; किन्तु उस पर कुछ ध्यान न देकर निर्लज्ज दुर्योधन ने सूतपुत्र प्रातिकामी को द्रौपदी के लाने के लिए भेजा। महाराज, देवता लोग जिसे नष्ट करना चाहते हैं उसकी बुद्धि पहले हर लेते हैं। तब उसे नीच निन्दित काम सूझने लगते हैं। जब बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और नाश का समय सिर पर आ जाता है तब मनुष्य को अन्याय ही न्याय जँचने लगता है, अनर्थ की बातें पुरुषार्थ जान पड़ती हैं।
१० उसके हृदय से दुर्बुद्धि हटाये नहीं हटती, वही उसे रुचती है। काल, दण्ड उठाकर, किसी के सिर को नहीं फोड़ता। काल का बल यही है कि वह उलटी बातें सुझाता है। सभा के बीच में पतिव्रता, धर्मपरायणा द्रौपदी को खींच लाकर दुर्योधन आदि ने यह भयानक अनर्थ खड़ा

कर लिया है। दुष्टमति, जुआड़ी नीचों के सिवा और कौन अयोनिजा, रूपवती, अग्नि के कुल में उत्पन्न, सब धर्मों को जाननेवाली, यशस्विनी द्रौपदी को इस तरह झोंटा पकड़कर सभा में घसीट लाने का साहस कर सकता है? उस समय रक्त से भीगा हुआ एक कपड़ा पहने रजस्वला पाञ्चाली बारम्बार पाण्डवों की ओर देख रही थीं। पाण्डव लोग उस समय सर्वस्व, राज्य, सम्पत्ति, शरीर के कपड़े तक हारकर दास हो चुके थे। वे धर्म-पाश में बँधे होने के कारण अपना पराक्रम भी नहीं प्रकट कर सकते थे। उस समय अपमान के अयोग्य, क्रोध और दुःख से व्याकुल द्रौपदी को कर्ण और दुर्योधन ने दुर्वचन कहे हैं। राजन्, मुझे तो ये सब कौरवों के नाश के ही लक्षण देख पड़ते हैं।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय, पतिव्रता द्रौपदी अपनी क्रोध-पूर्ण दीन दृष्टि से सारे पृथ्वी-मण्डल को भस्म कर सकती है। मुझे जान पड़ता है, मेरे पुत्र इस कुकर्म का फल अवश्य भोगेंगे—उनका नाश हो जायगा। पाण्डवों की धर्मपत्नी धर्मपरायणा द्रौपदी का सभा में यह अपमान होते देखकर गान्धारी आदि रनिवास की स्त्रियाँ रोने लगी थीं। वे और सारी प्रजा २० इस समय भी द्रौपदी के लिए शोक करती है। द्रौपदी के केश खींचे जाने से कुपित ब्राह्मणों ने अग्निहोत्र नहीं किये। उस अत्याचार के समय प्रचण्ड आँधी चली थी, बिजली कड़कने लगी थी, आकाश से उल्का-पात होने लगे थे, राहु ने अकाल में ही सूर्य को ग्रस लिया था। इन उत्पातों को देखकर सब प्रजा डर से व्याकुल हो गई थी। कुरुवंश के नाश की सूचना देती हुई आग रथशालाओं में लग गई थी; ध्वजाएँ टूट-टूटकर गिरने लगी थीं। दुर्योधन की अग्नि-होत्रशाला में घुसकर सियार घोर शब्द करने लगे थे। चारों ओर गधे कठोर स्वर से रेंकने लगे थे। हे सञ्जय! भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, सोमदत्त, बाह्लीक आदि धर्मात्मा लोग सभा से उठकर चले गये थे। तब, विदुर के कहने से, मैंने द्रौपदी से वरदान माँगने के लिए कहा। पतिव्रता द्रौपदी ने शस्त्र-सहित पाण्डवों का दास-भाव से छुटकारा ही मुझसे माँगा और मैंने वह वर उसे दे दिया।

इसके बाद सब धर्मों के ज्ञाता विदुर ने मुझसे कहा था—राजन्, पाञ्चालराज की बेटी साक्षात् लक्ष्मी हैं। ये सभा में इस तरह लाई गईं और इनका अपमान किया गया, इससे निश्चय समझिए कि अब कुरुकुल का कल्याण नहीं है। देखिए, पाञ्चाली पाण्डवों के ३० साथ जा रही हैं। इनके ऐसे अपमान और क्लेश को पाण्डव कभी नहीं सह सकते। द्रौपदी के अपमान को धनुर्धारी यादव और महारथी पाञ्चाल सहन करने के नहीं। पाण्डवों के रक्षक तथा सहायक स्वयं सत्यव्रत वासुदेव हैं। पाञ्चाल-सेना को साथ लेकर अर्जुन जब चढ़ाई करेंगे, महाबली भीमसेन दण्ड हाथ में लिये यमराज की तरह गदा घुमाते हुए जब आवेंगे, तब अर्जुन के गाण्डीव धनुष के शब्द को और भीमसेन के वेग को दुर्योधन और उसके साथी राजा,

कोई भी न सह सकेंगे। [सब भाग खड़े होंगे और अन्त को यमपुरी के लिए प्रस्थान करेंगे।] इसलिए मेरी राय है कि पाण्डवों से द्रोह न करके मेल ही करना अच्छा होगा। मुझे कौरवों से पाण्डव प्रबल और शक्तिशाली जँचते हैं। देखिए, परमप्रतापी और बली राजा जरासन्ध को महाबली पुरुषसिंह ने सहज ही बाहु-युद्ध में मार डाला। इसलिए महाराज, आप बीच में पड़कर पाण्डवों के साथ कौरवों का मेल करा दीजिए। दोनों का मेल हो जाने से फिर किसी अनर्थ की शङ्का न रह जायगी। महाराज, ऐसा करने में ही भला होगा।

हे सञ्जय, नीतिज्ञ विदुर ने यों धर्मार्थयुक्त वचन कहकर मुझे समझाया था; पर उस ३९ समय पुत्र का हित करने की इच्छा में मूढ़ होकर मैंने विदुर की बात नहीं मानी।

महर्षि वेदव्यास-प्रणीत

महाभारत का अनुवाद

वनपर्व

—▸▸।◂◂—

आरण्यकपर्व

पहला अध्याय

हस्तिनापुर से पाण्डवों का वन-गमन और नगरवासियों का शोक करना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

जनमेजय ने पूछा—भगवन्, दुरात्मा धृतराष्ट्र के पुत्रों ने मेरे पूर्व-पितामह पाण्डवों को इस तरह कपट के जुए में हराकर, कठोर वचनों से उनका तिरस्कार करके, जब शत्रुता पैदा कर ली तब पाण्डवों ने क्या किया? इन्द्र-सदृश पराक्रमी पाण्डव एकाएक ऐश्वर्य से भ्रष्ट और दारुण दुर्दशा को पहुँचकर किस तरह वन में विचरे? [विपत्ति-समुद्र में डूबे हुए] महात्मा पाण्डवों के साथ वन में कौन-कौन गया? हे ऋषिश्रेष्ठ, शत्रुनाशन पाण्डवों ने किस तरह वन में बारह वर्ष कहाँ बिताये? वहाँ उनका आचार-व्यवहार और आहार-विहार कैसा था? पतिव्रता महाभागा सत्यवादिनी राजपुत्री द्रौपदी ने, सर्वथा सुख के योग्य होकर भी, किस तरह वनवास के दारुण दुःख सहे? हे तपोधन, आप यह सब विस्तार के साथ कहिए। उन समृद्धिशाली पराक्रमी पाण्डवों का चरित्र आपके मुँह से सुनने के लिए मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है।

वैशम्पायन कहते हैं—दुरात्मा धृतराष्ट्र के पुत्रों ने जब जुए में जीतकर पाण्डवों को कुपित किया तब अस्त्र-शस्त्र लेकर द्रौपदी को साथ लिये हुए वे, वर्द्धमान पुर-द्वार होकर, हस्तिनापुर से निकले और वहाँ से उत्तर की ओर चले। इन्द्रसेन आदि चौदह सेवक अपनी-अपनी स्त्रियों- १०

सहित रथों पर चढ़कर चटपट उनके पीछे हो लिये। पाण्डवों के वन जाने का समाचार सुनकर नगरवासी लोग शोक से अधीर हो गये। वे सब एकत्र होकर निर्भय भाव से भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि को वारम्वार दोष देते हुए कहने लगे कि दुरात्मा दुर्योधन ने—शकुनि की सलाह और कर्ण तथा दुःशासन की सहायता से—राज्य के लोभ में पड़कर हम लोगों का सत्यानाश कर डाला। यह पापी दुर्योधन यदि पापियों की सहायता से राज्य पावेगा तो हम लोगों का कुल, मान, आचार, धर्म, सुख आदि सब नष्ट हो जायगा; क्योंकि यह दुरात्मा गुरुजन से द्वेष रखनेवाला, आचार और सौहार्द से शून्य, धन का लोभी, घमण्डी तथा बहुत ही नीच-प्रकृति है। इसे प्रजा के प्रति करुणा है ही नहीं। यह पाप-बुद्धि राज्य का स्वामी होगा तो निस्सन्देह पृथ्वी पर पाप ही पाप फैल जायगा और एकदम सर्वनाश हो जायगा। [इस कारण इस पाप राज्य में रहना हमारे लिए किसी तरह उचित नहीं।] आओ, हम लोग उन्हीं दयालु, जितेन्द्रिय और धर्मपरायण महात्मा पाण्डवों के साथ हो लें'।
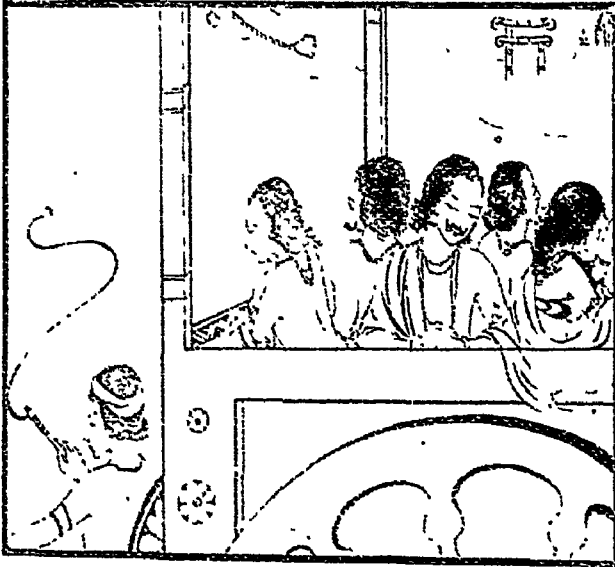
इस प्रकार सलाह करके सब नगरवासी लोग पाण्डवों के पास पहुँचे और हाथ जोड़कर बोले—हे मङ्गलरूप महात्माओ, दुःख के बोझ से दबे हुए हम अभागों को छोड़कर आप कहाँ जायँगे? जो आप जाने का बिलकुल ही निश्चय कर चुके हैं तो हमें अपने साथ चलने की अनुमति २० दीजिए। [नहीं तो हमारा सर्वनाश होगा।] पापी नीच शत्रुओं ने आप लोगों की यह दशा की है, यह सुनकर हम लोगों को बहुत ही डर और सन्ताप हुआ है। हम आपके बड़े ही भक्त और भलाई चाहनेवाले हैं। अतएव आप हमें इस उच्छृङ्खल, अधर्मी, पापबुद्धि, दुराचारी दुर्योधन के हाथ में न सौंपिएगा। जो आप ऐसा करेंगे तो जड़-मूल से हमारा नाश हो जायगा। हे पाण्डवो, अक्सर अच्छी और बुरी सङ्गति से ही मनुष्य की प्रकृति में गुण और दोष आ जाते हैं। तिल, जल, भूमि और कपड़े जैसे फूलों के संसर्ग से सुगन्धित हो जाते हैं वैसे ही संसर्ग के गुण से मनुष्य गुणी हो जाते हैं। तात्पर्य यह कि बुरे का सङ्ग अनेक दोषों का घर है; किन्तु साधु-सङ्ग से धर्म की प्रवृत्ति प्रबल होती है। इसलिए हे महात्माओ! गुणी, सत्यवादी और धर्मात्मा लोगों के साथ रहना ही उचित है। और जिनके काम, कुल (पूर्व-जन्मोपार्जित वुद्धि) और ज्ञान अत्यन्त पवित्र हैं उन्हीं की सेवा करनी चाहिए। शास्त्र का मनन न करने पर भी

उनके सङ्ग से तरह-तरह का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। आप पुण्यात्मा हैं; आप लोगों का स्वभाव अत्यन्त पवित्र है। यदि हम लोग सर्वथा अच्छे काम न कर सकेंगे तो भी आपके साथ रहने से बहुत कुछ पुण्य कर लेंगे। किन्तु जो उस अधर्मी पापी दुर्योधन की सेवा में लगे रहेंगे तो हमें घोरतर पाप में फँसना पड़ेगा। जिन्हें देखने, छूने या जिनसे बातचीत करने से भी पाप होता है उनकी सेवा करने से मङ्गल की आशा कहाँ है? जैसे सङ्ग में रहा जाता है वैसी ही बुद्धि-वृत्ति (उन्नति या अवनति) होती है। शास्त्र में जो गुण धर्म-काम-अर्थ से उत्पन्न, ३० आचारों से नियन्त्रित और साधु-सम्मत कहे गये हैं वे सब सद्गुण आप लोगों में हैं। अतएव हम अपने भले के लिए आप लोगों के ही पास रहना चाहते हैं।

युधिष्ठिर ने कहा—हम लोग धन्य हैं; क्योंकि ब्राह्मण आदि हमारी प्रजा हम पर इतनी भक्ति, आदर और स्नेह रखती है कि वास्तव में जो गुण हममें नहीं हैं उनको भी हममें बताती है। जो हो, मैं आप से जो निवेदन करता हूँ उसे सुनिए, और मुझ पर स्नेह तथा कृपा करके किसी तरह उसके विरुद्ध करने का इरादा न कीजिएगा। भीष्म पितामह, बुद्धिमान् विदुर, माता कुन्ती और अन्य अनेक भाई-बन्धु हस्तिनापुर में मौजूद हैं। वे हमारे विरह से अधीर होकर बड़े कष्ट से प्राण धारण कर रहे हैं। आप लोग जो मेरा प्रिय करना चाहते हैं तो ऐसा कीजिए जिसमें वे विपन्न या अत्यन्त शोकाकुल न हों। मैं उनको आप लोगों के हाथ में सौंपे जाता हूँ। आप लोग तुरन्त लौटकर उनकी देखरेख करें। इसी में मेरा हित होगा।

धर्मराज ने जब इस प्रकार मधुर वचन कहकर प्रजा-मण्डली को समझाया तब वे सब हा राजन्! कहकर, आँसू बहाते हुए, हस्तिनापुर को लौट पड़े। सब नगरवासियों ४० के लौट जाने पर पाण्डव लोग अपने-अपने रथ पर चढ़कर, प्रमाण नामक महावट को लक्ष्य करके, गङ्गातट की ओर चले। सन्ध्या से पहले ही वे अभीष्ट स्थान पर पहुँच गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने गङ्गाजल से हाथ-पैर और मुँह धोया; फिर थोड़ा सा जल पीकर वे रात को वहीं रहे। वहाँ उन्होंने बड़े कष्ट से वह रात बिताई। कुछ 'साग्नि' (स्त्री-सहित) और 'निरग्नि' (स्नातक ब्रह्मचारी आदि) ब्राह्मण भी

उनके साथ गये थे। वे अग्नि प्रज्वलित करके होम-मन्त्रों का पाठ और वेद का अध्ययन आदि करने तथा परस्पर शास्त्र-चर्चा करने लगे। ब्राह्मणों ने तरह-तरह के आश्वास-वचनों से कुरुश्रेष्ठ
४६ युधिष्ठिर को सान्त्वना देते हुए वह रात बितादी।

दूसरा अध्याय

युधिष्ठिर और ब्राह्मणों की बातचीत। शौनक और युधिष्ठिर का संवाद

वैशम्पायन ने कहा कि भिक्षा से निर्वाह करनेवाले ब्राह्मण लोग दूसरे दिन सवेरे पाण्डवों के आगे आकर खड़े हुए। तब धर्मराज ने उनसे कहा—हे ब्रह्मर्षियो, आप लोग हमारे साथ कहाँ जायँगे? हमारा राज्य और सर्वस्व हर लिया गया है। इस समय श्री-भ्रष्ट होकर हम वन को जा रहे हैं। वहाँ फल-मूल खाकर हमें रहना पड़ेगा। चारों ओर भयानक ख़ूनी जानवरों के सिवा और कुछ न देख पड़ेगा। इसलिए आप लोग क्यों हमारे पीछे चलकर अनेक क्लेश भोगेंगे? हमारी कौन कहे, देवता लोग भी ब्राह्मणों का क्लेश नहीं देख सकते। इस कारण आप लोग इसी स्थान से लौट जायँ।

ब्राह्मणों ने कहा—हे धर्मराज, आप लोगों ने जिस राह में पैर रक्खा है उसी राह में चलने के लिए हम भी तैयार हैं। हम लोग धर्म-मार्ग के दिखलानेवाले और आप लोगों के शुभ-चिन्तक हैं। हमें लौटाने की चेष्टा करना आपको किसी तरह उचित नहीं। देवता भी अनुगत व्यक्ति के ऊपर दया दिखाते हैं। ख़ास कर धर्म-निरत ब्राह्मण के ऊपर स्नेह और आदर का भाव कौन नहीं रखता? इसलिए महाराज, हमारा त्याग आप क्यों करेंगे?

युधिष्ठिर ने कहा—हे ब्राह्मणो, यह कहने की कुछ आवश्यकता नहीं कि मैं ब्राह्मणों पर सच्ची भक्ति और श्रद्धा रखता हूँ। असल में मेरी यह हीन दशा ही आप लोगों से लौट जाने के लिए कहने का एकमात्र कारण है। जो लोग फल, मूल और अन्यान्य आहार की सामग्री लाकर आप लोगों को सन्तुष्ट करनेवाले हैं वे आज्ञाकारी मेरे छोटे भाई, द्रौपदी की दारुण विडम्बना होने और राज्य छिन जाने के शोक से, सुस्त हो रहे हैं। मैं उन्हें किस तरह क्लेश के कामों में लगाऊँगा?

ब्राह्मणों ने कहा—महाराज, हमारे प्रतिपालन के लिए आपको किसी तरह क्लेश न
१० सहना होगा। हम लोग स्वयं अपनी जीविका की राह देख लेंगे और सदा जप तथा ध्यान के द्वारा आप लोगों का भला करते रहेंगे। इसके सिवा समय-समय पर मनोहर उपाख्यान आदि सुनाकर आप लोगों का जी बहलावेंगे।

"इसमें सन्देह नहीं कि आप लोगों की सहायता से हमारे सब क्लेश और सन्ताप दूर होंगे; किन्तु मैं अपनी अवस्था का स्मरण करके सभी बातों में हताश होता हूँ। आप लोग

मुझसे अत्यन्त स्नेह रखते हैं इसी से सहज ही इस दारुण क्लेश को स्वीकार करते हैं; किन्तु आप लोग ख़ुद अपने लिए आहार खोजेंगे, यह मैं किस तरह देखूँगा ? पाप-बुद्धि धृतराष्ट्र के पुत्रो, तुम्हारे जी में यही था! तुम्हें धिक्कार है!" इतना कहकर शोक के मारे धर्मराज युधिष्ठिर पृथ्वी पर बैठ गये।

उस ब्राह्मण-मण्डली में शौनक नाम के विद्वान् सांख्य, योग और अध्यात्मतत्त्व के विषय में बड़े ही निपुण थे। वे युधिष्ठिर को यों संज्ञाहीन होते देखकर कहने लगे—महाराज, जगत् में शोक और डर की इतनी सामग्री है कि उसकी गिनती नहीं की जा सकती; किन्तु उससे मूढ़ लोग ही घबरा जाते हैं। बहुदर्शी पण्डित का वह कुछ नहीं कर सकती। आप ऐसे महानुभाव कभी शास्त्र-निषिद्ध, दोषों की खान और अशुभजनक कर्मों का अनुसरण नहीं करते। महाराज, सब शास्त्रों की छान-बीन करने से आपको जानकारी प्राप्त हुई है; आपकी बुद्धि की वृत्तियाँ भी पक्की हो चुकी हैं। [फिर आप क्यों एकाएक यों खेद कर रहे हैं ?] आप ऐसे लोग धन-कष्ट, शोचनीय दशा, आत्मीयजनों के नाश या मानसिक और शारीरिक दुःख में किसी तरह विपन्न या अभिभूत नहीं होते। महात्मा जनक ने कुछ मन को धैर्य देनेवाले श्लोक कहकर लोगों के शारीरिक और मानसिक दुःखों का जिस तरह वर्णन किया है, और जिस उपाय से उनका प्रतिकार किया जा सकता है, सो कहता हूँ। एकाग्र होकर सुनिए। व्याधि, परिश्रम, अनिष्ट के आने और इष्ट का नाश होने से ही शारीरिक दुःख होता है। प्रतिकार के द्वारा व्याधि की और विचार के द्वारा मानसिक पीड़ा की शान्ति हो सकती है। इसी कारण बुद्धिमान् चिकित्सक-मात्र पहले प्रिय वचन कहकर और भोग की वस्तुएँ देकर रोगी के मानसिक दुःख को दूर करने की चेष्टा किया करते हैं। जैसे घड़े के भीतर गर्म लोहा छोड़ने से घड़े के भीतर का पानी गर्म हो जाता है, वैसे ही मानसिक क्लेश के द्वारा शरीर भी सन्तप्त हो उठता है। जैसे पानी के द्वारा जलती हुई आग बुझ जाती है वैसे ही ज्ञान का जल डालने से मानसिक दुःख दूर हो जाता है। मानसिक क्लेश दूर होने पर शरीर भी सुस्थ हो जाता है। अधिकांश मानसिक दुःखों की उत्पत्ति स्नेह से ही हुआ करती है। स्नेह केवल दुःख का ही कारण नहीं है प्रत्युत वह डर, शोक, हर्ष और परिश्रम का भी कारण है। मानसिक विकार और विषयासक्ति भी स्नेह से ही उत्पन्न हुआ करती है। इस प्रकार का मानसिक विकार विषयासक्ति से भी बढ़कर भयङ्कर है। छेद के भीतर की आग जैसे वृक्ष को जला देती है वैसे ही विषयासक्ति, चाहे जितनी थोड़ी हो, सब धर्म और अर्थ की प्रवृत्तियों की जड़ को जला देती है। विषय-वियुक्त होने से ही कोई विषय-त्यागी नहीं होता। जो पुरुष विषयों के समागम में दोष की दृष्टि रखता है तथा वैर-विरोध-रहित और परिग्रह-हीन रहता है, वही सचमुच विरागी है। इसी कारण ज्ञानी लोग मित्र और धन के बन्धन में अपने को बँधने नहीं देते; ज्ञान के द्वारा स्नेह के बन्धन से बचते रहते हैं। पानी का बूँद

२१

३०

जैसे कभी कमल के पत्ते में लिप्त नहीं होता वैसे ही स्नेह कभी नित्य-अनित्य के ज्ञाता, नित्य वस्तु प्राप्त करने में सचेष्ट, ध्यान से पवित्र चित्तवाले सच्चे ज्ञानियों के हृदय में स्थान नहीं पाता। विषयानुराग से कामना, कामना से इच्छा और इच्छा से तृष्णा उत्पन्न हुआ करती है। यह अधर्म-जननी, नित्य उद्वेगकरी तृष्णा तरह-तरह के पापों की जननी है। यह आश्रय (शरीर) के जीर्ण होने पर भी सदा प्रबल रहकर नित्य नये रूप और भाव धारण करती है। इसे दुर्मतिवाले लोग छोड़ नहीं सकते। जो कोई तृष्णा को छोड़ सकता है वही सच्चा सुखी है। मनुष्यों के शरीर में यह तृष्णा व्याप्त रहती है। इसके आदि और अन्त का निरूपण करना कठिन है। यह आग के समान सब प्राणियों को जलाया करती है। वन जैसे दावानल से भस्म हो जाता है वैसे ही अजितेन्द्रिय पुरुष सहज-प्राप्त लोभ से नष्ट हो जाता है। हर एक प्राणधारी को जैसे मृत्यु का डर है वैसे ही जिनके पास धन है उन्हें राजा, पानी, आग, चोर और स्वजनों से नित्य डर रहता है। जैसे मांस के लोथड़े को आकाश में पक्षी, पृथ्वी पर कुत्ते-सियार आदि और पानी में मछली आदि जन्तु खाते हैं वैसे ही धनी पुरुष चाहे जहाँ रहे, उसे सब जगह सब लोग
४० नोच-नोच खाते हैं। सम्पत्ति किसी-किसी के लिए विपत्ति का घर है। धन-द्वारा साध्य यज्ञ आदि में आसक्त पुरुष को श्रेय नहीं मिल सकता। इसी से शास्त्र के जानकार लोग धन-प्राप्ति को लोभ, मोह, मद, ईर्ष्या, दर्प, कृपणता, अभिमान, डर और उद्वेग का कारण कहते हैं। अज्ञानवश लोग धन के उपार्जन की चेष्टा, उसकी रक्षा और ख़र्च की चिन्ता में लगातार लगे रहकर कौन सा क्लेश नहीं सहते ? वे तो समय-समय पर प्राण तक देने को उतारू हो जाते हैं। मूढ़ लोग ही दुःखों से बचने के लिए परिश्रम करके धनरूपी शत्रु को अपने पास लाकर रखते हैं, तथा उसकी रक्षा और देख-रेख में लगे रहते हैं।

मूढ़ लोग ही आशा के चक्कर में पड़े रहते हैं। वास्तव में सन्तोष ही सब सुखों का मूल कारण है। इसी से पण्डित लोग सन्तोषी हुआ करते हैं। तृष्णा का अन्त नहीं है, सन्तोष परम सुख है। पण्डित इसी को प्रधान मानते हैं। रूप, धन, जीवित, जवानी और ऐश्वर्य, कुछ भी सदा बना नहीं रहता। इन क्षणस्थायी वस्तुओं का लोभ पण्डित लोग नहीं करते। धन जोड़ने का कोई प्रयोजन नहीं; क्योंकि जगत् में कौन सा धनी पुरुष, निरुपद्रव भाव से, जीवन बिता सकता है ? धनोपार्जन से विमुख पुरुष सदा धार्मिक व्यक्तियों के आगे बहुत-बहुत बड़ाई पाते हैं। बहुत लोग धर्म-कर्म का अनुष्ठान करने की इच्छा से धन कमाने की चेष्टा करते हैं; किन्तु वह चेष्टा न करना ही उनके लिए अच्छा है; क्योंकि पहले अपने शरीर में कीचड़ लगाकर पीछे उसे धोने की अपेक्षा कीचड़ से बचना ही भला। इसलिए हे धर्मराज, आप धन की इच्छा से एकदम दूर रहकर सभी विषयों का लोभ छोड़ दीजिए। ऐसा हुए
५० बिना कोई भी धर्म का उपार्जन नहीं कर सकता।

युधिष्ठिर ने कहा—ब्रह्मन्, मैं स्वयं सुख से रहने के लिए धनोपार्जन करना नहीं चाहता ; मैं लोभवश होकर भी धन की इच्छा नहीं करता। मुझे तो ब्राह्मणों का भरण-पोषण करने को ही धन चाहिए। विचार करके देखिए, हम गृहस्थ हैं। अनुगत व्यक्तियों का भरण-पोषण किये बिना भला हम कैसे रह सकते हैं! देखिए न, प्रायः सभी प्राणी औरों को बाँटकर भोजन करते हैं। जो लोग अपने लिए रसोई नहीं बनाते उन संन्यासी आदि को भोजन कराना गृहस्थ का धर्म है। सज्जन गृहस्थ के यहाँ तृण (आसन), पानी, पृथ्वी और मीठे वचनों की कभी कमी नहीं रहती। गृहस्थ को रोगी के लिए शय्या, चलने से थके हुए के लिए आसन, प्यासे को पानी और भूखे को भोजन देना पड़ता है। नेत्र, मन, और मधुर वचन का प्रयोग करना, उठकर आसन देना, दूसरे के उठते ही खड़े हो जाना तथा अतिथियों की यथोचित सेवा करना गृहस्थों का सनातन धर्म है। अग्निहोत्र, बैल, सजातीय, अतिथि, भाई-बन्धु, पुत्र, स्त्री और सेवक आदि सबका यथायोग्य सत्कार करना चाहिए। इनके प्रति अपना कर्त्तव्य न करने से ये कष्ट देते हैं। केवल अपना पेट भरने के लिए रसोई न करनी चाहिए। वृथा पशुओं की हिंसा करना किसी तरह ठीक नहीं। देव, पितर, भूत और मनुष्यों के लिए जो अन्न नहीं दिया जाता उसको स्वयं न खाना चाहिए। सवेरे और सन्ध्या के समय कुत्ते, चाण्डाल और पक्षियों के लिए पृथ्वी पर अन्न रखकर वैश्वदेव बलि करना चाहिए। अतिथि के भोजन से बचा हुआ अन्न 'विघस' और पञ्चयज्ञ से बचा हुआ अन्न 'अमृत' कहलाता है। गृहस्थ को नित्य 'विघस' और 'अमृत' भोजन करना चाहिए। सभी कामों को (१) आँखों से देखकर, (२) मन लगाकर करना उचित है। (३) सदा सत्य बोले, पञ्चयज्ञ-सहित (४) अतिथि का अनुगमन और पञ्चदक्षिण होकर (५) उपासना करे। जो कोई राह चलते हुए, थके, अपरिचित अतिथि को उदारता के साथ भोजन देता है उसे महापुण्य मिलता है। हे द्विजश्रेष्ठ, जो कोई गृहस्थाश्रम में रहकर इस आचारव्यवहार का पालन करता है उसी का धर्म (आचार) श्रेष्ठ माना जाता है। भगवन्, इस विषय में आपकी क्या सम्मति है ? ६०

शौनक ने कहा—हा, बड़े कष्ट की बात है! इस जगत् में सब उलटा ही देख पड़ता है। साधु (सज्जन) पुरुष जिसमें लज्जित होता है उसी में असाधु सन्तुष्ट होता है। मूढ़ पुरुष पेट और इन्द्रिय-सुख के लिए—मोह, राग आदि प्रवृत्तियों के वश होकर—रूप, रस आदि इन्द्रिय-विषयों के फेर में अनेक चेष्टाएँ करता है। दुष्ट घोड़े जैसे सारथी को कुराह में ले जाते हैं वैसे ही इन्द्रियाँ छोटे और निर्बल जी के आदमी को अपनी इच्छा के अनुसार ज़बर्दस्ती कुमार्ग में घसीट ले जाती और पाप के कीचड़ में पटक देती हैं। अपने-अपने विषय को पाते ही इन्द्रियाँ मनुष्य के पूर्व-सङ्कल्प-जनित मनोगत भावों (संस्कारों) को जगा देती हैं। मूढ़ व्यक्ति का मन जब इन्द्रिय-विषयों के भोग की तरफ़ दौड़ता है तब उसके चित्त में उत्सुकता और प्रवृत्ति पैदा कर

देता है। तब वह मूढ़, सङ्कल्प का बीज जो कामना है उसके द्वारा विषय-बाण से घायल होकर, ज्योति पर लुभाये हुए पतङ्ग की तरह लोभ की आग में कूद पड़ता है। इसके बाद यथेष्ट आहार-
७० विहार में मुग्ध होकर भोग-सुख में ऐसा डूब जाता है कि अपने को भी नहीं जानता। अज्ञ लोग इसी तरह अपने-अपने कर्मफल के चक्र में चक्कर खाते हुए बारम्बार जन्म लेकर, अनेक रूप धारण करके, सभी योनियों में घूमते हैं। हे युधिष्ठिर, मूढ़ों की तो यह गति है। अब पण्डितों की अवस्था का वर्णन करता हूँ। एकाग्र होकर सुनिए। सब शास्त्रों में चतुर बुद्धिमान् लोग मोक्ष की इच्छा करके बहुत परिश्रम और अनेक यत्नों के साथ लगातार धर्म का आचरण करते हैं। राजन्, मेरी बड़ी ही इच्छा है कि आप भी सब कर्मकाण्ड छोड़कर इस वेदोक्त वाक्य को मानिए। अभिमान छोड़कर इन धर्मों का आचरण करना चाहिएं। तप, जप, सत्य, इन्द्रिय-दमन, क्षमा, दान, अध्ययन और सन्तोष, ये आठ धर्म के मार्ग हैं। इनमें तप, जप, दान और अध्ययन, ये चार पितृलोक जाने के उपाय हैं। मान-अपमान का ख़याल छोड़कर, कर्त्तव्य समझकर, केवल इन्हीं चार धर्मों का आचरण करना चाहिए। सत्य, इन्द्रिय-दमन, क्षमा और सन्तोष, ये चार देवलोक जाने के उपाय हैं। सदाचारी सज्जन सदा इनका आचरण करते रहते हैं। इस कारण हर एक मनुष्य को चाहिए कि शुद्ध चित्त से इस आठ प्रकार के धर्म का पालन करता रहे। अत्यन्त दृढ़ सङ्कल्प करके, इन्द्रियों को वश में रखकर गुरुओं की सेवा, बड़े-बड़े व्रत करना, शास्त्र की छानबीन, नियमित आहार, अन्य सब कर्मों का त्याग तथा चित्त-वृत्ति को पूर्णतया रोकना—यही संसार पर जय पाने के उपाय हैं। पूर्व समय में देवताओं ने
८० क्रोध और द्वेष से बचकर ही अपार ऐश्वर्य प्राप्त किया है। साध्यगण, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, आठ वसु और दोनों अश्विनीकुमार, ये सब देवता योगसाधन के द्वारा सारी प्रजा का पालन कर रहे हैं। इसलिए हे पाण्डुकुल-तिलक, आप भी शम का अवलम्ब करके उसी तरह योगसिद्धि और तप की सिद्धि पाने की चेष्टा कीजिए। आप पितृमयी, मातृमयी और कर्ममयी, इन तीनों सिद्धियों को प्राप्त कर चुके हैं। अब अनुगत ब्राह्मणों के भरण-पोषण के लिए तप की सिद्धि प्राप्त कीजिए। सिद्ध लोग तप के प्रभाव से जो जी चाहे वही कर सकते हैं। इसलिए तपस्वियों की
८४ वृत्ति को ग्रहण करके आप झटपट अपना मनोरथ सफल करने का उद्योग कीजिए।

तीसरा अध्याय

सूर्य की उपासना और उनसे वरदान पाना

वैशम्पायन कहते हैं कि शौनक के शास्त्रानुकूल उपदेश सुनकर युधिष्ठिर ने अपने छोटे भाइयों के सामने पुरोहित से कहा—भगवन्, वेद-वेदाङ्ग के पूरे पण्डित ये ब्राह्मण किसी तरह नहीं मानते।

इन्होंने मेरे साथ चलने का निश्चय कर लिया है। [किन्तु मेरे पास नाम लेने को भी धन नहीं है।] भला इनका भरण-पोषण मैं किस तरह करूँ? लेकिन इन्हें छोड़ने की भी मुझे इच्छा नहीं है। अब मुझे क्या करना चाहिए? मैं इस विषय में आपका उपदेश सुनना चाहता हूँ।

धर्मात्माओं के अगुआ महर्षि धौम्य ने दमभर सोचकर कहा—देखो युधिष्ठिर, पहले-पहल जब सब जीव उत्पन्न हुए तब भूख से बहुत ही व्याकुल हुए। यह देखकर सब प्राणियों को उत्पन्न करनेवाले सूर्यनारायण ने, दया के मारे उत्तरायण होकर, किरणों के द्वारा तेज और रस को निकाला। फिर वे दक्षिणायन होकर पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए। सूर्य जब क्षेत्र बने तब चन्द्रमा ने आकाश से तेज निकालकर जल के द्वारा ओषधियों को उत्पन्न किया। [इसके बाद सब बीज निकले।] इस तरह सूर्यदेव ही चन्द्रमा के तेज-द्वारा मधुर आदि रसों से युक्त, पवित्र ओषधियों के रूप में परिणत, होकर प्राणियों का आहार अन्न बन जाते हैं। वह सूर्यमय अन्न ही प्राणियों के प्राण-धारण का एकमात्र उपाय है। इसी कारण सूर्य सब प्राणियों के पिता हैं। इसलिए तुम सूर्य की शरण में जाओ। अच्छे वंश में उत्पन्न, पवित्र कर्म करनेवाले, पुण्यात्मा राजा लोग तप के प्रभाव से सहज ही प्रजा का पालन किया करते हैं। भीम, कार्त्तवीर्य अर्जुन, पृथु, नहुष आदि सब राजा—योग और तप के प्रभाव से—प्रजा को विपत्ति से छुटकारा दिला गये हैं। हे पुण्यात्मा युधिष्ठिर, तुम भी धर्म-कर्म करने से पवित्र हो चुके हो। अतएव तप करके, धर्म के अनुसार, द्विजों का भरण-पोषण करो। १०

जनमेजय ने पूछा—ब्रह्मन्, धर्मराज युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों के लिए किस तरह सहस्रकिरण सूर्य की आराधना की?

वैशम्पायन कहते हैं कि हे भरतकुल-तिलक, महानुभाव धौम्य ने धर्मराज को जो सूर्य के एक सौ आठ नाम बताये थे वे तुमसे कहता हूँ। एकाग्र होकर सुनो। धौम्य ने कहा—सूर्य, अर्यमा, भग, त्वष्टा, पूषा, अर्क, सविता, रवि, गभस्तिमान्, अज, काल, मृत्यु, धाता, प्रभाकर, पृथ्वी, जल, तेज, आकाश, वायु, सोम, बृहस्पति, शुक्र, बुध, अङ्गारक, इन्द्र, विवस्वान्, दीप्तांशु, शुचि, शौरि, शनैश्चर, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, स्कन्द, यम, वैद्युताग्नि, जाठराग्नि, ऐन्धनाग्नि, तेजपति, धर्मध्वज, वेदकर्त्ता, वेदाङ्ग, वेदवाहन, सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, कला, काष्ठा, मुहूर्त्त, क्षपा, याम, क्षण, संवत्सरकर, अश्वत्थ, कालचक्र, विभावसु, व्यक्ताव्यक्त पुरुष, शाश्वत योगी, कालाध्यक्ष, प्रजाध्यक्ष, विश्वकर्मा, तमोनुद, वरुण, सागर, अंश, जीमूत, जीवन, अरिहा, भूताश्रय, भूतपति, स्रष्टा, संवर्त्तक, वह्नि, सर्वादि, अलोलुप, अनन्त, कपिल, भानु, कामद, सर्वतोमुख, जय, विशाल, वरद, मन, सुपर्ण, भूतादि, शीघ्रग, धन्वन्तरि, धूमकेतु, आदिदेव, दितिसुत, द्वादशात्मा, अरविन्दाक्ष, पिता, माता, पितामह, स्वर्गद्वार, प्रजाद्वार, मोक्षद्वार, त्रिविष्टप, देहकर्त्ता, प्रशान्तात्मा, विश्वात्मा, विश्वतोमुख, चराचरात्मा, सूक्ष्मात्मा और मैत्रेय, ये सूर्य के एक सौ आठ नाम स्वयंभू २०

ब्रह्मा ने कहे हैं। इस यक्ष, पितर, राक्षस, देवता और दानवों के द्वारा सेवित और सुवर्ण तथा अग्नि के समान तेजस्वी सूर्यदेव को मङ्गल के लिए बारम्बार प्रणाम करते हैं। जो कोई सूर्योदय के समय शुद्ध चित्त से इन एक सौ आठ नामों का पाठ करता है वह पुत्र, स्त्री, धन-रत्न, धृति ३० और मेधा पाता है। उसे दूसरे जन्म में पूर्व-जन्म का ज्ञान बना रहता है। एकाग्र होकर पवित्र-हृदय से देवादिदेव दिवाकर के इस स्तोत्र का पाठ करने से मनुष्य का शोक (दावानल)-रूप भवसागर से छुटकारा हो जाता है, जिससे उसका अभीष्ट सिद्ध होता है।

वैशम्पायन कहते हैं—धौम्य के समयोचित वाक्य सुनकर धर्मराज ने आत्मसंयम-पूर्वक नियम धारण करके समाधि लगाई। वे सूर्य की उपासना के लिए तप करने लगे। पहले जल में स्नान करके उन्होंने शरीर को शुद्ध किया; फिर बलि-पुष्पोपहार के द्वारा विधिपूर्वक आराधना की। इसके पश्चात् प्राणायाम करके, भक्तिपूर्वक पवित्रहृदय हो, उपवास करके विशुद्ध वचनों से वे इस प्रकार सूर्य की स्तुति करने लगे—हे सहस्र-किरण, तुम इस विश्व के नेत्र और सब शरीरों में आत्मा के रूप से स्थित हो। तुम क्रियावानों की क्रिया और सबका प्रसव करते हो। तुम सांख्यवादियों की परम-गति और योगियों के एकमात्र अवलम्ब हो। तुम्हारी गति कहीं रुकी हुई नहीं है। मोक्ष चाहनेवाले लोग, परम गति समझकर, तुम्हारी आराधना करते हैं। तुम समग्र विश्व को धारण किये हुए हो। तुम्हीं सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करते हो। तुम निष्कपट और विशुद्ध भाव से विश्व का प्रतिपालन करते हो। वेदज्ञ ब्राह्मण लोग अभीष्ट-सिद्धि की इच्छा से अपनी-अपनी शाखा के मन्त्रों-द्वारा तुम्हारी पूजा और तुम्हारे अप्रतिहत-गति दिव्य रथ का अनुसरण किया करते हैं। सिद्ध, चारण, गन्धर्व, यक्ष, गुह्यक

४० और पन्नगगण, नारायण, इन्द्र, तेंतीस देवता और विमानवासी लोग तुम्हारी उपासना करके सिद्धि को प्राप्त हुए हैं। श्रेष्ठ अप्सराओं ने कल्पवृक्ष के फूलों से तुम्हारी पूजा करके अपना-अपना मनोरथ सिद्ध कर लिया है। गुह्यक, दिव्य और मानुष सात पितृगण, वसु, मरुत्, रुद्र, साध्यगण और किरणें पीनेवाले वालखिल्य आदि सिद्धों ने तुम्हारी ही आराधना करके संसार में प्रधानता

पाई है। सारे सातों लोकों में जो कुछ है सो सब तुममें विद्यमान है। इस विश्व में अनेक प्रकार के तेजस्वी पदार्थ हैं, किन्तु उनमें कोई भी तुमसे बढ़कर तेजस्वी या उज्ज्वल नहीं है। सत्य, तत्त्व, ज्योति और सब सात्विक भाव तुममें स्थित हैं। तुम सब ज्योतियों के एकमात्र ईश्वर हो। जिस सुदर्शन चक्र की सहायता से भगवान् विष्णु दर्पहारी कहलाते हैं वह तुम्हारे ही तेज से बना है। तुम प्रचण्ड ग्रीष्म ऋतु में किरणों के द्वारा रस को खींच लेते हो और फिर वर्षा ऋतु में जल रूप से वही रस बरसाकर सब ओषधियों और जीवधारियों के जीवन की रक्षा करते हो। तुम्हारी किरणें भिन्न-भिन्न श्रेणी की हैं। उनमें कोई घनी होकर गर्मी पहुँचाती हैं, कोई प्रकाश फैलाती हैं, कोई अग्नि-रूपिणी हैं और कोई वर्षाकाल में गरजती, विद्युत्-प्रकाश करती और जल बरसाती हैं। जाड़े और आँधी से कष्ट पा रहे लोग तुम्हारी किरणों ५० को पाकर जैसे सुख का अनुभव करते हैं वैसा सुख अग्नि, कम्बल या 'ओढ़ने' आदि से कभी नहीं मिलता। तेरह द्वीपवाली इस पृथ्वी में तुम्हारे ही प्रकाश से उजेला है। तीनों लोकों में एकमात्र तुम्हीं मङ्गल देनेवाले हो। जो तुम्हारा उदय न हो तो सारे संसार में अँधेरा फैला रहे। कोई भी धर्म-अर्थ-काम के चिन्तन में मन न लगा सके। तीनों वर्ण तुम्हारे ही प्रसाद से आधान, पशु-बन्ध, इष्टि, मन्त्र, यज्ञ और तप आदि कर्म करते हैं। शास्त्रकार महापुरुषों ने तुम्हीं को सहस्र-युग-परिमित ब्रह्मा के दिन का आदि और अन्त कहा है। मनु, मानव और मन्वन्तर, सबके ईश्वर तुम्हीं हो। संवर्त्तक नाम का तुम्हारा ही क्रोधाग्नि प्रलय-काल में तीनों लोकों को भस्म कर डालता है। तुम्हारी किरणों से उत्पन्न तरह-तरह के बड़े मेघ एक पर एक—बिजली-सहित—संसार को डुबा देते हैं। तुमने अपने बारह विभाग करके बारह मूर्त्तियाँ धारण की हैं। उन्हीं बारह मूर्त्तियों के द्वारा तुम समुद्र का जल सोखते हो। तुम्हीं इन्द्र, विष्णु, रुद्र, प्रजापति और अग्नि हो। तुम्हीं प्रभु, मन और सनातन ब्रह्म हो। तुम्हीं हंस, ६० सविता, विभावसु और भानु हो। तुम अंशुमाली, वृषाकपि, विवस्वान्, मिहिर, पूषा, मित्र और धर्म हो। तुम्हीं सहस्ररश्मि, आदित्य, तपन और किरणाधिराज हो। तुम्हीं मार्त्तण्ड, अर्क, रवि, सूर्य, शरण्य और दिनकर हो। तुम्हीं दिवाकर, सप्तसप्ति, धामकेशी और विरोचन हो। तुम्हीं आशुगामी, तमोहन्ता और हरिताश्व हो। जो कोई निष्कपट और अहङ्कारशून्य होकर छठ या सप्तमी को भक्ति-श्रद्धा के साथ तुम्हारी पूजा करता है उसे अवश्य लक्ष्मी प्राप्त होती है। तुम्हारे इस स्तोत्र का पाठ करने से रोग, शोक और आपत्ति-विपत्ति मिट जाती हैं। तुम्हारे भक्त लोग जन्म भर सुख और स्वच्छन्दता के साथ रहते हैं। हे विभो, मैं श्रद्धा और भक्ति के साथ अतिथिसत्कार के लिए तुमसे अन्न की प्रार्थना करता हूँ। हे अन्न के स्वामी, मुझे अन्न दो। मैं तुम्हारे अनुचरों—माठर, अरुण, दण्ड आदि—को प्रणाम करता हूँ। क्षुभा और मैत्री आदि भूत-माताओं को भी मैं प्रणाम करता हूँ। मैं उनके शरणागत हूँ। वे मेरी रक्षा करें।

युधिष्ठिर का यह स्तोत्र सुनकर भगवान् दिवाकर बहुत प्रसन्न हुए और तेजोमयी मूर्त्ति
७० धारण करके प्रकट हो गये। जलते हुए से उन्होंने कहा—तुम्हारी सब इच्छाएँ पूरी होंगी। मैं तुमको बारह वर्ष तक नित्य अन्न दूँगा। राजन्, यह ताँबे का (परोसने का) पात्र लो। द्रौपदी जब तक भोजन बाँटती रहेंगी [भोजन न करेंगी] तब तक रसोई-घर में अन्न—फल-मूल, मांस और शाक—की कमी नहीं रहेगी। यह पात्र भरपूर अन्न देगा। तेरह वर्ष बीतने पर तुमको फिर राज्य मिलेगा।

वैशम्पायन कहते हैं—यह कहकर सूर्य भगवान् अन्तर्द्धान हो गये। जो कोई पवित्र हृदय से यह स्तोत्र पढ़ता है उसके सब मनोरथों को भगवान् सूर्य पूरा करते हैं। नित्य यह स्तोत्र पढ़ने या सुनने से पुत्र की इच्छा रखनेवाले को पुत्र, धन की इच्छा रखनेवाले को धन और विद्यार्थी को विद्या प्राप्त होती है। स्त्री या पुरुष जो कोई सायङ्काल और प्रातःकाल यह स्तोत्र पढ़ता है उसे किसी प्रकार की आपत्ति या बन्धन का डर नहीं होता। ब्रह्मा ने पहले यह स्तोत्र इन्द्र को दिया था। इन्द्र से नारद ने, उनसे धौम्य ने और धौम्य से राजा युधिष्ठिर ने पाया और उनकी इच्छा पूरी हुई। इसका पाठ करने से युद्ध में विजय और संसार में बहुत सा धन मिलता है; सब पापों की शान्ति होती है और सूर्यलोक प्राप्त होता है।

वैशम्पायन कहते हैं—वर पाकर धर्मराज युधिष्ठिर जल से बाहर निकले। उन्होंने पहले
८० धौम्य के चरण छुए, फिर भाइयों को गले लगाया। फिर द्रौपदी के पास गये। धर्मराज की समुचित अभ्यर्थना करके द्रौपदी पाकशाला में गई। वहाँ जाकर उन्होंने रसोई बनाई। चाहे जितना अन्न हो, किसी तरह चुकता नहीं था। धर्मराज उसी चार प्रकार की रसोई से नित्य ब्राह्मणों को तृप्त करते थे। फिर भाइयों को भोजन कराकर पीछे से अतिथि-सत्कार से बचा हुआ अन्न आप खाते थे। अन्त को द्रौपदी भोजन करती थीं। द्रौपदी के भोजन कर चुकने पर वह आहार की सामग्री चुक जाती थी। इस प्रकार आदित्य के वरदान के प्रभाव से ब्राह्मणों का भरण-पोषण करते हुए धर्मराज उस निर्जन वन में भी पवित्र गृहस्थ-धर्म का पालन करने लगे।

विशेष-विशेष तिथियों, नक्षत्रों और पर्वों के अवसर पर पुरोहित धौम्य की आज्ञा के अनुसार वे विधिपूर्वक यज्ञ-उत्सव भी करते थे। कुछ समय के उपरान्त वे स्वस्त्ययन-मङ्गल-पूर्वक धौम्य और अन्यान्य ब्राह्मणों को साथ लिये काम्यक वन की ओर चल दिये। ८६

चौथा अध्याय

विदुर और राजा धृतराष्ट्र का संवाद

पाण्डव जब वन को चले गये तब प्रज्ञाचक्षु (अन्धे) धृतराष्ट्र को बड़ा सन्ताप हुआ। उन्होंने अगाधबुद्धि धर्मात्मा विदुर से कहा—हे विदुर, तुम शुक्राचार्य के समान निर्मल बुद्धिवाले और सूक्ष्म धर्म के विशेष जानकार हो। सब कुरुवंशियों के ऊपर तुम्हारी समान दृष्टि है। इसलिए बताओ, क्या करने से हमारा उपकार हो सकता है ? बीती हुई बात के लिए मैं कुछ नहीं कहता। इस समय जो कर्त्तव्य है और जिस उपाय से नगरवासी लोग अनुरक्त रह-कर हमारी जड़ काटने की चेष्टा न करें सो तुम हमसे कहो। कर्त्तव्य के विषय में तुम विशेष रूप से पारदर्शी हो।

विदुर ने कहा—महाराज, धर्म ही त्रिवर्ग [अर्थ, काम, मोक्ष] और राज्य की जड़ कहा गया है। अतएव आप भरसक धर्म का आचरण करते हुए अपने और पाण्डु के पुत्रों का पालन कीजिए। राजन्, शकुनि आदि दुष्टों ने सभामण्डप में अत्यन्त अन्याय और नियम-विरुद्ध आच-रण किया है। आपके पुत्र ने धर्मात्मा युधिष्ठिर को बुलाकर छल से जुए में जीता है। इस समय जिस उपाय से इस घोर कुकर्म का प्रायश्चित्त हो, आपका पुत्र पाप से बचकर सब जगह प्रतिष्ठा पावे, वह मैंने ठीक कर लिया है। आपकी दी हुई वस्तुओं पर पाण्डवों का फिर अधि-कार हो; क्योंकि अपने पास जो है उसी से सन्तुष्ट रहकर पराये द्रव्य पर होनेवाले लोभ को रोकना राजाओं का परम धर्म है। शकुनि का तिरस्कार और पाण्डवों को प्रसन्न करना आपका सबसे पहला और मुख्य काम है। ऐसा करने पर यश के नाश, जाति में फूट और धर्म की हानि की आशङ्का न रहेगी। यदि आप अपने पुत्रों को सब तरह निर्भय रखना चाहते हैं तो तुरन्त यह काम कीजिए; नहीं तो कुरुवंश का नाश हुए बिना न रहेगा। अर्जुन और भीम के क्रोध करने पर शत्रुपक्ष के किसी पुरुष का बचाव नहीं हो सकता। अस्त्र-विशारद अर्जुन और बाहुबल-शाली भीमसेन जिस पक्ष के योद्धा हैं, जगत्प्रसिद्ध गाण्डीव जिनका धनुष है उनके लिए संसार में असाध्य कुछ नहीं। पहले दुर्योधन के पैदा होते ही मैंने आपसे जो कहा था उसे उसी समय कर १० डालना अच्छा था। मैंने उसका त्याग करने के लिए कहा था; किन्तु आपने वह नहीं किया। इस समय भी मैंने आपको यह हित का उपदेश किया है। इसके अनुसार काम करने से अन्त

को किसी तरह का सन्ताप होने की आशङ्का नहीं है। जो आपका पुत्र सन्तुष्ट होकर, पाण्डवों से मिलकर, एक साथ राज्यभोग करने में सहमत हो तो आपके लिए सब तरह मङ्गल है; नहीं तो उसे क़ैद करके कुरुवंश का भला कीजिए। दुर्योधन को क़ैद करके पाण्डवों को राज्य देने से अवश्य ही सन्तुष्ट होकर युधिष्ठिर धर्म के अनुसार पृथ्वी का शासन करेंगे। ऐसा होने से सब नरेश वैश्यों की तरह अनुगत होकर हमको मानेंगे। इसलिए दुर्योधन, कर्ण और शकुनि पाण्डवों की शरण में जायँ। दुःशासन, अपने कुकर्म के प्रायश्चित्त के तौर पर, भरी सभा में द्रौपदी और भीमसेन से क्षमा की प्रार्थना करे। आप सान्त्वना देकर युधिष्ठिर का राज्याभिषेक कीजिए। मुझको जो कहना था सो कह चुका। अब आप इसके अनुसार काम करके एक साथ मनोरथ की सिद्धि और मङ्गल प्राप्त कीजिए।

धृतराष्ट्र ने कहा—विदुर, तुमने जब सभा में हम दोनों के सामने ऐसा कहा था तब तुम्हारा कहना पाण्डवों के लिए हितकर और हमारे लिए अनिष्टकारी मुझे नहीं जान पड़ा था; किन्तु आज मैं निश्चित रूप से समझ गया कि तुम पाण्डवों का बड़ा पक्ष करते हो। हमारे भले की इच्छा पर तुम्हारा तनिक भी लक्ष्य नहीं। जो हो, धर्म के अनुसार पाण्डव मेरे पुत्र हैं सही; किन्तु दुर्योधन मेरे शरीर से उत्पन्न हुआ है। इस कारण पाण्डवों के उपकार के लिए मैं अपने सगे बेटे को किस तरह छोड़ सकता हूँ? हे विदुर, दूसरों के लिए शरीर-त्याग का उपदेश करना समदर्शी का काम नहीं। मैं तुम्हारा यथोचित सम्मान करता हूँ किन्तु तुम मुझे बुरी सलाह देकर स्पष्ट रूप से मेरे अनिष्ट का उपाय करते हो। इस कारण तुम चाहे यहाँ रहो, चाहे और कहीं चले जाओ; उससे मैं अपनी कुछ हानि नहीं समझता। हज़ार उपाय करने पर भी बुरे चलन की स्त्री स्वामी के अधीन नहीं रहती। २०

धृतराष्ट्र यों कहकर एकाएक उठकर रनिवास को चले गये। विदुरजी भी यह सोचते हुए कि यह घराना अब चौपट होने को है, पाण्डवों के समीप चल दिये। २२

पाण्डवों से मिलने के लिए विदुर का काम्यक वन में पहुँचना।—पृ० ७०१

पाँचवाँ अध्याय

विदुर का निर्वासन और उनकी पाण्डवों से भेंट

वैशम्पायन कहते हैं—पाण्डव लोग काम्यक वन को जाने के लिए अनुचरों के साथ गङ्गा-तट से चलकर कुरुक्षेत्र में पहुँचे। यमुना, सरस्वती और दृषद्वती नाम की नदियों में नहा करके, पश्चिमाभिमुख हो, वे एक वन से दूसरे वन में पहुँचने लगे। इस तरह लगातार वनों को लाँघते हुए वे सरस्वती के तट पर स्थित मरुस्थली में पहुँचे। वहाँ पर उन्होंने काम्यक वन को देखा जिसमें मुनियों की बस्ती थी। इसके बाद मृगों और पक्षियों से भरे हुए उस रमणीय वन में रहने का स्थान ठीक करके पाण्डव वहीं रहने लगे। मुनि लोग उनको सान्त्वना देने लगे।

इसी समय लगातार पाण्डवों से मिलने की इच्छा रखनेवाले विदुरजी, फुर्तीले घोड़े जिसमें जुते हुए थे उस, रथ पर चढ़कर समृद्धियुक्त काम्यक वन में पहुँचे। उन्होंने वहाँ पहुँचकर देखा कि द्रौपदी, भाइयों और ब्राह्मणों के बीच में धर्मराज बैठे हुए हैं। सत्यसन्ध युधिष्ठिर ने दूर से ही विदुर को देखकर भीमसेन से कहा—भैया, न-जाने विदुरजी यहाँ आकर हमसे क्या कहेंगे। ये क्या शकुनि के कहने से फिर हमें जुआ खेलने को बुलाने आ रहे हैं? दुरात्मा शकुनि क्या हमारे अस्त्र-शस्त्रों को भी जीत लेगा? मुझे वे बुलावेंगे तो मैं अवश्य जाऊँगा। जो हो, यदि गाण्डीव धनुष हमारे हाथ से निकल गया तो राज्य की प्राप्ति हमारे लिए असम्भव हो जायगी।

वैशम्पायन कहते हैं—अब पाण्डव लोग आदर का भाव दिखाते हुए उठ खड़े हुए। स्वागत-सम्भाषण आदि के द्वारा उन्होंने विदुर का यथोचित सम्मान किया और उन्हें सुन्दर आसन पर बिठाया। युधिष्ठिर ने जब विदुर से उनके आने का कारण पूछा तब वे विस्तार के साथ धृतराष्ट्र का वृत्तान्त कहने लगे। १०

विदुर ने कहा—हे युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र ने एकान्त में बुलाकर मुझसे ख़ुशामद करते हुए कहा कि हे विदुर, जो होना था सो हो गया। बतलाओ, अब क्या किया जाय जिसमें भला हो। मैंने उन्हें उनके और सब कौरवों के हित की अच्छी सलाह दी, किन्तु मेरे उपदेश के वाक्य उन्हें बिलकुल ही नहीं रुचे। मैं भी कोई दूसरा बढ़िया उपाय नहीं सोच सका। जो मैंने कहा था उसके अनुसार काम करने से अवश्य ही उनका भला होता; किन्तु जैसे रोगी को अन्न नहीं अच्छा लगता वैसे ही मेरा हितकर सत् उपदेश उन्हें पसन्द नहीं आया। हे युधिष्ठिर, श्रोत्रिय ब्राह्मण के घर रहनेवाली बुरे चरित्र की स्त्री जैसे कुल के लिए कलङ्करूप होती है वैसे ही अम्बिका के पुत्र धृतराष्ट्र भरतवंश के नाश का कारण होंगे। नवयुवती स्त्री जैसे बूढ़े पति की चाह नहीं करती वैसे ही मेरे वचनों पर धृतराष्ट्र को श्रद्धा नहीं हुई। कमल के पत्ते पर पड़े हुए जलबिन्दु की तरह मेरे उपदेश के वचन धृतराष्ट्र के हृदय में नहीं ठहरे; इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि यह

भरतवंश बहुत जल्द निर्मूल हो जायगा। मेरे उपदेश के अनुसार काम करना तो दूर रहा, धृतराष्ट्र ने 'दूर हो' कहकर मुझे अपने यहाँ से निकाल दिया है। उन्होंने कहा—मैं पृथ्वी के शासन या प्रजा के पालन के बारे में अब तुम्हारी सलाह नहीं सुनूँगा। हे युधिष्ठिर, मुझे धृतराष्ट्र ने त्याग दिया है; अब मैं तुम्हें श्रेष्ठ हितकर उपदेश देने आया हूँ। तुमसे सभा के बीच में पहले जो कहा था वही फिर कहता हूँ। एकाग्र होकर सुनो और उसे याद रक्खो। हे पाण्डव, जो पुरुष शत्रुओं के दिये हुए दु:सह क्लेशों को चुपचाप सहकर क्षमा का सहारा लिये अनुकूल समय की बाट जोहता है वह आगे चलकर अवश्य ही पृथ्वीमण्डल का एकाधिपत्य पा सकता है। सम्पत्ति के समय जो अपने सहायकों के साथ समान रूप से सम्पत्ति का भोग करता है उसे विपत्ति के समय सब क्लेश अकेले नहीं सहने पड़ते। सहायक पाने का यही उपाय है। और सहायक मिल गया तो सब कुछ मिल गया। इसलिए सहायकों को समान रूप से सम्पत्ति बाँटकर उसका उपभोग करना ही अच्छा है। उनके आगे अपने मुँह अपनी बड़ाई न करनी चाहिए। ऐसा व्यवहार करने से राजाओं की वृद्धि होती है। २०

युधिष्ठिर ने कहा—विदुरजी, मैं यत्न और परिश्रम के साथ आपका कहा करूँगा। इस समय देश-काल के अनुकूल जो कुछ उत्तम उपदेश आप देना चाहें वह दें। मैं उसे मानने और करने को तैयार हूँ। २२

छठा अध्याय

विदुर के वियोग में धृतराष्ट्र का विलाप और विदुर को फिर बुलवाना

वैशम्पायन कहते हैं—महामति विदुर जब पाण्डवों के आश्रम को चले गये तब प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्र पछतावा करने लगे। सन्धि (मेल) और विग्रह (युद्ध) आदि राजनीति के बारे में विदुर की अद्भुत जानकारी और क्षमता का हाल समझकर वे मन ही मन सोचने लगे कि पाण्डव लोग विदुर की सहायता से अवश्य ही बढ़ेंगे। विदुर के वियोग से अत्यन्त अधीर होकर महाराज धृतराष्ट्र सभा के द्वार पर आये। वहाँ राजाओं के सामने वे एकाएक अचेत होकर गिर पड़े। कुछ देर बाद होश आने पर वे उठ बैठे। सञ्जय को अपने पास पाकर धृतराष्ट्र कहने लगे—हे सञ्जय, इस समय शरीरधारी धर्म के समान अपने भाई विदुर की याद करके मेरा हृदय बहुत ही व्याकुल हो रहा है। उनके वियोग से मेरी छाती फटी जा रही है। अतएव तुम मेरे भाई धर्म के ज्ञाता विदुर को तुरन्त यहाँ ले आओ। करुण स्वर से विलाप करते-करते बारम्बार विदुर को स्मरण करके वे और भी सन्तप्त हुए। भाई के स्नेह के मारे वे

फिर सञ्जय से बोले—हे सञ्जय, तुम झटपट जाकर ख़बर लो कि विदुर जीते हैं या नहीं। मैं बड़ा पापी हूँ। मैंने क्रोध के वश होकर अपने प्यारे छोटे भाई विदुर को त्याग दिया। बड़े बुद्धिमान् विदुर ने कभी तनिक सा मेरा अपकार नहीं किया; किन्तु मैं ऐसा निठुर हूँ कि विना किसी अपराध के मैंने वैसे भाई को निकाल दिया। हे सञ्जय, तुम तुरन्त विदुर को यहाँ ले आओ; नहीं तो मैं अपने प्राण दे दूँगा। १०

'जो आज्ञा' कहकर सञ्जय उसी घड़ी काम्यक वन को चल दिये। झटपट पाण्डवों के आश्रम में पहुँचकर उन्होंने देखा कि रुरु-चर्मधारी युधिष्ठिर, देवताओं की मण्डली में इन्द्र के समान, विदुर-समेत हज़ारों ब्राह्मणों और चारों भाइयों के बीच में शोभायमान हैं। सञ्जय ने पहले युधिष्ठिर को प्रणाम किया। फिर भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव को यथोचित रूप से प्रणाम करके वे आसन पर बैठ गये। उन्हें सुखपूर्वक बैठे देखकर युधिष्ठिर ने कुशल-प्रश्न किया और उनसे आने का कारण पूछा।
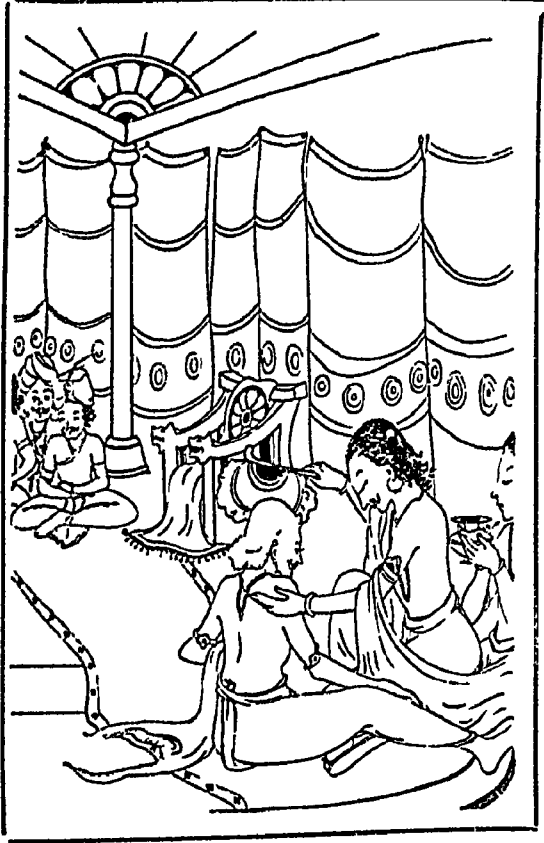
सञ्जय ने विदुर को सम्बोधन करके अपने आने का कारण यों कहा—विदुरजी, राजा धृतराष्ट्र ने आपको याद किया है। इसलिए उन महाराज की आज्ञा के अनुसार आप, पाण्डवों से विदा होकर, शीघ्र उन्हें दर्शन दीजिए और उनके प्राणों की रक्षा कीजिए।

वैशम्पायन कहते हैं—स्वजन-वत्सल बुद्धिमान् विदुर सञ्जय के कहने के अनुसार, धर्मराज की अनुमति लेकर, फिर हस्तिनापुर गये। महातेजस्वी धृतराष्ट्र ने विदुर को आया हुआ जान-

कर कहा—हे निष्पाप, मेरा बड़ा सौभाग्य है जो तुम मुझे याद करके फिर हस्तिनापुर में आ गये। हे भरतश्रेष्ठ, तुम्हारे विरह में दिन-रात जागने से मन में मुझे अपनी विचित्र मूर्त्ति देख २० पड़ती है। अब धृतराष्ट्र ने विदुर को अपनी गोद में उठा लिया। फिर उनका माथा सूँघकर वे कहने लगे—हे निष्पाप, मुझे क्षमा करो। मैंने जो तुम्हें कटु वचन कहे हैं उनको भूल जाओ।

विदुर ने कहा—राजन्, मैं तो क्षमा कर ही चुका। आप मेरे परम गुरु हैं। आपको देखने के लिए ही मैं जल्दी से आपके पास आ गया हूँ। हे नरश्रेष्ठ, पाण्डव और कौरव दोनों मेरे लिए बराबर हैं; किन्तु आज पाण्डव मुझे दीन दशा में देख पड़ते हैं। इसलिए उन पर दया करना उचित है; क्योंकि धर्मपरायण व्यक्तिमात्र दीनों पर दया किया करते हैं।

वैशम्पायन कहते हैं—इस प्रकार परस्पर विनय प्रकाश करके धृतराष्ट्र और विदुर दोनों २५ भाइयों को परम आनन्द हुआ।

सातवाँ अध्याय

दुर्योधन, शकुनि और कर्ण की सलाह। पाण्डवों को मारने के लिए इनका जाना

वैशम्पायन कहते हैं—विदुर के लौट आने की और धृतराष्ट्र के द्वारा विदुर को सान्त्वना मिलने की ख़बर पाकर दुर्बुद्धि दुर्योधन को बड़ा सन्ताप हुआ। अज्ञान के अँधेरे में अन्धा हो रहा दुर्योधन शकुनि, कर्ण और दुःशासन को बुलाकर उनसे कहने लगा—देखो, राजा धृतराष्ट्र के बुद्धिमान् मन्त्री विदुर फिर आ गये। ये पाण्डवों के सुहृद् और हितचिन्तक हैं। इसलिए विदुर जब तक पिताजी को पाण्डवों को फिर बुलाने की सलाह नहीं देते तब तक, उससे पहले ही, तुम मेरी भलाई का उपाय करो। यदि पाण्डव किसी तरह फिर आ गये तो मैं फिर दुर्बल और उदास हो जाऊँगा। मैं खाना-पीना छोड़ दूँगा। तब मैं विष पीकर, फाँसी लगा-कर या आग में जलकर जान भले दे दूँगा, किन्तु पाण्डवों की समृद्धि को देख न सकूँगा।

शकुनि ने कहा—महाराज, आप किसलिए मूढ़ पुरुष की तरह चिन्ता कर रहे हैं? पाण्डव तो समय की अवधि करके वन को गये हैं। इसलिए आप जैसा सोच रहे हैं वैसा होना असम्भव है। हे भरतश्रेष्ठ, पाँचों पाण्डव सत्यपरायण हैं। सत्य को छोड़कर वे कभी धृतराष्ट्र की बात न मानेंगे; अथवा यदि वे धृतराष्ट्र के अनुरोध से सत्य को छोड़कर लौट भी आवेंगे तो हम एकमत होकर धृतराष्ट्र को प्रसन्न रखते हुए सदा सावधानी के साथ पाण्डवों १० के दोष ढूँढ़ा करेंगे।

शकुनि के वाक्य सुनकर दुःशासन ने कहा—मामाजी, आप जिस समय जो कहते हैं वही मुझे ठीक जान पड़ता है।

कर्ण ने कहा—राजन्, हम लोग एकमत होकर सदा आपका हित सोचा करते हैं। धीर-प्रकृति पाण्डव अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर कभी न लौटेंगे। और यदि मोह से अन्धे होकर लौट आवेंगे तो फिर उन्हें जुए में हरा देने से काम चल जायगा।

वैशम्पायन कहते हैं—कर्ण की बात सुनकर दुर्योधन कुछ बहुत प्रसन्न नहीं हुआ। उसे यों विमुख होते देख कर्ण को बड़ा ही क्रोध आया। तब उसने आँखें लाल करके क्रोध के स्वर में दुःशासन, शकुनि और दुर्योधन को सम्बोधन करके कहा—हे नरपतियो, मेरी (दूसरी) सलाह सुनिए। राजा का प्रिय करना अनुचर का प्रधान कर्त्तव्य है। हम लोग दुर्योधन का हित करना चाहते तो हैं किन्तु राजा धृतराष्ट्र हम लोगों को रोके हुए हैं। इसलिए चलो, सब लोग अस्त्र-शस्त्र लेकर रथों पर चढ़कर वनवासी पाण्डवों को एक साथ मारकर सब झगड़ा निपटा दें। पाण्डवों के नष्ट होने पर धृतराष्ट्र के पुत्रों को और हमको कुछ भी डर न रह जायगा। जब तक पाण्डव लोग व्यथितचित्त, शोक से व्याकुल और सहायहीन होकर वन में हैं उससे पहले ही हमें यह चेष्टा करनी चाहिए। कर्ण की यह बात सुनकर शकुनि आदि सब लोग उसकी बड़ाई करने लगे। २० वे बहुत जल्द अस्त्र-शस्त्र लेकर, रथों पर चढ़कर, पाण्डवों को मारने के लिए चले।
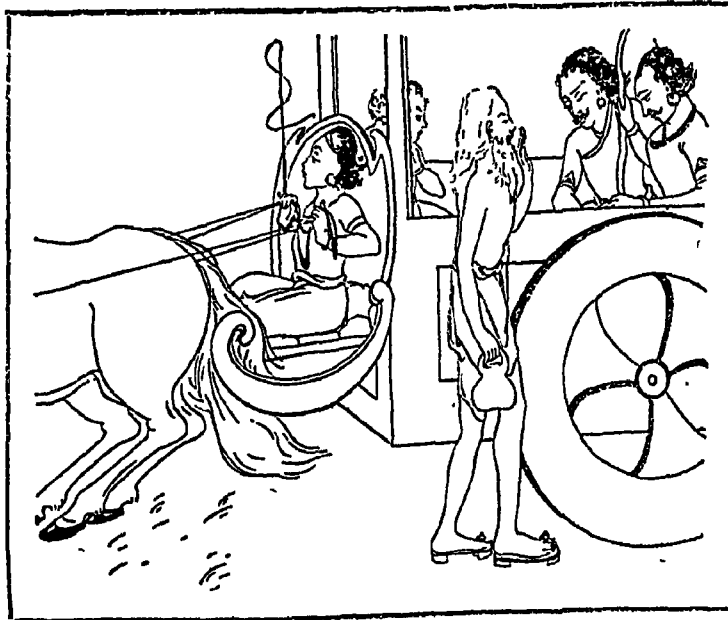
उन्हें पाण्डवों को मारने के लिए जाते देखकर लोकपूजित भगवान् वेदव्यास ने, दिव्य दृष्टि से अच्छी तरह सब देख-भालकर, रास्ते से ही उन्हें लौटा दिया। इसके प्रज्ञाचक्षु के पास जाकर उनसे बोले। २४

आठवाँ अध्याय

व्यासजी का उपदेश

व्यासजी ने कहा—धृतराष्ट्र, मैं सब कौरवों की भलाई के लिए तुमसे जो कहता हूँ सो एकाग्र होकर सुनो। दुर्योधन आदि तुम्हारे पुत्रों ने भयङ्कर छल करके पाण्डवों को वनवास दिया है, यह सुनकर मैं अत्यन्त दु:खित हुआ हूँ। हे भरतश्रेष्ठ, पाण्डव लोग वनवास में रहकर जो क्लेश सह रहे हैं वह निस्सन्देह उन्हें याद रहेगा। तेरह वर्ष पूरे होने पर वे बदला चुकाने का उपाय करेंगे। अत्यन्त कुबुद्धि पापी दुर्योधन ऐश्वर्य के लोभ से बहुत ही उतावला होकर सदा पाण्डवों के नाश की चेष्टा किया करता है। अतएव जो तुम पुत्र का भला चाहते हो तो दुर्बुद्धि दुर्योधन को इस बुरी चेष्टा से रोको। वनवासी पाण्डवों को मारने जाकर वह आप ही अपने प्राण खो बैठेगा। महाराज! महाप्राज्ञ विदुर, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि हम लोगों के समान तुम भी सज्जन पुरुष हो। हे महाप्राज्ञ, घर के आत्मीय लोगों में वैर-विरोध बहुत ही निन्दनीय है। अतएव उस अधर्मयुक्त, बदनामी के काम में हाथ न लगाना। हे कौरव, पाण्डवों के प्रति इस दुर्योधन की जिस प्रकार की बुद्धि है वह छोड़ देनी चाहिए नहीं तो बड़ा भारी अनर्थ हो जावेगा। मेरी सलाह है कि तुम्हारा दुराचारी पुत्र असहाय होकर पाण्डवों के साथ वन को जावे। यदि पास रहने के कारण पाण्डवों के लिए उसके हृदय में स्नेह उत्पन्न हो जाय तो तुम्हें अपने काम में सफलता प्राप्त हो सकती है, अर्थात् तुम्हारे पुत्रों का भला हो
१० सकता है। अथवा जिसका जो स्वभाव होता है वह मरने पर भी नहीं जाता। इसलिए वैसा होने की सम्भावना कहाँ है? जो हो, भीष्म, द्रोण, विदुर और तुम इस बारे में क्या सोचते हो? तुम लोगों की क्या सम्मति है? जिससे अन्त में कुछ अनिष्ट न हो वैसा उचित
१२ उपाय करना हम सबका कर्त्तव्य है।

नवाँ अध्याय

इन्द्र और कामधेनु का संवाद

धृतराष्ट्र ने कहा—भगवन्, द्यूतक्रीड़ा के लिए मेरी बिलकुल इच्छा न थी। होनहार से मोहित होकर ही मैंने उसका अनुमोदन कर दिया था। भीष्म, द्रोण, विदुर और गान्धारी ने भी उसका विरोध किया था। उसमें प्रवृत्त होने का कारण केवल मोह था। विशेष रूप से जानकर भी पुत्र-स्नेह के कारण मैं निर्बोध दुर्योधन को छोड़ नहीं सकता। व्यासजी ने कहा—महाराज, तुम जो कहते हो, सब सच है। संसार में पुत्र सबसे बढ़कर पदार्थ है। मैं यहाँ इन्द्र और कामधेनु के संवाद का अपूर्व उपाख्यान कहता हूँ—सुनो।

काम्यक वन में पाण्डवों से मिलने के बाद विदुर का धृतराष्ट्र के पास लौटना—पृ ७०३

इन्द्र और कामधेनु-संवाद—पृ० ७०७

एक समय गायों की माता कामधेनु सुरभि देवलोक में रो रही थी। यह देखकर इन्द्र को दया आई। उन्होंने पूछा—हे कल्याणी, तुम किसलिए रोती हो? देवताओं का तो कुछ अमङ्गल नहीं हुआ? मनुष्यलोक या नागलोक में तो कुछ अनिष्ट नहीं हुआ?

सुरभि ने कहा—हे इन्द्र, कहीं पर तुम्हारे लिए अमङ्गल नहीं देख पड़ता। मैं तो पुत्र-शोक से खिन्न होकर रो रही हूँ। वह देखो, दुरात्मा लोग मेरे क्षुद्र, दुर्बल पुत्रों को हल में जोतकर, कोड़े मार-मारकर, बहुत कष्ट दे रहे हैं। मेरे पुत्र व्याकुल होकर बारम्बार बैठ-बैठ जाते हैं तो पीटे जाते हैं। यह सब देखकर मुझे अत्यन्त करुणा आई है। मेरा मन बहुत ही उद्विग्न हो रहा है। इन दोनों मेरे पुत्रों में एक बलवान् है, इसी कारण अधिक बोझ लाद सकता है। दूसरा दुबला, कमज़ोर है। उसके शरीर में हड्डियाँ ही हड्डियाँ देख पड़ती हैं। इसी कारण वह अधिक बोझ नहीं लाद सकता। हे इन्द्र! देखो, बार-बार चाबुक की मार खाकर भी वह अधिक परिश्रम नहीं कर सकता। इस कारण मैं अत्यन्त दुःखित और शोकाकुल होकर आँसू बहाती हुई करुण स्वर से रो रही हूँ। १०

इन्द्र ने कहा—हे शोभने, तुम्हारे हज़ारों पुत्र पीड़ित हो रहे हैं; फिर तुम केवल एक को ही इस तरह मृतप्राय देखकर दुःखित क्यों हो रही हो?

सुरभि ने कहा—इन्द्र, मेरे हज़ारों बेटे हैं और उन पर मेरा स्नेह भी समान है; परन्तु जो पुत्र साधु अर्थात् परोपकारी है उसे दीन देखकर मेरे हृदय में अत्यन्त करुणा होती है।

व्यासजी कहते हैं—सुरभि के ये वचन सुनकर इन्द्र को बड़ा अचरज हुआ। उन्होंने समझ लिया कि संसार में पुत्र प्राणों से भी बढ़कर प्यारा होता है। इसके बाद उस किसान के उक्त निष्ठुर कार्य में विघ्न डालने के लिए इन्द्र ने लगातार मूसलाधार वर्षा की। हे धृतराष्ट्र, सुरभि के कथनानुसार तुम भी उसी तरह समदृष्टि रखकर हीन और दुर्बल पुत्रों पर सबसे अधिक कृपा दिखाओ। पाण्डु, तुम और महाबुद्धिमान् विदुर, सभी मेरे लिए समान स्नेह के पात्र हैं। २० तुम्हारे तो एक सौ एक पुत्र हैं; किन्तु पाण्डु के पाँच ही पुत्र हैं। उस पर भी वे (पाण्डव) अत्यन्त दुःखित और असहाय हो रहे हैं। उनकी हीन दशा देखकर दिन-रात, इसी चिन्ता से, मेरा हृदय सन्तप्त हो रहा है कि किस तरह वे जीवित रहेंगे और किस उपाय से उनकी उन्नति होगी। राजन्, यदि तुम कौरवों को जीवित रखना चाहते हो तो दुर्योधन को पाण्डवों से मिलाप करने के लिए आज्ञा दो। २३

दसवाँ अध्याय

मैत्रेयजी का आकर उपदेश करना और दुर्योधन को शाप देना

धृतराष्ट्र ने कहा—हे महाप्राज्ञ, आपने जो कहा उसका मतलब मैं और ये सब नरेश अच्छी तरह समझ गये। आपने जो कौरवों के लिए भलाई की बात समझी है वही भीष्म, द्रोण और विदुर भी मुझसे कहा करते हैं। अतएव यदि मुझ पर और सब कौरवों पर आपकी दया-दृष्टि हो तो मेरे दुष्ट पुत्र दुर्योधन को आप समझाइए।

व्यासजी ने कहा—हे कौरव, भगवान् मैत्रेय ऋषि पाण्डवों का पता लगाकर हम लोगों को देखने आ रहे हैं। वही तुम्हारे पुत्र दुर्योधन को कुरुकुल की भलाई के लिए उचित उपदेश करेंगे। हे अम्बिका के पुत्र, वे जो उपदेश करें वही तुम सब शङ्का छोड़कर करना; नहीं तो जो कहीं ऋषि क्रोध करेंगे तो तुम्हारे पुत्रों को शाप दे देंगे।

वैशम्पायन कहते हैं—अब व्यासदेव चले गये और मैत्रेयजी ने आकर दर्शन दिये। महाराज धृतराष्ट्र ने पुत्रों-सहित उठकर आगे जाकर उन्हें लिया और फिर पाद्य-अर्घ आदि देकर महर्षि की विधि से पूजा की। इसके बाद थकन मिटाकर जब मैत्रेयजी सुख से आसन पर बैठे तब धृतराष्ट्र ने विनयपूर्वक पूछा—भगवन्, कुरुजाङ्गल से यहाँ आते समय आपको कुछ क्लेश तो नहीं हुआ? महावीर पाण्डव कुशल से हैं न? वे अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर रहना चाहते हैं न? कौरवों का भ्रातृस्नेह तो नष्ट न होगा? १०

मैत्रेयजी ने कहा—महाराज, मैं तीर्थयात्रा करता हुआ कुरुजाङ्गल देश में पहुँचा। वहाँ काम्यक वन में धर्मराज से भेंट हो गई। इसी समय जटा और मृगछाला धारण किये, तपोवन-वासी महात्मा धर्मराज को देखने के लिए बहुत से तपस्वी वहाँ पर आ गये। महाराज, वहाँ की बातचीत सुनकर मुझे तुम्हारे पुत्रों के द्यूतसम्बन्धी घोर अन्याय का हाल मालूम हुआ। उसी को सुनकर, कौरवों की भलाई के लिए, मैं तुम्हारे पास आया हूँ; क्योंकि मैं तुम पर अत्यन्त स्नेह और प्रीति रखता हूँ। तुम्हारे और भीष्म के जीते रहते कौरव लोग हाथ से बाहर होकर परस्पर विरोध करने में प्रवृत्त हों, यह बिलकुल बेजा है। महाराज, तुम सन्धि-विग्रह में स्वयं अद्वितीय हो। फिर किसलिए उनके इस घोर अनुचित आचरण को देखकर भी लापरवाही कर रहे हो? हे कुरुनन्दन, सभा के बीच में जो डाकुओं का सा निन्दनीय आचरण हुआ है उससे तपस्वियों की मण्डली में तुम्हारी बड़ाई नहीं हो सकती।

वैशम्पायन कहते हैं कि इसके बाद भगवान् मैत्रेयजी ने सम्मुख होकर मधुर वाणी से दुर्योधन से कहा—हे महाबाहो, मैं तुम्हारे भले के लिए जो कहता हूँ सो सुनो। तुम पाण्डवों के अनिष्ट की चेष्टा मत करो। पाण्डवों के, अपने और संसार के सभी लोगों के भले में तत्पर होकर

कर्त्तव्य का पालन करो। मनुष्यश्रेष्ठ पाण्डव लोग महाबली, महापराक्रमी, युद्ध-कुशल और सत्यप्रतिज्ञ हैं; उनके शरीर वज्र के समान दृढ़ हैं; उन्हें अपने पौरुष का अभिमान है। उन्होंने हिडिम्ब, बक, किर्मीर आदि कामचारी देवशत्रु राक्षसों को मारा है। एक दिन, रात के समय, महात्मा पाण्डवों को देखकर निशाचर किर्मीर पहाड़ की तरह अचल भाव से उनकी राह रोककर खड़ा हो गया। समर में बड़ाई पानेवाले, श्रेष्ठ बली भीमसेन ने—बाघ जैसे साधारण पशु को मार डालता है वैसे—खेलते-खेलते उस निशाचर को मार डाला। इसके सिवा उन्हीं भीमसेन ने दिग्विजय के लिए निकलकर हज़ार हाथियों का बल रखनेवाले जरासन्ध को बाहु-युद्ध में मारा है। वासुदेव कृष्णचन्द्र पाण्डवों के परम मित्र हैं और राजा द्रुपद के पुत्र उनके साले हैं। इसलिए बुढ़ापे और मरण के वशवर्त्ती मनुष्यों में कौन ऐसा साहसी और बलवान् है जो पाण्डवों से युद्ध करने की लालसा करे? राजन्, मेरी बात मानकर झटपट पाण्डवों से मेल कर लो। वैर-विरोध मत बढ़ाओ। २०

महर्षि मैत्रेय यों कहकर चुप हो गये। दुर्बुद्धि दुर्योधन, हाथी की सूँड़ सी, अपनी जाँघ पर हाथ मारकर मुसकाता हुआ पैर के अँगूठे से पृथ्वी खोदने लगा। वह कुछ भी न कहकर सिर झुकाये बैठा रहा। उसकी यह लापरवाही देखकर मैत्रेयजी बहुत ही कुपित हो गये। भावीवश क्रोध से लाल नेत्र करके उन्होंने हाथ में जल लेकर शाप देते हुए कहा—रे दुष्ट, तूने अभिमान से अन्धे होकर मेरा अपमान किया है, मेरी बात नहीं मानी है। इस कारण तू शीघ्र ही इसका फल पावेगा। इस द्रोह के कारण पाण्डवों के साथ जो तेरा युद्ध होगा उसमें महाबाहु भीमसेन गदा के प्रहार से तेरी इस जाँघ को तोड़ेंगे। ३०

मैत्रेयजी के यों कहने पर राजा धृतराष्ट्र, शाप से बचने के लिए, अनुनय-विनय करके महर्षि को मनाने की चेष्टा करने लगे।

मैत्रेयजी ने कहा—राजन्, तुम्हारा पुत्र यदि इस वैर को शान्त करने की चेष्टा करेगा तो इस शाप से बच जायगा; जो यह न करेगा तो मेरा कहा कभी झूठ न होगा।

वैशम्पायन कहते हैं, तब बहुत ही घबराकर धृतराष्ट्र ने पूछा—हे ऋषिश्रेष्ठ, भीमसेन ने किस तरह किर्मीर राक्षस को मारा?

मैत्रेयजी ने कहा—तुमको अच्छा नहीं मालूम पड़ता और तुम्हारा पुत्र सुनना नहीं चाहता; इससे मैं नहीं कहूँगा। मेरे जाने पर ये विदुर किर्मीर के मारे जाने का सब वृत्तान्त कहेंगे। बस, महर्षि मैत्रेय चले गये। भीमसेन के हाथों किर्मीर के मरने की खबर पाकर बहुत ही घबराया हुआ दुर्योधन वहाँ से उठकर चल दिया। ३९

आवश्यक सूचनायें

(१) हमने प्रथम खण्ड की समाप्ति पर इसके साथ एक महाभारत-कालीन भारतवर्ष का प्रामाणिक सुन्दर मानचित्र भी देने की सूचना दी थी। इस सम्बन्ध में हम ग्राहकों को सूचित करते हैं कि पूरा महाभारत समाप्त हो जाने पर हम प्रत्येक ग्राहक को एक परिशिष्ट भाग बिना मूल्य भेजेंगे जिसमें महाभारत-सम्बन्धी महत्त्व-पूर्ण खोज, साहित्यिक आलोचना, चरित्र-चित्रण तथा विश्लेषण आदि रहेगा। इसी परिशिष्ट के साथ ही मानचित्र भी लगा रहेगा जिसमें पाठकों को मानचित्र देख कर उपरोक्त बातें पढ़ने और समझने आदि में पूरी सुविधा रहे।

(२) महाभारत के प्रेमी ग्राहकों को यह शुभ समाचार सुन कर बड़ी प्रसन्नता होगी कि हमने कानपुर, उन्नाव, काशी (रामनगर), कलकत्ता, ग़ाज़ीपुर, बरेली, मथुरा (वृन्दावन) जोधपुर, बुलन्दशहर, प्रयाग और लाहौर आदि में ग्राहकों के घर पर ही महाभारत के अङ्क पहुँचाने का प्रबन्ध किया है। अब तक ग्राहकों के पास यहीं से सीधे डाक-द्वारा प्रतिमास अङ्क भेजे जाते थे जिसमें प्रति अङ्क तीन चार आना खर्च होता था पर अब हमारा नियुक्त किया हुआ एजेंट ग्राहकों के पास घर पर जाकर अङ्क पहुँचाया करेगा और अङ्क का मूल्य भी ग्राहकों से वसूल कर ठीक समय पर हमारे यहाँ भेजता रहेगा। इस व्यवस्था पर ग्राहकों को ठीक समय पर प्रत्येक अङ्क सुरक्षित रूप में मिल जाया करेगा और वे डाक, रजिस्टरी तथा मनीआर्डर इत्यादि के व्यय से बच जायँगे। इस प्रकार उन्हें प्रत्येक अङ्क केवल एक रुपया मासिक देने पर ही घर बैठे मिल जाया करेगा। यथेष्ट ग्राहक मिलने पर अन्य नगरों में भी शीघ्र ही इसी प्रकार का प्रबन्ध किया जायगा। आशा है जिन स्थानों में इस प्रकार का प्रबन्ध नहीं है, वहाँ के महाभारतप्रेमी सज्जन शीघ्र ही अधिक संख्या में ग्राहक बन कर इस अवसर से लाभ उठावेंगे। और जहाँ इस प्रकार की व्यवस्था हो चुकी है वहाँ के ग्राहकों के पास जब एजेंट अङ्क लेकर पहुँचे तो ग्राहकों को रुपया देकर अङ्क ठीक समय पर ले लेना चाहिए जिसमें उन्हें ग्राहकों के पास बार बार आने जाने का कष्ट न उठाना पड़े। यदि किसी कारण उस समय ग्राहक मूल्य देने में असमर्थ हों तो अपनी सुविधा-नुसार एजेंट के पास से जाकर अङ्क ले आने की कृपा किया करें।

(३) हम हिन्दी-भाषा-भाषी सज्जनों से एक सहायता की प्रार्थना करते हैं। वह यही कि हम जिस विराट् आयोजन में संलग्न हुए हैं आप लोग भी कृपया इस पुण्य-पर्व में सम्मिलित होकर पुण्य-सञ्चय कीजिए, अपनी राष्ट्र-भाषा हिन्दी का साहित्य-भाण्डार पूर्ण करने में सहायक हूजिए और इस प्रकार सर्वसाधारण का हित-साधन करने का उद्योग कीजिए। सिर्फ़ इतना ही करें कि अपने दस-पाँच हिन्दी-प्रेमी इष्ट-मित्रों में से कम से कम दो स्थायी ग्राहक इस वेद-तुल्य सर्वाङ्गसुन्दर महाभारत के और बना देने की कृपा करें। जिन पुस्तकालयों में हिन्दी की पहुँच हो वहाँ इसे ज़रूर मँगवावें। एक भी समर्थ व्यक्ति ऐसा न रह जाय जिसके घर यह पवित्र ग्रन्थ न पहुँचे। आप सब लोगों के इस प्रकार साहाय्य करने से ही यह कार्य्य अग्रसर होकर समाज का हितसाधन करने में समर्थ होगा।

—प्रकाशक

विषय-सूची।

वनपर्व

—:०:—

रङ्गीन चित्रों की सूची।

किर्मीर-वधपर्व

ग्यारहवाँ अध्याय

किर्मीर के मारे जाने का वर्णन

धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर, भीमसेन के साथ किर्मीर राक्षस का युद्ध किस तरह हुआ? भीमसेन ने किस तरह उसे मारा? यह वृत्तान्त सुनने की मुझे इच्छा है।

विदुर ने कहा—महाराज, अलौकिक कर्म करनेवाले भीमसेन के कामों का वर्णन प्रायः कथाओं के प्रसङ्ग में हुआ करता है। इसी तरह मैंने कथा-प्रसङ्ग में यह किर्मीर-वध-सम्बन्धी भीमसेन का काम सुना है। सुनिए—

पाण्डव लोग जुए में हारकर, इस स्थान से चलकर, तीन दिन तक दिन-रात चलते-चलते भयानक आधीरात के समय—मनुष्यों के मांस और रक्त को खाने-पीनेवाले क्रूरकर्मा राक्षसों के रहने के स्थान—काम्यक वन में पहुँचे। सब वनचारी और तापस लोग राक्षसों के डर से उस वन को दूर से ही छोड़ जाते थे। पाण्डव लोग उस वन में प्रवेश करने लगे। इसी समय उन्होंने देखा कि चमकती हुई आँखोंवाला एक राक्षस हाथ में जलती हुई लकड़ी लिये, दोनों हाथ फैलाये, राह रोके उनके सामने चला आ रहा है। उसका मुख भयानक है। उसकी लम्बी-लम्बी सफ़ेद दाढ़ें दिल दहला देनेवाली हैं। आँखें ताँबे के रङ्ग की हैं। खड़े हुए केश चमक रहे हैं। वह सूर्य की किरणों से रञ्जित, बिजली और बगलों से शोभित,

काले बादल के समान जान पड़ता है। पाण्डवों के सामने आते ही राक्षसी माया फैलाकर वह वर्षाकाल के बादलों के समान भयानक शब्द करके गरजने लगा। उसके भयानक सिंहनाद से डरकर वनवासी स्थलचर और जलचर पक्षी चें-चें करते हुए चारों ओर भागने लगे। मृग, भैंसे, शेर, रीछ आदि पशुओं के इधर-उधर भागने से ऐसा जान पड़ा मानों वह जङ्गल ही डरकर भागा जा रहा है। उसकी जाँघों की हवा से कम्पित होकर आस-पास की लताएँ कोमल अरुण-पल्लव-रूप भुजाओं द्वारा वृक्षों से लिपटने लगीं। इसी समय प्रचण्ड हवा चलने लगी; आकाशमण्डल में धूल छा गई; चारों ओर अँधेरा हो आया। पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ जिस तरह अपने शत्रु शोक के वेग १०

को नहीं जान सकतीं उसी तरह पाँचों पाण्डव उस राक्षस को नहीं जानते थे कि वह उनका परमशत्रु है। काली मृगछाला पहने हुए पाण्डवों को दूर से देखकर, मैनाक पर्वत के समान, उस राक्षस ने वन के द्वार को रोक लिया। दुःशासन का हाथ लगने से खुले हुए केशों को उसी तरह धारण किये हुए कमलनयनी द्रौपदी ने पहले कभी न देखे हुए उस राक्षस को देखकर डर से अपनी आँखें बन्द कर लीं। पाँच पर्वतों के बीच में स्थित नदी की तरह वह पाँचों पाण्डवों के बीच में होकर व्याकुल हो उठी। द्रौपदी को अचेत सी देखकर, जैसे विषयासक्त इन्द्रियाँ रति को ग्रहण करती हैं वैसे, पाण्डवों ने पकड़ लिया।

अब धौम्य ऋषि ने राक्षसों को नष्ट करनेवाले बहुत से मन्त्र पढ़कर घोर राक्षसी माया को नष्ट कर दिया। माया के नष्ट होने पर महाबली, कामरूपी, क्रूर किर्मीर राक्षस, क्रोध से २० आँखें फाड़कर, यमराज की तरह देख पड़ा। दूरदर्शी युधिष्ठिर ने उससे कहा—तुम कौन और किसके पुत्र हो? तुम हमसे क्या चाहते हो? कहो।

राक्षस ने कहा—मैं बकासुर का भाई हूँ। मेरा नाम किर्मीर है। मैं नित्य युद्ध में जीते हुए लोगों को भक्षण करके सुख से इस काम्यक वन में रहता हूँ। तुम कौन हो? यहाँ आकर तुम मेरा आहार हो चुके। मैं तुमको युद्ध में हराकर आनन्द के साथ सबका मांस खाऊँगा।

वैशम्पायन कहते हैं कि दुरात्मा किर्मीर के ये वचन सुनकर धर्मराज उसे अपना गोत्र-नाम आदि बताने लगे कि मैं पाण्डु का पुत्र धर्मराज युधिष्ठिर हूँ। शायद तुमने मेरा नाम सुना होगा। इस समय राज्य छिन जाने से वनवास का विचार करके मैं तुम्हारे निवासस्थान इस घोर वन में आया हूँ। यह सुनकर किर्मीर ने कहा—सौभाग्यवश देवताओं ने आज मेरा बहुत दिनों का मनोरथ पूरा करने के लिए तुम लोगों को यहाँ भेज दिया है। भीमसेन को मारने के लिए मैं शस्त्र लिये पृथ्वीमण्डल भर में घूम आया, पर कहीं उससे भेंट न हुई। आज मेरा कैसा सौभाग्य है कि मेरे भाई को मारनेवाला वही चिरप्रार्थित भीमसेन आप ही मेरे पास आ गया है। हे युधिष्ठिर! इसी दुरात्मा ने, ब्राह्मण का कपट-वेष धारण करके, वेत्रकीय वन में मेरे प्यारे भाई बका- ३० सुर की हत्या की है। इसमें अपने शरीर की शक्ति तनिक भी नहीं है। इसने केवल विद्या के बल से मेरे प्यारे सखा वनवासी हिडिम्ब को मारकर उसकी बहन को हर लिया है। आज अपने विचरने के समय, आधीरात को, वही दुरात्मा मुझे मिल गया है। इसे गिराकर इसके रक्त से अपने भाई और मित्र का तर्पण करके मैं उनका ऋण चुकाऊँगा। आज इस राक्षस-कुल के काँटे को हटा करके मैं अपने हृदय का सब सन्ताप दूर करूँगा। हे युधिष्ठिर, यद्यपि भीमसेन पहले बकासुर के हाथ से बच गया है, किन्तु इस समय मेरे हाथ से नहीं बच सकता। मैं अभी तुम्हारे सामने इसे मारकर खा जाऊँगा। अगस्त्य जैसे पहले महा असुर वातापि को खाकर पचा गये थे वैसे ही मैं इस महाबली भीमसेन को खाकर पचाये जाता हूँ।

सत्यप्रिय महात्मा युधिष्ठिर किर्मीर की ये बातें सुनकर बहुत ही क्रोधित हुए और उसे डाँटकर कहने लगे—रे दुरात्मा, तेरी यह इच्छा कभी पूरी न होगी। इसी समय महाबाहु भीमसेन ने एक बहुत ऊँचे और चौड़े वृक्ष को उखाड़कर उसके पत्ते नोच डाले। अर्जुन ने भी उसी दम वज्रसदृश गाण्डीव धनुष पर डोरी चढ़ा ली। महाबली भीमसेन ने अर्जुन को रोककर उस राक्षस से "ठहर जा, ठहर जा" कहा। फिर खम बजाते, हाथ से हाथ मलते, दाँतों से ओठ चबाते और क्रोध के मारे झपटते उस राक्षस के पास जाकर उन्होंने उसके मस्तक पर यमदण्ड के समान वह वृक्ष मारा। वज्रपात-सदृश उस वृक्ष की चोट से वह राक्षस तनिक भी विचलित नहीं हुआ। क्रोध से भरे हुए उस राक्षस ने प्रज्वलित वज्र के समान जलती हुई लकड़ी भीमसेन पर चलाई। महावीर भीमसेन ने खेल की तरह उस जलती हुई लकड़ी को बायें पैर से पकड़कर उसी राक्षस के ऊपर फेंक दिया। इधर भीमसेन उस राक्षस पर झपटे, ४०

उधर वह राक्षस भी अकस्मात् एक वृक्ष उखाड़कर साक्षात् यमराज की तरह भीमसेन की ओर चला। जैसे स्त्री के लिए पूर्व-समय में बाली और सुग्रीव का वृक्षयुद्ध हुआ था वैसे ही भीम और वह राक्षस दोनों युद्ध करने लगे। उन्होंने वृक्ष उखाड़-उखाड़कर उस वन को वृक्षों से ख़ाली कर दिया। जैसे मस्त हाथियों के सिर पर पड़कर कमल के पत्ते छिन्न-भिन्न हो जाते हैं वैसे ही उन दोनों वीरों के सिर पर पड़कर बड़े-बड़े वृक्षों के टुकड़े-टुकड़े हो जाते थे। सैकड़ों वृक्ष उनके सिर पर पड़कर, मूँज की तरह तार-तार होकर, उस वन में चिथड़ों की तरह इधर-उधर फैल गये। हे भरतश्रेष्ठ, राक्षसश्रेष्ठ किर्मीर और नरश्रेष्ठ भीमसेन का वृक्ष-युद्ध क्षणभर बड़े ज़ोर-शोर के साथ हुआ। फिर किर्मीर ने एक बड़ी भारी शिला ५० उठाकर भीमसेन पर चलाई। उसके लगने से भीमसेन तनिक भी विचलित नहीं हुए। तब राहु जैसे मुँह फ़ैलाकर सूर्य को ग्रसने के लिए दौड़ता है वैसे ही वह राक्षस दोनों हाथ फैलाकर भीमसेन को पकड़ने के लिए चला। जैसे दो साँड़ लड़ते हों वैसे दोनों वीर परस्पर लिपटकर और खींचकर भिड़ गये। नाख़ून और दाढ़ें ही जिनके शस्त्र हैं उन प्रचण्ड दो व्याघ्रों की तरह वे भयङ्कर युद्ध कर रहे थे। सभा में बुलाकर दुर्योधन ने जो द्रौपदी का अपमान

किया था उससे बाहुबल का अभिमान रखनेवाले भीमसेन बहुत ही कुपित थे। हाथी जैसे सूँड़ उठाकर दूसरे गजराज पर झपटता है वैसे कुपित भीमसेन ने हाथों से उस राक्षस को पकड़ लिया। राक्षस ने भी पहले से अधिक पराक्रम दिखाकर भीमसेन को पकड़ा। भीमसेन ने उसी दम उसे दूर पटक दिया। जैसे बाँस फटें वैसे ही उन दोनों वीरों के बाहुप्रहार से घोर शब्द होने लगा। तब भीमसेन ने आक्रमण करके राक्षस की कमर पकड़ ली और वे उसे इस तरह घुमाने लगे जैसे आँधी से पेड़ हिले। अब वह राक्षस भीमसेन के भयङ्कर आक्रमण से सुस्त

६० होकर काँपने और यथाशक्ति भीमसेन को खींचने लगा। भीमसेन ने जब उस राक्षस को बहुत ही सुस्त और थका हुआ पाया तब उसको भुजाओं के बन्धन में इस तरह बाँध लिया जिस तरह कोई पशु को बाँधता है। तब बहुत ही हीनबल होकर वह राक्षस फटे हुए नगाड़े का सा विकट शब्द करने लगा। भीमसेन उसे ऊपर उठाकर घुमाने लगे। इस प्रकार उस राक्षस के विवश और अचेत होने पर भीमसेन ने उस पर ऐसे हमला किया जैसे सिंह किसी हिरन पर झपटे। भीमसेन ने उसकी कमर पर घुटना रखकर दोनों हाथों से उसका गला दबा दिया। इससे उसके सब अङ्ग ढीले पड़ गये, बड़ी-बड़ी आँखें बाहर निकल आईं। तब उसे धरती पर घसीट-कर भीमसेन कहने लगे—पापी, तू हिडिम्ब और बकासुर के आँसू नहीं पोंछ सकेगा। अब तू ख़ुद यमराज के यहाँ जाने की तैयारी कर।

क्रोध से भरे हुए पुरुषश्रेष्ठ भीमसेन ने यों कहकर उस राक्षस को मार डाला। उसके कपड़े और गहने इधर-उधर गिर पड़े, वह मरते समय व्याकुल होकर छटपटाने लगा। यों प्राणहीन करके भीमसेन ने उस राक्षस को छोड़ दिया। मेघ के से रङ्गवाले उस राक्षस के मरने पर युधिष्ठिर आदि राजपुत्र भीमसेन की बड़ाई करने लगे। इसके बाद पाँचों पाण्डव द्रौपदी को आगे करके द्वैतवन की ओर चले।

विदुर कहते हैं—महाराज, धर्मराज की आज्ञा से भीमसेन ने इस प्रकार किर्मीर राक्षस को मार डाला। यों वन के निष्कण्टक होने पर हर्षित-हृदय पाण्डव लोग द्रौपदी को दिलासा देने और भीमसेन की प्रशंसा करने के उपरान्त द्वैतवन में रहने का विचार करके विघ्नशून्य मङ्गल-

७२ मय वन के भीतर घुसे। हे कौरवश्रेष्ठ, मैं जब गया था तब भीमसेन के हाथों मारे गये उस राक्षस की लाश मैंने राह में पड़ी देखी थी। वहाँ पहुँचने पर आये हुए तपस्वियों के मुँह से भी सुना कि भीमसेन ने यह अद्भुत काम किया है।

अन्धे राजा धृतराष्ट्र ने राक्षसश्रेष्ठ किर्मीर के वध का वृत्तान्त सुनकर पीड़ित की तरह

७५ सोचते हुए लम्बी साँस छोड़ी।

अर्जुनाभिगमनपर्व

बारहवाँ अध्याय

कृष्ण और अर्जुन का संवाद। द्रौपदी का कृष्ण से अपने दुःख की कहानी कहना और उनका सान्त्वना देना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, पाण्डवों के वनवास की ख़बर पाकर भोज, अन्धक और वृष्णि वंश के यादव उस महावन में पाण्डवों के पास आये। चेदि देश के नरेश धृष्टकेतु और लोकप्रसिद्ध महावीर्यशाली केकय-नरेश, दुर्योधन पर अत्यन्त कुपित होकर, पाण्डवों से मिलने के लिए उस महावन में गये। दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के पुत्रों की निन्दा और "क्या करना चाहिए ?" इस बात का आन्दोलन करते हुए सब लोग कृष्णचन्द्र को आगे करके युधिष्ठिर के पास पहुँचे और उनके चारों ओर बैठ गये।

सबके बैठ जाने पर वासुदेव ने कुरुश्रेष्ठ युधिष्ठिर को प्रणाम करके खेदपूर्ण हृदय से सबके आगे यों कहा—इसमें सन्देह नहीं कि यह पृथ्वी पापी दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासन, इन चारों दुरात्माओं का रक्त पियेगी। अनुचरों और बान्धवों-सहित इन दुराचारियों को मारकर और इनका साथ देनेवाले अन्यान्य राजाओं को हरा करके हम धर्मराज युधिष्ठिर को राजगद्दी पर बिठावेंगे। छल करनेवाले दुरात्माओं को मार डालना ही सनातनधर्म है।

यों कहते-कहते वासुदेव बहुत ही अधीर हो उठे। ऐसा जान पड़ा, मानों वे सब लोकों को जला डालेंगे। सत्यवादी, महातेजस्वी, प्रजापतियों के पति, लोकनाथ श्रीकृष्ण को अत्यन्त कुपित देखकर महावीर अर्जुन उनके पूर्व शरीर के कर्मों का वर्णन करने लगे—हे कृष्ण, तुम दस हज़ार वर्ष तक जहाँ सन्ध्या हो जाय वहीं रहने का व्रत धारण करनेवाले मुनि की तरह गन्धमादन पर्वत पर विचरते रहे हो। तुम पुष्कर तीर्थ में केवल जल पीकर ग्यारह हज़ार वर्ष तक तप करते रहे हो। हे मधुसूदन, तुम विशाल बदरिकाश्रम में केवल वायुभक्षण करके, ऊर्ध्वबाहु रहकर, एक पैर से सौ वर्ष तक खड़े रहे हो। हे कृष्ण, तुमने उत्तरीय-रहित, कृश और शिराव्याप्त-शरीर होकर सरस्वती के किनारे बारह वर्ष तक यज्ञ किया है। हे कृष्ण, तुमने नियम-पालन-पूर्वक पुण्यजनोचित प्रभास तीर्थ में जाकर, देवताओं की आयु के हज़ार वर्ष तक, एक पैर से खड़े रहकर घोर तप किया है। मैंने व्यासजी के मुँह से सुना है कि तुम लोक-सञ्चालन का एकमात्र कारण हो। हे केशव, तुम क्षेत्रज्ञ और सब तत्त्वों तथा प्राणियों के आदि भी हो, अन्त भी हो। हे कृष्ण, तुम तपस्या के आधार और नित्ययज्ञस्वरूप हो। हे अच्युत, तुमने भौम नरक को दूर करके मणिमय कुण्डलों को ग्रहण किया है और प्राथमिक पवित्र अश्व १०

की सृष्टि की है। हे सर्वलोकजित्, तुमने इन सब कामों को पूरा करने के बाद युद्ध में दुष्ट दानवों को मारकर इन्द्र को सबका ईश्वर बनाया है। हे महाबाहो, तुम शरीर धारण कर
२० मनुष्यलोक में भी प्रकट हुए हो। हे परन्तप! तुम्हीं नारायण, हरि, ब्रह्म, सोम, सूर्य, धर्म, धाता, यम, अनल, वायु, वैश्रवण, रुद्र, काल, आकाश, पृथ्वी, दस दिशा, अज, चराचर के गुरु और स्रष्टा हो। हे मधुसूदन, तुमने चैत्ररथ वन में अनेक यज्ञ करके देवताओं की पूजा की है। हे जनार्दन, तुमने यथायोग्य भाग के अनुसार हर एक यज्ञ में शत-सहस्र सुवर्ण दक्षिणा में दिये हैं। हे यादवनन्दन, तुम अदिति के गर्भ से जन्म लेकर इन्द्र के छोटे भाई विष्णु कहलाये हो। हे शत्रुदमन, तुमने बाल्यकाल में तीन पद (चरण) से स्वर्ग, आकाश और पृथ्वी को नाप लिया है। तुमने स्वर्ग और आकाश में ऊपर उठकर आदित्य-शरीर में स्थित हो अपने तेज से सूर्य को प्रकाशपूर्ण बनाया है। इस प्रकार ऐसे हज़ारों अवतारों में तुमने अधर्मी असुरों का नाश किया है। तुमने मौरव (ताँत)-पाश छिन्न करके निसुन्द और नरक नाम के असुरों का नाश किया है और प्राग्ज्योतिष जाने की राह को साफ़ कर दिया है। तुमने जारूथी नगरी में आहुति, क्राथ, सहायक राजाओं-सहित शिशुपाल, जरासन्ध, शैब्य और शतधन्वा को
३० परास्त किया है। मेघ के समान शब्द और सूर्य के समान प्रकाशवाले रथ पर चढ़कर, समर में रुक्मी को हराकर, तुमने भोजराज-कुमारी रुक्मिणी को अपनी स्त्री बनाया है। तुमने क्रोधित होकर कसेरुमान्, यवन, इन्द्रद्युम्न, सौभपति शाल्व और सौभ विमान को नष्ट किया है। तुमने इरावती नगरी में सहस्रबाहु अर्जुन के समान वीर्यशाली भोजराज, तालकेतु और गोपति को मारा है। हे जनार्दन, तुम अन्त को पवित्र भोगवती ऋषिकान्ता द्वारका पुरी-समेत समुद्र के भीतर निवास करोगे। हे दाशार्ह! कपट की कौन कहे, क्रोध, ईर्ष्या, झूठ और नीचता भी तुम्हारे पास फटकने नहीं पाती। महर्षि लोग, अपने तेज से प्रकाशमान और देवमन्दिर या हृदय-कमल में स्थित जो तुम हो उनके समीप आकर अभय की प्रार्थना करते हैं। हे मधुसूदन, तुम युग के अन्त में सब प्राणियों को क्रम करके विश्व को अपने में लीन कर लेते हो। हे वृष्णिवंशावतंस, सृष्टि के आरम्भ में सब जगत् के अधीश्वर और चराचर के गुरु ब्रह्मा तुम्हारे नाभिकमल से उत्पन्न हुए हैं। मधु और कैटभ नाम के दोनों मदान्ध असुर जब ब्रह्मा को मारने के लिए उद्यत हुए थे तब उनके इस दुर्भाव को देखकर तुम्हें क्रोध चढ़ आया था और तुमने अपने
४० ललाट से शूलपाणि त्रिलोचन शम्भु को उत्पन्न किया था। महर्षि नारद ने मुझसे कहा है कि तुम्हारे कार्यों को सिद्ध करने के लिए ब्रह्मा और शम्भु दोनों इसी तरह तुम्हारे शरीर से उत्पन्न हुए हैं। हे कृष्ण, तुमने पूर्व समय में चैत्ररथ वन में बड़ी-बड़ी दक्षिणाएँ देकर यज्ञ किये हैं। हे कमललोचन, तुमने बाल्यकाल में बलदेव की सहायता से जो अद्भुत काम किये हैं उन्हें कभी कोई मनुष्य नहीं कर सकता। तुम ब्राह्मणों के साथ कैलासभवन में रह चुके हो।

वैशम्पायन कहते हैं कि यों कहकर अर्जुन जब चुप हो रहे तब महात्मा वासुदेव ने उन्हें सम्बोधन करके कहा—हे पार्थ, तुम मेरे हो और मैं तुम्हारा हूँ। जो कुछ मेरा है उस पर तुम्हारा अधिकार है। जो लोग तुमसे शत्रुता या मित्रता रखते हैं वे मेरे भी शत्रु और मित्र हैं। तुम नर हो, मैं नारायण हूँ। हम देवकार्य के कारण नर और नारायण ऋषि के रूप से मनुष्यलोक में प्रकट हुए हैं। हममें परस्पर कुछ भी भेद नहीं है। हमारे अन्तर को भी कोई नहीं जान सकता।

महात्मा कृष्ण के यों कह चुकने पर धृष्टद्युम्न आदि भाइयों के बीच में बैठी हुई शरणार्थिनी क्रोधित द्रौपदी क्रोधाकुल वीरमण्डली के बीच में यादवों के साथ बैठे हुए कमलनयन कृष्ण से कहने लगीं—हे कृष्ण, असितदेवल ऋषि ने तुमको पहले-पहल प्रजा की सृष्टि के विषय में प्रजापति और सब लोकों की सृष्टि करनेवाला बताया है। हे मधुसूदन, जामदग्न्य ने तुमको विष्णु, यज्ञ, यजमान और यजनीय कहा है। हे पुरुषोत्तम, महर्षि लोग तुमको क्षमा और सत्य का रूप कहते हैं। कश्यप ने कहा है कि तुम सत्य से यज्ञ-रूप में अवतीर्ण हुए हो। हे भूतभावन, भूतेश! नारद ने तुमको साध्यदेव और प्रमथगणों के ईश्वर के ईश्वर कहा है। हे पुरुषसिंह, बालक जैसे खिलौनों से खेला करता है वैसे ही तुम भी ब्रह्मा, शङ्कर और इन्द्रादि देवताओं को लेकर बारम्बार क्रीड़ा किया करते हो। तुम सनातन

५०

पुरुष हो। तुम्हारे मस्तक से सारा स्वर्ग और दोनों पैरों से पृथ्वी व्याप्त है। सब चराचर जगत् तुम्हारे पेट में है। हे पुरुषश्रेष्ठ, तुम विद्या और तपस्या के द्वारा तपते हुए तपस्वी, आत्मदर्शन से तृप्त ऋषियों की एकमात्र गति (नित्य), पुण्यशाली, समर-साहसी, सब धर्मों के ज्ञाता और प्रतिपालक राजर्षियों के अद्वितीय आश्रय हो। तुम प्रभु, विभु, भूतात्मा, और सर्वत्र विचरणशील हो। लोकपाल, सब लोक, नक्षत्रमण्डल, दसों दिशाएँ, आकाश, चन्द्रमा और सूर्य, सब तुममें प्रतिष्ठित हैं। मनुष्यों का मरणधर्म और देवताओं का अमरभाव आदि सब नियम तुम्हारे ही चलाये हुए हैं। हे कृष्ण, तुम दिव्य और मानुष, सभी प्राणियों के ईश्वर हो। इसलिए

६० स्नेहवश मैं तुमसे अपना दुःख कहती हूँ। मैं धृष्टद्युम्न की बहन, पाण्डवों की स्त्री और तुम्हारी स्नेह-पात्र होकर भी भरी सभा में खींचकर लाई गई। क्या यह ठीक हुआ? काँपती हुई, रजस्वला, सिर्फ़ एक कपड़ा पहने और कपड़े पर मासिक धर्म के रक्त के दाग़ रखनेवाली मुझको दुःशासन सहज ही भरी सभा में राजाओं के बीच में खींच लाया। दुर्मति धृतराष्ट्र के पुत्र मुझे उस दशा में देखकर हँस पड़े। हे मधुसूदन! पाञ्चाल, वृष्णि और पाण्डवों के जीते रहते भी दुष्टों ने दासी भाव से मेरा उपभोग करने की इच्छा प्रकट की। मैं धर्म से भीष्म और धृतराष्ट्र की बहू हूँ। तो भी दुष्ट दुःशासन आदि बलपूर्वक मुझे दासी बनाने के लिए उद्यत हुए। मैं बाहुबलशाली, युद्धचतुर पाण्डवों की निन्दा करती हूँ। इन्होंने यशस्विनी धर्मपत्नी को यों कष्ट पाते और अपमानित होते देखकर भी लापरवाही की। भीमसेन के बल और अर्जुन के गाण्डीव धनुष को धिक्कार है; क्योंकि दुष्टों के द्वारा मेरा अपमान होते देखकर भी उन्होंने उसे चुपचाप सह लिया। साधुओं ने यह सनातनधर्म का नियम बना दिया है कि स्वामी थोड़े बलवाला होने पर भी स्त्री की रक्षा और उसका ख़याल करे। भार्या के सुरक्षित होने से प्रजा (सन्तान) की और प्रजा की रक्षा करने से अपनी रक्षा होती है। मनुष्य स्वयं स्त्री के गर्भ से, सन्तान रूप से, जन्म लेता है। इसी से स्त्री का नाम जाया है। जो पति पत्नी के द्वारा रक्षित होता है वह

७० कैसे उसके उदर में जन्म ले सकता है? पाण्डव लोग शरणागत को कभी विमुख नहीं करते; किन्तु मेरे शरणागत होने पर भी इन्होंने मेरी प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया। युधिष्ठिर आदि पाँचों पाण्डवों द्वारा मेरे गर्भ से प्रतिविन्ध्य, सुतसोम, श्रुतकीर्त्ति, शतानीक, श्रुतकर्मा, ये पाँच तेजस्वी और महाबली पुत्र उत्पन्न हुए हैं। उनकी रक्षा और देखरेख के लिए भी मेरी रक्षा करनी चाहिए। हे कृष्ण, सत्यपराक्रमी मेरे पुत्र—प्रद्युम्न के समान—महारथी, धनुर्वेद जाननेवालों में श्रेष्ठ और युद्ध में शत्रुओं के लिए अजेय हैं। फिर भी वे किसलिए दुर्बल दुर्योधन आदि के किये अपमान को सह रहे हैं? दुष्ट दुराचारियों ने अधर्मपूर्वक राज्य हरकर पाण्डवों को दास बना लिया था। मैं उस समय रजस्वला और एक ही कपड़ा पहने हुए थी; तो भी दुःशासन खींचता हुआ मुझे सभा में ले गया। हे मधुसूदन, जिस गाण्डीव धनुष को अर्जुन, भीम या तुम्हीं चढ़ा सकते हो—और कोई नहीं—उस गाण्डीव को, भीमसेन के पराक्रम को और अर्जुन के पौरुष को धिक्कार है; क्योंकि दुरात्मा दुर्योधन, जिसे क्षणभर जीना न चाहिए था, अब तक जीता है। पाण्डव जब विद्या पढ़ते थे, ब्रह्मचारी थे, बालक होने के कारण किसी तरह की ईर्ष्या न रखते थे तब दुष्ट दुर्योधन ने उनको—उनकी माता कुन्ती के साथ—अपने राज्य से कपटपूर्वक निकालकर दूर भेज दिया था। भीमसेन के भोजन में तीक्ष्ण नया कालकूट विष

८० मिलवाकर उन्हें मार डालने की भयङ्कर चेष्टा की। भीम की ज़िन्दगी थी, इसी से वे उस अन्न के साथ सहज ही उस विष को पचा गये। प्रमाण नामक जो एक बरगद का पेड़ गङ्गा-तट पर है

वहाँ विश्वासपूर्वक बेखटके सोते हुए भीमसेन को बाँधकर उस दुष्ट ने जल में डुबा दिया और आप नगर को लौट पड़ा। महाबाहु भीम जब जागे तब बन्धन तोड़कर जल से निकलकर चले आये। उसी पापी ने भीमसेन को सोते में तीक्ष्ण विषवाले साँपों से कटवाया; किन्तु उससे भी भीमसेन की मृत्यु नहीं हुई। जागने पर भीम ने साँपों को मारकर दुर्योधन के प्रिय सारथी को मार डाला। इसके बाद एक दिन वारणावत नगर में कुन्ती के साथ पाँचों पाण्डव लाक्षा-भवन में सोये हुए थे। पापी दुर्योधन ने पाण्डवों को जलाने के विचार से पुरोचन के हाथों उसमें आग लगवा दी। हे मधुसूदन, कौन पुरुष ऐसा घृणित काम कर सकता है? कुन्ती माता उस आग को देख अपने को सङ्कट में पड़ी हुई जानकर व्याकुल हृदय से 'हाय मुझे मार डाला' कहकर रोने लगीं। वे कहने लगीं—इस आग से अब किस तरह बचाव हो? आज मैं अनाथ की तरह बालकों के साथ यहीं जलकर मर जाऊँगी। हे कृष्ण, तब हवा के समान वेग और पराक्रमवाले महाबाहु भीमसेन ने आर्या कुन्ती को और अपने भाइयों को समझाते हुए कहा—तुम लोग बिलकुल न डरो। मैं पक्षियों के राजा गरुड़ की तरह तुमको ले चलूँगा। ९०

बस, भीमसेन ने माता को बायें और युधिष्ठिर को दाहने हाथ में, नकुल-सहदेव को दोनों कन्धों पर और अर्जुन को पीठ पर लादकर एकाएक वेग से दौड़ते हुए सबकी रक्षा की। यशस्वी पाण्डव रात को ही माता-सहित चलकर महावन हिडिम्ब-कानन में पहुँचे। थके और दुःखित पाण्डव माता-सहित वहाँ पर सो रहे। तब हिडिम्बा राक्षसी वहाँ आई। उसने माता-सहित पाँचों भाइयों को पृथ्वी पर सोता हुआ पाया। भीम को देखते ही वह कामदेव के बाणों से विकल हो गई। भीम पर अनुराग हो आने से वह राक्षसी उनके चरणों को गोद में रखकर अपने कोमल हाथों से दबाने लगी। भीमसेन ने आँख खुलने पर उठकर उससे पूछा—सुन्दरी, तुम किसलिए मेरे पास आई हो? अनुपम रूप-लावण्यवती कामरूपिणी राक्षसी ने भीम के यों पूछने पर कहा—हे पुरुषश्रेष्ठ, मेरा वीर्य-मद से उन्मत्त दुराचारी भाई तुमको मारने के लिए अभी आता होगा। इससे तुम चटपट यहाँ से भागो। यह सुनकर भीम ने गर्व के साथ कहा—हे भीरु, मैं तुम्हारे भाई से बिलकुल नहीं डरता। यहाँ आते ही वह मेरे हाथ से मारा जायगा। भीममूर्त्ति राक्षसाधम हिडिम्ब उनकी इस बातचीत को सुनकर गरजता हुआ वहाँ आ पहुँचा। वहाँ आकर उसने कहा—हिडिम्बा, किससे बातें कर रही है? इस पुरुष को मेरे पास तुरन्त ले आ। मैं इसका मांस खाऊँगा। अब तुझे विलम्ब न करना चाहिए। सर्वाङ्गसुन्दरी हिडिम्बा के मन में करुणा का भाव भर आया था। वह चुपचाप बैठी रही। तब मनुष्य-मांस-लोभी दुराचारी हिडिम्ब ज़ोर से चिल्लाता हुआ भीमसेन की ओर लपका। क्रोध के आवेश में वेग से जाकर उस राक्षस ने भीमसेन का हाथ पकड़ लिया और अपने कठोर स्पर्शवाले सुदृढ़ हाथ से एकाएक उनके ऊपर प्रहार किया। राक्षस ने जब हाथ पकड़कर यों प्रहार किया तब १००

महाबाहु भीमसेन क्रोध के मारे प्रज्वलित हो उठे। फिर वृत्रासुर और इन्द्र के समान सब अस्त्रों में निपुण हिडिम्ब और भीम का भयङ्कर युद्ध होने लगा। हे कृष्ण, बाहुबलशाली भीमसेन ने राक्षस के साथ कुछ देर युद्ध करके अन्त को उसे मार डाला। हिडिम्ब को मारकर, घटोत्कच १० की माता हिडिम्बा को आगे करके, माता और भाइयों के साथ भीमसेन वहाँ से चल दिये। इसके उपरान्त शत्रुनाशन पाण्डव ब्राह्मणों के साथ एकचक्रा नगरी की ओर चले। हितचिन्तक भगवान् वेदव्यास मन्त्री की तरह इनके साथ थे। पाण्डव लोग जब एकचक्रा नगरी के पास पहुँचे तब हिडिम्ब के तुल्य बल-वीर्यशाली बक नाम का भयानक राक्षस देख पड़ा। युद्धविद्या-विशारद भीमसेन उसे भी मारकर भाइयों के साथ द्रुपद नरेश की नगरी को चले। हे कृष्ण! तुम जैसे राजा भीष्मक की कन्या रुक्मिणी को ले आये थे, वैसे ही उक्त नगरी में रहते समय महाबली अर्जुन ने स्वयंवर में औरों से न हो सकने योग्य अद्भुत काम करके, आये हुए नर-पतियों को परास्त करके, मुझको प्राप्त किया। हे जनार्दन, इस तरह बहुत से क्लेश उठाती हुई मैं अब आर्या कुन्ती से बिछुड़कर आचार्य धौम्य के साथ यहाँ रहती हूँ। मेरा हृदय दुःख और सन्ताप से हर घड़ी जलता रहता है, किन्तु मैं यह नहीं कह सकती कि सिंह के समान बल-वीर्यशाली और वीर पुत्रों के पिता पाण्डव अपने से हीन और दुर्बलों के द्वारा मेरा अप-मान होते देखकर भी क्यों लापरवाही कर रहे हैं। कृष्ण, इस प्रकार दुःख पर दुःख सहकर मैं बहुत दिनों से पापी दुर्योधन आदि पर क्रोधित हूँ। हे वासुदेव, और अधिक क्या कहूँ। देखो, उच्चवंश में मेरा जन्म हुआ है, दिव्य विधि के अनुसार मैं पाण्डवों की प्यारी धर्मपत्नी और महात्मा पाण्डु की बहू हुई हूँ; तो भी दुष्ट दुःशासन ने पाण्डवों के सामने ही केश पकड़कर २१ मेरा अपमान किया।

मृदुभाषिणी द्रौपदी अब कमल-कोष की तरह गुलाबी कोमल हाथों से मुँह ढककर रोने लगीं। लगातार आँसुओं की धारा बहकर द्रौपदी के शुभलक्षण-युक्त उन्नत पीन पयोधरों को भिगोने लगी। फिर आँखें पोंछकर बारम्बार लम्बी साँसें लेती हुई द्रौपदी कहने लगीं—इतने दिनों पर मुझे मालूम हुआ कि मेरे पति, पुत्र, बान्धव, भाई या पिता कोई नहीं है। अधिक क्या कहूँ, हे मधुसूदन, तुम भी मेरे तरफ़दार नहीं हो; क्योंकि दुष्ट के हाथों मेरा अपमान होते देख-कर भी तुम लोगों ने शोकहीन भाव से उसकी लापरवाही की। सूत-पुत्र कर्ण ने उस समय जो मेरा उपहास किया उसका दुःख किसी तरह मुझे भूल नहीं सकता। हे कृष्ण, तुमको सदा मेरी रक्षा करनी चाहिए क्योंकि मैं तुम्हारी भक्त, रिश्तेदार, प्रतिष्ठित और सामर्थ्यवान् हूँ।

वैशम्पायन कहते हैं कि महात्मा मधुसूदन ने आये हुए वीरों के सामने द्रौपदी को सम्बो-धन करके कहा—हे भामिनी, तुम जिनके ऊपर कुपित हुई हो उनकी स्त्रियाँ भी अपने-अपने पतियों को अर्जुन के बाणों से प्राणहीन और ख़ून से तर होकर पृथ्वी पर पड़े देख इसी तरह

काम्यकवन में द्रौपदी और पाण्डवों सहित श्रीकृष्ण—पृ० ७२०

फिर उन्होंने महादेव की पार्थिव मूर्ति का पूजन करके उस पर माला चढ़ाई—पृ० ७७८

आँसू बहावेंगी। हे द्रौपदी, मैं सत्य प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि यथाशक्ति पाण्डवों का काम पूरा करके तुमको राजरानी बनाऊँगा। चाहे समुद्र सूख जाय, हिमालय बीच से फट जाय, स्वर्गलोक नीचे गिर पड़े और पृथ्वी के सैकड़ों टुकड़े हो जायँ, पर मेरा कहा कभी मिथ्या नहीं हो सकता। ३०

भगवान् वासुदेव ने जब यों प्रतिज्ञा की तब द्रौपदी ने तिर्छी नज़र से मँझले पाण्डव अर्जुन की ओर देखा। उन्होंने द्रौपदी को सम्बोधन करके कहा—द्रौपदी, अब तुम मत रोओ। श्रीकृष्ण ने जो कुछ कहा है वह कभी झूठ नहीं हो सकता। धृष्टद्युम्न ने कहा—बहन, मैं द्रोणाचार्य को मारूँगा, शिखण्डी भीष्म पितामह को मारेंगे, भीमसेन दुर्योधन को और अर्जुन कर्ण को मारेंगे। अधिक क्या कहूँ, हम लोग कृष्ण और बलदेव को सहायक पाकर अगर युद्ध-भूमि में खड़े होंगे तो कौरवों की कौन कहे, वृत्रासुर को मारनेवाले इन्द्र भी हमारा सामना न कर सकेंगे।

धृष्टद्युम्न के यों कह चुकने पर अन्यान्य वीर लोग वासुदेव के पास आये। वीरों के बीच में स्थित मधुसूदन युधिष्ठिर से यों कहने लगे। १३६

तेरहवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण के वचन

श्रीकृष्ण ने कहा—राजन्, उस समय जो मैं द्वारका में होता तो आप लोगों को कभी यह वनवास का क्लेश न भोगना पड़ता। राजा धृतराष्ट्र, दुर्योधन अथवा और-और कौरव मुझे उस द्यूत-सभा में न भी बुलाते तो मैं ख़ुद वहाँ पहुँच जाता; और आपकी भलाई की इच्छा से भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, बाह्लीक और धृतराष्ट्र को सभा में बुलाकर, उनके आगे जुए को महा अनर्थ और अनेक दोषों की खान प्रमाणित कर, मैं निस्सन्देह पाँसों के खेल को बन्द कर देता। हे भरतश्रेष्ठ, जिस दोष से निकाले जाकर आप यह क्लेश सह रहे हैं, जिस दोष से वीरसेन के पुत्र नल अपना राज्य खो बैठे थे, जिस दोष से हर एक व्यक्ति की बुरी हालत होती है उस दोष का उल्लेख करके यदि मैं धृतराष्ट्र आदि के सामने बहस करता तो कभी जुआ खेलने की ओर उनकी प्रवृत्ति न होती। स्त्री, जुआ, शिकार और मदिरा, ये चारों कार्य काम-समुत्थित हैं। इनसे लोगों का सर्वस्व तक लुट जाता है। इसी कारण शास्त्रों में इन व्यसनों को सारे दुःखों और दोषों की खान कहा है। अधिक क्या कहूँ, जुआरी लोग स्वयं इस काम के अनेक दोषों का बखान करते हैं। जुआ खेलने से मनुष्य दमभर में कङ्गाल हो सकता है। यही नहीं बल्कि उसका और भी सर्वनाश होता है—अनेक प्रकार की आपत्तियों का सामना करना पड़ता है; धन का उपभोग नहीं होने पाता और वह हाथ से निकल जाता है—कभी-कभी गाली-गलौज और मार-पीट तक की नौबत

आ जाती है। अम्बिका-पुत्र धृतराष्ट्र के आगे इन दोषों का वर्णन किया जाता और वे मेरी हित की सलाह मान लेते तो इस लोक में उनके पुत्रों का मङ्गल होता और परलोक के लिए वे
११ बहुत सा धर्म-सञ्चय कर लेते। और, जो न मानते तो मैं उसी समय ज़बर्दस्ती उसका प्रतिकार करता। इस पर अगर जुए का शौक़ रखनेवाले मित्राभिमानी अनार्य लोग दुर्योधन की सहायता करने को खड़े होते तो उन्हें भी मैं उसी समय यमराज की पुरी को भेज देता। क्या कहूँ, मैं उस समय आनर्त देश (द्वारकापुरी) में न था, इसी से आप निर्वासित होकर इतना क्लेश सह रहे हैं। हे पाण्डुनन्दन, मैं द्वारका में जब लौटकर आया तब सात्यकि के मुँह से आप लोगों की विपत्ति का हाल सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। वैसे ही वहाँ से चलकर मैं यहाँ आप लोगों को देखने आया हूँ। हाय! आप लोग कैसा कठिन क्लेश भोग रहे हैं।
१७ बड़े कष्ट की बात है कि आपको अपने भाइयों-सहित इस तरह दुर्दशा में देख रहा हूँ।

चौदहवाँ अध्याय

संक्षेप में सौभ-नाश का वृत्तान्त वर्णन करना

युधिष्ठिर ने पूछा—हे वृष्णिवंशी, तुम किस कारण उस समय आनर्त देश में नहीं थे? प्रवास में कहाँ रहकर क्या कर रहे थे? वासुदेव ने कहा—मैं शाल्व के सौभनगर को नष्ट करने गया था। अब उसका कारण सुनिए। महाबाहु दमघोष के बेटे शिशुपाल ने आपके राजसूय यज्ञ में मेरी पूजा का विरोध किया था इसी कारण वह दुरात्मा मेरे हाथों मारा गया। सौभपति शाल्व ने जब शिशुपाल के मरने का हाल सुना और द्वारका में मेरे उपस्थित न रहने का सुयोग पाया तब अपने सौभ नामक नगरी-रूप कामगामी विमान पर चढ़कर उसने मेरी नगरी को घेर लिया। उस नीच निष्ठुर ने द्वारकापुरी पर हमला करके बहुत से वृष्णिवंश के बालकों को मार डाला। नगर भर के महलों और बाग़ों को तोड़-फोड़ और उजाड़कर उसने कहा—हे आनर्तदेशवासियो, वृष्णिवंश का कलङ्क दुरात्मा वासुदेव कहाँ है? तुम सच बताओ, वह कहाँ है; मैं वहीं जाऊँगा। मैं इन अस्त्र-शस्त्रों को छूकर क़सम खाता हूँ कि उस कंस और
१० केशी के मारनेवाले पापी को मारे बिना नहीं लौटूँगा। [मैं आज उस विश्वासघाती पापी-कृष्ण को मारने का इरादा करके आया हूँ।] उस दुष्ट ने भाई शिशुपाल को मारा है, यह सुनकर मेरे क्रोध की आग एकदम भड़क उठी है। ख़ासकर उसने बिना युद्ध के सुकुमार-मति राजा शिशुपाल को मारा है, इसलिए उस वैर का बदला चुकाना अपना कर्त्तव्य समझकर मैं उस पापी कृष्ण को मारे बिना न रहूँगा। अनेक कटु वचन कहकर वह फिर कहने लगा कि "वह कहाँ है? वह कहाँ है?" इस प्रकार कहता और मेरा पता लगाता हुआ वह इधर-उधर घूमने लगा। इसके

बाद वह इच्छानुसार विचरने की शक्ति रखनेवाला सौभराज मुझे जी भरकर बुरा-भला कहकर आकाश पर चला गया। इसी समय लौटकर मैं द्वारका पहुँच गया। मैंने दुष्टबुद्धि शाल्व का सब हाल सुना। आनर्त्त देश पर घोर अत्याचार और मेरी अत्यन्त निन्दा करके उसके शेखी मारने का हाल सुनकर मेरा क्रोध भी आग की तरह भड़क उठा। शीघ्र ही शाल्व को मारने की इच्छा से मैं युद्ध के लिए चल पड़ा। इधर-उधर खोजने के बाद दूर से वह समुद्र की लहरों पर देख पड़ा। तब मैंने पाञ्चजन्य शङ्ख बजाकर उसे युद्ध के लिए ललकारा। वैसे ही २० शाल्व के साथी दानव सुसज्जित होकर मुझसे युद्ध करने को आगे बढ़े। मैंने दमभर में उन्हें मारकर युद्ध-भूमि में गिरा दिया। हे महाबाहु, शाल्व को मारने के लिए यात्रा करने के कारण ही मैं उस समय आपके पास नहीं पहुँच सका। उसके बाद ज्योंही मैंने सुना कि आप लोग जुआ खेलकर शत्रुओं के छल से ऐसी दुर्दशा में पड़े हैं, त्योंही मैं हस्तिनापुर में पहुँचा। २२

पन्द्रहवाँ अध्याय

शाल्व के घेर लेने पर द्वारका की रक्षा के ढङ्ग का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—हे महाबाहु वासुदेव, सौभ विमान के नाश का वृत्तान्त संक्षेप में सुनकर मुझे तृप्ति नहीं हुई। इसलिए विस्तार के साथ सब वृत्तान्त सुनाइए।

श्रीकृष्ण ने कहा—हे धर्मराज, मेरे हाथ से शिशुपाल के मारे जाने का हाल सुनकर दुष्ट शाल्व द्वारका पुरी में पहुँचा। उस दुष्टबुद्धिवाले दानव ने विमान पर बनी हुई अपनी सौभ नगरी में व्यूह की स्थापना की। सुरक्षित रूप से उसी में बैठकर उसने द्वारका पर चारों ओर से आक्रमण किया। वह घोर युद्ध करने लगा। द्वारका का तोरण द्वार बढ़िया था, उसपर यत्र-तत्र पताकाएँ फहरा रही थीं। उस पुरी में जगह-जगह पर बुर्जें थीं; योद्धा और सुरङ्ग खोदनेवाले स्थान-स्थान पर तैनात थे; उसमें बन्दूकें, कील-काँटे और शत्रुओं पर लकड़ी-पत्थर फेकने के यन्त्र थे; अट्टालिकाओं में अन्न भरा हुआ था; रास्तों और द्वारों पर मोर्चेबन्दी थी; उसमें जगह-जगह पर जलती हुई लकड़ियाँ मौजूद थीं। वहाँ मन्त्रमयी शक्तियाँ, तोमर, अंकुश, गोल पत्थर, चमड़े की बनी लौहमय ढाल और शत्रुओं पर तपाया हुआ गुड़ फेकने के स्थान, सब बातों का प्रबन्ध था। इन साधनों से युक्त वृष्णि लोग भेरी, पटह, ढका आदि अनेक रणवाद्यों के शब्द से गूँज रही द्वारकापुरी की रक्षा करने लगे। गद, साम्ब, उद्धव आदि शत्रुओं का विनाश करने में समर्थ, प्रसिद्ध कुलों में उत्पन्न, अनेक युद्धों में पराक्रम दिखाकर प्रसिद्धि को प्राप्त वीर यादव रथ, पताका, घोड़े और असंख्य सेना को साथ लिये चारों ओर से नगरी की रक्षा करने लगे। जहाँ ११ चाहे वहाँ जा सकनेवाले सौभपुर को आया हुआ देखकर उग्रसेन, उद्धव आदि वृष्णि और

अन्धक-वंश के बहुदर्शी वीर यादवों ने यह सोचकर नगर में मदिरा पीने की मनाही कर दी कि नगरवासी लोग नशे की हालत में असावधान रहेंगे तो कहीं शाल्व जीत न जाय। सब लोग लगातार हर घड़ी सावधान रहने लगे। सब नट और नाचने-गानेवाले नगरी से निकाल दिये गये। वे अपने कमाये चिरसञ्चित धन-रत्न आदि को लेकर चल दिये। पुल तोड़ दिये गये। नावों की राहें रोक दी गईं। खाइयों की रक्षा दृढ़तापूर्वक की जाने लगी। नगरी के बाहर गहरे गढ़े खोद दिये गये। गुप्त आग भी यत्र-तत्र लगा दी गई। कोस भर तक अनेक कँटीले पेड़ रूँधकर ऐसा कर दिया गया कि कोई आगे बढ़कर नगरी पर आक्रमण न कर सके। द्वारकापुरी एक तो बनी ही ऐसी है कि कोई शत्रु सहज में उसके भीतर न जा सके—वह सदा सुरक्षित और अस्त्र-शस्त्रों से परिपूर्ण रहती है—उस पर उस समय शत्रु के आक्रमण की आशङ्का से सब लोग और भी यत्न और साहस के साथ उसकी रक्षा और देखभाल करने लगे। वह उस समय अमरावती के समान शोभायमान हुई। जो इशारा नियत कर दिया गया, उसे दिखाये बिना उस समय कोई भी न तो नगरी के भीतर आ सकता था और न नगरी के बाहर जा सकता था।
२० सभी मार्गों में घुड़सवार सिपाही दल बाँधकर टहल रहे थे। सैनिकों की तनख़्वाह चुका दी गई थी। सब सिपाहियों को नये अस्त्र-शस्त्र और कपड़े (वर्दी) दिये गये थे। इस प्रकार यत्न और प्यार के साथ सब सेना नियुक्त की गई थी। सोने-चाँदी के सिवा अन्य कोई पदार्थ किसी को वेतन में नहीं दिया जाता था। न किसी से मुफ़्त काम लिया जाता और न किसी को अत्यधिक वेतन दिया जाता था। परीक्षा अर्थात् जाँच के बिना कोई सेना में भर्ती नहीं किया जाता था। हे कमललोचन, उस समय महाबाहु उग्रसेन ने समृद्धिशालिनी द्वारकापुरी की
२१ इस तरह रक्षा की थी।

सोलहवाँ अध्याय

शाल्व का द्वारकापुरी पर आक्रमण और प्रद्युम्न के साथ युद्ध

श्रीकृष्ण ने कहा—राजेन्द्र, सौभराज शाल्व असंख्य हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेना साथ लेकर द्वारकापुरी पर आक्रमण करने आया। मसान, वल्मीक, देवस्थान और चैत्यवृक्षों के तले की जगह छोड़कर सर्वत्र शाल्व की सेना डेरे डालने लगी। बहुत से जलाशयों से युक्त समतल क्षेत्रों में इस प्रकार सेना डटने लगी कि लोगों के आने-जाने के रास्ते एकदम बन्द से हो गये। शाल्व के शिविर में कोई छिपकर नीचे नहीं जा सकता था। उसने सब अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित, सब प्रकार की युद्धविद्या में निपुण, वीरलक्षण-युक्त, परम पराक्रमी, कवच-धनुष-बाण आदि को धारण किये, ऐसे योद्धा सैनिकों को साथ लेकर, विचित्र रथ, हाथी, घोड़े, पैदलों के द्वारा गरुड़ के समान महावेग से द्वारकापुरी पर आक्रमण किया।

इधर वृष्णिवंश के कुमार सब सेना-सहित सौभपति के आने और आक्रमण करने का वृत्तान्त सुनकर, बाहर निकले और उसके साथ युद्ध करने लगे। प्रसिद्ध राजकुमार चारुदेष्ण, साम्ब और प्रद्युम्न आदि उस सौभपति के आक्रमण को नहीं सह सके। तब कवच पहने, शस्त्र लिये, रथों पर चढ़े हुए वे राजकुमार शत्रुपक्ष के और-और वीर पुरुषों के साथ युद्ध करने लगे। १० जाम्बवती के पुत्र साम्ब शाल्व के मन्त्री और सेनापति क्षेमवृद्धि से भिड़कर वर्षा के समान उस पर बाण बरसाने लगे। सेनापति क्षेमवृद्धि भी हिमाचल के समान अटल होकर हिम्मत के साथ उस दुःसह बाणों की वर्षा को सहकर साम्ब के ऊपर मायापूर्वक बाण बरसाने लगा। तब साम्ब ने अपने मायामय मन्त्रों के प्रभाव से सेनापति के परिश्रम को व्यर्थ कर दिया। इसके बाद वे सेनापति के रथ के ऊपर जलधारा के समान लगातार बाणों की वर्षा करने लगे। साम्ब के बाणों की चोट से बहुत ही व्यथित होकर सेनापति संग्राम से हट गया।

क्षेमवृद्धि जब युद्ध से भाग गया तब वेगवान् नाम का असुर मेरे पुत्र साम्ब पर आक्रमण करने को वेग से दौड़ा। वृष्णिवंश-शिरोमणि अमित-तेजस्वी साम्ब, निर्भय भाव से, उसके उस वेग को सँभालकर गदा हाथ में लेकर झपटे। उन्होंने वह गदा उसको मारी। वेगवान् असुर, साम्ब की गदा लगने से, एकदम अचेत होकर आँधी के उखाड़े पुराने वृक्ष की तरह पृथ्वी पर गिर पड़ा और मर गया। तब साम्ब उत्साह के साथ वेगवान् की सेना में घुसकर घोर संग्राम करने लगे। २०

इधर विविन्ध्य नाम का महाबली, महापराक्रमी, महारथी दानव चारुदेष्ण से ऐसा भयङ्कर युद्ध करने लगा कि उसे देखकर लोगों को इन्द्र और वृत्रासुर के युद्ध का स्मरण हो आया। दोनों वीर परस्पर कुपित होकर महाबली दो सिंहों की तरह भयङ्कर शब्द से गरजते हुए एक दूसरे पर बाण चलाने लगे। तब रुक्मिणी के पुत्र चारुदेष्ण ने अग्नि और सूर्य-तुल्य भयानक बाण को, मन्त्र पढ़कर, धनुष पर चढ़ाया और क्रोध के साथ विविन्ध्य को ललकारकर उसके ऊपर वह बाण चलाया। विविन्ध्य भी मरकर रथ पर गिर पड़ा। इस तरह उसके मरने पर दानव-सेना में खलबली मच गई। तब महाबाहु शाल्व सौभ विमान पर चढ़कर फिर युद्ध के मैदान में आया। उसे देख-

कर द्वारकानिवासी सब योद्धा डर के मारे व्याकुल हो उठे। तब महावीर प्रद्युम्न ने बाहर निकलकर सबको धीरज देते हुए कहा—हे आनर्त्त (द्वारका)-देशवासियो, देखो, मैं सौभपति

३० शाल्व का सामना करने के लिए युद्धभूमि में आ गया; तुम लोग घबराओ नहीं। मैं आज साँप के आकारवाले भयङ्कर बाणों को बाहुबल से धनुष पर चढ़ाकर छोड़ता हूँ और उनसे शाल्व की सब सेना को नष्ट करता हूँ। तुम डर छोड़कर धैर्य धरो। दुरात्मा शाल्व आज मुझसे भिड़कर अपने नगर के साथ नष्ट होगा। महाबाहु प्रद्युम्न के यों कहने पर सब सेना मोर्चेबन्दी से

३३ खड़ी होकर युद्ध करने लगी।

सत्रहवाँ अध्याय

प्रद्युम्न का मूर्च्छित होना

श्रीकृष्ण ने कहा—प्रद्युम्न यादवों से यों कहकर कवच से रक्षित घोड़ों से जुते सुवर्णजटित रथ पर चढ़कर, मुँह फैलाये हुए यमराज की तरह, वेग से शत्रु के पास गये। उनके रथ पर मछली के चिह्नवाली पताका फहरा रही थी। विविध अस्त्रों के जाननेवाले प्रद्युम्न ने बिजली ऐसे धनुष पर डोरी चढ़ाकर सौभनगर पर स्थित सब योद्धा दानवों को व्याकुल कर दिया। प्रद्युम्न ऐसी चतुराई और सावधानी के साथ शत्रुओं पर प्रहार करने लगे कि कोई उनके काम में बाधा नहीं डाल सका। युद्ध के समय प्रद्युम्न के चेहरे का रङ्ग तनिक भी नहीं बदला। वे इतनी फुर्ती के साथ युद्ध कर रहे थे कि उनके किसी अङ्ग-प्रत्यङ्ग का हिलना-डुलना नहीं लख पड़ता था। बीच-बीच में केवल उनके सिंहनाद से यह जान पड़ता था कि उनके समान वीर पुरुष पृथ्वी पर और कोई नहीं है। प्रद्युम्न के रथ में लगे हुए सुवर्णमय ध्वजा के दण्ड के सिरे पर लगे—समुद्र के जीव-जन्तुओं में श्रेष्ठ, मुँह फैलाये,—बनावटी मच्छ को देखकर शाल्व की सेना बहुत ही डर गई।

यह देखकर शत्रुनाशन प्रद्युम्न और भी उत्साह के साथ युद्ध की इच्छा से शाल्व के समीप गये। शाल्व भी प्रद्युम्न के पराक्रम को देखकर बहुत क्रुद्ध हुआ। फिर वह आकाश में

१० उड़नेवाले सौभ विमान से उतरकर प्रद्युम्न से युद्ध करने लगा। जान पड़ा मानों देवराज इन्द्र क्रोधित होकर राजा बलि पर आक्रमण कर रहे हैं। अब शाल्व मायानिर्मित सुवर्णमय रथ पर चढ़कर प्रद्युम्न के ऊपर ढेर के ढेर बाणों की वर्षा करने लगा। महाबाहु प्रद्युम्न भी शत्रु को मारने का दृढ़ सङ्कल्प करके वेग से बाणवर्षा करते हुए शाल्व को रोकने लगे। प्रद्युम्न की बाणवर्षा से चिढ़कर शाल्व ने भी उन पर जलती हुई आग के समान बाण छोड़े। प्रद्युम्न ने स्वाभाविक साहस और पराक्रम के साथ उन बाणों को विफल कर दिया। तब दुरात्मा दानव

और भी क्रोधित होकर वारम्वार बहुत से बाण बरसाने लगा। शाल्व के बाणों से प्रद्युम्न के अङ्ग जर्जर हो गये। तब उन्होंने एक अन्तर्भेदी बाण शाल्व को मारा। वह बाण कवच को तोड़कर शाल्व के हृदय में घुस गया। इससे वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। यह देख और-और दानव शङ्कित होकर हाहाकार करते हुए, पैरों की धमक से पृथ्वी को कँपाते हुए, युद्धभूमि से भागने लगे। इसी बीच में महापराक्रमी शाल्व को चेत हो आया। वह उठकर फिर प्रद्युम्न के ऊपर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने लगा। उन बाणों के

२०
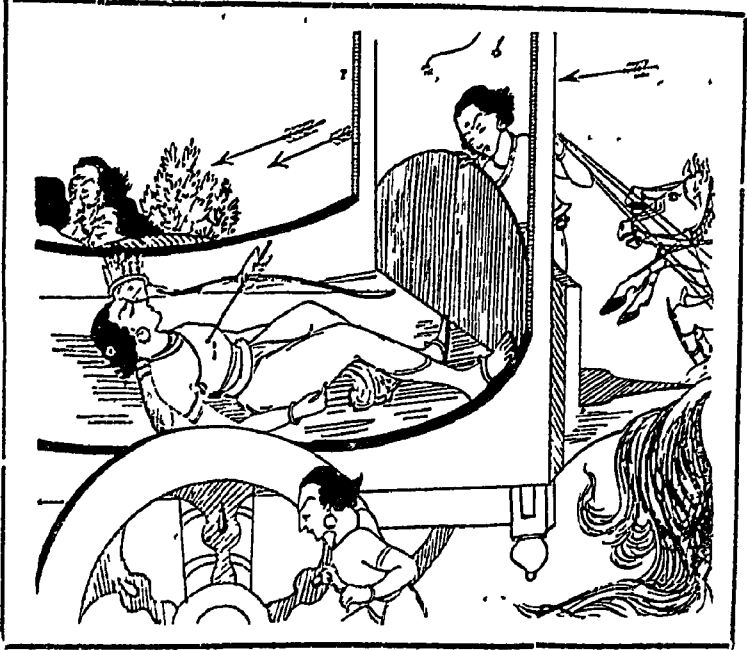
प्रहार से प्रद्युम्न भी मूर्च्छित हो गये। यह देखकर शाल्व के आनन्द की सीमा न रही। उसने और भी अधिक उत्साहित होकर प्रचण्ड सिंहनाद किया। वह फिर प्रद्युम्न के ऊपर लगातार बाण बरसाने लगा। महावीर प्रद्युम्न उसके पैने बाणों के जाल में छिप गये। उनके अङ्ग कई जगह से घायल हो गये। वे शीघ्र ही बिलकुल अचेत हो गये। २५

अठारहवाँ अध्याय

प्रद्युम्न और उनके सारथी का संवाद

श्रीकृष्ण कहते हैं—शाल्व के बाण लगने से जब श्रेष्ठ बली प्रद्युम्न बेहोश हो गये तब वृष्णि-वंश के वीर यादव उत्साह-हीन होकर हाहाकार करने लगे। शत्रु-पक्ष को बहुत आनन्द हुआ। दारुक सारथी का पुत्र सुशिक्षित प्रद्युम्न का सारथी उनको इस दशा में देखकर घबराया नहीं। वह प्रद्युम्न को रथ-समेत तेज़ी के साथ युद्धभूमि से हटा ले गया। थोड़ी दूर पर जाते ही प्रद्युम्न को होश आ गया। फिर धनुष-बाण हाथ में लेकर उन्होंने सारथी से कहा—हे सूतपुत्र, तुमने यह क्या किया? रणभूमि को छोड़कर तुम क्यों भागे जा रहे हो? युद्ध से विमुख होकर भागना वृष्णिवंश के वीरों का धर्म नहीं है। सच कहो, तुम क्या इस घोर युद्ध में शाल्व के बल-विक्रम को देखकर बहुत व्याकुल हो गये हो?

सारथी ने कहा—हे केशवनन्दन, यह आप न समझें कि मैं शाल्व के पराक्रम को देखकर डरकर भाग आया हूँ। उसके बाण की चोट से आप अचेत हो गये थे, इसी कारण युद्ध से विमुख होकर मैं चला आया हूँ। रथी चाहे जितना बड़ा वीर पुरुष हो, उसके मूर्च्छित हो जाने पर उसकी रक्षा करना सारथी का कर्त्तव्य है। हे आयुष्मन्, मेरी रक्षा करना जैसे आपका काम है वैसे आपकी रक्षा करना मेरा काम है। ख़ास कर आप अकेले हैं, और दानव १० असंख्य हैं। मैं इसी लिए आपको रणभूमि से हटा लाया हूँ।

वासुदेव कहते हैं—सारथी के यों कहने पर मछली के चिह्न से युक्त ध्वजावाले प्रद्युम्न ने उससे कहा कि रथ को लौटाओ; फिर कभी ऐसा काम मत करना। मेरे जीते रहते युद्ध-भूमि से तुम्हारा भागना ठीक नहीं हुआ। जो कोई युद्ध छोड़कर भाग जाता है; या शरणागत, स्त्री, बालक, बूढ़े और जिसका रथ टूट गया हो अथवा शस्त्र टूट गया हो उससे युद्ध करता है, वह कभी वृष्णिवंश में उत्पन्न नहीं है। हे दारुकनन्दन, तुम सूतकुल में उत्पन्न और सारथी के कार्य में विशेष रूप से शिक्षित हो; वृष्णिवंश के युद्ध-धर्म को भी अच्छी तरह जानते हो। इस कारण अब फिर कभी इस तरह युद्ध से मत भागना। मैं युद्ध से भाग आया और शत्रुओं ने मेरी पीठ पर प्रहार किये; यह सुनकर वीरसिंह श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलदेव, महाधनु रणसिंह शिनि के नाती सात्यकि, साम्ब, दुर्द्धर्ष चारुदेष्ण, गद, सारण, महाबाहु अक्रूर आदि यादव २० मुझे क्या कहेंगे? वृष्णिवंश के वीरों की स्त्रियाँ—जो मुझे शान्त, शूर और पौरुषाभिमानी समझती हैं—मुझे क्या कहेंगी? वे सब यही कहेंगी कि प्रद्युम्न डर के मारे युद्ध छोड़कर चले आये; इन्हें धिक्कार है! धिक्कार देने के सिवा वे कभी साधुवाद न देंगी। हे सूतपुत्र, मैं या मेरे ऐसे लोग धिक्कार के साथ निन्दा सुनने की अपेक्षा मृत्यु को ही अच्छा समझते हैं। इस-लिए तुम अब कभी इस तरह युद्धभूमि से मत भागना। महात्मा मधुसूदन मुझ पर ही सब भार छोड़कर भरतवंशी राजा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में गये हैं। इस कारण आज इस तरह मेरा युद्ध छोड़कर भागना किसी तरह ठीक नहीं हुआ। महावीर कृतवर्मा शाल्व से लड़ने के लिए आ रहे थे। उन्हें मैंने यह कहकर लौटा दिया कि मैं ही शाल्व को मारने जाता हूँ; आप यहीं रहिए। वे भी बहुत सम्मान के साथ मुझे भेजकर लौट गये। इस तरह युद्ध से भाग-कर मैं उन्हीं से क्या कहूँगा? ख़ास कर वे शङ्ख-चक्र-गदा धारण करनेवाले दुर्द्धर्ष पुरुष वासु-देव जब लौटकर आवेंगे तब उनसे क्या कहूँगा? जो मुझसे लाग-डाँट रखते हैं उन सात्यकि, बलदेव और अन्धक वृष्णिवंशी अन्य लोगों से मैं भला क्या कहूँगा? हे सूतपुत्र, मैं रण छोड़-कर चला आया, इससे शत्रुओं ने मेरी पीठ पर प्रहार किये। अब जो तुम इस तरह युद्धभूमि से मुझे हटा लाओगे तो मैं किसी तरह अपना जीवन न रक्खूँगा। इसी कारण कहता हूँ, झटपट ३० मेरा रथ लौटा ले चलो। बहुत ही घोर आपत्ति के समय भी ऐसा करना उचित नहीं। मैं

अगर डरकर रण से भागूँ और शत्रु लोग मेरी पीठ पर प्रहार करें तो मैं उस जीवन से अपना कुछ गौरव नहीं समझता। तुमने क्या कभी मुझे डरकर, कायरों की तरह युद्ध छोड़कर, भागते देखा है? हे सूतपुत्र, मेरी युद्ध करने की लालसा अत्यन्त प्रबल होने पर भी तुम्हारा यों युद्ध-भूमि छोड़कर भागना किसी तरह ठीक नहीं हुआ। इसलिए तुम मुझे शीघ्र युद्धभूमि में चलो। ३३

उन्नीसवाँ अध्याय

शाल्व का हारना

वासुदेव ने कहा कि हे कुन्तीपुत्र, महावीर प्रद्युम्न के यों कहने पर दारुक के पुत्र ने मृदु-मधुर स्वर में कहा—हे रुक्मिणीपुत्र, मैं युद्धभूमि में घोड़े हाँकने में बिलकुल नहीं डरता और वृष्णिवंश के युद्धधर्म को भी अच्छी तरह जानता हूँ। किन्तु हे आयुष्मन्, सब प्रकार से रथी का बचाव करना सारथी का कर्तव्य है—यह उपदेश स्मरण हो आने से मैं आपको युद्ध से हटा लाया; क्योंकि मैंने देखा कि आप शाल्व के बाणों से बहुत ही पीड़ित और अचेत से हो रहे हैं। ख़ैर, आप होश में आ ही गये हैं; अब मेरी घोड़े हाँकने की चतुराई देखिए। सुप्रसिद्ध दारुक सारथी मेरे पिता हैं और उन्हीं ने मुझे रथ चलाने की विद्या सिखाई है। मैं अब निडर होकर सौभपति की सुप्रसिद्ध सेना में घुसता हूँ; आप देखिए।

कृष्णचन्द्र कहते हैं—दारुक का पुत्र इस तरह अपनी योग्यता का बखान करके, घोड़ों की रास हाथ में लेकर सामने, पीछे, बायें, दाहने और सभी तरफ़ घोड़ों की अनेक प्रकार की मण्डलाकार गतियाँ दिखाता हुआ अपनी रथ हाँकने की होशियारी दिखाने लगा। कोड़ा छुआते ही घोड़े वायुवेग से दौड़ पड़े। जान पड़ा, मानों वे ज़मीन पर पैर न रखकर क्रोध के मारे आकाश में उड़ जाने की चेष्टा कर रहे हैं। दम भर में सारथी ने शत्रु-सेना की श्रेणी को भेदकर उन्हें दाहनी ओर छोड़ दिया। शत्रु लोग उसकी इस होशियारी को अचरज के साथ देखने लगे। तब महाबली शाल्व ने रथ चलाने में निपुण सारथी के ऊपर तीन बाण चलाये। उन बाणों की चोट सहकर भी सारथी उसी गति से रथ बढ़ाता गया। तब शाल्व फिर प्रद्युम्न के ऊपर असंख्य बाण बरसाने लगा। प्रद्युम्न ने भी अपने हाथों की फुर्ती दिखाते हुए उन बाणों को अपने पास तक आने नहीं दिया, रास्ते में ही खण्ड-खण्ड कर डाला। अपने बाणों को व्यर्थ होते देखकर शाल्व ने फिर मायाबल का सहारा लिया। वह अब आसुरी बाण चलाने लगा। प्रद्युम्न ने भी ब्राह्म अस्त्र चलाकर राह में ही शाल्व के सब बाणों को काट डाला और अपने तीक्ष्ण बाण उसके ऊपर चलाये। वे बाण रक्त पीनेवाले थे; उन बाणों ने शाल्व के हाथ-पैर, मस्तक और वक्षःस्थल को छेद करके, रक्त पीकर, उसको मूर्च्छित कर दिया। महा- १०

बली शाल्व जब इस तरह अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा तब प्रद्युम्न ने और एक शत्रुनाशन अमोघ बाण निकालकर धनुष पर चढ़ाया।

यादव लोग जिसकी पूजा करते हैं उस अमोघ बाण को धनुष पर चढ़ा हुआ देखकर
२० सब आकाशचारी देवता हाहाकार करने लगे। इन्द्र आदि देवताओं ने एकत्र होकर नारद और वायु को रुक्मिणी-पुत्र प्रद्युम्न के पास भेजा। उन्होंने देवताओं के कहने से उसी समय प्रद्युम्न के पास आकर कहा—हे रुक्मिणी के पुत्र, इस पृथ्वीतल पर ऐसा कोई नहीं जो इस बाण के चलने पर बच जाय; परन्तु तुम्हें किसी तरह शाल्व का वध करना उचित नहीं। इसकी मृत्यु तो श्रीकृष्ण के हाथ से ही लिखी है। विधाता के लिखे को सब लोग अमिट मानते हैं। उसका मिथ्या होना अनर्थ है। तुमने धनुष पर जो बाण चढ़ाया है उसे शीघ्र उतार लो।

देवताओं की आज्ञा को मानकर प्रद्युम्न ने उसी दम उस अमोघ बाण को उतारकर तर्कस में रख लिया। उधर प्रद्युम्न के बाण से पीड़ित शाल्व को जब होश आया तब वह सेना-सहित सौभ
२७ विमान पर चढ़कर, द्वारका को छोड़, आकाशमार्ग से अपने नगर को चल दिया।

बीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण और शाल्व का सामना

वासुदेव कहते हैं—इस प्रकार शाल्व चला गया। इधर मैं जब आपका राजसूय यज्ञ समाप्त होने पर लौटकर द्वारका पुरी को गया तब देखा कि नगरी की वह शोभा नहीं रही। वेद-पाठ और वषट्कार की ध्वनि नहीं सुन पड़ती। श्रेष्ठ स्त्रियों के, पहनावे और सज-धज के बिना, मुख की शोभा फीकी पड़ गई है। मनोहर बाग़ उजड़े पड़े हैं। नगरी की ऐसी बुरी दशा देखकर, सन्देह में पड़कर, मैंने कृतवर्मा से पूछा—हे नरसिंह, वृष्णिवंश के स्त्री-पुरुष ऐसे श्रीहीन क्यों देख पड़ रहे हैं? ऐसी कौन दुर्घटना हो गई है, शीघ्र कहो। उन्होंने कहा—हे यदुश्रेष्ठ, दुरात्मा शाल्व ने आकर आक्रमण किया था, इसी से नगरी की यह दशा हो गई है। यह सुन-

कर राजा उग्रसेन, वसुदेव और सब वृष्णिवंश के वीरों तथा पुरवासियों को आश्वास देते हुए मैंने कहा—हे यादवो, तुम निःशङ्क होकर इस नगरी में रहो। मैं जाता हूँ। दुष्ट शाल्व को मारे विना कभी मैं द्वारका को न लौटूँगा। मैं शाल्व को और उसके सौभ विमान को एकदम नष्ट करके अभी आकर तुमसे मिलता हूँ। अब शत्रुओं को डरानेवाले इस युद्ध के डंके को बजाओ। १० तब सब यादवों ने धैर्य धरकर प्रसन्न चित्त से मुझे आशीर्वाद देते हुए कहा—तुम जाओ। तुम्हारा मनोरथ तुरन्त पूरा हो।

वृष्णिवंश के बड़े-बूढ़े वीर यादवों के आशीर्वाद को ग्रहण करके, ब्राह्मणों को और देवादिदेव महादेव को प्रणाम करने के उपरान्त मैं रथ पर सवार हुआ। उसमें ध्वजा-पताकाएँ फहरा रही थीं और सुग्रीव आदि चार बढ़िया घोड़े जुते हुए थे। जाते समय रथ के पहियों की घरघराहट और पाञ्चजन्य शङ्ख का शब्द दसों दिशाओं में गूँज उठा। चतुरङ्गिणी सेना मेरे साथ चली। अनेक जनपद, वृक्षों की पंक्तियों से शोभित पहाड़, नदी और सरोवर आदि को लाँघकर मैं मार्त्तिकावत नगर में पहुँचा। वहाँ पहुँचकर सुना कि शाल्व अपने विमान पर चढ़कर समुद्र के निकट गया है। मैं वहाँ से समुद्रतट की ओर चला। तरङ्गमाला-शोभित समुद्र के पास पहुँचकर शाल्व, अपने चाहे जहाँ जा सकनेवाले विमान-द्वारा, उसके भीतर जाना चाहता था कि मुझे दूर से देखकर हँसते-हँसते वह युद्ध के लिए बारम्बार ललकारने लगा। उस दुरात्मा के ललकारने पर मैं फुर्ती से धनुष पर डोरी चढ़ाकर मर्मभेदी असंख्य बाण उस पर छोड़ने लगा। किन्तु मेरा एक भी बाण शाल्व के विमान तक न पहुँचा। यह देखकर मेरे क्रोध की आग और भी भड़क उठी। दुष्ट, अधम दानव शाल्व भी अत्यन्त क्रोध करके मेरे ऊपर बाण चलाने लगा। मेरी सेना, सारथी, हाथी और घोड़े उसकी २० बाणवर्षा से व्याकुल हो गये। मुझे किसी बात से डर नहीं लगा; बल्कि मैं और भी उत्साह के साथ बेखटके होकर युद्ध करने लगा। तब शाल्व के पीछे स्थित वीर पुरुषगण एकत्र होकर मेरे ऊपर असंख्य बाण चलाने लगे। मैं शत्रुओं के बाणजाल में ऐसा छिप गया कि मुझे अपनी सेना और सामन्त नहीं देख पड़ते थे। उस बाणजाल में मेरा रथ, घोड़े, ध्वजा, मैं और मेरा सारथी, सब छिप गये; कुछ भी नहीं देख पड़ता था। तब विधिपूर्वक मन्त्र पढ़कर धनुष पर मैंने दस हज़ार बाण चढ़ाये। सौभराज की सेना और सामन्तगण आकाशमार्ग में थे; इसी कारण मेरे सिपाही और वीर योद्धा उनके पास तक नहीं पहुँच सकते थे। आकाश में दर्शक-रूप से स्थित देवगण जयध्वनि करके और तालियाँ बजाकर मुझको उत्साहित करने लगे। मेरे हाथ से छुटे हुए बाण वेग से शत्रुदल में पहुँचकर उनके अङ्गों में घुसने लगे। मेरे बाणों से घायल शत्रु लोग आर्त्तनाद करने लगे। उस आर्त्तनाद से सौभ विमान प्रतिध्वनित हो उठा। शत्रु-पक्ष के लोगों के अङ्ग-प्रत्यङ्ग कट-कटकर समुद्र में गिरते थे और उन्हें उसी दम मांसभोजी ३०

जल के जीव खा जाते थे। इसके बाद मैंने ज़ोर से पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया। अपने पक्ष के वीर पुरुषों को डरते देखकर शाल्व मेरे साथ माया-युद्ध करने लगा। वह लगातार मुझ पर गदा, हल, प्रास, शूल, शक्ति, परशु, तलवार, वज्र, पाश, बाण, पट्टिश और भुशुण्डी आदि अनेक अस्त्र-शस्त्र बरसाने लगा। तब तो मैं भी माया-बल का सहारा लेकर उसके मायाजाल को काटने लगा। फिर वह दुष्ट पर्वत-शिलाओं के द्वारा युद्ध करने लगा। वह माया के बल से जगत् को कभी घने अँधेरे से ढक लेता था और कभी विकट प्रकाश से उज्ज्वल बना देता था। इसी तरह वह कभी दुर्दिन और कभी सुदिन करके जाड़े-गर्मी-आँधी-पानी आदि के उपद्रव को उत्पन्न करता हुआ फिर मेरे ऊपर राख और अङ्गारों की वर्षा करने लगा। मैं भी मायाबल का सहारा लेकर इन उपद्रवों को रोकने में प्रवृत्त हुआ। बीच-बीच में मौक़ा पाकर मैं बाणयुद्ध भी करता जाता था। इसके उपरान्त एकाएक आकाश-

मण्डल में सैकड़ों सूर्यों का प्रकाश देख पड़ा। दूसरी ओर तारागण-मण्डित सैकड़ों चन्द्रमाओं का उदय हो आया। इससे यह निर्णय करना कठिन हो गया कि दिन है या रात। फिर ऐसा अँधेरा हुआ कि कौन दिशा किधर है, यह भी न समझ पड़ता था। इस प्रकार अपने को मोह से शिथिल होते देखकर मैंने धनुष पर प्रज्ञास्त्र चढ़ाकर छोड़ा। उस अस्त्र ने प्रकट होते ही उस अँधेरे को और माया को मिटा दिया। प्रकाश होने पर मैं फिर शत्रु के साथ घोर संग्राम करने लगा। ४१

इक्कीसवाँ अध्याय

शाल्व की माया से श्रीकृष्ण का मोहित होना

कृष्णचन्द्र कहते हैं—महाशत्रु शाल्व कुछ देर तक इस तरह मुझसे घोर संग्राम करके आकाश-मार्ग में चला गया और जय की इच्छा से पहले की अपेक्षा अधिकतर क्रोध के आवेश से मेरे ऊपर तोप, गदा, शूल, मुसल और तलवार आदि अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र चलाने लगा। मैं भी पैने बाण चलाकर अन्तरिक्ष में ही शत्रु के प्रहारों को रोकने और खण्डित करने लगा। मेरे और शाल्व के बाण परस्पर टकराते थे; उसका घोर शब्द आकाश-मण्डल में व्याप्त

हो गया। तब शाल्व ने सैकड़ों-हज़ारों बाण चलाकर मेरी सेना के हाथी, घोड़े और मेरे रथ, सारथी आदि को ढक दिया। दानव के बाणों से अत्यन्त पीड़ित होकर दारुक ने मुझसे कहा—हे वीर, मैं शाल्व के बाणों से बहुत ही पीड़ित हो रहा हूँ; मेरा शरीर सुस्त और बेकाम होता जा रहा है। युद्धभूमि को छोड़कर भागना न चाहिए, इसी ख़याल से मैं अब तक यहाँ ठहरा हुआ हूँ। दारुक के व्याकुल वाक्य सुनकर उसकी ओर मैंने देखा। सचमुच वह सिर से पैर तक बाणों से घायल होकर अत्यन्त क्लेश पा रहा था; बीच-बीच में मुँह से रक्त वमन करके घोड़ों की गति को रोकता जाता था। उसके सारे शरीर से रक्त बह रहा था। जान पड़ता था, किसी गेरू के पहाड़ पर वर्षा का पानी पड़ने से गेरू बह रही है। हे राजन्, सारथी की ऐसी दशा देखकर मैं क्रोध और क्षोभ के मारे व्याकुल हो उठा।
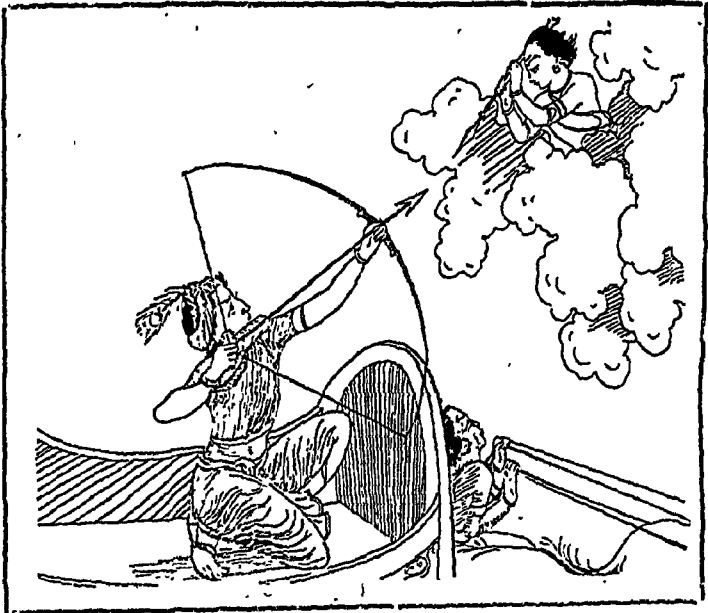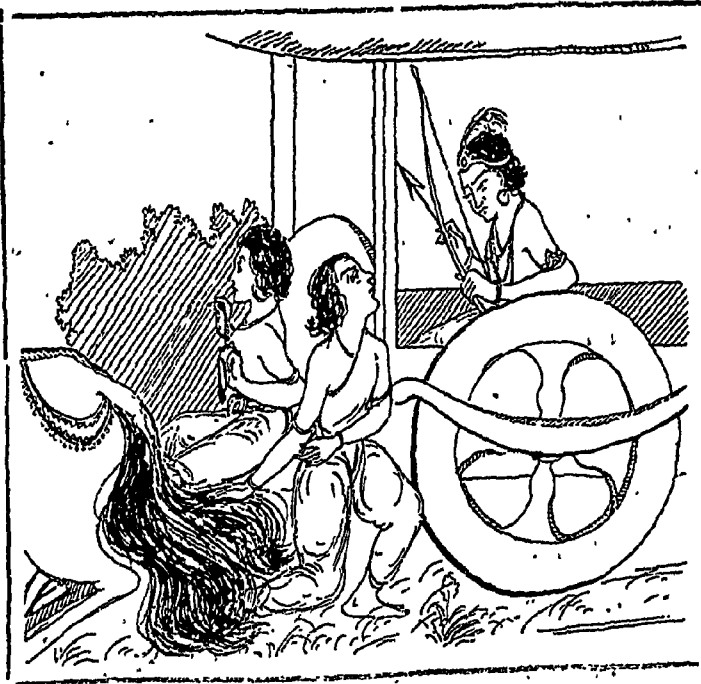
इसके बाद उग्रसेन का एक सेवक तेज़ी से रथ दौड़ाता हुआ मेरे पास आया। बहुत ही मित्रता का भाव दिखाते हुए उसने कहा—हे केशव, आपके पिता के सखा द्वारका-नरेश महाराज उग्रसेन ने आपसे जो कहा है सो मैं आपसे कहता हूँ, सुनिए। हे वृष्णिनन्दन, आज शाल्व ने आपके न रहने का सुयोग पाकर द्वारकापुरी में आकर वसुदेव की हत्या कर डाली। इसलिए अब आपके युद्ध करने की ज़रूरत नहीं। आप चटपट द्वारका में आकर सबकी रक्षा १०

कीजिए। आनेवाले अनुचर के मुँह से एकाएक यह शोकसूचक संवाद सुनकर मैं कुछ भी कर्त्तव्य निश्चित नहीं कर सका; मन ही मन सात्यकि, बलदेव और प्रद्युम्न आदि महारथियों की निन्दा करने लगा। हे कुरुनन्दन, मैं इन्हीं को द्वारका की और पिता की रक्षा का भार सौंपकर सौभपति और सौभ विमान को नष्ट करने नगर के बाहर गया था। इसी से महाबाहु बलदेव, सात्यकि, प्रद्युम्न, पराक्रमी चारुदेष्ण और साम्ब आदि वीरों के जीवित रहने में भी मुझे सन्देह हुआ। इन्हीं ख़यालों से मैं बहुत उदास हुआ; क्योंकि बलदेव आदि वीरों के जीते रहते स्वयं इन्द्र भी आकर वसुदेव की हत्या नहीं कर सकते थे। मतलब यह कि वसुदेव की मृत्यु का संवाद सुन-
२० कर मुझे कुछ भी सन्देह न रह गया कि बलदेव आदि महावीर भी अब इस लोक में नहीं हैं। सब सुहृदों के नाश का ख़याल करके शोक और दुःख से अत्यन्त पीड़ित होने पर भी मैं फिर शाल्व से युद्ध करने का उद्योग कर रहा था, इसी समय मैंने देखा कि वसुदेवजी सौभ विमान के ऊपर से नीचे गिर रहे हैं। यह देखकर मैं मोह के मारे अचेत सा हो गया। महाराज, पुण्य क्षीण होने पर राजा ययाति जैसे स्वर्ग से नीचे गिरे थे वैसे ही विमान से नीचे गिरते हुए वसुदेव भी मुझे देख पड़े। मैंने देखा, उनकी पगड़ी मैली और खुली हुई है, बाल बिखरे हुए हैं, कपड़े इधर-उधर अस्तव्यस्त हो रहे हैं। पुण्य क्षीण होने पर गिरनेवाले ग्रह की तरह उन्हें नीचे गिरते देखकर मेरे हाथ से एकाएक धनुष छूट पड़ा। हे कुन्तीपुत्र, मैं मूर्च्छा की दशा में रथ का सहारा लेकर बैठ गया। सेना के सब लोग मुझे अचेत देखकर लगातार हाहाकार करने लगे। गिरते समय पिता के दोनों हाथ और पैर फैले हुए थे, जिससे वे आकाश से गिरते हुए किसी बड़े पक्षी की तरह जान पड़ते थे। इसी समय शूल और पट्टिश हाथ में लिये शत्रुपक्ष के लोगों को पिता वसुदेव के ऊपर प्रहार करते देखकर मेरा कलेजा काँप उठा।

क्षण भर में मेरी वह मूर्च्छा दूर हो गई। तब मुझे वह सौभ विमान, शाल्व या बूढ़े पिता का शरीर, कुछ भी नहीं देख पड़ा। अब मुझे वह सब माया-काण्ड जान पड़ा। फिर
३० सचेत होकर मैं शत्रु-पक्ष पर बाणों की वर्षा करने लगा।

बाईसवाँ अध्याय

शाल्व-वध

श्रीकृष्ण ने कहा—हे भरतश्रेष्ठ, तब मैं सुन्दर शार्ङ्ग धनुष हाथ में लेकर बाणों के द्वारा दानवों के सिर काटकर सौभ विमान और शाल्व का विनाश करने के लिए ज़हरीले पैने बाण छोड़ने लगा। हे कुरुकुलदीपक, तब फिर सौभ विमान एकदम ग़ायब हो गया। यह देखकर मुझको बड़ा अचरज हुआ। हे भारत, वैसे ही मैंने देखा कि दानवगण अपने विकट मुखों को

फैलाये मेरे सामने आकर भयानक चीत्कार करने लगे। तब मैंने जल्दी से उन्हें नष्ट करने के लिए शब्दवेधी बाण चलाये। उन बाणों से उन असुरों के मरने पर वह शब्द बन्द हो गया। आदित्यसदृश प्रज्वलित शब्दसाह बाण के द्वारा उस शब्द के बन्द होने पर फिर आसपास, ऊपर, नीचे, चारों ओर वैसी ही चीत्कार-ध्वनि होने लगी। मैंने फिर वही बाण चलाकर उस शब्द को बन्द किया। महाराज, इसी तरह असुरों की विकट चिल्लाहट से आसपास, ऊपर, नीचे, दसों दिशाएँ प्रतिध्वनित हो उठीं। मैंने भी लगातार बाण-वर्षा करके असुरों का नाश कर डाला [; साथ ही वह शब्द भी बन्द हो गया]।

अब फिर वह कामगामी विमान प्राग्ज्योतिपपुर के पास मेरी दृष्टि को मोह में डालता हुआ देख पड़ा। फिर लोकों का नाश करनेवाला दारुणरूप दानव एकाएक मुझ पर घोर शिलाओं की वर्षा करने लगा। चारों ओर से होती हुई शिलाओं की वर्षा में छिप जाने से मैं 'वल्मीक' सा जान पड़ने लगा। घोड़े, ध्वजा, रथ और सारथी-सहित मैं उन शिलाओं के ढेर में छिप गया। सब वृष्णिवंश के वीर और सैनिक डर से व्याकुल होकर युद्धभूमि से इधर-उधर भागने लगे। मेरे यों अदृश्य होने पर स्वर्ग, आकाश और पृथ्वी पर के सब लोग हाहाकार करने लगे। मेरे भाई-बन्धु—जो कि सैनिक थे—मुझे ऐसी दशा में देखकर बहुत ही उदास हुए और भाग खड़े हुए। वे आँखों में आँसू भरकर ऊँचे स्वर से विलाप करने लगे। शत्रु-पक्ष को इससे असीम आनन्द हुआ। हे राजेन्द्र, पीछे से होश आने पर सारथी के मुँह से मैंने सुना कि इस तरह शाल्व ने कुछ समय के लिए मुझ पर विजय पाई। १०

फिर मैंने सब पत्थरों के तोड़नेवाले, इन्द्र के प्रिय, वज्रास्त्र को छोड़ा, और उससे दानव की चलाई सब शिलाओं को चूर-चूर कर डाला। महाराज, शिलाओं के भार और प्रहार से पीड़ित तथा शिथिल मेरे घोड़े मानों काँप रहे थे; अब वे भी स्वस्थ हुए। जैसे मेघजाल को हटाकर सूर्य के प्रकट होने पर सब लोग आनन्दित होते हैं, वैसे ही मुझे भी शिला-वृष्टि से मुक्त देखकर सब भाई-बन्धु प्रसन्नता प्रकट करने लगे। पत्थरों की वर्षा से पीड़ित और शिथिल घोड़ों को देखकर दारुक सारथी उस समय के योग्य वचन मुझसे कहने लगा—हे २०
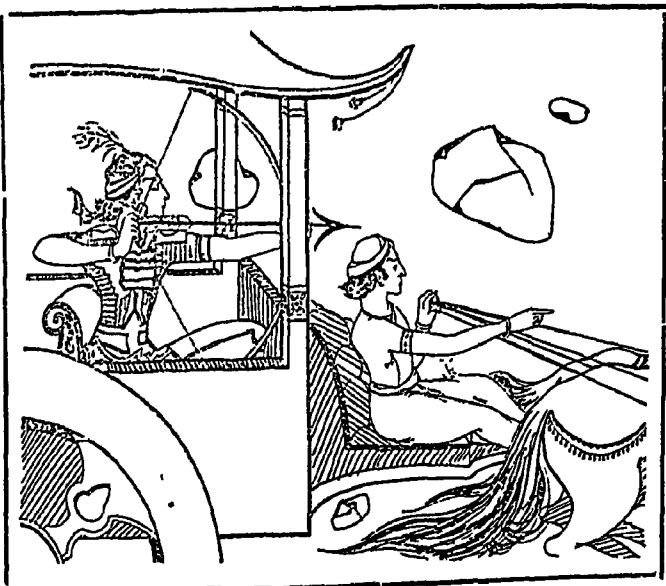
महाबाहो, देखिए, शाल्व अभी तक जीता-जागता सौभ विमान पर स्थित है। अब कोमलता और मित्र-भाव का ख़याल छोड़कर आप उसको मारने पर ध्यान दीजिए। अब उसे जीवित रखना किसी तरह आपका कर्त्तव्य नहीं। हे वीर! जिस तरह बने, शत्रु का नाश कर देना चाहिए। उसकी उपेक्षा करना किसी तरह उचित नहीं। शत्रु चाहे जितना निर्बल हो, उसे जीता न छोड़े। शत्रु यदि अपने घर पर हो तो भी उसके नाश का यत्न करना चाहिए; फिर जो सामने खड़ा युद्ध कर रहा हो उसके लिए क्या कहना है। अब आप देर न लगाइए। झटपट इस दुष्ट को नष्ट करके सबकी चिन्ता दूर कीजिए। हे श्रीकृष्ण, आपके साथ घोर युद्ध करनेवाला और अब से पहले द्वारका को तोड़-फोड़कर श्री-हीन करनेवाला दानव शाल्व कभी इस तरह के कोमल युद्ध से न मानेगा।

हे कुन्तीपुत्र, सारथी के वचन सुनकर और उन्हें ठीक समझकर मैंने शाल्व को मारने और सौभ विमान को गिराने का इरादा करके युद्ध करना आरम्भ किया। "सारथी, तनिक ठहर जा" कहकर मैंने धनुष पर आग्नेय अस्त्र चढ़ाया। इस अस्त्र की गति कहीं नहीं रुकती। यह दानवों को नष्ट करनेवाला, बहुत ही प्रबल, दिव्य अस्त्र है। इस अस्त्र को छोड़कर यक्ष, राक्षस, दानव और शत्रु राजाओं को भस्म कर डालनेवाले, शत्रुकुलनाशन, तीक्ष्ण, कालान्तक-यम-तुल्य सुदर्शन चक्र को मैंने याद दिया। "हे चक्र, तुम अपने पराक्रम से सौभ विमान और उसमें रहनेवाले सब शत्रुओं का संहार करो"—यह कहकर मैंने उस चक्र को शत्रु के विमान पर चलाया। सुदर्शन भी आकाश में पहुँचकर युगान्तकाल के तीक्ष्ण तेज-वाले सूर्य के समान प्रकाशमान हुआ। उस चक्र ने जाकर सौभ विमान के तेज को हर लिया और आरे की तरह काटकर उसके दो टुकड़े कर डाले। वह विमान दो टुकड़े होकर महेश्वर के बाण-वेग से काँपते हुए त्रिपुर की तरह गिर पड़ा। सौभ-नगर को नष्ट करके सुदर्शन मेरे हाथ में आ गया। मैंने उसे लेकर फिर वेग से शाल्व के ऊपर चलाया। महावीर शाल्व भारी गदा हाथ

काम्यकारण्य से द्वारिका जाते हुए कृष्ण की अर्जुन से भेंट—पृ० ७३७

में लेकर युद्ध कर रहा था। तेज से प्रज्वलित सुदर्शन ने देखते ही देखते उसके भी दो टुकड़े कर दिये। शाल्व के मरने पर उसके साथी सब दानव मेरे बाणों से व्याकुल होकर हाहाकार करते हुए चारों ओर भागे। सौभ विमान के पास अपना रथ खड़ा करके हर्ष प्रकट करते हुए मैंने अपना शङ्ख बजाया। उसे सुनकर मेरे इष्ट-मित्रों और भाई-बन्धुओं को अपार आनन्द हुआ। उस विमान पर जो स्त्रियाँ थीं वे सुमेरु के शिखर ऐसे ऊँचे नगर को इस तरह जलते और नष्ट होते देखकर डर के मारे भागने लगीं। इस तरह सौभ विमान को और शाल्व को नष्ट ४० करके मैं फिर आनर्त्त देश में आया और पहले की तरह अपने इष्ट-मित्रों को प्रसन्न करने लगा। हे धर्मराज, हस्तिनापुर में मेरे उपस्थित न होने का यही कारण है। मैं आ जाता तो या तो दुर्योधन ही जीता न रहता और या यह द्यूतक्रीड़ा ही न होती। पुल टूट जाने से पानी बह निकला है, अब उसका क्या उपाय है?

वैशम्पायन कहते हैं—महाबाहु मधुसूदन कौरवश्रेष्ठ युधिष्ठिर से यों कहकर सबसे यथोचित प्रणाम-सम्भाषण आदि करने के उपरान्त चलने को तैयार हुए। राजा युधिष्ठिर और भीमसेन ने कृष्ण के मस्तक को सूँघा, अर्जुन गले-मिले, नकुल और सहदेव ने प्रणाम किया, पुरोहित धौम्य ने यथोचित सम्मान किया और द्रौपदी केवल रोने लगीं। इस प्रकार युधिष्ठिर को आश्वास देकर, पाण्डवों की पूजा स्वीकार कर, सुभद्रा और अभिमन्यु सहित, सूर्यतुल्य सुवर्णमण्डित रथ पर चढ़कर श्रीकृष्ण द्वारका के लिए चल दिये। श्रीकृष्ण जब अपनी नगरी को गये तब धृष्टद्युम्न भी द्रौपदी के पुत्रों को साथ ले अपनी पुरी को रवाना हुए। चेदि-देश का राजा धृष्टकेतु अपनी बहन (नकुल की स्त्री करेणुमती) को साथ लेकर अपनी रमणीय शुक्तिमती पुरी को चल दिया। युधिष्ठिर से आज्ञा लेकर, पाण्डवों से विदा होकर सहदेव के साले केकय-नरेश ५० भी अपने नगर को चल दिये। ब्राह्मण और पुरवासी जो पाण्डवों के साथ थे वे बार-बार युधिष्ठिर के कहने पर भी उनका साथ छोड़ने को राज़ी नहीं हुए। सब मिलकर वहीं काम्यक वन में युधिष्ठिर के पास रहने लगे। कुछ समय के बाद महामनस्वी युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों का यथोचित सम्मान करके सेवकों को रथ जोतने की आज्ञा दी। ५४

तेईसवाँ अध्याय

कुरुजाङ्गलवासी प्रजा का विलाप और अर्जुन का उन्हें आश्वास देना

वैशम्पायन कहते हैं—यादवश्रेष्ठ वासुदेव के चले जाने पर युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, द्रौपदी और पुरोहित धौम्य, सब बहुमूल्य उत्तम घोड़ों से जुते रथों पर चढ़कर शिव के

समान वन को चले। जाते समय उन्होंने वेद-वेदाङ्ग के ज्ञाता ब्राह्मणों को बहुत सा सुवर्ण, वस्त्र और गायें दीं। बीस अनुचर, अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित होकर, द्वारका को गये। राजपुत्री के कपड़े, गहने, धाय, दासी आदि को साथ लेकर रथ पर चढ़कर इन्द्रसेन द्वारका को चले। नगरवासियों ने युधिष्ठिर के पास आकर उनकी प्रदक्षिणा की। कुरुजाङ्गल प्रदेश के मुख्य-मुख्य द्विजातियों ने प्रसन्नता-पूर्वक युधिष्ठिर का यथोचित सम्मान किया। युधिष्ठिर ने भी अपने भाइयों के साथ उन सबका यथोचित सम्मान किया। फिर कुरुजाङ्गल में रहनेवाली प्रजा की ओर सादर दृष्टि डालकर युधिष्ठिर कुछ रुक गये। पुत्र को देखकर पिता के मन में जैसे अनिर्वच-नीय भाव का उदय होता है वैसा ही भाव युधिष्ठिर के मन में प्रजा को देखकर उत्पन्न हुआ। वे भी पिता के समान सम्मान की दृष्टि से युधिष्ठिर की ओर निहारने लगे। वे सब कुरु-वीर धर्मराज के चारों ओर स्थित होकर हा नाथ! हा धर्म! कहते हुए सिर झुकाये आँसू बहाने लगे। प्रजा के लोग कहने लगे—हे धर्मराज, आप कुरुकुल के श्रेष्ठ अधिपति और सब प्रजा के पितारूप हैं। पुत्र-तुल्य हम नगर-वासियों और जनपदवासियों को छोड़कर आप कहाँ जा रहे हैं? नीच बुद्धिवाले दुर्योधन को धिक्कार है! पापात्मा शकुनि और कर्ण को भी धिक्कार है! हे नरेन्द्र, वही पापी इस तरह आपके अनिष्ट की चेष्टा करते हैं। हाय, अलौकिक कर्म करनेवाले आप महात्मा धर्मराज महादेव के पुर-सदृश अनुपम इन्द्रप्रस्थ को और देवगण-द्वारा रक्षित देवसभा के सदृश मयासुर की बनाई मनोहर सभा को छोड़कर कहाँ जा रहे हैं!
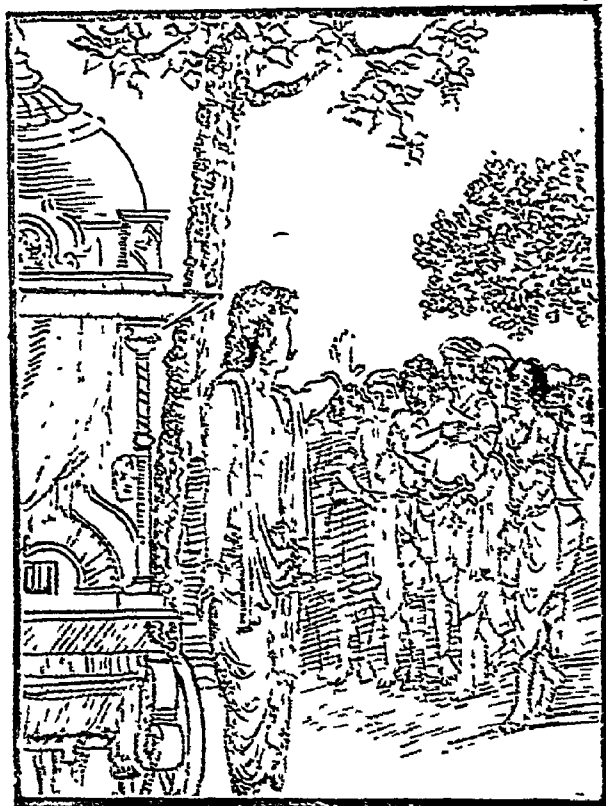
१०

प्रजा के ऐसे विलाप के वाक्य सुनकर धर्म, अर्थ और काम के ज्ञाता महातेजस्वी अर्जुन ने ज़ोर से कहा—हे ब्राह्मणो और तपस्वियो, धर्मराज इस तरह वनवास स्वीकार करके शत्रुओं के यश को हरने की चेष्टा कर रहे हैं। आप लोग प्रसन्नचित्त और एकमत होकर यही वर दीजिए कि धर्मराज की यह इच्छा पूरी हो।

अर्जुन के यों कह चुकने पर सब ब्राह्मणों और अन्य पुरुषों ने "यही हो" कहकर उसका अनुमोदन किया और धर्मराज की प्रदक्षिणा करके उनका अभिनन्दन किया। अब धर्मराज ने उनसे लौट जाने के लिए कहा। युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर, द्रौपदी और अन्य पाण्डवों को यथोचित क्रम से प्रदक्षिणा, अभिवादन, सम्भाषण आदि से सन्तुष्ट करके, बहुत ही खिन्न हो वे लोग अपने-अपने स्थान को गये। १६

चौबीसवाँ अध्याय

पाण्डवों का द्वैतवन में जाना

वैशम्पायन कहते हैं कि ब्राह्मण आदि प्रजागण के चले जाने पर सत्यप्रतिज्ञ धर्मात्मा युधिष्ठिर ने भाइयों से कहा—भाइयो, हम लोगों को बारह वर्ष तक निर्जन वन में रहना होगा। अतएव इस महावन में ऐसा रमणीय पवित्र स्थान ढूँढ़ निकालो, जहाँ बहुत से मृग और पक्षी हों, बहुत से फल-फूल हों, तपस्वी लोग रहते हों और जहाँ रहकर हम सुख से वनवास के बारह वर्ष बितावें। मनुष्यश्रेष्ठ मनस्वी युधिष्ठिर का गुरु के समान सम्मान करके अर्जुन ने कहा—हे धर्मराज, आप [द्वैपायन व्यास आदि] वृद्ध महर्षियों और ब्राह्मणों की उपासना में नित्य अपना समय बिताते हैं। मनुष्यलोक में ऐसा कुछ नहीं है जो आप न जानते हों। देवलोक, ब्रह्मलोक, गन्धर्वलोक, अप्सराओं के लोक आदि सब लोकों में सदा विचरते रहनेवाले महातपस्वी महर्षि नारद भी आपकी सेवा ग्रहण कर चुके हैं। अधिक क्या कहें, आप सब ब्राह्मणों के प्रभाव और अनुभव को विशेष रूप से जानते हैं। किस उपाय से भला हो सकता है, यह आप अच्छी तरह जानते हैं। आपकी जहाँ इच्छा हो वहीं हम लोग भी रहेंगे। सामने यह निर्मल जल से भरा जलाशय है, बहुत से मृग और पक्षी हैं; यह रमणीय द्वैतवन है। १० अगर आप पसन्द करें तो हमारी समझ में यहीं रहकर बारह वर्ष बिताये जायँ।

युधिष्ठिर ने कहा—अर्जुन, तुमने बहुत ठीक कहा; मेरी यही सलाह है। चलो, हम लोग उसी पवित्र और प्रसिद्ध स्थान द्वैतवन को चलें।

इसके बाद धर्मात्मा पाण्डव द्वैतवन की ओर चले। उनके साथ अग्निहोत्रयुक्त स्वाध्याय-निरत, निरग्निक, वनवासी और भिक्षु तथा और-और तपस्या से सिद्ध, व्रतधारी ब्राह्मण भी चले। द्वैतवन में जाकरके उन्होंने देखा, वर्षा ऋतु होने के कारण ताल, तमाल, आम, महुआ, कदम्ब, सर्ज, अर्जुन और कनैर आदि के फूले हुए वृक्षों से व्याप्त वन की अपूर्व शोभा हो रही है। मोर, दात्यूह, चकोर, कोकिल आदि पक्षी वृक्षों की डालियों पर चढ़े मधुर स्वर से केलिकलरव कर रहे हैं। उस महावन में युधिष्ठिर ने बड़े-बड़े मतवाले हाथियों

को हथिनियों-समेत देखा। पाण्डवों ने रमणीय भोगवती नदी के पास पहुँचकर देखा
२० सिद्ध-ऋषिगण पुण्यात्मा जटा-वल्कलधारी धार्मिक ऋषियों के आश्रमों में स्थित हैं।

इसके उपरान्त धर्मात्मा पुरुषों में श्रेष्ठ युधिष्ठिर ने रथ से उतरकर, इन्द्र जैसे स्वर्ग-भवन में प्रवेश करें वैसे द्वैतवन में प्रवेश किया। चारण और सिद्धगण उन्हें देखने के लिए आकर जमा हुए। वनवासी लोग उन्हें घेरकर खड़े हुए। सिद्धों ने राज-योग्य सम्मान से उनका पूजन किया। युधिष्ठिर आदि पाण्डवों ने भी उनको प्रणाम किया। फिर ब्राह्मणों-सहित युधिष्ठिर ने हाथ जोड़कर महर्षियों के आश्रम में प्रवेश किया। वहाँ धर्म-परायण तपस्वियों ने पुण्यशील युधिष्ठिर की पिता के समान पूजा की। इसके उपरान्त धर्मराज वृक्ष के नीचे जा बैठे। भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, द्रौपदी और अन्यान्य अनुचर भी अपने थके हुए घोड़ों को विश्राम के लिए छोड़कर युधिष्ठिर के समीप जा बैठे। पाण्डवों के इस प्रकार बैठने पर वह लिपटी हुई लताओं से झुका हुआ महावृक्ष
२६ हाथियों के झुण्ड-सहित महापर्वत के समान जान पड़ने लगा।

पचीसवाँ अध्याय

मार्कण्डेय का आना और उपदेश करना

वैशम्पायन कहते हैं—सुख के योग्य, इन्द्रतुल्य पाण्डवगण द्वैतवन में जाकर शालवन से परिपूर्ण सरस्वती के तट पर कष्ट सहते हुए रहने लगे। वन में रहने की दशा में भी धर्मराज युधिष्ठिर फल-मूल आदि के द्वारा यति, मुनि और ब्राह्मणों का पालन-पोषण और सत्कार करते थे। महातेजस्वी पुरोहित धौम्य महावन-निवासी पाण्डवों के पिता की तरह इष्टिकर्म और पितृकर्म सब करते रहते थे। इसी अवसर में एक दिन तीव्र और बढ़े हुए तेज से प्रकाशमान महर्षि

मार्कण्डेयजी राज्यभ्रष्ट वनवासी श्रीमान् पाण्डवों के आश्रम में अतिथि के रूप से आये। महामान्य युधिष्ठिर ने अनुपम बलवीर्यवान्, प्रज्वलित अग्नि के तुल्य, देव-ऋषि-मनुष्य-पूजित महर्षि मार्कण्डेय को आये हुए देखकर विधि से उनकी पूजा की। सर्वज्ञ और परमतेजस्वी मार्कण्डेयजी भार्या और भाइयों-सहित युधिष्ठिर को देखकर मन ही मन श्रीरामचन्द्र का स्मरण करके तपस्वियों की मण्डली में हँस पड़े। यह देखकर धर्मराज ने उदास होकर कहा—भगवन्, आप मुझे देखकर प्रसन्नता से हँस पड़े, यह देखकर सब तपस्वी लज्जित हुए हैं।

मार्कण्डेय ने कहा—वत्स, मैं प्रसन्न नहीं हुआ, मैं हँसा भी नहीं और हर्ष से उपजा हुआ घमण्ड भी मुझे छू नहीं गया। तुम्हारी ऐसी दशा देखकर मुझे सत्यव्रत दशरथ के पुत्र रामचन्द्र का स्मरण हो आया। वे भी राजपुत्र थे। पिता की आज्ञा से वनवासी होकर उन्हें भी मैंने लक्ष्मण के साथ धनुष लिये ऋष्यमूक पर्वत पर विचरते देखा है। महात्मा रामचन्द्र इन्द्र के तुल्य, काल के भी काल, नमुचि के मारनेवाले, समर में अजेय और पापरहित थे। समर्थ होते हुए भी उन्होंने सब सुख छोड़कर वन में बसकर सत्यधर्म का पालन किया। नाभाग, भगीरथ आदि समुद्रपर्यन्त पृथ्वी के चक्रवर्ती राजा थे। उन्होंने भी एकमात्र सत्य के प्रभाव से सब लोकों को जीता है। काशी और करूष देश के राजा अलर्क ने सब राज्य और ऐश्वर्य का त्याग करके भी सत्य का पालन किया। विधाता के नियम को मानते हुए सप्तर्षिगण आकाशमण्डल में प्रकाशित हो रहे हैं। हे नरेन्द्र, क्या महाबली पर्वताकार नागगण और क्या अन्य प्राणी, कोई भी आज तक विधाता के बहुत प्राचीन काल से स्थापित नियम का उल्लङ्घन नहीं कर सका। इसलिए सामर्थ्य होने पर भी विधिकृत नियम को लाँघकर अधर्म करना किसी तरह उचित नहीं। हे पार्थ! तुम सत्य, धर्म, व्यवहार और लोकलज्जा में सभी से बढ़ गये हो। तुम तेज और यश की राशि से तपते हुए सूर्य के समान उज्ज्वल हो रहे हो। क्लेशदायक इस वनवास के व्रत को नियम के अनुसार पूरा करके तुम अपने बाहु-बल के द्वारा कौरवों के हाथ से राजलक्ष्मी का उद्धार करोगे। १०

वैशम्पायन कहते हैं—तपस्वियों के बीच में इस प्रकार धर्मराज को उपदेश देकर, सबसे बिदा होकर, मार्कण्डेयजी उत्तर दिशा को चल दिये। १९

छब्बीसवाँ अध्याय

वकदाल्भ्य ऋषि का समागम

वैशम्पायन कहते हैं—महात्मा पाण्डवों के रहते समय उस महावन में ब्राह्मणों का जमघट बना रहता था। ब्राह्मणों के वेदपाठ की ध्वनि से वह स्थान ब्रह्मलोक सा जान पड़ता था। ब्राह्मण लोग ऋक्, यजुः, साम की मनोहर ऋचाएँ पढ़ते थे। पाण्डवों के धनुषों की डोरी के

शब्द के साथ वह शब्द मिलने से जान पड़ता था कि ब्रह्मतेज क्षत्रियतेज से मिलकर अत्यन्त सुशोभित हो रहा है।

एक दिन सन्ध्या के समय महात्मा धर्मराज ऋषियों के बीच में बैठे थे। इसी समय बकदाल्भ्य मुनि उनके पास आये। उन्होंने युधिष्ठिर से कहा—हे कुन्तीनन्दन, देखो, द्वैतवन-वासी तपस्वी ब्राह्मणों के होम करने का समय उपस्थित होने से होम की आग कैसी प्रज्वलित हो रही है। इस पुण्य आश्रम में महाभाग भृगु, अङ्गिरा, वशिष्ठ, कश्यप, अगस्त्य और अत्रि ऋषि के वंश के श्रेष्ठतम ब्राह्मण, आपके द्वारा सुरक्षित होकर, आपके साथ धर्म का आचरण कर रहे हैं। हे कौरव, मैं इस समय आपको कुछ [हित की] बातें सुनाना चाहता हूँ; भाइयों के साथ एकाग्र होकर सुनिए। आग जैसे हवा की सहायता से प्रज्वलित होकर सारे वन को जला देती है वैसे ही ब्रह्मतेज, अगर क्षत्रियतेज का सहायक हो तो, अत्यन्त भयानक आकार धारण करके १० शत्रुकुल का नाश करता है। ब्राह्मणों की सहायता के विना कोई इस लोक या परलोक में अच्छी गति नहीं पा सकता। जिन ब्राह्मणों ने धर्म और अर्थ के बारे में ज्ञान प्राप्त करके मोह-जाल को काट डाला है उनकी सहायता पाकर राजा लोग सहज ही अपने शत्रुओं का नाश कर देते हैं। राजा बलि ने प्रजापालन के अर्थ मोक्षधर्म का आचरण करने के लिए ब्राह्मणों की ही सेवा की थी और उसी से उनका मनोरथ सिद्ध हुआ था। ब्राह्मणों के प्रसाद से उन्हें समुद्र-पर्यन्त पृथ्वी और अचल राजलक्ष्मी प्राप्त हुई। अन्त को ब्राह्मणों का अपमान करने से ही राजा बलि का सर्वनाश हुआ। यह रत्नगर्भा पृथ्वी ब्राह्मणसेवा-विमुख व्यक्ति के अधीन रहना नहीं चाहती। जो कोई भक्ति और श्रद्धा के साथ ब्राह्मणों के उपदेश को मानता है उसी को यह पृथ्वी अपना स्वामी बनाती है। संग्राम-भूमि में अंकुश की चोट से हाथी का बल जैसे घट जाता है वैसे ही ब्राह्मण-विमुख क्षत्रिय के बल का भी नाश हुआ करता है। ब्राह्मण की अनुपम कृपादृष्टि और क्षत्रिय का अप्रतिम बल, दोनों के मिल जाने पर तीनों लोक वश हो सकते हैं। प्रज्वलित आग जैसे हवा की सहायता पाकर जलाने की चीज़ों को भस्म कर देती है वैसे ही राजा लोग ब्राह्मणों की सहायता से अपने शत्रुओं की जड़ को खोदकर फेंक सकते हैं। मेधावी चतुर पुरुष सदा अप्राप्त वस्तु को पाने और प्राप्त वस्तु को बढ़ाने के विचार से ब्राह्मणों के उपदेश ग्रहण करते हैं। इसलिए हे महाराज, आप भी अप्राप्त वस्तु को पाने के लिए और प्राप्त वस्तु को बढ़ाने तथा यथायोग्य दान करने के लिए यशस्वी, वेद और वेदाङ्ग के ज्ञाता, शास्त्रज्ञानयुक्त ब्राह्मणों की सेवा कीजिए। हे युधिष्ठिर, आप सदा ब्राह्मणों के ऊपर हृदय से भक्ति और श्रद्धा रखते हैं। इसी २० कारण सभी लोकों में आपका निर्मल यश अपना उज्ज्वल प्रकाश फैला रहा है।

वैशम्पायन कहते हैं—इस प्रकार बकदाल्भ्य ऋषि को युधिष्ठिर की प्रशंसा करते देखकर सब ब्राह्मण बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने उक्त मुनि का बहुत सत्कार किया। ऋषि लोग स्वर्ग-

लोक में जैसे इन्द्र का पूजन करते हैं वैसे ही द्वैपायन, नारद, जामदग्न्य, पृथुश्रवा, इन्द्रद्युम्न, भालुकि, कृतचेता, सहस्रपाद, कर्णश्रवा, मुञ्ज, लवणाश्व, काश्यप, हारीत, स्थूणकर्ण, अग्निवेश्य, शौनक, कृतवाक्, सुवाक्, बृहदश्व, विभावसु, ऊर्द्ध्वरेता, वृषामित्र, सुहोत्र और होत्रवान् आदि मुनियों और अनेकानेक व्रतधारी ब्राह्मणों ने महाराज युधिष्ठिर का यथोचित रूप से सत्कार किया। २५

सत्ताईसवाँ अध्याय

द्रौपदी का खेद प्रकट करना

वैशम्पायन कहते हैं—इस प्रकार वन में पाण्डव लोग एक दिन सन्ध्या-समय द्रौपदी के साथ बैठे हुए शोक-दुःख-पूर्ण हृदय से तरह-तरह की बातें कर रहे थे। प्रिया, दर्शनीया, बुद्धिमती, पतिव्रता द्रौपदी ने युधिष्ठिर से कहा—हे धर्मराज, हम लोगों के लिए उस पापी नराधम दुर्योधन को तनिक भी दुःख नहीं हुआ। दुरात्मा ने मेरे साथ तुमको भी मृगछाला पहनाकर वन को भेजा, और इसके लिए उसे तनिक भी सन्ताप नहीं हुआ। तुम धर्मात्मा और बड़े भाई थे, इसका ख़याल न करके उसने तुम्हें कड़वे वचन कहे। उस क्रूर कर्म करनेवाले दुर्योधन का हृदय अवश्य लोहे का बना हुआ है। तुम सुख भोगने के योग्य और दुःख के अयोग्य हो। पापी ने तुम्हारी ऐसी दुर्दशा की और आप अपने इष्ट-मित्रों के साथ मौज कर रहा है। हे भरत-कुलश्रेष्ठ, तुम जब मृगछाला पहनकर वनवास के लिए चले तब और सब कौरव तो दुःखित होकर आँसू बहा रहे थे किन्तु दुष्ट शकुनि, कर्ण, दुर्योधन और उसका नीच भाई दुःशासन, इन चारों नीचों की आँखों में आँसू नहीं देख पड़े। महाराज, तुम्हारे

पुराने और नये बिछौनों का ख़याल करके, तुम्हें सुख के योग्य और दुःख के अयोग्य सोचकर, मैं शोक कर रही हूँ। तुम सभा में हाथीदाँत के रत्नजटित सिंहासन पर बैठते थे; आज तुम्हें १०

इस कुशासन पर बैठे देखकर मैं शोक से पीड़ित हो रही हूँ। मैंने तुमको सभा में राजाओं की मण्डली में बैठे देखा है। इस समय तुमको वन में बैठे देखकर मेरा हृदय कैसे शान्ति पा सकता है? पहले तुम्हारे शरीर में चन्दन का अङ्गराग लगता था और तुम सूर्य के समान प्रकाशित होते थे; अब तुम्हारे शरीर को धूल से भरा मलिन देखकर मैं मोह से शिथिल हो रही हूँ। हे राजेन्द्र, मैंने तुम्हें सफ़ेद रेशमी कपड़े पहने देखा है और अब बल्कल धारण किये हुए देख रही हूँ। पहले सोने के पात्र हाथ में लिये हज़ारों ब्राह्मण तुम्हारे घर से सुन्दर स्वादिष्ठ भोजन ले जाते थे; तुम गृहस्थ, गृहहीन (ब्रह्मचारी), यति आदि को स्वादिष्ठ भोजन देते थे; पहले तुम्हारे घर में अन्यान्य हज़ारों आदमी और ब्राह्मण इच्छानुसार विधिपूर्वक पूजा और सत्कार पाते थे। इस समय यह कुछ न देखकर मेरे हृदय में शान्ति कैसे रह सकती है? महाराज, उज्ज्वल कुण्डल कानों में पहने नौजवान रसोइये जिन तुम्हारे भाइयों को सुपक्व विशुद्ध भोजन कराते थे उन्हीं दुःख पाने के अयोग्य महात्मा पाण्डवों को वन के कन्द-मूल-फल खाकर पेट पालते २० देख मुझसे किसी तरह धैर्य नहीं रक्खा जाता। हे धर्मपुत्र, ये भीमसेन अकेले ही सब काम करने में समर्थ हैं। ये कभी किसी काम में विचलित नहीं होते। सुखभोग में रहकर अनेक सवारियों, कपड़े-गहने आदि से इनका सत्कार होता रहा है। इस समय इन्हें दुःखित और वनवासी देखकर, क्रोध प्रकट करने का समय उपस्थित होने पर, भी तुम्हें क्रोध क्यों नहीं आता? महाप्रभावशाली भीमसेन सब कौरवों का संहार करने के लिए हाथ उठाये तैयार हैं; केवल तुम्हारी प्रतिज्ञा का पालन करने के ख़याल से कुछ नहीं करते। हे धर्मराज, जो अर्जुन दो हाथवाले होकर भी सहस्रबाहु अर्जुन के समान हैं; जो बाणवर्षा के द्वारा यमराज के समान शत्रुओं का नाश कर सकते हैं; जिनके शस्त्र के प्रताप से झुककर राजाओं ने तुम्हारे राजसूय यज्ञ में ब्राह्मणों की उपासना की; जो एक रथ पर चढ़कर सब देवता, मनुष्य और नाग आदि महाबलियों को परास्त करनेवाले हैं; जिन्होंने अद्भुत आकारवाले रथ, घोड़े, हाथी आदि से युक्त होकर बलपूर्वक सब राजाओं से धन वसूल किया; जो एक बार में पाँच सौ बाण चलाते हैं; ३० उन्हीं देव-दानव-पूजित पुरुषसिंह अर्जुन को चिन्तित देखकर भी क्यों तुम्हें क्रोध नहीं आता? महाराज, सुख के योग्य और दुःख सहने के अयोग्य उन वीर अर्जुन को वनवासी देखकर भी तुम्हें क्रोध नहीं आता, यह देखकर मैं मोह से शिथिल हो रही हूँ। हे नरेन्द्र! साँवले, बलवान्, नौजवान, ढाल-तलवार चलाने की विद्या में श्रेष्ठ नकुल और शूर तथा त्रिलोकसुन्दर दर्शनीय सहदेव को दुःखित तथा वनवासी देखकर भी क्यों तुम्हारे हृदय में क्रोध की आग नहीं भड़कती? मैं महाप्रतापी राजा द्रुपद की कन्या, महात्मा पाण्डु की बहू, धृष्टद्युम्न की बहन, वीर पाण्डवों की सहधर्मिणी तथा पतिव्रता हूँ। मुझे भी वन में कष्ट पाते देखकर तुम क्यों क्षमा को नहीं छोड़ते? हे भरतश्रेष्ठ, जब भाइयों को और मुझको इस प्रकार दुर्दशा में देख-

कर भी तुम्हारा हृदय व्यथित नहीं होता तब मुझे निश्चित रूप से मालूम होता है कि तुममें क्रोध नहीं है। "क्रोध से शून्य क्षत्रिय नहीं है", यह प्रसिद्ध कहावत आज तुममें निरर्थक जान पड़ती है। महाराज, जो क्षत्रिय समय पाकर भी अपना तेज नहीं दिखाता उसका सबसे पराभव होता है। इसलिए शत्रु से क्षमा का व्यवहार करना तुम्हें किसी तरह उचित नहीं; क्योंकि केवल तेज से ही शत्रुओं का संहार किया जा सकता है। वैसे ही जो क्षत्रिय क्षमा के समय क्षमा नहीं करता, वह सबका अप्रिय होकर इस लोक और परलोक दोनों को खो देता है। ४०

अट्ठाईसवाँ अध्याय

बलि और प्रह्लाद का इतिहास

द्रौपदी ने कहा—हे भरतश्रेष्ठ, यहाँ पर मैं पुराणवर्णित बलि-प्रह्लाद-संवाद नाम का एक प्राचीन इतिहास कहती हूँ; सुनिए। एक समय दैत्यराज बलि ने सम्पूर्ण धर्मशास्त्र के ज्ञाता महाबुद्धिमान् प्रह्लाद से पूछा—हे तात, क्षमा और तेज (क्रोध), दोनों में अच्छा क्या है? ठीक-ठीक वर्णन करके संशय दूर कीजिए। हे धर्मज्ञ, इस विषय में जो मङ्गलकर हो सो आप निश्चित रूप से कहिए। मैं आपकी आज्ञा के अनुसार ही सब काम करूँगा।

सब निश्चित सिद्धान्तों के ज्ञाता महाबुद्धिमान् प्रह्लादजी बलि के यों पूछने पर कहने लगे—हे पुत्र, यह निश्चय समझो कि सदा क्रोध दिखाना या सदा क्षमा करना, दोनों ही बातें अच्छी नहीं। सदा क्षमा से ही काम लेनेवाले आदमी का बहुत कुछ अनिष्ट हो जाता है। सेवक, शत्रु और किसी तरह का वास्ता न रखनेवाले लोग भी उसे बिलकुल नहीं दबते। कोई उसके आगे नहीं झुकता। इसी से पण्डितों ने सदा क्षमा करने की मनाही की है। सेवक लोग ऐसे क्षमाशील व्यक्ति को तुच्छ समझकर अनेक प्रकार के दोषों की खान बन जाते हैं। छोटी तबियत के आदमी उसकी धन-सम्पत्ति ले लेने के लिए हाथ बढ़ाते हैं। ओछे विचारोंवाले पदाधिकारी उसकी सवारी, कपड़े, गहने, शयन, आसन

१० और भोजन-पान की सब सामग्री अपना लेते हैं। अधिक कहाँ तक कहूँ, सेवक लोग ऐसे प्रभु की आज्ञा पाकर भी उसे उसकी माँगी हुई चीज़ नहीं देते या उसका स्वामी का सा सम्मान नहीं करते—उसका कहना नहीं मानते। संसार में इस तरह अनादर का होना मौत से भी बढ़कर कष्ट की बात है। अधिक क्या कहूँ, हे पुत्र, सदा क्षमाशील या क्रोधहीन आदमी के पुत्र, नौकर, अनुचर और अपने-पराये सभी उसे कटु वचन सुनाते हैं; लोग उसे दबा पाते हैं तो उसकी स्त्री का सतीत्व नष्ट करने को उतारू हो जाते हैं—उसकी स्त्री स्वयं भी उसे न दबकर मनमाना आचरण करने लगती है। शासक पुरुष अगर दण्ड का प्रयोग नहीं करता तो सेवक नित्य उत्सव मनाते और बिगड़ जाते हैं तथा दुष्ट लोग और भी बढ़कर अत्याचार करने लगते हैं। हे बलि, क्षमाशील पुरुष इन और अन्य बहुत से दोषों का घर होता है।

अब सदा क्रोध करनेवाले पुरुष के दोषों का वर्णन करता हूँ—सुनो। क्रोधी आदमी सदा मोहवश होकर योग्य और अयोग्य दोनों को बहुविध दण्ड देता है। वह क्रोध की तेज़ी के मारे मित्रों से भी विरोध करने लग जाता है और इसी प्रकार सब लोगों का अप्रिय बन जाता है। अपमान, धन की हानि, उलाहना, अनादर, सन्ताप, द्वेष, मोह और वैर की उत्पत्ति यही सब क्रोध के परिणाम हैं। कहने का तात्पर्य यह कि लगातार क्रोधवश होकर लोगों को बेजा दण्ड देने से मनुष्य शीघ्र ही ऐश्वर्य से भ्रष्ट होकर मारा जाता है; स्वजन भी उसका साथ छोड़ देते २० हैं। जो कोई क्रोध के वश होकर अपने विरोधी और उपकारी, दोनों के प्रति तेज का प्रयोग करता है वह घर में आये हुए साँप की तरह सबके लिए शङ्का का कारण होता है। लोग जिससे यों घबराते हैं उसके मङ्गल की सम्भावना कहाँ? बल्कि उसका स्वभाव देखकर सभी उससे खीझ जाते हैं। इस कारण अत्यन्त क्रोध या अत्यन्त क्षमा, दोनों बातें युक्ति-सङ्गत नहीं। समय देखकर कठोर या कोमल व्यवहार करना ही भला है। जो आदमी समय पर नर्मी और गर्मी दिखाता है वह इस लोक और परलोक, सब जगह परम सुख पाता है।

अब मैं उन अवसरों का वर्णन करता हूँ, जब अवश्य क्षमा करनी चाहिए। जिसने पहले कभी तुम्हारा उपकार किया हो वह चाहे जितना बड़ा अपराध करे, प्रत्युपकार करके उसको क्षमा करना चाहिए। जो व्यक्ति नासमझी या मूर्खता के कारण अपराध करे, उसको भी क्षमा करना चाहिए; क्योंकि सभी का बुद्धिमान् होना निपट असम्भव है। किन्तु जो लोग जान-बूझकर अपराध करें और उस पर भी धाँधली करके सत्य का अपलाप करने को तैयार हों, उनका दोष थोड़ा होने पर भी उनका संहार करना ही ठीक है। पहली बार दोष करने पर हर एक व्यक्ति को क्षमा कर दिया जा सकता है; लेकिन दुबारा साधारण अपराध करने पर उसे दण्ड देना चाहिए। अगर कोई भूल से कुछ अपराध करे, और जाँच करने से यह मालूम हो जाय कि वास्तव में वह अपराध अज्ञान से ही हुआ है तो अपराधी को माफ़ी दे देनी

चाहिए। क्षमाशील व्यक्ति उग्र और कोमल स्वभाव के सभी का संहार कर सकता है। ऐसी ३० कोई बात नहीं जो क्षमा के लिए असाध्य हो। इस कारण क्षमा ही सब प्रकार के उपायों से बढ़कर बल रखती है। कहने का मतलब यह कि देश, समय और अपनी क्षमता को देखकर संसार के हर एक काम में हाथ डालना चाहिए। इसके सिवा कभी-कभी लोकनिन्दा के डर से भी अपराधी को क्षमा करना ठीक होता है। पण्डितों ने क्षमा के ये सब समय बतलाये हैं। इनके सिवा अन्य समय क्रोध प्रकट करने का अवसर समझना चाहिए।

इस प्रकार प्रह्लाद और बलि के संवाद का इतिहास समाप्त करके द्रौपदी ने युधिष्ठिर से कहा—महाराज, मैं समझती हूँ कि तुम्हारे भी क्रोध प्रकट करने का यह ठीक समय आ गया है। लोभी प्रकृतिवाले धृतराष्ट्र के पुत्र सदा से तुम्हारी बुराई की चेष्टा कर रहे हैं। इस कारण अब उनके प्रति क्षमा का व्यवहार करना तुमको उचित नहीं। अपना क्रोध या तेज प्रकट करने का यह शुभ समय आ गया है। इस कारण अब तुम्हें कर्तव्य समझकर तेज प्रकट करना चाहिए। सभी लोग कोमल स्वभाववाले व्यक्ति का अनादर करते हैं और उग्र स्वभाववाले व्यक्ति से डरते हैं। इस कारण समय के अनुसार कोमलता या उग्रता प्रकट करनी चाहिए। समयानुसार इन दोनों का जो ठीक उपयोग करता है वही राजा है। ३६

उनतीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर का क्रोध की बुराइयाँ दिखाना

युधिष्ठिर ने कहा—हे महाबुद्धिमती द्रौपदी, क्रोध ही मनुष्य के नाश और (जीत लेने पर वही) वृद्धि का कारण है। सब शुभ और अशुभ घटनाएँ क्रोध से ही हुआ करती हैं। हे शुभे, जो कोई क्रोध के वेग को रोक सकता है उसी का भला होता है। जो कोई दारुण क्रोध के वेग को रोकने में बिलकुल असमर्थ है उसका वह क्रोध ही उसके नाश का कारण बन जाता है। इस जगत् में क्रोध से ही प्रजा का विनाश होते देखा जाता है। तुम्हीं सोचो, मुझ ऐसा पुरुष किस तरह ऐसा घोर क्रोध कर सकता है? मनुष्य-क्रोध से अनेक प्रकार के पाप करते हैं। वे गुरुजन के भी प्राणघातक बन जाते हैं; अत्यन्त कठोर वाक्य कहकर अत्यन्त श्रेष्ठ व्यक्ति का भी अपमान करने में लज्जित नहीं होते। उनमें बिलकुल ही वाच्य-अवाच्य (कहने योग्य, न कहने योग्य) का ज्ञान और कार्य-अकार्य का विचार नहीं रहता। वे मार डालने योग्य की पूजा और पूजनीय की हत्या तक कर डालने में नहीं हिचकते। यहाँ तक कि बहुत लोग क्रोध के वेग को न सँभाल सकने के कारण अकाल में ही आत्महत्या करके मर जाते हैं। पण्डित

लोग इन दोषों को देख एकदम क्रोधशून्य होकर इस लोक और परलोक में सुखी रहते हैं। अतएव मुझ ऐसा पुरुष किस तरह उस साधुजन-निन्दित क्रोध को आश्रय दे सकता है? हे द्रौपदी, इन्हीं सब बातों पर विशेष रूप से विचार करके मुझे क्रोध नहीं आता। क्रोधी पर क्रोध न करना, मानों अपनी और अन्य व्यक्ति की भारी डर से रक्षा करना है। मूढ़ दुर्बल व्यक्ति अगर बलवान्
१० से हारकर क्लेश भोगे तो वह क्रोध से अन्धा होकर अपना भी नाश कर सकता है। असंयत-चित्त आत्मघाती का यह लोक और परलोक, दोनों बिगड़ जाते हैं। इसलिए हे द्रौपदी, सब प्रकार से क्रोध को रोकना ही दुर्बल के लिए भला है। विद्वान् व्यक्ति बलवान् होकर भी अगर क्लेश देनेवाले पर कोप न करे तो वह निस्सन्देह परलोक में परम आनन्द भोगता है। अतएव बलवान् या दुर्बल, दोनों को यही उचित है कि पीड़ा पहुँचानेवाले को आपत्तिकाल में भी क्षमा करें। जिसने क्रोध को जीत लिया है उसकी साधुजन बड़ाई करते हैं और कहते हैं कि क्षमाशील व्यक्ति की ही सर्वत्र जय होती है। मिथ्या की अपेक्षा सत्य और निर्दयता की अपेक्षा दया सर्वथा कल्याणकारिणी और श्रेष्ठ है। हे द्रौपदी, दुर्योधन जो मार डालने के लिए भी तैयार हो तो मुझ ऐसा पुरुष, बहुदोषमय और सज्जनों-द्वारा निन्दित, क्रोध को कभी अपने हृदय में स्थान नहीं दे सकता। जिसका क्रोध आन्तरिक नहीं होता उसी को बहुदर्शी पण्डित लोग तेजस्वी कहते हैं। जो व्यक्ति क्रोध को समझदारी (प्रज्ञा) से रोकता है वही, विद्वान् तत्त्वदर्शी जनों की राय में, तेजस्वी है। हे द्रौपदी, कुपित पुरुष कार्य के ठीक रूप को नहीं देख पाता। वह गुरुजन को पीड़ा पहुँचाने, मर्यादा का उल्लंघन करने, अवध्य का वध आदि अनुचित कर्म करने लगता है। अतएव तेजस्वी पुरुष को क्रोध से सदा दूर रहना चाहिए। क्रोध के वश होने से निपुणता, अमर्ष, शूरता, फुर्ती आदि तेज के गुण नहीं प्राप्त हो सकते; ये गुण तो नम्रता से ही प्राप्त
२० होते हैं। क्रोध को छोड़ देने से पुरुष यथासमय तेज को प्राप्त कर सकता है। क्रोधी पुरुष के लिए तेज दुर्लभ है। ठीक समय पर तेज का प्रयोग करने से वह अत्यन्त दुस्सह हो उठता है। बुद्धिहीन लोग ही क्रोध को तेज कहते हैं। क्रोध रजोगुण का परिणाम है और लोकनाश के लिए ही वह मनुष्यों में उत्पन्न किया गया है। इस कारण साधु-स्वभाव पुरुष को क्रोध से बचना चाहिए। यहाँ तक कि अपने धर्म का त्याग अच्छा, पर क्रोध अच्छा नहीं। हे अनिन्दिते, अत्यन्त अज्ञान के अँधेरे में अन्धा मनुष्य ही अनायास क्षमा आदि गुणों को छोड़कर क्रोध को प्रकट कर सकता है। अगर मुझ ऐसा पुरुष इस प्रकार का आचरण करे तो लोग क्या कहेंगे? अगर लोक में पृथ्वी के समान क्षमाशील लोग न होते तो सब जगह सदा समर की आग जलती रहती; कोई भी क्रोध छोड़कर मेल करना न चाहता। जो सभी लोग अनिष्ट करनेवाले के अनिष्ट की चेष्टा करके उससे बदला लेना चाहते तो सब जगत् चौपट हो जाता और सब जगह अधर्म बढ़ जाता। हे द्रौपदी, अगर क्रोध से अन्धा होकर पिता पुत्र को और पुत्र पिता को, अथवा स्त्री

पति को और पति स्त्री को मार डाले तो सब संसार का संहार हो जाय और प्रजा की उत्पत्ति बन्द हो जाय। इसलिए हे सुन्दरी, मेल को ही तुम प्रजा की उत्पत्ति [और अभ्युदय] का कारण जानो। हे द्रौपदी, लोग अगर हेलमेल को पसन्द न करते तो परस्पर क्रोध के आवेश में आकर एक दूसरे को मार डालते। पृथ्वी पर पृथ्वी के समान क्षमाशील लोग रहते हैं, इसी से प्रजा की उत्पत्ति और उन्नति होती है। इस कारण हे सुशोभने, सब प्रकार की आपत्तियों में क्षमा करना ही ठीक है; क्योंकि क्षमाशील व्यक्ति ही सब प्राणियों की उत्पत्ति का कारण कहे गये हैं। जो गाली-मार खाकर और क्रोधित होकर भी अपकार करनेवाले की बुराई नहीं चाहते—क्षमा करते हैं—जिन्होंने क्रोध को बिलकुल जीत लिया है, वही विद्वान् और साधु पुरुष कहाते हैं; उन्हीं को सनातन लोक प्राप्त होते हैं। क्रोधी और थोड़ी समझवाले मूढ़ पुरुष के दोनों लोक नष्ट हो जाते हैं। ३८

हे द्रौपदी, क्षमाशील महात्मा काश्यप ने इस सम्बन्ध में जो गाथा कही है सो कहता हूँ—सुनो। जिन्हें विश्वास है कि क्षमा ही धर्म, यज्ञ, वेद और शास्त्र है वे सबसे क्षमा का व्यवहार करते हैं। वास्तव में क्षमा ही ब्रह्म और सत्य है, भूत और भविष्य है, तप और शौच है। क्षमा ही इस जगत् को धारण किये हुए है। क्षमाशील पुरुष को यज्ञवेत्ता, ब्रह्मवेत्ता और तपस्वी पुरुषों की अपेक्षा भी श्रेष्ठ गति मिलती है। जुदे-जुदे कर्म करनेवाले लोगों की जुदी-जुदी गतियाँ निर्दिष्ट हैं; किन्तु क्षमाशील मनुष्य की पूजित गति ब्रह्मलोक में ही निर्दिष्ट है। तेजस्वियों का तेज, तपस्वियों का ब्रह्म और सत्यवादियों का सत्य क्षमा ही है। क्षमा में ही यज्ञ और शान्ति प्रतिष्ठित है। हे द्रौपदी! ब्रह्म, यज्ञ, सत्य और सब लोक जिसके आधार पर स्थित हैं उस क्षमा को मुझ ऐसा पुरुष कैसे छोड़ सकता है? ज्ञानी पुरुष सदा क्षमा को धारण करते हैं, इसी से उन्हें ब्रह्मलोक मिलता है। क्षमाशील पुरुषों को इस लोक और परलोक, दोनों में सद्गति प्राप्त होती है। वे इस लोक में बहुत सम्मान और परलोक में उत्तम गति पाते हैं। क्षमा के प्रभाव से जिनका क्रोध दूर हो गया है वे देहान्त होने पर परम पवित्र लोक में जाते हैं। इसलिए क्षमा ही सबसे श्रेष्ठ पुरुषार्थ है। हे द्रौपदी, महर्षि काश्यप ने क्षमाशील पुरुषों के सम्बन्ध में यह पवित्र गाथा कही है। तुमने क्षमा के सम्बन्ध की सब बातें सुन लीं; अब क्रोध छोड़कर प्रसन्न हो। भीष्म पितामह और श्रीकृष्ण, दोनों महात्मा शान्ति (क्षमा) को ही श्रेष्ठ मानते हैं। कृपाचार्य, विदुर, सञ्जय, सोमदत्त, युयुत्सु, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा और हमारे पितामह व्यास-देव, ये सब क्षमा की बड़ी सराहना किया करते हैं। यदि पूर्वोक्त महात्मा पुरुष राजा धृतराष्ट्र को शान्ति की राह पर चलावें तो वे अवश्य हम लोगों को राज्य लौटा सकते हैं; नहीं तो लोभ-वश होने से वे निस्सन्देह नष्ट हो जायँगे। मुझे जान पड़ता है, भरत-वंश के नाश के लिए यह दारुण समय आया है। हे भामिनी, मुझे पहले से ही यह विश्वास है कि सुयोधन कभी ४० ५०

क्षमा को नहीं ग्रहण कर सकता; क्योंकि वह उसका पात्र ही नहीं। मैं क्षमा के योग्य पात्र हूँ, इसी से क्षमा ने स्वयं मेरा आश्रय ग्रहण किया है। कहने का तात्पर्य यह कि क्षमा और दया महात्माओं का प्रधान चिह्न और सनातन धर्म है। इससे मैं अवश्य ही क्षमा और दया
५२ को धारण करूँगा।

तीसवाँ अध्याय

फिर द्रौपदी की उक्ति

द्रौपदी ने कहा—पूर्व-पुरुष-परम्परा से चले आ रहे राज्य का पालन करने के बारे में आपको भ्रम और मोह में डालनेवाले धाता (ईश्वर) और विधाता (पूर्व कर्म) को प्रणाम है। कर्म के द्वारा, भिन्न-भिन्न गतियों के अनुसार, जुदे-जुदे लोक मिलते हैं। इस कारण कर्म ही नित्य पदार्थ है। लोग केवल लोभवश होकर मोक्ष पाने की इच्छा करते हैं। कर्म न करके केवल दया, धर्म, क्षमा, सरलता और लोकापवाद से डरने के द्वारा कोई संसार में उन्नति नहीं कर सकता। आप सब तरह सुख के योग्य होकर भी भाइयों के साथ इस दुर्दशा को पहुँचे हैं, यही इस मेरे कथन का प्रमाण है। आप लोग वर्त्तमान या बीते हुए समय में कभी धर्म के मार्ग से पग भर भी विचलित नहीं हुए, यहाँ तक कि समय-समय पर अपने धर्म को प्राणों से भी बढ़कर प्यारा समझा है। देवता, ब्राह्मण और गुरुजन, सभी जानते हैं कि आपका राज्य और जीवन धर्म के ही लिए है। आप, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव, सभी मुझे सहज ही छोड़ सकते हैं, किन्तु धर्म का त्याग किसी तरह नहीं कर सकते। मैंने बड़े-बूढ़ों से सुना है कि जो राजा धर्म की रक्षा करता है उसकी रक्षा धर्म भी करता है; किन्तु मैं देखती हूँ कि आप तो धर्म की रक्षा करते हैं, परन्तु धर्म आपकी रक्षा नहीं करता। हे पुरुषश्रेष्ठ, आपकी बुद्धि छाया की तरह सदा धर्म के पीछे चलती है। आप सारी पृथ्वी के अधीश्वर होकर भी क्या बराबरी के, क्या बड़े और क्या छोटे, सबका सम्मान समान रूप से करते हैं। आपने कभी अभिमान या
१० अहङ्कार का भाव प्रकट नहीं किया। आप सदा स्वाहा-स्वधा-पूजा आदि के द्वारा देवता, पितर और ब्राह्मणों की सेवा किया करते हैं। पहले आप अनेक प्रकार की भोग की सामग्रियों के द्वारा ब्राह्मण, मोक्षाभिलाषी यति और गृहस्थों को सोने के थालों में पेट भर आहार देते थे और मैं आपकी आज्ञा के अनुसार उनकी सेवा-टहल करती थी। वानप्रस्थ मुनियों को आप धातुओं के बने पात्र आदि देते थे। मतलब यह कि ब्राह्मणों को कोई वस्तु आप न देने योग्य नहीं समझते थे। इस समय भी आप शान्ति-लाभ तथा अतिथियों और अन्यान्य प्राणियों को सन्तुष्ट करने के लिए घर में वैश्वदेव-बलि देकर शिष्टाचारपालन-पूर्वक समय बिता रहे हैं। याग,

पशुबन्धन, काम्य और नैमित्तिक कर्म, पाक-यज्ञ और यज्ञ के कर्मों का निर्वाह आप अच्छी तरह कर रहे हैं। राज्य-भ्रष्ट होकर इस भयानक, दस्यु-पूर्ण वन में आकर भी आपके धर्म-कर्मों में तनिक भी सुस्ती नहीं है। आपने विधिपूर्वक अश्वमेध, गोमेध, राजसूय, पुण्डरीक आदि बड़ी दक्षिणावाले यज्ञ भी किये हैं; किन्तु कपट के पाँसों की हार में विपरीत बुद्धि के वश होकर आपने राज्य, धन, शस्त्र आदि के साथ भाइयों को और मुझे भी हार दिया। राजन्, आपके सरल, कोमल, उदार, लज्जाशील और सत्यवादी होने पर भी न जाने किस कारण पाँसे खेलने के व्यसन से आपकी बुद्धि विपरीत हो गई। आपके दुःख और ऐसी विपत्ति को देखकर मैं अत्यन्त व्यथित और उदास हो रही हूँ। पुराण-इतिहासों में लिखा है कि सभी लोग ईश्वर के अधीन हैं, कोई स्वाधीन नहीं है। वह ईश्वर ही सब प्राणियों के सुख-दुःख और प्रिय-अप्रिय का एकमात्र विधाता है। वह जीवों के पूर्वजन्म-सञ्चित कर्मों के अनुसार सुख-दुःख आदि का विधान करता है। हे नरवीर, जैसे कठपुतलीवाला (सूत्रधर) काठ की पुतली बनाकर उसके सब अङ्ग-प्रत्यङ्गों की रचना करता है, वैसे ही विधाता ने भी सब प्रजा उत्पन्न की है। हे भरत-श्रेष्ठ, वही अद्वितीय ईश्वर आकाश रूप से सब प्राणियों को व्याप्त करके पाप और पुण्य का विधान करता है। क्या स्वाधीन और क्या पराधीन सभी, डोर में बँधे हुए पक्षी की तरह, ईश्वर के वश में हैं। कोई भी अपने या किसी दूसरे के ऊपर प्रभुत्व नहीं कर सकता। डोर में पुही हुई मणियों या रस्सी से नथे हुए बैलों की तरह नियन्त्रित होकर यह संसार चलता है; क्योंकि सब चराचर जगत् तन्मय और उसी (ईश्वर) में अर्पित है। जैसे नदी-तट पर का वृक्ष, जड़ टूटने पर, दम भर भी वहाँ नहीं ठहर सकता वैसे ही मनुष्य अपने अधीन होकर घड़ी भर भी नहीं टिक सकता। तात्पर्य यह कि अज्ञानी जीव कभी अपने सुख-दुःख नियत नहीं कर सकता। वह ईश्वर-प्रेरित होकर ही स्वर्ग में और नरक में जाता है। हे भारत, जैसे तृण आदि का ऊपरी हिस्सा प्रबल वायु के वश में होता है, वैसे यह सब जगत् ईश्वर के अधीन है। ईश्वर ही सब पुण्यों और पापों का प्रवर्त्तक होकर सब प्राणियों में व्याप्त है; पर कोई उसे देख नहीं सकता। विधाता का क्षेत्र-संज्ञक शरीर इस विश्व-राज्य का एकमात्र कारण है। वह उसी के द्वारा जीवों को शुभ और अशुभ कर्मों में नियुक्त करता है। देखिए, ईश्वर ने कैसा अपूर्व माया का प्रभाव सिरजा है। वह अपनी माया में मोहित करके प्राणियों के द्वारा प्राणियों का नाश करता है। तत्त्वदर्शी मुनिगण उसे अभी और तरह का देखते हैं, और फिर वैसे ही वह उनकी दृष्टि में वायु-वेग के समान बदल जाता है। मनुष्य जिस सम्बन्ध में और तरह की कल्पना करते हैं, उसे जगदीश्वर और ही रूप दे देता है। हे युधिष्ठिर, जैसे काठ से काठ, पत्थर से पत्थर और लोहे से लोहा टूट और कट जाता है, वैसे ही वह विश्वपति अपनी माया के प्रभाव से प्राणियों के द्वारा प्राणियों का नाश करता है। बालक जैसे खिलौने लेकर

उनसे खेलते हैं, वैसे ही भगवान् स्वयंभू अपनी इच्छा के अनुसार संयोग और वियोग कराते हुए प्राणियों के द्वारा क्रीडा करते हैं। राजन्, विधाता प्राणियों से पिता-माता का सा व्यवहार नहीं करता। वह मानों ग़ैरों की तरह क्रोधित होकर ही काम किया करता है। सच्चरित्र, शीलवान्, लज्जाशील आर्यगण कितने कष्ट से अपना जीवन बिता रहे हैं। और, उधर निपट नीच अनार्य लोग विषय-भोग में आसक्त होकर परमसुख से रहते हैं। हे पार्थ, आपकी ऐसी विपत्ति और दुर्योधन की विशाल सम्पत्ति तथा अभ्युदय देखकर ही मैं समान व्यवहार न करनेवाले विधाता

४० के दोषों का वर्णन कर रही हूँ। आर्यशास्त्रों के वचन न माननेवाले, लोभी, अधर्मी दुर्योधन को सम्पत्ति का अधिकारी बनाकर विधाता क्या फल पाता है? यदि कर्मकर्ता के सिवा और किसी को किये हुए कर्म का फल भोगना नहीं पड़ता तो सर्वनियन्ता ईश्वर को भी, पाप-कर्म कराने के कारण, पाप में लिप्त होना चाहिए। अथवा यदि किया हुआ पाप-कर्म कर्त्ता (ईश्वर) को नहीं स्पर्श कर सकता, तो उसका कारण बल ही है। तो फिर दुर्बल व्यक्ति ही सब

४३ तरह शोचनीय हैं।

इकतीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर का समाधान

युधिष्ठिर ने कहा—द्रौपदी, तुम्हारा यह सुनने में मनोहर और विचित्र पदों से युक्त कथन नास्तिकमत का पूरा-पूरा पक्षपाती है। हे राजकुमारी, मैं कर्म-फल पाने की इच्छा से कर्म नहीं करता। देना चाहिए, यह समझकर दान करता हूँ; यज्ञ करना चाहिए, यह समझकर यज्ञ आदि करता हूँ। फल हो या न हो, घर में रहकर पुरुष का जो कर्त्तव्य है वही मैं यथा-शक्ति करता रहता हूँ। हे सुन्दरी, मैं कर्म का फल धर्म समझकर शास्त्र के बताये और साधु-जन के दिखाये व्यवहार के अनुसार धर्म-कर्म करता हूँ। हे द्रौपदी, मेरे मन का झुकाव स्वभाव से ही धर्ममार्ग की ओर है। फल की इच्छा करके धर्म का आचरण करना धर्म-वणिक् का काम है। ऐसे लोगों को धर्मवादी लोग निपट निन्दित समझते हैं। जो कोई धर्म को दुहने की इच्छा करता है और नास्तिकता के कारण धर्म पर सन्देह करता है, वह कभी यथार्थ धर्मफल नहीं पा सकता। मैं वेदोक्त प्रमाण के अनुसार कहता हूँ कि धर्म पर कभी अविश्वास मत करना; क्योंकि धर्म के सम्बन्ध में शङ्का करनेवाले लोग (पशु-पक्षी आदि) तिर्यक् योनि में जन्म पाते हैं। जो कोई अविवेक के कारण धर्म पर सन्देह करता है और ऋषियों के वाक्यों पर अश्रद्धा दिखाता है वह, वेद-बहिष्कृत शूद्र की तरह, बुढ़ापे और मरण से हीन लोक से दूर कर दिया जाता है। धर्म का आचरण करनेवाले लोग उच्च कुल में उत्पन्न, वेदपाठी, धर्मात्मा व्यक्ति को वृद्ध और मान-

नीय समझते हैं। जो कोई अपनी बुरी बुद्धि के वश होकर शास्त्रमत के विरुद्ध आचरण कर धर्म में शङ्का करता है वह शूद्र और चोर आदि से भी बढ़कर पापी है। हे द्रौपदी, तुमने प्रत्यक्ष देखा है कि महात्मा मार्कण्डेय धर्म के प्रभाव से चिरजीवी हो गये हैं। तुमने यह भी देखा है कि व्यास, वशिष्ठ, मैत्रेय, नारद, लोमश, शुकदेव और अन्यान्य विशुद्ध-हृदय ऋषियों ने धर्म के प्रभाव से दिव्य योगबल और शाप देने तथा कृपा करने की शक्ति पाई है। संसार में इनका देवताओं का सा गौरव है। ये सब वेद-वेदाङ्ग के ज्ञाता ऋषि देवताओं में प्रसिद्ध हैं। इन्होंने धर्म को ही मुख्य कर्त्तव्य माना है। इसलिए हे कल्याणी, धोखे में पड़कर धर्म और विधाता को बुरा-भला कहना या उन पर अश्रद्धा प्रकट करना तुम्हारे योग्य काम नहीं है। बालक (मूढ़) लोग तत्त्वज्ञानियों को पागल समझते हैं, धर्म के बारे में सन्देह करते हैं, किन्तु अन्य किसी के आगे उस विषय के प्रमाण का पता नहीं लगाते; क्योंकि वे केवल अपनी कपोल-कल्पित प्रमाणपद्धति के भरोसे रहकर धर्म का अपमान करते हैं। वे इन्द्रिय-सुख से सम्बन्ध रखनेवाले संसार के व्यवहारों को ही सार्थक समझते हैं और इसी कारण इन्द्रियों से परे जो विषय है उसके ज्ञान का लेश भी उनमें नहीं होता। जो पापी धर्म पर सन्देह करता है, उसके पाप का कोई प्रायश्चित्त ही नहीं है। वह संसार में रहकर धन की चिन्ता में ही डूबा रहता है; कभी पुण्यलोकों को प्राप्त नहीं कर सकता। जो मूढ़, प्रमाण आदि की अपेक्षा न करके, वेदशास्त्र की निन्दा करता है उसे काम और लोभ के वशवर्त्ती होकर नरक में जाना पड़ता है। किन्तु हे कल्याणी, जो कोई स्थिर और सन्देहरहित चित्त से केवल धर्म-कर्म करता रहता है उसे इस लोक में सम्पूर्ण सुख मिलते और परलोक में ब्रह्मभाव मिलता है। और जो कोई ऋषिवाक्यों का अनादर और धर्म का त्याग करके शास्त्रमत का उल्लङ्घन करता है वह कई जन्मों तक अनेक क्लेश भोगता रहता है। हे भामिनी, जो कोई ऋषियों के प्रमाण या शिष्टाचार के अधीन नहीं होता उसके दोनों लोक (यह लोक और परलोक) बिगड़ जाते हैं। इसलिए हे द्रौपदी! शान्तशील, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी ऋषियों के चलाये हुए सत्यधर्म पर भूलकर भी अविश्वास मत करना। देखो, समुद्र के पार जाने की इच्छा रखनेवाले व्यापारी के लिए जहाज़ ही जैसे एकमात्र उपाय है, वैसे ही स्वर्गलोक जाने की इच्छा रखनेवालों के लिए धर्म ही एकमात्र उपाय है। हे सुन्दरी, धर्मात्माओं का धर्म-पालन अगर निष्फल होता तो यह विश्व एकदम अन्धकार-समुद्र में डूब जाता। कोई भी मुक्ति न पा सकता। सब लोग विद्या और सम्पत्ति से शून्य होकर पशुओं की तरह जीवित रहते। उसी तरह अगर तप, ब्रह्मचर्य, यज्ञ, स्वाध्याय, दान, सरलता आदि धर्म-कर्म निष्फल होते और फलदायक कर्म सब निरी ठगविद्या होते तो कोई भी धर्म-कर्म न करता। तो फिर मुनि, ऋषि, देव, दानव, गन्धर्व आदि महापराक्रमी महामहिम लोग किसलिए धर्म-कर्म करने का क्लेश

सहते ? धर्म करने से विधाता उसका फल देता है, ऐसा विश्वास होने के कारण ही सब लोग

३० भलाई के लिए धर्म का आचरण करते हैं। मतलब यह कि धर्म ही सनातन सुख है। संसार में कभी धर्म निष्फल और अधर्म सफल नहीं होता। सब विज्ञ पुरुष तपस्या को भी इसी तरह सफल मानते हैं। हे पाञ्चाली, तुम अपने और प्रतापी धृष्टद्युम्न के जन्म-वृत्तान्त को स्मरण करके देखो, धर्म-कर्म के अनुष्ठान का विशेष रूप से फल मिलता है या नहीं। तुम दोनों ही इस विषय के बढ़िया दृष्टान्त हो। धीर प्रकृति के लोग धर्माचरण का थोड़ा सा फल पाकर भी सन्तुष्ट हो जाते हैं; किन्तु विद्याहीन थोड़ी बुद्धि के लोग बहुत सा फल पाकर भी सन्तुष्ट नहीं होते। वे परलोक में भी धर्म के सुख का कुछ भी भोग नहीं कर सकते। हे भामिनी, देवता भी पाप-पुण्य से उपजे कर्मों की उत्पत्ति, नाश और फलसम्भावना को अच्छी तरह नहीं जानते। जो कोई इन बातों को विशेष रूप से जानकर भी सर्वसाधारण प्रजा को मोह में डालता है वह सहस्रकल्प में भी कल्याण प्राप्त नहीं कर सकता। गूढ़ मायावाले देवता इन सब धर्म-कर्मों की रक्षा करते हैं। शान्त प्रकृतिवाले ब्राह्मण, तप के प्रभाव से निष्पाप और ध्यान-फल-युक्त होकर, इस बात को देख लेते हैं। कहने का प्रयोजन यह है कि फल न देख पाकर भी देवता और धर्म के प्रति अश्रद्धा प्रकट करना किसी तरह ठीक नहीं। द्वेष और हिंसाप्रवृत्ति को छोड़कर यत्न के साथ याग-यज्ञ का अनुष्ठान और दान करना चाहिए। कर्म का फल अवश्य है। यह धर्म ब्रह्मा ने अपने पुत्रों से कहा है। इसे कश्यप ऋषि जानते हैं। इससे हे द्रौपदी, तुम्हारा संशय कुहरे की तरह मिट जाय। धर्म-फल इत्यादि सब कुछ है,-ऐसा विचार करके नास्तिकता का

४० भाव छोड़ दो। चराचर जगत् के प्रभु विधाता ईश्वर को बुरा-भला मत कहो। उसे यथार्थ रूप से जानने का यत्न करो और बारम्बार नमस्कार करो। तुम्हारी बुद्धि फिर कभी ऐसी न हो। हे द्रौपदी ! भक्त पुरुष, मरणशील मनुष्य होकर भी, जिसके प्रसाद से अमर हो जाते हैं

४२ उस अमर देवता का कभी अपमान मत करो।

बत्तीसवाँ अध्याय

द्रौपदी का प्रत्युत्तर

द्रौपदी ने कहा—हे कुन्तीनन्दन, मैं न तो धर्म की निन्दा या तिरस्कार करती हूँ और न प्रजापति ईश्वर का अपमान ही कर सकती हूँ। क्लेश और दुःख से बहुत विह्वल होकर ही मैं इस तरह विलाप कर रही हूँ। राजन्, आप एकाग्र होकर सुनिए; मैं और भी विलाप करती हूँ। हे शत्रुनाशन, संसार में कर्म करना ही ज्ञानी पुरुष का कर्त्तव्य है; क्योंकि स्थावर पदार्थ ही केवल निष्कर्मा रहकर अपनी ज़िन्दगी बिताते हैं। पशुओं को देखिए, वे माता का दूध पीते

हैं, छाँह में जाकर बैठते हैं; इस प्रकार वे भी काम करके ही अपनी ज़िन्दगी बिताते हैं। चलने-फिरनेवाले जीवों में एक मनुष्य ही ऐसे हैं कि वे इस लोक और परलोक में कर्म के द्वारा तृप्ति प्राप्त करना चाहते हैं। हे भारत, प्राणिमात्र अपने पूर्व-जन्म के किये कर्मों से प्राप्त संस्कार के बल से कर्म करके प्रत्यक्ष फल, जिसे सब लोग देखते हैं, पाते हैं। क्या धाता और क्या विधाता, सभी जल में स्थित बगले की तरह पूर्व-संकल्प के वश होकर कर्म करते हैं। इसी प्रकार अन्यान्य प्राणी भी अपने-अपने पूर्व-संस्कार के बल से जीवन बिताते हैं। वे अगर कर्म न करते होते तो उनकी जीविका कभी न चलती। उस जीविका के लिए कर्म करना सबका कर्त्तव्य है। इसलिए आप ग्लानि छोड़कर कर्म कीजिए और लगातार कर्म करते रहकर कृतकार्य हूजिए। संसार में हज़ारों में शायद एक आदमी भी कर्म के रहस्य को जाननेवाला न मिलेगा। सम्पत्ति की रक्षा और देखरेख में तथा उसे बढ़ाने में भी कर्म की आवश्यकता है; क्योंकि रक्षा या बढ़ाने की चेष्टा न करके केवल बाँटते रहने से हिमाचल के बराबर धन का ढेर भी मिट जायगा। १० प्रजागण जगत् में जन्म लेकर अगर कर्म न करते तो उन सबका नाश हो जाता। तात्पर्य यह कि अगर कर्म निष्फल होता तो मनुष्य की श्रीवृद्धि होना बिलकुल ही असम्भव होता। जगत् में ऐसे अनेक लोग हैं जो बिलकुल अनावश्यक काम में भी लगे रहकर समय बिताते हैं। इसका कारण यही है कि कर्म के बिना लोगों को ज़िन्दगी भारू हो जाती है। संसार में भाग्य-वादी और चार्वाक-मत के माननेवाले, दोनों ही शठ हैं। कर्मपरायण लोग ही वास्तव में प्रशंस-नीय हैं। जो कोई न तो परिश्रम करता है और न चेष्टा करता है, केवल भाग्य के भरोसे बैठा रहता है, वह बिलकुल ही बुद्धिहीन है; पानी में पड़े हुए कच्चे घड़े की तरह वह सङ्कट में पड़ता है। वैसे ही जो कोई हठ-वाद में पड़कर, काम-काज करने में समर्थ होकर भी, आलस्य के मारे काम नहीं करता तो वह अनाथ दुर्बल की तरह काल के मुँह में पड़ जाता है।

मनुष्य संसार में अकस्मात् जो कुछ पा जाता है उसे हठ-प्राप्त कहते हैं; क्योंकि वह किसी के यत्न से प्राप्त नहीं है। दैव-वश जो कुछ प्राप्त होता है उसे भाग्य से प्राप्त कहते हैं। स्वयं कर्म करने से जो कुछ मिलता है वह पौरुष से प्राप्त कहलाता है। स्वभाव से प्रवृत्त होकर किसी अनिर्दिष्ट कारणवश जो कुछ पाते हैं वह स्वभाव-ज फल कहलाता है। हे पुरुषश्रेष्ठ, इसी तरह हठ से, दैव से, स्वभाव से और कर्म से जो कुछ फल मिलता है सो सब पूर्वजन्म के किये कर्मों का फल है। [शास्त्रकारों ने ऐसा ही निश्चय किया है।] विधाता भी अपने कर्म २० के प्रभाव से, पूर्वोक्त अनिर्वचनीय कारणों के द्वारा सबका अधीश्वर होकर, मनुष्यों के पूर्वकृत कर्मों के विभाग के अनुसार फल देता है। मनुष्य शुभ और अशुभ, जो कुछ कर्म करता है सो सब विधाता के द्वारा विहित पूर्वकृत कर्मों के फलों का उदय माना गया है। देहधारियों की देह केवल विधाता के कामों के साधन का कारण स्वरूप है। शरीर स्वयं विवश है। विधाता

उसे जिस काम के लिए प्रेरित करता है उसी को वह किया करता है। हे कुन्तीपुत्र, सब प्राणी विवश हैं। महेश्वर विधाता उन सबको विशिष्ट काम-काज में नियुक्त करता है। कर्मों का कारण स्वरूप पुरुष मन ही मन फल ठीक करके कर्म करता है और उस फल को पाता है। कर्म असंख्य और अनेक प्रकार के हैं। बड़े-बड़े नगर और मकान जो तैयार होते हैं उसका कारण कर्म ही है। तिलों में तेल, गाय में दूध और लकड़ी में आग है—इस बात को अपनी बुद्धि से जानकर धीर लोग उक्त वस्तुओं को निकालने या तैयार करने के उपाय खोज निकालते हैं। बाद को निश्चित उपाय से कार्य करके अपने अभिप्राय को सिद्ध करते हैं। सब जीव इसी प्रकार कर्म-सिद्धि के सहारे जीवित रहते हैं। करनेवाला अगर कार्यकुशल हो तो सभी काम अच्छी तरह पूरे होते हैं और उनका फल शुभ होता है। जो इसमें फ़र्क़ पड़ जाता है तो फल में भी अन्तर पड़ जाता है। जो कर्म-द्वारा साध्य विषय में पौरुष व्यर्थ होता तो याग-यज्ञ करने और तालाब आदि खुदवाने का कुछ भी फल न होता। गुरु और शिष्य भी ३० कोई न होता। कर्म का कर्ता होने के कारण ही पुरुष कार्य सिद्ध होने पर प्रशंसा और सिद्ध न होने पर निन्दा का भागी होता है। फिर कर्म का नाश यहाँ कैसे हो सकता है! कुछ लोग कहते हैं कि सभी काम अकस्मात् बन जाते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि अकस्मात् कर्म सँभल जाते हैं, कुछ की राय है कि दैव-संयोग से काम सिद्ध हो जाते हैं और कुछ लोग पौरुष के द्वारा कर्मों का सिद्ध होना मानते हैं। कुछ लोग इन तीन कारणों में से किसी पर विश्वास करना नहीं चाहते। वे कहते हैं कि "दैव" या "अकस्मात्" आदि सब कारण पूर्व-जन्म के किये कर्मों के प्रकारान्तर मात्र हैं। जो लोग "अकस्मात्" और "दैव" को कार्यसिद्धि का कारण मानते हैं और जो तत्त्ववित् जानते हैं कि "दैव", "अकस्मात्" और "स्वभाव", इन तीन के सिवा मनुष्य के फल पाने का चौथा कारण नहीं है वे तत्त्व के ज्ञाता हैं। क्योंकि विधाता यदि सब प्राणियों को पूर्वजन्म-सञ्चित कर्मों के अनुसार फल न देता तो प्राणियों में कोई दीन न देख पड़ता—जो जिस उद्देश्य से जो काम करता वह उसका काम सिद्ध हो जाता। इसलिए यही सिद्धान्त ठीक है कि पूर्वोक्त तीन कारणों पर ही काम का सिद्ध या असिद्ध होना अवलम्बित है—सिद्धि का प्रधान कारण पूर्वसञ्चित कर्म ही है। जिन्हें इस पर विश्वास नहीं वे निस्सन्देह मनुष्य के आकार में जड़ पदार्थ हैं। मनु ने भी स्वीकार किया है कि कर्म अवश्य करना चाहिए। इसलिए जो आदमी निश्चेष्ट होकर आलस्य में समय गँवाता है उसका सब जगह पराभव होता है। तात्पर्य यह कि किया हुआ काम कभी निष्फल नहीं होता और आलस्य ४० करने से फल-सिद्धि की सम्भावना नहीं है। कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि काम करने पर भी फल नहीं मिलता। इसका कारण अवश्य है। प्रायश्चित्त के द्वारा वह बाधा का कारण हटने पर अवश्य इच्छित फल मिलता है। काम में लगे न रहकर आलस्य में समय बिताने से शरीर

उसे जिस काम के लिए प्रेरित करता है उसी को वह किया करता है। हे कुन्तीपुत्र, सब प्राणी विवश हैं। महेश्वर विधाता उन सबको विशिष्ट काम-काज में नियुक्त करता है। कर्मों का कारण स्वरूप पुरुष मन ही मन फल ठीक करके कर्म करता है और उस फल को पाता है। कर्म असंख्य और अनेक प्रकार के हैं। बड़े-बड़े नगर और मकान जो तैयार होते हैं उसका कारण कर्म ही है। तिलों में तेल, गाय में दूध और लकड़ी में आग है—इस बात को अपनी बुद्धि से जानकर धीर लोग उक्त वस्तुओं को निकालने या तैयार करने के उपाय खोज निकालते हैं। बाद को निश्चित उपाय से कार्य करके अपने अभिप्राय को सिद्ध करते हैं। सब जीव इसी प्रकार कर्म-सिद्धि के सहारे जीवित रहते हैं। करनेवाला अगर कार्यकुशल हो तो सभी काम अच्छी तरह पूरे होते हैं और उनका फल शुभ होता है। जो इसमें फ़र्क़ पड़ जाता है तो फल में भी अन्तर पड़ जाता है। जो कर्म-द्वारा साध्य विषय में पौरुष व्यर्थ होता तो याग-यज्ञ करने और तालाब आदि खुदवाने का कुछ भी फल न होता। गुरु और शिष्य भी ३० कोई न होता। कर्म का कर्ता होने के कारण ही पुरुष कार्य सिद्ध होने पर प्रशंसा और सिद्ध न होने पर निन्दा का भागी होता है। फिर कर्म का नाश यहाँ कैसे हो सकता है! कुछ लोग कहते हैं कि सभी काम अकस्मात् बन जाते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि अकस्मात् कर्म सँभल जाते हैं, कुछ की राय है कि दैव-संयोग से काम सिद्ध हो जाते हैं और कुछ लोग पौरुष के द्वारा कर्मों का सिद्ध होना मानते हैं। कुछ लोग इन तीन कारणों में से किसी पर विश्वास करना नहीं चाहते। वे कहते हैं कि "दैव" या "अकस्मात्" आदि सब कारण पूर्व-जन्म के किये कर्मों के प्रकारान्तर मात्र हैं। जो लोग "अकस्मात्" और "दैव" को कार्यसिद्धि का कारण मानते हैं और जो तत्त्ववित् जानते हैं कि "दैव", "अकस्मात्" और "स्वभाव", इन तीन के सिवा मनुष्य के फल पाने का चौथा कारण नहीं है वे तत्त्व के ज्ञाता हैं। क्योंकि विधाता यदि सब प्राणियों को पूर्वजन्म-सञ्चित कर्मों के अनुसार फल न देता तो प्राणियों में कोई दीन न देख पड़ता—जो जिस उद्देश्य से जो काम करता वह उसका काम सिद्ध हो जाता। इसलिए यही सिद्धान्त ठीक है कि पूर्वोक्त तीन कारणों पर ही काम का सिद्ध या असिद्ध होना अवलम्बित है—सिद्धि का प्रधान कारण पूर्वसञ्चित कर्म ही है। जिन्हें इस पर विश्वास नहीं वे निस्सन्देह मनुष्य के आकार में जड़ पदार्थ हैं। मनु ने भी स्वीकार किया है कि कर्म अवश्य करना चाहिए। इसलिए जो आदमी निश्चेष्ट होकर आलस्य में समय गँवाता है उसका सब जगह पराभव होता है। तात्पर्य यह कि किया हुआ काम कभी निष्फल नहीं होता और आलस्य ४० करने से फल-सिद्धि की सम्भावना नहीं है। कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि काम करने पर भी फल नहीं मिलता। इसका कारण अवश्य है। प्रायश्चित्त के द्वारा वह बाधा का कारण हटने पर अवश्य इच्छित फल मिलता है। काम में लगे न रहकर आलस्य में समय बिताने से शरीर

में अलक्ष्मी घुमती है। किन्तु जो आदमी मन लगाकर परिश्रम के साथ कर्म करता है वह निस्सन्देह कर्म-फल प्राप्त करके ऐश्वर्यवान् होता है। सन्देह ही अनिष्ट की जड़ है। अतएव सन्देह से बचकर कर्म करने से वह सिद्ध हो जाता है। किन्तु इस संसार में संशयशून्य, कर्मनिरत, धीर पुरुष बहुत दुर्लभ हैं। राजन्, हमारी जो यह विषम दुर्दशा इस समय है वह अगर आप पौरुष का सहारा लें तो अवश्य बदल सकती है। कर्म शायद सफल न हो, यह सोचकर जो आप, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव, सभी कुछ भी चेष्टा न करें तो फिर हम लोगों के राज्य पाने की आशा निरी दुराशा है। [आपका यह क्षमा का सिद्धान्त समुचित नहीं है।] जब कि हम सबके उपायों को सफल होते देखते हैं तब हमारा ही कृतकार्य न हो सकना सम्भव नहीं। कर्म करने से वह, शीघ्र हो या देर से, अवश्य सिद्ध होता है। किसान लोग हल चलाकर पहले धरती को जोतते हैं, फिर बीज बोकर वर्षा की राह देखा करते हैं। उनकी चाह के माफ़िक़ वर्षा न होने पर भी उन्हें उतना क्षोभ नहीं होता। वे सोचते हैं कि हम अपना कर्त्तव्य कर चुके; अब वर्षा न हो तो उसमें हमारा क्या दोष ? इसी तरह समझदार पण्डित को अपनी शक्ति भर कर्म करके फल न मिलने पर कभी अपनी निन्दा न करनी चाहिए। इस कारण "कर्म करने से वह सिद्ध न होगा" यह सोचकर आलस्य में समय बिताना किसी के लिए उचित नहीं। विरक्त न होना और पौरुष, यही दो फल सिद्धि के कारण हैं। सिद्ध हो या न हो, 'प्रवृत्ति' से विमुख होना किसी तरह योग्य नहीं है। सब ५० कारणों के एकत्र होने पर कार्य की सिद्धि में कुछ भी संशय नहीं रहता। शुरू किये हुए काम का प्रधान अंग (गुण) जो ग़लत हुआ तो पूरा फल नहीं मिलेगा, बल्कि काम का एकदम निष्फल हो जाना भी सम्भव है। किन्तु आरम्भ ही न करने से किसी प्रकार का फल नहीं देख पड़ता और न शूरता आदि गुण ही प्रकट होते हैं। कल्याण की चाह रखनेवाला हर एक मनुष्य शक्ति के अनुसार बुद्धिपूर्वक देश, समय, उपाय और मङ्गल आदि का प्रयोग करता है। इसलिए पराक्रम का सहारा लेकर सावधान चित्त से कर्म करना चाहिए। जो बुद्धिमान् पुरुष हैं वे बहुगुणी व्यक्ति के पास से साम, दान, भेद, इन तीनों उपायों को जानकर कार्य-सिद्ध करने की इच्छा करें। राजन, अगर अपकारी हो तो मनुष्य की कौन कहे, समुद्र और पर्वत को भी न छोड़ना चाहिए; उनके भी नाश का प्रयत्न करना चाहिए। जो कोई शत्रु के दोष देखने में लगातार लगा रहता है वह स्वयं और उसके मन्त्री आदि निर्दोष हो जाते हैं। "मैं बहुत ही असमर्थ हूँ" यह सोचकर मनुष्य को कभी अपना अपमान न करना चाहिए; क्योंकि अपना अपमान करनेवाला पुरुष कभी उन्नति नहीं कर सकता। हे भरतश्रेष्ठ, इसी प्रकार लोगों को स्वाभाविक फल-सिद्धि प्राप्त होती है। समयानुसार उस फल-सिद्धि में अगर कुछ व्यतिक्रम देख पड़ता है तो उसका प्रधान कारण समय और अवस्था

को ही समझना चाहिए। समझना चाहिए कि या तो समय ठीक न था या अवस्था ही
५९ उसके उपयुक्त न थी।

हे भरतश्रेष्ठ, एक समय मेरे पिता ने एक ब्राह्मण पण्डित को कुछ दिनों तक अपने घर में टिकाया था। उन्होंने बृहस्पति की यह सब नीति पिताजी को सुनाई थी और मेरे भाइयों को सिखाई थी। उस समय मैं पिता के ही घर थी; इस कारण मैंने भी सब उपदेश सुना था। राजन्, मैं जब किसी काम के लिए वहाँ जाती थी तब पिता की गोद में बैठ जाती थी।
६२ वे ब्राह्मण देवता नीति का उपदेश करते थे; मैं जी लगाकर सुनती थी।

तेंतीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर से भीमसेन की बातचीत

वैशम्पायन कहते हैं कि भीम कर्म करनेवाले भीमसेन द्रौपदी के ये वचन सुनकर बहुत ही क्रोधित होकर, लम्बी साँस लेकर, युधिष्ठिर से बोले—राजन्, सत्पुरुषों के योग्य धर्मसङ्गत राजपदवी को ग्रहण कीजिए। धर्म, अर्थ और काम से हीन होकर हम इस तपोवन में क्या करेंगे? दुरात्मा दुर्योधन ने धर्म के अनुसार, या सरलता के साथ अथवा बलपूर्वक हमारा राज्य नहीं लिया; उसने तो कपट का जुआ खेलकर आपका राज्य ले लिया है। छोटा और कायर सियार जैसे शेर के मुँह के मांसखण्ड को ले ले वैसे ही हमारा राज्य दुर्योधन ने ले लिया है। हे भरतश्रेष्ठ, आप साधारण धर्म की रक्षा के लिए क्यों 'धर्म'-'काम' करानेवाले राज्य-रूप महान् 'अर्थ' को छोड़कर ऐसा दुस्सह क्लेश भोग रहे हैं? सोचकर देखिए, गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले अर्जुन जिसकी रक्षा करते थे और स्वयं इन्द्र भी जिसे हर नहीं सकते थे वह हमारा राज्य और राजपद केवल आपकी असावधानी से शत्रुओं ने ले लिया। जैसे लूले के हाथ से बेल का फल या लँगड़े मनुष्य से गायें छिन जाती हैं वैसे ही हमारे जीते-जी आपके कारण हमारा ऐश्वर्य छिन गया। हे निष्पाप, आप धर्मात्मा हैं; आपका प्रिय करने के लिए ही हम इस प्रकार की विपत्ति में पड़ गये हैं। हे भरतश्रेष्ठ, हम लोग केवल आपकी आज्ञा से ही अपने को रोककर लगातार मित्रों का सन्ताप और शत्रुओं का आनन्द बढ़ाते हैं। आपके वाक्य को मानकर उस समय हमने धृतराष्ट्र के पुत्रों को नहीं मारा। यह बात इस समय याद आने
१० से हमको अत्यन्त कष्ट हो रहा है। हे धर्मराज, इस समय आप दुर्बल आचरणवाले—बलवान् लोगों को असह्य—मृगचर्या-रूप इस दारुण वनवास की यन्त्रणा को भोगिए। कृष्ण, अर्जुन, अभिमन्यु, सृञ्जयगण, मैं, नकुल और सहदेव, इनमें से कोई भी आपकी इस अवस्था को पसन्द नहीं करता। आप क्या सब जगह 'धर्म' की दुहाई देकर अपने को उपवासों से दुर्बल बनाकर,

विषाद-पूर्ण हृदय से हिजड़ों की तरह समय वितावेंगे ? कायर लोग ही राजलक्ष्मी का उद्धार करने में असमर्थ होकर स्वार्थ के विरोधी और फल को मिटानेवाले वैराग्य का आसरा लेते हैं। आप ज्ञानी होकर भी कार्य सिद्ध करने के लिए अपने कुल के योग्य पौरुष का प्रयोग क्यों नहीं करते ? आपको हमारे बाहुबल का अन्दाज़ अच्छी तरह है; किन्तु केवल शान्ति और क्षमा के कारण ही इस अनर्थ की ओर आप ध्यान नहीं देते। यद्यपि हम लोग मन ही मन आपको परम पराक्रमी जानते हैं किन्तु इस समय, क्षमा का सहारा लेने से, दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के पुत्र आपको अत्यन्त अशक्त के सिवा और क्या समझते होंगे ? मैं तो यही कहूँगा कि इस दुर्दशा की अपेक्षा युद्ध-भूमि में मर जाना हज़ार गुना अच्छा था। धर्मयुद्ध में मारे जाने से दूसरे जन्म में सम्पत्ति मिलने की सम्भावना रहती है। अथवा दुर्योधन आदि को मारकर जो हम अपना सारा राज्य पा सकें तो उसमें भी यश प्राप्त होने की आशा है। जो हो, अपने धर्म के पालन, अपरिमित यश की प्राप्ति और बदला चुकाने के लिए युद्ध में प्रवृत्त होना हमारे लिए सब तरह अच्छा है। अधिक क्या कहूँ, इस समय यदि हम कर्त्तव्य समझकर शत्रुओं के साथ युद्ध करके हार जायँ तो वह भी हमारे लिए प्रशंसा की बात होगी। जिस धर्म का आचरण करने से अपने सगे, भाई-बन्धु आदि सबको कष्ट हो उसे व्यसन कहते हैं। व्यसन कभी धर्म नहीं है, वह तो कुधर्म का बीज है। जैसे मृत व्यक्ति के पास सुख और दुःख नहीं रहता, वैसे ही जो कोई लगातार धर्म में लगा रहता है उस धर्मभीरु को धर्म और अर्थ नहीं मिलता। जो व्यक्ति धर्म के लिए ही धर्म का आचरण करता है उसे अनेक क्लेश भोगने पड़ते हैं। जैसे अन्धा आदमी सूर्य की प्रभा को नहीं जान सकता वैसे ही वह अपण्डित व्यक्ति धर्म के प्रयोजन को नहीं समझ सकता। जिस व्यक्ति का द्रव्य केवल अपनी आवश्यकता की चीज़ों में ही चुक जाता है उसके विषय में समझना चाहिए कि वह धन कमाने के प्रयोजन को नहीं जानता। जङ्गल में चरवाहे जैसे गायों की रक्षा किया करते हैं वैसे ही इस संसार के वन में उक्त अधम जन केवल धन की रक्षा में ही लगा रहकर अपना जीवन गँवा देता है। जो कोई धर्म और काम को त्यागकर केवल तुच्छ धन के कमाने और जमा करने में ही लगा रहता है वह दुरात्मा ब्रह्महत्या करनेवाले के समान सबके लिए मारने योग्य है। ऐसे ही जो कोई धर्म और अर्थ की ओर से लापरवाही करके लगातार काम-सेवन में ही समय बिताता है उसके मित्र नष्ट हो जाते हैं और वह सदा धर्म और अर्थ से हीन रहता है। जैसे तालाब का जल सूख जाने पर मछलियाँ तड़प-तड़पकर मर जाती हैं वैसे ही धर्म और अर्थ से हीन पुरुष भी कुछ दिन तक मनमाना काम-भोग करके अन्त में उसके अभाव में नष्ट हो जाता है। इस कारण धर्म और अर्थ का सञ्चय करने में विवेकी लोग लापरवाही नहीं करते। जैसे अरणि (यज्ञ में आग निकालने के लिए दो लकड़ियाँ) से आग पैदा होती है वैसे ही धर्म और अर्थ से काम की प्राप्ति होती है। धर्म और अर्थ, परस्पर

२०

एक दूसरे की जड़ हैं और मेघ तथा समुद्र की तरह दोनों परस्पर एक दूसरे को पुष्ट करते हैं। माला-चन्दन-कपड़े-गहने-धन आदि के मिलने से जो असीम आनन्द होता है उसी का नाम काम है। काम या कामना केवल मन में ही उठती है; वास्तव में उसका कोई निर्दिष्ट आकार ३० नहीं है। धर्म से अर्थ प्राप्त होता है। अर्थ से काम की प्राप्ति हो सकती है। किन्तु काम से कुछ पाने की आशा नहीं की जा सकती। जैसे लकड़ी जलने पर जो भस्म हो जाती है उससे अन्य भस्म नहीं बन सकती, वैसे काम से अन्य काम की प्राप्ति असम्भव है। काम स्वयं प्रीति उत्पन्न करनेवाला फल है। जैसे चिड़ीमार पक्षियों के प्राण हर लेता है वैसे ही अधर्म सब प्राणियों की हिंसा करता है। जो पुरुष इस लोक में धर्म से विमुख होकर काम और लोभ में ही फँसा रहता है वह दुरात्मा इस लोक और परलोक में सब प्राणियों द्वारा मारे जाने योग्य है।

राजन्, आप अच्छी तरह जानते हैं कि स्त्री, धन, गाय, हाथी, घोड़े आदि सब पदार्थों से ही काम प्राप्त होता है। उक्त सब पदार्थों की प्रकृति और विकृति को भी आप अच्छी तरह जानते हैं। वृद्धावस्था या मरण के द्वारा इन सब चीज़ों का न देख पड़ना या बिछुड़ना अनर्थ कहलाता है। उसी महान् अनर्थ में इस समय हम लोग फँसे हुए हैं। [इस अनर्थ को हटाना हमारा कर्त्तव्य है।]

हे भरतश्रेष्ठ ! इन्द्रियाँ, मन और हृदय अपने अपने विषय को पाकर जिस प्रीति का उपभोग करते हैं वही काम है। मेरी समझ में वही कर्म का उत्तम फल है। इस प्रकार धर्म, अर्थ और काम, इन तीनों पर अलग-अलग दृष्टि रखकर सबका यथासमय, यथोचित रूप से, सेवन करना ठीक है। तीनों में से किसी एक में ही तत्पर हो जाना मूर्खता है। लगातार समभाव से उक्त त्रिवर्ग का सेवन करना चाहिए। शास्त्रकारों ने लिखा है कि प्रातःकाल धर्मकार्य ४० करे, दोपहर को धनोपार्जन की चिन्ता में लगा रहे और तीसरे पहर काम-भोग में प्रवृत्त हो। इसी प्रकार किशोर अवस्था में काम-भोग, जवानी के अन्त में धनोपार्जन और अवस्था ढलने पर धर्म का आचरण करना चाहिए। हे नरश्रेष्ठ, समय का यथोचित विभाग करके मनुष्य जुदे-जुदे समयों में धर्म-अर्थ-काम, इस त्रिवर्ग का उपयोग करे। हे कुरुनन्दन, जो मनुष्य महान् ऐश्वर्य से प्राप्त सुख का भोग करके, मोक्ष के उपाय-रूप ज्ञान का सहारा लेकर, सुख की इच्छा करता है उसके लिए मोक्ष ही श्रेयस्कर है। आप मोक्ष पाने का अथवा महान् ऐश्वर्य प्राप्त करने का विशेष रूप से यत्न कीजिए। जो कोई इन दोनों अवस्थाओं के बीच में पड़ा है—न मोक्ष पाने का यत्न करता है और न ऐश्वर्य-प्राप्ति की चेष्टा करता है—उसका जीवन रोगी के जीवन के समान क्लेशदायक हो उठता है। आप धर्म के मर्म को जानते हैं और लगातार धर्म का आचरण भी किया करते हैं, यह जानकर आपके सुहृद्गण आपको कर्म करने के लिए उत्ते-

जित करते हैं। दान, यज्ञ, सज्जनों की पूजा, वेदपाठ, हृदय की शुद्धता, यही प्रधान धर्म है। इस लोक और परलोक, दोनों लोकों में यह धर्म फलदायक है। हे पुरुषश्रेष्ठ, और सब गुण चाहे हों, परन्तु अगर धन न हुआ तो मनुष्य इस धर्म का पालन नहीं कर सकता। धर्म ही इस जगत् का मूल है। धर्म से बढ़कर और कुछ नहीं है। बहुत सा धन पास होने से ही धर्म का पालन किया जा सकता है; किन्तु कायरपन या भिक्षावृत्ति का सहारा लेने से किसी तरह धन का लाभ नहीं हो सकता। धर्म का आचरण करने से ही अर्थ की प्राप्ति होती है। माँगकर धन का संग्रह करना आपके लिए अनुचित है। भिक्षावृत्ति केवल ब्राह्मणों के लिए ही है। इस कारण आप तेज के द्वारा अर्थ प्राप्त करने का उद्योग कीजिए। भिक्षावृत्ति ५० या वैश्य और शूद्रों की अन्य प्रकार की जीविका क्षत्रिय के लिए नहीं बतलाई गई है। बल और उत्साह प्रकट करना ही क्षत्रिय का प्रधान धर्म है। इसलिए हे राजन्, आप अपने धर्म का आश्रय लेकर मेरी और अर्जुन की सहायता से सेनासहित धृतराष्ट्र के पुत्रों का नाश कीजिए। पण्डित जन प्रभुत्व को ही धर्म कहते हैं। इसलिए आपको प्रभुता प्राप्त करने के लिए यत्न करना चाहिए। सङ्कट में पड़कर निकम्मे रहना किसी तरह ठीक नहीं। सोचकर देखिए, लोग जिस हिंसा से डरते और घबराते हैं, उसी हिंसा-प्रधान क्षत्रियवंश में आपका जन्म हुआ है। अपने कुल के योग्य कर्म का करना ही आपका मुख्य कर्त्तव्य है। वही आपका सनातन धर्म है। आपको जी-जान से उसी धर्म की रक्षा करनी चाहिए। प्रजापालन के द्वारा जो फल होता है उसे प्राप्त करना आपके लिए निन्दनीय नहीं; क्योंकि वह वंशपरम्परा से चला आ रहा क्षत्रियों का सनातन धर्म है। प्रजापालन में असमर्थ होने से जनसमाज में आपकी निन्दा होगी; क्योंकि मनुष्य अपने धर्म से अगर डिग जाता है तो लोग उसकी निन्दा करते हैं। इन सब बातों पर विशेष रूप से विचार करके आप अपने चित्त से सुस्ती को एकदम दूर कर दीजिए। क्षत्रियों के तेज को धारण करके सच्चे धुरन्धर की तरह पृथ्वी का भार सँभालिए। केवल धर्म का सहारा लेकर अब तक कोई कभी साम्राज्य नहीं पा सका। बहेलिये जैसे किसी खाने की चीज़ का लोभ दिखाकर वन में रहनेवाले मृगों को पकड़ते और उनको मार डालते हैं, वैसे ही जो बुद्धिमान् पुरुष हैं वे क्षुद्र विचारवाले, लालची, शत्रुपक्ष के लोगों को घूस (उत्कोच) आदि देकर उनमें फूट डाल देते हैं और सहज ही उनका राज्य ले लेते हैं। असुरगण देवताओं के बड़े भाई और बहुत बली थे। किन्तु देवताओं ने फूट (छल) डालकर उन्हें हरा दिया। हे महाबाहो! जो बली है, ६० उसे किसी बात की कमी नहीं रहती। आप इन बातों पर विचार करके कौशल के साथ शत्रुओं का नाश कीजिए। [मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि] पृथ्वी पर अर्जुन के समान धनुर्विद्या जाननेवाला और मेरे समान गदायुद्ध में निपुण दूसरा पुरुष न तो है और न होगा। बली लोग कभी अपने शत्रुपक्ष या अन्यपक्ष की किसी तरह की टोह लेने की चेष्टा नहीं करते;

वे तो अपने बल के सहारे युद्धभूमि में उतर पड़ते हैं। इसलिए हे धर्मराज, आप बल प्रकट कीजिए। बल ही अर्थ की जड़ कहा गया है। बल के बिना सब कुछ जाड़े की छाया के समान निष्फल है। जैसे अधिक अन्न प्राप्त करने की इच्छा से किसान लोग पहले थोड़ा बीज बोते हैं, वैसे ही अधिक अर्थ-लाभ के मतलब से अर्थ की इच्छा रखनेवाले को थोड़ा सा धन ख़र्च करना चाहिए। किन्तु जहाँ पर धन ख़र्च करने से उतने या उतने से अधिक धन पाने की सम्भावना नहीं है वहाँ प्रतिज्ञा-पूर्वक धन देना ठीक नहीं; क्योंकि वह ज़ोर से खुजलाने के समान परिणाम में दुःखजनक ही होता है।

महाराज, इसी प्रकार अगर थोड़े धर्म का त्याग करने से अधिकतर धर्म का लाभ होता हो तो वह आपके लिए अवश्य कर्त्तव्य है। ऐसा करनेवाला ही सावधान समझा जाता है। होशियार लोग बहुत मित्रोंवाले शत्रु को किसी न किसी तरह भेद नीति का प्रयोग करके मित्रों से हीन कर देते हैं; क्योंकि मित्रों और भाई-बन्धुओं के त्याग करने पर शत्रु दुर्बल हो जाता है और फिर वह सहज ही वश में कर लिया जा सकता है। महाराज, बलवान् व्यक्ति अनेक उद्यमों से या मीठे वचनों के द्वारा प्रजारञ्जन करने की चेष्टा नहीं करता; वह अपने भुजबल की सहायता से युद्ध करके ही प्रजा को अपने वश में कर लेता है। छोटी-छोटी मधुमक्खिकाएँ जैसे बहुत सी एक जगह मिलकर शहद उतारनेवाले को काट-काटकर अधमरा कर डालती हैं वैसे
७० ही बहुत से निर्बल लोग भी मिलकर बली शत्रु का नाश कर सकते हैं। सूर्य जैसे अपनी किरणों के द्वारा पृथ्वी से रस खींचकर और फिर उसे वर्षा ऋतु में बरसाकर प्रजा को मारते और जिलाते हैं, वैसे ही आप भी युद्धभूमि में शत्रुओं का नाश करके अपनी प्रजा का प्रतिपालन कीजिए। राजन्, मैंने सुना है कि विधिपूर्वक पृथ्वी का पालन करना भी तप है, जो कि हमारे पूर्वपुरुष कर गये हैं। हमको भी वही करना चाहिए। क्षत्रिय को युद्ध में लड़कर मरने या मारने से जो लोक मिलते हैं वे तप से नहीं मिलते। आपकी ऐसी दशा देखकर लोगों ने निश्चय कर लिया है कि सूर्यमण्डल से उसका तेज और चन्द्रमण्डल से उसकी कमनीय कान्ति शीघ्र ही लुप्त हो जायगी। हे धर्मनन्दन, इस समय प्रायः सभी समाजों में आपकी बहुत बड़ाई और धृतराष्ट्र के पुत्रों की निन्दा सुन पड़ती है। आप मोह, कृपणता, लोभ, डर, काम या अर्थ के लिए कभी झूठ नहीं बोले। इसी कारण सब ब्राह्मण और कुरुवंश के लोग जमा होकर केवल आपकी ऐसी सत्यपरायणता की ही चर्चा किया करते हैं। राज्यलाभ के समय राजाओं को जिस पाप का भागी होना पड़ता है वह पाप राज्यलाभ के उपरान्त बहुत दक्षिणावाले यज्ञ करने से मिट जाता है। लोग ब्राह्मणों को बहुत से गाँव और हज़ारों गायें देकर राहु-मुक्त चन्द्रमा की तरह पाप से छुटकारा पा जाते हैं। हे कुरुकुलश्रेष्ठ, नगरनिवासी
८० बालक-बूढ़े-स्त्री आदि सब आपकी बारम्बार बहुत प्रशंसा करते हैं। कुत्ते के चमड़े में दूध,

शूद्र के मुँह में वेद, चोर के मुँह में सत्य वचन और स्त्री-जाति में बल होना जैसा है वैसा ही दुराचारी दुर्योधन को राज्य प्राप्त होना है। हे भरतश्रेष्ठ, सब नगरनिवासी प्रजा इसी बात का आन्दोलन कर रही है। हाय, आप अपनी बुद्धि के दोष से इस प्रकार हम लोगों-सहित दारुण दुर्दशा में पड़े हैं। हम सबकी यह दुर्दशा आपकी ही बदौलत है। हे शत्रुदमन, आप पूज्यतम ब्राह्मणों से आशीर्वाद पाकर उन्हें धन देने के लिए शीघ्र ही सब युद्ध की सामग्रियों से पूर्ण रथ पर सवार हूजिए और परमपराक्रमी महाबली हम भाइयों के साथ इसी समय हस्तिनापुर को चल दीजिए। जैसे देवराज इन्द्र ने (मरुत् नामक) देवताओं को साथ लेकर प्रचण्ड दानवों को हराकर स्वर्ग का राज्य पाया था वैसे ही आप भी भाइयों के साथ जाकर दुर्योधन से राज्य छीन लीजिए। ऐसा कौन है जो युद्धभूमि में महावीर अर्जुन के गाण्डीव धनुष से निकले हुए विचित्र पुंखवाले बाणों को सह सके? मैं भी क्रुद्ध होकर युद्धभूमि में जब गदा घुमाऊँ तब उसके वेग को रोकने की शक्ति रखनेवाला कोई वीर पुरुष, घोड़ा या हाथी अभी तक पृथ्वी पर पैदा नहीं हुआ। हे भरतश्रेष्ठ, अगर सब सृञ्जय और कैकेयगण तथा वृष्णिवंश-चूड़ामणि श्रीकृष्ण हमारे सहायक हों और सब सामन्त लोग बहुत सी सेना-सहित हमारे साथ हों तो हमें विश्वास है कि हम लोग युद्ध करके शत्रु के हाथ से अपने राज्य का उद्धार अवश्य कर लेंगे। ६०

चौंतीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर का उत्तर देना

वैशम्पायन कहते हैं कि सत्यवादी महात्मा युधिष्ठिर ने महावीर भीमसेन के वचन सुनकर धैर्य के साथ कहा—भैया, तुम्हारे वाक्य-बाणों के लगने से मैं बहुत दुखी हुआ हूँ; किन्तु उसके लिए मैं तुमको दोष नहीं दे सकता। क्योंकि मेरे ही बे-सोचे-विचारे काम करने के दोष से तुम लोगों को यह कठिन वनवास का कष्ट भोगना पड़ा है। जुए में दुर्योधन को हराने और उससे राज्य प्राप्त करने के विचार से ही मैंने पाँसों का खेल खेला था; किन्तु दुष्ट शकुनि इस बात को जानकर दुर्योधन का प्रतिनिधि बनकर मुझसे खेलने लगा। दग़ाबाज़ी या कपट का कुछ भी करतब मैं नहीं जानता; किन्तु शकुनि तो धूर्तों का शिरोमणि है। सभा में उसने कपट के पाँसे फेंककर मुझे जीत लिया। मैंने जब देखा कि शकुनि की इच्छा के अनुसार ही सम और विषम पाँसे पड़ रहे हैं तब उस दुरात्मा का कपट कुछ-कुछ मुझे मालूम हो गया था। मुझे उसी समय खेल बन्द कर देना था; किन्तु पुरुष के धैर्य को मिटानेवाले क्रोध के आ जाने से मैं किसी तरह खेल से अपने को नहीं रोक सका। इसमें सन्देह नहीं कि धैर्य का लोप होने पर

पौरुष, अभिमान या वीरता, किसी से आत्मा का संयम नहीं किया जा सकता। मुझे विश्वास है कि ऐसी दुर्घटना होनी ही थी, और इसी से मैं तुम्हें किसी तरह दोष नहीं दे सकता। दुर्योधन ने जुए में हराकर हम लोगों को दास बना लिया था और राज्य की इच्छा से हमें सङ्कट में डाल दिया था। उस समय उस सङ्कट से द्रौपदी ने ही हम लोगों को बचाया। उसके बाद फिर जुआ खेलने के लिए जब मैं सभा में बुलाया गया, तब दुर्योधन ने सब भरत-वंशियों के सामने मुझसे कहा—"हे युधिष्ठिर, अबकी अगर तुम जुए में हारे तो तुम्हें अपने भाइयों-सहित बारह वर्ष वन में रहना पड़ेगा और फिर एक वर्ष अज्ञातवास करना पड़ेगा। उस अज्ञातवास में १० अगर हमें तुम्हारा पता लग गया तो तुम्हें फिर बारह वर्ष वनवास करना पड़ेगा। किन्तु जो तुम हमारे जासूसों (चरों) से छिपकर अज्ञातवासवाला वर्ष बिता सकोगे और तुम्हारा पता हमारे जासूस न लगा सकेंगे तो पञ्चनद का राज्य तुम फिर पा जाओगे। मैं कुरु-सभा में यह सच-सच कह रहा हूँ। और जो हम लोग जुए में हार जायँगे तो हम भी यों ही वनवास और अज्ञातवास करेंगे। इस बार खेल में हम लोगों का यही पण रहा।" [तुमने या अर्जुन ने इसका कुछ विरोध नहीं किया और मैंने भी यह शर्त मान ली।] फिर हम लोगों का जुआ हुआ। उसमें हारने के कारण हम लोग वनवासी हुए। तब से हम लोग अत्यन्त हीन वेष से देश-देश और वन-वन में मारे-मारे फिरते हैं। शान्ति की इच्छा न रखनेवाले दुर्योधन ने क्रोधवश हमको फिर यों विपत्ति में डाल दिया और जो कुरुवंशी लोग उसके अनुगत हुए उन्हें देश-शासक, दुर्गरक्षक आदि के ऊँचे पद देकर संन्तुष्ट किया। हे भीम, पहले सज्जनों के आगे, सभा-मण्डप में हारने पर बारह वर्ष वन में रहने की प्रतिज्ञा करके अब मैं उसे तोड़कर कैसे राज्य पाने की चेष्टा कर सकता हूँ? ऐसा कौन सज्जन करेगा? मैं समझता हूँ कि धर्म को छोड़कर पृथ्वी का राज्य करने की अपेक्षा मर जाना ही आर्य पुरुष के लिए भला है। हे भीम, तुमने जब उस द्यूत-सभा में परिघ (बेलन) उठाकर मेरे दोनों हाथों को जला देना चाहा था तब अर्जुन ने तुमको रोका था। उस समय तुमने अर्जुन का कहा न मानकर वीरता क्यों नहीं प्रकट की? जो ऐसा कर डालते तो इतना क्लेश न सहना पड़ता। जुआ खेलने के समय प्रतिज्ञा करने और हारने से पहले ही तुमने मुझसे ऐसे वचन क्यों नहीं कहे? तुम तो अपने पौरुष को जानते थे। तुम उस समय ऐसे वचन कहते तो शायद यह अनर्थ न होता। इस समय कालतुल्य विपत्ति को स्वीकार करने के बाद मुझे यों सताने से क्या फल होगा? हे भीम, हम लोग उस समय द्रौपदी की वैसी दुर्दशा देखकर भी चुप रहे, यह बात इस समय याद आने पर पिये हुए विष की तरह मेरे हृदय और सारे शरीर को पीड़ा पहुँचा रही है। हे भरतश्रेष्ठ, तुमने कुरुवंश के वीरों के बीच में जो दुर्योधन और दुःशासन को मारने आदि की प्रतिज्ञा की है उसको अभी पूर्ण करने की इच्छा किसी तरह ठीक नहीं। किसान लोग जैसे बीज बोकर उसके फलने के

समय की राह देखते हैं वैसे ही तुम भी अपने सुख और अभ्युदय के समय की प्रतीक्षा करो। जिसको धोखा दिया गया है वह यदि धोखा देनेवाले को, सब तरह पुष्ट पाकर, नष्ट करता है—बदला लेता है—तो उसके पौरुष की बड़ी प्रशंसा होती है और उसका जगत् में जीना सार्थक होता है। वह संसार में साम्राज्य-लक्ष्मी प्राप्त करता है। सब शत्रु उसे सिर झुकाते २० और उससे दबते हैं। जैसे देवगण इन्द्र की सेवा किया करते हैं वैसे ही मित्रगण अत्यन्त अनुराग के साथ उसको मानते हैं। हे वीर, तुम निश्चय जानो कि मेरी प्रतिज्ञा कभी मिथ्या नहीं हो सकती। मैं देवभाव और जीवन की अपेक्षा भी सत्य को प्रिय समझता हूँ। राज्य, धन, पुत्र या यश, कुछ भी सत्य-धर्म की एक कला के भी समान नहीं है। २२

पैंतीसवाँ अध्याय

भीमसेन का प्रत्युत्तर

भीमसेन ने कहा—महाराज, फेने के समान शीघ्र मिट जानेवाले और फल के समान गिर पड़नेवाले 'काल' के अधीन मनुष्य 'काल' को प्रत्यक्ष ज्ञात सा समझा करते हैं। किन्तु वह अनन्त, अप्रमेय और सबका अन्त करनेवाला 'काल' बाण की तरह शीघ्रगामी और जल की धारा की तरह नित्य चलायमान है। इसी कारण ऐसे काल की प्रतीक्षा करके फल पाने की सम्भावना कहाँ है? जैसे बहुत महीन सलाई भी कुछ न कुछ अञ्जन खर्च कर देती है वैसे ही पल-पल करके जिसकी आयु क्षीण होती है उस मनुष्य के लिए अनन्त काल की प्रतीक्षा करना कभी सम्भव नहीं। जिसका जीवन का समय बहुत बड़ा है, अथवा जो सब बातों को पहले से ही प्रत्यक्ष की तरह देखता है, या अपने जीवन-काल के परिमाण को जानता है वही समय की प्रतीक्षा करे। यह कौन कह सकता है कि हम लोग तेरह वर्ष की बाट जोहते-जोहते बीच में ही काल के मुँह का कौर न बन जायँगे? जब कि मौत हर घड़ी हर एक मनुष्य के शरीर के साथ लगी हुई है तब हमें उससे पहले ही राज्य पाने की चेष्टा क्यों न करनी चाहिए? जो व्यक्ति शूरता आदि गुणों से अपने को प्रसिद्ध करके, शत्रुओं से बदला लेकर, श्रेष्ठ कीर्त्ति नहीं प्राप्त करता वह पृथ्वी का भार बनकर हल खींचनेवाले बैल की तरह कष्ट पाता है। थोड़े बल और उद्यमवाला जो पुरुष वैरियों से बदला चुकाने में विमुख होता है, उसके जन्म को मैं निष्फल समझता हूँ।

महाराज, आपकी भुजाएँ सुवर्ण-सम्पत्ति की अधिकारिणी हैं और कीर्त्ति भी राजा पृथु की सी है। इसलिए आप युद्ध में शत्रुओं का नाश करके अपने बाहुबल से उपार्जित ऐश्वर्य का भोग कीजिए। अपने को धोखा देनेवाले पुरुष को उसी समय मारकर अगर नरक भोगना

१० पड़े तो वह नरक भी स्वर्ग के समान है। हे भरतश्रेष्ठ, क्रोध की आग आग से भी बढ़कर होती है। मैं हर घड़ी उसी आग में जलता रहता हूँ। मेरा [खाना-पीना] सोना छूट गया है। अद्वितीय धनुर्द्धर महावीर अर्जुन समर में वीरों के लिए अजेय होकर भी दिन-रात हृदय में सन्ताप से तपते हुए, गजराज की तरह, अपने क्रोध को आप रोके हुए हैं। अकेले ही सब वीरों का नाश कर सकनेवाले अर्जुन लाचार होकर अत्यन्त क्लेश भोग रहे हैं। नकुल, सहदेव और वीरमाता वृद्धा कुन्ती, सभी आपका प्रिय करने के लिए जड़ और गूँगों की तरह समय बिता रहे हैं; कुछ नहीं कहते। मैं और राजकुमार प्रतिविन्ध्य की माता द्रौपदी, दोनों अत्यन्त सन्ताप के साथ वनवास का क्लेश सह रहे हैं। मैं जो आपसे कह रहा हूँ यही आपके सब स्वजनों को प्रिय है। हम सब भाई वीर और संग्राम-प्रिय हैं तो भी हम इस प्रकार के कष्ट में पड़े हैं। महाराज, हमसे कम बलवाले नीच-बुद्धि पुरुष हमारे राज्य को छीनकर सुख से उसका उपभोग कर रहे हैं। इससे बढ़कर बुरी आपत्ति और कोई नहीं हो सकती। राजन्, आप अपने स्वभाव के दोष से शत्रुओं पर दया करके यह क्लेश भोग रहे हैं। आपके इस काम को कोई अच्छा नहीं कहता। हे धर्मपरायण! आपकी बुद्धि, अर्थज्ञान से ख़ाली और वेदों के अक्षर-मात्र को रटनेवाले अत्यन्त निन्दित श्रोत्रिय की तरह, केवल गुरु के उपदेश की अनुगामिनी है; यथार्थ तत्त्व को विचारपूर्वक देखने में असमर्थ है। आप ब्राह्मणों की तरह दयालु हैं। क्षत्रियवंश में आप कैसे उत्पन्न हुए? क्षत्रियवंश में तो प्रायः क्रूर स्वभाववाले पुरुष ही जन्म

२० लेते हैं। हे भरत-नन्दन, आप भगवान् मनु के कहे राजधर्म को विशेष रूप से जानते हैं। उन्होंने क्रूर छली पुरुषों के साथ क्षमा का व्यवहार करने को नहीं कहा है। फिर आप क्यों क्रूर, छली, दुरात्मा दुर्योधन आदि का नाश करने को तैयार नहीं होते? हे कुन्तीपुत्र, अजगर की तरह बिना हाथ-पैर हिलाये रहना ही क्या आप कर्त्तव्य समझते हैं? आप तो बुद्धिमान् और पराक्रमी हैं। सोचिए तो, आप इस तरह रहकर कैसे हम लोगों की रक्षा कर सकेंगे? मुट्ठी भर घास-फूस के द्वारा कहीं हिमालय ढका जा सकता है? परन्तु मैं देखता हूँ, आप यही करना चाहते हैं। आकाश-मार्ग में सूर्य का छिपा रहना जैसे असम्भव है वैसे ही बुद्धि, बल, शास्त्र-ज्ञान और कुलीनता आदि गुणों से प्रसिद्ध जो आप हैं उनका कपट-वेष से छिपकर रहना सम्भव नहीं। ऐरावत के समान अर्जुन का शरीर विविध शाखा-पुष्प-पूर्ण शाल-वृक्ष के समान लम्बा-चौड़ा है। वही कैसे छिपकर रह सकेंगे? सिंह के सदृश पराक्रमी नकुल और सहदेव ही कैसे अज्ञातवास करेंगे? वीर पुत्रों की माता, कीर्त्तिशालिनी ये द्रौपदी भी अपने रूप और गुणों के कारण जगत् भर में प्रसिद्ध हैं। यही कैसे अज्ञातवास में छिपकर रह सकेंगी? मुझे भी सब प्रजा के लोग बचपन से पहचानते हैं। घास-फूस आदि के द्वारा जैसे कोई सुमेरु को छिपाना चाहे वैसे मैं ही किस तरह अपने को छिपा सकूँगा! पहले हमने अनेक

राजाओं को राज्य से भ्रष्ट कर दिया है। वे सब इस समय अवश्य दुर्योधन के साथी बन गये होंगे। पहले हमने उन्हें हराया था। उनके राज्य से उन्हें निकाल बाहर किया है, इसलिए अब वे भी न चूकेंगे। दुर्योधन के साथी और हितैषी होकर वे हमें सताने की चेष्टा करेंगे। वे ३० भी हमारा पता लगाने के लिए अज्ञातवास के समय बहुत से जासूस (चर) नियत करेंगे। वे हमारा पता लगाकर अगर हमारे शत्रुओं को ख़बर कर देंगे तो अवश्य हमें फिर बारह वर्ष वनवास का कष्ट उठाना पड़ेगा। महाराज, इस समय हमको वन में रहते तेरह महीने हो गये। आप इनको तेरह वर्ष के समान समझ सकते हैं। शास्त्रकारों का कहना है कि 'पूतिका' जैसे 'सोमलता' की जगह पर यज्ञ में काम दे सकती है वैसे ही एक महीना एक वर्ष का प्रतिनिधि हो सकता है। आप तेरह महीनों को तेरह वर्ष मानकर शत्रुओं का नाश करने के लिए तैयार हो जाइए। अगर इस प्रतिज्ञाभङ्ग में आप कोई पाप समझते हों तो, धर्मशास्त्र के कथनानुसार, बोझ ढोनेवाले बैल को भरपेट भोजन देकर उसका प्रायश्चित्त कर डालिएगा। इस प्रकार उस पाप से आप छुटकारा पा सकते हैं। इसलिए अब आप शत्रुओं को मारने के लिए निश्चय कर लीजिए; क्योंकि युद्ध ही क्षत्रियों का सनातन धर्म है। ३५

छत्तीसवाँ अध्याय

व्यासजी का आगमन

वैशम्पायन कहते हैं—धर्मराज युधिष्ठिर, भीमसेन के ये वचन सुनकर, एक लम्बी साँस लेकर कुछ देर तक सोचते रहे। वे सोचने लगे कि मैंने सब वर्णों के, और राजाओं के, धर्म सुने हैं। जो कोई अच्छी तरह आगा-पीछा सोचकर वर्त्तमान पर विचार कर सकता है वही सच्चा जानकार है। मैं धर्म के मर्म (बारीकी) को अच्छी तरह जानकर भी कैसे उसके विरुद्ध आचरण कर सकता हूँ?

महात्मा युधिष्ठिर कुछ देर तक ध्यानमग्न होकर यों सोचकर और अपना कर्त्तव्य ठीक करके भीमसेन से बोले—हे महाबाहो, तुम्हारा यह कहना ठीक नहीं है। मुझे इस विषय में कुछ और भी कहना है। वह मेरा कथन एकाग्र होकर सुनो। हे वीर, जो कर्म केवल साहस के भरोसे किये जाते हैं वे निस्सन्देह पापपूर्ण हैं। उनके करने से पीछे दिल को चोट लगती है। आगे-पीछे अच्छी तरह सोचकर युक्तिपूर्वक जो काम किये जाते हैं वे ही ठीक-ठीक सिद्ध होते हैं। उन कामों की सिद्धि में दैव भी सहायता करता है। तुम आगे-पीछे सोचे बिना बल और घमण्ड के मारे बिलकुल नासमझ की तरह जिस साहस के काम में लगना चाहते हो, उसके विषय में जो कुछ मुझे कहना है सो सुनो। भूरिश्रवा, शल,

जलसन्ध, भीष्म, द्रोण, पराक्रमी अश्वत्थामा और दुर्योधन आदि दुर्द्धर्ष धृतराष्ट्र के पुत्र; ये सभी अस्त्रविद्या में निपुण हैं और सदा युद्ध के लिए तैयार रहते हैं। विशेषकर जिन राजाओं को हराकर हमने नीचा दिखाया है वे सब इस समय दुर्योधन के पक्ष में हो गये हैं। दुर्योधन ने भी उनको बहुत सा धन और सैन्य-सामन्त देकर और भी अधिक अपने अनुकूल तथा आज्ञाकारी बना लिया है। युद्ध छिड़ने पर वे कभी हमारी सहायता नहीं करेंगे। दुर्योधन ने तरह-तरह के कपड़े, गहने, धन आदि देकर सैनिकों को सन्तुष्ट कर रक्खा है। स्वयं दुर्योधन वीर पुरुषों से नम्र रहकर उनका जैसा सम्मान करता है उससे यह आशा नहीं की जा सकती कि वे कभी दुर्योधन के विरुद्ध कुछ करेंगे। मुझे तो निश्चय है कि ज़रूरत पड़ने पर वे युद्ध में दुर्योधन के लिए अपने प्राण तक दे सकते हैं। यह ज़रूर है कि भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य दोनों पक्षों (कौरवों और पाण्डवों) पर बराबर स्नेह रखते हैं; किन्तु वे इस समय दुर्योधन से ही अन्न-वस्त्र और अनेक प्रकार के भोग पाते हैं। इसके लिए वे उसके ऋणी हैं। उस ऋण को चुकाने के लिए वे अवश्य दुर्योधन की ओर से, प्राणों की ममता छोड़कर, युद्ध करेंगे। वे सब धीर, अस्त्रविद्या में निपुण और युद्धकला में अद्वितीय हैं। अस्त्रविद्या में निपुण महारथी कर्ण का शरीर सदा कवच से सुरक्षित रहता है। वह कवच किसी तरह काटा नहीं जा सकता। युद्धभूमि में कुपित कर्ण का सामना करना सहज काम नहीं है। तुम सहाय-हीन हो। फिर किस तरह इन सब महाबली वीर पुरुषों को हरा सकोगे? पहले इन वीरों को हराये बिना किसी तरह तुम दुर्योधन को मार नहीं सकोगे। भाई भीम, दुर्धर्ष कर्ण की युद्ध-निपुणता को याद करके मुझे [खाना-पीना या] सोना नहीं सोहता।

क्रोधी भीमसेन बड़े भाई के ये वचन सुनकर उदास भाव से ऊबकर चुप हो रहे। दोनों पाण्डव इस तरह बातचीत कर ही रहे थे कि महायोगी व्यासदेव वहाँ पर आ पहुँचे। पाण्डवों ने उनका यथोचित सत्कार किया। इसके उपरान्त व्यासजी ने धर्मराज से कहा—हे नरश्रेष्ठ, मैं अपने तपोबल से तुम्हारे हृदय के भाव को ज़ानकर फुर्ती से यहाँ आया हूँ। हे

राजेन्द्र ! तुम्हें भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, दुर्योधन और दुःशासन से जो डर लग रहा है उसी को दूर करने मैं तुम्हारे पास आया हूँ। जिस उपाय से तुम्हारी यह शङ्का दूर होगी वह मैं कहता हूँ। सुनकर उसी के अनुसार काम करो। उस उपाय के अनुसार काम करने से फिर तुम्हें यह व्यर्थ चिन्ता न करनी होगी।

इसके बाद व्यासदेव धर्मराज को बुलाकर एकान्त में ले गये। वहाँ पर व्यासजी ने कहा—हे भरतश्रेष्ठ, मैं तुमको प्रतिस्मृति नाम की विद्या देता हूँ, इस मूर्त्तिमती सिद्धि को तुम ग्रहण करो। इस विद्या के पा जाने से अर्जुन युद्ध में शत्रुओं को ले डालेंगे। महाबाहु अर्जुन ३० इस विद्या के प्रभाव से अस्त्र पाने के लिए तप करेंगे तो देवादिदेव महादेव और देवराज इन्द्र की प्रसन्नता प्राप्त कर लेंगे। महावीर अर्जुन तपस्या और पराक्रम के प्रभाव से वरुण, कुबेर और धर्म आदि देवताओं के भी दर्शन पावेंगे। अर्जुन महातेजस्वी प्राचीन ऋषि हैं। [इनकी गिनती साधारण मनुष्यों में नहीं की जा सकती।] भगवान् नारायण इनके सहायक हैं। इनको कोई जीत नहीं सकता। ये अर्जुन इन्द्र, रुद्र, वरुण आदि लोकपालों से अनेक प्रकार के अस्त्र पाकर बड़ा भारी काम करेंगे। हे युधिष्ठिर, अब तुम रहने के योग्य और एक वन पसन्द करो; क्योंकि बहुत समय तक एक ही जगह रहना अच्छा नहीं लगता। वेद-वेदाङ्ग के ज्ञाता बहुत से ब्राह्मण तुम्हारे साथ हैं। तुम्हारे बहुत दिनों तक एक जगह रहने से, भीड़-भाड़ से, शान्त तपस्वियों के तप में बाधा पड़ सकती है। लता और ओषधियों का नाश हो सकता है और मृगों की संख्या भी कम हो जायगी।

योगतत्त्व के जाननेवाले भगवान् व्यास आनन्दित चित्त से धर्मराज को वह श्रेष्ठ विद्या देकर उनसे विदा हुए और दम भर में अन्तर्द्धान हो गये। बुद्धिमान् युधिष्ठिर भी पवित्र हृदय से महर्षि की दी हुई उस मन्त्रमयी विद्या को प्राप्त करके समय-समय पर एकाग्र चित्त से उसका अभ्यास करने लगे। इसके बाद महर्षि की आज्ञा स्मरण करके, द्वैतवन को छोड़कर, वे सरस्वती के तट पर स्थित काम्यक वन के लिए चल दिये। वेद-वेदाङ्ग के जाननेवाले ब्राह्मण लोग ४० उनके साथ-साथ चले। काम्यक वन में अमात्यों और ब्राह्मणों-सहित पहुँचकर पाण्डव रहने लगे। वे प्रतिदिन वेद सुनते, धनुष-बाण लेकर शिकार खेलते, और देवताओं तथा पितरों की विधिपूर्वक पूजा करते हुए कुछ समय तक उसी वन में रहे। ४१

सैंतीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर का अर्जुन को विद्या देना

वैशम्पायन कहते हैं कि इसी तरह कुछ समय बीतने पर एक दिन राजा युधिष्ठिर ने वनवास के क्लेश का तनिक विचार किया और फिर व्यासजी के उपदेश को स्मरण करके बुद्धिमान् अर्जुन

को एकान्त में बुलाया और स्नेहपूर्वक उनकी पीठ पर हाथ फेरकर मुसकाते हुए कहा—भाई अर्जुन! भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण और अश्वत्थामा, ये सब धनुर्वेद के चारों अङ्गों—आदान, सन्धान, विसर्ग और संहार—को भली भाँति जानते हैं। ब्राह्म, दैव और मानुष आदि सब अस्त्रों के प्रयोग और शत्रुओं के चलाये इन अस्त्रों के उपसंहार में भी ये लोग सुशिक्षित हैं। दुर्योधन नम्रता के साथ बहुत सा धन देकर इन सबको सन्तुष्ट रखता है और सबका गुरु के समान सम्मान करता है। सब योद्धा उससे प्रसन्न रहते हैं। द्रोण आदि आचार्य भी सम्मानित और सन्तुष्ट रहकर सदा उसके दोषों को ढकने की चेष्टा किया करते हैं—अर्थात् उसके दोषों को देखकर भी परवा नहीं करते। युद्ध का समय आने पर दुर्योधन के द्वारा पूजित होकर वे अवश्य अपने योग्य बल और विक्रम प्रकट करेंगे। हे पार्थ! इस समय गाँव, नगर, वन, समुद्र, आकर (खान) आदि सहित यह समग्र पृथ्वीमण्डल दुर्योधन के अधीन है। हम सबको तुम अत्यन्त प्रिय हो। तुम्हारे ही ऊपर हम लोगों के उद्धार का भार है। इसलिए हे शत्रुनाशन, अब इस समय के योग्य जो कर्त्तव्य मैंने ठीक किया है, सो सुनो। हे अर्जुन, मैंने व्यासजी से
१० एक उपनिषत् (रहस्य-विद्या) प्राप्त की है। उस विद्या का ठीक-ठीक प्रयोग करने से सब जगत् प्रकाशित होता है। इसलिए हे तात, तुम इस विद्या को प्राप्त कर एकाग्रता से तपस्या में मन लगाओ; उससे यथासमय देवताओं का प्रसाद प्राप्त करोगे। इस समय तुम कवच पहन करके, धनुष और खड्ग लेकर, व्रतधारी साधु तपस्वी की तरह उत्तर दिशा को जाओ। लेकिन सावधान, किसी को मार्ग न देना अर्थात् चौकन्ने रहना जिसमें कोई हमला न कर सके। देवताओं को वृत्रासुर से जब सङ्कट प्राप्त हुआ था तब उन्होंने इन्द्र को दिव्य अस्त्रों के रूप में अपनी सब शक्ति दे दी थी। तुम इन्द्र के पास जाकर उन्हें प्रसन्न करो। एक ही जगह उनसे वे सब अस्त्र तुमको मिल जायँगे। इन्द्रदेव प्रसन्न होकर आप ही तुमको वे सब अस्त्र दे देंगे। तुम इस विद्या की दीक्षा लेकर इन्द्र से मिलने के लिए अभी चल दो।

अब धर्मराज ने व्यासजी से प्राप्त वह दिव्य विद्या दे दी। अर्जुन को व्यास के बताये नियम के अनुसार दीक्षित करके और उन्हें मन-वाणी-काया से पवित्र और संयमी होने का उपदेश करके युधिष्ठिर ने जाने की आज्ञा दी। तब अर्जुन ने इन्द्र के दर्शन के लिए उत्सुक होकर गाण्डीव धनुष, तर्कस, कवच, अंगुलित्राण (उँगलियों की रक्षा के लिए गोह के चमड़े के खोल) धारण किये। फिर हवन किया। इसके बाद ब्राह्मणों को सुवर्ण-दक्षिणा देकर स्वस्ति-पाठ कराया। अर्जुन ने मन में दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के पुत्रों के मारने का सङ्कल्प करके एक
२० लम्बी साँस लेकर आकाश की ओर देखा।

धनुष हाथ में लिये अर्जुन को देखकर सिद्ध, ब्राह्मण और अदृश्य भूतगण ने कहा—हे महाबाहो, बहुत जल्द तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा। तुम्हारी विजय निश्चित है। जाओ, अपने

सब काम सिद्ध करो। ब्राह्मण लोग आशीर्वाद देते हुए कहने लगे—हे अर्जुन, तुम निडर होकर जाओ, तुम्हें जय प्राप्त हो। अब अर्जुन को जाने के लिए तैयार देखकर दयावती द्रौपदी करुण रस से सबके मन को विगलित करती हुई कहने लगीं—हे वीर, तुम्हारे जन्म के समय आर्या कुन्ती ने जो इच्छा की थी, और तुम्हारे मन में जो अभिलाषा है, सो सब सफल हों। मैं ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि हम लोगों में से कोई फिर क्षत्रिय-कुल में न उत्पन्न हो। मैं भिक्षा से ही अपनी जीविका चलानेवाले ब्राह्मणों को नमस्कार करती हूँ; [क्योंकि उनकी जीविका का सम्बन्ध शस्त्र से नहीं है।] पहले पापबुद्धि दुर्योधन ने राजसभा में "गाय गाय" (अनेक पुरुषों की स्त्री) कहकर बारम्बार मेरा उपहास किया था। उसी से मुझे अत्यन्त दुःख हुआ था। किन्तु इस समय देखती हूँ कि तुम्हारे वियोग का दुःख

उससे भी बढ़कर पीड़ा पहुँचा रहा है। हे पार्थ, तुम्हारे भाई तुम्हारे चले जाने पर रात को जागते समय तुम्हारे कामों का वर्णन करके—तुम्हारी चर्चा करके—अपना जी बहलावेंगे। हे नाथ, तुम सच समझो कि तुम्हारे बहुत दिन के वियोग के दुःख से अत्यन्त व्याकुल होकर हम लोग आहार, विहार और जीवन में तनिक भी सन्तोष न प्राप्त करेंगे। क्योंकि हमारा सुख, दुःख, जीवन, मरण, राज्य और ऐश्वर्य, सब तुम्हारे ही भरोसे है। मैं हृदय से प्रार्थना करती हूँ कि तुम्हारा मङ्गल हो। हे नाथ, तुमने जिस काम के करने का बीड़ा उठाया है वह वीर पुरुष के ही योग्य है। तुम जय-प्राप्ति के लिए जल्दी जाओ। तुम्हारे सब विघ्न दूर हों। मैं धाता और विधाता को नमस्कार करती हूँ; वे तुम्हारा भला करें। ह्री, श्री, कीर्त्ति, द्युति, पुष्टि, उमा, लक्ष्मी, सरस्वती, ये सदा विदेश में तुम्हारी रक्षा करें। तुम बड़े भाई की सेवा और उनकी आज्ञा का पालन करते हो। इसी कारण मैं तुम्हारे भले की इच्छा से वसु, रुद्र, आदित्य, मरुद्गण, विश्वेदेवा, साध्यगण आदि की आराधना करूँगी। वे शान्ति-प्रदान करेंगे। दिव्य, पृथ्वी के, आकाशचारी और अन्यान्य प्रकार के विघ्नों से तुम बचे रहो—तुम्हारा कल्याण हो। ३०

इस प्रकार यशस्विनी द्रौपदी जब आशीर्वाद दे चुकीं तब सुन्दर धनुष हाथ में लिये हुए अर्जुन ने अपने भाइयों की और पुरोहित धौम्य की प्रदक्षिणा की। इन्द्र-योग से युक्त पराक्रमी

कान्तिशाली महाबली अर्जुन जब रवाना हुए तब सब प्राणी राह में उनके सामने से हटने लगे। तपस्वियों के आश्रमों से सुशोभित अनेकानेक पर्वतों को लाँघते हुए अर्जुन एक ही दिन में दिव्य, अतिपवित्र और देवताओं की निवासभूमि

४० हिमालय पर पहुँच गये। मन और वायु के समान वेग से जाते हुए अर्जुन हिमालय और गन्धमादन पर्वत को लाँघकर दिन-रात चलकर इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही उन्हें "ठहरो" शब्द सुन पड़ा। वे चौंककर इधर-उधर देखने लगे। उन्होंने पास ही वृक्ष के नीचे एक तपस्वी ब्राह्मण को देखा। वह ब्राह्मण तेजस्वी और बहुत ही दुबला था। वह पिङ्गल-वर्ण का था। उसके सिर पर जटाएँ थीं। उस ब्राह्मण ने अस्त्र-शस्त्रयुक्त क्षत्रियव्रतधारी अर्जुन को देखकर कहा—वत्स, तुम कौन हो? क्षत्रियवेष से इस शान्ति-पूर्ण आश्रम में क्यों आये हो? यहाँ शस्त्र और धनुष आदि का क्या काम? यहाँ तो ऐसे तपस्वी ब्राह्मण रहते हैं जिनमें न हर्ष है न क्रोध। यहाँ युद्ध करनेवाला कोई नहीं है। इसलिए तुम धनुष को और बाणों को फेंक दो। तुम भाग्य से परम गति को प्राप्त हुए हो। अलौकिक तेज धारण करनेवाले उस ब्राह्मण ने हँसते हुए इस प्रकार अर्जुन से बहुत सी बातें कहीं। उसके बारम्बार यों कहने पर भी दृढ़व्रत अर्जुन अपने विचार से नहीं डिगे। तब उस ब्राह्मण ने प्रसन्न होकर हँसते हुए कहा—हे शत्रुनाशन, तुम्हारा कल्याण हो। मैं स्वयं इन्द्र तुम पर प्रसन्न हूँ। जो चाहो वह वरदान मुझसे माँग लो।

५० इन्द्र के दर्शन पाकर महाबाहु अर्जुन ने साष्टाङ्ग प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा—देव, मैं आपके पास अस्त्र-विद्या सीखने आया हूँ। यही मेरा अभिलषित वर है। यदि आप प्रसन्न हैं तो मेरी यह इच्छा पूरी कीजिए। अर्जुन के वचन सुनकर मुसकाते हुए इन्द्र ने प्रसन्न होकर कहा—हे अर्जुन, तुम जब यहाँ पहुँच गये तब अस्त्र लेकर क्या करोगे? तुम परम गति पा गये हो; अतएव अभीष्ट लोक मुझसे माँग लो। अर्जुन ने कहा—भगवन्, मैं तुच्छ और असार सुखभोग या देवत्व पाने की इच्छा से यहाँ नहीं आया। मैं अपने भाइयों को वन में छोड़कर शत्रुओं से बदला चुकाने के लिए अस्त्रविद्या सीखने आया हूँ। जो इस चेष्टा को छोड़कर मैं और कुछ चाहूँगा तो जगत् में मेरी निन्दा हुआ करेगी।

अर्जुन के यों कहने पर देवराज इन्द्र ने मधुर स्वर से कहा—पुत्र, तुम जब देवदेव महादेव के दर्शन पाओगे तब मैं उसी समय वहाँ आकर तुमको सब दिव्य अस्त्र दूँगा। अब उन महादेव को प्रसन्न करने का उपाय करो। उनके दर्शन मिलने से ही तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध हो जायगा। यों उपदेश देकर देवराज इन्द्र अन्तर्द्धान हो गये। महाबाहु अर्जुन वहीं रहकर एकाग्रता के साथ तप करने लगे। ५९

कैरातपर्व

अड़तीसवाँ अध्याय

अर्जुन का हिमालय पर तप करना

जनमेजय ने कहा—भगवन्, महाबाहु पुरुषसिंह अर्जुन ने किस तरह सब दिव्य अस्त्र प्राप्त किये, सो आप विस्तार के साथ कहिए। वे किस तरह निर्जन वन में बेधड़क पहुँच गये? उस वन में रहकर उन्होंने कौन-कौन काम किये? किस तरह इन्द्र और भगवान् शङ्कर को उन्होंने प्रसन्न किया? हे सर्वज्ञ और ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ, आप देवताओं और मनुष्यों के सब वृत्तान्तों को अच्छी तरह जानते हैं। मैं आपके मुँह से यह सब वृत्तान्त सुनना चाहता हूँ। महावीर श्रेष्ठ योद्धा अर्जुन ने देवदेव महादेव से किस प्रकार घोर संग्राम किया? जिस युद्ध का वृत्तान्त सुनकर शूर महाबली पाण्डवों के हृदय भी हर्ष, डर और अचरज के मारे काँप उठे थे उस युद्ध का वृत्तान्त और अर्जुन के अन्य सब कामों का वर्णन कृपा करके मुझे सुनाइए। हे ब्रह्मन्, महात्मा अर्जुन के चरित्र में दोष रत्ती भर भी न था। कृपा करके उनके चरित्र का वर्णन कीजिए।

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, जिस तरह महादेव से अर्जुन की भेंट हुई और दोनों का घोर संग्राम हुआ, सो सब दिव्य अद्भुत कथा कहता हूँ, सुनिए। बड़े पराक्रमी महाबाहु अर्जुन, १० कार्यसिद्धि के लिए युधिष्ठिर की आज्ञा से, महादेव और इन्द्र के दर्शन करने के लिए, गाण्डीव धनुष और सोने की मूठवाला खड्ग लेकर, स्थिर-सङ्कल्प होकर, अकेले शीघ्रतापूर्वक हिमाचल की ओर चले। महारथी अर्जुन उत्तर दिशा को जा करके, काँटों से भरे और विविध फल-फूलों तथा तरह-तरह के पक्षियों से शोभित वन को लाँघकर, अन्त को हिमाचल के पास पहुँच गये। वहाँ सिद्ध और चारण रहते थे। इधर आकाश में शङ्ख और नगाड़े बजने लगे; देवता पृथ्वी पर दिव्य फूलों की वर्षा करने लगे। चारों ओर आकाश में मेघ घिर आये। गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले अर्जुन महावन को लाँघकर हिमालय की उपत्यका-भूमि में पहुँचे। उन्होंने देखा, फूलों और फलों के बोझ से झुकी हुई वृक्षों की कतारें पर्वत-शिखर पर परम शोभा फैला रही हैं। अनेक प्रकार के पक्षी वृक्षों की डालियों पर बैठे मधुर स्वर से बोल रहे हैं। स्थान-स्थान पर नदियाँ हैं। उन नदियों में बड़े बड़े भँवर पड़ रहे हैं। उनका जल अत्यन्त

पवित्र और वैडूर्यमणि के समान स्वच्छ है। नदियों के तटों पर फूले-फले वृक्ष लगे हैं। हंस, कारण्डव, सारस, क्रौञ्च, कोकिला, मोर आदि जल और स्थल के पक्षी चारों ओर कलोल कर
२० रहे हैं। महाबाहु अर्जुन हिमाचल के वन की शोभा देखकर मुग्ध हो गये।

महामनस्वी अर्जुन वल्कल, दण्ड, मृगछाला आदि धारण करके वृक्षों से आप ही गिरे-हुए सूखे पत्ते खाकर अत्यन्त कठिन तप करने लगे। उन्होंने पहले महीने में तीन-तीन दिन के बाद, दूसरे महीने में छः-छः दिन के बाद और तीसरे महीने में पन्द्रह-पन्द्रह दिन के बाद केवल फल खाकर तप किया। चौथे महीने में उन्होंने एकदम खाना छोड़ दिया। केवल वायु-भक्षण करके, हाथ ऊपर उठाकर, अँगूठे के बल पृथ्वी पर खड़े होकर अर्जुन घोर तप करने लगे। उनके जटाजूट का रङ्ग बिजली सहित बादल का सा देख पड़ने लगा।

सब महर्षि अर्जुन के यों कठोर तप करने का कारण जानने के लिए पिनाकपाणि महादेव के पास गये। वहाँ पहुँचकर शङ्कर को प्रणाम करके उन्होंने कहा—प्रभो, महातेजस्वी अर्जुन हिमाचल पर घोर तप कर रहे हैं। वे क्यों तत्पर होकर ऐसा घोर तप कर रहे हैं? उनके यों तप करने का कुछ कारण हमारी समझ में नहीं आता। उनके तप के तेज से हम सब तप
३० रहे हैं। आप जाकर उन्हें ऐसा कठिन तप करने से रोकिए।

आत्मज्ञानी निष्पाप मुनियों के ये वचन सुनकर शिवजी ने कहा—हे तपोधन ऋषियो, तुम लोग अर्जुन का ऐसा तप देखकर कुछ खेद मत करो। तुम अपने-अपने आश्रम को जाओ। मैं अर्जुन के इरादे को जानता हूँ। स्वर्ग, ऐश्वर्य या दीर्घायु, यह कुछ भी वे नहीं चाहते। मैं अभी जाकर उनकी इच्छा पूरी करता हूँ। वैशम्पायन कहते हैं—महादेव के वचन सुनकर सब
३५ ऋषि बहुत प्रसन्न हुए और अपने-अपने आश्रम को चले गये।

उनतालीसवाँ अध्याय

अर्जुन का किरातरूपधारी शिव से युद्ध

वैशम्पायन कहते हैं—जनमेजय, महात्मा तपस्वियों के चले जाने पर भगवान् शङ्कर सुवर्ण-वृक्ष-सदृश किरात का वेष धारण करके दूसरे सुमेरु पर्वत के समान देख पड़े। उन्होंने सुन्दर पिनाक धनुष और साँप जैसे तेज़ बाण हाथ में लिये। उन्हीं के समान व्रत और वेष धारण करनेवाली भगवती पार्वती भी उनके साथ चलीं। अनेक प्रकार के विकट वेष धारण करनेवाले भूत और उनकी स्त्रियाँ भी शिवजी के साथ हो लीं। इस प्रकार भगवान् शङ्कर साक्षात् अग्नि के समान वेग से उस तपोवन में पहुँचे जहाँ अर्जुन तप कर रहे थे। किरात-वेषधारी भगवान् शङ्कर के जाने पर उस स्थान की बड़ी शोभा हुई। झरनों का शब्द और पक्षियों का कलरव बन्द हो गया। क्षण भर में वहाँ सब जगह सन्नाटा छा गया।

किरातवेशधारी शङ्कर और अर्जुन—पृ० ७७५

अर्जुन के पास पहुँचकर किरात-रूपधारी शङ्कर ने देखा कि मूक नाम का एक दुष्ट दैत्य, वराह का रूप धारण किये, अर्जुन को मारने की ताक में लगा हुआ है। इस बात को अर्जुन ने भी लख लिया। तब उन्होंने गाण्डीव धनुष पर विषधर नाग सदृश तीक्ष्ण बाण चढ़ाकर उस कपट वेषधारी वराह-रूप असुर से कहा—रे दुष्ट, मैंने तेरी कुछ बुराई नहीं की, तो भी तू यहाँ पर स्थित मुझे मार डालने की ताक में है। इसलिए मैं तुझे, अपने ऊपर आक्रमण करने के पहले ही, यमलोक को भेजे देता हूँ। किरात-रूपी शङ्कर ने अर्जुन को दैत्य के ऊपर बाण चलाने के लिए उद्यत देखकर, उन्हें रोकते हुए, कहा—हे मुनि, इस श्याम मेघ के समान प्रभा-वाले वराह को मैं पहले से ही अपना निशाना बना चुका हूँ। अनादर का भाव दिखाते हुए अर्जुन ने किरात के कहने पर ध्यान न देकर उस वराह पर ज्योंही बाण चलाया त्योंही किरात-रूपी महादेव ने भी उस वराह के ऊपर वज्र के समान घोर अग्नि-शिखा-युक्त एक बाण चलाया। दोनों के धनुषों से छूटे हुए दोनों बाण प्रबल वेग से आकर एक साथ उस वराह के शरीर में लगे। पत्थर पर बिजली गिरने से या पर्वत पर इन्द्र का वज्र गिरने से जैसा विकट शब्द होता है वैसा ही शब्द उस वराह के शरीर में बाणों के लगने से हुआ। दोनों वीरों ने और भी बहुत से बाण उस शूकर के शरीर पर चलाये। इस प्रकार बहुत से बाणों का निशाना बनकर वह वराह पृथ्वी पर गिरकर मर गया। मरते समय उसका वही असली राक्षस का रूप हो गया। १०

इसके बाद असंख्य स्त्रियों के साथ किरातरूपी भगवान् शङ्कर को देखकर प्रसन्नतापूर्वक मुसकाते हुए अर्जुन ने कहा—हे सुवर्ण-सदृश प्रभावाले पुरुष, तुम कौन हो जो इस निर्जन वन में स्त्रियों के साथ बेखटके विचर रहे हो? तुम्हें क्या कुछ भी डर नहीं है? मैं इस वराह को पहले ही अपने बाण का निशाना बना चुका था। तुमने इस पर बाण चलाकर क्यों मृगया (शिकार) के धर्म के विरुद्ध काम किया? मैं तुमको, प्राण लिये बिना, न छोड़ूँगा। २०

अर्जुन के ये वचन सुनकर किरातरूपी शङ्कर ने हँसकर कहा—हे वीर, तुमको मुझसे बिलकुल नहीं डरना चाहिए। इस वन के पास ही मेरा निवास-स्थान है। हे तपोधन, इस

बहुत जीव-जन्तुओं से भरे वन में हम लोग रहते हैं। यह जगह हम लोगों के ही रहने योग्य है। हमें यहाँ काहे का डर है? किन्तु तुम अग्नि के समान तेजस्वी, सुख के योग्य और सुकुमार होकर भी किसलिए इस सूनसान दुर्गम वन में अकेले विचरते और रहते हो?

अर्जुन ने कहा—मैं गाण्डीव धनुष, अग्नितुल्य अस्त्रों और बाणों के बल से इस महावन में दूसरे कार्त्तिकेय के समान रहता हूँ। यह राक्षस घोर वराह का रूप धारण करके मुझे मारने आ रहा था। मैंने अपनी रक्षा करने के लिए बाण चलाकर इसको मार डाला। किरात ने कहा—हे तापस, इस राक्षस को मारने के लिए मैंने तुमसे पहले ही धनुष पर बाण चढ़ाया था। मेरे ही बाण से यह वराह मरा है। हे मन्दमते, तुमको बड़ा घमण्ड है। अपना दोष दूसरे के ३०: सिर मढ़ना कभी उचित नहीं। मैं अभी तुमको अपने पैने बाणों से यमपुरी को भेज दूँगा। सँभल जाओ। मैं तुम पर वज्र-सदृश बाण चलाता हूँ। तुम भी अपनी शक्ति का प्रयोग करने में कुछ उठा न रक्खो और यथाशक्ति मुझ पर अपने बाणों की चोट करो।

किरात के ये वचन सुनकर महावीर अर्जुन बहुत ही क्रुद्ध हुए और उस पर बाणों की वर्षा करने लगे। प्रसन्नतापूर्वक शङ्कर ने उन बाणों को अपने शरीर पर आने दिया और बारम्बार कहा—रे मन्दमते, तू और भी बाण चला, और भी बाण चला। तेरे पास जितने मर्मभेदी

बाण हैं, सब मुझ पर चला।

किरात के इन वचनों से और भी कुपित होकर अर्जुन उनके ऊपर लगातार लाखों बाण बरसाने लगे। अब वे दोनों वीर क्रोध के मारे बारम्बार गरजते हुए परस्पर एक दूसरे के ऊपर ढेर के ढेर साँप-सदृश बाण बरसाने लगे। किरातरूपी शङ्कर पर अर्जुन ने जितने बाण चलाये उन्हें उन्होंने हँसते-हँसते सह लिया। दमभर तक खड़े-खड़े शङ्कर ने अर्जुन की बाण-वर्षा अपने शरीर पर होने दी। उन बाणों से उनके शरीर में कहीं घाव नहीं लगा; वे पर्वत की तरह अचल खड़े रहे। अपने भयानक बाणों की वर्षा को इस तरह व्यर्थ होते देखकर अर्जुन को बड़ा आश्चर्य हुआ; वे शाबाशी देकर किरात के पौरुष की सराहना करने लगे। अर्जुन सोचने लगे कि

इस हिमाचल पर विचरनेवाले सुकुमार-शरीर पुरुष ने हँसते-हँसते गाण्डीव धनुष से छूटे हुए बाणों को सह लिया! यह कौन है? क्या साक्षात् भगवान रुद्र हैं? अथवा कोई यक्ष, देवता या दानव है? सुना है कि पर्वतश्रेष्ठ हिमालय पर देवता लोग आया-जाया करते हैं; ४० किन्तु मेरे गाण्डीव धनुष से छूटे हुए बाणों के वेग को सहने की शक्ति शङ्कर के सिवा और किसी में नहीं है। यदि ये शङ्कर नहीं हैं; कोई देवता, दानव या यक्ष हैं, तो मैं अपने तीक्ष्ण बाणों के द्वारा इन्हें अवश्य यमलोक भेज दूँगा।

मन ही मन यों निश्चय करके महावीर अर्जुन एक साथ सूर्य-किरणों के समान हज़ारों बाण छोड़ने लगे। पर्वत जैसे अटल रहकर ओलों की वर्षा को सहता है वैसे ही भगवान् महादेव प्रसन्न-चित्त से अर्जुन के चलाये बाणों को सहने लगे। दमभर में अर्जुन के सब बाण चुक गये। महाबाहु अर्जुन अपने बाणों को चुकते देखकर मन ही मन बहुत डरे। खाण्डव वन जलाते समय जिनसे दोनों अक्षय तर्कस पाये थे उन्हीं अग्निदेव को मन ही मन स्मरण करते हुए अर्जुन सोचने लगे कि मेरे सब बाण चुक गये; अब मैं क्या चलाऊँ! और भला यह पुरुष ही कौन है? यह तो मेरे सभी बाणों को ग्रसे लेता है। अस्तु, जैसे अंकुश के द्वारा हाथी का दमन किया जाता है, वैसे इस धनुष के अग्रभाग से मैं अभी इसे यमपुरी को भेजूँगा। यह निश्चय करके अर्जुन ने धनुष के अग्रभाग के द्वारा किरात को पकड़ा और प्रत्यञ्चा-पाश के द्वारा खींचकर वज्रतुल्य घूँसे मारना शुरू किया। तब पर्वत पर स्थित महादेव ने बलपूर्वक अर्जुन के हाथ से दिव्य गाण्डीव धनुष छीन लिया। ५० धनुष को शत्रु के हाथ में जाते देख अर्जुन ने खड्ग लिया। हाथ में खड्ग लेकर वे किरातरूपी महादेव के मस्तक पर प्रहार करने के लिए झपटे। पहाड़ों पर भी कुण्ठित न होनेवाला वह खड्ग महादेव के मस्तक से छू जाते ही टूटकर गिर पड़ा। खड्ग के भी व्यर्थ होने पर अर्जुन शिलाओं और वृक्षों से युद्ध करने लगे। किरात-शङ्कर ने अर्जुन की चलाई हुई शिलाओं और वृक्षों को भी उसी तरह सह लिया;

उससे भी उनका कुछ न बिगड़ा। क्रोध के मारे अर्जुन के मुँह से धुआँ निकलने लगा। तब वे आगे बढ़कर शङ्कर की छाती पर प्रचण्ड घूँसे जमाने लगे। देवदेव महादेव भी

अर्जुन के वक्षःस्थल पर वज्र के समान कठोर घूँसे लगाने लगे। फिर कुछ देर तक दोनों परस्पर बाहुयुद्ध करने लगे। दोनों के शरीरों पर दोनों के हाथ पड़ने से "चट-चट" शब्द होने लगा। तब इन्द्र और वृत्रासुर के युद्ध के समान दोनों का युद्ध बहुत भयानक हो उठा।

६० परस्पर शरीर की रगड़ से आग की चिनगारियाँ निकलने लगीं। इसके बाद महादेव ने अर्जुन को पकड़कर ज़ोर से दबाया। इससे अर्जुन की साँस रुक गई; वे मूर्च्छित से हो गये। वे पिण्डाकार और बेदम होकर पृथ्वी पर पड़े रहे। उनकी देह रक्त से लथ-पथ हो गई। दम भर में मूर्च्छा दूर होने पर वे फिर उठ खड़े हुए और अत्यन्त दुःखित चित्त से शरणागत-रक्षक भगवान् महादेव का स्मरण करने लगे। फिर उन्होंने महादेव की पार्थिव-मूर्त्ति का पूजन करके उसपर माला चढ़ाई। [आँखें मूँदकर प्रार्थना करने के उपरान्त] उन्होंने क्या देखा कि वही माला उस किरात के सिर पर शोभा दे रही है। यह देखकर अर्जुन के ज्ञाननेत्र खुल गये। उन्हें विश्वास हो गया कि ये किरात-रूपधारी साक्षात् महादेव हैं। उनके हृदय में भक्तिभाव उमड़ आया। वे किरात-वेषधारी महादेव के चरणों पर गिर पड़े।

आशुतोष (शीघ्र प्रसन्न होनेवाले) महादेव ने तप से दुबले हो रहे अर्जुन पर प्रसन्न होकर अत्यन्त गम्भीर स्वर से कहा—अर्जुन, आज मैं तुम्हारे तेज और साहस को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। तुम्हारे समान बलवान् क्षत्रिय पृथ्वीमण्डल पर दूसरा नहीं है। आज मुझे मालूम हुआ कि तुममें भी मेरे बराबर शक्ति है। हे कमलनयन, मैं तुमको दिव्य दृष्टि देता हूँ। तुम मेरे रूप को देखो। हे पाण्डव, तुम पुरातन ऋषि हो। अगर देवता भी तुम्हारे

७० शत्रु हों तो तुम उन्हें भी युद्ध में परास्त कर सकते हो। मैं सन्तुष्ट होकर यह कहीं निष्फल न होनेवाला पाशुपत अस्त्र तुम्हें देता हूँ; क्योंकि तुम सब तरह इसको तुरन्त धारण करने में समर्थ और योग्य हो।

वैशम्पायन कहते हैं—अब महातेजस्वी शूलपाणि महेश और भगवती पार्वती को देखकर अर्जुन ने ज़मीन में घुटने टेककर उनके पैरों पर सिर रख दिया। वे प्रणाम करके शिव को मनाने के लिए स्तुति करने लगे। अर्जुन ने कहा—हे भग के नेत्र निकालकर नष्ट कर देनेवाले, सब देवताओं के ईश्वर कपर्दी, हे देवदेव, महादेव, नीलकण्ठ, जटाधर, विभो, हे त्रिलोचन! तुमको मैं सबका परम कारण समझता हूँ। तुम सब देवताओं की गति हो। तुम्हीं से यह जगत् उत्पन्न हुआ है। तीनों लोकों में क्या देवता, क्या दानव और क्या मानव, कोई तुमको जीत नहीं सकता। तुम शिवरूपी विष्णु और विष्णुरूपी शिव हो। तुम दक्ष के यज्ञ को नष्ट करनेवाले रुद्र और हरि हो। तुमको नमस्कार है। हे ललाट-लोचन, हे सर्व, हे धर्षक, हे शूलपाणि, हे पिनाकधारी, हे सूर्य, हे मार्जनीय, हे वेधा, हे भगवन्, हे सब प्राणियों के परम ईश्वर! मैं तुम्हें प्रसन्न करने के लिए प्रणाम करता हूँ। हे हर! तुम गणेश, जगत् के कल्याण के कारण शम्भु,

लोकसृष्टि के कारण के भी कारण, प्रधान पुरुषों में श्रेष्ठ, परमश्रेष्ठ और परम सूक्ष्म हो। हे शङ्कर, तुम मेरे अपराध को क्षमा करो। हे देवेश, मैं तुम्हारे ही दर्शन की इच्छा से [तपस्वियों के रहने के दिव्य स्थान] महापर्वत पर आया हूँ। भगवन्, तीनों लोकों के निवासी तुमको प्रणाम करते हैं। मैं भी हाथ जोड़कर तुमको मनाता हूँ। प्रभो, मैंने अत्यन्त साहस करके तुम्हारा बड़ा अपराध किया है। भगवन्, कृपा करके मेरे उस अपराध को क्षमा कीजिए। हे उमाकान्त, मैंने बिना जाने तुमसे युद्ध किया है। हे शङ्कर, मैं इस समय तुम्हारी शरण में आया हूँ; मुझे क्षमा करो। ८०

वैशम्पायन कहते हैं—महातेजस्वी वृषध्वज शङ्कर ने हँसते-हँसते अर्जुन का हाथ अपने हाथ में ले लिया और कहा कि मैंने तुमको क्षमा किया। अब प्रसन्नतापूर्वक अर्जुन को गले से लगाकर महादेवजी फिर कहने लगे। ८४

चालीसवाँ अध्याय

अर्जुन को पाशुपत अस्त्र प्राप्त होना

शङ्कर ने कहा—हे अर्जुन, तुम पूर्वजन्म में नर नाम के ऋषि थे। तुमने नारायण के साथ बहुत दिनों तक बदरिकाश्रम में तपस्या की है। तुममें और विष्णु में परम तेज विराजमान है। तुम्हारा वह तेज ही इस जगत् का आधार है। हे प्रभो, तुमने और कृष्ण ने इन्द्र के अभिषेक के समय मेघ के समान गरजनेवाला भारी धनुष लेकर बहुत से दानवों का नाश किया है। हे पुरुषश्रेष्ठ, यही वह तुम्हारा गाण्डीव धनुष है जिसे मैंने माया-बल से तुमसे छीन लिया था। हे पाण्डव, तुम्हारे दोनों तरकस फिर अक्षय हो जायँगे, तुम्हारे शरीर की सब व्यथा दूर हो जायगी। हे सत्यपराक्रम, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ; जो जी चाहे, वर माँग लो। हे शत्रुदमन, मनुष्यलोक में तुम्हारे समान दूसरा पुरुष नहीं है। स्वर्ग में भी तुमसे बढ़कर कोई पुरुष नहीं देख पड़ता।

अर्जुन ने कहा—भगवन् वृषध्वज, जो मुझ पर प्रसन्न होकर आप वर देना चाहते हैं तो ब्रह्मशिरा नाम का वही भीम-पराक्रम दिव्य पाशुपत अस्त्र दीजिए, जो प्रलयकाल में सब जगत् का संहार कर देता है; जिसके प्रभाव से मैं कर्ण, भीष्म, कृप, द्रोण आदि को युद्ध में परास्त करूँगा;—दानव, राक्षस, भूत, पिशाच, गन्धर्व, पन्नग आदि को भस्म कर सकूँगा। उस अस्त्र को, मन्त्र पढ़कर, धनुष पर चढ़ाने से हज़ारों शूल, उग्र रूपवाली गदा और विषैले साँप सदृश बाणों के ढेर के ढेर प्रकट होते हैं। हे भग-नेत्रहारी भगवन्, यह मेरी पहली अभिलाषा है। कृपा करके यह मेरी अभिलाषा पूरी कीजिए। १०

महादेव ने कहा—विभो, मैं तुमको वही परम प्रिय पाशुपत अस्त्र देता हूँ। तुम्हारे लिए उसका धारण, मोक्ष और उपसंहार सब सहज-साध्य होगा। मनुष्य की कौन कहे, इन्द्र, यम, कुबेर, वरुण, पवन आदि देवता भी इन बातों को बिलकुल नहीं जानते। हे पार्थ, तुम एकाएक यह अस्त्र मत चलाना। थोड़े तेज-वाले मनुष्य आदि पर इसका प्रयोग करने से यह निस्सन्देह सारे जगत् को भस्म कर सकता है। त्रैलोक्य में ऐसा कोई नहीं जिसे यह अस्त्र नष्ट न कर सकता हो। मन से, नेत्र से, वाक्य से या धनुष से, किसी तरह इस अस्त्र का प्रयोग क्यों न किया जाय, यह सबको नष्ट कर सकता है।

वैशम्पायन कहते हैं कि महादेवजी के यों कहने पर अर्जुन पवित्र होकर उनके समीप आये और बोले—हे विश्वनाथ, कृपा करके मुझे उस अस्त्र की शिक्षा दीजिए। २० देव-देव महादेव ने उसी घड़ी संहार-प्रतिसंहार आदि के मन्त्रों-सहित वह अस्त्र अर्जुन को दिया। तब वह दिव्य अस्त्र महादेव के समान अर्जुन की भी सेवा में उपस्थित हुआ। अर्जुन ने प्रसन्नता-पूर्वक उसे स्वीकार किया। इस प्रकार अर्जुन को पाशुपत अस्त्र मिल चुकने पर पर्वत, वन, खान, समुद्र, नगर और ग्राम आदि समेत यह पृथ्वीमण्डल एक बार काँप उठा। बिजली कड़कने लगी। आकाश में देवता बाजे बजाने लगे। देवताओं और असुरों ने उस प्रदीप्त, मूर्त्तिमान् तीक्ष्ण अस्त्र को अर्जुन के हाथ में आते देखा। महादेव ने अर्जुन के शरीर पर हाथ फेरकर उनकी सब व्यथा दूर कर दी। इसके बाद महादेव ने अर्जुन से स्वर्ग जाने के लिए कहा। वीर अर्जुन ने उनको प्रणाम किया। अर्जुन हाथ जोड़े हुए खड़े होकर उनकी ओर एकटक निहारने लगे।

अब शङ्कर ने दानव और पिशाच आदि को मारनेवाला गाण्डीव धनुष अर्जुन को दिया। फिर अर्जुन के सामने ही वे उस नाग, ऋषि, सिद्धगण आदि की विहार-भूमि हिमाचल पर्वत २८ से आकाश-मार्ग को चले गये।

इकतालीसवाँ अध्याय

सब लोकपालों का आना और अपने अस्त्र देना

वैशम्पायन ने कहा—हे जनमेजय, इस प्रकार पिनाकपाणि महादेव अस्ताचल को जाते हुए सूर्य के समान देखते ही देखते अर्जुन की आँखों की ओट हो गये। तब अर्जुन अकचकाकर मन ही मन सोचने लगे कि अहो, मैं कैसा भाग्यवान् हूँ। मैंने साक्षात् महादेव के दर्शन किये! निस्सन्देह मुझ पर भगवान् शङ्कर ने कृपा की है। सौभाग्यवश आज उन्हें देखकर और हाथ से छूकर मैं कृतार्थ हुआ। इतने दिनों पर समझा कि अब मेरे शत्रु युद्ध में परास्त हुए और हम लोगों की इच्छा पूरी हुई।

परम तेजस्वी अर्जुन मन में यों सोच रहे थे कि वैदूर्य-मणि-तुल्य जलेश वरुण, अपने शरीर की कान्ति से दसों दिशाओं को प्रकाशित करते, उस स्थान पर आये। अनेक प्रकार के जल-जन्तु, असंख्य नाग, नद, नदी, दैत्य, साध्य और देवगण, उनके साथ आये। फिर सुनहरे रङ्ग के शरीरवाले यक्षराज कुबेर विमान पर चढ़कर आकाश-मार्ग को प्रकाशित करते हुए अर्जुन को देखने के लिए वहाँ आये। उनके साथ अनेक यक्ष भी वहाँ पर आये। लोकसंहारक दण्डधारी प्रबल प्रतापी धर्मराज यम भी विमान पर चढ़कर यक्ष,

गन्धर्व, पन्नग आदि के लोकों को प्रकाशित करते हुए अर्जुन को देखने आये। उनके साथ मनुष्य-रूपधारी लोकपितामह पितर भी आये। वे सब विचित्र शिखरवाले हिमाचल पर उपस्थित होकर तपोबलशाली अर्जुन को देखने लगे। इसी बीच में ऐरावत पर इन्द्राणी-सहित विराजमान इन्द्र भी वहाँ पहुँच गये। उनके साथ सब देवगण थे। इन्द्र के सिर पर सफ़ेद छत्र शोभायमान था। जान पड़ता था, मानों सफ़ेद मेघ चन्द्रमण्डल के ऊपर घिरा हुआ है। तपोधन ऋषि और गन्धर्व उनकी स्तुति कर रहे थे। इस प्रकार हिमाचल पर उपस्थित होकर भगवान् इन्द्र आदित्य के समान शोभित हुए। १०

तब दक्षिण दिशा में स्थित परम धर्मज्ञ बुद्धिमान् यम ने मेघ के समान गम्भीर स्वर से, अर्जुन से, कहा—हे पाण्डव, हम सब दिक्पाल तुम्हें देखने को यहाँ आये हैं। तुम योग्य पात्र

हो, इसलिए हम आज तुमको दिव्य ज्ञान देते हैं। हे अर्जुन, तुम पूर्व जन्म में नर नाम के अचिन्त्य-रूप महाबली ऋषि थे। इस समय ब्रह्मा की आज्ञा के अनुसार तुम मनुष्य हुए हो। हे निष्पाप, तुम वसु के अंशावतार महापराक्रमी पितामह भीष्म को युद्धभूमि में परास्त करोगे; द्रोणाचार्य के द्वारा रक्षित क्षत्रियों को मारोगे और नर-रूपधारी निवातकवच आदि अन्यान्य २० दानवों को मारोगे। हे धनञ्जय, सब लोकों को प्रकाशित करनेवाले मेरे पिता (सूर्य) के अंशावतार महाबली कर्ण की मृत्यु तुम्हारे ही हाथ से होगी। जो देवों-राक्षसों और दानवों के अंशों से मनुष्ययोनि में उत्पन्न हुए हैं, वे संग्राम में तुम्हारे बाणों से मरकर अपने-अपने कर्म-फल के अनुसार गति पावेंगे। हे अर्जुन, जगत् में तुम्हारी अक्षय कीर्त्ति रहेगी। तुमने साक्षात् देवदेव महादेव को प्रसन्न किया है। तुम विष्णुरूप कृष्ण की सहायता से पृथ्वी का भार उतारोगे। हे महाबाहो, मैं तुमको अपना 'दण्ड' देता हूँ। यह कभी कहीं निष्फल नहीं जाता। तुम इसके द्वारा सब बड़े-बड़े काम कर सकोगे।

वैशम्पायन कहते हैं कि कुरुश्रेष्ठ अर्जुन ने छोड़ने और खींचने के मन्त्रों-सहित वह यमराज का दिया हुआ अस्त्र (दण्ड) विधिपूर्वक ले लिया। इसके बाद मेघ के समान श्यामवर्ण जलेश वरुण पश्चिम ओर से कहने लगे—हे अरुण-नयन क्षत्रियश्रेष्ठ अर्जुन, मैं जलेश वरुण आया हूँ। मुझे देखो। मैं तुमको संहार और प्रतिसंहार के मन्त्रों-सहित अपना यह अनिवार्य अस्त्र (पाश) देता हूँ। इसे ले लो। हे वीर, मैंने तारकासुर-संग्राम के समय इसी पाश के द्वारा हज़ारों महाबली दैत्यों को बाँध लिया ३० था। इसलिए हे महापराक्रमी अर्जुन, मैं प्रसन्न होकर तुमको यह अस्त्र देता हूँ। इसका जिस पर प्रयोग किया जाता है वह, यमराज ही क्यों न हो, इससे बच नहीं सकता। इस पाश को लिये हुए जब तुम युद्धभूमि में खड़े हो जाओगे तब सारी पृथ्वी को भी क्षत्रियों से ख़ाली कर सकोगे।

[इस प्रकार यमराज और वरुण जब अपने अस्त्र अर्जुन को दे चुके तब] कैलास पर रहनेवाले धनपति कुबेर ने कहा—हे पराक्रमी अर्जुन, कृष्ण के दर्शन से मुझे जितनी प्रसन्नता

होती है, उतनी ही प्रसन्नता इस समय तुम्हें देखकर हुई है। हे महाबाहु, हे सनातन पूर्व-देव, पूर्व कल्प में तुमने हमारे साथ नित्य तपस्या की है। इस समय तुम्हें देखकर मुझे बड़ी ख़ुशी हुई। मैं तुम्हें अपना दिव्य 'प्रस्वापन' अस्त्र देता हूँ। इसके द्वारा तुम मनुष्यों को तो हराओगे ही, उनके सिवा और भी प्रबल योद्धाओं को हरा सकोगे। दुर्योधन की सब सेना भी इसके प्रभाव से नष्ट हो जायगी। तुम इस शत्रु-नाशन परम तेजस्वी, दिव्य, प्रिय प्रस्वापन अस्त्र को ग्रहण करो। महात्मा शङ्कर ने जब त्रिपुरासुर को मारा था तब मैंने यही प्रस्वापन अस्त्र चलाकर असुरों को भस्म कर डाला था। तुमको देने के लिए मैं यह अस्त्र लाया हूँ। तुम इसके ग्रहण करने के योग्य पात्र हो। इसलिए इसे लो। कुवेर के यों कहने पर अर्जुन ने उस अस्त्र को विधिपूर्वक ग्रहण किया। ४०

अब इन्द्र ने मेघ-सदृश गम्भीर स्वर से कहा—हे महाबाहु अर्जुन, तुम पुरातन ऋषि हो। तुमको परम सिद्धि प्राप्त हो गई। इस समय तुमने श्रेष्ठ दिव्य पद पाया है। हे शत्रुदमन, तुम्हें देवकार्य सिद्ध करने के लिए स्वर्ग जाना पड़ेगा। इसलिए तैयार हो जाओ। मातलि तुम्हारे पास रथ लावेगा। उस पर चढ़कर तुम स्वर्ग आना। वहाँ मैं तुम्हें सब दिव्य अस्त्र दूँगा।

उस पर्वत-शिखर पर लोकपालों को देखने से अर्जुन को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने वाणी, जल और फलों के द्वारा लोकपालों की विधिपूर्वक पूजा की। अर्जुन से बातचीत करके लोकपाल अन्तर्द्धान हो गये। अस्त्रों के प्राप्त हो जाने से अर्जुन बड़े प्रसन्न हुए। उनका मनोरथ पूरा हो गया। ४९

इन्द्रलोकाभिगमनपर्व

बयालीसवाँ अध्याय

अर्जुन का स्वर्ग को जाना

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, लोकपाल जब अपने-अपने लोक को चले गये तब शत्रुविनाशक अर्जुन, इन्द्र के भेजे, रथ के आने की बाट जोहने लगे। दमभर में इन्द्र का सारथि मातलि ज्योतिर्मय रथ लेकर वहाँ आ गया। हवा के समान तेज़ दस हज़ार बढ़िया घोड़े उस रथ को लेकर चलते हैं। रथ के प्रबल वेग से मेघमण्डल छिन्न-भिन्न हो गया। आकाश निर्मल हो गया। रथ के पहियों की गम्भीर घरघराहट से दसों दिशाएँ गूँज उठीं। अर्जुन ने देखा कि उस रथ में खड्ग, शक्ति, गदा, प्रास, बिजली और वज्र आदि अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र रक्खे हैं। बड़े-बड़े भयानक विषैले नाग बन्धन की जगह पर लगे हुए हैं। सुवर्णमण्डित श्याम रङ्ग की वैजयन्त नाम इन्द्र की ध्वजा फहरा रही है। उस रथ पर उज्ज्वलवर्ण सुवर्ण के गहने पहने सारथि को देखकर अर्जुन को साक्षात् इन्द्र का धोखा हुआ।

१० मातलि ने अर्जुन के पास पहुँचकर अत्यन्त नम्र भाव से कहा—हे अर्जुन, देवराज इन्द्र ने तुम्हें देखने के लिए रथ भेजा है, इस पर झटपट चढ़ो। उन्होंने मुझे आज्ञा दी है कि मैं तुम्हें वहाँ ले चलूँ। वहाँ देवराज, देवगण, ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा आदि सभी तुम्हें देखने के लिए उत्कण्ठित हो रहे हैं। तुम तुरन्त मेरे साथ इस रथ पर चढ़कर देवलोक में चलो और इन्द्र की आज्ञा का पालन करो। वहाँ अस्त्रविद्या पाकर फिर मनुष्यलोक में आ जाना। अर्जुन ने कहा—हे सारथि, तुम पहले रथ पर चढ़कर घोड़ों की रास पकड़ो। पुण्यात्मा पुरुष जिस प्रकार अच्छी राह पर पैर रखते हैं उसी प्रकार मैं पीछे से रथ पर चढ़ूँगा। सैकड़ों राजसूय यज्ञ करने पर भी इस इन्द्र के रथ पर कोई चढ़ नहीं सकता। देवता, दानव या यज्ञ करनेवाले राजा लोग, कोई भी इस रथ पर सवार नहीं हो सकता। जिन मनुष्यों ने तप नहीं किया वे, इस पर चढ़ना कैसा, इसे देख और छू भी नहीं सकते। अर्जुन के यों कहने पर मातलि ने रथ पर चढ़कर घोड़ों की रास हाथ में ली। अर्जुन पहले प्रसन्नतापूर्वक गङ्गा में नहा

२० करके पवित्र हो गये। फिर जप करके उन्होंने विधिपूर्वक पितरों का तर्पण किया। इसके बाद पर्वतराज मन्दराचल से कहा—हे पर्वतराज, तुम स्वर्गलोक जाने की इच्छा रखनेवाले पुण्यात्मा तपस्वियों के रहने के स्थान हो। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यगण, सभी तुम्हारा अनुग्रह पाकर सुरलोक में जाकर स्वच्छन्दरूप से विहार करते हैं। तुम पर मुनियों के स्थान और अनेक तीर्थ हैं। हे पर्वतराज, मैंने तुम पर रहकर बड़ा सुख पाया। अब तुमसे बिदा होकर स्वर्गलोक को जाता हूँ। मैंने तुम्हारे शिखर, कुञ्ज, नदी, झरने और अन्य सब पुण्य तीर्थों को देखा है; इधर-उधर विचरने के समय तरह-तरह के मधुर फल खाये हैं। तुम्हारे झरनों का अमृत-तुल्य जल पीकर मैंने प्यास बुझाई है। बच्चा जैसे मा-बाप की गोद में बेखटके सोता है वैसे ही मैं बहुत समय तक तुम्हारी गोद में लेटा हूँ। अब तक मैं वेद-ध्वनि से पवित्र और अप्सराओं से परिपूर्ण तुम्हारे शिखर पर सुख से रहा हूँ। अब बिदा होता हूँ।

इस प्रकार विनीत वचन कहकर, पर्वतराज से बिदा होकर, अर्जुन उस महारथ पर सवार

३० हुए। उनके सवार होते ही रथ का प्रकाश सूर्य की तरह और भी चमकने लगा। अर्जुन उसी रथ पर बैठकर आकाशमार्ग में जाने लगे। देखते ही देखते वे मनुष्यों की दृष्टि से अदृश्य हो गये। क्रमशः ऊपर जाकर अर्जुन ने अनेक प्रकार के असंख्य विमान देखे। वे स्थान सूर्य, चन्द्रमा या अग्नि के प्रकाश से प्रकाशित नहीं हैं। वे लोक, उनमें रहनेवाले पुण्यात्माओं के पुण्यकर्मों की, प्रभा से प्रकाशित हो रहे हैं। जो नक्षत्र बहुत बड़े होने पर भी दूरी के कारण पृथ्वी पर से बहुत छोटे देख पड़ते हैं, उन्हें अर्जुन ने देखा कि वे अपने बड़े आकार में अपनी-अपनी कक्षा में प्रकाशमान हैं। उनकी आभा चमकीली और बहुत दूर तक फैलनेवाली है। जो सिद्ध राजर्षिगण युद्ध में मारे गये हैं, वे अपनी-अपनी कक्षा में अपनी प्रभा से जगमगा रहे

इस प्रकार विनीत वचन कहकर, पर्वतराज से विदा होकर, अर्जुन उस महारथ पर सवार हुए—पृ० ७८४

दमयन्ती और हंस—पृ० ८०६

हैं। असंख्य गन्धर्व तपोबल से देवलोक को जीतकर वहाँ सूर्य के समान अपना प्रकाश फैला रहे हैं। इन यक्ष, ऋषि, अप्सराओं और अन्य अपने समान प्रकाशमान लोकों को देखकर अर्जुन को बड़ा अचरज हुआ। उन्होंने मातलि से उन सबका वृत्तान्त पूछा।

मातलि ने कहा—हे अर्जुन, तुमने पृथ्वी पर से जो तारों के झुण्ड देखे हैं वे ये सब पुण्यात्मा साधु पुरुष हैं। ये अपने-अपने पुण्य के फल से यहाँ आकर, तारा-रूप धारण कर, अपने-अपने निर्दिष्ट स्थान पर स्थित हो अपनी ज्योति से जगमगा रहे हैं।

इसके बाद कौरवश्रेष्ठ अर्जुन ने सिद्धों के मार्ग को लाँघकर देखा कि कैलास सदृश, चार दाँतोंवाला गजराज ऐरावत द्वार पर खड़ा है। महात्मा अर्जुन वहाँ जाकर महाराज मान्धाता ४० के समान शोभित हुए। महायशस्वी कमलनयन अर्जुन इन सिद्धों के लोकों को लाँघकर परम रमणीय अमरावती पुरी की शोभा देखने लगे। ४२

तेंतालीसवाँ अध्याय

अर्जुन का सम्मान और इन्द्र के आधे आसन पर बैठना

वैशम्पायन कहते हैं—अर्जुन ने सिद्ध-चारण आदि के रहने की जगह, सब ऋतुओं के फूलों से शोभित, उत्तम वृक्षों की पंक्तियों से परिपूर्ण वह मनोहर नगरी देखी। मृदु मन्द पवन वहाँ के वृक्षों के सुगन्धित फूलों से पराग लेकर चारों ओर सुगन्ध फैला रहा था। अर्जुन ने नन्दन वन में जाकर देखा कि अप्सराएँ इधर-उधर विचर रही हैं। खिले हुए फूलों के वृक्ष हवा के झोंकों से धीरे-धीरे हिल रहे हैं, जिससे जान पड़ता है कि वे हाथ हिला-हिलाकर अपनी ओर बुला रहे हैं। जिन्होंने कभी तप नहीं किया, या अग्नि में आहुति नहीं दी, या युद्ध में पीठ दिखाकर भागे हैं, वे उस लोक में कभी नहीं जा सकते। केवल पुण्यात्मा लोग ही वहाँ जाते हैं। यज्ञ, व्रत न करनेवाले, वेद-विहीन, तीर्थस्नान न करनेवाले, दान न देनेवाले, यज्ञ में विघ्न डालनेवाले, मदिरा पीनेवाले, गुरु-पत्नीगामी, मांस-भक्षी, दुरात्मा कभी इन्द्रलोक को नहीं देख सकते। दिव्य गीत-ध्वनि से गूँज रहे उस नन्दन वन को देखते हुए महाबाहु अर्जुन रम्य इन्द्रपुरी में पहुँचे। अर्जुन ने देखा, वहाँ पर चाहे जहाँ जानेवाले अनेक प्रकार के हज़ारों देवताओं के विमान और आपान-भूमि (कलवारी) मौजूद हैं।

अमरावती पुरी में अर्जुन को देखकर गन्धर्व और अप्सराएँ सब उनकी स्तुति करने लगे। पवनदेव, पुष्पों से सुगन्ध लाकर, अर्जुन के ऊपर मन्द-मन्द चलकर उनकी सेवा करने लगे। देवता, ऋषि, गन्धर्व और सिद्धगण प्रसन्नतापूर्वक अर्जुन की पूजा और अभ्यर्थना करने तथा आशीर्वाद देने लगे। अर्जुन के वहाँ पहुँचने पर शङ्ख और नगाड़े आदि बाजे बजने लगे। फिर इन्द्र की १०

आज्ञा से अर्जुन अत्यन्त विस्तृत नक्षत्रमार्ग में चले। चारों ओर देवता उनकी स्तुति कर रहे थे। फिर साध्य, विश्वेदेवा, मरुद्गण, अश्विनीकुमार, आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, ब्रह्मर्षिगण, दिलीप आदि राजर्षियों तथा तुम्बुरु, नारद, हाहा, हूहू आदि गन्धर्वों से मिलकर अर्जुन ने साक्षात् इन्द्र को देखा। इसके बाद रथ से उतरकर अर्जुन ने देखा कि विश्वावसु आदि गन्धर्व और ऋक्-यजुः-साम के जाननेवाले ब्राह्मण इन्द्र के चारों ओर बैठे उनकी स्तुति कर रहे हैं। उनके सिर पर स्वर्ण-दण्ड-मण्डित सफ़ेद छत्र लगा हुआ है। इधर-उधर दिव्य गन्ध से सुवासित मनोहर चँवर डुलाये जा रहे हैं। तब अर्जुन ने पिता के पास पहुँचकर सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। देवराज ने भी प्रणाम करते हुए पुत्र को गोद में लेकर उसका माथा सूँघा। फिर हाथ पकड़कर उन्हें अपने पवित्र आसन के कोने पर बिठा लिया। देवराज की आज्ञा से उनके आधे आसन पर बैठकर अर्जुन भी दूसरे इन्द्र के समान जँचने लगे। देवराज ने स्नेहवश होकर, वज्र लेने के घट्टों से शोभित और सुवर्ण के खम्भे के समान विशाल, अपना हाथ अर्जुन के मुँह पर फेरा। आनन्द से उनके नेत्र-कमल खिल गये। वे एकटक अर्जुन के मुख-कमल को निहारकर भी किसी तरह तृप्त न होते थे। चतुर्दशी के दिन जैसे चन्द्रमा और सूर्य का एकत्र उदय होने से उनकी शोभा होती है वैसे ही एक आसन पर बैठे हुए पिता और पुत्र की शोभा हुई। तुम्बुरु आदि संगीत-विद्या-विशारद गन्धर्व मधुर स्वर से साम और गाथाएँ गाने लगे। घृताची, मेनका, रम्भा, पूर्वचित्ति, स्वयंप्रभा, उर्वशी, मिश्रकेशी, दण्डगौरी, वरूथिनी, गोपाली, सहजन्या, कुंभयोनि, प्रजागरा, चित्रसेना, चित्रलेखा और सहा आदि विशाल नेत्रोंवाली अप्सराएँ सिद्ध पुरुषों का मनोरञ्जन करती हुई सभामण्डप में स्थान-स्थान पर मधुर स्वर से गाती और नाचती थीं। उनके विशाल नितम्ब, उभरे हुए स्तन, मनोहर हाव-भाव, विलास और कटाक्ष देखकर सबके चित्त चञ्चल और मोहित हो गये।

२० ३० ३२

चवालीसवाँ अध्याय

अर्जुन का अस्त्र-विद्या तथा गान-विद्या प्राप्त करना

वैशम्पायन कहते हैं—इसके बाद देवताओं और गन्धर्वों ने इन्द्र की आज्ञा से अर्घ्य देकर अर्जुन की पूजा की। पाद्य, आचमन आदि के लिए जल देकर वे अर्जुन को इन्द्रभवन के भीतर ले गये। विजयी अर्जुन इस प्रकार पूजा और सम्मान पाकर पिता के यहाँ रहने लगे। वहाँ उन्होंने बहुत से महाअस्त्रों के प्रयोग और उपसंहार आदि की विधि सीखी। उन्होंने महेन्द्र से वज्र, अशनि आदि प्रधान-प्रधान अस्त्र प्राप्त किये; किन्तु बीच-बीच में भाइयों का स्मरण हो आने से उनका चित्त दुखी हो जाता था। इस प्रकार वहाँ अर्जुन ने पाँच वर्ष बिताये। इन्द्र ने जब जाना कि अर्जुन सब अस्त्रविद्या सीख चुके तब एक दिन उन्होंने अर्जुन से कहा—वत्स, अब तुम चित्रसेन गन्धर्व से नाचना, गाना और स्वर्ग के बाजे बजाना सीखो। इससे आगे चलकर अवश्य तुम्हारा कुछ उपकार होगा। अब इन्द्र ने चित्रसेन को बुलाया और उससे अर्जुन की मित्रता करा दी। नये मित्र चित्रसेन को पाकर अर्जुन बड़े सुख से रहने लगे। इन्द्र ने अर्जुन को आज्ञा दी कि तुम सदा तत्पर रहकर सङ्गीत-विद्या सीखो परन्तु वे किसी तरह निश्चिन्त होकर सङ्गीत-विद्या न सीख सके; क्योंकि द्यूत से होनेवाले अनर्थ की कठिन यन्त्रणा सदा उनके मन में बनी रहती थी। कैसे शकुनि मारा जायगा, कैसे कर्ण और दु:शासन आदि दुरात्मा हराये जायँगे, यही चिन्ता सदा उनके मन में बनी रहती थी। बीच-बीच में वे आग्रह के साथ गन्धर्व-विद्या के अनुपम सुख का अनुभव भी करते थे। संगीत-विद्या में इस तरह विशेष जानकारी प्राप्त करके यद्यपि वे उसके मर्म को जाननेवाले उस्ताद हो गये; तो भी माता कुन्ती और युधिष्ठिर आदि भाइयों को स्मरण करके वे किसी तरह सुखी नहीं हो सके। ११

पैंतालीसवाँ अध्याय

चित्रसेन और उर्वशी का संवाद

वैशम्पायन कहते हैं कि इन्द्र को यह मालूम हुआ कि अर्जुन का चित्त उर्वशी पर चलायमान हुआ है। इससे उन्होंने चित्रसेन को बुलाकर कहा—हे गन्धर्वराज, तुम शीघ्र ही अप्सराओं में श्रेष्ठ उर्वशी के पास जाकर उससे कहो कि वह यहाँ आवे और अर्जुन की इच्छा पूरी करे। तुमने मेरी आज्ञा से अर्जुन को जैसे सङ्गीत-विद्या में निपुण कर दिया है वैसे ही कामशास्त्र में भी उसे पण्डित कर दो। इन्द्र की आज्ञा पाकर गन्धर्वराज चित्रसेन उसी समय उर्वशी के पास गया। उर्वशी से मिलकर उसने कुशल-प्रश्न किया। उसने भी उचित रूप से

पूजा करके गन्धर्वराज को सुखपूर्वक बिठलाया। चित्रसेन ने प्रसन्नतापूर्वक मुसकिराते हुए कहा—हे सुन्दरी, इन्द्र ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है। शायद तुम यह जानती होओगी। जिन्होंने

स्वाभाविक अनेक गुण, रूप-लावण्य, सुशीलता, व्रतानुष्ठान और इन्द्रियसंयम के द्वारा देवलोक तथा मनुष्यलोक में बहुत नाम पाया है; जो शूरता, वीरता, पराक्रम और क्षमा के प्रभाव से जगत् में प्रसिद्ध हो रहे हैं; जो डाह नहीं करते हैं; जिन्होंने वेद, वेदाङ्ग, उपनिषद् आदि सब शास्त्र पढ़े हैं; जो भक्ति के साथ गुरुजन की सेवा करते हैं; आठ गुणों से युक्त मेधा जिनकी स्वाभाविक शक्ति है; जो इन्द्र के समान ब्रह्मचर्य, आलस्यहीनता और अभिज्ञता के द्वारा सब लोगों की रक्षा और देखरेख करते हैं वे अर्जुन स्वर्ग-प्राप्ति के फल से वञ्चित न हों, यही इन्द्र की इच्छा है। जो तनिक भी अपने मुँह अपनी बड़ाई करना नहीं जानते; जो सबका यथायोग्य सम्मान करते हैं; जो सूक्ष्म अर्थों को अत्यन्त स्थूल अर्थों की तरह सहज ही

१० समझ लेते हैं; जो अन्न, जल आदि देकर सब आत्मीय-बन्धुओं का पालन-पोषण करते हैं; जो सत्यवादी, वक्ता, दृढ़ प्रतिज्ञावाले, सबके पूजनीय, शरणागत का पालन करनेवाले और प्रियदर्शन हैं; जो प्रार्थनीय गुणों के द्वारा महेन्द्र और वरुण के समान हैं; वे महात्मा अर्जुन आज स्वर्गप्राप्ति के फल से वञ्चित न हों, यही देवराज इन्द्र की इच्छा और आज्ञा है। हे सुन्दरी, इन्द्र की आज्ञा के अनुसार तुमको वही करना चाहिए जिसमें अर्जुन को तुम्हारा अङ्ग-सङ्ग प्राप्त हो; क्योंकि वे तुम पर अत्यन्त आसक्त हैं।

ये वचन सुनकर सर्वाङ्ग-सुन्दरी उर्वशी ने गन्धर्वराज के प्रति यथोचित सम्मान दिखाया। चित्रसेन के कथन का बहुत सम्मान करके उर्वशी ने हँसकर कहा—हे महाभाग, आपने अर्जुन के जिन गुणों का बखान किया वे सचमुच उनमें हैं। मैंने जब से लोगों के मुँह से अर्जुन के गुण सुने हैं तब से मुझे कामदेव सता रहा है। इस समय देवराज की आज्ञा पाकर, आपके प्रार्थना करने और अर्जुन के अलौकिक गुणों को देखने से वह पुरानी कामदेव की आग मेरे हृदय में फिर से भड़क उठी है। आप अब अपने स्थान को जाइए। मैं ठीक समय पर

१६ अर्जुन के पास जा पहुँचूँगी।

उर्वशी—पृ० ७८६

छियालीसवाँ अध्याय

अर्जुन का धैर्य और उर्वशी के प्रस्ताव को अस्वीकार करना

वैशम्पायन ने कहा—अप्सराओं में श्रेष्ठ उर्वशी ने गन्धर्वराज चित्रसेन को विदा किया। फिर नहा-धोकर अर्जुन से मिलने की लालसा से अत्यन्त अधीर होकर वह शृङ्गार करने लगी। उसने अङ्गों में अङ्गराग लगाया; शरीर में सुगन्धित चन्दन आदि लगा लिया। वह मन ही मन अर्जुन की मोहिनी मूर्त्ति का स्मरण कर कामदेव के बाणों से अत्यन्त पीड़ित होने लगी। दिव्य बिछौने जिस पर बिछे हुए हैं उस पलँग पर लेटकर वह अनन्य-हृदय में कल्पना के द्वारा प्रियतम की मूर्त्ति का ध्यान करके सम्भोग-सुख से अपनी इच्छा पूरी करने लगी। धीरे-धीरे गहरा अँधेरा फैला, सन्ध्याकाल हुआ। चन्द्रमा ने प्रकट होकर जगत् में चाँदनी छिटका दी। तब विशाल नितम्बोंवाली वह अप्सरा पलँग पर से उठकर अर्जुन के भवन की ओर चली। फूलों के गुच्छों से शोभित, सुकोमल, घूँघरवाली उसकी अलकें जाने के समय उसके मुखमण्डल की शोभा को बढ़ाने लगीं। कटाक्ष, मधुर भाषण और असाधारण रूप-लावण्य से उसकी अपूर्व शोभा हुई। उसके मुखचन्द्र को देखकर चन्द्रमा भी शरमा सा गया। वह अप्सरा दिव्य चन्दन लगे हुए, हिल रहे हार से शोभित स्तनों के बोझ से पग-पग पर लचकती जा रही थी। त्रिवली से शोभित नाभि और सोने की काञ्ची (करधनी) से भूषित उसकी कमर थी। शैल-शिखर-सदृश ऊँचे-चौड़े नितम्ब, करधनी की उज्ज्वल लड़ियों से शोभित होने के कारण, कामदेव की क्रीड़ाभूमि से जान पड़ते थे। बहुत ही महीन रेशमी कपड़े से ढकी हुई उसकी सुडौल १० मनोहर जाँघों को देखकर बड़े-बड़े मुनियों के भी मन डिग जाते थे। घुँघरुओं के घट्टों से चिह्नित उसके चरण कछवे की पीठ के समान ऊँचे थे। उसके पैरों की उँगलियों की नीचे की रङ्गत लाल थी; वे चौड़ी थीं। वह अप्सरा सहज ही तरह-तरह के हाव-भावों की खान थी। उस पर थोड़ी सी मदिरा पीने से वह और भी खिल उठी; उसकी अदा और भी देखने योग्य हो गई। सिद्ध, चारण, गन्धर्वगण सहित जाती हुई उर्वशी तरह-तरह की विचित्र वस्तुओं से पूर्ण स्वर्गलोक में भी दर्शकों के लिए देखने की चीज़ थी। वह अप्सरा नीले रङ्ग का महीन दुपट्टा ओढ़े हुए थी। इससे जान पड़ता था, मानों चन्द्रमा पर बादल घिरा हुआ है। इस प्रकार शृङ्गार किये हुए उर्वशी जब अर्जुन के घर के द्वार पर पहुँची तब शीघ्रता के साथ जाकर द्वारपालों ने अर्जुन से सब हाल कहा। उन्होंने द्वारपालों को उसी समय उर्वशी को ले आने की आज्ञा दी। वे स्वयं अत्यन्त शङ्कित चित्त से उर्वशी के स्वागत के लिए आगे बढ़े। उसको देखकर अर्जुन ने लज्जित भाव से सिर झुकाकर प्रणाम किया और गुरुजन की तरह सत्कार करके कहा—हे श्रेष्ठ अप्सरा, मैं तुमको प्रणाम करता हूँ। हे देवी, मैं तुम्हारा सेवक हूँ; आज्ञा

२० करो, मैं अभी उसे पूर्ण करूँगा। अर्जुन के विकार-शून्य वचन सुनकर उर्वशी घबरा सी गई। वह गन्धर्वराज चित्रसेन का कहा सब वृत्तान्त ब्योरेवार कहने लगी।

उर्वशी ने कहा—हे नरश्रेष्ठ, गन्धर्वराज चित्रसेन ने जो मुझसे कह दिया है और मैं भी जिसलिए आई हूँ सो सब कहती हूँ, सुनिए। आपके आने के समय से स्वर्ग में बड़ा भारी उत्सव हो रहा है। इसी उत्सव में एक समय देवराज की सभा में रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार, वसु, सिद्ध, चारण, यक्ष, नाग, ऋषि, राजर्षि और तेजस्वी अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा आदि देवता सब अपनी-अपनी मर्यादा के अनुसार आसनों पर बैठे थे। गन्धर्व लोग वीणा बजाकर तान-लय-सहित सुन्दर स्वर से मधुर गीत गा रहे थे। अप्सराएँ नाचने लगी थीं। उस समय आप भी उस सभा में बैठे थे, और बारम्बार मेरी ओर ताक रहे थे। नाचना-गाना बन्द हो गया।
३० आपके पिता ने देवताओं, अप्सराओं और अन्य सभासदों को विदा करके अन्त में चित्रसेन गन्धर्व को मेरे पास भेजा। वे आपके पिता की आज्ञा पाते ही मेरे पास आकर कहने लगे—"हे सुन्दरी, इन्द्र की आज्ञा से मैं तुम्हारे पास आया हूँ। तुम झटपट महाबल-पराक्रमी अर्जुन को पतिरूप से स्वीकार करो। तुम्हारे यह काम करने से इन्द्र और मैं, दोनों ही परम प्रसन्न होंगे। तुम भी अर्जुन के संग-सुख से अपने को कृतकृत्य समझोगी।" हे कमलदल-लोचन, मैं इन्द्र की आज्ञा और चित्रसेन की प्रार्थना से आपकी सेवा करने को यहाँ आई हूँ। इसमें आप रत्ती भर भी झूठ न समझिए। आपके गुण जब से सुने हैं तभी से मैं कामदेव के बाणों से घायल होकर तड़प रही हूँ। हे शत्रुदमन, बहुत दिनों से मेरी इच्छा है कि आप मेरे पति हों।

उर्वशी के ये वचन सुनकर अर्जुन बहुत ही लज्जित हुए। उन्होंने कानों पर हाथ रखकर कहा—हे भामिनी, तुमने जो कुछ मुझसे कहा, वह सुनना मेरे लिए सब तरह अनुचित है। तुम मेरी गुरु-पत्नी के तुल्य हो। भाग्यशालिनी कुन्ती और इन्द्राणी जैसे मेरे लिए पूज-नीय हैं वैसे ही तुम भी हो। हे शोभने, मैं उस समय जिस कारण तुमको बार-बार निहार रहा था सो कहता हूँ, सुनो। मैं यही सोचकर बार-बार तुम्हारी ओर ताक रहा था कि यही
४० श्रेष्ठ अप्सरा पुरु-वंश की जननी है। तात्पर्य यह कि मेरा कोई बुरा इरादा न था। तुमको मेरी ओर से इस तरह का ख़याल न करना चाहिए, जो तुमने अभी प्रकट किया है। तुम्हीं से पुरु-वंश उत्पन्न हुआ है। तुम मेरी बड़ी हो।

उर्वशी ने कहा—हे इन्द्र के पुत्र, हम अनावृत स्त्रियाँ हैं। तुम मुझे अपनी गुरु-पत्नी मत कहो। पुरु-वंश के अनेक पिता, सगे भाई, पुत्र और पोते—तप करके—यहाँ आते हैं और मेरे साथ रमण करते हैं। उन्हें किसी प्रकार का दोष नहीं लगता। मुझे काम सता रहा है। मैं भक्त और अनुरक्त होकर यहाँ आई हूँ। मुझ पर कृपा करके तुम मुझे स्वीकार कर लो। मुझे विमुख करना तुम्हें उचित नहीं।

उर्वशी और अर्जुन—पृ० ७६१

अर्जुन ने कहा—हे सुन्दर रङ्गवाली, मैंने जो तुमसे कहा है और कहता हूँ उसे तुम बिलकुल ठीक समझो। मैं सब दिक्पालों को साक्षी करके कहता हूँ कि कुन्ती, माद्री और देवी इन्द्राणी जैसे मेरे लिए पूजनीय और कुल की माता हैं वैसे ही तुम हो। मैं तुम्हारे चरणों में सिर रखकर प्रणाम करता हूँ। तुम जाओ। तुम मेरे लिए माता की तरह पूजनीय हो और मैं तुम्हारे लिए पुत्र की तरह रक्षणीय हूँ।

वैशम्पायन कहते हैं—अर्जुन के ऐसे वचन सुनकर अप्सरा उर्वशी क्रोध से विह्वल हो गई। उसका शरीर काँपने लगा। भौंहें तनकर टेढ़ी हो गईं। कोप-पूर्ण वचनों से अर्जुन को शाप देते हुए उसने कहा—हे अर्जुन, कामदेव के बाणों से पीड़ित होकर मैं तुम्हारे पिता की आज्ञा से तुम्हारे पास स्वयं आई, पर तुमने मुझे स्वीकार नहीं किया; इस कारण तुमको मान-रहित होकर स्त्रियों के बीच ज़नानों की तरह नाचना पड़ेगा। तुम नपुंसक कहलाओगे। इस तरह अर्जुन को शाप देकर उर्वशी अपने घर चली गई। उस समय भी उसके ओठ फड़क रहे थे और वह लम्बी साँसें ले रही थी। ५०

उर्वशी के शाप से अर्जुन बहुत घबराये। अब वे चित्रसेन के पास गये। वहाँ उन्होंने उससे सब हाल कहा। गन्धर्वराज उनको साथ लेकर इन्द्र के पास गया। उनको उसने आदि से अन्त तक सब वृत्तान्त कह सुनाया। तब इन्द्र अपने पुत्र अर्जुन को एकान्त में ले जाकर कहने लगे—वत्स, तुमको गर्भ में धारण करने के कारण आज कुन्ती धन्य हुई। तुम निस्सन्देह उनके सुयोग्य पुत्र हो। बेटा, तुमने अपने धैर्य से ऋषियों और देवताओं को भी परास्त कर दिया। उर्वशी ने तुमको शाप दिया है तो कुछ डर नहीं। इस शाप से तुम्हारा हित ही होगा। अर्जुन, बारह वर्ष वनवास कर चुकने पर तेरहवें वर्ष तुम लोगों को अज्ञातवास करना होगा। उस वर्ष में तुम स्त्रियों के बीच ज़नाने के वेष में रहोगे। [उस वेष में रहने से तुम्हें कुछ असुविधा न होगी।] एक वर्ष तक नपुंसक रहकर फिर तुम मर्द हो जाओगे।

पिता के मुँह से यह सुनकर अर्जुन बहुत प्रसन्न हुए। शाप के कारण उनको जो चिन्ता हुई थी वह दूर हो गई। वे निश्चिन्त होकर चित्रसेन के साथ स्वर्ग में सुख से रहने लगे। ६०

जो कोई एकाग्र होकर यह अर्जुन का अत्यन्त पवित्र और अद्भुत वृत्तान्त सुनता है उसका मन किसी तरह पापकर्म में नहीं लगता। इसे सुननेवाले के विशुद्ध अन्तःकरण में मद, दम्भ, क्रोध, लोभ और अन्य प्रकार की बुरी प्रवृत्तियों को स्थान नहीं मिलता। इस कथा के १६ सुननेवाले लोग परम फल—स्वर्ग को—पाकर, वहाँ रहकर, अक्षय सुख भोगते हैं।

सैंतालीसवाँ अध्याय

लोमश मुनि और इन्द्र का संवाद

वैशम्पायन कहते हैं—एक समय महर्षि लोमश घूमते-घूमते इन्द्र के दर्शन करने अमरावती पुरी में पहुँचे। इन्द्र को प्रणाम करके उन्होंने देखा, पाण्डु के पुत्र अर्जुन इन्द्र के साथ एक
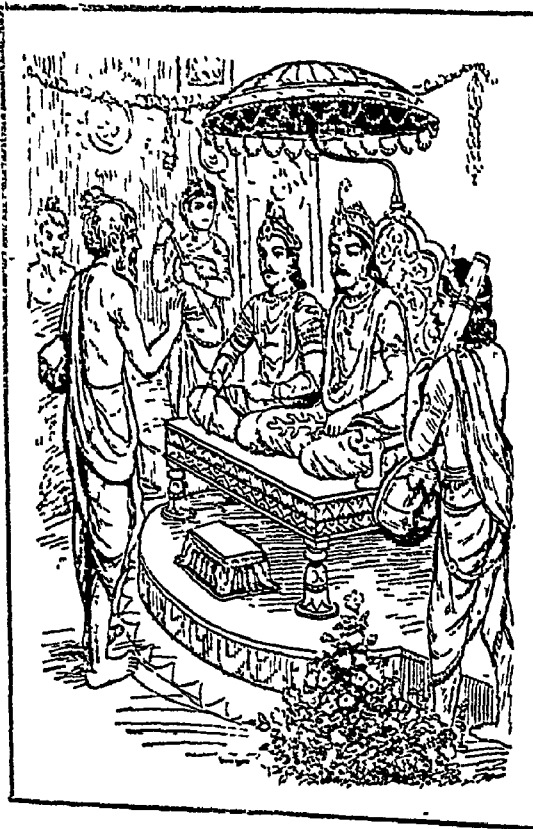
आसन पर बैठे हैं। महर्षि लोग भी जिनकी पूजा करते हैं वे लोमश ऋषि इन्द्र की अनुमति पाकर मृगचर्म आदि पर कुशासन बिछाकर बैठ गये। वे मन ही मन सोचने लगे कि कुन्ती के पुत्र अर्जुन क्षत्रिय होकर किस तरह देवताओं और ऋषियों के लिए भी दुर्लभ इन्द्र के आसन पर बैठ गये! इन्होंने ऐसा कौन सा पुण्य किया है, अथवा ऐसा कौन श्रेष्ठ लोक जीता है कि ऐसा देव-पूजित स्थान प्राप्त कर लिया?

लोमश मुनि को यों सोचते देख उनके मन के भाव को जानकर इन्द्र ने हँसकर कहा—हे ब्रह्मर्षिवर, आप जिस बारे में जो सोच रहे हैं सो मैं आपसे कहता हूँ, सुनिए। ये कुन्ती के पुत्र निरे मनुष्य ही नहीं हैं; इनमें देवभाव भी है। ये मेरे पुत्र कुन्ती के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं। किसी कारणवश अस्त्र प्राप्त करने के लिए यहाँ आये हैं। बड़े आश्चर्य की बात है, आप इन पुरातन ऋषि के बारे में कुछ नहीं जानते। ब्रह्मन्, मैं आपको इनका परिचय देता हूँ। ये और हृषीकेश, दोनों पुरातन ऋषि १० त्रिलोकी में नर और नारायण नाम से प्रसिद्ध हैं। किसी विशेष कार्य के लिए ये पवित्र पृथ्वी-मण्डल पर जन्म लेकर प्रकट हुए हैं। सिद्ध-चारणगण जिनका सेवन करते हैं वे गङ्गा जहाँ से बही हैं, और महात्मा देवगण भी जिसे देखने में असमर्थ हैं, वह पवित्र बदरिकाश्रम विष्णु और

इन जिष्णु (अर्जुन) का निवास-स्थान है। ये दोनों वीर मेरे नियोग के अनुसार पृथ्वी का भार उतारने के लिए पृथ्वीमण्डल पर प्रकट हुए हैं। पातालवासी निवातकवच नाम के कुछ असुर ब्रह्मा से वरदान पाकर अत्यन्त घमण्डी और उपद्रवी हो गये हैं। वे हम देवताओं को कुछ भी नहीं गिनते। देवता उनके साथ संग्राम करने में असमर्थ हैं। जिन्होंने कपिल नाम से पृथ्वी पर प्रकट होकर रसातल खोदने में लगे हुए सगर के साठ हज़ार पुत्रों को केवल अपनी कोप-दृष्टि से भस्म कर दिया, वे विष्णु हमारे इस बड़े भारी काम को करने के लिए अर्थात् उन दानवों का नाश करने के लिए इन महाबाहु अर्जुन के साथ पृथ्वी पर प्रकट हुए हैं। भगवान् हृषीकेश, महाकुण्ड में नागों की तरह, निवातकवच और उनके अनुचरों को केवल देखकर ही भस्म कर सकते हैं; किन्तु इस साधारण काम के लिए भगवान् मधुसूदन को जगाना किसी तरह ठीक नहीं; क्योंकि वह तेज की राशि प्रबोधित करने से सम्पूर्ण जगत् को एकदम भस्म कर डालेगी। ये महाबाहु अर्जुन उन सब दानवों को नष्ट करने में समर्थ हैं। ये वीर उनको नष्ट करके फिर मनुष्यलोक को चले जायँगे। हे ब्रह्मन्, आप कृपा करके मेरे कहने से एक बार मनुष्यलोक को जाइए। वहाँ काम्यक वन में युधिष्ठिर से मिलकर कह आइए कि वे अर्जुन के लिए चिन्ता न करें। सब अस्त्रों को पाकर, उनके प्रयोग और उपसंहार के विषय को अच्छी तरह जानकर, अर्जुन जल्दी लौटकर उनके पास पहुँचेंगे। अर्जुन ने नृत्य-गीत आदि सङ्गीतविद्या में बहुत निपुणता प्राप्त कर ली है। बाहुबल के संशोधन और अस्त्रविद्या की प्राप्ति के बिना भीष्म, द्रोण आदि महारथी पुरुषों को संग्राम में परास्त करना कभी सम्भव नहीं। जब तक युधिष्ठिर के पास लौटकर अर्जुन नहीं जाते तब तक वे अन्य भाइयों के साथ सब पवित्र तीर्थों के दर्शन करके पुण्य-संचय करें। पवित्र तीर्थों में नहाकर शुद्ध होने से वे सुख-पूर्वक राज्य करेंगे। हे ब्रह्मन्, तपोबल के प्रभाव से आप तीर्थ-यात्रा के समय सब आपत्तियों से उन्हें बचाते रहिएगा। पहाड़ों पर और विषम स्थानों में भयङ्कर राक्षस रहते हैं। उनसे पाण्डवों की रक्षा करना।

इन्द्र के यों कह चुकने पर अर्जुन ने लोमश ऋषि से कहा—ब्रह्मन्, आप धर्मराज की रक्षा कीजिएगा। ऐसा कीजिएगा जिसमें आपके द्वारा रक्षित होकर राजा युधिष्ठिर अच्छी तरह तीर्थ-यात्रा कर सकें और दान दे सकें।

महात्मा लोमश अर्जुन की यह प्रार्थना स्वीकार करके काम्यक वन को जाने के लिए पृथ्वीमण्डल पर आये। उस वन में पहुँचकर महामुनि ने देखा, धर्मराज युधिष्ठिर अपने
३५ भाइयों और मुनियों के बीच में बैठे हुए हैं।

अड़तालीसवाँ अध्याय

अर्जुन के इस अभ्युदय का हाल सुनकर धृतराष्ट्र का खेद प्रकट करना

जनमेजय ने पूछा—हे ऋषिश्रेष्ठ, महाप्राज्ञ धृतराष्ट्र ने जब परम तेजस्वी अर्जुन के इस अद्भुत कर्म का समाचार सुना तब क्या कहा? वैशम्पायन कहते हैं कि अम्बिका के पुत्र धृतराष्ट्र ने महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास के मुँह से अर्जुन के इन्द्रलोक जाने का वृत्तान्त सुना। तब उन्होंने सञ्जय से कहा—हे सूत, मैंने बुद्धिमान् अर्जुन के सब अलौकिक कामों का हाल सुना है। क्या तुमको भी यह सब हाल मालूम है? हे सञ्जय! मूढ़, दुष्ट, दुर्बुद्धि, पापी मेरा पुत्र दुर्योधन केवल विषय-भोग में ही डूबा रहकर समय बिता रहा है। वह अवश्य अपने हाथ से राज्य को खो देगा [और पृथ्वी भर के क्षत्रियों का नाश करा डालेगा]। जो महात्मा युधिष्ठिर, भूलकर भी, झूठ नहीं बोलते और जिनकी ओर से लड़नेवाले महावीर योद्धा अर्जुन हैं, वे निस्सन्देह तीनों लोकों का राज्य पा सकते हैं। तेज़, नुकीले, कर्णी और नाराच नाम के बाणों को जब अर्जुन छोड़ेंगे तब उनको कौन सहेगा? बुढ़ापे और मृत्यु से निडर साक्षात् यमराज भी उन बाणों को न सह सकेंगे। समय पाकर जब दुर्द्धर्ष पाण्डवों के साथ युद्ध छिड़ेगा तब मेरे दुरात्मा पुत्र ही काल के मुँह के कौर बनेंगे। मैंने लगातार सोच करके अभी तक ऐसे किसी वीर को नहीं देखा, जो गाण्डीव धनुष लिये खड़े अर्जुन के साथ युद्ध कर सके। मुझे जान पड़ता है कि कर्ण, द्रोण या भीष्म पितामह भी अगर दुर्योधन की ओर से लड़ेंगे तो भी युद्ध में हमारे पक्ष के जीतने की सम्भावना नहीं है; क्योंकि कर्ण दयालु और असावधान हैं और
१० आचार्य गुरु तथा भीष्म दोनों बूढ़े हैं। किन्तु अर्जुन क्रोधी, बलवान् और दृढ़ पराक्रमी हैं। पाण्डवों के साथ घोर संग्राम होना सम्भव है, किन्तु उन्हें परास्त करना अत्यन्त कठिन है। क्योंकि वे सब अस्त्र-विद्या में निपुण, बड़े धैर्यशाली और यशस्वी हैं। वे शत्रुओं को हराकर यश पाने की इच्छा रखते हैं। इस कारण सब पाण्डवों को, अथवा केवल अर्जुन को, मारे बिना किसी तरह युद्ध का खटका नहीं हट सकता। [कहने का मतलब यह कि] इस जगत् में ऐसा कोई नहीं देख पड़ता जो अर्जुन को मार सके, या हरा सके। मेरे प्रति अर्जुन के मन में जो क्रोध उत्पन्न हुआ है वह किसी तरह नहीं मिट सकता। इन्द्र-तुल्य महावीर अर्जुन ने जलाने के लिए अग्नि को खाण्डव वन देकर प्रसन्न किया है और राजसूय यज्ञ करने के लिए अनेक राजाओं को हराकर अपने वश में कर लिया है। हे सञ्जय, वज्र पर्वत के शिखर पर गिरकर

उसे भले ही बिलकुल चूर-चूर न कर डाले किन्तु अर्जुन के अस्त्र धुर्रें उड़ाये बिना रहने के नहीं। तीक्ष्ण सूर्य की किरणें जैसे चराचर जगत् को तपाती हैं, वैसे ही अर्जुन के गाण्डीव धनुष से छूटे हुए बाण-जाल मेरे पुत्रों को सतावेंगे। अधिक क्या कहूँ, जान पड़ता है कि समरभूमि में अर्जुन के रथ की घोर घरघराहट सुनकर बड़ी भारी भरत-वंश की सेना, डर से तितर-बितर होकर, इधर-उधर भागेगी। अर्जुन जब गाण्डीव धनुष लेकर बाण बरसावेंगे तब सबका अन्त करनेवाले यमराज की तरह सबके लिए असह्य हो उठेंगे। १८

उनचासवाँ अध्याय

सञ्जय और धृतराष्ट्र का संवाद

सञ्जय ने कहा—राजन्, आपने दुर्योधन के बारे में जो कुछ कहा सो ठीक है। महाराज, इसमें तनिक भी झूठ नहीं है। महातेजस्वी पाण्डव अपनी धर्मपत्नी द्रौपदी के भरी सभा में खींच लाये जाने के कारण बहुत ही क्रोधित हैं। दुःशासन और कर्ण के दारुण वचन जब से उन्होंने सुने हैं तब से क्रोध के मारे वे निन्दा किया करते होंगे। महाराज, मैंने सुना है, ग्यारह मूर्त्तियाँ धारण करनेवाले भगवान् शङ्कर ने किरात-वेष धारण करके अर्जुन से युद्ध किया था। उन्होंने धनुष-बाण लेकर युद्ध करके भगवान् शङ्कर को भी छका दिया। अर्जुन ने अस्त्र पाने के लिए बहुत ही घोर तप किया। उससे सन्तुष्ट होकर दिक्पालों ने आप आकर अपने अस्त्र उनको दिये। महाराज, अर्जुन के सिवा इस पृथ्वी पर रहनेवाले किसी पुरुष को अब तक दिक्पालों के दर्शन नहीं हुए। भगवान् शङ्कर जिसे संग्राम में निर्बल नहीं कर सके उसे संग्राम में हरानेवाला और कौन संसार में होगा? सभा में द्रौपदी को लाकर पाण्डवों का कोप बढ़ाने से ही यह घोर अनर्थ खड़ा हो गया है। सभा में बुलवाकर दुर्योधन ने जब द्रौपदी को अपनी जाँघें दिखाई थीं, तब भीमसेन ने भयानक रूप धारण करके क्रोध के आवेश में ठीक ही कहा था १० कि 'अरे पापी, कपट के पाँसे फेंकनेवाले, तेरह बरस बीत जाने पर मैं भारी गदा की चोट से तेरी ये जाँघें तोड़ दूँगा।' महाराज, सभी पाण्डव बड़े बलवान् और श्रेष्ठ योद्धा हैं। यहाँ तक कि देवता भी युद्ध करके उन्हें नहीं हरा सकते। अपनी धर्मपत्नी के अपमान के कारण दारुण क्रोध से व्यथित पाण्डव अवश्य आपके पुत्रों को मारेंगे।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सूत, केवल कर्ण के कठोर वचनों से कुछ नहीं हुआ। द्रौपदी को सबके सामने सभा में खींच लाने से ही यह भयङ्कर शत्रुता उत्पन्न हुई है। हे सञ्जय, जिनका गुरु बड़ा भाई दुर्योधन स्वयं विनयविहीन है वे मेरे सौ पुत्र अभी तक जीते-जागते हैं, यही मुझे आश्चर्य जान पड़ता है। दुष्ट दुर्योधन मुझे अन्धा देखकर और बिलकुल ही अपाहिज तथा अज्ञ समझकर किसी तरह मेरी सलाह मानने के लिए राज़ी नहीं है। कर्ण, शकुनि आदि दुष्ट

मन्त्री सदा बुरी सलाहें देकर उसके दोषों को बढ़ा रहे हैं। महावीर अर्जुन सहज ही बाण चलाकर मेरे पुत्रों को यमलोक भेज सकते हैं। वही अर्जुन जब क्रोधान्ध होकर युद्धभूमि में खड़े होंगे और प्रबल वेग से बाण बरसावेंगे तब न जाने क्या अनर्थ हो जायगा; क्योंकि दिव्य मन्त्रों से अभिमन्त्रित और अर्जुन के हाथों से बड़े वेग से छूटे हुए नाराच बाण जब चलेंगे तब देवता भी उनसे न बच सकेंगे। त्रैलोक्यनाथ हरि जिनके मन्त्री, रक्षक और सुहृद हैं उनके
१० लिए इस जगत् में अजेय क्या है? हे सञ्जय, यह क्या कम आश्चर्य है कि अर्जुन ने देवदेव महादेव से बाहुयुद्ध करके उनको प्रसन्न कर लिया? इससे पहले अग्नि की सहायता करने के लिए कृष्ण और अर्जुन जो कुछ कर चुके हैं वह किसी से छिपा नहीं है। इसलिए हे सञ्जय, सब बातों पर विचार करके देखने से मुझे जान पड़ता है कि भीमसेन, अर्जुन अथवा वासुदेव
२३ कुपित होकर युद्धभूमि में उतर आवेंगे तो मेरे पुत्र, मन्त्री, शकुनि आदि कोई जीता न बचेगा।

पचासवाँ अध्याय

पाण्डवों का वन में क्या भोजन था?

जनमेजय कहने लगे—हे मुनिवर, महावीर पाण्डवों को वन भेजकर राजा धृतराष्ट्र का यों दुःख प्रकट करना बिलकुल व्यर्थ था। जब नीच-प्रकृति दुर्योधन महारथी पाण्डवों पर अत्याचार करके उनके क्रोध की आग को भड़का रहा था तब धृतराष्ट्र ने क्यों नहीं उसका कुछ उपाय किया? दुर्योधन को क्यों नहीं वैसा करने से रोका? अब आप बतलाइए कि महात्मा पाण्डवों ने वनवास की दशा में किस तरह अपनी जीविका चलाई—आपसे ही मिल गये वन के फल-मूल के द्वारा या खेती से उत्पन्न अन्न आदि के द्वारा?

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, महात्मा पाण्डव विशुद्ध बाण से मारे गये मृगों के मांस और फल-मूल आदि जङ्गली चीज़ें पहले अपने आश्रित ब्राह्मणों को खिलाकर फिर आप भोजन करते थे। पाण्डव जब वन में थे तब कुछ अग्निहोत्री और निरग्निक ब्राह्मण उनके साथ रहते थे। महाराज युधिष्ठिर बाणों से रुरु और कृष्णसार आदि विशुद्ध वन के मृगों और अन्य जन्तुओं को मारकर हज़ारों ब्राह्मणों, महात्मा स्नातकों और दस मोक्षतत्त्व के ज्ञाता ब्राह्मणों का पालन-पोषण करते थे। जहाँ युधिष्ठिर रहते थे वहाँ कोई विवर्ण, व्याधिग्रस्त, दुबला, दीन या डरा हुआ नहीं देख पड़ता था। कौरवों में श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर भाइयों का पुत्र की तरह और जातिवालों का सगे भाई की तरह पालन करते थे। यशस्विनी द्रौपदी अपने पतियों और ब्राह्मणों को माता की तरह भोजन
१० कराकर पीछे आप भोजन करती थीं। चारों भाई नित्य शिकार करने जाते थे। धर्मराज पूर्व ओर, भीमसेन दक्षिण ओर, नकुल पश्चिम ओर सहदेव उत्तर ओर जाकर शिकार करते थे।

काम्यक वन में पाण्डवों ने अर्जुन के वियोग से अत्यन्त व्याकुल होकर उनकी बाट जोहने में वेद-पाठ, जप, हवन आदि मङ्गलकार्य करते हुए पाँच वर्ष विता दिये। १२

इक्यावनवाँ अध्याय

सञ्जय-कृत कृष्ण आदि की प्रतिज्ञा का वर्णन

वैशम्पायन कहते हैं—अम्बिका के पुत्र राजा धृतराष्ट्र पाण्डवों के अत्यन्त अद्भुत अलौकिक चरित्रों को सुनकर एक साथ ही दुःख, चिन्ता और शोक से बेचैन हो गये। वे बारम्बार लम्बी साँसें लेकर सञ्जय से कहने लगे—हे सञ्जय, मेरे पुत्रों ने जुए में जो अत्यन्त घोर अनीति की है उसका और पाण्डवों के शौर्य, धैर्य, सन्तोष और भाइयों में परस्पर अनुराग का स्मरण करके मैं दिन-रात किसी समय किसी तरह शान्ति नहीं पाता। जब युद्ध में अटल अश्विनीकुमार के दोनों पुत्र (नकुल और सहदेव), भीम पराक्रमवाले भीमसेन और युद्ध-चतुर, फुर्तीले, गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले अर्जुन को आगे करके युद्धभूमि में खड़े होंगे तब मेरी सेना और सामन्तों में से कोई न बचेगा। द्रौपदी का झोंटा पकड़कर खींचे जाने से उपजा हुआ क्रोध उनके हृदय में सोलहों आने बना हुआ है; इस कारण वे किसी तरह क्षमा नहीं करेंगे। अद्वितीय योद्धा वृष्णिवंश के यादव, महातेजस्वी पाञ्चाल देश के वीर और सत्यसन्ध वासुदेव सदा पाण्डवों के सच्चे सहायक हैं। इसलिए ये सब महावीर युद्धभूमि में आकर मेरे पुत्रों की सेना और सामन्तों को भस्म कर डालेंगे। हे सूतनन्दन, अधिक क्या कहूँ, मेरे सब पुत्र एक साथ मिल करके भी १० कृष्ण-बलराम आदि यादवों के वेग को नहीं सँभाल सकेंगे। संग्राम में भीमविक्रम भीमसेन वीरघातिनी गदा को वेग से चलावेंगे। कौन राजा ऐसा बली है जो भीमसेन की गदा के वेग को और अर्जुन के गाण्डीव धनुष की घोर ध्वनि को सह सकेगा? हाय, पहले मैंने दुर्योधन के कहे पर चलकर हितचिन्तकों के कहने पर ध्यान नहीं दिया। अब मुझे उनकी उन्हीं बातों को याद करके पछताना पड़ेगा।

सञ्जय ने कहा—राजन्, उस समय आपने समर्थ होकर भी स्नेह के मारे अपने बेटे की इच्छा का अनुमोदन किया। हे कौरव, उस समय आपका यों लापरवाही दिखाना ही अनुचित हुआ। महाराज! पाण्डव जुए में हारकर वन को गये हैं, यह ख़बर सुनते ही कृष्ण, धृष्टद्युम्न आदि द्रुपद के पुत्र, विराट्, धृष्टकेतु, महारथी केकय देश के नरेश आदि सब पाण्डवों के इष्ट-मित्रों ने अत्यन्त दुःखित होकर वन में जाकर उनसे भेंट की। इन सबने पाण्डवों को राज्य से भ्रष्ट देखकर जो कुछ कहा सो हमारे जासूस सुन आये हैं। मैं वह सब जानता हूँ, और आपसे भी छिपा नहीं है। महाराज, स्वयं वासुदेव ने युद्ध में अर्जुन का सारथी होना स्वीकार किया है। वे पाण्डवों को मृगछाला पहने देखकर बहुत ही क्रुद्ध हुए। उन्होंने धर्मराज से कहा—राजन्, २०

राजसूय यज्ञ के समय मैंने इन्द्रप्रस्थ में आपकी जैसी शोभा और समृद्धि देखी थी वैसी शोभा और समृद्धि आज तक किसी राजा ने नहीं पाई। मैंने उस समय आये हुए सब राजाओं को आपके हथियारों से डरे हुए देखा है। अङ्ग, वङ्ग, पौण्ड्र, उड्र, चोल, द्राविड़, अन्धक, सागर, अनूपक, प्रान्तनिवासी, सिंहल, बर्बर, म्लेच्छ, लङ्का-निवासी, पाश्चात्यदेश-निवासी, बहुत से सागर-तट पर रहनेवाले, पल्हव, दरद, किरात, यवन, शक, हारहूण, चीन, तुषार, सैन्धव, जागुड़, रामठ, मुण्ड, स्त्रीराज्य, तङ्गण, कैकेय, मालव, काश्मीर आदि देशों के सब राजा आपके यज्ञ में आये थे और उन्होंने निमन्त्रण में आये हुए लोगों के आगे भोजन की सामग्री परोसने का काम किया था। नीचों के पीछे जानेवाली आपकी चञ्चल समृद्धि को जिन्होंने हर लिया है उनको मारकर वह समृद्धि मैं फिर आपके अर्पण करूँगा। हे कौरव! मैं, बलदेव, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, अक्रूर, गद, साम्ब, प्रद्युम्न, आहुक, धृष्टद्युम्न और शिशुपाल के पुत्र आदि को साथ लेकर, दुर्योधन, कर्ण, शकुनि तथा और-और वीरों को संग्राम में मारकर, आपकी पहले की राजलक्ष्मी फिर आपको अर्पण करूँगा। आप भाइयों के साथ हस्तिनापुर में रहकर फिर इस समुद्र-पर्यन्त पृथ्वी के अद्वितीय राजा होकर सुख भोगेंगे। ३०

महाराज, वासुदेव के यों कह चुकने पर धर्मराज ने कहा—हे जनार्दन, तुमने जो कुछ कहा उसे मैं सच मानता हूँ। किन्तु, तुम मुझसे यह प्रतिज्ञा करो कि इन तेरह वर्षों के बीत जाने पर तुम मेरे शत्रुओं को उनके सहायकों और बन्धु-बान्धवों सहित मारोगे; क्योंकि मैंने भरी सभा में सबके सामने तेरह वर्ष वन में रहना अङ्गीकार कर लिया है इसलिए अवधि से पहले उन्हें मारना ठीक नहीं। सभा में उपस्थित धृष्टद्युम्न आदि सब लोगों ने धर्मराज के ये वचन सुनकर कहा कि ऐसा ही होगा। फिर मधुर वचन कहकर क्रोध-पूर्ण कृष्णा को शान्त करके धर्मराज ने उन्हीं के सामने द्रौपदी से कहा—हे द्रौपदी, तुम्हारे कोप की आग में ही दुर्योधन भस्म हो जायगा। इसलिए अब तुम शोक मत करो। हे देवी, तुम्हें जुए में जीती गई देखकर जिन्होंने तुम्हारा उपहास किया था उनके शरीर के मांस को भेड़िये और अन्य मांसभोजी पक्षी नोंच-नोचकर खायँगे और गिद्ध, सियार आदि उनके सिर को घसीटकर रक्त पियेंगे। हे पाञ्चाली, सभा में जिन्होंने तुम्हारे केश पकड़कर तुमको खींचा है, उन सबको तुम पृथ्वी में पड़े हुए देखोगी और, मांसाहारी जन्तु उनके शरीर को नोच-नोचकर खायँगे। हे कल्याणी, सभा में जिन्होंने तुमको क्लेश पहुँचाया है और तुम्हारी उपेक्षा की है उनके सिर काटकर हम पृथ्वी को तर कर देंगे। श्रेष्ठ लक्षणोंवाले तेजस्वी वीरों ने यों कहकर द्रौपदी को धीरज बँधाया। ४०

महाराज, तेरह वर्ष बीतते ही धर्मराज युधिष्ठिर इन सब वीरों को बुलाकर अपना सेनापति बनावेंगे और वे भी वासुदेव को आगे करके युधिष्ठिर की सहायता करने के लिए आ जायँगे। बलदेव, कृष्ण, अर्जुन, प्रद्युम्न, साम्ब, युयुधान, भीमसेन, नकुल, सहदेव, केकय देश

के राजकुमार, द्रुपद के सब पुत्र, मत्स्य-राज आदि जगत्प्रसिद्ध महारथी वीर पुरुष जब क्रोधित सिंह की तरह युद्धभूमि में खड़े होंगे तब इनके सामने कोई नहीं खड़ा हो सकेगा।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय, दूरदर्शी विदुर ने मुझसे पहले ही कहा था कि राजन्, पाण्डवों को आप जुआ खेलने के लिए न बुलाइएगा; क्योंकि वे यदि जुए के खेल में हारेंगे तो कुरुकुल के रक्त को बहानेवाला महाभयङ्कर संग्राम होगा। हे सञ्जय, अब मुझे अच्छी तरह जान पड़ता है कि विदुर का कहना ही सच होगा। तेरह वर्ष बीतने पर पाण्डवों के बाहर रहने का समय ज्योंही पूरा हो जायगा त्योंही घोर युद्ध ठन जायगा। ४६

नलोपाख्यानपर्व

बावनवाँ अध्याय

बृहदश्व का आना और नलोपाख्यान का आरम्भ

जनमेजय ने पूछा—महात्मा अर्जुन जब अस्त्र पाने की आशा से इन्द्रलोक को गये, तब युधिष्ठिर आदि पाण्डवों ने क्या किया? वैशम्पायन ने कहा—अस्त्र पाने के लिए अर्जुन के देवलोक को जाने पर पाण्डव लोग द्रौपदी-सहित काम्यक वन में रहने लगे। एक दिन वे द्रौपदी के साथ एक निर्जन स्थान में हरी-हरी घास पर बैठे थे। उनके हृदय में दुःख का समुद्र उमड़ रहा था। अर्जुन की याद करके खेद प्रकट करते हुए वे आँसू बहा रहे थे। इसी समय अर्जुन के वियोग से व्याकुल महाबाहु भीमसेन ने युधिष्ठिर से कहा—हम पाण्डव लोग जिनके सहारे पर ज़िन्दा हैं, जिनके नष्ट होने पर पाञ्चाल देश के राजा और राजकुमार, सात्यकि, वासुदेव और हम सब नष्ट हो जायँगे, जिनके बाहुबल के भरोसे हम लोग समर में शत्रुओं को हराया हुआ और पृथ्वी को अपने हाथ में आई हुई समझते हैं, जिनके प्रभाव से मैंने उस समय सभाभवन में शकुनि और दुर्योधन आदि को मारकर यमलोक नहीं भेज दिया, वही अर्जुन आपकी आज्ञा से इन्द्रलोक को गये हैं। अस्त्र की प्राप्ति में अनेक दुःख उठाने की बात जानकर भी वे वहाँ गये हैं। इससे बढ़कर दुःख क्या होगा! राजन्, हम लोग बाहुबलशाली होकर भी केवल वासुदेव के अनु- १० रोध से उमड़े हुए क्रोध को रोके हुए हैं; नहीं तो अब तक हम कृष्ण की सहायता से कर्ण आदि दुष्टों को मारकर बाहुबल से जीती हुई सारी पृथ्वी का शासन करते होते। हम लोग बल और पौरुष से युक्त होकर भी केवल आपके जुआ खेलने के दोष से इस प्रकार कष्ट सह रहे हैं। महाराज, वनवास कभी क्षत्रिय का धर्म नहीं। पण्डितों ने राज्य करना ही क्षत्रिय का एकमात्र धर्म बतलाया है। इस कारण शत्रुओं से राज्य लेकर क्षत्रिय-धर्म का पालन करना आपका कर्त्तव्य है। आप जान-बूझकर भी धर्म के मार्ग से न हटिए। चलिए, हम अर्जुन को लौटा-

कर और कृष्णा को लाकर बारह वर्ष बीतने के पहले ही दुर्योधन आदि का नाश कर डालें। मैं अकेला ही सेना-सहित दुर्योधन आदि को, कर्ण, शकुनि और अन्य जो कोई हमारे शत्रु-पक्ष की हिमायत करे उसको, सबको बलपूर्वक नष्ट कर डालूँगा। आप निष्कण्टक होकर फिर चाहे वन में आकर रहिए। राजन्, ऐसा करने से हम दोषभागी नहीं हो सकते। अनेक यज्ञ करके हम इस पाप का प्रायश्चित्त कर डालेंगे। तब हम अवश्य ही परम पवित्र स्वर्गलोक के अधि-
२० कारी होंगे। आप अगर बच्चों की तरह वृथा हठ न करें, धर्मपरायण न हों और हर काम में विलम्ब न करें तो ऐसा हो सकता है। आप निश्चय जानिए कि कपट करनेवालों को छल करके मारने से रत्ती भर पाप न होगा। धर्म के मर्म को जाननेवाले पण्डित इसको ठीक बताते हैं। वेद-वचन के अनुसार भी सुना जाता है कि एक वर्ष एक दिन-रात के तुल्य है। हम लोगों को तेरह वर्ष अत्यन्त क्लेश से बिताने होंगे। यदि इस वेद-वाक्य को आप प्रामाणिक मानें तो और एक दिन बीतने पर हमारे वनवास के तेरह वर्ष पूरे हो जायँगे और बन्धु-बान्धव-सहित दुर्योधन को मारने का समय आ जायगा। आपने जुए के चक्कर में आकर अपना बहुत अनिष्ट कर डाला है। [देखिए, दुर्योधन अकेला सारी पृथ्वी का राज्य कर रहा है और हमें वन में रहकर कष्ट उठाने पड़ते हैं।] एक वर्ष छिपकर रहना और भी कठिन है। मुझे ऐसा कोई स्थान नहीं देख पड़ता जहाँ पापी दुर्योधन के जासूस हमारा पता न लगा सकें। अगर वह इस वर्ष में हमारा पता लगा लेगा तो फिर हमें बारह वर्ष के लिए वन को भेज देगा। जो हम लोग किसी तरह एक वर्ष तक छिपकर रह भी सकेंगे तो हमारे पहुँचने पर वह फिर जुआ खेलने की तैयारी
३० करेगा। आपको जुआ खेलने की जैसी लत है उसे देखते मैं कह सकता हूँ कि बुलाये जाने पर आप अवश्य जुआ खेलने जायँगे और जुए में फँसकर फिर वनवास के कष्ट उठावेंगे। हे धर्मराज, हम लोगों को अगर आप सब तरह सुखी रखना चाहते हैं तो मेरे बताये वेदविहित धर्म का पालन कीजिए। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि जो व्यक्ति कपटी है उसे, कपट का सहारा लेकर, मार डालना ही ठीक है। इसलिए आप मुझे आज्ञा दीजिए, आग जैसे फूस के ढेर को जला देती है वैसे ही मैं भी अनुचरों-सहित दुर्योधन को चौपटकर दूँगा।

वैशम्पायन कहते हैं कि भीमसेन के यों कहने पर धर्मराज युधिष्ठिर ने स्नेहपूर्वक उनका माथा सूँघा और उन्हें शान्त करते हुए कहा—हे महाबाहो, तेरह वर्ष बीत चुकने पर तुम अर्जुन के साथ युद्धभूमि में जाकर दुर्योधन को और उसके साथियों को मारना। किन्तु तुम जो कहते हो कि समय आ गया है, मैं पापी दुर्योधन को अभी बन्धु-बान्धवों-सहित नष्ट करूँगा, सो मैं इस मिथ्या वाक्य को सुनकर ऐसा करने के लिए तुमको उत्साहित नहीं कर सकता। कपट का आचरण मेरे मन में भी स्थान नहीं पा सकता; क्योंकि तुम बिना ही कपट का बर्ताव किये दुर्योधन को साथियों-समेत मार लोगे।

युधिष्ठिर और भीमसेन इस तरह बातचीत कर रहे थे, इसी समय महर्षि बृहदश्व वहाँ आये। महातपस्वी महर्षि को देखकर धर्मराज ने शास्त्रविधि के अनुसार अर्घ्य, पाद्य, मधुपर्क आदि अर्पण कर उनकी पूजा की। थकन मिटने पर जब वे सुख से बैठ गये तब युधिष्ठिर ने करुण स्वर में उनसे कहा—भगवन्, पाँसों का खेल मैं बिलकुल नहीं जानता। इसी कारण पाँसे के खेल में चतुर धूर्तों ने कपट-विचार से मुझे जुआ खेलने के लिए बुलाया। उस खेल में उन्होंने मेरा राज्य, धन आदि सब कुछ छीन लिया। अन्त को उन पापियों ने हमारी प्राणों से प्यारी पत्नी द्रौपदी को भी सभा में खींच बुलाया। उन्होंने मेरे शरीर को भी जुए में जीत लिया, और हमें काली मृगछाला पहनाकर घोर वन में रहने के लिए यहाँ भेज दिया है। उन दुरात्माओं ने सभा में जो कठोर वचन कहे और हमारे इष्टमित्रों ने शोकाकुल होकर जुआ खेलने के पहले समझाते हुए जो उपदेशपूर्ण वाक्य कहे थे, सो सब अभी तक मुझे भूले नहीं हैं। उन्हें स्मरण करके हर रात को मैं चिन्ता किया करता हूँ। उस अवस्था में इस असह्य वनवास का दुःख दूना हो उठता है। ख़ास कर हमारे प्राण-स्वरूप अर्जुन जब से स्वर्गलोक को गये हैं तब से उनके विरह में मैं बिलकुल ही मुर्दार हो रहा हूँ। मालूम नहीं, कितने दिनों में वे महापराक्रमी प्रियवादी अर्जुन अस्त्र-शस्त्र सीख करके फिर यहां आवेंगे और मेरे नेत्रों को आनन्दित करेंगे। हे ऋषि-श्रेष्ठ, इस पृथ्वी पर मेरे समान अभागा क्या कोई और राजा भी आपने देखा या सुना है? मुझे जान पड़ता है, मुझसे बढ़कर अभागा कोई नहीं है।

बृहदश्व ने कहा—महाराज, आप जो यह कह रहे हैं कि मेरे समान अभागा और कोई नहीं हुआ सो ठीक नहीं है। आपसे भी बढ़कर अभागे और कष्ट उठानेवाले राजा का हाल मुझे मालूम है। आप सुनना चाहें तो कहूँ। वैशम्पायन कहते हैं कि तब धर्मराज ने कहा—भगवन्, कहिए; मैं सुनना चाहता हूँ। किस राजा की ऐसी दुर्दशा हो चुकी है?
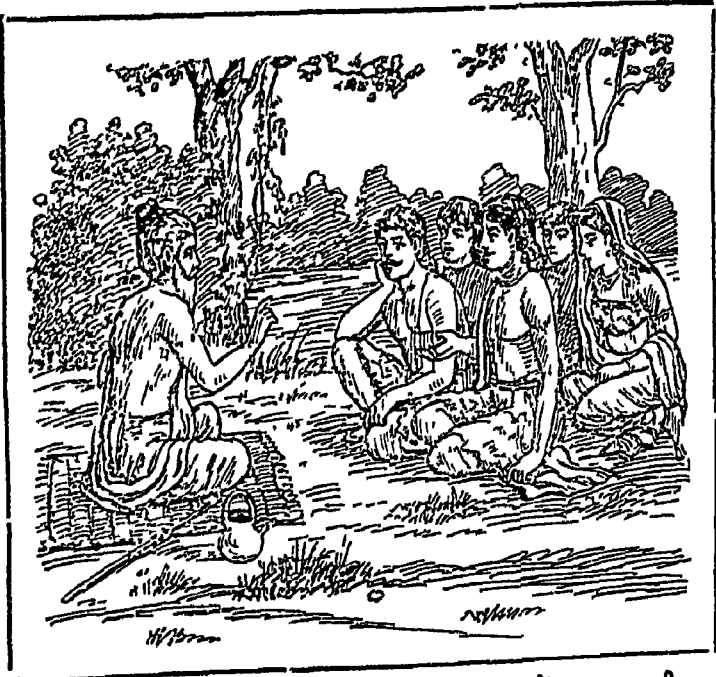
बृहदश्व ने कहा—महाराज, कौन राजा आपसे भी बढ़कर भाग्यहीन थे, सो मैं कहता हूँ। आप भाइयों-सहित एकाग्र होकर सुनिए। निषध देश के प्रसिद्ध राजा वीरसेन थे। उनके

धर्म-अर्थ में कुशल नल नाम का एक पुत्र था। मैंने सुना है, महाराज नल को भी पुष्कर ने कपट से जीत लिया था। यों राज्य-सम्पत्ति छीनकर पुष्कर ने नल को उनकी स्त्री-सहित वन भेज दिया था। आप तो देवतुल्य क्षत्रिय वीर भाइयों और ब्रह्मतुल्य विप्रों के साथ वन में रहते हैं, किन्तु उनके साथ दास-दासी, भाई या बन्धु-बान्धव कोई नहीं था। इस कारण आपको किसी तरह शोक न करना चाहिए। युधिष्ठिर ने कहा—हे वक्ताओं में श्रेष्ठ ऋषिवर, मैं
५६ विस्तार के साथ महात्मा नल का उपाख्यान सुनना चाहता हूँ, आप वर्णन कीजिए।

तिरपनवाँ अध्याय

दमयन्ती और हंस का संवाद

बृहदश्व ने कहा—निषध देश में वीरसेन के पुत्र नल नाम के सब गुणों से शोभित, अश्वविद्या-निपुण, परम सुन्दर, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, सबके प्रिय, वेदज्ञ, ब्राह्मणभक्त, अक्षौहिणी-पति, योद्धा वीरों में श्रेष्ठ, जुआ खेलने के शौक़ीन, उदार और साक्षात् महाराज मनु के समान प्रबल पराक्रमी एक राजा थे। वे देवराज इन्द्र की तरह सब राजाओं में श्रेष्ठ और सूर्य के समान तेजस्वी होकर सबसे बढ़कर थे।

विदर्भ देश में महापराक्रमी, सब गुणों से युक्त, भीम नाम के एक राजा थे। वे यथोचित रूप से प्रजा का पालन करते थे। उनके कोई सन्तान न थी। उन्होंने सन्तान की

इच्छा से तत्पर होकर अनेक यत्न किये। एक समय दमन नाम के एक ब्रह्मर्षि उनके यहाँ आये। पुत्र की इच्छा रखनेवाले राजा ने अपनी रानी-सहित यथोचित सत्कार करके ब्रह्मर्षि को प्रसन्न कर लिया। सपत्नीक राजा भीम के सत्कार से प्रसन्न होकर महर्षि ने उन्हें वरदान दिया कि हे महाराज, मैं कहता हूँ, आपके एक कन्या और तीन पुत्र होंगे। [यह वर देकर ब्रह्मर्षि अपने स्थान को चले गये।] कुछ दिनों के बाद महाराज के दमयन्ती नाम की कन्या और दम, दान्त, दमन नाम के तीन पुत्र हुए। असाधारण रूप-लावण्यवाली, सुन्दर कमरवाली दमयन्ती
१० संसार में परम सौभाग्यशालिनी और यशस्विनी कहलाई। कन्या दमयन्ती यथासमय जवान

हुई। सैकड़ों दासियाँ और सखियाँ इन्द्राणी की तरह राजकुमारी की सेवा करने लगीं। इस प्रकार अनेक गहने पहने, सर्वाङ्गसुन्दरी, भीमनरेश की कन्या सखियों के साथ मेघमाला के बीच में चमकती हुई बिजली की तरह शोभित होने लगी। वह विशाल नेत्रोंवाली कन्या लक्ष्मी के समान अत्यन्त सुन्दरी थी। क्या देवलोक में, क्या यक्षों में, क्या मनुष्यों में और क्या अन्य किसी लोक में, कहीं वैसा रूप नहीं देख पड़ता। दमयन्ती को देख लेने से मन को आनन्द प्राप्त होता था। अधिक क्या कहें, देवता भी उस राजकुमारी को परमसुन्दरी समझते थे।

उधर मनुष्य-लोक में नल के समान कोई सुन्दर पुरुष न था। उनका रूप देखने से लोगों को भ्रम हो जाता था कि वे शरीरधारी कामदेव ही हैं। सभी लोग कौतूहलवश दमयन्ती के आगे नल के रूप का और नल के आगे दमयन्ती की सुन्दरता का बखान करते थे। फल यह हुआ कि उन दोनों के हृदयों में भी परस्पर अनुराग का बीज अंकुरित हो उठा।

एक समय नल, दमयन्ती को देखने के लिए, उत्सुक होकर अकेले ही अपने रनिवास के समीपवाले बाग़ में गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि सुनहरे पङ्खोंवाले अद्भुत आकार के अनेक हंस विचर रहे हैं। नल ने बाग़ में विचरनेवाले एक हंस को पकड़ लिया। तब उस हंस ने कहा—राजन्, आप मुझे मारिएगा नहीं; छोड़ दीजिए। मैं आपका प्रिय कार्य करूँगा। राजन्, मैं दमयन्ती के पास जाकर आपके गुणों का वर्णन करूँगा तो उसका मन आप पर अपने आप लट्टू हो जायगा। हंस के ये वचन सुनकर नल ने उसे छोड़ दिया।

तब सब हंस एक साथ आकाश-मार्ग में उड़कर विदर्भ देश में पहुँचे। कुछ समय बाद वे हंस विदर्भ नगर में जाकर दमयन्ती के पास पहुँचे। ज्योंही वे उतरे त्योंही दमयन्ती ने उन्हें देख लिया। अपनी सखियों के बीच में खड़ी हुई दमयन्ती हंसों के अत्यन्त अद्भुत रूप को देखकर प्रसन्न हुई और उन्हें पकड़ने के लिए बारम्बार चेष्टा करने लगी। उसकी सखियाँ भी हंसों को पकड़ने की इच्छा से बारम्बार उनके पीछे दौड़ने लगीं। वे हंस भी डरकर उन औरतों के बीच में इधर-उधर भागने लगे। पकड़ने के लिए उत्सुक होकर दमयन्ती जिस हंस के पीछे दौड़ती थी वही हंस, मनुष्य की वाणी में, कहता था कि हे दमयन्ती, निषध देश में नल नाम के एक राजा हैं। उनका रूप अश्विनीकुमार के समान है। पृथ्वी पर वैसे

रूप-लावण्य का होना असम्भव है। हे सुन्दर कमर और सुन्दर रङ्गवाली, तुम यदि उनकी स्त्री हो सको तो निस्सन्देह तुम्हारा जन्म सफल और सुन्दरता सार्थक हो। हे सुन्दरी! हमने देवता, गन्धर्व, दानव, नाग और मानवों में कहीं ऐसा अपूर्व रूप नहीं देखा। तुम भी स्त्रियों
३० में रत्न हो और नल भी पुरुषों में श्रेष्ठ हैं। सुन्दरी स्त्री सुन्दर पुरुष के साथ ब्याही जाने से ही शोभित होती है। राजन्, हंसों के यों कहने पर दमयन्ती ने कहा—हे हंस, तुमने नल का वृत्तान्त जिस तरह मुझसे कहा है उसी तरह उनके पास जाकर मेरा वृत्तान्त उनसे कहो। "यही करेंगे"—कहकर हंस दमयन्ती से विदा हुआ। निषध देश में फिर आकर
३२ उसने नल से दमयन्ती का सब वृत्तान्त कहा।

चौवनवाँ अध्याय

दूत बनने के लिए नल से इन्द्र आदि देवताओं का प्रार्थना करना

बृहदश्व कहते हैं—राजन्, हंस के मुँह से नल का वृत्तान्त सुनकर दमयन्ती उन पर रीझ गई। वह दिन-दिन दुबली और मलिन होने लगी। वह सदा बेचैनी से बारम्बार लम्बी साँसें लिया करती थी; ऊपर दृष्टि किये, ध्यान में मग्न सी, पागल सी देख पड़ती थी। क्षण-क्षण भर पर कामदेव की पीड़ा से पीड़ित होने के कारण उसका शरीर पीला पड़ने लगा। सोने, बैठने, खाने-पीने आदि किसी काम को उसका जी नहीं चाहता था। वह दिन-रात अकेले में हाय-हाय किया करती थी।

दमयन्ती की दशा और आकार देखकर उसकी सखियों ने उसके मन का भाव समझ लिया। उन्होंने विदर्भ-नरेश भीम के पास जाकर दमयन्ती के नल पर आसक्त होने का हाल कह सुनाया। विदर्भराज भीम, सखियों के मुँह से दमयन्ती की तबीयत अच्छी न होने का हाल सुनकर, बहुत ही चिन्तित हुए। वे सोचने लगे कि अकस्मात् इसे कौन सी व्यथा उत्पन्न हो गई। इसके बाद दमयन्ती को जवान हुई देखकर राजा ने उसके स्वयंवर की तैयारी की। महाराज भीम ने, दमयन्ती के स्वयंवर में आने के लिए, राजाओं के पास न्योता भेजा। तब भीम
१० का न्योता पाकर सब राजा स्वयंवर के लिए आने लगे। उनके हाथी, घोड़े और रथों के शब्द से और विचित्र आभूषण-माला आदि पहने हुए सैनिकों के कोलाहल से पृथ्वी गूँज उठी। महाबाहु भीम ने उन महाप्रभावशाली नरपतियों का स्वागत किया। वे आदर पाकर वहाँ सुख से रहने लगे।

इसी समय नारद और पर्वत नाम के दो महाप्राज्ञ तपस्वी देव-ऋषि विचरते-विचरते देवलोक में इन्द्र के घर पहुँचे। इन्द्र ने उनकी यथोचित रूप से पूजा की और कुशलप्रश्न किया।

नारद ने कहा—हे इन्द्र, हम लोगों के लिए सब जगह कुशल है। मनुष्यलोक में सब राजा भी कुशलपूर्वक हैं।

बृहदश्व कहते हैं कि बल दानव और वृत्रासुर को मारनेवाले इन्द्र ने नारद के वचन सुन-कर कहा—भगवन्, जो धर्मात्मा राजा प्राणों का मोह छोड़कर संग्राम से विमुख न हो सामने बाण खाकर मरे हैं, वे इस देवलोक में मेरे ही समान सुख भोगते हैं। वे सब महावीर क्षत्रिय इस समय कहाँ हैं? बहुत समय से उन प्रिय अतिथियों को यहाँ आते मैंने नहीं देखा।

इन्द्र के यों पूछने पर देवर्षि नारद ने कहा—हे देवराज, आपने उनको जिस कारण इधर नहीं देखा, सो कहता हूँ, सुनिए। विदर्भराज की कन्या दमयन्ती रूप और लावण्य में पृथ्वी-मण्डल की सब स्त्रियों से बढ़कर है। थोड़े ही समय के बाद उसका स्वयंवर होगा। उसी त्रिभुवनसुन्दरी स्त्री को प्राप्त करने के लिए सब लोग विदर्भ देश की राजधानी को गये हैं। २०

इन्द्र और नारद की यह बातचीत हो ही रही थी कि इतने में अग्नि आदि लोकपाल वहाँ आ गये। नारद के मुँह से दमयन्ती के अलौकिक रूप-लावण्य की ख़बर सुनकर वे सब स्वयंवर में जाने के लिए तैयार हुए। अब अपने-अपने गणों और वाहन के साथ सभी स्वयंवर के स्थान को चल दिये। हे युधिष्ठिर, इधर निषध देश के राजा नल भी, यह सुनकर कि दमयन्ती के स्वयंवर के लिए राजाओं का जमाव हो रहा है, दमयन्ती के साथ व्याह होने की आशा से प्रसन्नतापूर्वक उधर को चल पड़े। देवताओं ने आकाश-मार्ग में जाते-जाते नीचे देखा कि शरीरधारी कामदेव के समान रूपवान्

नल भी स्वयंवर को जा रहे हैं। उनके अलौकिक, सूर्य-सदृश, शरीर के तेज को देखकर सब देवता चकरा गये और दमयन्ती की प्राप्ति से निराश हो गये। अब देवताओं ने विमानों को रोककर, अन्तरिक्ष से उतरकर, नल से कहा—हे निषध-नरेश नल, तुम सत्यव्रती हो। इसलिए हे नरश्रेष्ठ, तुम दूत का काम करना स्वीकार करके हमारी सहायता करो। ३१

पचपनवाँ अध्याय

नल का दुस्तर; दूत-कार्य

बृहदश्व कहते हैं कि तब निषध देश के राजा नल ने देवताओं का दूत बनने की प्रतिज्ञा करके हाथ जोड़कर कहा—आप लोग कौन हैं? किसके पास मुझे भेजना चाहते हैं? आप लोगों का क्या काम मुझे करना होगा? कृपा करके विशेष रूप से यह सब कहिए। नल के यों पूछने पर इन्द्र ने कहा—हे भद्र, हम सब देवता हैं और इस समय दमयन्ती को प्राप्त करने की इच्छा से पृथ्वी पर आये हैं। मैं इन्द्र हूँ, ये प्राणियों का देहान्त करनेवाले यमराज हैं, वे अग्नि और वरुण हैं। तुम दमयन्ती के पास जाकर कहो कि इन्द्र आदि लोकपाल तुम्हारे स्वयंवर की सभा में जा रहे हैं। इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम, ये चारों देवता तुम्हें प्राप्त करना चाहते हैं। इनमें से जिसे चाहो उसे अपना पति बनाओ।

इन्द्र के ये वचन सुनकर नल ने हाथ जोड़कर कहा—हे लोकपालो, मैं भी आप लोगों की तरह दमयन्ती को पाने के लिए स्वयं-वर-सभा में जा रहा हूँ। इस कारण इस काम के लिए आपका मुझे दूत बनाकर भेजना ठीक नहीं जान पड़ता। मैं ख़ुद जिसे प्राप्त करना चाहता हूँ उससे आप लोगों के लिए अनुरोध करना अत्यन्त असम्भव है। इसलिए आप लोग इस बारे में मुझे क्षमा करें।

देवताओं ने कहा—हे निषध-नरेश, तुम पहले अङ्गीकार करके अब क्यों मुकरते हो? तुम अभी हमारे काम से विदर्भ देश जाओ।

बृहदश्व कहते हैं कि देवताओं के यों कहने पर नल ने फिर कहा—सैकड़ों पहरेदारों के १० बीच रनिवास में दमयन्ती रहती है। मैं किस तरह वहाँ पहुँचूँगा? इन्द्र ने कहा—तुम मेरे प्रभाव से सहज ही वहाँ पहुँच सकोगे। तब "जो आज्ञा" कहकर नल उसी घड़ी वहाँ से चल दिये। विदर्भ देश में जाकर वे दमयन्ती के भवन में गये। नल ने वहाँ पहुँचकर देखा कि विदर्भराज-कुमारी अपनी सखियों के बीच में विराजमान है। उसके असाधारण रूप-लावण्य की छटा फैली हुई है। वह पतली कमरवाली, सुलोचना, अत्यन्त सुकुमारी राजकुमारी अपने शरीर की कान्ति से चन्द्रमा की प्रभा को भी मलिन कर रही है। राजा नल उसके शरीर की

नल ने वहाँ पहुँच कर देखा कि विदर्भ-राजकुमारी अपनी सखियों के बीच में विराजमान है—पृ० ८०६

कान्ति देखकर ही कामदेव के बाणों का शिकार बन गये। किन्तु प्रतिज्ञा का पालन करना होगा, यह सोचकर उन्होंने बड़े कष्ट से अपने उस विकार के भाव को छिपा लिया। इधर रनिवास की स्त्रियाँ नल को देखकर घबराहट के मारे अपने-अपने आसन से उठ खड़ी हुईं। वे प्रसन्न और विस्मित होकर नल के रूप की बारम्बार मन में प्रशंसा करने लगीं। कोई भी उनसे कुछ न पूछ सकी। उनके असाधारण रूप, कमनीय कान्ति और अनुपम गाम्भीर्य को देखकर सभी मन में सोचने लगीं कि यह पुरुष कौन है। ये देवता, यक्ष अथवा गन्धर्व होंगे। मतलब यह कि किसी के मुँह से बोल नहीं निकला। सभी उनके शरीर की कान्ति देखकर लज्जा से सिर झुकाकर रह गईं।

तब मुसकाकर बोलनेवाली दमयन्ती ने अचरज करके नल से पूछा—हे सुन्दर अङ्गोंवाले, आप कौन हैं? आपको देखते ही मैं कामदेव के अधीन हो गई हूँ। हे पुण्यात्मा, मेरे घर पर सदा चौकी-पहरा रहता है। आप किस तरह यहाँ चले आये? मुझे आप कोई देवता जान पड़ते हैं। मैं जानना चाहती हूँ, आपके यहाँ आने का कारण क्या है। २१

दमयन्ती के यों कहने पर नल ने कहा—हे कल्याणी, मैं निषध देश का राजा नल हूँ। इस समय देवताओं का दूत बनकर यहाँ आया हूँ। हे शोभने! इन्द्र, अग्नि, वरुण और यमराज, ये चारों लोकपाल तुम्हें प्राप्त करना चाहते हैं। इस कारण तुम इनमें से किसी एक को अपना पति बना लो। मैं इन्हीं लोगों के प्रभाव से यहाँ चला आया हूँ। यहाँ आते समय मुझे किसी ने नहीं देखा और इसी से किसी ने नहीं रोका। हे भद्रे, मैं देवताओं का यह काम सिद्ध करने के लिए ही यहाँ आया हूँ। अब तुमको जैसा समझ पड़े, वैसा करो। २५

छप्पनवाँ अध्याय

नल का देवताओं के पास जाकर दमयन्ती का उत्तर सुनाना

बृहदश्व कहते हैं कि महाराज, नल के वचन सुनकर दमयन्ती ने देवताओं को प्रणाम किया। फिर वह हँसकर कहने लगी—महाराज! मैं मन, प्राण और अपना सर्वस्व आपको अर्पण कर चुकी। आप मित्र की तरह सब ग्रहण करके जो कर्त्तव्य समझें सो करें। मेरा निष्कपट प्रेम आप ही पर है। हे नरेश, जब से हंस के मुँह से आपका वृत्तान्त सुना है तब से आपके लिए मैं अनेक कष्ट सह रही हूँ। आपको पाने के लिए ही स्वयंवर की तैयारी हो रही है। हे नरश्रेष्ठ, मैं आपको मन ही मन अपना पति मान चुकी हूँ। अब जो आप मुझे विमुख कर देंगे तो मैं आपके विरह से आग में जलकर, पानी में डूबकर, विष खाकर या फाँसी लगाकर अपने प्राण दे दूँगी।

दमयन्ती के ये वचन सुनकर नल ने कहा—देखो सुन्दरी, देवता तुम से व्याह करना चाहते हैं। तुम क्यों एक साधारण मनुष्य पर रीझ रही हो? मैं उन महानुभाव चराचर-गुरु लोकपालों के चरणों की रज के समान भी नहीं हूँ। इसलिए तुम उन्हीं में से किसी को अपना हृदय अर्पण करो। मनुष्य अगर देवताओं का अप्रिय करते हैं तो उन्हें मृत्यु के मुँह में जाना पड़ता है। हे सर्वाङ्गसुन्दरी, देवताओं में से किसी को स्वीकार करके मुझे बचाओ। देवताओं के साथ निर्मल वस्त्र, दिव्य और विचित्र फूल-माला तथा रमणीय गहने पहनो और मौज करो। जो इस सारी पृथ्वी का संहार करते हैं उन देवादिदेव अग्नि को कौन स्त्री अपना पति नहीं बनाना चाहेगी? सब प्राणी जिनके दण्ड से डरकर धर्म का आचरण करते हैं उन यम पर किस स्त्री
१० को प्रेम न होगा? दैत्यों और दानवों के नाशक, सब देवताओं के अगुआ महात्मा इन्द्र की पत्नी होना किस स्त्री को न रुचेगा? हे चारुहासिनी, मैं तुम्हारे ही भले के लिए कहता हूँ, जो पसन्द हो तो बेखटके जलपति वरुण को अपना पति बनाओ।

नल के यों कहने पर शोक से उत्पन्न आँसुओं को आँखों में भरकर दमयन्ती ने करुण स्वर से कहा—हे नरेश, मैं देवताओं को नमस्कार करके सच कहती हूँ कि केवल तुम्हीं को अपना पति बनाऊँगी। राजा नल ने काँपती हुई हाथ जोड़े खड़ी दमयन्ती से कहा—हे कल्याणी, देवताओं के आगे विशेष रूप से प्रतिज्ञा करके उनका दूत बनकर मैं यहाँ आया हूँ। पराये लिए यत्न करके अब मैं किस तरह स्वार्थसाधन करूँ? जिससे मेरा यह दूत-धर्म नष्ट न हो वैसा उपाय कर सको तो मैं अवश्य तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा।

मृदु मधुर हास्यवाली दमयन्ती ने आँखों में आँसू भरकर गद्गद स्वर से कहा—हे नर-वीर, आपको जिसमें कुछ दोष न लगे वह उपाय मैंने ठीक कर लिया। आप इन्द्र आदि

देवताओं के साथ मेरे स्वयंवर की सभा में आइएगा। मैं उन लोकपालों के सामने ही आपके गले में जयमाला डालकर आपको अपना पति बनाऊँगी। ऐसा होने से आपके लिए कुछ दोष न होगा। ३०

राजन्, राजा नल दमयन्ती के ये वचन सुनकर देवताओं के पास लौट गये। लोकपालों ने उन्हें आया देखकर सब वृत्तान्त पूछते हुए कहा—हे निष्पाप, तुमने क्या उस सुन्दर मुसकानवाली दमयन्ती को देखा है? उसने हमारी बात के उत्तर में क्या कहा, सो सब कहो।

नल ने कहा—मैं आपकी आज्ञा से वहाँ गया और हाथ में दण्ड लिये हुए बूढ़े द्वारपालों से सुरक्षित दमयन्ती के भवन में पहुँचा। आप लोगों के तेज के प्रभाव से राजपुत्री दमयन्ती के सिवा और किसी ने मुझे भीतर जाते नहीं देखा। भीतर जा करके मैंने दमयन्ती और उसकी सखियों को देखा। वे भी मुझे देखकर एक साथ ही विस्मित और प्रसन्न हो उठीं। हे श्रेष्ठ देवताओं, मैंने आपका सँदेशा उससे कह दिया। तब उस रुचिर मुखवाली सुन्दरी ने दृढ़ सङ्कल्प के साथ मुझे ही अपना पति स्वीकार करके कहा कि हे नरश्रेष्ठ, देवता आपके साथ स्वयंवर के सभामण्डप में उपस्थित होंगे; तब मैं उनके आगे ही आपके गले में जयमाला डालूँगी। तब फिर आपको कोई दोष न लगेगा। हे देवराज लोकपालो, दमयन्ती ने मुझसे जो कहा था सो सब मैंने आपके सामने कह दिया। अब आप जो अच्छा समझें वह करें। ३१

सत्तावनवाँ अध्याय

नल का वरण, दमयन्ती का विवाह

बृहदश्व ने कहा—महाराज, इसके बाद शुभ घड़ी और शुभ नक्षत्र में राजा भीम ने सब राजाओं को स्वयंवर के मण्डप में बुलाया। समाचार पाते ही, कामदेव के बाणों से पीड़ित, सब राजा दमयन्ती के लाभ की इच्छा से स्वयंवर की सभा में सिंहों की तरह गये। वह रङ्गभूमि सुवर्ण के खम्भों से शोभित और ऊँचे फाटक से शोभायमान थी। [सुगन्धित मालाएँ और उज्ज्वल कुण्डल पहने] राजा लोग विविध विचित्र आसनों पर जा बैठे। पवित्र भोगवती नगरी जैसे नागमण्डली से परिपूर्ण हो, पर्वत की कन्दरा जैसे सिंहों से शोभित हो, वैसे ही वह राजसभा असंख्य नरपतियों से परिपूर्ण हो गई। राजपुरुषों के बेलन ऐसे पुष्ट बाहु पाँच सिरवाले नागों के समान जान पड़ते थे। उनके मनोहर चिकने केश थे; उनकी नाक, आँखें और भौंहें सुन्दर थीं। उन राजाओं के चेहरे, आकाश में नक्षत्रों की तरह, सुन्दर लगते थे।

अब ठीक समय पर सुहावने मुखवाली दमयन्ती, अपनी कान्ति से, आये हुए राजपुत्रों के मन और नयनों को आकर्षित करती हुई रङ्गभूमि में आई। सब राजकुमार उत्कण्ठा के

साथ दमयन्ती को देखने लगे। दमयन्ती के जिस अङ्ग पर जिसकी दृष्टि पड़ी वह वहीं पर जम गई। इसके बाद दमयन्ती को राजाओं का परिचय दिया जाने लगा। भीम नरेश की कन्या ने देखा, सभा में नल के समान स्वरूपवाले पाँच पुरुष बैठे हैं। दमयन्ती के लिए विशेष रूप से देखकर भी उनमें से असली नल को पहचान लेना कठिन हो गया। जिसकी ओर वह दृष्टि डालती थी वही उसे नल जान पड़ता था। तब दमयन्ती बहुत चिन्तित हुई। वह सोचने लगी कि इनमें कौन तो देवता हैं और कौन राजा नल हैं। दमयन्ती ने वृद्ध पुरुषों से देवताओं के जो लक्षण सुने थे उनसे भी वह कुछ निश्चय नहीं कर सकी। अन्त को अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क द्वारा कुछ भी निश्चय न कर पाने पर वह देवताओं के शरणागत हुई। मन और वाणी से देवताओं को प्रणाम करके काँपती हुई दमयन्ती ने कहा—हे देवताओ, आप लोग सत्य जानिए, मेरा मन नल पर ही आसक्त है। हंस के मुँह से जिस दिन से राजा नल का वृत्तान्त सुना है उसी दिन से उनको मैंने अपना पति मान लिया है। इस समय आप लोग ऐसा कीजिए जिसमें [अन्य पुरुष के गले में जयमाला डालकर] मैं पापभागिनी न होऊँ। देवताओं ने नल को ही मेरा पति बनाया है। इसलिए हे देवगण, इस समय आप लोग उन्हें अपने से अलग कर दीजिए। मैंने उन्हें पतिरूप से पाने का निश्चय कर लिया है। इसलिए आप उन्हें दिखा दीजिए। हे महेश्वर लोकपालगण, जो आप लोग अपना-अपना रूप धारण कर लें तो मैं पुण्यश्लोक नल को पहचान लूँ।

देवताओं ने देखा, राजा नल को दमयन्ती बहुत चाहती है; नल पर उसका दृढ़ अनुराग और भक्ति है। राजकुमारी के ऐसे करुण वचन सुनकर उन्होंने अपना-अपना रूप धारण कर लिया। दमयन्ती ने देखा कि, उनके शरीर पर पसीने की बूँदें नहीं हैं, उनकी आँखों की पलकें नहीं गिरतीं, वे पराग-शून्य पुष्पों की माला पहने हैं और उनके पैर पृथ्वी को नहीं छूते। ये सब देवताओं के लक्षण उनमें मौजूद हैं। किन्तु नल के शरीर की परछाहीं स्पष्ट देख पड़ रही है, वे पृथ्वी पर बैठे हुए हैं, उनकी आँखों की पलकें गिरती और उठती हैं, वे परागयुक्त पुष्पमाला पहने हुए हैं। दमयन्ती पुण्यश्लोक नल को देखकर बहुत प्रसन्न हुई।

अब विशाल नेत्रोंवाली दमयन्ती लज्जा से सिर झुकाये, वस्त्र का आँचल पकड़े, नल के पास गई। उसने जाकर उनके गले में जयमाला डाल दी। यह देखकर और सब आये हुए राजा हाहाकार करने लगे। देवता और महर्षि धन्यवाद देते हुए नल की बारम्बार प्रशंसा करने लगे। महाराज नल ने यह कहकर दमयन्ती को धैर्य दिया कि हे कल्याणी, तुमने देवताओं के आगे मुझे अपना पति स्वीकार किया है। मैं जन्म भर के लिए आज से तुम्हारी आज्ञा के अनुकूल चलनेवाला और प्रेम के अधीन तुम्हारा पति हुआ। दमयन्ती ने भी प्रणय-पूर्ण वचनों से बारम्बार नल का अभिनन्दन किया।

भीम नरेश की कन्या ने देखा, सभा में नल के समान स्वरूपवाले पाँच पुरुष बैठे हैं—पृ० ८१०

फिर नल और दमयन्ती, दोनों प्रसन्नतापूर्वक अग्नि आदि देवताओं को प्रणाम करके उनके शरणागत हुए। लोकपालों ने, दूलह-दुलहिन पर प्रसन्न होकर, नल को आठ वरदान दिये। इन्द्र ने कहा—हे नल, तुम मेरे वरदान के प्रभाव से मुझे प्रत्यक्ष देखोगे और अन्त को परमगति पाओगे। अग्नि ने कहा—हे निषधराज, तुम मुझे जहाँ पर स्मरण करोगे, वहीं पर मैं उसी दम प्रकट होऊँगा और तुम्हारी इच्छा के अनुकूल फल तुमको दूँगा। यमराज ने कहा—तुम जो रसोईं बनाओगे वह अत्यन्त स्वादिष्ट होगी और धर्म पर तुम्हारी निष्ठा सदा प्रबल रहेगी। वरुण

ने कहा—हे नल, तुम मुझे जहाँ बुलाओगे वहाँ मैं उसी दम पहुँचूँगा। इसके बाद लोकपालों ने उन्हें दिव्य मालाएँ पहनाईं। वरदान देकर सब देवता अपने-अपने स्थान को चले गये। ४०

इसके बाद आये हुए सब राजा भी नल और दमयन्ती के व्याह को देखकर अपने-अपने राज्य को लौट गये। महाराज नल भी दमयन्ती से व्याह करके कुछ दिनों तक वहाँ रहे, और फिर भीम से आज्ञा पाकर अपने देश को गये। इसके बाद, इन्द्र जैसे इन्द्राणी के साथ विहार करते हुए समय विताते हैं, वैसे ही महाराज नल भी स्त्री-रत्न दमयन्ती के साथ दिन-रात सुख भोगने लगे। सूर्य के समान प्रतापी राजा नल राजधर्म के अनुसार अपनी प्रजा का पालन करने लगे। समय-समय पर बहुत सी दक्षिणा देकर उन्होंने अश्वमेध और अन्य अनेक महायज्ञ किये। इस प्रकार धर्मोपार्जन करते हुए वे कभी-कभी, इच्छा के अनुसार, दमयन्ती के साथ परम रमणीय बागों में जाकर विहार करते थे। कुछ समय इसी तरह आमोद-प्रमोद में बीता। दमयन्ती के गर्भ से नल के इन्द्रसेन नाम का एक पुत्र और इन्द्रसेना नाम की परम रूपवती एक कन्या उत्पन्न हुई। महाराज, नल राजा ने इस प्रकार अनेक प्रकार के धर्म-कर्मों का अनुष्ठान करके अनुपम दाम्पत्य-सुख का अनुभव करते हुए पृथ्वी का पालन किया। ४७

अट्ठावनवाँ अध्याय

इन्द्र और कलियुग का संवाद

बृहदश्व ने कहा कि महाराज, दमयन्ती का व्याह हो जाने के बाद इन्द्र आदि लोकपाल अपने-अपने लोक को जा रहे थे, इसी समय द्वापर के साथ जाते हुए कलियुग से उनकी भेंट हुई। तब इन्द्र ने मुसकाकर उससे पूछा—हे कलियुग, द्वापर के साथ तुम कहाँ जा रहे हो? कलियुग ने कहा—हे देवराज, दमयन्ती को प्राप्त करने के लिए मैं उसके स्वयंवर में जा रहा हूँ। मेरा मन दमयन्ती पर आसक्त है। इन्द्र ने हँसते-हँसते कहा—हे कलियुग, दमयन्ती का स्वयंवर तो हो गया। राजकुमारी ने हम लोगों के सामने ही नल को अपना पति बना लिया।

यह सुनकर कलियुग को बड़ा क्रोध आया। उसने कहा—हे देवताओ, दमयन्ती ने जैसे देवताओं का अपमान करके एक साधारण मनुष्य को अपना पति बनाया है वैसे ही उसे इस काम का उचित दण्ड देना चाहिए। देवताओं ने कहा—इस बारे में दमयन्ती का कुछ अपराध नहीं है; क्योंकि हम लोगों की अनुमति से ही उसने नल के गले में जयमाला डाली है। इसके सिवा नल ऐसे असाधारण स्वरूपवाले, गुणनिधान नर-पति को अपना पति बनाने के लिए किस स्त्री की इच्छा न होगी? जो हो, हम किसी तरह सब गुणों के आधारस्वरूप नल राजा को शाप नहीं दे सकते; क्योंकि वैसे धर्मात्मा, व्रत आदि के अनुष्ठान में तत्पर, वेद-वेदाङ्ग के ज्ञाता, सत्यवादी, दृढ़व्रत, अहिंसा-धर्म को माननेवाले, पवित्र-हृदय, संयमी और देवताओं की पूजा में तत्पर राजा को शाप देना अत्यन्त अनुचित है। १० जो कोई ऐसे धर्मपरायण पुरुष को शाप दे सकता है वह निस्सन्देह अपने आत्मा को भी शाप दे सकता है। ऐसा पुरुष आत्मघात भी कर सकता है। ऐसे पुरुष को अन्त समय नरक में जाना पड़ता है। द्वापर-सहित कलियुग से यों कहकर देवगण आकाशमार्ग से देवलोक को चले गये।

उनके चले जाने पर कलियुग ने द्वापर से कहा—हे द्वापर, मैं किसी तरह इस दारुण क्रोध के वेग को रोक नहीं सकता। चाहे जिस तरह हो, मैं नल के शरीर में प्रवेश करके उसे

राज्य से भ्रष्ट कर दूँगा और वह दमयन्ती के साथ सुख भोग न कर सकेगा। तुम्हें पाँसों में प्रवेश करके इस काम में मेरी सहायता करनी होगी। १४

उनसठवाँ अध्याय

नल और पुष्कर का जुआ खेलना

बृहदश्व कहते हैं—इस प्रकार द्वापर को प्रतिज्ञाबद्ध करके कलियुग नल के पास पहुँचा और नित्य मौक़ा देखता हुआ वहीं रहने लगा। धीरे-धीरे ग्यारह वर्ष बीतने पर एक दिन उसने देखा, राजा नल पेशाब करने के बाद केवल हाथ धोकर—पैर धोये बिना ही—सन्ध्योपासन करने लगे। घात में लगे हुए कलियुग को मौक़ा मिल गया और वह उसी घड़ी नल के शरीर में घुस गया। फिर वह कलियुग नल के भाई पुष्कर के पास गया। नल के साथ पाँसे खेलने के लिए [तरह-तरह के प्रलोभन दिखाकर] उसने पुष्कर से कहा—चलो, तुम मेरे प्रभाव से नल को जीत लोगे; उसके सब ऐश्वर्य और राजपद को प्राप्त करके निषध देश के निष्कण्टक राजा बन जाओगे।

कलियुग के यों कहने पर पुष्कर अपने भाई नल के पास गया। इधर कलियुग भी पाँसों का रूप रखकर पुष्कर के पास आ गया। पुष्कर ने हाथ में पाँसे लेकर नल को बारम्बार खेलने के लिए उभाड़ा। नल का स्वभाव सहने का न था। वे खेलने को राज़ी हो गये। अब शर्त लगाकर दोनों दमयन्ती के सामने खेलने लगे। नल ने रत्नों के ढेर, सोना, सवारी, वाहन और अन्यान्य जो कुछ दाँव में रक्खा वह सब कलियुग के प्रभाव से पुष्कर ने जीत लिया। समीपवर्त्ती मित्रों ने उनको, जुआ खेलने की धुन में अचेत सा देखकर, रोकने की बहुत चेष्टा की परन्तु वे लोग कुछ भी न कर सके। १०

अन्त को सब पुरवासी लोग मन्त्री को आगे करके जुआ खेलने में लगे रहे राजा नल को इस बुरे व्यसन से बचाने के लिए, उनके पास, आये। सारथि ने दमयन्ती के पास

जाकर कहा—देवी, सब नगरवासी लोग राजा के दर्शन की इच्छा से बाहर खड़े हैं। आप एक बार महाराज को ख़बर देकर कहिए कि उनके सङ्कट को न सह सकनेवाले, धर्म-अर्थ के ज्ञाता, नागरिक उनसे मिलने के लिए द्वार पर खड़े राह देख रहे हैं।

तब दमयन्ती ने शोक से व्याकुल होकर, दुःख से भरे करुण स्वर में, राजा को प्रजा का सँदेशा कह सुनाया। कहा—प्रजा को दर्शन देना आपका सबसे पहला कर्त्तव्य है। सुन्दरी दमयन्ती को राजा से बार-बार कहने पर भी कुछ उत्तर नहीं मिला। वे कलियुग के प्रभाव से जुए में ऐसे मस्त से हो रहे थे कि रानी के करुण विलाप पर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया। मन्त्री और प्रजामण्डली ने यह देखकर जान लिया कि राजा नल की अब कुशल नहीं है। यह समझकर वे अपने-अपने घर को चले गये। हे युधिष्ठिर, इस प्रकार बहुत समय तक नल १८ और पुष्कर का खेल जमा रहा। वे जो दाँव लगाते थे, वही हार जाते थे।

महाभारत के स्थायी ग्राहक बनने के नियम

(१) जो सज्जन हमारे यहाँ महाभारत के स्थायी ग्राहकों में अपना नाम और पता लिखा देते हैं उन्हें महाभारत के अङ्कों पर २०) सैकड़ा कमीशन काट दिया जाता है। अर्थात् १।) प्रति अङ्क के बजाय स्थायी ग्राहकों को १) में प्रति अङ्क दिया जाता है। ध्यान रहे कि डाकखर्च स्थायी और फुटकर सभी तरह के ग्राहकों को अलग देना पड़ेगा।

(२) साल भर या छः मास का मूल्य १२) या ६), दो आना प्रति अङ्क के हिसाब से रजिस्ट्री खर्च सहित १३॥) या ६॥।) जो सज्जन पेशगी मनीआर्डर-द्वारा भेज देंगे केवल उन्हीं सज्जनों को डाकखर्च नहीं देना पड़ेगा। महाभारत की प्रतियाँ राह में गुम न हो जायँ और ग्राहकों की सेवा में वे सुरक्षित रूप में पहुँच जायँ इसी लिए रजिस्ट्री द्वारा भेजने का प्रबन्ध किया गया है।

(३) इसके प्रत्येक खंड के लिए अलग से बहुत सुन्दर जिल्दें भी सुनहले नाम के साथ तैयार कराई जाती हैं। प्रत्येक जिल्द का मूल्य ।॥) रहता है परन्तु स्थायी ग्राहकों को वे ॥) ही में मिलती हैं। जिल्दों का मूल्य महाभारत के मूल्य से बिलकुल अलग रहता है।

(४) स्थायी ग्राहकों के पास प्रतिमास प्रत्येक अङ्क प्रकाशित होते ही बिना विलम्ब वी० पी० द्वारा भेजा जाता है। बिना कारण वी० पी० लौटाने से उनका नाम ग्राहक-सूची से अलग कर दिया जायगा।

(५) ग्राहकों को चाहिए कि जब किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार करें तो कृपा कर अपना ग्राहक-नम्बर जो कि पता की स्लिप के साथ छपा रहता है और पूरा पता अवश्य लिख दिया करें। बिना ग्राहक-नम्बर के लिखे हज़ारों ग्राहकों में से किसी एक का नाम ढूँढ़ निकालने में बड़ी कठिनाई पड़ती है और पत्र की कार्रवाई होने में देरी होती है। क्योंकि एक ही नाम के कई-कई ग्राहक हैं। इसलिए सब प्रकार का पत्र-व्यवहार करते तथा रुपया भेजते समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए।

(६) जिन ग्राहकों को अपना पता सदा अथवा अधिक काल के लिए बदलवाना हो, अथवा पते में कुछ भूल हो, उन्हें कार्यालय को पता बदलवाने की चिट्ठी लिखते समय अपना पुराना और नया दोनों पते और ग्राहक-नम्बर भी लिखना चाहिए। जिससे उचित संशोधन करने में कोई दिक़्क़त न हुआ करे। यदि किसी ग्राहक को केवल एक दो मास के लिए ही पता बदलवाना हो, तो उन्हें अपने हलके के डाकख़ाने से ही उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिए।

(७) ग्राहकों से सविनय निवेदन है कि नया आर्डर या किसी प्रकार का पत्र लिखने के समय यह ध्यान रक्खें कि लिखावट साफ़ साफ़ हो। अपना नाम, गाँव, पोस्ट और ज़िला साफ़-साफ़ हिन्दी या अँगरेज़ी में लिखना चाहिए ताकि अङ्क या उत्तर भेजने में दुबारा पूछ-ताछ करने की ज़रूरत न हो। "हम परिचित ग्राहक हैं" यह सोच कर किसी को अपना पूरा पता लिखने में लापरवाही न करनी चाहिए।

(८) यदि कोई महाशय मनी-आर्डर से रुपया भेजें, तो 'कूपन' पर अपना पता-ठिकाना और रुपया भेजने का अभिप्राय स्पष्ट लिख दिया करें, क्योंकि मनीआर्डरफ़ार्म का यही अंश हमको मिलता है।

सब प्रकार के पत्रव्यवहार का पता—

मैनेजर महाभारत-विभाग, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

आवश्यक सूचनायें

(१) हमने प्रथम खंड की समाप्ति पर उसके साथ एक महाभारत-कालीन भारतवर्ष का प्रामाणिक सुन्दर मानचित्र भी देने की सूचना दी थी। इस सम्बन्ध में हम ग्राहकों को सूचित करते हैं कि पूरा महाभारत समाप्त हो जाने पर हम प्रत्येक ग्राहक को एक परिशिष्ट-अध्याय बिना मूल्य भेजेंगे जिसमें महाभारत-सम्बन्धी महत्त्व-पूर्ण खोज, साहित्यिक आलोचना, चरित्र-चित्रण तथा विश्लेषण आदि रहेगा। उसी परिशिष्ट के साथ ही मानचित्र भी लगा रहेगा जिससे पाठकों को मानचित्र देख कर उपरोक्त बातें पढ़ने और समझने आदि में पूरी सुविधा रहे।

(२) महाभारत के प्रेमी ग्राहकों को यह शुभ समाचार सुन कर बड़ी प्रसन्नता होगी कि हमने कानपुर, उन्नाव, काशी (रामनगर), कलकत्ता, ग़ाज़ीपुर, बरेली, मथुरा (वृन्दावन), जोधपुर, बुलन्दशहर, प्रयाग, और लाहौर आदि में ग्राहकों के घर पर ही महाभारत के अङ्क पहुँचाने का प्रबन्ध किया है। अब तक ग्राहकों के पास यहीं से सीधे डाक-द्वारा अतिरिक्त अङ्क भेजे जाते थे जिसमें प्रति अङ्क तीन चार आना ख़र्च होता था पर अब हमारा नियुक्त किया हुआ एजेंट ग्राहकों के पास घर पर जाकर अङ्क पहुँचाया करेगा और अङ्क का मूल्य भी ग्राहकों से वसूल कर ठीक समय पर हमारे यहाँ भेजता रहेगा। इस अवस्था पर ग्राहकों को ठीक समय पर प्रत्येक अङ्क सुरक्षित रूप में मिल जाया करेगा और वे डाक, रजिस्टरी तथा मनीआर्डर इत्यादि के व्यय से बच जायँगे। इस प्रकार उन्हें प्रत्येक अङ्क केवल एक रुपया मासिक देने पर ही घर बैठे मिल जाया करेगा। यथेष्ट ग्राहक मिलने पर अन्य नगरों में भी शीघ्र ही इसी प्रकार का प्रबन्ध किया जायगा। आशा है जिन स्थानों में इस प्रकार का प्रबन्ध नहीं है, वहाँ के महाभारतप्रेमी सज्जन शीघ्र ही अधिक संख्या में ग्राहक बन कर इस अवसर से लाभ उठावेंगे। और जहाँ इस प्रकार की व्यवस्था हो चुकी है वहाँ के ग्राहकों के पास जब एजेंट अङ्क लेकर पहुँचे तो ग्राहकों को रुपया देकर अङ्क ठीक समय पर ले लेना चाहिए जिसमें उन्हें ग्राहकों के पास बार बार आने जाने का कष्ट न उठाना पड़े। यदि किसी कारण उस समय ग्राहक मूल्य देने में असमर्थ हों तो अपनी सुविधानुसार एजेंट के पास से जाकर अङ्क ले आने की कृपा किया करें।

(३) हम हिन्दी-भाषा-भाषी सज्जनों से एक सहायता की प्रार्थना करते हैं। वह यही कि हम जिस विराट आयोजन में संलग्न हुए हैं आप लोग भी कृपया इस पुण्य-पर्व में सम्मिलित होकर पुण्य-सञ्चय कीजिए, अपनी राष्ट्र-भाषा हिन्दी का साहित्य-भाण्डार पूर्ण करने में सहायक हूजिए और इस प्रकार सर्वसाधारण का हित-साधन करने का उद्योग कीजिए। सिर्फ़ इतना ही करें कि अपने दस-पाँच हिन्दी-प्रेमी इष्ट-मित्रों में से कम से कम दो स्थायी ग्राहक इस वेद-तुल्य सर्वाङ्गसुन्दर महाभारत के और बना देने की कृपा करें। जिन पुस्तकालयों में हिन्दी की पहुँच हो वहाँ इसे ज़रूर मँगवावें। एक भी समर्थ व्यक्ति ऐसा न रह जाय जिसके घर यह पवित्र ग्रन्थ न पहुँचे। आप सब लोगों के इस प्रकार साहाय्य करने से ही यह कार्य अग्रसर होकर समाज का हितसाधन करने में समर्थ होगा।

—प्रकाशक

विषय-सूची।

रंगीन चित्रों की सूची ।

साठवाँ अध्याय

दमयन्ती का नल को द्यूत-क्रीड़ा से रोकने की चेष्टा करना और नल का कुछ परवा न करना

बृहदश्व कहते हैं—राजा भीम की बेटी दमयन्ती ने जब देखा कि राजा नल जुआ खेलने में मस्त और अचेत से हो रहे हैं तब वह शोक और दुःख से व्याकुल हो उठी। मन में राजा की उस दशा पर विचार करने से उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया। दमयन्ती क्रमशः पाँसों से होनेवाले अनर्थ को बढ़ते देखकर अत्यन्त शङ्कित हुई। तब राजा को बारम्बार झिड़क-कर बृहत्सेना नाम की दासी से दमयन्ती ने कहा—देख बृहत्सेना, तू जैसी मधुरभाषिणी है वैसा ही तेरा महाराज पर अनुराग है। ख़ासकर तू सभी कामों में चतुर है। इसलिए तू महाराज की आज्ञा से मन्त्रियों के पास जाकर इस घोर अनर्थ की ख़बर कर दे और उन्हें शीघ्र यहाँ ले आ। बतला दे कि कितना धन रहा और कितना गया। ["जो आज्ञा" कहकर वह दासी उसी दम वहाँ से चल दी।]

राजा की आज्ञा सुनकर मन्त्रियों ने अपने को भाग्यवान् समझा और प्रजा-सहित सब लोग फिर राजद्वार पर आये। उनको फिर आये हुए देखकर दमयन्ती ने राजा को ख़बर दी। महाराज ने फिर पहले की तरह उस पर ध्यान नहीं दिया। स्वामी के ऐसे भाव को देखकर दमयन्ती बहुत ही दुखी हुई। लज्जा से सिर झुकाकर वह अपने भवन को चली गई। इसके बाद थोड़ी देर में उसने सुना कि अपने विरुद्ध पाँसे पड़ने से महाराज नल अपना सर्वस्व हार गये। तब दमयन्ती ने फिर बृहत्सेना को बुलाकर कहा—बृहत्सेना, धीरे-धीरे सर्वनाश हुआ जा रहा है। तू महाराज की आज्ञा से सारथि को ले आ। बृहत्सेना उसी दम सारथि को बुला लाई। १०

दमयन्ती ने मधुर वाक्यों से सारथि को समझाकर कहा—हे सारथि, महाराज सदा तुम्हारे साथ जैसा व्यवहार करते हैं सो तुमसे छिपा नहीं है। इस समय महाराज बड़ी बुरी दशा में हैं। तुमको उनकी सहायता करनी चाहिए। पुष्कर के साथ जुआ खेलने में महाराज पागल से हो रहे हैं। [और उससे बराबर हार रहे हैं।] पुष्कर जैसे चाहता है, वैसे ही पाँसे पड़ते हैं। महाराज जब पाँसे फेंकते हैं तब वे उलटे ही पड़ते हैं। भाई-बन्धुओं में से कोई उन्हें इस खेल से नहीं रोक सका। उन्होंने मेरे कहे को मानों सुना ही नहीं। मुझे जान पड़ता है, इस समय दैव उनके प्रतिकूल है। मैं इस समय तुम्हारी शरण में हूँ। तुम मेरी बात रक्खो। मैं बहुत ही घबरा रही हूँ। मालूम नहीं, भाग्य में क्या बदा है। इसलिए तुम अभी रथ जोत करके मेरे बेटे और बेटी को विदर्भ नगर में, उनकी ननिहाल में, छोड़ आओ। रथ और घोड़ों को वहीं रहने देना। तुम्हारा जी चाहे, वहीं रहना; नहीं तो अन्यत्र चले जाना। २०

नल के सारथी वार्ष्णेय ने रानी की आज्ञा मान करके सब हाल मन्त्रियों से कहा। मन्त्रियों ने विशेष रूप से विचार करके उसका अनुमोदन किया। राजपुत्र इन्द्रसेन और राजकुमारी इन्द्रसेना को लेकर सारथी विदर्भ नगर को गया। वहाँ घोड़े, रथ, राजकुमार और राजकुमारी को रखकर, राजा भीम से आज्ञा लेकर, सारथी पैदल ही चल दिया। उसने अयोध्या में २५ पहुँचकर वहाँ के राजा ऋतुपर्ण के यहाँ नौकरी कर ली। वहाँ पर वह बड़े कष्ट से रहने लगा।

इकसठवाँ अध्याय

नल पर विपत्ति पर विपत्ति। वन में नल का दमयन्ती को मार्ग पहचनवाना

बृहदश्व कहते हैं—इधर वार्ष्णेय रथ लेकर विदर्भ देश को गया, उधर पुण्यश्लोक नल को पुष्कर ने जुए में पूरे तौर पर जीत लिया। राज्य, धन आदि सर्वस्व राजा ने दाँव में लगा दिया और पुष्कर ने सब जीत लिया। अब पुष्कर ने हँसकर कहा—और भी दाँव लगाइए। अब क्या दाँव लगाइएगा? जो कुछ धन-सम्पत्ति थी वह सब तो मेरी हो गई। आपके पास अब केवल दमयन्ती रानी रह गई हैं। इच्छा हो तो उन्हीं को बद दीजिए।

पुष्कर के ऐसे मर्मभेदी वचन सुनकर नल बहुत ही दुःखित हुए परन्तु उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया। पुष्कर की ओर देखने से उनका क्रोध उमड़ पड़ा। कुछ न कहकर उन्होंने अपने शरीर पर से सब गहने उतार डाले। इस प्रकार महाराज नल राज-लक्ष्मी छोड़कर, केवल एक वस्त्र पहनकर, राजमहल से बाहर निकल पड़े। उनकी दशा देखकर सब भाई-बन्धुओं को बड़ा शोक हुआ। दुःख से व्याकुल दमयन्ती भी केवल एक कपड़ा पहन करके नल के पीछे-पीछे चली। इस प्रकार राज्य से भ्रष्ट होकर नल ने, अपनी रानी के साथ, नगर के किनारे रहकर तीन रातें विताईं।

उधर पुष्कर ने नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि जो कोई राज्य से भ्रष्ट नल को किसी तरह की सहायता देगा उसका सिर उसी दम उड़ा दिया जायगा। यह सुनकर, नल के ऊपर

पक्षी धोती लेकर आकाश में उड़ गये—पृ० ८१७

नदी पार करते हुए बटोहियों के दल के साथ दमयन्ती—पृ० ८२८

पुष्कर का घोर द्वेष देख, नगरवासी लोग बहुत डर गये। सबने नल को सहायता देने से मुँह मोड़ लिया। महाराज नल केवल जल पीकर तीन दिन तक बड़े कष्ट से नगर के किनारे पड़े रहे। १० इसके बाद भूख और प्यास से अत्यन्त व्याकुल होकर, कोई और उपाय न देख, वे कन्द-मूल-फल आदि की खोज में निकले। पतिव्रता दमयन्ती भी उनके पीछे चली। इस तरह फल-मूल खा-खाकर नल ने कुछ दिन बिताये। एक दिन प्यास के मारे व्याकुल होकर वे एक सरोवर के किनारे पहुँचे। वहां उन्होंने देखा कि बहुत से सोने के पंखवाले पक्षी इधर-उधर विचर रहे हैं। तब नल ने प्रसन्न होकर समझा कि शायद सौभाग्य से मुझे आज आहार और धन दोनों ही हाथ लग जायँ।

इसके बाद प्रसन्न चित्त से पक्षियों को पकड़ने के लिए नल ने अपनी धोती खोलकर उनके ऊपर फेंकी; किन्तु पक्षी उस धोती को लेकर आकाश में उड़ गये। उन्होंने नल को नीचे मुँह किये नंगे खड़े देखकर कहा—रे मूर्ख नल, हम वे ही पाँसे हैं। तुम्हें कपड़ा पहने देखकर हमें बड़ा खेद हुआ। इसी से पक्षी बनकर तुम्हारी धोती भी हमने ले ली। अब नल ने दमयन्ती के पास जाकर पक्षी बने हुए पासों का सब हाल सुनाकर कहा—देखो प्रिये, जिनके कोप से राज्य-भ्रष्ट होकर मैं अत्यन्त क्लेश भोग रहा हूँ, जिनके प्रभाव से नगरवासियों में से कोई मेरे सम्मान की रक्षा नहीं कर सका, जिनके प्रादुर्भाव से हम भूख-प्यास से पीड़ित होकर अनेक कष्ट भोग रहे हैं, उन्हीं पासों ने आज [सोने के पंखवाले] पक्षियों का रूप रखकर मुझको नङ्गा कर दिया है। इस समय दारुण दुर्दशा में पड़ने से मेरी बुद्धि भ्रष्ट सी हो रही है—मुझे कुछ कर्त्तव्य नहीं सूझता। मैं तुम्हारा पति हूँ। सब तरह तुम्हारी रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है। इस कारण तुमसे जो मैं कहता हूँ, सो सुनो। ये बहुत से मार्ग दक्षिण दिशा को गये हैं। ये मार्ग अवन्ती नगर और ऋक्षवान् पर्वत को लाँघ गये हैं। यह महापर्वत विन्ध्याचल है। २० इधर पयोष्णी नाम की नदी बहती है, जो समुद्र में जाकर मिल गई है। ये महर्षियों के आश्रम देख पड़ते हैं जिनमें फल-फूलों की कमी नहीं है।

इस मार्ग से जाने पर विदर्भ नगर में पहुँचा जा सकता है। यह मार्ग कोशल नगर को गया है। इस मार्ग की दक्षिण सीमा में स्थित देश को दक्षिणापथ कहते हैं। राजा नल दुःख और शोक से अत्यन्त पीड़ित होकर दमयन्ती से बार-बार यही बातें कहने लगे।

तब दुःख और शोक से पीड़ित दमयन्ती आँसू बहाती हुई गद्गद स्वर से बोली—महाराज, आकार और चेष्टा से आपके मन के भाव को जानकर मेरा हृदय फटा सा जा रहा है। सोच-कर भी मैं कुछ कर्त्तव्य ठीक नहीं कर पाती। सारा शरीर शिथिल हो रहा है। नाथ, आप राज्य से भ्रष्ट होकर घोर दुर्दशा में पड़े हैं; भूख और प्यास से भारी कष्ट उठा रहे हैं। जो एक धोती थी वह भी चली गई। मैं आपको सदा चिन्ता में डूबा हुआ पाती हूँ। ऐसी दशा में, इस निर्जन वन में, अकेले आपको मैं किस तरह छोड़ जाऊँ? आप जब भूख और प्यास से अत्यन्त व्याकुल होकर चिन्ता में डूब जायँगे, तब कौन आपके व्यथित हृदय को सान्त्वना देगा? हे जीवनेश्वर, शास्त्रकारों ने कहा है कि स्त्री अपने स्वामी के सब प्रकार के दुःखों में सहा-यता किया करती है। स्वामी को अगर कोई क्लेश होता है तो स्त्री के द्वारा उसको बहुत कुछ शान्ति हो जाती है। हे नाथ, भार्या के समान दुःख की दूसरी दवा नहीं है।

[दमयन्ती के वचन सुनकर] नल ने कहा—प्रिये, तुम जो कहती हो सो ठीक है।
३० सहधर्मिणी स्त्री के पास होने पर सचमुच दुःख बहुत कुछ घट जाता है; किन्तु तुम अकारण इतनी शङ्का क्यों कर रही हो? मैं क्या तुम्हें छोड़े जा रहा हूँ! तुमने क्या यही समझ लिया है? प्रिये, तुम सच समझो, मैं अपने प्राणों को छोड़ सकता हूँ, पर तुम्हें किसी तरह नहीं छोड़ सकता। दमयन्ती ने कहा—नाथ, अगर आप मुझे छोड़ने का निश्चय नहीं कर बैठे हैं तो मुझे क्यों विदर्भ देश की राह दिखा रहे हैं? मैं इसका कारण कुछ भी नहीं ठीक कर सकी, इसी से अत्यन्त व्याकुल हो रही हूँ। आपके चित्त पर कलि का असर है, उसे देखते आपका मुझे छोड़ जाना कुछ असम्भव नहीं जान पड़ता। मतलब यह कि आपको बारम्बार विदर्भ देश की राह दिखाते देखकर मेरा दिल धड़क रहा है; अथवा यदि आपका यह अभिप्राय हो कि मैं अपने मा-बाप के पास रहूँ, तो चलिए हम दोनों वहाँ चलें। आप वहाँ चलेंगे तो
३६ विदर्भ-नरेश आपका खासा सन्मान करेंगे। आप वहाँ बड़े आदर और सुख से रहेंगे।

बासठवाँ अध्याय

नल का दमयन्ती को छोड़कर चल देना

नल ने कहा—प्रियतमे, तुम्हारे पिता के जितना ऐश्वर्य है उतना मेरे भी था। मैं पहले वहाँ (ससुराल में) बड़े ठाट-बाट के साथ जाया करता था, जिसे देखकर तुम भी प्रसन्न होती थीं। इस समय घोर दुर्दशा में पड़कर मैं अत्यन्त दीन-हीन हो रहा हूँ। अब जो मैं वहाँ मलिन वेष से जाऊँगा तो तुम्हारे कोमल हृदय में भी चोट लगेगी। इसलिए हे प्रिये, मैं इस दशा में किसी तरह वहाँ न जाऊँगा। इस तरह नल ने दमयन्ती को दिलासा दिया। अब दमयन्ती

दो एक पग जाने पर। दमयन्ती के मुखचन्द्र को याद करके वे फिर रानी के पास लौट आए—पृ० ८१६

की ही आधी धोती नल ने भी पहनी। एक ही कपड़े से गुज़र करते हुए दोनों भूख और प्यास से अत्यन्त व्याकुल होकर उस वन में फिरने लगे। कुछ समय तक घूमने से थककर दोनों जने वन के एक एकान्त स्थान में पहुँचे। वहाँ प्रिया के साथ पृथ्वी पर बैठकर [अपनी दुर्दशा के सम्बन्ध में तरह-तरह की चिन्ताएँ करते-करते] नल लेट रहे। दमयन्ती भी उनके पास लेट गई। वह लेटते ही थकन के मारे अचेत हो गई; किन्तु ऐसी दुर्दशा में पड़ने के कारण नल के हृदय में लगातार शोक की आग जल रही थी, इस कारण उनकी आँख तुरन्त खुल गई। अपने पास सोती हुई दमयन्ती को देखकर नल सोचने लगे कि अब मैं क्या करूँ। [व्यर्थ वन में घूमने से ही क्या होगा ?] तो फिर क्या आत्महत्या कर लेने में भला है ? अथवा दमयन्ती को यहीं छोड़कर मैं अकेला घूमता फिरूँ ? किन्तु दमयन्ती सदा मेरे ऊपर अपना १० निष्कपट प्रेम प्रकट किया करती है और अब तक उसने मेरे ही कारण इतने क्लेश सहे हैं। जो हो, इस दशा में इसे छोड़ने से यह, शायद, अपने आत्मीय स्वजनों के पास पहुँच जाय और सुख से रहे। यह पतिव्रता स्त्री जैसी तेजस्विनी है, उससे निश्चय है कि कोई इसके सतीत्व को भ्रष्ट नहीं कर सकेगा। यों सोचकर नल ने अन्त में दमयन्ती को छोड़ जाना ही अच्छा समझा।

कलियुग के प्रभाव से जिनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी वे नल पतिव्रता पत्नी को छोड़ने के लिए तैयार हो गये। अपने को नङ्गा और प्रिया को केवल एक धोती पहने देखकर उन्होंने आधी धोती फाड़ लेने का विचार किया। दमयन्ती को जगाकर उसकी आधी धोती लेना ठीक नहीं जान पड़ा। इधर-उधर देखने पर नल को पास ही एक नङ्गी तलवार पड़ी मिल गई। उन्होंने उसी से दमयन्ती की आधी धोती काट ली। उसी आधी धोती को पहनकर राजा नल, दमयन्ती को अकेली सोती छोड़कर, वहाँ से चल दिये। दो-एक पग जाने पर दमयन्ती के मुखचन्द्र को याद करके वे फिर रानी के पास लौट आये। उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। वे कहने लगे कि हाय! पहले सूर्य २० जिसे देख नहीं सकते थे, पवन जिसे छू नहीं सकता था, वही अलौकिक-सुन्दरी इस समय पृथ्वी पर अनाथ की तरह पड़ी हुई है। नींद खुलने पर यह किस तरह इस आधे कपड़े से अपनी लज्जा की रक्षा करेगी ? जङ्गली जीव-

जन्तुओं से भरे अत्यन्त भयङ्कर वन में यह सुन्दरी पागल की तरह अकेली घूमेगी; अथवा पति-व्रता स्त्री के लिए चिन्ता काहे की? बारह आदित्य, आठ वसु, अश्विनीकुमार और मरुद्-गण इसकी रक्षा करेंगे।

कलियुग के प्रभाव से राजा नल अत्यन्त मूढ़ पुरुष की तरह यों कहकर, अपनी प्रिया को अनाथ करके, छोड़ जाने को तैयार हुए। एक ओर कलियुग का प्रभाव था और दूसरी ओर प्रिया का सच्चा प्रेम। दोनों एक साथ ही नल के हृदय में आन्दोलन करके अपनी-अपनी ओर उनको खींचने लगे। वे कलियुग के प्रभाव से कभी अपनी प्रेयसी को छोड़कर दो-एक पग आगे जाते थे, और फिर वैसे ही प्रिया के प्रेम से खिंचकर लौट आते थे। अन्त को कलियुग की ही जीत हुई। राजा नल मन में दमयन्ती की आगे की अवस्था को सोचकर विलाप करते हुए चल दिये। २६

तिरसठवाँ अध्याय

दमयन्ती का विलाप। उसे लीलने को अजगर का मुँह फैलाना; शिकारी के द्वारा उसकी मृत्यु; नीयत बिगड़ने पर शिकारी का भी नाश

बृहदश्व कहते हैं—नल जब अपनी प्रेयसी को छोड़कर चल दिये तब थकावट हट जाने पर दमयन्ती की आँख खुली। उसने इधर-उधर देखकर जब नल को न पाया तब वह शोक के मारे

रोते-रोते यों विलाप करने लगी कि हा नाथ! हा महाराज! हा स्वामी! आपने क्या दोष देखकर मुझे छोड़ दिया? मैं मारी गई; मैं विशेष रूप से नष्ट हो गई। मैं इस भयानक वन में अकेली डर रही हूँ। महाराज, आप सत्यवादी और धर्मात्मा होकर भी मुझे सोते में अकेली छोड़कर कैसे चल दिये? नाथ, मैंने भरसक आपकी सेवा करने में दमभर के लिए भी कुछ कसर नहीं रक्खी। फिर क्यों आपने मुझे छोड़ दिया? हा जीवितेश्वर! पहले लोकपालों के सामने जो आपने प्रतिज्ञा की थी, इस समय वह आपका सत्य-व्रत कहाँ गया? हे पुरुषश्रेष्ठ, मनुष्य के लिए अकालमृत्यु का विधान नहीं है। इसी कारण मैं आपसे अलग होकर अब तक जी रही हूँ। नाथ, दिल्लगी हो चुकी। अब दर्शन देकर मेरे प्राणों की रक्षा कीजिए। मैं सचमुच बहुत डर रही हूँ। महा-

राज, मैंने आपको अभी-अभी देखा है। वह फिर आप देख पड़ रहे हैं। आप लताओं के कुञ्ज और वृक्षों की आड़ में छिपकर मुझे उत्तर क्यों नहीं देते ? हे राजेन्द्र, आप कैसे निठुर हैं। मैं आपके लिए इतना विलाप कर रही हूँ, तो भी उत्तर देकर आप मुझे तसल्ली नहीं देते ! हाय राजन् ! मैं अपने लिए या अन्य किसी कारणवश नहीं रो रही हूँ। आप इस अभागिन को छोड़कर अकेले कैसे रहेंगे ? केवल यही सोचकर व्याकुल हो रही हूँ। हाय महाभाग ! आप भूख-प्यास से व्याकुल होकर, थककर, शाम को मुझे पेड़ के नीचे न देखकर क्या करेंगे ? १०

राजा भीम की बेटी दमयन्ती यों अनेक प्रकार से विलाप और सन्ताप करते-करते बहुत ही खीझकर, नल पर क्रोध करके, वन में इधर-उधर दौड़ने लगी। वह कभी गिर पड़ती थी, कभी उठ खड़ी होती थी, कभी छिप जाती थी और कभी डरकर गला फाड़कर रोने-चिल्लाने लगती थी। इस प्रकार पतिव्रता दमयन्ती शोक में डूबकर बारम्बार ज़ोर-ज़ोर से साँसें लेने लगी। फिर कहने लगी—राजन्, जिसके कारण आप ऐसा दारुण क्लेश भोग रहे हैं उसे इससे भी बढ़कर क्लेश भोगना पड़ेगा। जिस पापबुद्धि ने आप ऐसे निष्पाप पुरुष को ऐसी दुर्दशा में डाल दिया है उसे जीवन भर इस घोरतर पाप का बोझ लादना पड़ेगा।

निषध-नरेश नल की पत्नी दमयन्ती तरह-तरह से विलाप और सन्ताप करते-करते रोती हुई उस हिंसक जङ्गली जानवरों से पूर्ण वन में इधर-उधर घूमकर अपने स्वामी को खोजने लगी।

रानी दमयन्ती पति के विरह से पीड़ित, कुररी (एक चिड़िया) की तरह, आँसू बहाकर रोते-रोते पगली सी जङ्गल में घूम रही थी। इसी समय बहुत ही भूखा और बहुत ही बड़ा एक अजगर मुँह फैलाकर उसे लील लेने के लिए तैयार हुआ। राहु के ग्रसे हुए चन्द्रमा की तरह अत्यन्त मलिन होकर दमयन्ती अपने स्वामी के लिए बारम्बार रो रही थी। इस कारण इधर सिर पर खड़ी मौत के समान अजगर को देखकर वह डरी नहीं। तब भी वह केवल नल के लिए शोक प्रकट करती हुई कहने लगी—हाय नाथ ! इस निर्जन वन में भयङ्कर विषैला अजगर मुझे अकेली पाकर ग्रसने के लिए आ रहा है। आप इसे रोकने की चेष्टा अब तक क्यों नहीं करते ? हाय स्वामी ! मैं जब आपको याद आऊँगी तब मुझे न देखकर आपकी क्या दशा होगी। हाय जीवनेश्वर ! मुझे अकेली इस दुर्गम वन में छोड़कर आप कैसे चले गये ? हाय नाथ ! एक बार सोचकर देखिए, आप जब शाप से छुटकारा पाकर फिर अपने ऐश्वर्य को प्राप्त करेंगे, तब कौन आपके समीप रहकर आपके मन के माफ़िक़ सेवा-टहल करेगी ? २०

दमयन्ती इस प्रकार विलाप और सन्ताप कर रही थी कि इसी अवसर में शिकार के लिए आये हुए व्याध ने उसके रोने का शब्द सुना। वह शब्द सुनकर दमयन्ती के पास तुरन्त आ गया। उसने देखा, विशाल नेत्रोंवाली स्त्री को लीलने के लिए एक भयानक अजगर मुँह फैलाये चला आ रहा है। तब उस शिकारी ने चटपट एक पैनी धार के हथियार से

अजगर का मुँह फाड़ डाला। उस अजगर को मारकर शिकारी ने दमयन्ती को मौत के मुँह से बचा लिया। फिर जल से दमयन्ती का शरीर धोकर उसने धैर्य देते हुए पूछा—सुन्दरी, तुम किसकी स्त्री हो? यहाँ तुम अकेली किसलिए आईं? ऐसी बुरी दशा तुम्हारी क्यों हुई? ३०

उस शिकारी के पूछने पर दमयन्ती ने आदि से अन्त तक सब हाल कह सुनाया। नीच-प्रकृति शिकारी आधी धोती पहन रही दमयन्ती के अलौकिक सौन्दर्य को देखकर मोहित हो गया। दमयन्ती के उभरे हुए स्तन, ऊँचे सुन्दर नितम्ब, पूर्णचन्द्र के समान मुखमण्डल, मनोहर भौंहों से शोभायमान नेत्र देखकर और मधुर वाणी सुनकर कामदेव के वश हो गया। वह अनेक प्रकार के मधुर वचनों से दमयन्ती को ढाढ़स बँधाने लगा।

पतिव्रता दमयन्ती दुष्ट शिकारी के इरादे को जानकर क्रोध के मारे काँप उठी। यह देखकर दुष्ट शिकारी ज़बर्दस्ती करने को उतारू हुआ; किन्तु दमयन्ती को जलती आग के समान तेजवाली देखकर वह रुक गया। राजा भीम की कन्या दमयन्ती ऐसे विषम सङ्कट में पड़कर दुष्ट शिकारी को शाप देती हुई कहने लगी—यदि मैंने नल के सिवा किसी अन्य पुरुष को कभी प्रेम की दृष्टि से न देखा हो तो यह दुष्ट शिकारी अभी मर जाय।

पतिव्रता दमयन्ती के यों कहते ही वह शिकारी उसी घड़ी, आग से जले वृक्ष के समान, पृथ्वी पर गिरकर मर गया। ३९

चौंसठवाँ अध्याय

दमयन्ती को ऋषियों के दर्शन होना; फिर बटोहियों से भेंट

बृहदश्व कहते हैं—कमलनयनी दमयन्ती उस शिकारी को इस तरह नष्ट करके झींगुरों की झनकार से गूँजते हुए वन में अकेली भटकने लगी। भयानक आकार के सैकड़ों जङ्गली जीव उस वन में थे। कहीं पर सिंह, बाघ, भैंसे, भालू, चीते, हाथी, रुरु और अन्य अनेक प्रकार के

मृगों के झुण्ड विचर रहे थे। कहीं पर अनेक प्रकार के पक्षी वृक्षों की डालियों पर बैठे थे। कहीं पर म्लेच्छ जाति के दस्यु (डाकू) दल बाँधे हुए रहते थे। बीच-बीच में अनेक प्रकार के वृक्ष थे। एक ओर शाल, धव, ताल, तमाल, आम, प्रियाल, बेत, बेल, पद्मक, आँवला, पाकर, गूलर आदि बड़े-बड़े वृक्ष खड़े थे। दूसरी तरफ़ बाँस, पीपल, तेंदू, इंगुद, ढाक, अर्जुन, अरिष्ट, स्यन्दन, शाल्मली, बेर, जामुन, लोध्र, खैर, बरगद, खजूर, हड़, बहेड़ा आदि के वृक्ष थे। कहीं पर पर्वतमाला थी, जो गेरू आदि अनेक पहाड़ी धातुओं से विचित्र रङ्गोंवाली हो रही थी। कहीं पर लताओं से घिरे हुए मनोहर कुञ्ज थे। कहीं पर वन में पक्षी मधुर शब्द कर रहे थे। कहीं पर बावलियाँ, तालाब और झरने थे। कहीं-कहीं भयानक रूपवाले पिशाच, नाग और राक्षस थे। कहीं-कहीं पर कन्दराएँ थीं। कहीं पर नदी [प्रबल वेग से बह रही] थी। कहीं पर भैंसे, जङ्गली सुअर, भालू और साँप इधर-उधर घूम रहे थे। पति के वियोग से व्यथित दमयन्ती [पति के शोक में पगली सी] ऐसे भयानक वन में भी अकेली निडर होकर इधर-उधर पति को खोज रही थी। ११

इसके बाद दौड़-धूप से थककर वह एक शिला पर बैठ गई और नल के शोक में विह्वल सी होकर ऊँचे स्वर से विलाप करने लगी कि हाय नाथ! हा दयित! इस भयानक निर्जन वन में मुझे अकेली छोड़कर तुम कहाँ चले गये? हा नाथ! तुमने अब तक अश्वमेध आदि बहुत दक्षिणावाले यज्ञ किये हैं। [भ्रम से भी कभी झूठ बोलकर तुमने किसी को धोखा नहीं दिया।] इस समय क्या मुझ अभागिन के ही भाग्य के दोष से तुमने यह कपट-व्यवहार मुझसे किया? हाय नाथ! एक बार सोचकर देखो, ब्याह के समय क्या कहकर तुमने मुझे अङ्गीकार किया था? हंसों की बात को भी एक बार याद करके तुम्हें देखना चाहिए। राजन्, केवल सत्य ही अच्छी तरह चारों वेद पढ़ने के तुल्य है। इस कारण इस समय तुमको पहले की प्रतिज्ञा सच करनी चाहिए। हाय प्राणनाथ! तुम्हारी प्यारी स्त्री मैं [तुम्हारे विरह से दुखी होकर] इस भयानक वन में मरने को उतारू हूँ। भला तुम मुझसे बोलते क्यों नहीं? हे नाथ! वह देखो, अत्यन्त भयानक रूपवाला सिंह अपना कराल मुँह फैलाकर मुझे लीलने के लिए दौड़ा आ रहा है। तुम आकर इसको क्यों नहीं रोकते? नाथ, तुम तो पहले कहा करते थे कि तू मुझे प्राणों से भी बढ़कर प्यारी है; फिर इस समय अपने उस कथन के विरुद्ध काम क्यों कर रहे हो? हा प्राणवल्लभ! तुम्हीं मेरे जीवन के आधार हो। तुम्हारी प्यारी दमयन्ती विरह में पगली की तरह जङ्गल में रोती हुई तुमको ढूँढ़ रही है। इस समय इस अभागिन से तुम बोलते क्यों नहीं? हा नाथ! मैं केवल आधी धोती पहने अपने झुण्ड से बिछुड़ी हुई कुररी की तरह मलिन वेश से जगह-जगह तुमको खोज रही हूँ। यह जानकर भी तुम क्यों नहीं आकर अपने मधुर वचनों से मुझे दिलासा देते? हा नाथ! हा दमयन्ती-वल्लभ! तुम्हारी पतिव्रता भार्या २०

अकेली इस निर्जन वन में रोती हुई बारम्बार तुमको पुकार रही है। तुम उत्तर देकर क्यों नहीं अपनी दासी को सान्त्वना देते? हे पुरुष-श्रेष्ठ! मुझे इस पहाड़ में तुम्हारा सर्वाङ्गसुन्दर शरीर नहीं देख पड़ता। हा नाथ! इस भयानक वन में बाघ और भालू भरे हुए हैं। इसमें तुम कहाँ पर बैठे हो या लेटे हो या घूम रहे हो, यह मैं कुछ भी निश्चय नहीं कर पाती। हाय नाथ! मैं किससे पूछूँ कि 'तुमने उन महाराज नल को देखा है जिनके कमल-सदृश नेत्र हैं, और ३० जो शत्रुओं का नाश कर देते हैं?' यहाँ मुझसे कौन पूछनेवाला है कि तू किसे ढूँढ़ रही है? कौन मुझे तुम्हारी ख़बर देकर मेरे जलते हुए हृदय को ठण्डा करेगा? यह भयानक सिंह कराल मुँह फैलाकर मेरे सामने आ रहा है। चलूँ, डर छोड़कर इसी से पूछूँ।

[यों निश्चय करके दमयन्ती सिंह के पास गई।] वह उससे पूछने लगी—हे मृगराज, तुम इस वन में बसनेवाले पशुओं के राजा हो। मैं विदर्भराज राजा भीम की बेटी हूँ। निषध देश के राजा महाराज नल मेरे स्वामी हैं। मेरा नाम दमयन्ती है। इस समय पति के वियोग के शोक से व्याकुल होकर मैं उन्हीं को खोज रही हूँ; किन्तु उनके दर्शन नहीं पाती। तुमने जो महात्मा नल को कहीं देखा हो तो ख़बर देकर मेरे प्राण बचाओ; और, नहीं तो मुझे लीलकर मेरे सब सन्ताप दूर कर दो। [सिंह अपनी इच्छा के अनुसार दूसरी तरफ़ चला गया।] तब दमयन्ती बिलकुल पगली सी होकर कहने लगी—हाय! सिंह ने मेरे विलाप पर ध्यान ही नहीं दिया: अब इस मीठे जलवाली समुद्रगामिनी नदी के पास जाऊँ; अथवा इस पर्वतराज को अपने दुःख का हाल सुनाकर नल का पता पूछूँ। इस पहाड़ के अनेक रङ्गवाले ऊँचे-ऊँचे शिखर हैं; इसमें अनेक धातुएँ और तरह-तरह के पत्थर हैं; यह पर्वत वन के बीच में ध्वजा की तरह ऊँचा है और इसमें सिंह, हाथी, रीछ, हिरन, सुअर आदि रहते हैं। इसमें तरह-तरह के पक्षी बोलते रहते ४० हैं; ढाक, अशोक, मौलसिरी, पुन्नाग, कनैर, धव और प्लक्ष के फूले हुए पेड़ हैं और इस पर ऐसी नदियाँ बहती हैं जिनके किनारों पर पक्षी किलोलें करते हैं तथा जिनमें चट्टानें हैं। उस

पर्वत को सम्बोधन करके दमयन्ती ने कहा—हे पर्वतराज, तुम्हें नमस्कार है। भगवन्, मैं राजा की कन्या और राजा की स्त्री हूँ। मेरा नाम दमयन्ती है। मैं पति से बिछुड़ी हुई, अनाथ, दुखी और अपने पति को खोजती हुई तुम्हारे पास आई हूँ। तुमको प्रणाम करके एक बात पूछती हूँ। उत्तर देकर मेरे प्राणों की रक्षा कीजिए। विदर्भ देश के राजा महारथी भीम मेरे पिता हैं। वे चारों वर्णों के रक्षक हैं। उन्होंने बहुत-बहुत दक्षिणा देकर राजसूय और अश्वमेध आदि बड़े-बड़े यज्ञ किये हैं। वे सब नरेशों में प्रधान, ब्राह्मणों की सेवा करनेवाले, अच्छे चरित्र-वाले, सत्यवादी, द्वेष और ईर्ष्या से रहित, पराक्रमी और धर्मज्ञ हैं। भगवन्, निषध-नरेश आर्य वीरसेन मेरे ससुर हैं और वेद-वेदाङ्ग के ज्ञाता पुण्यश्लोक महाराज नल मेरे स्वामी हैं। उन्होंने ५० यज्ञ किये और दान दिये हैं; वे योद्धा और अच्छे शासक हैं। हे पर्वतराज, मैं इस समय उनके लापता हो जाने से इधर-उधर उन्हीं को खोज रही हूँ। हे पर्वतराज, तुमने क्या उन महात्मा को देखा है? हाय! मैं शोक से विह्वल होकर तुम्हारी कन्या के समान तुम्हारे पास आई हूँ, परन्तु न तो तुमने एक बात ही की और न मुझे धीरज ही दिया।

हे सत्यवादी और दृढ़व्रत महाराज नल, यदि तुम इस वन में हो तो मुझे दर्शन दो। हा नाथ! फिर भी अब क्या कभी तुम्हारी मीठी बोली सुनूँगी? कब तुम मुझे वैदर्भी कहकर पुकारोगे? कब तुम्हारी वेदों का अनुसरण करनेवाली, सब दुःखों को दूर करने-वाली वाणी सुनकर मैं अपने कानों को धन्य बना सकूँगी! हे धर्म-वत्सल, इस डरी हुई अबला को ढाढ़स दो।

राजकुमारी दमयन्ती शोक से व्याकुल होकर पर्वतराज से बारम्बार यों कहती हुई अपना दुःख प्रकट करने लगी। फिर वहाँ से उत्तर की ओर चली। इस प्रकार तीन दिन तक दिन- ६० रात चलकर, कुछ दूर जाने पर, दमयन्ती ने शान्ति से पूर्ण एक मनोहर आश्रम देखा। उस आश्रम के वन में अनेक प्रकार के फूले-फले मनोहर वृक्ष देख पड़े। वहाँ वशिष्ठ, भृगु और अत्रि के समान महातेजस्वी तपस्वी, नियम धारण किये हुए, पवित्र भाव से तप कर रहे थे। कोई जल, कोई वायु और कोई केवल सूखे पत्ते खाकर धर्म का अनुष्ठान कर रहा था। वे सभी जितेन्द्रिय और वल्कल या मृग की खाल पहने हुए थे। अनेक प्रकार के मृग और वानर बेखटके विश्वास के साथ इधर-उधर घूम रहे थे।

सुन्दर भौंह, सुन्दर केश, सुन्दर नितम्ब, उभरे हुए स्तन, चन्द्रतुल्य मुख आदि अङ्गों से शोभित और अनुपम रूप-लावण्यवाली दमयन्ती तपस्वियों के उस आश्रम में गई। वहाँ कुछ दिलासा पाकर दमयन्ती ने ऋषियों को प्रणाम किया। फिर नम्रतापूर्वक सिर झुकाकर वह एक ओर खड़ी हो गई। तपस्वियों ने दमयन्ती से कुशल-प्रश्न करके उसका विधिपूर्वक सत्कार किया और फिर आसन देकर बैठने के लिए कहा। ऋषियों ने कहा—कहो, हम लोग

तुम्हारा क्या काम कर दें ? सुन्दरी दमयन्ती ने पूछा—हे महाभाग तपस्वियो, आप लोग सर्वथा कुशलपूर्वक हैं न ? तप, जल, अग्नि, धर्म, मृग और पक्षी तो निर्विघ्न हैं न ?

दमयन्ती के कुशल-प्रश्न का यथोचित उत्तर देकर तपस्वियों ने कहा—हे भद्रे, हे यशस्विनी, हे सुन्दरी, तुम कौन हो ? तुम्हारा मतलब क्या है ? तुम्हारा असाधारण रूप और
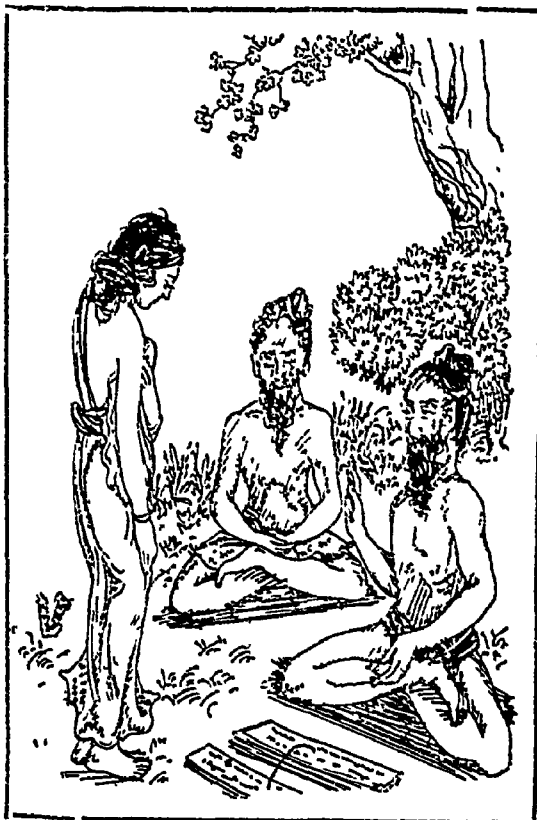
कमनीय कान्ति देखकर हमें बड़ा आश्चर्य हुआ है। पुत्री, धीरज धरो। अब रोओ मत। हे कल्याणी ! तुम इस वन की, इस पर्वत की, अथवा हम लोगों की अधिष्ठात्री देवी हो। हे त्रिभुवनसुन्दरी, तुम अपना ठीक और पूरा परिचय देकर हमारा सन्देह दूर करो।

दमयन्ती ने कहा—हे तपस्वियो ! मैं पर्वत, नदी या वन, किसी की अधिष्ठात्री देवी नहीं हूँ। हे मुनियो, आप लोग मुझ अभागिन को मानवी समझिए। अब मैं विस्तार के साथ अपना वृत्तान्त कहती हूँ, सुनिए। मैं विदर्भ देश के राजा भीम की बेटी हूँ। निषध देश के राजा, बुद्धिमान्, यशस्वी, वीर, संग्राम में सदा विजय प्राप्त करनेवाले, देवताओं की आराधना में तत्पर, ब्राह्मणों पर अनुराग रखनेवाले, निषध-वंश के रक्षक, महातेजस्वी, महाबली, सत्यवादी, धर्मज्ञ, प्राज्ञ, सत्यसन्ध, ब्रह्मनिष्ठ, देवपरायण, श्रीमान्, शत्रुदमन, इन्द्र के समान तेजस्वी, पूर्णचन्द्र के समान कान्तिशाली, प्रधान-प्रधान यज्ञों के करनेवाले, वेद-वेदाङ्ग के ज्ञाता, राजर्षि नल की मैं स्त्री हूँ। मेरा नाम दमयन्ती है। कपट में प्रवीण, क्रूर-हृदय, पाँसों के खेल में चतुर, अनार्य (नीच प्रकृतिवाले) ने सत्यपरायण धर्मात्मा राजा नल को जुआ खेलने के लिए बुलाकर जुए में उनका राज्य और धन सब ले लिया। मैं उनके साथ वन में आई थी। यहाँ वे मुझे अकेली छोड़कर चले गये। मैं पति के दर्शन की इच्छा से पर्वत, नदी, वन, सरोवर आदि स्थानों में उन्हें खोजती हुई व्याकुल हृदय से इधर-उधर घूम रही हूँ। हे तपस्वियो, आप लोगों ने क्या अपने इस तपोवन में राजा नल को आते देखा है ? मैं और भी कुछ समय तक दिन-रात वनों में अकेली घूमकर उनका पता लगाऊँगी। जो जीवनेश्वर के दर्शन न पाऊँगी तो प्राणत्याग करके एकदम सब झगड़ा मिटा दूँगी। पति से बिछुड़ी हुई मुझे जीवन से क्या प्रयोजन ? मैं किसी तरह पति के वियोग की व्यथा न सह सकूँगी।

तब सत्यदर्शी तपस्वियों ने वन में अकेली रोती हुई दमयन्ती का विलाप सुनकर कहा—हे शुभे, आगे तुमको कल्याण और सुख प्राप्त होगा। हम लोग तप के प्रभाव से अपनी दिव्य दृष्टि के द्वारा देख रहे हैं कि तुम बहुत जल्द अपने स्वामी से मिलोगी। तुम शीघ्र ही देखोगी कि तुम्हारे स्वामी पुण्यश्लोक निषध-राज नल, सब पाप-सन्ताप से छुटकारा पाकर, फिर पहले की तरह अतुल ऐश्वर्य के अधिकारी हुए हैं। सिंहासन पर बैठकर वे नीति के अनुसार राजधर्म का पालन करेंगे। वे प्रजा के पालन, दस्युओं के दमन और भाई-बन्धुओं की सुख-समृद्धि बढ़ाने का यत्न करेंगे। आश्रमवासी ऋषि लोग दमयन्ती को यों ढाढ़स बँधाकर अग्निहोत्र और आश्रम आदि सहित एकाएक अन्तर्द्धान हो गये।

भीम की कन्या दमयन्ती अकस्मात् उन मुनियों को आश्रमसहित अन्तर्द्धान होते देखकर सोचने लगी कि अब यह और क्या अद्भुत घटना हुई। मैंने जागते-जागते क्या यह स्वप्न देखा! वह आश्रम कहाँ है? पवित्र जलवाली वह नदी कहाँ है? वे सुन्दर वृक्ष कहाँ गये जिनमें फल और फूल लगे हुए थे? जिन ऋषियों से मैं अभी बातचीत कर रही थी वे सब कहाँ गये?

कुछ समय तक अचम्भा करके दमयन्ती यों सोचा की और फिर पति के शोक से व्याकुल हो उठी। उसका चेहरा मलिन और फीका हो गया। रोते-रोते वहाँ से कई पग आगे चलकर दमयन्ती ने एक अशोक का वृक्ष देखा। वह वृक्ष फूलों से लद रहा था। उसके ताँबे के रङ्ग के नये पल्लव धीमी हवा से हिल रहे थे। अनेक प्रकार के पक्षी उसकी छोटी-बड़ी डालियों पर बैठे हुए मधुर स्वर से बोल रहे थे। १००

शोक से व्याकुल दमयन्ती, आँखों में आँसू भरे, गद्गद स्वर से विलाप करती हुई अशोक के वृक्ष के पास पहुँची और कहने लगी—आहा! यह अशोक का वृक्ष अपनी छोटी-बड़ी डालियाँ फैलाकर वन की कैसी शोभा बढ़ा रहा है। इसे एकाएक देखने से ऊँचे शिखरों से शोभित पर्वत का धोखा होता है। हे प्रियदर्शन अशोक के वृक्ष, चटपट मेरे शोक-सन्ताप को दूर कर दो। तुमने क्या मेरे प्राणपति प्रसन्नवदन निषधराज को इधर आते देखा है? अपने सुकुमार शरीर को आधी धोती से ढँककर वे इसी वन में आये हैं। हे अशोक, तुम वह यत्न करो जिससे मैं तुम्हारे पास से अशोक (शोक-रहित) होकर जा सकूँ। झटपट मेरा शोक मेटकर अपने नाम को सार्थक करो।

श्रेष्ठ स्त्री, राजा भीम की कन्या, दमयन्ती पति के शोक से व्याकुल होकर अशोक वृक्ष के पास से आगे बढ़ी। वह इधर-उधर राजा नल को खोजती हुई एक अत्यन्त भयानक स्थान में आ पहुँची। वहाँ अनेक प्रकार के वृक्ष, नद, नदी, पर्वत, मृग, पक्षी और कन्दरा आदि अद्भुत वस्तुएँ उसने देखीं। इस प्रकार कुछ दूर आगे चलकर वह एक ऊँची लहरों से शोभित स्वच्छ जलवाली नदी के किनारे पहुँची। उसके दोनों ओर बेत और झाऊ के वन थे। क्रौञ्च, कुरर, ११०

सारस, चक्रवाक आदि जलचर पक्षी मधुर स्वर से गीत सा गाते हुए जल के ऊपर उड़-उड़कर विचर रहे थे। कछवे, मछली, मगर आदि जलजन्तु मज़े से जल में कलोलें कर रहे थे। दमयन्ती ने नदी के किनारे खड़े होकर देखा कि हाथी, घोड़े आदि साथ लिये हुए एक बटोहियों का झुण्ड उस नदी को पार कर रहा है। दमयन्ती उन मुसाफ़िरों को देखकर उन्हीं के बीच में मिल गई। पति के शोक से विह्वल, आधी धोती पहने हुए, दुर्बल और धूल में भरी हुई दमयन्ती पगली सी देख पड़ी। अतएव कोई मुसाफ़िर डर के मारे एकाएक भाग खड़ा हुआ, कोई चिन्तित हो गया, कोई चिल्ला उठा, कोई तरह-तरह के सन्देह करके दमयन्ती के ऊपर अनेक प्रकार के दोषों का आरोप करने लगा। कोई हँसी-ठट्ठा करने लगा। उनमें कुछ भले आदमी भी थे। दमयन्ती के रङ्ग-ढङ्ग देखकर उन्हें दया आई; उन्होंने उसे कोई दुखिया समझा। उनमें से एक-आध ने पूछा—हे कल्याणी, आप कौन हैं? किसकी स्त्री हैं? इस वन में अकेली किसे खोज रही हैं? आपकी दशा देखकर हमें बड़ा दुःख हो रहा है। अपना परिचय देकर हमारी उत्कण्ठा दूर कीजिए। आप क्या मानवी हैं? या इस पर्वत, नदी अथवा इस दिशा की अधिष्ठात्री देवी हैं? या यक्ष अथवा राक्षस की कन्या हैं? जो हो, हम आपके शरणागत हैं। शीघ्र अपना परिचय देकर हमारे हृदय का सन्देह दूर कीजिए। [हम सब बटोही हैं।] आप
२० ऐसा कीजिए कि राह में हमें किसी विघ्न का सामना न करना पड़े।

पति के शोक से पगली सी बनी दमयन्ती ने उनसे कहा—बटोहियो, तुम बालक-बूढ़े-जवान, जो कोई यहाँ हो, सब मेरा परिचय सुनो। मैं मनुष्य-स्त्री, राजा की पत्नी और राजकुमारी हूँ। विदर्भ देश के महाराज भीम मेरे पिता हैं और निषध देश के राजा महाराज नल मेरे स्वामी हैं। मैं इस समय अकेली उन्हें खोजती हुई घूम रही हूँ। अगर तुममें से किसी ने उन महात्मा को देखा हो तो चटपट उनकी ख़बर दो।

दमयन्ती के यों कहने पर शुचि नाम के एक व्यक्ति ने कहा—भद्रे, मैं ही बटोहियों के इस दल का मुखिया हूँ। नल नाम का कोई आदमी मुझे कहीं नहीं देख पड़ा। मैंने इस वन में अनेक प्रकार के पक्षी देखे हैं। भैंसा, बाघ, भालु, मृग, हाथी और तरह-तरह के अनेक जीव-जन्तु भी देखे हैं; किन्तु इस निर्जन वन में तुम्हारे सिवा और किसी मनुष्य को नहीं देखा। ख़ैर चाहे जो हो, यक्षराज मणिभद्र हम पर प्रसन्न हों।

तब दमयन्ती ने उन बटोहियों से पूछा—तुम लोग कहाँ जाओगे? उन्होंने कहा—
१३२ हम लोग लाभ की इच्छा से चेदि देश के राजा सुबाहु के राज्य में जा रहे हैं।

पैंसठवाँ अध्याय

बटोहियों के साथ दमयन्ती का चेदि राज्य में जाना

बृहदश्व कहते हैं—पति के दर्शनों के लिए उत्सुक, सर्वाङ्गसुन्दरी दमयन्ती बटोहियों के वचन सुनकर उन्हीं के साथ हो ली। वे लोग कुछ दिनों तक चलकर पद्म-सौगन्धिक नाम के एक सरोवर के पास पहुँचे। उस सरोवर के चारों ओर हरी-हरी घास लगी थी। मैदान में अनेक प्रकार के वृक्ष थे। वृक्षों में तरह-तरह के फल और फूल लगे हुए थे। अनेक प्रकार के [जलचर] पक्षी स्वादिष्ट निर्मल जल के ऊपर उड़-उड़कर विचर रहे थे। लगातार चलते-चलते [सामान लादनेवाले] मनुष्यों और वाहनों को थका हुआ देखकर बटोहियों ने उसी सरोवर के किनारे बैठकर विश्राम करने का निश्चय किया। वे लोग सरोवर के पश्चिम तट पर बैठकर सुस्ताने लगे।

धीरे-धीरे रात हो आई। चारों ओर घना अँधेरा छा गया। थके हुए बटोही तुरन्त लेटकर खर्राटे लेने लगे। इस तरह आधी रात के लगभग बीतने पर वन में सब जगह सन्नाटा छा गया। जिनके कपोलों पर मद बह रहा है उन हाथियों का एक झुण्ड इसी समय पहाड़ी नदी में जल पीने के लिए वहाँ पर आया। बटोहियों के पालतू हाथियों को देखते ही वे जङ्गली हाथी हमला करने के लिए उनकी तरफ़ झपटे। जङ्गली हाथियों के शरीर की रगड़ और चलने के वेग से बड़े-बड़े वृक्ष टूटकर और उखड़कर पृथ्वी पर गिरने लगे। इससे जङ्गली रास्ते बिगड़ गये। बटोही लोग सरोवर के रास्ते में ही पड़े हुए थे। अकस्मात्

१०

हाथियों के पैरों के नीचे पड़कर सैकड़ों मुसाफ़िर सोते में ही कुचलकर मर गये। जो जाग पड़े थे वे "हाय! हम मारे गये!" कहते हुए अपने प्राण बचाने के लिए इधर-उधर भागकर छिपने लगे। कोई हाथी की सूँड़ की लपेट में पड़कर और कोई पैरों-तले रौंदा जाकर मर गया। हाथियों की ऐसी भयानक मुठभेड़ में सैकड़ों ऊँट और घोड़े मर गये। यहाँ तक कि बहुत से मनुष्य प्राण लेकर भागते में आपस में टकरा-टकराकर गिर पड़े और कुचलकर मर गये।

उनमें से बहुत से महाविपत्ति देखकर अपनी जान बचाने के लिए पेड़ों पर चढ़ गये; किन्तु पहले से भी अधिक डर के मारे काँपते हुए वे ऊपर से गिर पड़े और मर गये। इस प्रकार जङ्गली हाथियों के हमला करने से लगभग सभी बटोही घायल हो गये और उनमें से अधिकांश मर गये। जङ्गल में घोर आर्त्तनाद और शोर-गुल होने लगा; चारों ओर सुन पड़ने लगा—हाय! कैसी भयानक आग जल उठी है; जल्द आकर हमारी रक्षा करो! हमारे ये धन और रत्नों के ढेर बिखरे पड़े हैं; इन्हें आकर उठाओ। यह सब धन हमारे लेखे बहुत ही साधारण है। इसे लो। कहाँ भागे जा रहे हो? इस प्रकार खेद-पूर्ण वचन कहकर, आर्त्त-नाद करते हुए, बटोही जान लेकर इधर-उधर भागने लगे।

लोगों के मरने और घायल होने से जो भयानक कोलाहल मचा, उससे दमयन्ती की आँख खुल गई। कमल-नयनी दमयन्ती पहले कभी न देखे हुए भयानक नर-नाश को देखकर
२० बहुत ही डरी और काँपती हुई उठ बैठी। उधर जो लोग इस दारुण विनाश से किसी तरह बच गये थे वे सब मिलकर परस्पर कहने लगे—यह विषम अनर्थ कैसे हुआ? इसका क्या कारण है? जान पड़ता है, मणिभद्र और यक्षराज श्रीमान् कुबेर की पूजा न करने से ही यह विपत्ति आई है; अथवा पहले सब विघ्नों को दूर करनेवाले देवताओं की आराधना न करने से ही यह विघ्न हुआ है। चलते समय हमने जो सगुन देखे थे उनका यह विपरीत फल है। यात्रा के समय ग्रह और नक्षत्र, सभी हमारे अनुकूल थे। मालूम नहीं, फिर क्यों ऐसी घोर दुर्घटना हुई।

उन मुसाफ़िरों में से कोई-कोई अपनी जातिवालों और भाई-बन्धुओं के नाश और धन की हानि होने से क्रोध के मारे कहने लगा—उस विकृत आकारवाली, पगली, अमानुषी स्त्री को हमने अपने दल के साथ होते देखा था। इसमें सन्देह नहीं कि उसी की माया से हमारी यह शोचनीय दशा हुई है। वह मायाविनी राक्षसी, मानुषी, पिशाची या यक्षिणी, चाहे जो हो, उसे अगर हम फिर देख पावें तो लकड़ी, घूँसे, पत्थर-ईंटे आदि मारकर मार डालें; क्योंकि उसी के कारण हमारा दल नष्ट हो गया है और हमारे भाई-बन्धु मारे गये हैं।

उनके ऐसे दारुण वचन सुनकर दमयन्ती बहुत ही डरी और लज्जित हुई। वह घबरा-कर, होनेवाले अनर्थ की आशङ्का से, झटपट भागकर वन के भीतर छिप रही और बारम्बार पछ-
३० ताती हुई कहने लगी—हाय! मुझ पर विधाता की कैसी कोप-दृष्टि है, कुछ समझ में नहीं आता। जहाँ जाती हूँ वहाँ मङ्गल की सम्भावना नहीं देख पड़ती। मैंने मन-वाणी-काया से कभी किसी का रत्ती भर भी अनिष्ट नहीं किया। फिर क्यों मुझे इतना कष्ट भोगना पड़ रहा है? मुझे अच्छी तरह जान पड़ रहा है कि यह सब मेरे पूर्वजन्म के घोर पापों का फल है। स्वामी का राज्य छिन गया। भाई-बन्धुओं और आत्मीयगण से पराभव हुआ। पति का वियोग हुआ।

अब अत्यन्त अनाथ की तरह वन में घूम रही हूँ। अपने पुत्र और कन्या को देख पाने की भी कोई आशा नहीं। अन्त को इस भयानक सांप आदि जीवों से भरे वन में बटोहियों का साथ भी छोड़ना पड़ा। यह क्या साधारण दुःख की बात है कि जो दैवसंयोग से इस निर्जन वन में मनुष्यों को पाकर इन मुसाफ़िरों के साथ हो ली तो वे भी मेरे अभाग्य-दोष से हाथियों की लड़ाई में मारे गये! "समय पूरा हुए बिना कोई नहीं मरता" यह शास्त्रकारों का कथन बिलकुल सच है। इस हाथियों की लड़ाई में लगभग सभी मारे गये; लेकिन मैं अभागिन पापिन जीती बच गई। जान पड़ता है, विधाता अभी तक मुझ पर रूठे ही हैं; सन्तुष्ट नहीं हुए। मालूम नहीं, अभी मुझे और कितने और कैसे कष्ट भोगने पड़ेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि सुख और दुःख सब दैव के अधीन है। मैंने बचपन में भी मन-वाणी-काया से कभी किसी का कुछ अनिष्ट नहीं किया; फिर भी मुझे यह दारुण क्लेश भोगना पड़ता है। जान पड़ता है, अपने ४० स्वयंवर की सभा में आये हुए लोकपालों को छोड़कर मैंने जो महाराज नल को पसन्द किया, इसी से कुपित होकर वे देवता बारम्बार मुझे कष्ट दे रहे हैं। पतिव्रता दमयन्ती इस प्रकार मन में विलाप और चिन्ता करने लगी।

इधर मरने से बचे हुए मुसाफ़िर भाई, पिता, पुत्र, बन्धु-बान्धव आदि के नाश से अत्यन्त शोकाकुल होकर वहाँ से चल दिये। उनमें कुछ वेद-पाठी ब्राह्मण भी थे। शोक से व्याकुल दमयन्ती क्या करती? लाचार वह भी कुछ देर में उन ब्राह्मणों के पीछे-पीछे जाने लगी। इस प्रकार दिन भर चलकर अन्त को सन्ध्या से पहले दमयन्ती चेदि देश के राजा सुबाहु के राज्य में पहुँची। आधी धोती पहने हुए दमयन्ती स्वामी के शोक से अत्यन्त अधीर थी। उसके बाल खुले हुए थे, शरीर मैला था और वह दुबली तथा दीन थी। पागलों की तरह सब नगर-वासियों के सामने वह बस्ती के भीतर गई। कुछ ढीठ बालक दमयन्ती को इस दशा में देखकर, पगली समझकर, उसके पीछे हो लिये। बालकों से घिरी हुई दमयन्ती चलते-चलते राजमहल के पास पहुँची।

उस समय वहां के राजा की माता अपने महल पर टहल रही थीं। उन्होंने वहाँ बालकों से घिरी हुई दीन दमयन्ती को देखा। [देखते ही उन्हें दया आ गई।]

बुलाकर उन्होंने कहा—देख धाय, वह जो दीनवेष से तेजस्विनी साक्षात् लक्ष्मीरूपिणी स्त्री पागलों की तरह चली जा रही है उसे, पगली समझकर, बालक बहुत ही खिझा रहे हैं। [मैं उसके दु:ख को देखकर दुखी हो रही हूँ।] इसलिए तू उसे यहाँ ले आ। स्वामिनी की आज्ञा से धाय उसी दम महल से उतरकर, भीड़ को हटाकर, दमयन्ती को बुला लाई और राजमाता के पास पहुँची। धाय ने दमयन्ती से कहा—ऐसी दशा में भी तुम्हारा अलौकिक रूप-लावण्य है; शुभे, तुम कौन हो? किसलिए अत्यन्त असहाय और अनाथ की तरह अकेली घूम रही हो? लोग तुम्हें खिझा रहे हैं; तो भी तुम चुप-चाप हो। इसका कारण क्या है?

५०

दमयन्ती ने उस धाय को यही उत्तर दिया—मैं पतिव्रता और कुलीन स्त्री हूँ। केवल फल-मूल खाकर जीवन धारण करती हूँ। जहाँ सन्ध्या हो जाती है वहीं ठहर जाती हूँ। मेरे स्वामी बड़े गुणी हैं, वे मुझको बहुत ही प्यार करते हैं। मैं भी छाया की तरह सदा उनके साथ रहती थी। अभी संयोगवश मेरे स्वामी जुए में हारकर, राज-पाट गवाँकर, एक वस्त्र पहने वन में विचरते थे। मैं भी उनके साथ थी। एक दिन भूख-प्यास से बहुत ही व्याकुल होकर वे घूम रहे थे कि उनका वह एक कपड़ा भी हाथ से चला गया। तब उन्हें नङ्ग-धड़ङ्ग, चिन्ता में डूबे, धीरे-धीरे वहीं लेटकर सो जाते देख मैं भी उन्हीं के पास सो रही। सोते ही गहरी नींद आ गई क्योंकि मैं कई रात तक जागती रही थी। आँख खुलने पर मैंने उठकर देखा, वे मेरी आधी धोती फाड़कर कहीं चले गये हैं। विलाप करती हुई, [केवल आधी धोती पहने] अकेली देश-देश में उन्हीं जीवनेश्वर को मैं खोजती फिर रही हूँ। किन्तु अब तक कहीं उनके दर्शन नहीं मिले। पतिव्रता दमयन्ती इस तरह अपना वृत्तान्त वर्णन करते-करते शोक में मग्न होकर आँसू बहाने लगी।
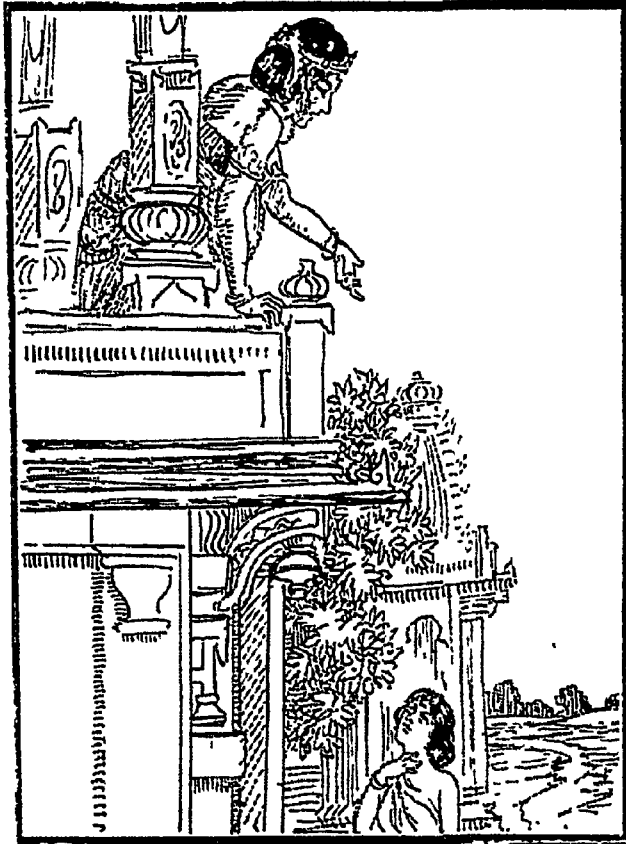
५९

अच्छा, दमयन्ती के विलाप के कारण को जानकर राजमाता को बड़ा दु:ख हुआ। उन्होंने दम-राज्य छिनेगा—भद्रे, मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम मेरे पास रहो। मेरे नौकर-चाकर

तुम्हारे स्वामी का पता लगा देंगे। अथवा ख़ुद तुम्हारे स्वामी ही किसी समय घूमते-फिरते इधर आ निकलें। मतलब यह कि तुम यहीं रहो। यहीं पति से तुम्हारी भेंट हो जायगी।

राजमाता की बातें सुनने से दमयन्ती को कुछ धैर्य हुआ। उसने कहा—हे वीर पुत्र की माता, आपके पास रहना मुझे स्वीकार है। लेकिन मेरे कुछ नियम हैं। उनका पालन मैं अवश्य करूँगी। मैं किसी का जूठा न खाऊँगी। किसी के पैर न धोऊँगी। किसी मर्द से बात-चीत न करूँगी। अगर कोई मुझसे छेड़छाड़ करे तो आप उसे उसी दम दण्ड दें। जो वह उस पर भी न माने तो आपको उसे प्राणदण्ड देना होगा। जो लोग मेरे स्वामी का पता लगाने के लिए जायँगे उनसे मैं ख़ुद सब वृत्तान्त पूछूँगी। यदि मेरे इन नियमों का पालन यहाँ अच्छी तरह हो सकेगा तो मैं आपके पास रहूँगी। यदि न हो सकेगा तो मैं यहाँ किसी तरह न रहूँगी। ७०

[दमयन्ती की शर्तें सुनकर] राजमाता बहुत प्रसन्न हुई। उन्होंने कहा—भद्रे, मैं ऐसा यत्न करूँगी जिसमें तुम्हारे इन नियमों का पालन अच्छी तरह हो सके। तुम चिन्ता न करो।

राजमाता ने उसी समय अपनी कन्या सुनन्दा को बुलाकर कहा—बेटी, यह असाधारण रूप-लावण्यवाली स्त्री है। ख़ास कर यह तुम्हारी हमजोली की है। तुम बिना किसी सङ्कोच के इसे अपनी सखियों में रख लो। इसके साथ बराबर क्रीड़ा-कौतुक किया करो। सुनन्दा प्रसन्न होकर दमयन्ती को अपने भवन में ले गई। पतिव्रता दमयन्ती वहाँ यथोचित आदर और सम्मान पाकर, तरह-तरह की भोग की सामग्रियों का उपभोग करती हुई, रहने लगी। ७६

छाछठवाँ अध्याय

नल और कर्कोटक नाग का संवाद। नाग का उन्हें डसना और दो कपड़े देकर ढाढ़स बँधाना

बृहदश्व कहते हैं—हे धर्मराज, इधर दमयन्ती को छोड़कर नल एक वन के भीतर घुसे। कई पग जाने पर उन्होंने देखा, वह वन दावानल से जल रहा है। अकस्मात् उन्हें बार-बार सुन पड़ा—"हे पुण्यश्लोक नल, जल्दी दौड़ो, जल्दी दौड़ो।" "डरो मत" कहते हुए राजा नल [उसी स्वर को लक्ष्य करके] दावानल के भीतर घुस गये। वहाँ उन्होंने देखा कि एक बड़ा भारी अजगर, कुण्डल के आकार से, पृथ्वी पर पड़ा है [और उसके चारों ओर आग की लपटें झपट रही हैं।] वह साँप निषध-नरेश नल को देखकर काँपता हुआ [करुण स्वर से] कहने लगा—राजन्, मैं नाग-वंश में उत्पन्न हूँ। मेरा नाम कर्कोटक है। मैंने एक समय झूठ बोलकर नारद को धोखा दिया था। तब उन्होंने यह कहकर मुझे शाप दिया था कि "आज

से तुम जड़ जीवों की तरह अचल होकर यहीं पड़े रहोगे। जब महाराज नल घूमते-फिरते यहाँ आवेंगे और तुम्हें इस जगह से हटावेंगे, तब शाप से तुम्हारा छुटकारा होगा।" राजन्, शाप-ग्रस्त होकर मैं तभी से यहाँ पड़ा हूँ; मुझमें पग भर भी चलने की शक्ति नहीं। आप कृपा करके जल्द मुझे यहाँ से हटा दीजिए। महाराज, मैं आपका सखा होऊँगा और आपको हित की बात बताऊँगा। राजन्, मैं एक प्रधान नाग हूँ। [मुझे यहाँ से हटाने में आपको कुछ भी क्लेश न होगा।] मैं अभी अपने शरीर को छोटा किये लेता हूँ।

बस, कर्कोटक नाग अँगूठे भर का और बहुत हलका हो गया। नल ने बेखटके उसे उठा १० लिया और ऐसे स्थान में ले जाकर रखना चाहा जहाँ आग न थी। तब उसने कहा—आप अभी मुझे न रखिए। मुझे लिये हुए, गिनते हुए, कई पग चलिए। मैं आपका बड़ा भारी उपकार

मैं आपको ये दो कपड़े देता हूँ, इन्हें ले लीजिए—पृ० ८३५

करूँगा। राजा नल गिनते हुए कई पग चले। दसवें पग पर जब नल ने दश * कहा, तब नाग ने उनको डस लिया। उसके डसते ही नल का पहला रूप एकदम बदल गया। इससे उनको बड़ा आश्चर्य हुआ।

अब नागराज ने अपना पहला रूप धारण करके नल को धैर्य देते हुए कहा—महाराज, मैंने जो आपको डसा उसका मतलब यही है कि रूप बदल जाने से अब आपको कोई पहचान न सकेगा। ख़ास कर जो पापी कलियुग आपके शरीर में घुसकर आपको तरह-तरह के क्लेश दे रहा है वह मेरे विष के प्रभाव से अब पीड़ित होता रहेगा। जब तक वह दुरात्मा आपके शरीर में रहेगा तब तक उसे मेरे अत्यन्त तीक्ष्ण विष की जलन सहनी पड़ेगी। जिसने निरपराध आपको सभी बातों में बहुत सताया है उसे उसकी करनी का उचित दण्ड देकर मैंने आपका उपकार किया है। महाराज, आप निश्चय समझिए, मेरे अनुकूल होने के कारण अब आपको किसी का डर नहीं रहा। हिंसक जीव या शत्रु अब आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकेंगे। मेरे प्रसाद से आपको किसी का शाप भी न लगेगा। मेरे काटने से और मेरे तीक्ष्ण विष से आपको तनिक भी कष्ट न होगा। युद्ध में आप सदा विजयी होंगे। अब आप इसी अवस्था में अयोध्यापुरी को जाइए। वहाँ इक्ष्वाकुवंशी महाराज ऋतुपर्ण राज्य करते हैं। उनके पास जाकर आप उनके सारथि का काम कीजिए। आप उन्हें अपना यह परिचय दीजिएगा कि "मेरा नाम बाहुक है। मैं घोड़े हाँकने की कला में बहुत ही चतुर हूँ।" ऋतुपर्ण को पाँसे खेलने की विद्या अच्छी तरह मालूम है। वे अपनी विद्या देकर आपसे घोड़े चलाने की विद्या सीखेंगे। अन्त को वे आपके मित्र हो जायँगे। पासे खेलने की विद्या में निपुण होने से आपका भला होगा। राज्य, ऐश्वर्य, पुत्र, कन्या और स्त्री को फिर पाकर आप निस्सन्देह परम सुख से अपना जीवन बितावेंगे। अब आपको शोक न करना चाहिए। मैं आपको ये दो कपड़े देता हूँ; इन्हें ले लीजिए। जब आप अपने पहले रूप को प्राप्त करना चाहें तब, मुझे स्मरण करके, इन वस्त्रों को पहन लीजिएगा। तुरन्त ही आपको अपना पहला रूप प्राप्त हो जायगा। १९

राजा नल को कपड़े देकर कर्कोटक नाग, उनके देखते ही देखते, अन्तर्द्धान हो गया। २६

सड़सठवाँ अध्याय

राजा नल का राजा ऋतुपर्ण के पास जाकर रहना

बृहदश्व कहते हैं कि हे धर्मराज, कर्कोटक के अन्तर्द्धान हो जाने पर राजा नल अयोध्या की ओर चले। दसवें दिन ऋतुपर्ण के राज्य में पहुँचकर उन्होंने राजा से भेंट की और कहा—

---

* संस्कृत में दश शब्द के मानी 'काटो' के भी हैं। नाग बिना आज्ञा के नहीं काटते। इसलिए नल के मुँह से 'दश' कहलाकर कर्कोटक ने उनको डस लिया।

महाराज, मेरा नाम बाहुक है। मैं घोड़े चलाने की विद्या में बहुत ही निपुण हूँ। [इसके सिवा और भी कई तरह की कारीगरियाँ जानता हूँ।] समय-समय पर धन की कमी के कारण अगर कुछ गड़बड़ हो तो उसे दूर करने की सलाह भी मैं दे सकता हूँ। तरह-तरह की रसोई बनाने में भी मैं बहुत निपुण हूँ। इसके सिवा मैं और भी चाहे जो कारीगरी का काम विशेष यत्न और परिश्रम के साथ कर सकता हूँ। इसलिए राजन्, आप मेरा पालन कीजिए।

[कपटवेष धारण किये हुए नल की प्रार्थना सुनकर] महाराज ऋतुपर्ण ने कहा—हे बाहुक, तुमने जिन-जिन बातों का वर्णन किया उन सबको यहाँ रहकर तुम कर सकोगे। ख़ास कर शीघ्र चलना मुझे बहुत पसन्द है। तुम यहाँ रहकर विशेष यत्न करो जिसमें मेरे रथ के घोड़े बहुत शीघ्र चल सकें। आज से मैंने तुमको अपने यहाँ की अश्वशाला (अस्तबल) का अध्यक्ष बनाया। तुम्हें वेतन (तनख़्वाह) के तौर पर हर महीने दस हज़ार सोने की मोहरें मिलेंगी। ये वार्ष्णेय और जीवल नाम के दो आदमी, तुम्हारे अधीन रहकर, इस काम में तुम्हारी सहायता करेंगे। तुम इनके साथ यहाँ सुख से रहो।

[कपटवेष धारण करनेवाले] नल अब परम आदर पाकर ऋतुपर्ण के राज्य में रहने लगे। वे बीच-बीच में अपनी प्रिया दमयन्ती को याद किया करते थे। नित्य सायङ्काल को वे यह कहकर विलाप करते थे कि हाय! प्रियतमा की कैसी दशा हुई! अकेली वह भूख और प्यास से व्याकुल होकर किसकी शरण में है!

१०

जीवल नित्य रात को नल के मुँह से विलाप के वाक्य सुना करता था। एक बार रात को उसने पूछा—हे बाहुक, तुम नित्य किस स्त्री के लिए इस तरह विलाप करते हो? मैं सुनना चाहता हूँ, वह किसकी स्त्री है? नल ने कहा—हे जीवल, एक मन्दमति पुरुष की गुणवती स्त्री थी। वह अभागा पुरुष किसी कारण उस पतिव्रता स्त्री को [वन में अकेली] छोड़कर अब, उसके विरह में अधीर होकर, मारा-मारा फिरता है और स्त्री-वियोग के शोक में उसे दिन-रात नींद नहीं आती। रात के समय उसी को स्मरण करके वह मूढ़ विलाप किया करता है। वह अभागा पुरुष अनेक स्थानों में घूमकर अन्त को
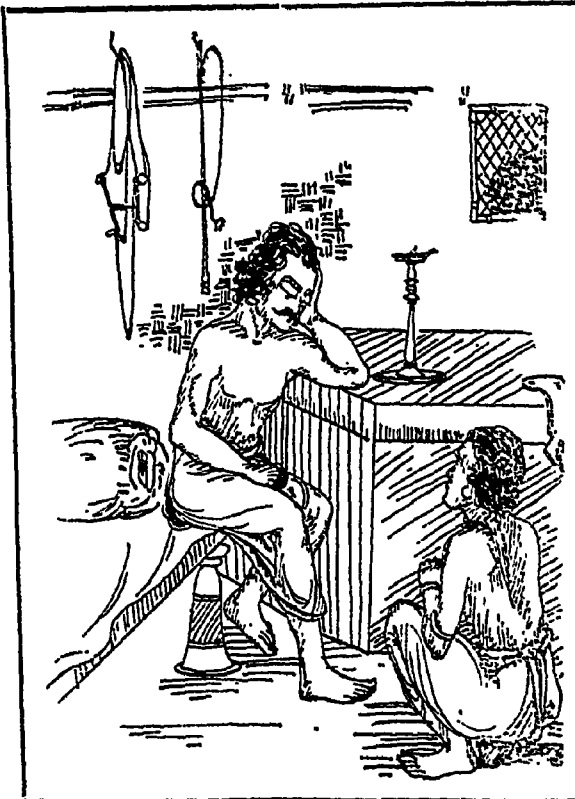
राज-भवन में जाकर उसने राजकुमारी सुनन्दा के साथ दमयन्ती को देखा—पृ० ८३७

एक जगह किसी ओछे काम में लग गया है और उसी काम को करके अपनी जीविका चला रहा है। अहो! वह पतिव्रता स्त्री अत्यन्त दुर्दशा और कष्ट में पड़कर भी वन में स्वामी के साथ आई थी; किन्तु वह पुरुष उसे वहीं छोड़कर चल दिया। [हाय! न जाने उस भोली-भाली स्त्री की कैसी दुर्दशा हुई होगी!] एक तो उसे कभी पैदल चलने का अभ्यास नहीं, दूसरे वह वन के पेचीले मार्ग को नहीं जानती। भूख और प्यास से व्याकुल होकर वह न जाने कैसे कष्ट सह रही होगी; या यही कौन कह सकता है कि उस हिंसक भयानक जङ्गली जानवरों से भरे वन में, पति से अलग होकर, वह स्त्री जीती है या मर गई!

इस प्रकार दमयन्ती को स्मरण करते हुए महाराज नल ऋतुपर्ण के राज्य में गुप्त रूप से रहकर समय बिताने लगे। १९

अड़सठवाँ अध्याय

नल का पता लगाने के लिए राजा भीम की आज्ञा से ब्राह्मणों का अनेक देशों में जाना। दमयन्ती से सुदेव की भेट

बृहदश्व कहते हैं कि हे धर्मराज, जुए में राज्य हारकर, वन में जाकर, नल और दमयन्ती दोनों लापता हो गये। विदर्भ देश के राजा भीम ने यह ख़बर पाकर नल और दमयन्ती का पता लगाने के लिए बहुत से ब्राह्मणों को चारों ओर भेजा। हर एक ब्राह्मण को बहुत सा धन देकर सन्तुष्ट करके राजा ने कहा—तुम लोग नल और दमयन्ती को खोजने के लिए जाओ। तुममें से जो कोई नल और दमयन्ती को खोजकर यहाँ ला सकेगा उसे मैं हज़ार गायें और एक नगर-तुल्य गाँव दूँगा। यदि उन्हें यहाँ न ला सकोगे, केवल उनका पता लगा लाओगे, तो भी मैं हज़ार गायें दूँगा। राजा भीम की बातों से पूर्ण रूप से उत्साहित होकर सब ब्राह्मण उसी दम नल और दमयन्ती का पता लगाने के लिए चारों ओर चल दिये। वे [बहुत सी नदियों और नदों को पार करके] अनेक स्थानों और देशों में नल और दमयन्ती का पता लगाने लगे; लेकिन कोई कृतकार्य न हुआ।

उनमें एक सुदेव नाम का ब्राह्मण था। वह अनेक देशों में घूमता-घामता अन्त को चेदि देश की राजधानी में पहुँचा। राजभवन में जाकर उसने राजकुमारी सुनन्दा के साथ दमयन्ती को देखा। उस समय दमयन्ती पति-वियोग के शोक से बहुत ही मुरझाई हुई थी। उसका शरीर दुबला और मलिन हो रहा था। सुदेव ने आकार और चिह्नों से दमयन्ती को पहचान लिया। वे मन में कहने लगे कि अहो! इस राजकुमारी को पहले अच्छी दशा में देखकर मुझे जैसी प्रसन्नता हुई थी वैसी प्रसन्नता ऐसी हीन अवस्था में देखकर भी हो रही है। आज

१० इस त्रिलोकसुन्दरी को देखकर मैं निहाल हो गया। यह स्वर्ण के समान कान्तिवाली, पीन स्तनोंवाली, पूर्ण चन्द्र के समान मुखवाली, सुडौल अङ्गोंवाली स्त्री अपने अनुपम रूप-लावण्य की आभा से सब ओर प्रकाश फैला रही है। इसके नेत्र कमलदल के समान विशाल हैं। इसे एकाएक देखने से कामदेव की स्त्री रति का भ्रम होता है। यह रत्नजटित राजमहल में रहने के योग्य, रूप और गुण से युक्त, सुकुमारी, भीम राजा की कन्या पति-विरह के शोक से अत्यन्त दुबली और मलिन होकर ऐसी जान पड़ती है, जैसे राहु के ग्रास में पड़े हुए चन्द्रमा से युक्त पूर्णिमा की रात्रि हो; या घाम से सूखी हुई नदी हो; या तालाब में से हाथी ने सूँड़ से जिसे खींचा हो वह दलित, पङ्क-मलिन, अपने स्थान से भ्रष्ट, कान्तिशून्य कमलिनी हो। औदार्य-गुणशालिनी, गहनों से ख़ाली, यह त्रिलोकसुन्दरी अपने प्रिय पति और भाई-बन्धुओं के साथ से छूटकर, सूर्य-ताप में तपी हुई उखड़ी पड़ी कमलिनी की तरह, नीले बादल से ढकी हुई नवीन चन्द्ररेखा की तरह, अत्यन्त मलिन और क्षीण होती जा रही है। फिर पति के मिलने की आशा से ही यह अब तक जी रही है। अहो! पति ही पतिव्रता स्त्री का एक-मात्र प्रधान आभूषण है। यद्यपि इस सर्वाङ्ग-सुन्दरी का सहज-सौन्दर्य असीम है, तो भी केवल पति-रूप रत्न के बिना इसकी कुछ भी शोभा नहीं है। महाराज नल का हृदय कैसा कठिन है! ऐसी स्त्री को छोड़कर
२० भी वे अब तक जीवित हैं! इस सुख भोगने के योग्य, विशाल नेत्रोंवाली ललना को ऐसे दुःख के समुद्र में मग्न देखकर मेरा जी दुखी हो रहा है। हाय! कितने दिनों में यह, पति के विरह से दुबली, सुन्दरी पति-रत्न को पाकर अपार दुःख-समुद्र के पार पहुँचेगी? मुझे तो यह अच्छी तरह जान पड़ता है कि महाराज नल अपने राज्य और रानी को पाकर बहुत आनन्द पावेंगे। कामदेव के समान सर्वाङ्गसुन्दर महाराज नल ही इस स्त्री-रत्न के पति होने के योग्य हैं। यह भी उन्हीं के योग्य पत्नी है। इस समय इस पति के दर्शन की लालसा रखनेवाली, दुःख से अत्यन्त पीड़ित, दमयन्ती को आश्वास-वचनों से सान्त्वना देना मेरा कर्त्तव्य है।

[मन में यों निश्चय करके] दमयन्ती के पास जाकर सुदेव ने कहा—हे विदर्भ-नरेश की बेटी, [तुमने मुझे पहचाना?] मैं तुम्हारे भाई का सखा, सुदेव हूँ। महाराज भीम की

आज्ञा से यहां तुमको खोजता-खोजता आया हूँ। तुम्हारे पिता, माता, भाई आदि सब प्रकार कुशल से हैं। तुम्हारे पुत्र और कन्या दोनों मज़े में हैं। तुमको न देखकर सब तुम्हारे आत्मीय जीते ही मुर्दे के बराबर हो रहे हैं। तुम्हारे [और महाराज नल के] खोजने के लिए सैकड़ों ब्राह्मण भेजे गये हैं और वे देश-देश में खोज रहे हैं। ३०

[ब्राह्मण के यों कह चुकने पर] दमयन्ती ने सुदेव को अच्छी तरह देखा और पहचाना। फिर स्वागत-प्रश्न करके दमयन्ती ने उनसे अपने भाई-बन्धुओं के कुशल-समाचार पूछे। अपने भाई के सखा को देखकर दमयन्ती के शोक का वेग प्रबल हो गया। वह ब्राह्मण के आगे रोने लगी। सुनन्दा कुछ भी नहीं समझ सकी कि एकाएक दमयन्ती की ऐसी दशा क्यों हो गई। वह शोक से व्याकुल होकर अपनी माता के पास गई और कहने लगी—माताजी, सैरन्ध्री (दमयन्ती का कल्पित नाम) एक ब्राह्मण से भेंट करके बहुत रो रही है। आपकी इच्छा हो तो वहां चलकर उससे इसका कारण पूछिए।

कन्या के वचन सुनकर रानीजी बाहर गईं और जहां दमयन्ती सुदेव से बातचीत कर रही थी वहां जाकर सुदेव से कहने लगीं—हे ब्राह्मण, मैं समझती हूँ, आप इस स्त्री का सब वृत्तान्त जानते हैं। बताइए, यह सुन्दरी कौन है? किसकी स्त्री और किसकी बेटी है?

राजमाता के वचन सुनकर और अधिक आग्रह देखकर ब्राह्मणदेव एक आसन पर बैठ गये और दमयन्ती का सब हाल कहने लगे। ३९

उनहत्तरवाँ अध्याय

दमयन्ती का अपने पिता के घर जाना

सुदेव कहने लगे—यह कल्याणरूपिणी ललना धर्मात्मा विदर्भ-नरेश भीम की बेटी है। इसका नाम दमयन्ती है। वीरसेन के पुत्र पुण्यश्लोक निषध-नरेश नल इसके स्वामी हैं। राजा नल दैव के कोप से, अपने भाई से, जुए में हारकर अपनी प्यारी स्त्री दमयन्ती के साथ राज्य से निकलकर न जाने कहाँ चले गये। कोई नहीं जानता, वे कहाँ हैं। मुझे महाराज भीम ने भेजा है; मैं देश-देश में उन्हीं का पता लगाता घूम रहा हूँ। आज सौभाग्य से मैंने इस दमयन्ती को आपकी कन्या के भवन में देखा। मनुष्य-लोक में इसके समान स्वरूपवाली स्त्री दूसरी नहीं देख पड़ती। विधाता ने इसकी भौंहों के बीच में एक लाल रङ्ग का तिलक-चिह्न स्थापित कर दिया है। वह चिह्न इस समय मैल से छिप जाने के कारण मेघ में चन्द्र के समान छिपा हुआ है। यह कन्या अतुल ऐश्वर्य की अधिकारिणी होगी—इसी बात का सूचक यह चिह्न इसके माथे में है। इस समय पड़वा के चन्द्रमा की तरह इस सुन्दरी का सौन्दर्य छिपा हुआ

है। साफ़ न किये जाने से इसका शरीर यद्यपि मलिन हो रहा है, तो भी सुवर्ण के समान चमक रहा है। आँच या गर्मी-द्वारा जैसे राख से ढकी हुई आग का अस्तित्व जाना जाता है, वैसे ही भौंहों के बीच में स्थित यह चिह्न और मलिन शरीर-कान्ति देखकर मैंने पहचान लिया कि यही दमयन्ती है।

ब्राह्मण के यों कह चुकने पर सुनन्दा ने उसी दम दमयन्ती के माथे को धोकर साफ़ किया। तब उसके मस्तक में वह तिलक-चिह्न मेघ-मुक्त चन्द्रमा की तरह साफ़ जान पड़ने लगा।

अब सुनन्दा और उसकी माता, दोनों ने उस चिह्न को देखकर अत्यन्त दुःखित हो दमयन्ती को गले से लगा लिया। राज-माता ने रोते-रोते दमयन्ती से कहा—पुत्री, तुम्हारे मस्तक के चिह्न को देखकर मुझे पक्का विश्वास हो गया कि तुम्हीं मेरी बहन की बेटी दमयन्ती हो। बेटी, तुम्हारी माता और मैं, दोनों ही दशार्ण देश के स्वामी राजा सुदामा की कन्या हैं। पिता ने तुम्हारी माता का ब्याह महाराज भीम के साथ और मेरा ब्याह महाराज वीरबाहु के साथ कर दिया। तुम अपनी ननिहाल में ही जन्मी थीं। उस समय मैं भी दशार्ण नगर में थी। पुत्री, मेरे घर को तुम अपने पिता के घर के समान समझो। मेरी सब धन-सम्पत्ति तुम अपनी ही समझो।

दमयन्ती ने अपनी मौसी को प्रणाम करके कहा—माता, अब तक यद्यपि आप मुझे पहचान नहीं सकी थीं तो भी आपके यहाँ मुझे कभी किसी बात के लिए कष्ट नहीं हुआ। आपने सदा [अपनी लड़की की तरह] मेरी रक्षा की और देख-रेख रक्खी है। मैंने बड़े सुख से आपके यहाँ रहकर इतना समय बिताया है। माता, मैं बहुत समय से बाहर हूँ। अब आज्ञा दीजिए, मैं अपने पिता के घर जाऊँ। मैं अपने पुत्र और कन्या को बहुत पहले अपने पिता के घर भेज चुकी हूँ। इस समय वे पिता और माता के बिना अत्यन्त क्लेश पा रहे होंगे। यदि आप मेरा प्रिय करना चाहती हैं तो शीघ्र मुझे मेरे पिता के यहाँ भेज दीजिए। दमयन्ती की प्रार्थना से सन्तुष्ट होकर राज-माता इस प्रस्ताव पर राज़ी हो गईं। उन्होंने अपने पुत्र की अनुमति से अन्न-

वस्त्र और अन्य प्रकार की बहुत सी सामग्री देकर, बहुत सी सेना के साथ, दमयन्ती को पालकी पर चढ़ाकर विदर्भ-नगर को भेज दिया। दमयन्ती ने पिता के घर पहुँचकर अपने स्वजनों से भेंट की। सबने प्रसन्नचित्त होकर दमयन्ती का यथोचित सम्मान और आदर किया। अपने पुत्र, कन्या, माता, पिता और बन्धु-बान्धवों को कुशलपूर्वक देखकर दमयन्ती बहुत प्रसन्न हुई। फिर वह देवता और ब्राह्मणों की पूजा करने की तैयारी करने लगी।

राजा भीम ने बहुत दिनों के बाद अपनी कन्या को देखकर, प्रतिज्ञा के अनुसार, सुदेव ब्राह्मण को हज़ार गायें, बहुत सा धन और एक नगर-तुल्य गाँव दिया।

रात भर पिता के घर रहकर विश्राम करने के उपरान्त दमयन्ती ने माता से कहा—माता, यदि आप मेरा जीवन चाहती हैं तो महात्मा नल को ढूँढ़ने के लिए आदमी भेजिए। कन्या के वचन सुनकर माता बहुत ही दुःखित हुई; कुछ उत्तर न देकर लगातार आँसू बहाने लगी। रानी को रोते देखकर रनिवास की और स्त्रियाँ भी रोने लगीं। तब रानी ने अपने पति राजा भीम के पास जाकर कहा—महाराज, तुम्हारी कन्या पति के शोक से मुर्दार होकर विलाप कर रही है। उसने लज्जा छोड़कर मुझसे अपने मन का भाव जताया है। इसलिए अपने नौकर-चाकरों को आज्ञा दीजिए कि वे शीघ्र आपके दामाद का पता लगाने के लिए दूर-दूर के देशों में जायँ। ३०

बृहदश्व कहते हैं—रानी के यों कहने पर राजा ने उसी समय राजा नल का पता लगाने के लिए ब्राह्मणों को चारों ओर भेजा। उनसे कह दिया कि तुम लोग नल के पता लगाने का यत्न करो। राजा की आज्ञा पाकर दमयन्ती के पास आकर ब्राह्मणों ने कहा—राजकुमारी, हम लोग तुम्हारे पिता की आज्ञा से महात्मा नल का पता लगाने जा रहे हैं। [तुम्हें कुछ कहना हो तो हमसे कह दो।] दमयन्ती ने कहा—हे ब्राह्मणो, आप लोग जिस राज्य और सभा में जायँ वहाँ बारम्बार यही कहें कि "हे धूर्त, अपनी पतिव्रता स्त्री को सोते समय भयानक जङ्गल में अकेली छोड़कर, उसकी आधी धोती फाड़कर, कहाँ भाग आये हो? वह तुम्हारी प्रतीक्षा में उसी तरह है जिस तरह तुमने उसे देखा था। तुम्हीं को अपना जीवन-प्राण समझनेवाली वह सुन्दरी वही आधी धोती पहने तुम्हारे

विरह में दिन-रात रोया करती है। इसलिए तुम प्रसन्न होकर चटपट उसकी बातों का उत्तर दो।" हे ब्राह्मणो, आप लोग ये और अन्य बातें कहकर उनके चित्त में मेरे ऊपर दया उत्पन्न
४० करने की चेष्टा करना। आग हवा की सहायता से ही बढ़कर सारे वन को भस्म कर देती है। आप लोग मेरी ओर से यह भी कहिएगा कि "व्याही हुई स्त्री की सदा रक्षा और देख-भाल करना पति का अवश्य कर्त्तव्य है। इसके विपरीत आचरण करके क्या तुम धार्मिक का काम कर रहे हो? तुम धर्मात्मा, दयालु, अच्छे हृदयवाले, प्राज्ञ, सुशील और कुलीन हो। फिर इस समय क्या मेरे भाग्य के दोष से निठुर बन गये? हे नाथ, तुमने आप ही कितनी बार कहा है कि निठुरता न करना ही प्रधान धर्म है। [फिर इस समय तुम्हारे ऐसे निठुर बन जाने का कारण क्या है? बहुत हो चुका।] अब दया करो।" हे ब्राह्मणो, आप लोगों की इन बातों का जो कोई कुछ उत्तर दे उसका सब वृत्तान्त जानने की आप लोग चेष्टा करें। उससे उसी समय उसका नाम, धाम, [जाति, पेशा और अन्यान्य परिचय की बातें] पूछें। वह पुरुष आपके प्रश्नों के उत्तर में जो कुछ कहे, सो सब आकर मुझसे कहिएगा। इसकी परवा न कीजिएगा कि वह धनी है या निर्धन या असमर्थ। किन्तु इस बात को और कोई न जान सके कि मैं आप लोगों को इस काम के लिए भेज रही हूँ। इस प्रकार निर्विघ्न रूप से यह काम करके आप लोग शीघ्र लौट आवें।

वे ब्राह्मण दमयन्ती की आज्ञा से विदर्भ देश से चलकर अनेक देशों में फिरने लगे; सैकड़ों नद, नदी, गाँव, नगर, व्रज और आश्रम लाँघकर दमयन्ती ने जो कुछ कहा था उसी की
५० घोषणा स्थान-स्थान पर करते हुए घूमने लगे। परन्तु महाराज नल का कहीं कुछ पता न चला।

सत्तरवाँ अध्याय

नल का पता लग जाना

बृहदश्व कहते हैं—हे धर्मराज, इस प्रकार बहुत समय बीतने पर पर्णाद नाम के एक ब्राह्मण ने विदर्भ देश में आकर, दमयन्ती के पास जाकर, कहा—हे कल्याणी, मैं महाराज नल को खोजता हुआ महाराज ऋतुपर्ण के राज्य (अयोध्या) में गया और उनकी सभा में जाकर बारम्बार तुम्हारी कही बातें कहने लगा; परन्तु राजा ने या उनके किसी सभासद ने उसका कुछ उत्तर नहीं दिया। मैं राजा के यहाँ से बिदा होकर जब दूसरे स्थान को जाने की तैयारी कर रहा था तब एक व्यक्ति मेरे पास एकान्त में आया। उसका नाम बाहुक था। वह बड़ा ही कुरूप था। वह महाराज ऋतुपर्ण के सारथि का काम करता है। घोड़े हाँकने और रसोई बनाने में वह बड़ा चतुर है।

एकान्त में ब्राह्मण से बाहुक की बात-चीत—पृ० ८४३
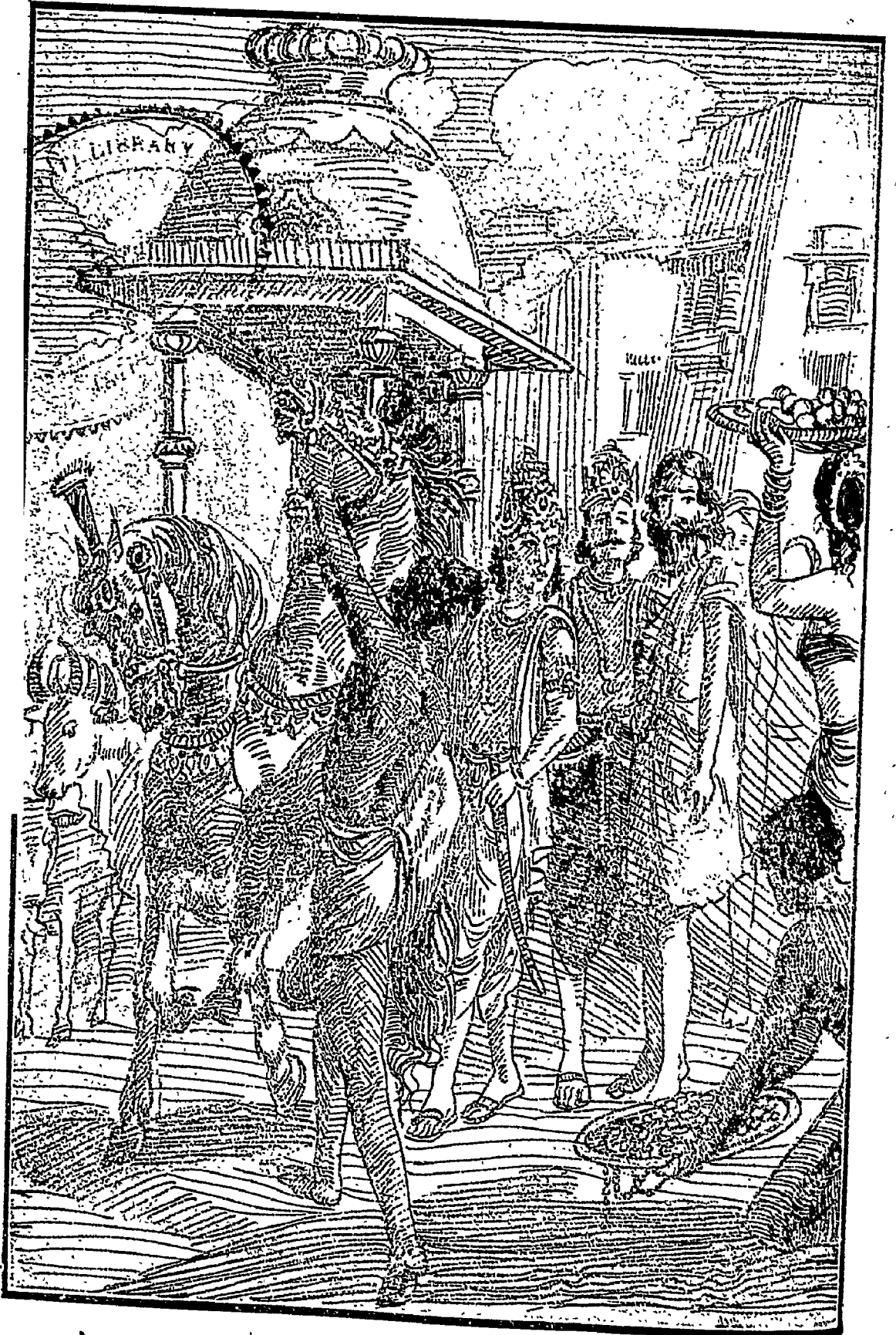
इल्वल दैत्य से धन-सम्पन्न हो और राजवर्ग सहित महर्षि अगस्त्य का रथ पर सवार होना—पृ० १०८

[अत्यन्त दुःख के बोझ से दबे हुए हृदय को थामकर] लम्बी साँसें लेता और आँसू बहाता हुआ वह मेरे पास आया। मुझसे कुशल-प्रश्न करके उसने कहा—अच्छे घराने की स्त्रियाँ घोर दुर्दशा में पड़कर भी जी-जान से अपनी रक्षा करती हैं। इसी कारण उन्हें मरने पर अक्षय स्वर्ग मिलता है। स्वामी के पास न रहने पर भी वे प्राणपण से आत्मरक्षा करने में तनिक भी सुस्ती नहीं होने देतीं। पति पर क्रोध करके कुमार्ग में पैर रखने की प्रवृत्ति कभी उनको नहीं होती। इसलिए यदि निषधराज नल ने राज्य से भ्रष्ट होकर, ऐसी दुर्दशा में पड़कर, अपनी प्यारी दमयन्ती को छोड़ दिया है तो भी दमयन्ती को उन पर क्रोध या असन्तोष प्रकट करना उचित नहीं है। पक्षियों के द्वारा वस्त्र हरे जाने के कारण राजा नल बहुत अधीर हो रहे थे। इस समय भी वे दारुण मानसिक

वेदना भोगते हुए बड़े कष्ट से जीवित हैं। उन पर क्रोध करना किसी तरह दमयन्ती का कर्त्तव्य नहीं है। ख़ास कर इस समय नल राज्य से भ्रष्ट, लक्ष्मी से हीन, भूख और प्यास से व्याकुल होकर, किसी तरह जीवित हैं। वे दमयन्ती पर प्रीति प्रकट करें या न करें, उनकी ऐसी दशा देखकर दमयन्ती को उन पर क्रोध न करना चाहिए।

हे राजकुमारी, बाहुक के मुँह से ये बातें सुनकर मैं झटपट यहाँ लौट आया हूँ। मुझे जो कुछ कहना था सो कह चुका। अब आप जो करना चाहें सो करें।

पर्णाद के मुँह से ये बातें सुनकर दमयन्ती का शोक उमड़ पड़ा। वह आँसू बहाती हुई अपनी माता के पास गई। एकान्त में सब वृत्तान्त सुनाकर दमयन्ती ने कहा—माता, यह सब हाल पिताजी न सुनने पावें। मैं ब्राह्मण सुदेव को आपके पास बुलाती हूँ। वे जैसे मेरा पता लगाकर मुझे आपके पास ले आये हैं, वैसे ही महाराज नल का पता लगाने के लिए उन्हें अयोध्या को भेजिए। पर्णाद जब विश्राम कर चुके तब दमयन्ती ने बहुत सा धन और रत्न देकर उन्हें सन्तुष्ट किया और कहा—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ, महाराज नल यहाँ आ जायँगे तो मैं आपको और भी धन दूँगी। विप्रदेव, आपने मेरा वह उपकार किया है जो दूसरा नहीं कर सकता। अब पति से मेरी जल्द भेंट हो जायगी। बस, पर्णाद ख़ुशी से असीस देता हुआ अपने घर चला गया।

इसके अनन्तर दमयन्ती ने सुदेव को बुलाकर माता के आगे दुःखित होकर कहा—आप शीघ्र अयोध्यापुरी में जाकर महाराज ऋतुपर्ण को यह ख़बर दीजिए कि "राजा भीम की कन्या दमयन्ती का फिर से स्वयंवर होगा। कल स्वयंवर का दिन है। स्थान-स्थान में यह ख़बर फैलने से अनेक राजपुत्र स्वयंवर-सभा में जमा हो रहे हैं। कल सूर्योदय होते ही दमयन्ती दूसरे पति का वरण करेगी। उसके इस दुबारा स्वयंवर का अभिप्राय यह है कि उसे यह नहीं मालूम पड़ता कि नल जीते हैं या नहीं। जो हो, यदि आप उस स्वयंवर में जाना चाहें तो अभी तैयार हों।" दमयन्ती ने यों कहकर ब्राह्मण को अयोध्या भेज दिया। ब्राह्मण बड़ी शीघ्रता के साथ जाकर २७ महाराज ऋतुपर्ण से मिले और उन्होंने दमयन्ती के कथनानुसार सब वृत्तान्त कह सुनाया।

इकहत्तरवाँ अध्याय

ऋतुपर्ण का विदर्भ देश के लिए जाना और बाहुक के सम्बन्ध में सारथि वार्ष्णेय का सोच-विचार

बृहदश्व कहते हैं कि हे धर्मराज, सुदेव के मुँह से दमयन्ती के स्वयंवर की बातें सुनकर महाराज ऋतुपर्ण ने बाहुक से मधुर स्वर में कहा—हे अश्वविद्या-विशारद, सुनता हूँ, दमयन्ती का दुबारा स्वयंवर होगा। कल उसका दिन नियत हुआ है। मैं आज ही विदर्भ नगर में पहुँच जाना चाहता हूँ। इस बारे में तुम्हारी क्या राय है? दमयन्ती के दुबारा स्वयंवर का वृत्तान्त सुनकर बाहुक का हृदय मानों फट गया। वह सोचने लगा कि क्या दमयन्ती सचमुच फिर से अपना ब्याह करना चाहती है; या मुझे पाने के लिए यह उपाय निकाला गया है? मैंने उस समय वैसी पतिव्रता स्त्री को वन में छोड़कर बड़ा बुरा काम किया! स्त्रियों का स्वभाव बहुत ही चञ्चल होता है। मैंने उस भोली-भाली स्त्री के साथ जैसा निठुर व्यवहार किया है उसका ख़याल करके, उसके ऐसे विचार के लिए, मैं उसे दोष नहीं दे सकता। मेरे विरह से दमयन्ती अत्यन्त उत्कण्ठित हो रही है। फिर मेरे वीर्य से उसके दो बच्चे भी हो चुके हैं। इससे यह स्वयंवर का वृत्तान्त बिलकुल बहाना जान पड़ता है। जो हो, वहाँ पहुँचने पर इसका निर्णय हो जायगा। इस समय ऋतुपर्ण की प्रार्थना मान लेना ही ठीक है; तभी मेरा अभीष्ट सिद्ध होगा।

मन ही मन यों निश्चय करके बाहुक ने हाथ जोड़कर अत्यन्त विनीत भाव से ऋतुपर्ण से कहा—महाराज, आप तैयार हो जाइए। मैं एक ही दिन में आपको विदर्भ नगर में पहुँचा १० दूँगा। अब बाहुक ने अस्तबल में जाकर फुर्तीले घोड़ों के विशेष-विशेष लक्षणों के अनुसार घोड़े छाँटे। महाराज ऋतुपर्ण को विदर्भ देश जाने के लिए अत्यन्त अधीर देखकर बाहुक ने तेज़ चलनेवाले अच्छी नस्ल के दुबले-पतले घोड़े छाँट लिये। वे घोड़े अच्छे वंश में उत्पन्न, सुशिक्षित, सिन्धु देश के, हीनलक्षणों से शून्य, शीघ्रगामी, बड़े बलवान् और उत्तम थे। उन पर दस आवर्त

(भौंरियाँ) थे। उनकी नाक मोटी थी और थूथन चौड़ा था। ऐसे घोड़ों को अस्तबल से छाँटकर निकालते देख ऋतुपर्ण को क्रोध आ गया। उन्होंने कहा—बाहुक, तुम क्या मेरे काम को बिगाड़ना चाहते हो? ये दुबले और कमज़ोर घोड़े किस तरह इतनी राह एक दिन में चल सकेंगे? बाहुक ने कहा—महाराज, इन घोड़ों के माथे पर एक, सिर पर दो, अगल-बगल के चारों पुट्ठों पर चार, छाती में दो, पीछे एक, इस प्रकार दस आवर्त्त हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि ये घोड़े ख़ूब परिश्रम कर सकेंगे और निर्विघ्न रूप से एक ही दिन में आपको विदर्भ नगर में पहुँचा देंगे। अथवा जो आप इन घोड़ों को पसन्द न करें तो जिन घोड़ों के लिए आप आज्ञा दें उन्हीं को रथ में जोतने के लिए मैं तैयार हूँ। [यह सुनकर] ऋतुपर्ण ने कहा—हे बाहुक, तुम अश्व-विद्या में चतुर हो। तुम जिन घोड़ों को अच्छे लक्षणोंवाला समझो उन्हीं को रथ में जोतो।
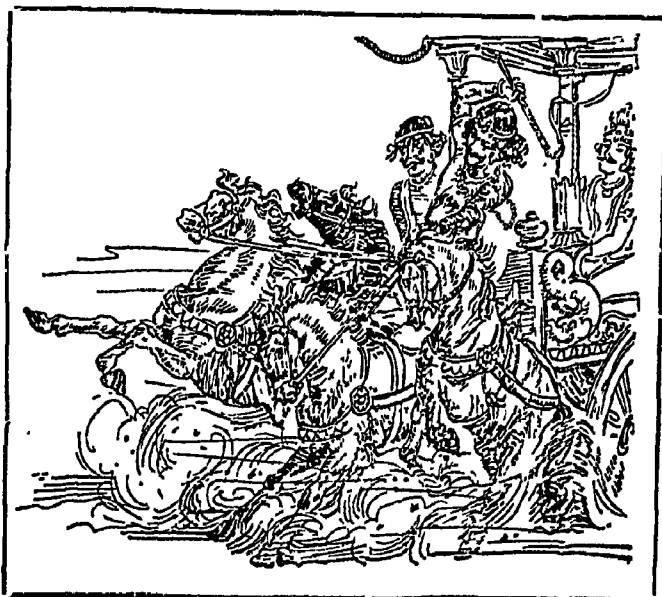
तब बाहुक ने यथार्थ लक्षणों-वाले चार घोड़े छाँटकर रथ में जोते। महाराज ऋतुपर्ण उसी दम उस पर सवार हुए। वे घोड़े घुटनों के बल पृथ्वी पर गिर पड़े। यह २० देखकर नल ने अपने हाथ में घोड़ों की रास ले ली। उन्होंने तेज़ और बलवाले उन घोड़ों को पुचकारकर उत्साहित किया। वार्ष्णेय सारथि भी रथ में एक किनारे बैठ गया। तब नल हवा के वेग से रथ को चलाने लगे। हाँकने की उस्तादी से वे घोड़े इस तेज़ी से चले कि जान पड़ता था मानों आकाश को उड़े जा रहे हैं। रथ की चाल देखकर महाराज ऋतुपर्ण को बड़ा आश्चर्य हुआ और

वार्ष्णेय भी रथ के शब्द को सुनकर और घोड़ों को क़ाबू में करने का बाहुक का ढङ्ग तथा घोड़ों की पहचान देखकर दङ्ग हो गया। वह मन में कहने लगा कि क्या ये इन्द्र के सारथि मातलि हैं! क्योंकि बाहुक में मातलि के सब श्रेष्ठ लक्षण देख पड़ते हैं। अथवा ये घोड़ों की जाति को पहचाननेवाले शालिहोत्र, मनुष्य-शरीर धारणकर, पृथ्वी पर आकर, घोड़ों की रास पकड़े रथ को हाँक रहे हैं? या ये वही शत्रु-नाशन महाराज नल हैं? क्योंकि यह बाहुक घोड़े चलाने में उनसे किसी बात में कम नहीं है। यदि ये महात्मा नल न भी हों तो उनके शिष्य या उनके ३० सदृश और कोई महापुरुष होंगे। दैव के कोप में पड़कर या शास्त्रनिर्दिष्ट नियम के अनुसार सैकड़ों महात्मा और गुणी, रूप बदले हुए, इस पृथ्वी पर विचरते हैं। मतलब यह कि बाहुक के नल होने में मुझे सन्देह होता है; क्योंकि यद्यपि बाहुक और नल की अवस्था समान देख पड़ती है, तो भी रूप-रङ्ग-आकार-प्रकार आदि में अन्तर है। सब प्रकार विचार करके देखने से मुझे बाहुक में नल के सभी गुण देख पड़ते हैं।

पुण्यश्लोक नल का सारथि वार्ष्णेय इस प्रकार मन में तरह-तरह के तर्क करने लगा। महाराज ऋतुपर्ण भी बाहुक की घोड़े चलाने की असाधारण निपुणता देखकर अत्यन्त आनन्दित हुए। बाहुक की एकाग्रता, उत्साह, घोड़ों को क़ाबू में रखना और बहुत ही सावधानी देखकर ३६ राजा ऋतुपर्ण बहुत प्रसन्न हुए।

बहत्तरवाँ अध्याय

महाराज नल का राजा ऋतुपर्ण से गणना की विद्या और अश्वविद्या सीखना। उनका कलियुग से छुटकारा पाना

बृहदश्व कहते हैं—जैसे पक्षी आकाश में उड़ते हैं वैसे ही बाहुक बड़े वेग से रथ चलाता हुआ अनेक नद, नदी, वन, उपवन, सरोवर और पर्वत आदि को लाँघता-छोड़ता चला जाता था। इसी बीच में ऋतुपर्ण का दुपट्टा शरीर से खिसककर गिर गया। उन्होंने जल्दी से बाहुक से कहा—बाहुक, तुम तनिक रास खींचकर घोड़ों को रोक लो। मेरा दुपट्टा गिर गया है। वार्ष्णेय जाकर उसे ले आवेगा। बाहुक ने कहा—महाराज, आपका कपड़ा खिसककर चार कोस पीछे रह गया है। इस समय वह नहीं लाया जा सकता।

चलते-चलते कुछ दूर पर एक बहेड़े का पेड़ देख पड़ा। उसे देखकर ऋतुपर्ण ने कहा—हे बाहुक, देखो, मैं गिनने में कैसा फ़ुर्तीला और जानकार हूँ। इस बहेड़े के वृक्ष में जितने पत्ते और फल हैं, सो मैं अभी गिनकर तुम्हें बताये देता हूँ। देखो, सभी विषयों को सब लोग नहीं जानते। कोई भी सर्वज्ञ नहीं है। सम्पूर्ण ज्ञान या सब विद्याएँ एक ही व्यक्ति में नहीं हो

सकतीं। इस बहेड़े के वृक्ष में ये जो दो बड़ी शाखाएँ हैं इनमें पाँच करोड़ पत्ते हैं। तुम इन शाखाओं और छोटी डालियों में चाहे गिनकर देख लो, दो हज़ार पचानवे फल हैं। एक सौ एक पत्ते, और एक सौ एक फल पृथ्वी पर गिरे पड़े हैं। १०

ऋतुपर्ण के ये वचन सुनकर बाहुक ने रथ को रोककर कहा—महाराज, आप एक अप्रत्यक्ष विषय में अपनी बड़ाई कर रहे हैं। मैं अभी इस वृक्ष को काटकर इसके पत्तों और फलों को गिनकर देखूँगा। आपका सारथि वार्ष्णेय दम भर के लिए घोड़ों की रास थामे रहे। आपकी इस गिनती के सही होने में मुझे सन्देह है। ऋतुपर्ण ने कहा—बाहुक, व्यर्थ देर करने का कुछ प्रयोजन नहीं। चलो, जल्दी विदर्भ नगर में पहुँचना होगा। बाहुक ने कहा—राजन्, आपको यहाँ दम भर ठहरना होगा। यदि आप ठहरना न चाहें तो वार्ष्णेय सारथि घोड़ों की रास थामकर इस भले मार्ग से आपको विदर्भ देश ले जायगा। राजा ने कहा—हे बाहुक, तुम्हारे जैसा श्रेष्ठ सारथि इस जगत् में दूसरा नहीं है। तुमने सारथि बनना स्वीकार किया है, इसी से आज मैं इस कठिन काम में आगे बढ़ा हूँ। मैं इस समय तुम्हारी शरण में हूँ। विघ्न न करो। यदि आज ही तुम मुझे विदर्भ देश पहुँचा दोगे और सवेरा मुझे वहीं होगा तो तुम जो कहोगे वह तुम्हारी इच्छा मैं पूरी करूँगा। २०

बाहुक ने कहा—महाराज, इस वृक्ष के फलों और पत्तों को गिने बिना मैं किसी तरह यहाँ से नहीं जा सकता। आपको मेरी यह प्रार्थना माननी पड़ेगी। ऋतुपर्ण को लाचार होकर बाहुक का कहना मानना पड़ा। राजा ने बेमन से कहा—अच्छा गिन लो। हे अश्वविद्या के जाननेवाले बाहुक, तुम इस शाखा के केवल एक हिस्से के पत्तों और फलों को गिनकर देख लो। इतने से ही तुमको मेरी गिनती पर विश्वास हो जायगा। बाहुक ने उसी समय रथ से उतरकर वृक्ष को काट डाला। उसके पत्तों और फलों को गिन लेने पर बाहुक को बड़ा अचरज हुआ। उसने कहा—महाराज, मैंने आपकी यह अलौकिक गिनने की शक्ति प्रत्यक्ष देख ली। राजन्, आप जिस विद्या के प्रभाव से पत्तों और फलों की ठीक-ठीक संख्या इतनी जल्दी जान गये उसका हाल सुनने की मुझे बड़ी इच्छा है। कृपा करके बतलाइए। तब चलने के लिए तैयार ऋतुपर्ण ने कहा—हे बाहुक, मैं गणना की विद्या और पाँसों की विद्या में बेजोड़ पण्डित हूँ। बाहुक ने कहा—हे पुरुषश्रेष्ठ, आप मुझे अपनी ये दोनों विद्याएँ सिखा दीजिए। इसके बदले में आपको मैं अश्व-विज्ञान बता दूँगा। अपनी ग़रज़ और घोड़ों की विद्या मिलने के लालच से ऋतुपर्ण ने कहा—हे बाहुक, तुम मुझसे मेरी दोनों विद्याएँ ले लो। मैं अश्वविज्ञान, अभी नहीं, फिर तुमसे सीख लूँगा। बस, ऋतुपर्ण ने अपनी दोनों विद्याएँ बाहुक को दे दीं।

बाहुक नामधारी नल को जब अक्षविद्या (पाँसों की विद्या) प्राप्त हो गई तब दुरात्मा कलियुग, कर्कोटक के तीक्ष्ण विष को मुँह से उगलता हुआ, अक्ष-तत्त्व के ज्ञाता नल के शरीर से

३० बाहर निकल आया। दमयन्ती के शाप से कलियुग मुक्त हो गया। उसके आक्रमण से महात्मा नल अब तक अत्यन्त क्लेश पा रहे थे और अचेत से होकर मूढ़ पुरुष की तरह व्यवहार कर रहे थे। इस समय कलियुग को अपने रूप से सामने खड़ा देखकर नल को क्रोध आ गया। वे उसे शाप देने के लिए तैयार हो गये। तब कलियुग ने काँपते-काँपते हाथ जोड़कर नम्रता के साथ कहा—महाराज, पहले जब आप अकारण दमयन्ती को अकेली वन में छोड़ आये तब उन्होंने अत्यन्त दुखित होकर मुझे शाप दिया था। तभी से मैं दुखित होकर कर्कोटक नाग के विष की यन्त्रणा सहता हुआ आपके शरीर में रहता था। हे शत्रुनाशन, इस समय दमयन्ती के शाप से मेरा छुटकारा हुआ है। अब आप कुपित होकर मुझे शाप मत दीजिए। मैं आपकी शरण में हूँ। महाराज, आप यदि मुझ डरे हुए शरणागत पर क्रोध न दिखाकर शाप नहीं देंगे तो मैं आपको यह वरदान दूँगा कि जगत् में जो कोई आपका नाम लेगा, उसे मुझसे कुछ भी डर न रह जायगा। तब राजा नल ने अपने क्रोध के वेग को रोक लिया। कलियुग भी डर के मारे जल्दी से बहेड़े के वृक्ष में घुस गया। नल के साथ कलियुग को बातें करते और किसी ने नहीं देख पाया। कलियुग के प्रवेश करते ही बहेड़े का वृक्ष छोटा हो गया।

इस प्रकार कलियुग से छुटकारा मिलने पर महाराज नल को शान्ति मिली। अपना स्वाभाविक तेज पाकर, सुस्थ होकर, नल ने वृक्ष के पत्तों और फलों को गिना। फिर परम प्रसन्न

४० होकर, रथ पर चढ़कर, वायु के समान वेग से नल विदर्भ नगर की ओर चले। क्रमशः नल को आँखों की ओट होते देखकर कलियुग भी उस वृक्ष से निकलकर अपने स्थान को गया। महाराज नल का कलियुग से छुटकारा तो हो गया किन्तु उनका रूप वैसा ही बना रहा;

४३ उसमें कुछ परिवर्त्तन नहीं हुआ।
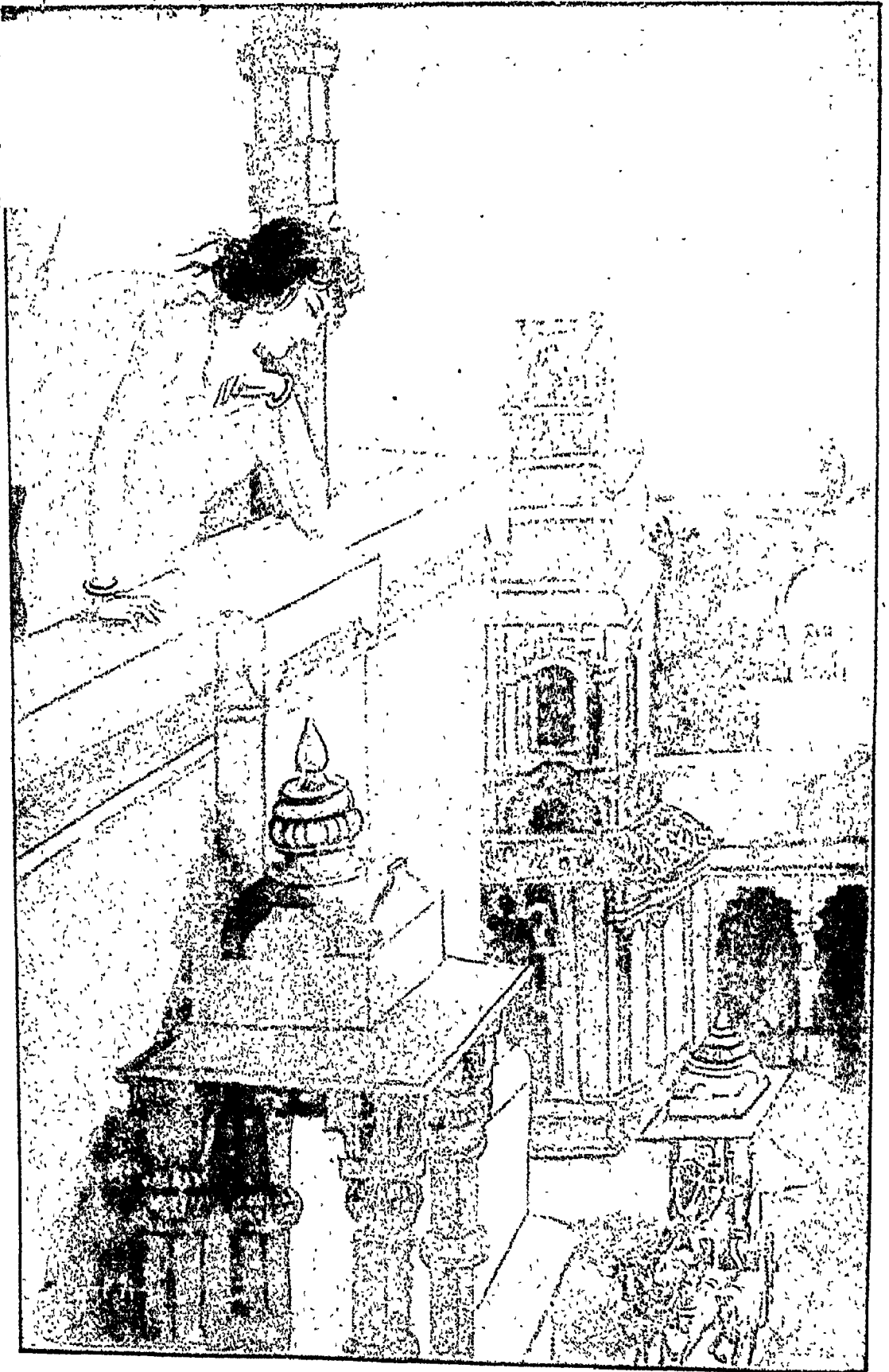
वहाँ से उसने देखा, वार्ष्णेय और बाहुक सारथि के साथ महाराज ऋतुपर्ण मध्यम कक्षा (ड्योढ़ी) में पहुँच गये हैं—पृ० ८४६

तिहत्तरवाँ अध्याय

ऋतुपर्ण का विदर्भ नगर में पहुँचना और दमयन्ती का
नल के सम्बन्ध में सोच-विचार करना

बृहदश्व कहते हैं—महाराज ऋतुपर्ण सन्ध्या के समय विदर्भ देश की राजधानी में जा पहुँचे। राजा भीम ने, उनके आने की ख़बर पाते ही, उन्हें राजमहल में ले आने के लिए जल्दी से अपने आदमियों को भेजा। तब महाराज ऋतुपर्ण रथ के पहियों की ध्वनि से दसों दिशाओं को व्याप्त करते हुए राजधानी के भीतर गये। पहले नल के आने पर जैसे उनके घोड़े सन्तुष्ट होते थे वैसे ही इस समय, ऋतुपर्ण के रथ का शब्द सुनकर, वे प्रसन्नता प्रकट करने लगे। [वार्ष्णेय पहले ही नल के रथ और घोड़ों को विदर्भ देश में छोड़ गया था।] वर्षाकाल के मेघ के गरजने के समान रथ के पहियों की घरघराहट सुनकर दमयन्ती को बड़ा अचरज हुआ। वह सोचने लगी कि पहले महाराज नल जब रथ चलाते थे तब ऐसा ही शब्द होता था। महलों पर बैठे हुए मोर और हस्तिशाला में बँधे हुए हाथी, बादल की गरज के समान उस रथ के शब्द को सुनकर, नाचने-बोलने और गरजने लगे। दमयन्ती ने [चारों ओर निहारकर] मन में कहा कि आज मेरे मन में जैसा आनन्द हो रहा है उससे जान पड़ता है कि प्राणनाथ से आज भेंट हो जाना असम्भव नहीं। आज यदि सब गुणों से अलंकृत नल के विमल मुख-कमल को न देख पाऊँगी तो प्रतिज्ञा करती हूँ कि मैं इन प्राणों को न रक्खूँगी। आज अगर महाराज नल की भुजाओं के भीतर होकर उनके हृदय से लग न पाऊँगी तो प्राण त्याग दूँगी। [आज जो महाराज नल मुझसे नहीं मिले और उन्होंने बातचीत न की तो मैं निस्सन्देह आत्महत्या कर लूँगी।] अगर वे गजराज और सिंह के समान पराक्रमी नल मेरे पास नहीं आये तो मैं जलती हुई आग में कूदकर मर जाऊँगी। मैंने कभी झूठ बोलकर उन्हें धोखा नहीं दिया, कभी उनकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ काम नहीं किया। वे क्षमाशील, उदार, दयालु, मेरे स्वामी और प्रभु हैं। उन्होंने कभी पराई स्त्री का मुँह तक नहीं देखा। अब तक मैं उन्हीं में मन लगाये हुए उन्हीं का ध्यान कर रही हूँ। उनके विरह से उत्पन्न शोक से मेरा हृदय फटा जा रहा है। १०

अपने मन में इस तरह विलाप और सन्ताप करके, पुण्यश्लोक नल के दर्शन की इच्छा से, दमयन्ती बिलकुल ही अचेत की तरह महल के ऊपर जा चढ़ी। वहाँ से उसने देखा, वार्ष्णेय और बाहुक सारथि के साथ महाराज ऋतुपर्ण मध्यम कक्षा (ड्योढ़ी) में पहुँच गये हैं। इसके बाद वार्ष्णेय और बाहुक ने रथ से उतरकर, घोड़ों को खोलकर, रथ खड़ा कर दिया। ऋतुपर्ण रथ से उतरकर राजा भीम के पास आये। महाराज भीम ने समुचित सत्कार के साथ उनकी अभ्यर्थना की। अयोध्यानाथ ऋतुपर्ण विचित्र आसन पर बैठकर मन ही मन स्वयंवर के सम्बन्ध की २०

बातों पर विचार करने लगे। अब तक उन्हें इस बात की खबर न थी कि दमयन्ती ने पिता से बिना कहे, केवल माता से ही सलाह करके, उनके पास अयोध्या को दूत भेजा था।

इधर विदर्भ-नरेश भीम भी अकस्मात् ऋतुपर्ण के आने का कुछ भी मतलब नहीं जानते थे। उन्होंने स्वागत-प्रश्न के उपरान्त उनसे अपने यहाँ आने का कारण पूछा; राजा भीम को पता न था कि उनकी लड़की के लिए ऋतुपर्ण आये हैं। [तब ऋतुपर्ण बड़े असमञ्जस में पड़े। वे कुछ निश्चय न कर सके कि भीम नरेश के प्रश्न का क्या उत्तर दें। वे एकाएक क्या कहकर स्वयंवर की बात का उल्लेख करते !] ऋतुपर्ण ने देखा कि वहाँ न और कोई राजपुत्र आया है, न वहाँ कुछ स्वयंवर की चर्चा है और न ब्राह्मणों की भीड़भाड़ है। थोड़ी देर रुककर उन्होंने कहा—महाराज, [बहुत दिनों से आपसे भेंट नहीं हुई थी, इसी से] आपसे मिलने आया हूँ। ऋतुपर्ण के बताये इस कारण को सुनकर भीम राजा को सन्देह हुआ। उन्होंने मन में कहा कि चार सौ कोस से भी अधिक राह चलकर यहाँ इनके आने का कारण क्या है, सो कुछ समझ में नहीं आया। इन्होंने जो कारण बताया, वह बिलकुल साधारण जान पड़ता है। ख़ैर, बाद को अवश्य इसका गूढ़ कारण मालूम हो जायगा।

अब राजा भीम ने ऋतुपर्ण से कहा—महाशय, दूर से चलकर आने से आप बहुत थक गये होंगे, इससे विश्राम कीजिए। नौकरों-सहित ऋतुपर्ण बतलाये हुए विश्राम-भवन में गये। इधर बाहुक ने घोड़ों की सेवा करके रथ को रथशाला में रख दिया। फिर वह उसी रथ के भीतर जा बैठा। राजा ऋतुपर्ण, वार्ष्णेय और कपटवेषधारी बाहुक को देखकर दमयन्ती मन में बराबर चिन्ता करने लगी कि रथ के आते समय उसके पहियों की घरघराहट सुनकर मैंने सोचा था कि महात्मा नल ही आ रहे हैं; किन्तु वे तो नहीं देख पड़ते। उधर वह रथ का शब्द लगातार कानों में गूँजकर महात्मा नल की सी याद दिला रहा है। वार्ष्णेय भी महात्मा नल के समान अश्वविज्ञान-विद्या को जानता है। इसी कारण उसके हाँकने से इस रथ के पहियों का वैसा ही शब्द हो रहा है! अथवा यह बात है कि महाराज ऋतुपर्ण भी महात्मा नल के समान रथ को चला सकते हों। बहुत देर तक तर्क-वितर्क करके दमयन्ती ने एक दासी को, नल का पता लगाने के लिए, रथशाला में भेजा।

चौहत्तरवाँ अध्याय

बाहुक और केशिनी का संवाद

अब दमयन्ती ने केशिनी नाम की दासी को बुलाकर कहा—हे केशिनी, तुम एक बार इस छोटी-छोटी बाहुओंवाले, विकृत-शरीर, सारथि के पास जाओ और उसका परिचय प्राप्त

करो। उसे जब से देखा है तभी से मेरा मन और हृदय सन्तुष्ट सा हो रहा है, इससे जान पड़ता है कि वही महाराज पुण्यश्लोक नल हैं। तुम इस पुरुष के पास जाकर बातचीत करो। उसी प्रसङ्ग में पर्णाद के वचन सुनाना। उस पर यह जो जवाब दे वह याद रखना और मेरे पास आकर सब कहना। दमयन्ती इस प्रकार केशिनी को बाहुक के पास भेजकर, उत्कण्ठित होकर, राजमहल की छत पर जा चढ़ी।

दमयन्ती की आज्ञा से केशिनी ने बाहुक के पास जाकर नम्र मधुर वचनों से कुशल-प्रश्न किया। केशिनी ने कहा—महाशय, आप लोग किस समय अयोध्या से चलकर इस समय यहाँ पहुँचे हैं? यहाँ आप लोगों के आने का कारण क्या है? हमारी स्वामिनी दमयन्ती ने यह जानने के लिए मुझे यहाँ भेजा है। वे जानना चाहती हैं। इस कारण आप विशेष रूप से सब वृत्तान्त कहिए।

बाहुक ने कहा—महाराज कोशलपति ऋतुपर्ण ब्राह्मण के मुँह से दमयन्ती के दुबारा (कल) होनेवाले स्वयंवर की ख़बर पाकर वायु के समान तेज़, ४०० कोस चलनेवाले, घोड़ों की सहायता से यहाँ आये हैं। मैं उन्हीं का सारथी हूँ।

केशिनी ने कहा—महाशय, आप कौन हैं? आप किसके सेवक हैं? आपको किसलिए यह काम सौंपा गया है? यह तीसरा आदमी किसका कौन है, कहाँ से आया है? १०

बाहुक ने कहा—हे शुभे, यह तीसरा व्यक्ति पुण्यश्लोक नल का सारथि है। इसका नाम वार्ष्णेय है। राजा नल जब राज्य हारकर चले गये तब वार्ष्णेय ने ऋतुपर्ण के यहाँ जाकर सारथि के काम में नौकरी कर ली। मैं भी घोड़ों की विद्या का जानकार हूँ। इसलिए महाराज ने मुझे अपना सारथि बना लिया है। मैं रसोई बनाने में भी बड़ा चतुर हूँ। इसी से कभी-कभी महाराज का भोजन भी बनाता हूँ।

केशिनी ने पूछा—महाशय, महाराज नल कहाँ चले गये हैं? वार्ष्णेय को क्या यह मालूम है? या उसने कभी आपके आगे यह बात कही है? बाहुक ने कहा—हे भद्रे, पुण्यश्लोक नल के जाने के पहले ही वार्ष्णेय उनके पुत्र और कन्या को लेकर विदर्भ नगर को चला

आया था। यहाँ से वह अयोध्या को गया। इसके सिवा और कुछ भी वार्ष्णेय नहीं कह सकता। इस बारे में और किसी का कुछ कहना सम्भव नहीं। महाराज नल ने राज्य से भ्रष्ट होकर कपटवेष धारण कर लिया था। उन्होंने अपने स्वाभाविक सौन्दर्य से हीन होकर क्या किया, सो केवल वही बता सकते हैं। और कोई रत्ती भर इसका हाल नहीं जानता।

केशिनी ने कहा—महाशय, पहले आपके पास अयोध्यापुरी में एक ब्राह्मण ने जाकर बारम्बार, स्त्री के कहे हुए, ये वाक्य कहे थे कि "हे धूर्त, अपनी पतिव्रता स्त्री को, अपने ऊपर अत्यन्त अनुराग रखनेवाली जानकर भी उसकी आधी धोती फाड़कर, तुम क्यों निपट निठुर की तरह वन में छोड़कर भाग आये? तुम जो कुछ आज्ञा दे आये थे उसको वह अब तक बड़े कष्ट और यत्न से निवाहती चली आ रही है। वही आधी धोती पहने, दिन-रात आँखों में आँसू भरे, अत्यन्त शोक और सन्ताप प्रकट किया करती है। इसलिए तुम प्रसन्न होकर इस बात का उत्तर दो।" महाशय, आपने इसके उत्तर में जो कुछ उपदेश-वचन कहे थे उन्हें हमारी राजकुमारी फिर सुना चाहती हैं।

२० केशिनी के ये वचन सुनकर नल का हृदय मानों फटने लगा। आँखों में आँसू आ गये। पहले दमयन्ती के पूर्वोक्त वचन सुनकर बाहुक ने पर्णाद ब्राह्मण से जो कुछ कहा था वही इस समय भी, अपने सन्ताप और दुःख के वेग को रोककर, महाराज नल कहने लगे। बाहुक नामधारी नल ने कहा—कुल-स्त्रियाँ घोर सङ्कट में पड़कर भी ख़ुद अपनी रक्षा करती हैं। इसी से वे अन्त को स्वर्गवास का सुख पाती हैं। दैवयोग से अगर स्वामी उनको छोड़ देते हैं तो भी वे किसी तरह उन पर कोप नहीं करतीं बल्कि सदाचार की रक्षा करती हुई अपने धर्म का पालन करती हैं। इस कारण महाराज नल ने यदि वैसी बुरी दशा में पड़कर, भ्रष्टबुद्धि होकर, दमयन्ती को छोड़ दिया है तो उसके लिए दमयन्ती को उन पर क्रोध या असन्तोष प्रकट न करना चाहिए। खाने के लिए चिड़ियाँ पकड़ने को उन्होंने धोती फेंकी तो वे उसे ले भागीं इससे राजा नल दुखी थे। इसके सिवा आपदाओं ने उन्हें सता रक्खा था। महाराज नल दमयन्ती के प्रति स्नेह का भाव प्रकट करें या न करें, तो भी उन्हें राज्य से भ्रष्ट, श्रीहीन और विवर्ण देखकर दमयन्ती को किसी तरह क्रोध करना उचित नहीं।

इस प्रकार बीते हुए वृत्तान्त का वर्णन करते-करते नल का हृदय ऐसा व्यथित हो उठा कि वे अपने शोक के वेग को दबा नहीं सके। उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली।

पास खड़ी हुई केशिनी बाहुक के वाक्य सुनकर और उनको आँसू बहाते देखकर दमयन्ती के पास गई। उसने आदि से अन्त तक सब हाल उसे कह सुनाया। ३१

पचहत्तरवाँ अध्याय

दमयन्ती का कई प्रकार से नल की जांच-पड़ताल करना

बृहदश्व कहते हैं—राजन्, केशिनी के मुँह से वाहुक का सब हाल जानकर दमयन्ती ने अनुमान कर लिया कि वही नल हैं। वह मन ही मन नल के सम्बन्ध की अनेक बातों का ध्यान करके शोक से व्याकुल होने लगी। उसने केशिनी को सम्बोधन करके कहा—हे केशिनी, तुम फिर वाहुक के पास जाकर उनसे कुछ न कहो, केवल उनके चरित्र की जाँच करो; मन लगाकर उनके सब कामों और चेष्टाओं की देखभाल करो। अगर वाहुक आग और पानी माँगें तो न देना। अगर एक-आध बार देना भी तो बहुत देर कर देना। तुम इस तरह के बर्ताव से उनकी जाँच करना। तुम्हारे ऐसे व्यवहार के बाद वे जो कुछ करें सो तुम आकर मुझसे कहना। इसके सिवा उनके जो लौकिक और अलौकिक काम देखना, उन सब पर विशेष लक्ष्य रखकर सब हाल मुझसे कह देना। यों समझाकर दमयन्ती ने केशिनी को फिर वाहुक के पास भेजा।

दमयन्ती की आज्ञा से केशिनी वाहुक के पास गई। वहाँ रहकर वाहुक के सब कामों और चेष्टाओं पर लक्ष्य रखकर केशिनी दमयन्ती के पास लौट गई। वहाँ जाकर उसने कहा—हे राजकुमारी, मैंने पहले कभी वाहुक के समान आदमी देखा-सुना नहीं। आग और पानी आदि पदार्थ भी उनकी आज्ञा मानते हैं। छोटे से छोटे द्वार में घुसते समय भी वे न तो झुकते हैं और न सिकुड़ते हैं—दरवाज़ा अपने आप बढ़ जाता है। महाराज भीम ने ऋतुपर्ण के लिए जो सामग्री भेजी थी उसमें बहुत से पशुओं का कच्चा मांस भी था। उस मांस को धोने के लिए १० बहुत से ख़ाली घड़े रक्खे थे। वाहुक के देखते ही वे सब घड़े पानी से भर गये। उस पानी से सब भोजन-सामग्री धोकर वाहुक ने चूल्हे पर चढ़ा दी। फिर मुट्ठी भर तिनके हाथ में लेकर थोड़ी देर तक सूर्यदेव की ओर देखा [स्तोत्र पढ़ा] तो वे तिनके जल उठे। मैं यह सब अपनी आँखों देख आई हूँ। और भी कई अद्भुत बातें मैंने देखी हैं। वे आग को छूकर भी नहीं जलते। उनके इच्छा करते ही पानी उनके पास होकर बहता है। मैंने यह भी देखा कि उन्होंने बहुत से फूलों को धीरे-धीरे हाथों से मल डाला किन्तु वे फूल जैसे के तैसे बने रहे; उनमें कुछ भी विकार नहीं देख पड़ा। उनमें से पहले से भी अधिक सुगन्ध निकलने लगी। इन अद्भुत बातों को देखकर मैं बहुत ही चकरा गई हूँ। यह सब देखकर मैं आपके पास दौड़ी आई हूँ।

बृहदश्व कहते हैं—केशिनी के मुँह से वाहुक के इन अलौकिक कामों की बात सुनकर दमयन्ती ने मन ही मन उन्हीं को अपना प्राणनाथ समझ लिया। परन्तु बिलकुल ही सन्देह न रहने देने के लिए वह अनेक प्रकार के कौशलों से काम लेने लगी। रोती हुई दमयन्ती ने फिर केशिनी को बुलाकर कहा—केशिनी, तुम एक बार फिर वाहुक के पास जाओ और वहाँ से,

२० रसोई से, बाहुक का पकाया हुआ मांस ले आओ। केशिनी ने उसी दम जाकर, [बाहुक को और काम में लगा पाकर,] थोड़ा सा गर्म मांस निकाल लिया और दमयन्ती को लाकर दिया। उस मांस को चखकर, उसका स्वाद देखकर, दमयन्ती को विश्वास हो गया कि बाहुक महाराज नल ही हैं। वह बहुत देर तक रोती रही। फिर उसने मुँह धोया और केशिनी के साथ अपने बेटे और बेटी को नल के पास भेजा। देव-बालकों के सदृश अपने बच्चों को बहुत दिनों के बाद देखकर नल का हृदय स्नेहरस से भर गया। वे आनन्दपूर्वक केशिनी की गोद से दोनों बालकों को लेकर, अपनी गोद में बिठाकर, बारम्बार उनके मुँह को निहारने लगे। [इसी बीच में बीता हुआ वृत्तान्त याद हो आने से वे व्याकुल हो उठे।] उनका शोक उमड़ पड़ा। किसी तरह आँसुओं को रोक न सकने के कारण वे ज़ोर से रोने लगे। फिर अपने वृत्तान्त को छिपाये रखने के लिए उन्होंने, एकाएक बच्चों को गोद से उतारकर, केशिनी से कहा—भद्रे, अपने बालकों के समान रङ्ग-रूपवाले इन बच्चों को देखने से ही मेरे आँसू बह चले। [तुम और तरह की शङ्का न करना।] मैं इस देश में अतिथि-रूप से आया हूँ। तुम अगर बारम्बार मेरे पास आओगी,
२८ तो लोग तरह-तरह के सन्देह करने लगेंगे। तुम यहाँ से जाओ।

छिहत्तरवाँ अध्याय

नल और दमयन्ती की भेंट

बृहदश्व कहते हैं—महाराज, बाहुक के चित्त का ऐसा विकार देखकर केशिनी दमयन्ती के पास गई। वहाँ उसने सब हाल कह सुनाया। पति के वियोग से व्याकुल दमयन्ती नल से मिलने के लिए आतुर हो गई। उसने उसी समय केशिनी से कहा कि तुम झटपट जाकर मेरी माता से यह सब हाल कहो। उनसे कहना कि राजकुमारी दमयन्ती ने अनेक युक्तियों के द्वारा परीक्षा करके जान लिया है कि बाहुक ही महाराज नल हैं। केवल उनके रूप को देखकर उसे सन्देह हो रहा है। सो उस बारे में वह ख़ुद मिलकर जानना चाहती है। कुमारी चाहती है कि महाराज भीम को जताकर या उन्हें बिना जताये ही आप या तो बाहुक को महल के भीतर बुला लीजिए, या कुमारी को बाहुक के पास जाकर उनसे मिलने की आज्ञा दीजिए।

केशिनी ने जाकर रानी से कहा। रानी ने जाकर महाराज भीम को सब हाल जताया। उन्होंने दमयन्ती के इरादे को सुनकर पसन्द किया। माता की आज्ञा पाकर दमयन्ती ने अपने भवन की ड्योढ़ी में बाहुक-नामधारी नल को बुलाया। बहुत समय के बाद अपनी पतिव्रता धर्मपत्नी को देखकर राजा नल एकदम शोक के समुद्र में डूब गये। वे आँसू बहाने लगे। नल की ऐसी दशा देखकर दमयन्ती को बड़ा शोक हुआ।

मलिन शरीरवाली दमयन्ती गेरुए कपड़े पहने थी; उसके बाल रूखे और उलझे हुए थे। अपने हृदय का दुःख प्रकट करती हुई वह बाहुक से कहने लगी—हे बाहुक, तुमने पहले कभी ऐसे किसी धर्मात्मा पुरुष को देखा है, जिसने अपनी स्त्री को सोते में वन के बीच छोड़ दिया हो और आप चल दिया हो? पुण्यश्लोक नल के सिवा और किस महापुरुष ने बिना किसी अपराध के अपनी प्यारी स्त्री को बिलकुल अनाथ करके वन में छोड़ दिया है? मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि मैंने भूलकर भी अब तक उनका कोई ऐसा अपराध नहीं किया जिसके कारण वे मुझे ऐसी अवस्था में छोड़ जा सकते। पहले मैंने स्वयंवर की सभा में साक्षात् लोकपाल देवताओं को छोड़कर उन्हें अपना पति बनाया। उन्होंने मुझे पतिप्राणा, अत्यन्त अनुरागिणी और पुत्रवती देखकर भी न जाने किस दोष से छोड़ दिया। विवाह के समय उन्होंने कहा था—"इन देवताओं को और अग्नि को साक्षी बनाकर कहता हूँ कि मैं जन्म भर के लिए तुम्हारी आज्ञा का अनुगामी पति होता हूँ।" इस समय उनका वह सत्यवादी होना कहाँ गया? इस प्रकार अनेक विलाप-वचनों से बीते हुए वृत्तान्त का परिचय देते-देते दमयन्ती के हृदय में शोक का वेग प्रबल हो उठा। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे।

१०

दमयन्ती को रोते देखकर महाराज नल बोले—हे भीरु, मैं जो अपने राज्य से चला आया और तुमको विशुद्ध पतिव्रता जानकर भी छोड़ आया, उसमें मेरा रत्ती भर भी अपराध नहीं है; क्योंकि कलियुग के प्रभाव से ही यह दुर्घटना हुई है। प्रिये, मेरी अनुगामिनी होकर, मेरी दुर्दशा देख अत्यन्त दुखित होकर, तुमने जिसे शाप दिया था वही कलियुग, आग के भीतर आग की तरह, तुम्हारे शाप और कर्कोटक नाग के विष की आग से जलता हुआ बड़े कष्ट से मेरे शरीर में रहता था। मेरे आचार-व्यवहार और तपस्या के प्रभाव से [मेरे शरीर के भीतर रहने

२० में] असमर्थ होकर पापरूप कलियुग अब मुझे छोड़कर चला गया है। जान पड़ता है, अब हमारे दुःखों के अन्त का समय आ गया। प्यारी, मैं केवल तुम्हारे ही लिए यहाँ आया हूँ। मैं यह अच्छी तरह जानता था कि तुम्हारे समान पतिव्रता स्त्री का अपने वशवर्त्ती और अनुरक्त पति को छोड़कर दूसरे से ब्याह करना असम्भव है। किन्तु दूर-दूर तक यह समाचार फैल गया है कि राजा भीम की कन्या दमयन्ती, कुलटा स्त्रियों की तरह, दुबारा अपना ब्याह करना चाहती है। अयोध्या-नरेश ऋतुपर्ण भी यह ख़बर सुनते ही तुम्हारे पिता के यहाँ आ पहुँचे हैं।

नल के वचन सुनकर दमयन्ती बहुत ही घबराई और काँपने लगी। फिर हाथ जोड़कर उसने कहा—महाभाग, आप जानते हैं कि मैंने देवताओं को छोड़कर आपको अपना पति बनाया है। इस समय मेरे ऊपर ऐसा दोष लगाकर मुझ पर सन्देह करना अपको उचित नहीं। मेरी बातों को कहते हुए जो ब्राह्मण आपका पता लगाने इधर-उधर भेजे गये थे, उनमें से पर्णाद नाम के ब्राह्मण ने राजा ऋतुपर्ण के यहाँ आपको देखा। उस ब्राह्मण ने आपके आगे भी वही बातें कहीं जो मैंने उससे कह दी थीं। आपने उनका जो उत्तर दिया वह उसने आकर मुझसे कह दिया। तब आपको यहाँ लाने के लिए मैंने यह उपाय सोचा। मुझे अच्छी तरह मालूम था कि आपके ३० सिवा और कोई एक दिन में घोड़े हाँककर चार सौ कोस जा नहीं सकता। मैं आपके चरण छूकर सौगन्द खाती हूँ कि मैंने भूलकर भी किसी पाप को अपने हृदय में स्थान नहीं दिया। हे नाथ, मैं आपके आगे सौगन्द खाती हूँ कि यदि मैंने कभी कोई बुरा आचरण किया हो तो सब प्राणियों के भले-बुरे कामों के साक्षी सदागति वायुदेव मेरे प्राणों को नष्ट कर डालें। यदि मैंने किसी पाप का आचरण किया हो तो सब प्राणियों के साक्षी भगवान् सूर्य अभी मेरे प्राणों को नष्ट कर दें। यदि मन-वाणी-काया से मैंने कभी कुछ बुरा आचरण किया हो तो सब लोकों के साक्षी चन्द्रदेव अभी मेरी जान ले लें। हे तीनों देवताओ, आप लोग यथार्थ कह दें कि मैंने अभी तक कुछ अधर्म तो नहीं किया।

अब वायु ने अन्तरिक्ष में स्थित होकर कहा—हे नल, मैं सत्य कहता हूँ कि दमयन्ती ने कभी कुछ बुरा काम नहीं किया। दमयन्ती ने सदा अत्यन्त यत्न के साथ धर्म-कर्म करके अच्छी तरह अपने सतीत्व की रक्षा की है। इन तीनों बीते हुए वर्षों में हम देवताओं ने बराबर दमयन्ती की रक्षा और देख-भाल की है और इस समय आपके विश्वास के लिए साक्षी दे रहे हैं। आपको यहाँ तक बुलाने के लिए ही दमयन्ती ने यह उपाय निकाला था; क्योंकि उसे निश्चय था कि आपके सिवा और कोई एक दिन में चार सौ कोस रथ नहीं ले जा सकता। इस समय सौभाग्य से आप दोनों मिल गये हैं। अब आप बिना किसी सन्देह के मिलकर सुख भोगते हुए शेष जीवन बिताइए। वायु के यों कह चुकने पर स्वर्ग से फूलों की वर्षा होने लगी। देवता ४० नगाड़े बजाने लगे। सुशीतल वायु फूलों की सुवास लेकर मन्द-मन्द चलने लगा।
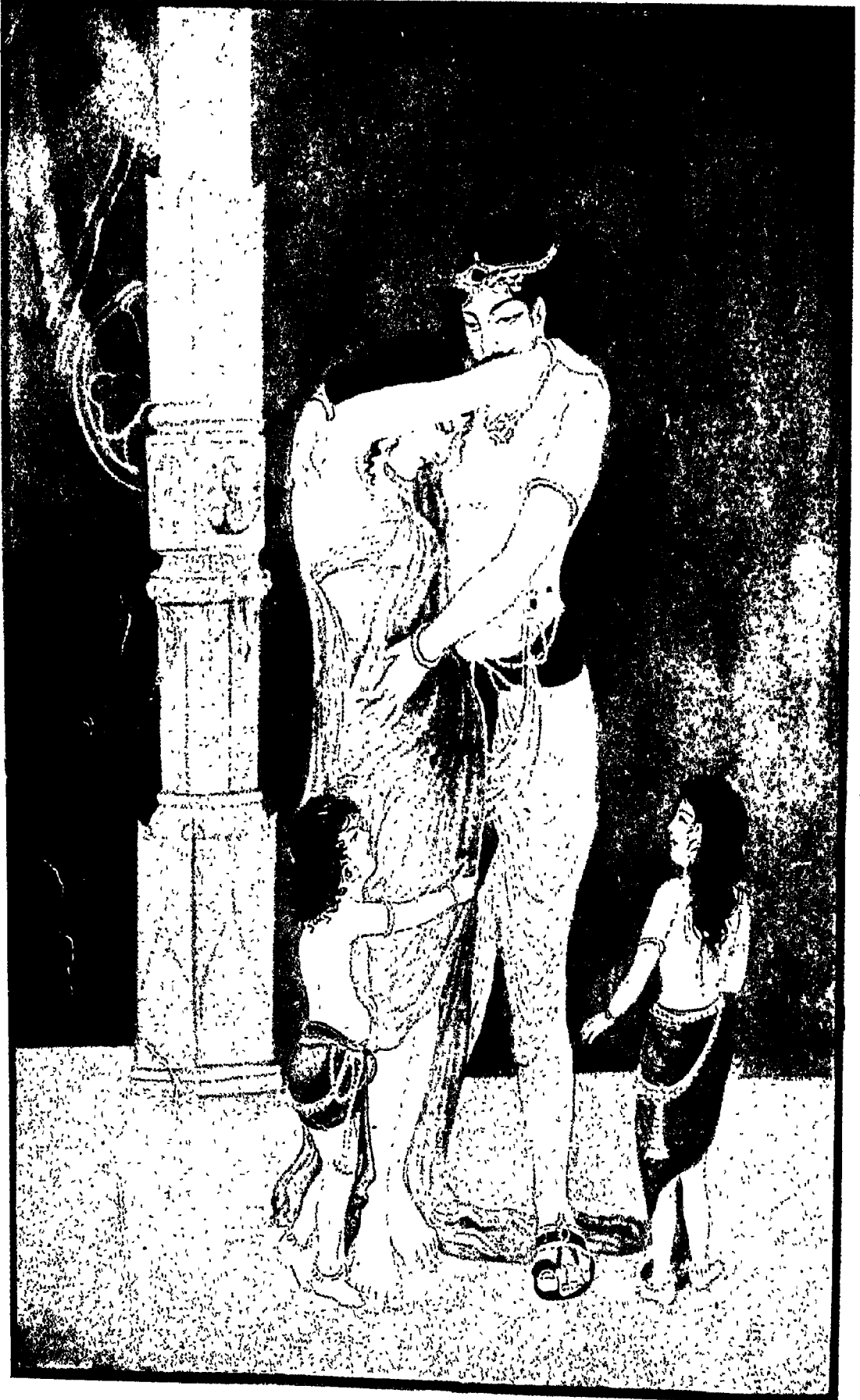
दमयन्ती प्रियतम की छाती पर अपना सिर रख कर, अपने पिछले दुःखों को याद करके,
बारंबार ठंढी साँस लेने लगी—पृ० ८५७

अकस्मात् ऐसी अद्भुत घटना देखकर महाराज नल को दमयन्ती के पतिव्रता होने में ज़रा भी सन्देह नहीं रह गया। पहले का सा अनुराग प्रकट करके राजा नल ने उसी समय दमयन्ती का हाथ पकड़ लिया। नल ने नागराज कर्कोटक के दिये हुए वस्त्र पहनकर ज्योंही उसे स्मरण किया त्योंही उनका रूप पहले का सा हो गया। नल को पहले के समान रूपवान् देखकर दमयन्ती ने उनको गले से लगा लिया। [शोक का वेग उमड़ आने से पहले के दुःखों को स्मरण करके] वह ऊँचे स्वर से रोने लगी। अपनी प्रिया और बेटे-बेटी को देखकर नल ने उन्हें छाती से लगा लिया। पतिव्रता दमयन्ती प्रियतम की छाती पर अपना सिर रखकर, अपने पिछले दुःखों को याद करके, बारम्बार ठण्ढी साँस लेने लगी। विरह-वेषधारिणी, दुबली, मलिन शरीर-वाली दमयन्ती को छाती से लगाकर राजा नल खेद करने लगे।

इधर राजकुमारी दमयन्ती की माता ने नल और दमयन्ती के सम्बन्ध की सब बातें राजा भीम से कहीं। उन्होंने कहा—मैं कल सवेरे कन्या और दामाद को नाती-नातिन-सहित एक आसन पर सुख से बैठे देखूँगा। [आज उन्हें सुखपूर्वक विश्राम करने दो।] रात को राजा नल और दमयन्ती दोनों एक ही जगह सोये। बीती हुई बातें करने में ही उनका अधिक समय बीत गया। महाराज नल ने तीन वर्ष बड़े ही क्लेश से बिताये थे। इस समय अपनी प्यारी पत्नी को पाकर, सब दुःखों को भूलकर, वे परम प्रसन्न हुए। ५०

कच्ची फ़सलवाले खेत जैसे जल पाकर लहलहा उठते हैं वैसे ही अपने पति नल को पाकर दमयन्ती को बड़ा आनन्द हुआ। बिना मेघ के पूर्ण चन्द्र को हृदय में धारण करने से रात जैसी सुहावनी लगती है वैसे ही अपने पति को पाकर, आलस्य और सन्ताप से रहित होकर, दमयन्ती भी शोभायमान हुई। ५३
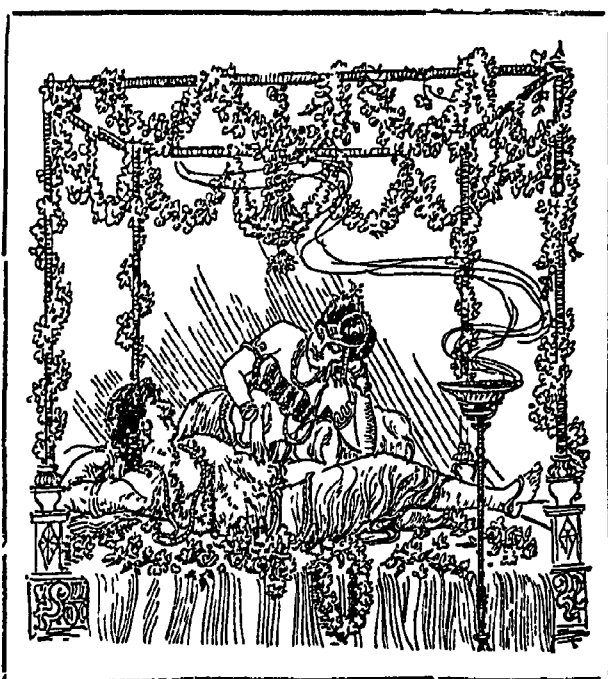
सतहत्तरवाँ अध्याय

राजा ऋतुपर्ण का अश्वविद्या प्राप्त करके अपने नगर को जाना

बृहदश्व कहते हैं—महाराज, दूसरे दिन सबेरे महात्मा नल ने वस्त्र और आभूषण पहने। फिर वे दमयन्ती के साथ राजा भीम के पास गये। वहाँ जाकर नल ने राजा के चरणों में प्रणाम

किया। दमयन्ती ने भी पिता को प्रणाम किया। राजा भीम ने अपने दामाद का आदर, बेटे की तरह, किया और ढाढ़स बँधाया। अपने ससुर से ऐसा आदर-सत्कार पाकर महात्मा नल ने कृतज्ञता प्रकट की। सब नगरवासी लोग बहुत दिनों के बाद नल को आये देखकर बहुत ही सुखी हुए। नगर में चारों ओर हर्ष-सूचक कोलाहल होने लगा। हर एक घर में अनेक प्रकार के हर्ष-सूचक उत्सव होने लगे। हर एक द्वार पर [जल से भरे कलश,] पताका और वन्दनवार शोभा बढ़ाने लगे। सड़कों पर सुगन्धित जल का छिड़काव हो गया। [फूलों की वर्षा होने लगी।] चारों ओर रङ्ग-बिरङ्गी ध्वजाएँ फहराने लगीं। [नगर भर की अपूर्व शोभा हो गई।] नगरवासी लोग तरह-तरह के पुष्पोपहार ले-लेकर देवमन्दिरों में देवताओं की पूजा करने लगे।

उधर महाराज ऋतुपर्ण भी यह सुनकर बड़े प्रसन्न हुए कि बाहुकवेषधारी महाराज नल ही थे और वे अब अपनी प्रियतमा पत्नी दमयन्ती के साथ हैं। ऋतुपर्ण ने उसी समय महाराज नल को सम्मान के साथ बुलाया और विनयपूर्ण मधुर वचनों से कहा—हे निषध-नरेश, आप बहुत दिनों के बाद अपने प्रिय परिवार से मिले, इससे मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। अब कृपा करके आप मुझे क्षमा-प्रदान कीजिए। आप जब तक मेरे यहाँ कपट-वेष से रहे, उस बीच में यदि मैंने जानकर या बिना जाने आपका कुछ अपराध किया हो तो, मैं प्रार्थना करता हूँ, दयापूर्वक उसे क्षमा कर दीजिए।

[ऋतुपर्ण के ये वचन सुनकर] नल ने कहा—हे नरश्रेष्ठ, मैं सच कहता हूँ, आपने कभी मेरा कुछ अपराध नहीं किया। और, यदि कभी भूल से या बिना जाने कुछ अपराध आपसे बन पड़ा भी हो तो उसके लिए मैं आप पर क्रोध नहीं कर सकता। मुझे क्षमा ही करनी चाहिए। आप मेरे पहले से ही सखा और सम्बन्धी थे। इस कारण क्षमा-प्रार्थना की कुछ ज़रूरत नहीं। आप खेद न करें, प्रसन्न हों और मुझसे पहले के समान ही प्रीति रक्खें। मैं आपके यहाँ इतने दिनों तक बड़े सुख से रहा। ऐसा सुख मुझे और कहीं नहीं मिल सकता था। अस्तु, आपने जो अश्वविज्ञान-विद्या मेरे पास धरोहर के तौर पर छोड़ रक्खी है उसे कब लीजिएगा? आप चाहें तो मैं अभी देने को तैयार हूँ। तब महाराज ऋतुपर्ण ने नल से अश्वविज्ञान-विद्या सीखी

और उसके बदले में नल को अक्षविद्या (पाँसों) का कौशल सिखाया। फिर अन्य एक सारथि को लेकर, रथ पर चढ़कर, वे अपने राज्य को चल दिये। ऋतुपर्ण के चले जाने पर नल भी थोड़े समय तक विदर्भ नगर में रहे। २०

अठहत्तरवाँ अध्याय

नल का पुष्कर से फिर राज्य प्राप्त करना

बृहदश्व कहते हैं—धर्मराज, नल एक महीने तक ससुराल में रहे। फिर राजा से विदा हुए और थोड़े से लोगों को साथ लेकर वे अपने देश को चल दिये। केवल एक रथ, सोलह हाथी, पचास घोड़े, और छः सौ पैदल उनके साथ चले। वे तेज़ चाल से मानों पृथ्वी को कँपाते हुए शीघ्र ही अपने राज्य में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने अपने भाई पुष्कर से भेंट की और कहा—भाई, मैं फिर तुमसे जुआ खेलूँगा। अब की मैं बहुत सा धन लाया हूँ। वह देखो, धन-राशि मेरे साथ ही है। इसके सिवा और जो कुछ मेरे पास है उसे, और प्राणों से अधिक प्यारी दमयन्ती को भी, बद देने में मैं आगा-पीछा नहीं करूँगा। आओ, अब अधिक विलम्ब करने की ज़रूरत नहीं। अभी खेल शुरू हो जाय। तुमको भी अपना राज्य [यहाँ तक कि जान भी] बद देने में सकुचना न होगा। दूसरे का राज्य और सारी धन-सम्पत्ति तुमने जीत ली है, सो सब तुमको भी बदना पड़ेगा। शास्त्रकारों ने इसे परम धर्म कहा है। यदि किसी कारण तुम जुआ न खेलना चाहो तो तुमको मुझसे युद्ध करना पड़ेगा। इस युद्ध में और किसी की सहायता न ली जायगी। केवल हमीं दोनों, किसी की सहायता बिना लिये ही, युद्ध करेंगे। उस युद्ध में, तुम या मैं, एक को अवश्य विजय मिलेगी। प्राचीन पण्डितों का कहना है कि जिस तरह हो, पुरखों का राज्य प्राप्त करना चाहिए। इसलिए आओ, या तो फिर जुआ खेलो, या युद्ध के लिए तैयार हो जाओ। १०

नल के वचन सुनकर पुष्कर ने सोचा कि जय तो मेरी ही होगी। उसने तनिक हँसकर कहा—हे निषध-नाथ, आज मैं अपने सौभाग्य का वर्णन नहीं कर सकता; क्योंकि बहुत सा धन लेकर तुम दाँव लगाने आये हो। जान पड़ता है, अब दमयन्ती के बुरे दिन गये। ख़ुशी की बात है कि तुम स्त्री-सहित मौजूद हो। मैं सर्वदा उत्कण्ठा के साथ तुम्हारे आने की प्रतीक्षा किया करता था। जब मैं तुम्हारी सारी धन-सम्पत्ति जीत लूँगा तब अवश्य ही दमयन्ती ख़ुद आकर मुझे भजेगी। उस त्रिलोक-सुन्दरी को मैं आज जुए में जीतकर अपनी अभिलाषा पूरी करूँगा। दमयन्ती को जब मैं जीत लूँगा तब, अप्सराएँ जैसे इन्द्र की सेवा करती हैं वैसे ही, वह मेरी सेवा करेगी।

किया। दमयन्ती ने भी पिता को प्रणाम किया। राजा भीम ने अपने दामाद का आदर, बेटे की तरह, किया और ढाढ़स बँधाया। अपने ससुर से ऐसा आदर-सत्कार पाकर महात्मा नल ने कृतज्ञता प्रकट की। सब नगरवासी लोग बहुत दिनों के बाद नल को आये देखकर बहुत ही सुखी

हुए। नगर में चारों ओर हर्ष-सूचक कोलाहल होने लगा। हर एक घर में अनेक प्रकार के हर्ष-सूचक उत्सव होने लगे। हर एक द्वार पर [जल से भरे कलश,] पताका और वन्दनवार शोभा बढ़ाने लगे। सड़कों पर सुगन्धित जल का छिड़काव हो गया। [फूलों की वर्षा होने लगी।] चारों ओर रङ्ग-बिरङ्गी ध्वजाएँ फहराने लगीं। [नगर भर की अपूर्व शोभा हो गई।] नगरवासी लोग तरह-तरह के पुष्पोपहार ले-लेकर देवमन्दिरों में देवताओं की पूजा करने लगे।

उधर महाराज ऋतुपर्ण भी यह सुनकर बड़े प्रसन्न हुए कि बाहुकवेषधारी महाराज नल ही थे और वे अब अपनी प्रियतमा पत्नी दमयन्ती के साथ हैं। ऋतुपर्ण ने उसी समय महाराज नल को सम्मान के साथ बुलाया और विनयपूर्ण मधुर वचनों से कहा—हे निषध-नरेश, आप बहुत दिनों के बाद अपने प्रिय परिवार से मिले, इससे मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। अब कृपा करके आप मुझे क्षमा-प्रदान कीजिए। आप जब तक मेरे यहाँ कपट-वेष से रहे, उस बीच में यदि मैंने जानकर या बिना जाने आपका कुछ अपराध किया हो तो, मैं प्रार्थना करता हूँ, दयापूर्वक उसे क्षमा कर दीजिए।

[ऋतुपर्ण के ये वचन सुनकर] नल ने कहा—हे नरश्रेष्ठ, मैं सच कहता हूँ, आपने कभी मेरा कुछ अपराध नहीं किया। और, यदि कभी भूल से या बिना जाने कुछ अपराध आपसे बन पड़ा भी हो तो उसके लिए मैं आप पर क्रोध नहीं कर सकता। मुझे क्षमा ही करनी चाहिए। आप मेरे पहले से ही सखा और सम्बन्धी थे। इस कारण क्षमा-प्रार्थना की कुछ ज़रूरत नहीं। आप खेद न करें, प्रसन्न हों और मुझसे पहले के समान ही प्रीति रक्खें। मैं आपके यहाँ इतने दिनों तक बड़े सुख से रहा। ऐसा सुख मुझे और कहीं नहीं मिल सकता था। अस्तु, आपने जो अश्वविज्ञान-विद्या मेरे पास धरोहर के तौर पर छोड़ रक्खी है उसे कब लीजिएगा? आप चाहें तो मैं अभी देने को तैयार हूँ। तब महाराज ऋतुपर्ण ने नल से अश्वविज्ञान-विद्या सीखी

और उसके बदले में नल को अक्षविद्या (पांसों) का कौशल सिखाया। फिर अन्य एक सारथि को लेकर, रथ पर चढ़कर, वे अपने राज्य को चल दिये। ऋतुपर्ण के चले जाने पर नल भी थोड़े समय तक विदर्भ नगर में रहे। २०

अठहत्तरवाँ अध्याय

नल का पुष्कर से फिर राज्य प्राप्त करना

बृहदश्व कहते हैं—धर्मराज, नल एक महीने तक ससुराल में रहे। फिर राजा से विदा हुए और थोड़े से लोगों को साथ लेकर वे अपने देश को चल दिये। केवल एक रथ, सोलह हाथी, पचास घोड़े, और छः सौ पैदल उनके साथ चले। वे तेज़ चाल से मानों पृथ्वी को कँपाते हुए शीघ्र ही अपने राज्य में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने अपने भाई पुष्कर से भेट की और कहा—भाई, मैं फिर तुमसे जुआ खेलूँगा। अब की मैं बहुत सा धन लाया हूँ। वह देखो, धन-राशि मेरे साथ ही है। इसके सिवा और जो कुछ मेरे पास है उसे, और प्राणों से अधिक प्यारी दमयन्ती को भी, बद देने में मैं आगा-पीछा नहीं करूँगा। आओ, अब अधिक विलम्ब करने की ज़रूरत नहीं। अभी खेल शुरू हो जाय। तुमको भी अपना राज्य [यहाँ तक कि जान भी] बद देने में सङ्कुचना न होगा। दूसरे का राज्य और सारी धन-सम्पत्ति तुमने जीत ली है, सो सब तुमको भी बदना पड़ेगा। शास्त्रकारों ने इसे परम धर्म कहा है। यदि किसी कारण तुम जुआ न खेलना चाहो तो तुमको मुझसे युद्ध करना पड़ेगा। इस युद्ध में और किसी की सहायता न ली जायगी। केवल हमीं दोनों, किसी की सहायता बिना लिये ही, युद्ध करेंगे। उस युद्ध में, तुम या मैं, एक को अवश्य विजय मिलेगी। प्राचीन पण्डितों का कहना है कि जिस तरह हो, पुरखों का राज्य प्राप्त करना चाहिए। इसलिए आओ, या तो फिर जुआ खेलो, या युद्ध के लिए तैयार हो जाओ। १०

नल के वचन सुनकर पुष्कर ने सोचा कि जय तो मेरी ही होगी। उसने तनिक हँसकर कहा—हे निषध-नाथ, आज मैं अपने सौभाग्य का वर्णन नहीं कर सकता; क्योंकि बहुत सा धन लेकर तुम दाँव लगाने आये हो। जान पड़ता है, अब दमयन्ती के बुरे दिन गये। ख़ुशी की बात है कि तुम स्त्री-सहित मौजूद हो। मैं सर्वदा उत्कण्ठा के साथ तुम्हारे आने की प्रतीक्षा किया करता था। जब मैं तुम्हारी सारी धन-सम्पत्ति जीत लूँगा तब अवश्य ही दमयन्ती ख़ुद आकर मुझे भजेगी। उस त्रिलोक-सुन्दरी को मैं आज जुए में जीतकर अपनी अभिलाषा पूरी करूँगा। दमयन्ती को जब मैं जीत लूँगा तब, अप्सराएँ जैसे इन्द्र की सेवा करती हैं वैसे ही, वह मेरी सेवा करेगी।

पुष्कर के ऐसे असङ्गत बकवाद को सुनकर नल को बड़ा क्रोध चढ़ आया। वे तलवार से उसी समय पुष्कर का सिर काटने के लिए तैयार हो गये। फिर धैर्य धरकर लाल-लाल आँखें निकालकर उन्होंने कहा—अरे पुष्कर, इस समय तू ऐसा क्यों बक रहा है! जब जुए में हारेगा तब तेरे मुँह से बात भी न निकलेगी। इसके बाद नल और पुष्कर, दोनों खेलने लगे। नल ने एक ही दाँव में पुष्कर का सर्वस्व जीत लिया। पुष्कर ने अपने प्राण तक बद दिये। नल ने उस दाँव को भी जीतकर मुसकाते हुए कहा—अरे राजाओं में अधम, अब तेरी सभी आशाओं २० की जड़ कट गई। मेरा राज्य निष्कण्टक हो गया। अरे नराधम, अब तो दमयन्ती की ओर आँख उठाकर देखने की भी क्षमता तुझे नहीं है। अब सपरिवार तुझको दमयन्ती का दास बनना

पड़ेगा। रे मूढ़, तू नहीं जानता कि केवल कलियुग की सहायता से ही तूने पहले मुझको हरा दिया था। दूसरे की सहायता पर भरोसा करके जीतने में तेरी बहादुरी क्या थी? एक के अपराध से दूसरे के ऊपर क्रोध प्रकट करना ठीक नहीं। [मैं चाहूँ तो अभी तुझे प्राण-दण्ड दे सकता हूँ; किन्तु मैं यह कुछ नहीं करूँगा।] मैं इस समय तुझे जीवन की भिक्षा देता हूँ। तेरी जो सब सम्पत्ति मैंने जीत ली है वह भी तुमको देता हूँ। [लेकर अपने स्थान को जा।] भाई का स्नेह कभी मिट नहीं सकता। तू मेरा छोटा भाई है। तुझ पर मेरी प्रीति पहले की सी ही रहेगी। मैं तुझे आशीर्वाद देता हूँ कि तू चिरजीवी होकर सुख से अपने जीवन का समय बिता।

राजा नल ने भाई पुष्कर को बार-बार गले लगाकर उससे घर जाने के लिए कहा। उसने भक्ति के साथ विनीत भाव से नल के चरण छूकर कहा—राजन्, आपने कृपा करके मुझको धन, प्राण और आश्रय दिया। इस कारण मैं आपका कृतज्ञ रहूँगा। आपकी यह चिरस्मरणीय परम कीर्त्ति कभी नष्ट न होगी। अब मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप चिरजीवी होकर अनन्त काल तक सुस्थ शरीर से अपने साम्राज्य का भोग कीजिए।

पुष्कर महीने भर तक अपने भाई नल के पास रहा। फिर आत्मीय स्वजनों को साथ लेकर वह नल से विदा हुआ और अपने राज्य को गया। उसके चले जाने पर नल ने अपनी प्रजा को बुलाया और बड़े स्नेह के साथ सबको धैर्य दिया। बहुत दिनों के बाद अपने राजा को देखने से

सबको बड़ा आनन्द हुआ। मन्त्री आदि प्रधान-प्रधान पुरवासी प्रजागण नल के पास आकर हाथ जोड़कर विनयपूर्वक कहने लगे—महाराज, आज आपको देखकर हम बड़े सुखी हुए। देवता जैसे स्वर्ग में इन्द्र की उपासना करते हैं वैसे हम लोग फिर आपकी सेवा करने के लिए तैयार हैं। ३३

उन्नासीवाँ अध्याय

नलोपाख्यान की समाप्ति

बृहदश्व कहते हैं—हे धर्मराज, [राजा नल के आने पर] निषध देश की राजधानी भर में उत्सवों की धूम मच गई। अब महाराज नल ने दमयन्ती को पिता के घर से लाने के लिए सेना-सहित सामन्तों को भेजा। विदर्भराज भीम ने बड़ी धूम के साथ अपनी कन्या को नल के पास भेज दिया। अपने पुत्र और कन्या को साथ लेकर दमयन्ती पति के घर को चली। रानी के आने पर नल बड़ी प्रसन्नता से रहने लगे। इसके बाद राजा नल अनेक प्रकार के धर्म-कर्म और बहुत दक्षिणावाले यज्ञ करके अक्षय यश का सञ्चय करने लगे। राजा नल ने अत्यन्त यत्न और परिश्रम के साथ बड़े विस्तृत जम्बूद्वीप का एकछत्र राज्य किया।

हे धर्मराज, आप भी महाराज नल के समान शीघ्र ही फिर अपना राज्य, धन, ऐश्वर्य, और अन्य सब आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त करके परम सुख से जीवन बितावेंगे। [इस समय व्यर्थ चिन्ता में समय बिताना किसी तरह उचित नहीं। इस जगत् में सुख या दुःख सदा बना नहीं रहता।] सोचकर देखिए, राजा नल दैवकोप से जुए में हारकर राज्य से भ्रष्ट हुए, वन-वन में प्रियतमा पत्नी के साथ घूमकर अनेक कष्ट भोगते रहे। अन्त को प्रिया के वियोग का विशेष कष्ट भी उनको भोगना पड़ा। किन्तु फिर उन्होंने अपना राज्य पाया, सैकड़ों प्रकार के धर्म-कर्म किये और वे अपना अमर यश पृथ्वी पर छोड़ गये। आप तो द्रौपदी और भाइयों के साथ इसी वन में रहकर धर्म-कर्म कर रहे हैं। वेद-वेदाङ्ग के ज्ञाता ब्राह्मण सदा आपके साथ रहते हैं। आपका विलाप और सन्ताप करना ठीक नहीं। जो मनुष्य मन लगाकर कर्कोटक नाग, नल, दमयन्ती और राजा ऋतुपर्ण के इतिहास को सुनता है उसे कलियुग से किसी प्रकार का खटका नहीं रहता। राजन्, आप ऐसे व्यक्ति को यह सब वृत्तान्त सुनकर किसी तरह हताश न होना चाहिए। महाराज, पुरुषार्थ की अस्थिरता को जानकर भी आप फिर किसलिए उसके विनाश या अभ्युदय की चिन्ता में मग्न होकर अपने आत्मा को क्लेश दे रहे हैं? विपत्ति के समय शोक करना निपट ही कायर का लक्षण है। इसलिए अब शोक न करके धैर्य धरिए। दैव के प्रतिकूल होने और पौरुष से कुछ न होने पर धीर पुरुष हिम्मत नहीं हारते। १०

जो लोग एकाग्र मन से इस अत्यन्त पवित्र नल-चरित्र को सुनते या कहते हैं उन्हें कभी दारिद्र्य नहीं सताता। वे निस्सन्देह धन और अतुल ऐश्वर्य पाते हैं। वे पुत्र, पौत्र, गाय, घोड़े

आदि को पाकर अनन्त काल तक परम सुखी रहते हैं। उन्हें रोग या शोक नहीं सताता। अब आज्ञा दीजिए, मैं जाना चाहता हूँ। यदि फिर आपको इसी तरह की जुए के कारण होनेवाली आपत्ति का सामना करना पड़े तो आप मुझे स्मरण कीजिएगा। मैं उसी समय आकर उसका प्रतिकार करूँगा। महाराज, मैं अक्षविद्या में अद्वितीय जानकारी रखता हूँ। आप पर प्रसन्न होकर मैं वह विद्या आपको देना चाहता हूँ। इसलिए आप उसे ग्रहण कीजिए।

बृहदश्व के यों कह चुकने पर धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्, पूरी अक्षविद्या सीखने २० की मुझे बड़ी इच्छा है। [यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो कृपा करके वह विद्या मुझे दीजिए।] बृहदश्व ने धर्मराज को अक्षविद्या के साथ ही अश्वविद्या भी दी।* फिर वे स्नान करने को चल दिये। महर्षि बृहदश्व के चले जाने पर युधिष्ठिर ने हिमालय पर्वत पर (उसी तीर्थ, पर्वत और वन) से आये हुए तपस्वियों के मुँह से सुना कि महावीर अर्जुन केवल वायु-भक्षण करके अत्यन्त कठोर तपस्या कर रहे हैं। उनकी तप में तत्परता देखने से जान पड़ता है कि साक्षात् धर्मदेव शरीर धारण किये हुए तप कर रहे हैं। अर्जुन के ऐसे कठोर तप करने का हाल सुनकर धर्मराज बहुत ही दुखी हुए। यह चिन्ता प्रबल होकर उनके हृदय के टुकड़े-टुकड़े करने लगी कि हाय! प्रियतम अर्जुन हम लोगों के लिए कैसे कठिन क्लेश सह रहे हैं! तब महाराज युधि- २७ ष्ठिर बहुदर्शी ब्राह्मणों के शरणागत होकर उनसे अर्जुन के सम्बन्ध की बातें पूछने लगे।

तीर्थयात्रापर्व

अस्सी अध्याय

अर्जुन के विरह में द्रौपदी-सहित पाण्डवों का खेद प्रकट करना

जनमेजय ने कहा—भगवन्, मेरे प्रपितामह अर्जुन जब काम्यक वन से तप करने चले गये तब पाण्डवों ने उनके विरह में क्या किया? विष्णु जैसे आदित्यों में प्रधान हैं वैसे ही महाधनुर्द्धर संग्रामविजयी अर्जुन पाण्डवों में प्रधान और उनके एकमात्र सहारा थे। मेरे प्रपितामह पाण्डव उन इन्द्र के समान पराक्रमी अर्जुन के विरह में किस तरह रहे, यह मुझसे कहिए।

वैशम्पायन ने कहा—तात, सत्यपराक्रमी अर्जुन जब काम्यक वन से चले गये तब पाण्डव शोक में मग्न तथा अत्यन्त उदास होकर, डोरे से अलग मणियों या परकटे पक्षियों की तरह, अत्यन्त दुखी हो गये। वह वन भी अर्जुन के विरह में कुबेरहीन चैत्ररथ वन के समान अत्यन्त शोभाहीन हो गया। हे जनमेजय, इस प्रकार अर्जुन के विरह में अत्यन्त व्याकुल पाण्डव उसी वन में रहकर समय बिताने लगे। वे नित्यप्रति विचित्र बाणों से पवित्र मृग मारकर, उनके मांस

---

* अश्वविद्या के जानकार होने से ही इनका नाम बृहदश्व था।

से और वन में उत्पन्न होनेवाली आहार की अन्यान्य सामग्रियों से ब्राह्मणों को तृप्त करते थे। अर्जुन के वियोग से वे बहुत ही व्याकुल और पीड़ित हो रहे थे। १०

मँझले पाण्डव अर्जुन को स्मरण करके द्रौपदी अत्यन्त व्याकुल रहती थी। उसने युधिष्ठिर को सम्बोधन करके कहा—हे पाण्डवश्रेष्ठ, दो बाहुवाले होकर भी सहस्रबाहु अर्जुन के तुल्य, घनश्याम, मस्त हाथी के समान चलनेवाले अर्जुन के न होने से यह फूले हुए वृक्षों से शोभित विचित्र काम्यक वन सुहावना नहीं जान पड़ता। मुझे यह सारी पृथ्वी ख़ाली सी जँचती है। वज्र के सदृश शब्दवाले गाण्डीव धनुष को धारण करनेवाले अर्जुन को स्मरण करके मुझे कहीं सुख नहीं मिलता।

महाराज, द्रौपदी के ये करुण वाक्य सुनकर भीमसेन ने कहा—हे कल्याणी, मन को प्रसन्न करनेवाले तुम्हारे वचन सुनकर मेरे हृदय में अमृत-पान का सा आनन्द उमड़ रहा है। जिनकी भुजाएँ बेलन के समान गोल और लम्बी हैं, पाँच सिरवाले नाग के समान हैं, धनुष की डोरी के घट्ठों से शोभित हैं, मोटी हैं, और खड्ग, आयुध, धनुष, बिजायठ आदि से शोभित हैं, उन पुरुषसिंह अर्जुन के वियोग में सब कुछ सूर्यहीन आकाश के समान अन्धकारमय प्रतीत होता है। पाञ्चाल और कौरव जिनका आश्रय पाकर युद्ध में पराक्रमी देवसेना को भी नहीं डरते और हम लोग जिनके बाहुबल के सहारे २० युद्ध में शत्रुओं को परास्त और पृथ्वी को अपने हाथ में समझते हैं, उन महाबाहु अर्जुन के बिना इस वन में हमें तनिक भी सुख नहीं है; सब दिशाएँ अन्धकार से ढकी जान पड़ती हैं।

भीमसेन के यों कह चुकने पर नकुल ने गद्गद स्वर से कहा—जिनके युद्धसम्बन्धी कामों की बड़ाई देवता भी करते हैं उन श्रेष्ठ योद्धा अर्जुन के बिना इस वन में सुख क्या है? जिन्होंने राजसूय यज्ञ के समय उत्तर दिशा में जाकर युद्ध में महाबली शत्रुओं को परास्त किया और तीतर के रङ्गवाले, हवा के समान चलनेवाले, सुन्दर घोड़े लाकर युधिष्ठिर को दिये, उन अर्जुन के बिना इस वन में रहना मुझे बिलकुल नहीं रुचता।

सहदेव ने कहा—जिन महारथी ने युद्ध में सब शत्रुओं को हराया और जो उनसे धन और उनकी कन्याएँ ले आये, जो वासुदेव के कहने से सब यादवों को हराकर सुभद्रा को हर

लाये, उन अर्जुन के आसन को ख़ाली पड़ा देखकर मैं किसी तरह धैर्य नहीं धर सकता। उनके वियोग से यह वन मुझे बिलकुल नहीं रुचता। इसलिए मैं अब यहाँ रहना पसन्द नहीं करता। ३०

इक्यासी अध्याय

युधिष्ठिर और नारद का संवाद

वैशम्पायन कहते हैं—द्रौपदी-सहित तीनों पाण्डवों को व्याकुल देखकर और उनके वचन सुनकर युधिष्ठिर उदास हुए। इसी समय ब्राह्मी प्रभा से प्रज्वलित अग्नि के समान प्रकाशमान देवर्षि नारदजी वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखते ही भाइयों-सहित धर्मराज उठ खड़े हुए। फिर उन्होंने मुनिवर की पूजा की। उस समय भाइयों-सहित युधिष्ठिर देवमण्डली से घिरे हुए इन्द्र के समान शोभायमान हो रहे थे। वेद-मार्ग का अनुसरण करनेवाली गायत्री या मेरु पर्वत पर विचरनेवाली सूर्य की अनुगामिनी प्रभा के समान द्रौपदी भी धर्मपालन के लिए अपने पतियों के साथ उठ खड़ी हुई। महर्षि नारद ने उनकी पूजा ग्रहण की और युधिष्ठिर को यथोचित वचनों से धैर्य दिया। फिर पूछा—हे धार्मिकश्रेष्ठ, कहो, तुम्हें क्या चाहिए? मैं तुम्हें क्या दूँ?
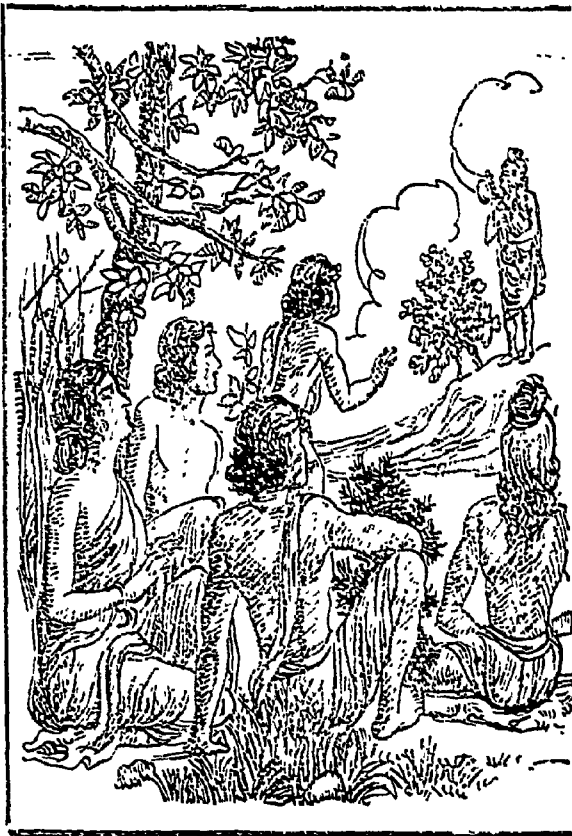
भाइयों-सहित धर्मराज ने उनको प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहा—भगवन्, आप सबके पूजनीय हैं। मैं आपकी प्रसन्नता पाकर ही अपने को कृतार्थ समझता हूँ। यदि भाइयों-सहित मुझ पर आप कृपा ही करना चाहते हैं तो शास्त्र के अनुसार यह वर्णन कीजिए कि जो व्यक्ति तीर्थयात्रा के लिए पृथ्वी पर भ्रमण करता है उसे क्या फल प्राप्त होता है। ११

नारदजी ने कहा—महाराज, बुद्धिमान् भीष्म पितामह ने पुलस्त्य से यही बात पूछी थी। पुलस्त्य ने जो कुछ उनसे कहा है सो मैं तुमसे कहता हूँ, एकाग्र होकर सुनो। एक समय धार्मिकश्रेष्ठ महातपस्वी भीष्म, पैतृक व्रत का अनुष्ठान करके, मुनियों के साथ गङ्गा के तट पर टिके हुए थे। देव, गन्धर्व और देवर्षिगण सदा हरद्वार में आते-जाते रहते हैं। उस पवित्र क्षेममय प्रदेश में एक समय महात्मा भीष्म शास्त्रोक्त विधि के अनुसार देवताओं, ऋषियों और पितरों का

तर्पण करके बैठे थे, इसी समय उन्हें अद्भुत और उग्र तपस्या करनेवाले महर्षि पुलस्त्य ने दर्शन दिये। पुलस्त्य को देखकर धर्मात्मा भीष्म अत्यन्त आनन्दित और विस्मित हुए। पवित्रतापूर्वक अर्घ्य देकर उन्होंने महर्षि की पूजा की। फिर उस मुनिमण्डली के बीच अपना नाम लेकर भीष्मजी ने पुलस्त्य से कहा—हे सुव्रत, मैं आपका दास हूँ, मेरा नाम भीष्म है। आज आपके दर्शन पाकर मेरे सब पाप नष्ट हो गये। हे युधिष्ठिर, धार्मिकश्रेष्ठ भीष्म यों कहकर चुपचाप २० हाथ जोड़े सामने खड़े रहे। कुरुकुलश्रेष्ठ भीष्म को स्वाध्याय-पाठ में निरत, नियमस्थ और आत्मज्ञान की चर्चा में तत्पर देखकर महर्षि पुलस्त्य अत्यन्त आनन्दित हुए। २२

बयासी अध्याय

पुष्कर, प्रभास आदि तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन

पुलस्त्य ने कहा—हे धर्मज्ञ! मैं तुम्हारे सत्य, दम और विनय आदि सद्गुणों को देखकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ। तुम पितृभक्ति के कारण इस प्रकार के धर्म का अनुष्ठान कर रहे हो, इसी से मैं तुम पर प्रसन्न हुआ और तुमको मेरे दर्शन हुए। हे निष्पाप, मेरे दर्शन कभी व्यर्थ होने के नहीं। तुम्हारा क्या प्रिय मैं करूँ? हे भीष्म, तुम जो कहोगे मैं वही तुमको दूँगा।

भीष्म ने कहा—हे महाभाग, आपने सब लोकों के पूजनीय होकर भी मुझे दर्शन दिये, इसी से मैं कृतार्थ हो गया। यदि ऐसी ही आपकी कृपा करने की इच्छा है तो आप मेरे सन्देहों को दूर कीजिए। मुझे तीर्थों के धर्मविषय में कुछ शङ्का है, उसका आप ख़ुलासा वर्णन कीजिए। हे देवतुल्य, लोग तीर्थयात्रा के उद्देश्य से पृथ्वी-प्रदक्षिणा करके क्या फल पाते हैं, सो मैं आपसे सुनना चाहता हूँ।

पुलस्त्य ने प्रसन्न होकर कहा—हे पुत्र, मैं ऋषियों की परमगतिस्वरूप तीर्थयात्रा का फ़ल कहता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो। जिस व्यक्ति के हाथ, पैर, मन, विद्या, तप और कीर्त्ति सुसंयत हैं वही तीर्थयात्रा का फल पाता है। जो व्यक्ति दान नहीं लेता और सदा सन्तुष्ट रहकर अहङ्कार को अपने पास नहीं फटकने देता वही तीर्थयात्रा का फल पाता है। जो १०

व्यक्ति दम्भ आदि से बचा रहता है, अधिक उद्योग नहीं करता, थोड़ा आहार करता है, जितेन्द्रिय होकर सब पातकों से बचा रहता है, क्रोधरहित है, सत्यवादी और दृढ़प्रतिज्ञ होकर सब प्राणियों से वैसा ही व्यवहार करता है जैसा कि वह अपने साथ औरों से चाहता है, वह तीर्थयात्रा का फल पा सकता है। हे युधिष्ठिर, देवताओं को प्रसन्न करने के लिए ऋषियों ने यज्ञों का वर्णन किया है। इस लोक और परलोक में उन यज्ञों का जो फल होता है उसका भी वर्णन किया है। किन्तु यज्ञों के लिए बहुत सी सामग्री और धन की ज़रूरत होती है; इस कारण निराश्रय, निर्धन या असहाय दरिद्र पुरुष उनको नहीं कर पाते। विरले राजा और धनी पुरुष ही यज्ञों को कर सकते हैं। हे भरतश्रेष्ठ, दरिद्र पुरुष भी जिसको करके यज्ञों का पवित्र फल पा सकते हैं वह ऋषियों की परमगुप्त तीर्थयात्रा यज्ञों से भी बढ़कर मानी गई है। मैं तुमसे उसी तीर्थयात्रा का वर्णन करता हूँ; सुनो। तीन दिन उपवास न करके, तीर्थयात्रा न करके, ब्राह्मणों को सुवर्ण और गाय आदि न देकर मनुष्य दरिद्र होता है। तीर्थयात्रा करने से जो फल मिलता है वह फल बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले अग्निष्टोम आदि यज्ञों के करने से भी नहीं प्राप्त होता।

२० हे कुरुश्रेष्ठ, मनुष्यलोक में त्रिलोक-प्रसिद्ध पुष्कर नाम का तीर्थ है। वहाँ दस करोड़ तीर्थ सदा निवास करते हैं। आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, मरुद्गण, गन्धर्व, अप्सरा आदि वहाँ नित्य बने रहते हैं। देवता, दैत्य और ब्रह्मर्षि उसी पुष्कर तीर्थ में तप करके दिव्य योगसिद्धि और पुण्य को प्राप्त हुए हैं। भाग्यशाली पुरुष को पहले उसी तीर्थ में जाना चाहिए। मनस्वी व्यक्ति मन में पुष्कर तीर्थ को जाने की इच्छा करने से भी सब पापों से छुटकारा पा जाता है; वह स्वर्गलोक में पूजित और आनन्दित होता है। हे युधिष्ठिर, पितामह ब्रह्मा सदा प्रसन्न चित्त से इस तीर्थ में रहते हैं। हे महाभाग, पूर्वसमय में ऋषि और देवता इसी पुष्कर तीर्थ में परम सिद्धि और पुण्य प्राप्त कर चुके हैं। बुद्धिमानों का कहना है कि इस तीर्थ में स्नान करने से दस अश्वमेध करने का पुण्य मिलता है। जो कोई पुष्कर तीर्थ में जाकर एक ब्राह्मण को भी भोजन करा सकता है वह इस लोक और परलोक में परमसुख पाता है। हे कौरव, वहाँ रहकर जो कोई साग, फल, मूल आदि आप खाता है और उन्हीं से श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणों को तृप्त करता है उसे भी अश्वमेध का फल मिलता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र, जो कोई पुष्कर तीर्थ

३० में स्नान करता है उसे फिर जन्म-मरण का कष्ट नहीं भोगना पड़ता। विशेष कर जो कोई कार्त्तिकी पूर्णिमा को पुष्कर तीर्थ में स्नान करता है उसे अक्षय ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। हे पुरुषश्रेष्ठ, जो कोई हाथ जोड़कर शाम-सवेरे पुष्कर तीर्थ का ध्यान करता है उसे सब तीर्थों में स्नान करने का फल मिलता है। स्त्री हो या पुरुष, पुष्कर तीर्थ में स्नान करने से ही, जन्म भर के पापों से छुटकारा पा जाता है। हे भारत, नारायण जैसे सब देवताओं में श्रेष्ठ हैं वैसे ही

पुष्कर भी सब तीर्थों में श्रेष्ठ और सब तीर्थों का आदि है। जो कोई सदा पवित्र रहकर बारह वर्ष तक पुष्कर तीर्थ में रहता है वह ब्रह्मलोक पाता है और सब यज्ञों के फल का अधिकारी होता है। जो व्यक्ति पूरे सौ वर्ष तक अग्निहोत्र करता है और जो व्यक्ति कार्त्तिकी पूर्णिमा के दिन पुष्कर तीर्थ में रहता है, उन दोनों को समान फल मिलता है। पुष्कर क्षेत्र में तीन पर्वत-शिखर, तीन झरने और तीन पुष्कर (कमल) हैं। वे बहुत ही प्राचीन और सृष्टि के आदि से देख पड़ते हैं। उनकी उत्पत्ति के कारण को हम लोग नहीं जानते। पुष्कर तीर्थ में जाना, वहाँ तप करना, दान करना और रहना भी दुष्कर है।

संयमपूर्वक उपवास करके पुष्कर तीर्थ में बारह दिन रहना चाहिए। उसकी प्रदक्षिणा करके फिर जम्बूमार्ग नाम के तीर्थ में जाना चाहिए। देवर्षियों और पितरों द्वारा सेवित जम्बूमार्ग तीर्थ में जाने से मनुष्य की सब इच्छाएँ सिद्ध होती हैं और उसे अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। जो व्यक्ति वहाँ पाँच दिन रहता है उसका हृदय शुद्ध और आत्मा पवित्र हो जाता है। वह सब दुर्गतियों से छुटकारा पाकर परमसिद्धि पा जाता है। वहाँ से तन्दुलिकाश्रम में जाना चाहिए। वहाँ जाने से सब दुःख दूर होते हैं और ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। राजन्, जो कोई पितरों और देवताओं की सेवा करता हुआ वहाँ से अगस्त्य-सरोवर में जाता है और वहाँ तीन दिन तक उपवास करता है उसे अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है। वहाँ जो कोई केवल साग और फल खाकर रहता है उसे कौमार पद प्राप्त होता है। ४०

वहाँ से लोकपूजित और रमणीय कण्व ऋषि के आश्रम में जाना चाहिए। वह आदि और पवित्र धर्म-वन है। हे भरतश्रेष्ठ, कण्वाश्रम में पैर रखते ही सब पाप नष्ट हो जाते हैं। वहाँ संयम के साथ स्वल्प आहार करके पितरों और देवताओं की पूजा करने से सब इच्छाएँ पूरी होती हैं, और यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है। कण्वाश्रम की प्रदक्षिणा करके ययातिपतन नाम के तीर्थ में जाने से अश्वमेध यज्ञ के करने का फल होता है। वहाँ से महाकाल तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ संयम और स्वल्प आहार के साथ रहकर कोटि तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। धर्मज्ञ व्यक्ति को वहाँ से महादेव के भद्रवट नाम के त्रिलोकप्रसिद्ध तीर्थ में जाना चाहिए। उस तीर्थ के दर्शन करने से सहस्र गोदान का फल मिलता है। शिव की कृपा से यात्री परम समृद्धियुक्त गण-पति के पद को पाता है। वहाँ से नर्मदा नदी को जाना चाहिए। त्रिलोकप्रसिद्ध नर्मदा नदी में देवताओं और पितरों का तर्पण करने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है। वहाँ से दक्षिण-सागर में जाकर ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय रहने से मनुष्य को अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है। अन्त को वह मनुष्य विमानपर चढ़कर स्वर्ग को जाता है। वहाँ से चर्मण्वती नदी में जाकर स्नान करना चाहिए। राजा रन्तिदेव के इस तीर्थ में नियमपूर्वक उपवास करने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है। ५०

वहाँ से चलकर हिमवान् पर्वत से निकले हुए अर्बुद तीर्थ में जाना चाहिए। हे युधिष्ठिर, पहले यहाँ पर पृथ्वी का छिद्र था। अर्बुद तीर्थ के पास ही त्रिलोकविख्यात वशिष्ठ ऋषि का आश्रम है! वहाँ एक रात रहने से सहस्र गोदान का फल होता है। हे नरश्रेष्ठ, फिर पिङ्ग तीर्थ में जाना चाहिए। जितेन्द्रिय और ब्रह्मचारी होकर वहाँ स्नान करने से सौ कपिला गायें देने का फल होता है। हे राजेन्द्र, वहाँ से रमणीय प्रभास तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ देवताओं का मुख जो अग्नि है वह स्वयं उपस्थित है। इस तीर्थ में पवित्रतापूर्वक स्नान करने से अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञ का फल होता है। वहाँ से सरस्वती और सागर के सङ्गम में जाना ६० चाहिए। वहाँ जाने से मनुष्य को सहस्र गोदान का फल मिलता है। वहाँ स्नान करनेवाला मनुष्य कान्तिशाली होकर स्वर्गलोक को जाता है। वहाँ जो कोई पवित्र हृदय से तीन दिन रहकर देवताओं और पितरों का तर्पण करता है उसे सूर्य के समान तेज और चन्द्रमा के समान कान्ति प्राप्त होती है और अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। हे भरतश्रेष्ठ, वहाँ से उस वरदान तीर्थ में जाना चाहिए जहाँ दुर्वासा ने विष्णु को वर दिया था। वरदान तीर्थ में स्नान करने से सहस्र गोदान का फल होता है।

वहाँ से संयम के साथ उपवासपूर्वक द्वारका तीर्थ में जाना चाहिए। पिण्डारक तीर्थ में स्नान करने से बहुत सुवर्ण मिलता है। हे महाभाग, यह बड़े आश्चर्य की बात है कि वहाँ अब तक पद्म-चिह्न से युक्त मुद्राएँ और त्रिशूल-चिह्न से युक्त पद्म देख पड़ते हैं। वहाँ सदा महादेव रहते हैं। सिन्धु नद और सागर के सङ्गम में जाकर पवित्र हृदय से सलिलराज तीर्थ में स्नान और देव, ऋषि, पितृगण का तर्पण करने से मनुष्य अपनी प्रभा से प्रकाशित वरुण-लोक को प्राप्त होता है। हे युधिष्ठिर, बुद्धिमानों का कहना है कि वहाँ पर स्थित शंकुकर्णेश्वर महा- ७० देव की पूजा करने से मनुष्य को दस अश्वमेध यज्ञों का फल होता है। सलिलराज तीर्थ की प्रदक्षिणा करके सब पापों को नष्ट करनेवाले त्रिलोकप्रसिद्ध दमी नाम के तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ ब्रह्मा आदि देवता महेश्वर की उपासना किया करते हैं। वहाँ पर द(श)मी का ऐसा पेड़ है जिसकी स्तुति सब देवता करते हैं। पहले किसी समय दैत्यों और दानवों को मारकर भग- ८० वान् विष्णु ने इसी तीर्थ में शुद्ध होने के लिए स्नान किया था। इस स्थान में स्नान और देवगण-युक्त रुद्र की पूजा करने से जन्म भर के पाप दूर हो जाते हैं और अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है।

इसके बाद पूजनीय वसुधारा तीर्थ में जाना चाहिए। वहां जाने से ही अश्वमेध यज्ञ का फल होता है। एकाग्र और पवित्र होकर स्नान और देवताओं तथा पितरों का तर्पण करने से विष्णुलोक प्राप्त होता है। हे भारत, इस तीर्थ में वसुओं का पवित्र सरोवर है। उसका जल पीने और स्नान करने से मनुष्य वसुओं के तुल्य प्रभावशाली हो जाता है। हे कुरुनन्दन, सब पापों को नष्ट करनेवाले सिन्धूत्तम तीर्थ में जाकर स्नान करने से बहुत सुवर्ण प्राप्त होता है। वहाँ

से भद्रतुङ्ग तीर्थ में जाकर स्नान करना चाहिए। इस ब्रह्मतीर्थ में पवित्र चित्त से स्नान-तर्पण करनेवाला ब्रह्मलोक को जाता और परमगति को पाता है। वहाँ से सिद्ध-सेवित कुमारी तीर्थ और शक्र- ८० तीर्थ में जाकर स्नान करने से शीघ्र ही स्वर्गलोक प्राप्त होता है। हे शत्रुनाशन, वहाँ सिद्ध-सेवित रेणुका तीर्थ है। वहाँ स्नान करने से मनुष्य को चन्द्रमा के समान निर्मल कान्ति प्राप्त होती है।

वहाँ से पञ्चनद तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ संयमपूर्वक व्रत करने से क्रमशः वर्णन किये गये पाँचों यज्ञों का फल मिलता है। हे भरतश्रेष्ठ, वहाँ से भीमा देवी के स्थान में जाना चाहिए। वहाँ स्नान करने से मनुष्य को फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। वहाँ जाकर स्नान करनेवाला सुवर्णकुण्डलधारी देवीपुत्र होता है और सैकड़ों-हज़ारों गोदान करने का फल पाता है। वहाँ से त्रिलोकप्रसिद्ध श्रीकुण्ड में जाकर पितामह देव को नमस्कार करने से सहस्र गोदान का फल होता है। हे धर्मज्ञ, वहाँ से रमणीय विमल तीर्थ में जाना चाहिए। अब तक वहाँ सोने और चाँदी की मछलियाँ देख पड़ती हैं। वहाँ स्नान करने से मनुष्य शीघ्र ही इन्द्रलोक को जाता है और सब पापों से छुटकारा पाकर परमपद को प्राप्त होता है। हे भारत, वहाँ से वितस्ता नदी में जाकर पितरों और देवताओं का तर्पण करने से वाजपेय यज्ञ का फल होता है। काश्मीर देश में नागराज तक्षक का वितस्ता नाम का जो पवित्र आश्रम है वहाँ जाकर स्नान करने से मनुष्य को वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त होता है। वह मनुष्य सब पापों से छुटकारा पाकर अन्त को परमगति पाता है। ९०

वहाँ से त्रिलोकप्रसिद्ध वड़वा तीर्थ में जाना चाहिए। विद्वानों का कहना है कि वहाँ जाकर सन्ध्या के समय विधिपूर्वक स्नान और हवन करने से पितरों के लिए अक्षयदान होता है। हे नरश्रेष्ठ, पहले इस स्थान में ऋषि, पितर, देवता, गन्धर्व, अप्सरा, गुह्यक, किन्नर, यक्ष, सिद्ध, विद्याधर, मनुष्य, राक्षस, दैत्य, रुद्रगण और पितामह ब्रह्मा, सबने मिलकर सहस्र वर्ष की दीक्षा का अनुष्ठान किया था; विष्णु की प्रसन्नता के लिए खीर से होम करके सात ऋचाओं से उनकी स्तुति की थी। महाराज, विष्णुदेव ने सन्तुष्ट होकर उन्हें आठ प्रकार का ऐश्वर्य और अन्य यथेष्ट वर दिये। इस प्रकार वरदान देकर, बिजली जैसे बादल में छिप जाती है वैसे ही, भगवान् विष्णु अन्तर्द्धान हो गये। इसी कारण वह स्थान संसार में सप्तचरु के नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ अग्नि में खीर का हवन किया जाय तो सौ राजसूय और हज़ार अश्वमेध यज्ञ करने से भी अधिक फल प्राप्त होता है। हे राजेन्द्र, वहाँ से रुद्रपद तीर्थ में जाकर महादेव की पूजा करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। वहाँ से मणिमान् तीर्थ में जाकर ब्रह्मचर्य के साथ १०० एकाग्रतापूर्वक रात भर रहने से अग्निष्टोम यज्ञ करने का फल होता है। वहाँ से लोकप्रसिद्ध देविका तीर्थ में जाना चाहिए। प्रसिद्ध है कि देविका तीर्थ महादेव का त्रिलोकप्रसिद्ध आश्रम है और वहाँ तप करने से मनुष्यों को ब्राह्मणत्व प्राप्त होता है। हे भरतश्रेष्ठ, देविका में

स्नान और शङ्कर की आराधना करके यथाशक्ति चरु अर्पण करने से सब कामनाओं को देनेवाले महायज्ञ का फल प्राप्त होता है। वहीं पर रुद्रदेव का कामाख्य तीर्थ है। सब देवता वहाँ रहते हैं। उसमें स्नान करने से मनुष्य को शीघ्र ही सिद्धि मिल जाती है। जो कोई वहाँ यजन-याजन करता है, ब्रह्मबालुक और पुष्पजल का स्पर्श करता है वह मरने पर सद्गति प्राप्त होने के कारण किसी तरह शोचनीय नहीं होता। महाराज, यह देविका तीर्थ परम पवित्र है; यहाँ देवता और ऋषि रहते हैं। यह दो कोस चौड़ा और बीस कोस लम्बा है।

हे धर्मज्ञ, यहाँ से दीर्घसत्र तीर्थ में जाना चाहिए। ब्रह्मा आदि देवताओं और सिद्ध आदि ब्रह्मर्षियों ने व्रतधारणपूर्वक यहीं पर दीर्घसत्र (बहुत दिनों में समाप्त होनेवाले यज्ञ) की १० दीक्षा ली थी। इस स्थान पर जाते ही राजसूय और अश्वमेध यज्ञ का फल होता है। यहाँ से संयम और स्वल्पाहार के साथ विनशन तीर्थ में जाना चाहिए। सरस्वती की गुप्त धारा यहीं से जाकर मेरुपृष्ठ पर चमस, शिवोद्भेद और नागोद्भेद नाम के स्थानों में देख पड़ती है। चमसोद्भेद में स्नान करने से अग्निष्टोम यज्ञ का और शिवोद्भेद में स्नान करने से सहस्र गोदान का फल होता है। नागोद्भेद में स्नान करने से नागलोक प्राप्त होता है। हे राजेन्द्र, वहाँ से अत्यन्त दुर्लभ शशयान तीर्थ में जाना चाहिए। यहाँ पर सब पुष्कर, हरसाल कार्त्तिकी पूर्णिमा को, शशरूप में छिपे हुए सरस्वती में देख पड़ते हैं। इस तीर्थ में स्नान करनेवाला चन्द्रमा के समान कान्तिशाली होता है और उसे सहस्र गोदान का फल मिलता है। हे कुरुनन्दन, नियम-धारण-पूर्वक कुमारकोटि तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ स्नान और पितरों तथा देवताओं की पूजा करने से दस हज़ार गायें देने का फल मिलता है और वंश भर का उद्धार हो जाता है।

इसके बाद एकाग्र होकर रुद्रकोटि में जाना चाहिए। हे भारत, सुना जाता है कि पहले कभी कोटि मुनि, रुद्रदेव के दर्शन की इच्छा से, "मैं पहले महादेवजी के दर्शन करूँगा, मैं पहले २० महादेवजी के दर्शन करूँगा" यों कहते हुए अत्यन्त आनन्द के साथ यहाँ पर जमा हुए थे। योगिवर महादेव ने उन महात्मा ऋषियों का झगड़ा मिटाने के लिए योगबल से उन लोगों के आगे कोटि रुद्रों की सृष्टि कर दी। उन सबमें से हर एक ने यही समझा कि मुझे ही पहले रुद्रदेव के दर्शन हुए। उन लोगों की भक्ति देखकर महादेव अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और उन्होंने मुनियों को वरदान दिया कि आज से तुम लोगों का धर्म सदा बढ़ता रहे। हे पुरुषसिंह, पवित्र भाव से रुद्रकोटि में स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है और वंश का उद्धार हो जाता है। इसके बाद जगत्प्रसिद्ध परम पवित्र सरस्वती-सङ्गम में जाना चाहिए। यहाँ पर ब्रह्मा आदि देवता और तपस्वी ऋषिगण चैत्र शुक्ला चतुर्दशी को आकर केशव की उपासना करते हैं। यहाँ स्नान करने से मनुष्य को बहुत सुवर्ण मिलता है, सहस्र गोदान का फल होता है और सब पापों १२८ से छूटकर ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। राजन्, यहीं पर ऋषियों के सब यज्ञ समाप्त हुए हैं।

तिरासी अध्याय

कुरुक्षेत्र आदि तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन

पुलस्त्य कहते हैं—हे राजेन्द्र, यहाँ से पूजनीय कुरुक्षेत्र में जाना चाहिए। कुरुक्षेत्र के दर्शन से ही सब प्राणी पापमुक्त हो जाते हैं। जो व्यक्ति सदा यह कहता है कि "मैं कुरुक्षेत्र को जाऊँगा, मैं कुरुक्षेत्र में रहूँगा" वह सब पापों से छूट जाता है। कुरुक्षेत्र की हवा से उड़ी हुई धूल भी अङ्ग पर पड़ जाय तो पापियों को परम गति मिल जाती है। दक्षिण तरफ़ सरस्वती और उत्तर तरफ़ दृषद्वती नदी और बीच में कुरुक्षेत्र है। जो लोग वहाँ रहते हैं उन्हें स्वर्गवास का फल प्राप्त होता है। हे युधिष्ठिर, यहाँ सरस्वती के किनारे एक महीने भर रहना चाहिए। ब्रह्मा आदि देवता, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, नाग, ऋषिगण इस परम पवित्र ब्रह्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में जाया करते हैं। हे धर्मराज, मन में भी कुरुक्षेत्र को जाने की इच्छा करने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं और ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। कुरुक्षेत्र में श्रद्धापूर्वक जाने से राजसूय और अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है। वहाँ मचक्रुक नाम के महाबली द्वारपाल यक्ष को प्रणाम करने से सहस्र गोदान का फल होता है।

वहाँ से रमणीय विष्णुस्थान तीर्थ में जाना चाहिए। इस स्थान पर भगवान् हरि सदा विराजमान रहते हैं। हे धर्मज्ञ, वहाँ स्नान करके तीनों लोकों के आदि-कारण विष्णु को प्रणाम करने से अश्वमेध यज्ञ का फल होता है और अन्त को विष्णुलोक मिलता है। वहाँ से त्रिलोक-प्रसिद्ध पारिप्लव तीर्थ में जाने से अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञ का फल मिलता है। वहाँ से पृथ्वीतीर्थ में जाने से सहस्र गोदान का फल मिलता है। १०

वहाँ से तीर्थयात्री को शालूकिनी तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ दशाश्वमेध तीर्थ में स्नान करने से दस अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त होता है। वहाँ से सर्पों के, सर्पदेवी नाम के, उत्तम तीर्थ में जाने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल और नागलोक प्राप्त होता है। वहाँ से तरन्तुक द्वारपाल के तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ एक रात रहने से सहस्र गोदान का फल मिलता है। संयम और मिताहार के साथ पञ्चनद प्रदेश में जाकर कोटितीर्थ में स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ का फल होता है। वहाँ से अश्विनीकुमार तीर्थ में जाने से मनुष्य सुरूपवान् होता है।

वहाँ से अत्यन्त उत्तम वराह तीर्थ में जाना चाहिए। विष्णु भगवान् पहले वराह रूप से वहीं स्थित हुए थे। वहाँ स्नान करने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल होता है। फिर जयन्ती पुरी में जाकर सोम तीर्थ में स्नान करना चाहिए। वहाँ स्नान करने से राजसूय यज्ञ का फल होता है। एकहंस तीर्थ में स्नान करने से सहस्र गोदान का फल होता है। हे भारत, कृतशौच तीर्थ में जाकर स्नान करने से मनुष्य पवित्र और पुण्डरीक [-लोक] को प्राप्त होता है। वहाँ से २०

भगवान् शिव के मुञ्जवट नाम के आश्रम में एक दिन रहनेवाला मनुष्य गण-पति होता है। हे राजेन्द्र, वहाँ के लोकप्रसिद्ध यक्षिणी स्थान में जाने और स्नान करने से मनुष्य की सब इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं। हे कुरुश्रेष्ठ, यही कुरुक्षेत्र का पुष्कर-पूजित प्रसिद्ध द्वार है। तीर्थयात्रा करनेवाला व्यक्ति एकाग्र होकर परिक्रमा करके इसमें स्नान और पितरों का तर्पण करे तो कृतकृत्य और अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त होता है। जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने भी ऐसा ही किया था।

इसके बाद तीर्थयात्री को भक्तिभाव के साथ परशुराम के कुण्डों में जाना चाहिए। सुना जाता है, वीर और बड़े तेजस्वी परशुराम ने बलपूर्वक क्षत्रियों का संहार करके, उनके रक्त से परिपूर्ण पाँच नद यहीं बनाये थे और उन्हीं में अपने पुरखों का तर्पण किया था। उनके पितरों ने सन्तुष्ट होकर उनसे कहा—"हे महाभाग परशुराम, हम तुम्हारी यह पितृभक्ति और पराक्रम देखकर बहुत सन्तुष्ट हुए। तुम्हारा भला हो। तुम अपनी इच्छा के अनुसार वरदान माँग लो।" हे धर्मज्ञ, पितरों के यों कहने पर परशुराम ने हाथ जोड़कर आकाश में स्थित पितरों से कहा—आप अगर मुझ पर प्रसन्न हैं, मुझ पर कृपा करना चाहते हैं, तो मैं आपका इतना ही प्रसाद चाहता हूँ कि मुझे तपस्या प्रिय हो। मैंने क्रोध के वश होकर क्षत्रियों का नाश किया है; उससे जो मुझे पाप लगा है वह, आप लोगों के तेज के प्रभाव से, नष्ट हो जाय और मेरे बनाये ये पाँचों कुण्ड पृथ्वी पर तीर्थ समझे जायँ। पितरों ने परशुराम के ये शुभ वाक्य सुनकर परम प्रसन्न और हर्षित होकर उत्तर दिया—पुत्र, पितृभक्ति की अधिकता के कारण तुम्हारा तप अत्यन्त बढ़ जायगा। क्रोध के वश होकर क्षत्रियों का संहार करने से तुम्हें जो पाप लगा था उससे तुम छूट गये; क्योंकि उनके कर्म के दोष से ही उन क्षत्रियों का संहार हुआ है। तुम्हारे बनाये ये कुण्ड भी तीर्थ समझे जायँगे। जो कोई इन कुण्डों में नहाकर पितरों का तर्पण करेगा उस पर सन्तुष्ट होकर उसे उसके पितर पृथ्वी भर में दुर्लभ इष्ट मनोरथ और अक्षय स्वर्गलोक देंगे। इस प्रकार परशुराम को अभीष्ट वर देकर पितृगण वहीं लुप्त हो गये। हे युधिष्ठिर, इसी कारण परशुराम के कुण्ड ऐसे पवित्र माने गये हैं।

३०

वहाँ ब्रह्मचारी-व्रतधारी होकर स्नान करके भगवान् भार्गव की पूजा करने से बहुत सुवर्ण मिलता है। हे भरतश्रेष्ठ, तीर्थयात्रा करनेवाला आदमी वंशमूलक तीर्थ में जाकर स्नान करने से अपने ४० वंश का उद्धार करता है। वहाँ से कायशोधन तीर्थ में जाकर स्नान करने से निःसन्देह शरीर पवित्र होता है और मनुष्य विशुद्धदेह होकर शुभलोक में जाते हैं।

फिर सर्वशक्तिमान् विष्णु ने जहाँ सब लोकों का उद्धार किया था उस त्रिलोकप्रसिद्ध लोकोद्धार तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ स्नान करने से आत्मीय जनों का उद्धार होता है। वहाँ से श्रीतीर्थ में जाकर स्नान और पितृगण-देवगण की पूजा करने से मनुष्य को उत्तम श्री प्राप्त होती है। वहाँ से कपिला तीर्थ में जाकर ब्रह्मचारी तथा एकाग्र-चित्त होकर पितृगण और देवगण की पूजा करने से सहस्र कपिला धेनु देने का फल होता है। शुद्ध हृदय से सूर्य तीर्थ में जाकर स्नान करने और व्रतपूर्वक पितरों तथा देवताओं की आराधना करने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल और सूर्यलोक प्राप्त होता है। हे कुरुश्रेष्ठ, तीर्थयात्री व्यक्ति गोभवन तीर्थ में जाकर स्नान करके सहस्र गोदान का फल पाता है; वहाँ के शंखिनी तीर्थ में जाकर देवी तीर्थ में स्नान करने से उत्तम रूप पाता है। ५०

वहाँ से अरन्तुक नाम के द्वारपाल के तीर्थ में जाना चाहिए। अरन्तुक तीर्थ में सरस्वती बहती हैं और वहाँ महात्मा यक्षराज कुबेर का अधिकार है। वहाँ स्नान करने से अग्निष्टोम का फल होता है। वहाँ से ब्रह्मतीर्थ ब्रह्मावर्त्त में जाकर स्नान करने से ब्रह्मलोक मिलता है। हे राजेन्द्र, जिस स्थान में पितर और देवता सदा बने रहते हैं उस उत्तम सुतीर्थ में स्नान और पितरों तथा देवताओं की आराधना करने से पितृलोक और अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। अम्बुमती के पास काशीश्वर तीर्थ में स्नान करने से सब रोगों से मुक्त होकर मनुष्य ब्रह्मलोक को जाता है। हे शत्रुनाशन, जो कोई काशीश्वर के निकटवर्ती मातृ तीर्थ में स्नान करता है उसे प्रजावृद्धि और परम श्री मिलती है।

फिर नियमपूर्वक मिताहारी होकर सीतवन तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ महत्तीर्थ है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। वहाँ जाने से और सिर धो लेने से ही मनुष्य पवित्र हो जाता है। ६० विद्वान् और तीर्थयात्री पुरुष वहाँ श्वाविल्लोमापह तीर्थ में स्नान करके परम प्रीति पाते हैं। वहाँ प्राणायाम के द्वारा लोम गिराकर मनुष्य पवित्र होकर परम गति को प्राप्त होता है। महाराज, वहाँ दशाश्वमेधिक नाम का जो और एक तीर्थ है उसमें स्नान करने से परम गति मिलती है।

फिर लोकप्रसिद्ध मानुष तीर्थ में जाना चाहिए, जहाँ कि व्याध के बाण से पीड़ित कृष्णमृग स्नान करके मनुष्य-रूप को प्राप्त हुए थे। ब्रह्मचारी और समाहित होकर वहाँ स्नान करने से सब पाप मिट जाते हैं और स्वर्गलोक प्राप्त होता है। इस तीर्थ से एक कोस पूर्व ओर आपगा नाम की जो सिद्धसेवित नदी है वहाँ पितरों और देवताओं की तृप्ति के लिए सावें का अन्न देने से बड़ा धर्म होता है। वहाँ एक ब्राह्मणभोजन कराने से करोड़ ब्राह्मणभोजन कराने का फल होता है। वहाँ स्नान और तर्पण करके एक दिन रहने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल होता है। ७०

फिर ब्रह्मोदुम्बर नाम के परम पवित्र ब्रह्मस्थान में जाना चाहिए। हे नरश्रेष्ठ, पवित्र और एकाग्र हृदय से वहाँ के सप्तर्षिकुण्ड और महात्मा कपिल के केदार में नहाने से ब्रह्मसाक्षात्कार होता है, सब पाप नष्ट हो जाते हैं और ब्रह्मलोक मिलता है। जो मनुष्य दुर्लभ कपिल-केदार तीर्थ में स्नान करता है उसके सब पाप तपोबल से नष्ट हो जाते हैं।

फिर लोकप्रसिद्ध सरक तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ कृष्णपक्ष की चौदस को महादेव के दर्शन करने से सब काम सिद्ध होते हैं और स्वर्गलोक मिलता है। हे कुरुश्रेष्ठ, इस सरक तीर्थ के रुद्रकोटि, कूप और कुण्ड में तीन करोड़ तीर्थ हैं। हे भरतश्रेष्ठ, वहाँ इलास्पद तीर्थ में स्नान और पितरों तथा देवताओं की पूजा करने से दुर्गति का नाश होकर वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है। किंदान और किंजप्य तीर्थ में स्नान करने से अप्रमेय दान और जप का फल मिलता है। जितेन्द्रिय ८० होकर श्रद्धा के साथ कलशी तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य को अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है।

हे कुरुकुलश्रेष्ठ, सरक के पूर्व ओर नारद का अम्बाजन्म नाम का जो तीर्थ है उसमें स्नान और प्राणत्याग करने से दिव्यलोक प्राप्त होता है। शुक्लपक्ष की दशमी के दिन पुण्डरीक तीर्थ में जाकर स्नान करने से मनुष्य को पुण्डरीक यज्ञ का फल मिलता है। फिर त्रिलोकप्रसिद्ध त्रिविष्टप तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ की पापनाशिनी वैतरणी नदी में नहाने तथा महादेव की आराधना करने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं और परमगति मिलती है।

फिर परमप्रशस्त फलकी-वन में जाना चाहिए। देवता लोग इसी फलकी-वन में लगातार बहुसहस्रवर्षव्यापी कठोर तप किया करते हैं। दृषद्वती में स्नान और देवताओं का तर्पण करने से अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञ का फल होता है। सर्वदेव तीर्थ में स्नान करने से सहस्र गोदान का फल होता है। पाणिखात तीर्थ में स्नान और तर्पण करने से अग्निष्टोम, अतिरात्र और ९० राजसूय यज्ञ का फल पाकर मनुष्य ऋषियों के लोक में जाता है।

वहाँ से रमणीय मिश्रक तीर्थ में जाना चाहिए। सुना जाता है कि वहाँ महात्मा व्यासदेव ने द्विजों के लिए सब तीर्थों का मिश्रण किया है। मिश्रक में स्नान करने से सब तीर्थों में स्नान करने का फल मिलता है। वहाँ से नियमपूर्वक मिताहारी होकर व्यासवन में जाना चाहिए। वहाँ मनोजव तीर्थ में स्नान करने से सहस्र गोदान का फल होता है। जो कोई पवित्र होकर देवी तीर्थ में स्थित मधुवट में स्नान और पितरों की पूजा करता है उसे देवी के प्रसाद से सहस्र गोदान का फल मिलता है। कौशिकी और दृषद्वती में मिताहारी होकर स्नान करने से सब पाप दूर हो जाते हैं।

फिर जहाँ पर बुद्धिमान् व्यासदेव पुत्रशोक से पीड़ित होकर शरीरत्याग के लिए उद्यत हो गये थे, और देवताओं ने आकर उन्हें उठाया था, उस व्यासस्थली में जाने से सहस्र गोदान का फल होता है। वहाँ से किंदत्त कूप में जाकर एक सेर तिलदान करने से परम सिद्धि मिलती है

और ऋण से छुटकारा हो जाता है। जो कोई वेदी तीर्थ में और त्रिलोकविश्रुत अहः तीर्थ में तथा सुदिन तीर्थ में जाकर स्नान करता है उसे सहस्र गोदान का फल और सूर्यलोक प्राप्त होता है। १००

फिर त्रिलोकप्रसिद्ध मृगधूम तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ की गङ्गा में स्नान और महादेव की पूजा करने से अश्वमेध यज्ञ का फल होता है। देवी तीर्थ में स्नान करने से सहस्र गोदान का फल होता है। फिर लोकविश्रुत वामन तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ विष्णुपद में स्नान करके वामन देव की पूजा करने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं और विष्णुलोक प्राप्त होता है। जो कोई कुलम्पुन तीर्थ में स्नान करता है उसका कुल पवित्र हो जाता है। मरुद्गण के प्रशंसित पवनहृद तीर्थ में स्नान करने से विष्णुलोक प्राप्त होता है। अमरहृद में स्नान करके इन्द्र की आराधना करने से स्वर्ग-लोक की गति मिलती है। शालिसूर्यस्थ शालिहोत्र में स्नान करने से सहस्र गोदान का फल मिलता है। सरस्वती के समीपवर्ती श्रीकुञ्ज में स्नान करने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है।

प्राचीन काल में नैमिषवासी ऋषिगण तीर्थयात्रा करते हुए कुरुक्षेत्र में जाकर सरस्वती-कुञ्ज में टिके थे। यहाँ स्नान करने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल होता है। फिर उत्तम कन्या तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ स्नान करने से सहस्र गोदान का फल होता है। वहाँ से परम प्रशस्त ब्रह्म तीर्थ में जाना चाहिए। यहाँ स्नान करने से नीच वर्ण का पुरुष भी ब्राह्मण वर्ण को प्राप्त होता है और ब्राह्मण विशुद्ध-हृदय होकर परम गति पाता है। फिर उत्तम सोम तीर्थ में जाना चाहिए। यहाँ स्नान करने से चन्द्रलोक प्राप्त होता है। यहाँ से सप्तसारस्वत तीर्थ में जाना चाहिए जहाँ पहले मङ्कण नाम के लोकप्रसिद्ध महर्षि रहते थे। सुना जाता है, उनकी हथेली में कुश की नोक गड़ जाने से रक्त की जगह शाकरस निकला था, यह देखकर वे हर्ष के मारे नृत्य करने लगे। उनके तेज से मोहित होकर उनके साथ चराचर जगत् नृत्य करने लगा। तब ब्रह्मा आदि देवताओं और तपोधन ऋषियों ने महादेव से कहा—प्रभो, आप वही कीजिए जिसमें ऋषि नृत्य न करें। महादेव ने देवताओं के हित के लिए प्रसन्न होकर ऋषि के पास जाकर कहा—हे धर्मज्ञ ऋषिवर, तुम क्यों नाच

२० रहे हो? तुम्हारे इस हर्ष का कारण क्या है? ऋषि ने कहा—भगवन्, आप नहीं देखते कि मैं धर्मनिष्ठ हूँ। मेरे हाथ से रक्त की जगह शाक-रस निकल रहा है। मैं यही देखकर अत्यन्त

आनन्द से नाच रहा हूँ। महादेव ने हँसकर रागमोहित ऋषिवर से कहा—विप्र, मुझे इससे कुछ भी आश्चर्य नहीं है। बस, शिव ने उँगली के अग्रभाग से अपने अँगूठे में आघात किया। उसी समय कटे हुए स्थान से बर्फ़ के समान सफ़ेद भस्म निकलने लगी। यह देखकर ऋषि लज्जित हो गये और महादेव के चरणों पर गिर पड़े। शिव से बढ़कर श्रेष्ठ और महत् कोई नहीं है, यह समझकर मङ्कण ऋषि इस प्रकार उनकी स्तुति करने लगे—हे शूल धारण करनेवाले, तुम सुरासुर आदि सब जगत् के जीवों की गति हो। तुमने ही सब चराचर त्रैलोक्य की सृष्टि की है। तुम प्रलयकाल में सब जगत् को ग्रस लेते हो। मेरी तो कोई बात ही नहीं, देवगण भी तुमको जानने में असमर्थ हैं। हे निष्पाप, ब्रह्मा आदि देवगण तुम्हीं में स्थित हैं। हे शर्व, तुम सब लोगों की सृष्टि करने और करानेवाले हो। देवता तुम्हारे ही प्रसाद से निडर होकर
३० आनन्द करते हैं। इस प्रकार महादेव की स्तुति करके ऋषि ने कहा—भगवन्, आपके प्रसाद से कभी मेरे तप का क्षय न हो।

महादेव ने प्रसन्न होकर कहा—विप्र, मेरे प्रसाद से तुम्हारा तप हज़ार गुना बढ़ता रहेगा। मैं तुम्हारे इस आश्रम में सदा रहूँगा। जो व्यक्ति सप्तसारस्वत तीर्थ में स्नान करके मेरी पूजा करेगा उसे इस लोक और परलोक में कुछ भी दुर्लभ न होगा। वह निःसन्देह सारस्वत-लोक में जायगा। इतना कहकर भगवान् शङ्कर अन्तर्द्धान हो गये।

वहाँ से लोकप्रसिद्ध औशनस तीर्थ में जाना चाहिए। यहाँ पर ब्रह्मा आदि देवता, तपोधन ऋषिगण और भगवान् कात्तिकेयजी, शुक्राचार्य का प्रिय करने के लिए, सबेरे-दोपहर-शाम सब समय रहते हैं। सब पापों से छुड़ानेवाले कपालमोचन तीर्थ में नहाने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं। वहाँ से अग्नितीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ स्नान करने से अग्निलोक की प्राप्ति होती और वंश का उद्धार होता है। हे भरतश्रेष्ठ, इस स्थान में विश्वामित्र का जो तीर्थ है उसमें स्नान करने से ब्राह्मणत्व मिल सकता है। पवित्र और एकाग्र हृदय से ब्रह्मयोनि तीर्थ में जाकर
४० स्नान करने से ब्रह्मलोक प्राप्त होता है और सात पीढ़ियाँ पवित्र हो जाती हैं।

फिर कार्त्तिकेय के त्रिलोकप्रसिद्ध पृथूदक तीर्थ में जाकर स्नान करना चाहिए। स्त्री या पुरुष, मनुष्यबुद्धि के वशवर्त्ती होकर, अज्ञान या ज्ञान से जो कुछ दुष्कर्म करते हैं सो सब वहाँ स्नान करते ही दूर हो जाता है और अश्वमेध का फल और स्वर्गलोक मिलता है। कुरुक्षेत्र परम पवित्र माना गया है। कुरुक्षेत्र की अपेक्षा सरस्वती, सरस्वती की अपेक्षा सब तीर्थ और सब तीर्थों की अपेक्षा पृथूदक तीर्थ श्रेष्ठ है। महात्मा व्यास और सनत्कुमार ने कहा है कि जप-परायण होकर तीर्थश्रेष्ठ पृथूदक में प्राणत्याग करने से मनुष्य को फिर मरने की यन्त्रणा नहीं भोगनी पड़ती। हे कुरुकुल-दीप, इसी कारण मनुष्य को पृथूदक में जाना चाहिए। पृथूदक की अपेक्षा और कोई भी तीर्थ श्रेष्ठ नहीं माना जा सकता। इसमें संशय नहीं कि पृथूदक ही

मेध्य, पवित्र और पुण्यदायक है। बुद्धिमान् लोग कहते हैं कि पापी भी वहाँ स्नान करने से अमर-लोक को जाते हैं। वहाँ के मधुस्रव तीर्थ में स्नान करने से सहस्र गोदान का फल होता है। १५०

फिर क्रमशः सरस्वती और अरुणा नदी के सङ्गम में जाना चाहिए। वहाँ तीन दिन उपवास करके स्नान करने से ब्रह्महत्या का पाप दूर हो जाता है, अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञ का फल मिलता है, सात पीढ़ियाँ पवित्र हो जाती हैं। हे कुरुकुलश्रेष्ठ, पूर्वकाल में महात्मा दर्भी ने ब्राह्मणों पर कृपा करके अर्द्धकील नाम का जो तीर्थ बनाया था वहाँ व्रत, उपनयन और उपवास की जो क्रिया की जाती है और मन्त्र पढ़े जाते हैं वे सफल होते हैं और उनके द्वारा मनुष्य अवश्य ही ब्राह्मणत्व को प्राप्त होता है। वहाँ स्नान करने से क्रिया-मन्त्र-वर्जित व्यक्ति विद्वान् और व्रतधारी होता है। बड़े-बूढ़ों ने यह प्रत्यक्ष देखा है। महर्षि दर्भी ने वहाँ पर चारों सागरों को स्थापित किया है। वहाँ स्नान करने से दुर्गति दूर हो जाती है और चार सहस्र गोदान का फल मिलता है। फिर शतसहस्र और साहस्रक नाम के लोकप्रसिद्ध तीर्थों में जाना चाहिए। इनमें स्नान करने से सहस्र गोदान का फल मिलता है। दान और उपवास करने से वह हज़ारगुना हो जाता है। वहाँ से अतिश्रेष्ठ रेणुका तीर्थ में जाने, स्नान और तर्पण करने से सब पाप मिट जाते हैं और अग्निष्टोम यज्ञ का फल होता है। जितेन्द्रिय और क्रोधहीन होकर ६० विमोचन तीर्थ का जल छूने से दान लेने का सब दोष दूर हो जाता है। फिर ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय होकर पञ्चवटी तीर्थ में जाने से बहुत पुण्य होता है और उत्तम लोक मिलते हैं। इस जगह पर शङ्कर स्वयं विराजमान हैं। उनकी पूजा करने से तत्काल सिद्धि मिलती है। वहाँ से वरुणदेव के, तेज से प्रदीप्त, तैजस तीर्थ में जाना चाहिए। यहीं पर ब्रह्मा आदि देवताओं और तपोधन ऋषियों ने कार्त्तिकेय को देवताओं का सेनापति बनाया था।

हे कुरुश्रेष्ठ, तैजस तीर्थ के पूर्व ओर स्थित कुरु तीर्थ में ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय होकर स्नान करने से सब पाप मिट जाते हैं और ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। यहाँ से संयमपूर्वक स्वर्गद्वार तीर्थ की यात्रा करने से स्वर्ग और ब्रह्मलोक प्राप्त होते हैं। फिर अनरक तीर्थ में जाना चाहिए। यहाँ स्नान करने से मनुष्य दुर्गति से बचता है। इस स्थान में ब्रह्मा, नारायण आदि देवताओं के साथ, उपस्थित हुआ करते हैं। हे राजेन्द्र, वहाँ रुद्रपत्नी सदा रहती हैं। उनके दर्शन करने से दुर्गति से छुटकारा होता है। वहाँ शङ्कर, ब्रह्मा और नारायण के दर्शन करने से मनुष्य सब ७० पापों से छुटकारा पाकर परम शान्तियुक्त हो विष्णुलोक को जाता है। जो कोई सर्वदेव तीर्थ में स्नान करता है वह सब दुःखों से छूटकर चन्द्रमा के समान कान्तिशाली होता है।

फिर तीर्थयात्रा करनेवाले को स्वस्तिपुर तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ की प्रदक्षिणा करने से सहस्र गोदान का फल होता है। फिर पावन तीर्थ में जाकर पितरों और देवताओं की आराधना करने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल होता है। हे भरतश्रेष्ठ, वहाँ के गङ्गाह्रद कूप में तीन कोटि तीर्थ

हैं। वहाँ स्नान करने से स्वर्गलोक प्राप्त होता है। आपगा तीर्थ में स्नान और महेश्वर की पूजा करने से गणपति-पद प्राप्त होता है और वंश का उद्धार होता है। वहाँ से त्रिलोकप्रसिद्ध स्थाणु-वट में जाना चाहिए। वहाँ स्नान करके एक रात रहने से रुद्रलोक प्राप्त होता है। फिर वशिष्ठाश्रम के बदरीपाचन तीर्थ में जाकर, तीन दिन रहकर, वहाँ के बेर के फल खाने चाहिएँ।
८० जो कोई तीन दिन उपवास करके बारह वर्ष तक बेर के फल खाता है वह वशिष्ठ ऋषि के तुल्य हो जाता है। तीर्थयात्री को वहाँ से रुद्रमार्ग तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ एक दिन व्रत करने से इन्द्रलोक मिलता है। नियताहार और सत्यवादी होकर एकरात्र तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ एक रात रहनेवाला मनुष्य ब्रह्मलोक में पूजित होता है।

फिर जिस स्थान में तेजोराशि भगवान् आदित्य का आश्रम है उस लोकप्रसिद्ध तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ स्नान करके आदित्य की उपासना करने से मनुष्य आदित्यलोक को जाता है और उसके वंश का उद्धार हो जाता है। तीर्थयात्री व्यक्ति सोम तीर्थ में स्नान करने से निः-सन्देह सोमलोक को जाता है। फिर महात्मा दधीचि मुनि के प्रसिद्ध पुण्यतीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ तपोधन सारस्वत अङ्गिरा ऋषि गये थे। वहाँ स्नान करने से अश्वमेध का फल और सारस्वत-गति प्राप्त होती है। वहाँ से ब्रह्मचर्यधारणपूर्वक कन्याश्रम में जाना चाहिए। राजन्, जो कोई संयम के साथ रहकर यहाँ तीन उपवास करता है वह दिव्य सौ कन्याएँ पाकर
९० स्वर्गलोक को जाता है। वहाँ से सन्निहती तीर्थ में जाना चाहिए। यहाँ पुण्यात्मा ब्रह्मा आदि देवता और तपस्वी ऋषि हर महीने जाते हैं। सूर्यग्रहण के समय यहाँ स्नान करने से सौ अश्वमेध यज्ञों का अक्षय फल मिलता है। पृथ्वी और अन्तरिक्ष में जो तीर्थ, नदी, कुण्ड, तालाब, झरने, झील, बावली और जलाशय हैं, वे सब हर अमावस को अवश्य सन्निहती तीर्थ में आते हैं। सब तीर्थों के ऐसे सन्नहन अर्थात् एकत्र होने से ही इस तीर्थ का सन्निहती नाम है। यहाँ स्नान और जलपान करने से स्वर्गलोक में मनुष्य पूजित होता है। जो कोई अमावस को सूर्यग्रहण के समय यहाँ पर श्राद्ध करता है उसे अक्षय पुण्य होता है। अच्छी तरह अश्वमेध यज्ञ करने से जो फल होता है सो फल यहाँ स्नान और श्राद्ध करने से ही मिल जाता है। स्त्री या पुरुष जो कुछ दुष्कर्म करते हैं सो सब यहाँ स्नान करने से दूर हो जाता है। फिर मचक्रुक नाम के द्वारपाल यक्ष को प्रणाम करने से मनुष्य पद्मवर्ण यान पर चढ़कर ब्रह्मलोक को जाता
२०० है। कोटि तीर्थ में स्नान करने से बहुत सा सुवर्ण मिलता है। ब्रह्मचारी और पवित्रहृदय होकर यहाँ गङ्गाह्रद में स्नान करने से मनुष्य को राजसूय और अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है।

पृथ्वी पर नैमिषारण्य, अन्तरिक्ष में पुष्कर और त्रिलोक में कुरुक्षेत्र सबसे श्रेष्ठ तीर्थ हैं। कुरुक्षेत्र की हवा से उड़ी हुई धूल भी पापियों को परम गति देती है। उत्तर में सरस्वती, दक्षिण में दृषद्वती और बीच में कुरुक्षेत्र है। यहाँ रहने से स्वर्गवास का फल प्राप्त होता है। मैं कुरु-

क्षेत्र में जाऊँ और रहूँगा, यों एक वार कहने से भी सब पाप नष्ट हो जाते हैं। यह ब्रह्मर्षिगण-सेवित कुरुक्षेत्र ब्रह्मवेदी माना गया है। यहाँ रहने से मनुष्य किसी तरह शोचनीय नहीं होता। तरन्तुक, अरन्तुक, रामह्रद और मचक्रुक के बीच का क्षेत्र ही कुरुक्षेत्र है। समन्तपञ्चक भी पितामह की उत्तरवेदी कहा जाता है। २०८

चौरासी अध्याय

धर्मतीर्थ आदि तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन

पुलस्त्य कहते हैं—वहाँ से परमप्रसिद्ध और श्रेष्ठ धर्मतीर्थ में जाना चाहिए। यहाँ पर महाभाग धर्म ने बहुत कठिन तप किया था। उन्होंने इस तीर्थ को बनाया और अपने नाम से प्रसिद्ध किया। धर्मशील और एकाग्र होकर यहाँ स्नान करनेवाले की सात पीढ़ियाँ तर जाती हैं। यहाँ से ज्ञानपावन तीर्थ में जाने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल और मुनिलोक प्राप्त होता है। फिर सौगन्धिक वन में जाना चाहिए। यहाँ पर ब्रह्मा आदि देवगण, तपोधन ऋषिगण, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, किन्नर और नागगण रहते हैं। यहाँ प्रवेश करते ही सब पाप दूर हो जाते हैं। यहाँ से प्लक्षा नाम की श्रेष्ठ नदी में जाना चाहिए। यह सरस्वती की ही एक शाखा है। यहाँ वल्मीक से निकले हुए जल में स्नान करके पितरों और देवताओं की आराधना करने से अश्वमेध का फल प्राप्त होता है। इस वल्मीक से छः शम्यानिपात (मुद्गर की शकल की एक यज्ञ की लकड़ी को शम्या कहते हैं। उसे घुमाकर कोई बली पुरुष फेंके और वह जितनी दूर पर गिरे उतनी दूरी को एक शम्यानिपात कहते हैं) भर स्थान को प्राचीन लोग ईशानाध्युषित तीर्थ कहते हैं। वहाँ स्नान करने से सहस्र कपिलादान और अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। सुगन्धा, शतकुम्भा और पञ्चयक्षा तीर्थ में जाने से स्वर्गलोक प्राप्त होता है। वहाँ के त्रिशूलखात तीर्थ में १० जाने और नहाने तथा पितरों और देवताओं की पूजा करने से, शरीरत्याग करने पर मनुष्य को गणपति-पद प्राप्त होता है।

वहाँ से सुदुर्लभ और त्रिलोकप्रसिद्ध शाकम्भरी देवी के स्थान को जाना चाहिए। प्रसिद्ध है कि देवी ने यहाँ हर महीने केवल शाक का आहार करके दिव्य सहस्र वर्ष तक तप किया था। कुछ ऋषि भक्तिपूर्वक वहाँ उनके पास उपस्थित हुए, तब देवी ने शाक से ही उनका अतिथि-सत्कार किया। इसी से देवी का नाम शाकम्भरी पड़ा। ब्रह्मचारी और पवित्र-हृदय होकर, शाकम्भरी तीर्थ में जाकर, केवल शाक आहार करके तीन दिन रहने से देवी के प्रसाद से, बारह वर्ष तक शाक खाकर तप करने का फल प्राप्त होता है। फिर लोकप्रसिद्ध सुवर्ण तीर्थ में जाना चाहिए। पहले भगवान् विष्णु ने इसी स्थान में रुद्रदेव की प्रसन्नता के लिए, उनकी आरा-

धना करके, देव-दुर्लभ वर प्राप्त किये थे। महादेव ने सन्तुष्ट होकर कहा था कि हे कृष्ण, तुम
२० सब लोकों के परम प्रिय और सब जगत् के सुख-स्वरूप होगे। हे राजेन्द्र, वहाँ जाकर भग-
वान् शङ्कर की आराधना करने से अश्वमेध यज्ञ का फल और गणपति-पद प्राप्त होता है।

फिर धूमावती में जाना चाहिए। वहाँ तीन दिन उपवास करने से मनुष्य की मनचाही इच्छाएँ सिद्ध होती हैं। धूमावती का दक्षिण ओर का आधा हिस्सा रथावर्त्त नाम से प्रसिद्ध है। जितेन्द्रिय होकर श्रद्धा-पूर्वक उस पर चढ़ने से, महादेव के प्रसाद से, परम गति मिलती है। उसकी प्रदक्षिणा करके सर्वपापनाशक धारा तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य को फिर शोक नहीं होता। फिर महागिरि को नमस्कार करके हरद्वार में जाना चाहिए। हरद्वार स्वर्गद्वार के तुल्य है। एकाग्र होकर वहाँ के कोटि तीर्थ में स्नान करने से पुण्डरीक यज्ञ का फल मिलता और वंश का उद्धार होता है। वहाँ रात भर रहने से सहस्र गोदान का फल होता है। सप्तगङ्ग, त्रिगङ्ग और शक्रावर्त्त में पितरों और देवताओं का विधि-पूर्वक तर्पण करने से पुण्यलोकों की गति प्राप्त होती है। वहाँ से कनखल में जाकर तीन दिन उपवास करने से अश्वमेध यज्ञ का फल
३० और स्वर्गलोक प्राप्त होता है।

हे कुरुकुल-तिलक, फिर तीर्थयात्री को कपिलावट में जाना चाहिए। वहाँ एक रात रहकर उपवास करने से सहस्र गोदान का फल मिलता है। महात्मा नागराज कपिल के त्रिलोक-प्रसिद्ध तीर्थ में स्नान करने से सहस्र कपिलादान का फल प्राप्त होता है। फिर शान्तनु के ललि-तक नाम के रमणीय तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ स्नान करने से मनुष्य की दुर्गति दूर होती है। जो व्यक्ति गङ्गा-यमुना के सङ्गम में स्नान करता है उसे दस अश्वमेध यज्ञों का फल मिलता है और वंश का उद्धार हो जाता है। वहाँ से लोक-प्रसिद्ध सुगन्ध तीर्थ में जाने से सब पाप नष्ट होते हैं और ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। हे नराधिप, तीर्थयात्रा करनेवाला जो व्यक्ति रुद्रावर्त में जाकर स्नान करता है वह स्वर्गलोक को जाता है। गङ्गा-सरस्वती-सङ्गम में स्नान करने से अश्व-मेध का फल और स्वर्गलोक मिलता है। भद्रकर्णेश्वर में जाकर विधिपूर्वक देवपूजा करने से यात्री की दुर्गति दूर होती है और वह स्वर्गलोक में पूजित होता है। वहाँ से कुब्जाम्रक में जाने से
४० सहस्र गोदान का फल और स्वर्गलोक मिलता है।

हे कुरुश्रेष्ठ, फिर तीर्थयात्री को अरुन्धतीवट में जाना चाहिए। ब्रह्मचारी और एकाग्र होकर सामुद्रक तीर्थ में स्नान और तीन रात्रि तक व्रत करने से अश्वमेध यज्ञ और सहस्र गोदान का फल मिलता है; वंश का उद्धार भी हो जाता है। फिर ब्रह्मचारी और एकाग्र होकर ब्रह्मावर्त में जाने से अश्वमेध यज्ञ का फल और सोमलोक मिलता है। मनुष्य वहाँ से यमुनाप्रभव में जाकर स्नान करता है तो अश्वमेध का फल पाकर स्वर्गलोक को जाता है। त्रिलोकपूजित दर्वीसंक्रमण में जाने से अश्वमेध यज्ञ का फल और स्वर्गलोक मिलता है। सिद्ध-गन्धर्व-सेवित

सिन्धुप्रभव में जाकर पाँच रात तक रहने से बहुत सुवर्ण प्राप्त होता है। वहाँ से परम दुर्गम वेदी-तीर्थ में जाने से अश्वमेध यज्ञ का फल और स्वर्गलोक मिलता है। फिर ऋषिकुल्या और वशिष्ठ तीर्थ में जाना चाहिए। वाशिष्ठी के उस पार जाने से सभी वर्ण ब्राह्मण हो जाते हैं। ऋषिकुल्या में जाकर स्नान, पितरों की पूजा और शाकाहार करके एक महीने रहने से मनुष्य निष्पाप हो जाता है और ऋषिलोक को जाता है। भृगुतुंग में जाने से अश्वमेध का फल प्राप्त होता है; और सब पाप नष्ट हो जाते हैं। वीरप्रमोक्ष तीर्थ में जाने से पाप नहीं लगते। कृत्तिका तीर्थ और मघा तीर्थ में जाने से अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञ का फल प्राप्त होता है। सन्ध्या के समय वहीं के विद्या तीर्थ में जाने और स्नान करने से विद्या-लाभ होता है। जो व्यक्ति सब पापों से छुड़ानेवाले महाश्रम तीर्थ में एक समय निराहार रहकर एक रात टिकता है वह शुभ लोकों में जाता है। महालय तीर्थ में, दिन-रात के छठे हिस्से भर समय में, उपवास करता हुआ जो कोई महीने भर रहता है उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं; बहुत सुवर्ण मिलता है; और वंश की आगे-पीछे की दस-दस पीढ़ियों का उद्धार हो जाता है। वहाँ से पितामहसेवित वेतसिका तीर्थ में जाने से अश्वमेध का फल और शुक्र का रूप मिलता है। सिद्धसेवित सुन्दरिका तीर्थ में जाने से रूप प्राप्त होता है। यह प्राचीन पुरुषों ने देखा है। वहाँ से ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय होकर ब्राह्मणी तीर्थ में जाने से मनुष्य पद्मवर्ण यान पर चढ़कर ब्रह्मलोक को जाता है। ५०

फिर सिद्धसेवित परम पवित्र नैमिष तीर्थ में जाना चाहिए। इस स्थान पर भगवान् ब्रह्मा देवगणसहित सदा रहते हैं। नैमिष तीर्थ की खोज करने से आधा पाप और उसकी सीमा में पैर रखने से सारा पाप नष्ट हो जाता है। तीर्थयात्री को वहाँ एक महीने रहना चाहिए। पृथ्वी पर जितने तीर्थ हैं, सब नैमिष क्षेत्र में विराजमान हैं। संयमी और मिताहारी होकर वहाँ स्नान करने से गोमेध यज्ञ का फल होता है और सात पीढ़ियाँ तर जाती हैं। जो कोई नित्य उपवास-परायण होकर नैमिष तीर्थ में शरीरत्याग करता है, वह सभी श्रेष्ठ लोकों में सुख भोगता है। यह बुद्धिमानों का कहना है। हे नृपश्रेष्ठ, नैमिष तीर्थ नित्य, पवित्र और पुण्यदायक है। गङ्गोद्भेद में जाकर तीन दिन उपवास करने से वाजपेय यज्ञ का फल और ब्रह्मरूप प्राप्त होता है। वहाँ से सरस्वती तीर्थ में जाकर पितरों और देवताओं का तर्पण करने से सारस्वत लोक में मनुष्य आनन्द का भागी होता है। ६०

फिर ब्रह्मचारी और एकाग्र होकर बाहुदा तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ एक रात रहने से स्वर्गलोक और देवसत्र यज्ञ का फल मिलता है। वहाँ से पुण्यात्मा पुरुषों के आश्रयस्थान, पवित्र, क्षीरवती तीर्थ में जाकर पितरों और देवताओं की पूजा करने से वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है। ब्रह्मचारी और समाहित होकर विमलाशोक तीर्थ में जाकर एक रात रहने से मनुष्य स्वर्ग-लोक में पूजित होता है। फिर गोप्रतार नाम के अति उत्तम सरयू तीर्थ में जाना चाहिए। इस ७०

स्थान पर भगवान् रामचन्द्र ने भृत्य, वाहन और सैन्यसहित देहत्याग करके स्वर्गारोहण किया था। यहाँ स्नान करनेवाला, राम के प्रसाद से, अपने इस शुभ कर्म के फल से पापमुक्त होता और स्वर्ग-लोक को जाता है। जो कोई राम-तीर्थ गोमती में स्नान करता है वह अश्वमेध का फल पाकर अपने कुल को पवित्र करता है। मित आहार करता हुआ संयमी यात्री यहाँ के साहस्रक तीर्थ में स्नान करके सहस्र गोदान का फल पाता है। फिर परम रमणीय भर्तृस्थान तीर्थ में जाकर स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। कोटि तीर्थ में स्नान करके भगवान् कार्त्तिकेय की उपासना करने से तेज और सहस्र गोदान का फल मिलता है। वहाँ से वाराणसी में जाकर विश्वनाथ शङ्कर की आराधना और कपिला ह्रद में स्नान करने से राजसूय यज्ञ का फल मिलता है। हे कुरुश्रेष्ठ, यात्री को अविमुक्त तीर्थ में जाकर देव-देव शिव के दर्शन करने से ब्रह्महत्या से ८० छुटकारा और प्राणत्याग करने से मोक्ष मिलता है। लोकप्रसिद्ध गोमती-गङ्गा के सङ्गम, सुदुर्लभ मार्कण्डेय तीर्थ में जाने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता और वंश का उद्धार होता है। फिर ब्रह्मचारी और समाहित होकर गया में जाने से तत्काल अश्वमेध यज्ञ का फल होता है। इसी स्थान पर भुवनप्रसिद्ध अक्षयवट है। कहा जाता है कि वहाँ पितृपुरुषों के लिए जो दान किया जाता है वह अक्षय होता है। महानदी में स्नान करके तर्पण करने से अक्षयलोक मिलता है और कुल का उद्धार हो जाता है। वहाँ से धर्मारण्य-शोभित ब्रह्मसर में जाने से एक रात बीतते ही ब्रह्मलोक मिलता है। भगवान् ब्रह्मा ने इस सरोवर के तट पर जो उत्तम यूप गाड़ दिया है उसकी प्रदक्षिणा करने से वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है। फिर भुवनप्रसिद्ध धेनुक तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ एक रात उपवास करके तिल और धेनु देने से सब पाप नष्ट होते और सोम-लोक की गति होती है। हे भारत, पहले बछड़े सहित कपिला धेनु विचरते-विचरते यहाँ के पर्वत पर आई थी। उसके चरण के चिह्न जो वहाँ पर बने हुए हैं, वे इस समय भी देख पड़ते ९० हैं। वहाँ स्नान करने से सब अशुभ नष्ट हो जाते हैं। फिर महादेव के आश्रम गृध्रवट में जाना चाहिए। वहाँ शङ्कर के दर्शन करके भस्म-स्नान करने से ब्राह्मण बारह वर्ष तक व्रतानुष्ठान करने का फल पाता है और अन्य वर्णों के सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

फिर गीतध्वनि से गूँजते हुए उद्यन्त पर्वत पर जाना चाहिए। यहीं सावित्री देवी के चरण-चिह्न देखने को मिलते हैं। यहाँ जो ब्राह्मण व्रतधारी होकर सन्ध्योपासन करता है उसे बारह वर्ष तक सन्ध्योपासन करने का फल प्राप्त होता है। यहाँ के सुप्रसिद्ध योनिद्वार तीर्थ में जाने से मनुष्य योनि-सङ्कट से मुक्त हो जाता है। हे भरतश्रेष्ठ, जो व्यक्ति कृष्ण और शुक्ल दोनों पक्षों में गया तीर्थ में रहते हैं उनकी सात पीढ़ियाँ तर जाती हैं। यदि बहुत से पुत्रों में से एक भी गया में जाकर अश्वमेध यज्ञ करता है, या नीले रङ्ग का बैल छोड़ता है, तो पितर तर जाते हैं। इसी लिए मनुष्य बहुत पुत्र होने की इच्छा करता है। यात्री को यहाँ से फल्गु तीर्थ में

जाना चाहिए। वहाँ जाने से अश्वमेध यज्ञ का फल होता है और अन्त को परम सिद्धि मिलती है। वहाँ से चित्त को एकाग्र करके धर्मप्रस्थ में जाना चाहिए। हे युधिष्ठिर, इस स्थान में कुएँ के पानी में नहाकर, पवित्र होकर, पितरों और देवताओं का तर्पण करने से मनुष्य पापमुक्त होकर दिव्यलोक को जाता है। इस स्थान पर पवित्रहृदय महर्षि मतङ्ग का जो श्रम और शोक १०० को मिटानेवाला रमणीय आश्रम है, उसमें जाने से गोमेध यज्ञ का और वहाँ के धर्म तीर्थ में स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। फिर उत्तम ब्रह्मस्थान तीर्थ में जाना चाहिए। हे पुरुषश्रेष्ठ, वहाँ ब्रह्मा के पास पहुँचने पर मनुष्य को राजसूय और अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। जो कोई वहाँ से राजगृह में जाकर स्नान करता है वह काक्षीवान् ऋषि की तरह आनन्दित होता है। पवित्र होकर वहाँ की यक्षिणी का नैत्यिक प्रसाद खाने से ब्रह्महत्या का पाप भी छूट जाता है।

फिर मणिनाग तीर्थ में जाने से सहस्र गोदान का फल होता है। हे भारत, जो कोई इस तीर्थ की किसी चीज़ को खाता है, उसे साँप भी काट खाय तो उसका विष उसके शरीर में असर नहीं करता। वहाँ एक रात रहने से सहस्र गोदान का फल प्राप्त होता है। फिर ब्रह्मर्षि गौतम के प्रिय वन में जाना चाहिए। वहाँ अहल्याह्रद में स्नान करने से परम गति मिलती है; आश्रम में प्रवेश करने से सौभाग्य-सम्पत्ति की वृद्धि होती है। वहाँ के त्रिलोकप्रसिद्ध जलाशय में स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। राजर्षि जनक के देवपूजित कुएँ में १० स्नान करने से विष्णुलोक मिलता है।

फिर सर्वपापनाशन विनशन तीर्थ में जाने से वाजपेय यज्ञ का फल और सोमलोक प्राप्त होता है। सब तीर्थों के जल से उत्पन्न गण्डकी नदी में जाने से वाजपेय यज्ञ का फल और सूर्य-लोक मिलता है। वहाँ से लोकविख्यात विशल्या नदी में जाने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल और स्वर्गलोक मिलता है। फिर अधिवङ्ग नाम के तपोवन में प्रवेश करने से यक्षों के बीच में रहने का आनन्द प्राप्त होता है। सिद्धगण-सेवित कम्पना नदी में स्नान करने से पुण्डरीक यज्ञ का फल और स्वर्गलोक मिलता है। वहाँ से माहेश्वरी धारा में जाने से अश्वमेध यज्ञ का फल और वंश का उद्धार होता है। महाराज, जो कोई देवताओं की पुष्करिणी में स्नान करता है उसकी दुर्गति दूर हो जाती है और वह अश्वमेध यज्ञ का फल पाता है।

फिर ब्रह्मचारी होकर और चित्त को एकाग्र करके सोमपद में जाकर माहेश्वरपद में स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ का फल होता है। हे भरतश्रेष्ठ, सुना जाता है कि वहाँ कोटि तीर्थ एक-त्रित हैं। कच्छपरूपी दुष्ट असुर इन सब तीर्थों को हर ले गया था। भगवान् विष्णु ने उसे मारकर फिर से उन सब तीर्थों को स्थापित किया है। यहाँ स्नान करने से पुण्डरीक यज्ञ का २० फल और विष्णुलोक प्राप्त होता है। फिर नारायण स्थान में जाना चाहिए जहाँ भगवान् विष्णु

शालग्राम नाम से प्रसिद्ध होकर सदा बने रहते हैं और ब्रह्मा आदि देवता तपोधन ऋषिगण, आदित्य, वसुगण, रुद्रगण आदि के साथ उनकी उपासना करते हैं। उन त्रिलोकीनाथ सनातन विष्णु के दर्शन करने से अश्वमेध यज्ञ का फल और विष्णुलोक मिलता है। वहाँ सर्वपाप-मोचन कूप है; उसमें चारों समुद्र सदा सन्निहित रहते हैं। उसमें स्नान करने से कभी यन्त्रणा का अनुभव नहीं होता। हे राजेन्द्र, वहाँ नित्य और वरदानी महादेव के दर्शन करने से मनुष्य मेघमुक्त चन्द्रमा के समान उज्ज्वल कान्ति पाता है। जो कोई शुचि और पवित्र हृदय से जातिस्मर तीर्थ में स्नान करता है वह पूर्वजन्मों के वृत्तान्त को दूसरे जन्म में नहीं भूलता। माहेश्वरपुर में जाकर शङ्कर की आराधना करने से निःसन्देह मनुष्य अभीष्ट कामनाओं को परि-
३० पूर्ण कर लेता है और बहुत से उपवासों के फल को प्राप्त होता है।

फिर सर्वपापमोचन वामन तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ देव-देव विष्णु के दर्शन करने से दुर्गति दूर हो जाती है। सब पापों से छुड़ानेवाले कुशिकाश्रम में जाकर वहाँ की महापाप-नाशिनी कौशिकी नदी में स्नान करने से राजसूय यज्ञ का फल मिलता है। वहाँ से रमणीय चम्पकारण्य और परम दुर्लभ जेष्ठिला तीर्थ में जाने से, और एक दिन व्रत रखने से, सहस्र गोदान का फल मिलता है। हे पुरुषश्रेष्ठ, वहाँ देवी-सहित महाद्युति महादेव के दर्शन करने से मित्रावरुण के लोक की गति प्राप्त होती है। जो कोई वहाँ तीन दिन उपवास करता है उसे अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है। नियताहारी और मिताहारी होकर कन्यासंवेद्य तीर्थ में जाकर मनुष्य प्रजापति मनु के लोक को जाता है। व्रतधारी ऋषिगण कहा करते हैं कि वहाँ बहुत थोड़ा सा दान भी अक्षय हो जाता है।

फिर लोकप्रसिद्ध निर्वीर तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ जाने से अश्वमेध यज्ञ का फल और विष्णुलोक मिलता है। जो लोग निर्वीरा-सङ्गम में दान करते हैं उन्हें नीरोग इन्द्रलोक मिलता है। वहाँ वशिष्ठ के त्रिलोक-प्रसिद्ध आश्रम में स्नान करने से वाजपेय यज्ञ का फल
४० मिलता है। जो कोई देव-ऋषिगण-सेवित देवकूट में जाता है वह अश्वमेध यज्ञ के फल का भागी होकर अपने वंश का उद्धार करता है। वहाँ से महर्षि कौशिक के ह्रद को जाना चाहिए। यहाँ पर कुशिकवंश में उत्पन्न विश्वामित्र ने परम सिद्धि प्राप्त की थी। हे भरतश्रेष्ठ, यहाँ एक महीना रहने से अश्वमेध यज्ञ करने का पुण्य-फल मिलता है। जो पुरुष तीर्थश्रेष्ठ इस महाह्रद में रहता है उसकी दुर्गति दूर हो जाती है और उसे बहुत सुवर्ण मिलता है। वीराश्रमनिवासी भगवान् कार्त्तिकेय के दर्शन करने से अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। जो कोई त्रिलोकप्रसिद्ध अग्निधारा तीर्थ में जाता, नहाता और अव्यय वरदानी महादेव तथा विष्णु के दर्शन करता है उसे अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है। वहाँ से पर्वतराज के समीपवर्ती पितामह सरोवर में जाकर स्नान करने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल होता है। वहाँ उक्त सरोवर से जो त्रिभुवन में प्रसिद्ध

लोकपावनी कुमारधारा निकली है उसमें स्नान करने से मनुष्य कृतार्थ होता है; और षष्ठांश उपवास करने से ब्रह्महत्या का पातक दूर हो जाता है। १५०

फिर यात्री को महादेवी गौरी के शिखर पर चढ़कर स्तनकुण्ड में जाना चाहिए। वहाँ स्नान करने और पितरों की आराधना करने से वाजपेय और अश्वमेध का फल तथा स्वर्गलोक प्राप्त होता है। ब्रह्मचर्य और संयम के साथ ताम्रारुण तीर्थ में जाने से अश्वमेध यज्ञ का फल और ब्रह्मलोक मिलता है। जो कोई देवगण-सेवित नन्दिनीकूप में जाता है उसे नरमेध यज्ञ का पुण्य मिलता है। कौशिकारुण में जाकर कालिका-संगम में स्नान और तीन दिन उपवास करने से सब पाप मिट जाते हैं। जो कोई उर्वशी तीर्थ, सोमाश्रम और कुम्भकर्णाश्रम में जाता है वह पृथ्वीमण्डल में पूजनीय होता है। प्राचीन पुरुषों ने प्रत्यक्ष देखा है कि ब्रह्मचारी और व्रतधारी होकर कोका-मुख में स्नान करने से मनुष्य जातिस्मर होता है, अर्थात् उसे पूर्व जन्म का हाल याद रहता है। जो ब्राह्मण यत्नपूर्वक एक बार जाकर नन्दा नदी में स्नान करता है वह सब पापों से छुटकारा पाकर इन्द्रलोक को जाता है। क्रौञ्चनिषूदन पवित्र ऋषभ द्वीप में जाकर जो सरस्वती में स्नान करता है वह विमान पर चढ़कर शोभायमान होता है। हे भारत, मुनिसेवित उद्दालक तीर्थ में ६० स्नान करने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं। जो व्यक्ति ब्रह्मर्षिसेवित पवित्र धर्म-तीर्थ में जाता है वह वाजपेय यज्ञ का फल पाता और विमान पर चढ़कर पूजनीय होता है। फिर चम्पा तीर्थ में पहुँचकर भागीरथी में स्नान करके दण्डार्त तीर्थ में जाने से सहस्र गोदान का फल होता है। १६३

पचासी अध्याय

संवेद्य आदि तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन

पुलस्त्य ने कहा—सन्ध्या के समय परमोत्तम संवेद्य तीर्थ में जाकर स्नान करने से मनुष्य अवश्य विद्यालाभ करता है। पहले परशुराम ने अपने प्रभाव से जिसकी सृष्टि की थी, उसी लौहित्य तीर्थ में जाने से बहुत सुवर्ण मिलता है। प्रजापति ने यह विधान किया है कि जो कोई करतोया नदी में जाकर तीन दिन उपवास करता है उसे अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। हे राजेन्द्र, पण्डितों का कथन है कि जिस जगह गङ्गा और सागर का संगम हुआ है वहाँ स्नान करने से दस अश्वमेध यज्ञों का फल होता है। हे राजन्, जो कोई गङ्गा के पश्चिम पार में जाकर तीन दिन स्नान और उपवास करता है वह सब पापों से छूट जाता है।

फिर सर्वपापनाशक वैतरणी तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ जो मनुष्य विरज नाम के तीर्थ में जाता है उसके सब पाप मिट जाते हैं, कुल पवित्र हो जाता है, सहस्र गोदान का फल मिलता और चन्द्रमा की सी कान्ति होती है। जहाँ पर ज्योतिरथ्या के साथ शोण नद का

सङ्गम हुआ है वहाँ रहकर पितृगण और देवगण का तर्पण करने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है। शोण और नर्मदा की उत्पत्ति के स्थान वंशगुल्म तीर्थ में स्नान करने से अश्वमेध का फल होता है। राजन्, कोशल देश में स्थित ऋषभ तीर्थ में जाकर तीन दिन व्रत करने से वाजपेय
१० यज्ञ का फल होता है। वहाँ कालतीर्थ में स्नान करने से निःसन्देह ग्यारह बैल देने का फल प्राप्त होता है। जो नर तीन दिन उपवास करके पुष्पवती में स्नान करता है उसे सहस्र गोदान का फल होता है और उसका कुल पवित्र हो जाता है। हे भरतश्रेष्ठ, तदनन्तर बदरिका तीर्थ में स्नान करने से बड़ी आयु प्राप्त होती है और मनुष्य स्वर्गलोक को जाता है। चम्पापुरी में जाकर भागीरथी में स्नान करके दण्ड तीर्थ में जाने और उसके दर्शन करने से सहस्र गोदान का फल प्राप्त होता है। फिर पुण्यात्मा पुरुषों द्वारा सेवित लपेटिका तीर्थ में जाने से वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है और मनुष्य देव-पूजनीय होता है। फिर परशुराम जहाँ रहते हैं उस महेन्द्र पर्वत पर जाकर वहाँ के तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य को अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। हे कुरुनन्दन, इसी स्थान में मतङ्गकेदार नाम का एक सुप्रसिद्ध तीर्थ है। वहाँ स्नान करने से सहस्र गोदान का फल होता है। फिर श्रीपर्वत पर जाना चाहिए। यहाँ पर भगवान् शङ्कर पार्वती के साथ प्रसन्नतापूर्वक रहते हैं। यहाँ ब्रह्मा आदि देवताओं का निवासस्थान है। यहाँ
२० की नदी में स्नान करके महादेव की पूजा करने से अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। शुचि और पवित्र-चित्त होकर देवह्रद में स्नान करने से अश्वमेध का फल और परम सिद्धि मिलती है। पाण्ड्य प्रदेश के देवपूजित ऋषभ पर्वत पर जाने से वाजपेय यज्ञ का पुण्य और स्वर्गलोक मिलता है। राजन्, फिर अप्सराओं-द्वारा सेवित कावेरी नदी में जाना चाहिए। वहाँ स्नान करने से सहस्र गोदान का फल होता है। फिर समुद्रतट पर जाकर कन्या तीर्थ में स्नान करना चाहिए। वहाँ स्नान करनेवाला मनुष्य सब पापों से छुटकारा पा जाता है। महाराज, समुद्र में सर्वलोक-नमस्कृत त्रिभुवन-प्रसिद्ध गोकर्ण नाम का तीर्थ है। वहाँ ब्रह्मा आदि देवता, ऋषि, तपस्वी, भूत, यक्ष, पिशाच, नर, किन्नर, नाग, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, पन्नग, नदी, समुद्र, पर्वत आदि सब उमा-पति शङ्कर की उपासना करते हैं। मनुष्य यहाँ तीन दिन रहकर शिव की पूजा करने से अश्वमेध का फल और गणपति का पद पाता है। बारह दिन रहने से परम पवित्र हो जाता है। इसके उपरान्त त्रिलोक-पूजित गायत्री देवी के स्थान में जाकर तीन दिन उपवास करने से सहस्र गोदान का फल होता है। हे नराधिप, उस गायत्री-स्थान में ब्राह्मणों का एक प्रत्यक्ष निदर्शन यह पाया जाता है कि ब्राह्मण, चाहे ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हो और चाहे अन्य किसी जाति की
३० स्त्री से, गायत्री-पाठ करता है तो उसकी गाथा और गीतिका विशुद्ध रूप से पठित होती है। किन्तु ब्राह्मण के सिवा और कोई यदि गायत्री पाठ करता है तो उसकी गाथा और गीतिका का पाठ यथार्थ रूप से नहीं होता। वहाँ से ब्रह्मर्षि संवर्त्त की वापी में जाकर स्नान करने से मनुष्य

स्वरूपवान् और सौभाग्यशाली होता है। वहाँ से वेणा तीर्थ में जाकर पितरों और देवताओं का तर्पण करने से मनुष्य मोरों और हंसों के विमान पर चढ़कर स्वर्गलोक को जाता है। फिर सिद्धों-द्वारा सेवित गोदावरी में जाने से गोमेध यज्ञ का फल और वायुलोक मिलता है। वेणासङ्गम में स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ का फल और वरदासङ्गम में स्नान करने से सहस्र गोदान का फल मिलता है। फिर ब्रह्मचारी और समाहित होकर कुशप्लवन तीर्थ में जाकर वहाँ तीन दिन रहने और स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। राजन्, कृष्णवेणा के जल से उत्पन्न देवताओं के रम्य जातिस्मर ह्रद में नहाने से मनुष्य को अपने पिछले जन्मों के वृत्तान्त का ज्ञान हो जाता है। यहाँ इन्द्र सौ यज्ञ करके स्वर्ग को गये हैं। हे भारत, इन सब तीर्थों में जाते ही अग्निष्टोम यज्ञ का फल प्राप्त होता है। सर्वदेव ह्रद में स्नान करने से सहस्र गोदान का फल मिलता है। फिर महापुण्यदायिनी पयोष्णी नदी में जाकर पितरों और देवताओं की पूजा करने से सहस्र गोदान का पुण्य होता है। राजन्, यात्री को पवित्र दण्डकारण्य में जाकर स्नान ४० करना चाहिए। वहां स्नान करने से सहस्र गोदान का फल होता है। शरभङ्ग और महात्मा शुकदेव के आश्रम में जाने से मनुष्य को सद्गति प्राप्त होती है और वह अपने वंश को पवित्र करता है। फिर महर्षि जमदग्नि के पुत्र परशुराम के निवासस्थान शूर्पारक तीर्थ में जाना चाहिए। इस राम तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य को सुवर्ण देने का फल प्राप्त होता है। संयमी और मिताहारी होकर सप्तगोदावरी तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य पुण्यभागी और देवलोकगामी होता है। इसी तरह संयमपूर्वक देवपद तीर्थ में जाने से देवसत्र का पुण्य प्राप्त होता है।

राजन्, पहले ब्रह्मचारी महर्षि सारस्वत ने तुङ्गकारण्य में जाकर वहाँ के ऋषियों को वेद पढ़ाये थे। समय पाकर उन वेदों के नष्ट होने पर अङ्गिरा के पुत्र भगवान् बृहस्पति ऋषियों के उत्तरीय वस्त्रों पर सुखपूर्वक बैठे। इसके बाद सब ऋषियों ने एकत्र होकर ज्योंही विधिपूर्वक ओङ्कार का उच्चारण किया त्योंही जिसने जिस वेद का अभ्यास किया था वह वेद उसे स्मरण हो आया। तब देवता, वरुण, अग्नि, प्रजापति, हरिनारायण और महादेव आदि सबने तेजस्वी महर्षि भृगु को तुङ्गकारण्यनिवासी ऋषियों का यज्ञ कराने के काम में नियुक्त किया। ५० महातपस्वी भृगु ने कर्म के द्वारा फिर अग्नि को स्थापित किया। तब क्रमशः देवताओं और ऋषियों ने आज्यभाग के द्वारा अग्नि को विधिपूर्वक तृप्त किया। फिर सब अपने-अपने स्थान को चले गये। राजन्, स्त्री या पुरुष सभी इस तुङ्गकारण्य में प्रवेश करते ही निष्पाप हो जाते हैं। वहाँ एक महीने भर रहने से दुर्लभ ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। वह मनुष्य अपने कुल का उद्धार करता है।

मेधाविक तीर्थ में पितरों और देवताओं का तर्पण करने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल, स्मृति और मेधाशक्ति प्राप्त होती है। फिर लोकप्रसिद्ध कालञ्जर पर्वत पर जाकर वहाँ के देव ह्रद में

स्नान करने से सहस्र गोदान का फल और स्वर्गलोक मिलता है। राजन्, गिरिवर चित्रकूट में सब पापों को मिटानेवाली मन्दाकिनी बहती है। उसमें स्नान और पितरों तथा देवताओं की पूजा करने से अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता और उत्तम गति प्राप्त होती है। वहाँ से भर्तृस्थान में
६० जाना चाहिए। यहाँ महासेन गुह नित्य रहते हैं। यहाँ जाने से ही मनुष्य सिद्ध हो जाता है। कोटि तीर्थ में स्नान करने से सहस्र गोदान का फल होता है। फिर ज्येष्ठस्थान की प्रदक्षिणा करके महादेव के निकट जाने से मनुष्य चन्द्रमा के समान कान्तिशाली होता है। महाराज, वहाँ के कूप में प्रसिद्ध चारों सागर विद्यमान हैं। उनमें स्नान और पवित्र हृदय से पितरों और देवताओं की पूजा करने से मनुष्य पवित्र होता और परम गति पाता है। फिर शृंगवेरपुर में जाना चाहिए। वनवास के समय यहाँ पहले रामचन्द्र ठहरे थे। इस तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य सब पापों से छुटकारा पा जाता है। ब्रह्मचर्य और संयम के साथ गङ्गास्नान करने से मनुष्य पापहीन होकर वाजपेय यज्ञ का फल पाता है। फिर देवस्थान मुञ्जवट में जाना चाहिए। वहाँ महादेव की प्रदक्षिणा करने से मनुष्य गणपति होता है। वहीं जाह्नवी में स्नान करने से मनुष्य का सब पापों से छुटकारा हो जाता है।

फिर ऋषिपूजित प्रयाग तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ ब्रह्मा आदि देवता, दिशा, दिक्पाल, लोकपाल, साध्य, पितृगण, सनत्कुमार आदि ब्रह्मर्षिगण, नाग, सुपर्ण, सिद्ध, चक्रचर, नदी, समुद्र,
७३ गन्धर्व, अप्सरा, भगवान् हरि और प्रजापति रहते हैं। वहाँ तीन अग्निकुण्ड हैं। उन्हीं के बीच होकर श्रेष्ठ नदी गङ्गा वेग से बही थीं और वहीं पर यमुना और गङ्गा का सङ्गम हुआ है। यह भूखण्ड पृथ्वी की जङ्घा है। इसी को ऋषियों ने प्रयाग कहा है। प्रयाग, प्रतिष्ठान, कम्बल और अश्वतर, ये प्रधान तीर्थ हैं। भोगवती प्रजापति की वेदी कहलाती है। वहाँ पर देव और यज्ञ मूर्त्तिमान् होकर ऋषियों के साथ ब्रह्मा की उपासना करते हैं। देवता और चक्रवर्त्ती राजा योगाभ्यास करते हैं। इसी कारण तीनों लोकों में प्रयाग परम पवित्र और सब तीर्थों से श्रेष्ठ माना गया है। इस तीर्थ में जाने से, इसका नाम लेने से, या यहाँ की मिट्टी शरीर में लगाने
८० से ही सब पाप दूर हो जाते हैं। जो कोई गङ्गासङ्गम में स्नान करता है वह सब पुण्यों का भागी होकर राजसूय और अश्वमेध यज्ञों के फल को भोगता है। यहाँ पर देवताओं के द्वारा सुसंस्कृत यजनभूमि है। यहाँ थोड़ा दान करने से भी बहुत फल होता है। वेद के वचन या लौकिक प्रवाद में बहककर तुम प्रयाग में मरण से विमुख न होना; क्योंकि प्रयाग में साठ करोड़ दस हज़ार तीर्थ हैं।

गङ्गा और यमुना के सङ्गम में स्नान करते ही चार प्रकार की विद्या और सत्य बोलने का पुण्यफल होता है। प्रयाग में भोगवती नाम का वासुकि तीर्थ है। जो व्यक्ति वहाँ स्नान करता है वह अश्वमेध यज्ञ का फल पाता है। वहाँ की गङ्गा में हंसप्रपतन और दशाश्वमेधिक

तीर्थ हैं। प्रयाग में चाहे जहाँ पर गङ्गास्नान किया जाय, कुरुक्षेत्र में स्नान करने के समान फल मिलता है। विशेष कर कनखल और प्रयाग का बहुत अधिक माहात्म्य माना गया है। गङ्गा-स्नान करने से सौ-सौ कुकर्म करनेवाले के भी सब पातक आग में लकड़ियों के ढेर के समान भस्म हो जाते हैं। सत्ययुग में सब तीर्थ, त्रेता में पुष्कर, द्वापर में कुरुक्षेत्र पुण्यप्रद तीर्थ माने जाते थे; किन्तु कलियुग में गङ्गा ही सबसे बढ़कर पतितपावनी हैं। पुष्कर में तपस्या, महालय में दान, मलय में हवन और भृगुतुङ्ग में निर्जल व्रत करने से पापों का नाश होता है। किन्तु पुष्कर, कुरुक्षेत्र, गङ्गा और मगध तीर्थ (गया) में केवल स्नान ही कर लेने से चौदह पीढ़ियाँ तर जाती हैं। गङ्गा का नाम लेने से पाप मिट जाते हैं, दर्शन से शुभ लाभ होता है, नहाने और जल पीने से सात पीढ़ियाँ तर जाती हैं। जब तक मनुष्य की हड्डियाँ गङ्गाजल में रहती हैं तब तक वह स्वर्ग में सुख भोगता है। पवित्र तीर्थों और पुण्य आश्रमों में जाकर देवाराधन और पुण्य उपार्जन करने से स्वर्गलोक मिलता है। पितामह ने कहा है—गङ्गा के समान दूसरा तीर्थ नहीं है, केशव से बढ़कर देवता नहीं है, ब्राह्मण से बढ़कर कोई श्रेष्ठ नहीं है। महाराज, जिस स्थान में गङ्गा हैं वही सचमुच देश है। गङ्गा-किनारे के स्थान तपोवनस्वरूप हैं; उन्हें सिद्धिक्षेत्र समझना चाहिए। ब्राह्मण, साधु, पुत्र, सुहृद्, शिष्य और अनुगत पुरुष को ऐसा सत्य उपदेश देना चाहिए कि यही धन्य, पवित्र, उत्तम, स्वर्गस्वरूप, पुण्यजनक, रम्य, पावन और परमधर्म है। यही महर्षियों का परम गुह्य और सब पापों से छुड़ानेवाला रहस्य है। द्विजमण्डली में इसका पाठ करने से स्वर्ग प्राप्त होता है। महाराज! यह श्रीसम्पन्न, स्वर्गदायक, पुण्यप्रद, शत्रुशमन, बुद्धिवर्धक, परमश्रेष्ठ तीर्थ-वर्णन सुनने से अपुत्र के पुत्र होता है, निर्द्धन को धन मिलता है, राजा को राज्य मिलता है, वैश्य को धन की प्राप्ति होती है, शूद्र की मनचाही कामना सिद्ध होती है और ब्राह्मण सब विद्याओं में पारदर्शी होता है। जो कोई पवित्र होकर प्रतिदिन इस तीर्थयात्रा के पुण्य का वर्णन सुनता है वह जातिस्मर होकर स्वर्ग में सुख भोगता है। राजन्, मैंने जिन सुगम और अगम तीर्थों का वर्णन किया है उन सब तीर्थों की यात्रा केवल मन से भी करने से महापुण्य होता है। इन तीर्थों में वसु, आदित्य, मरुद्गण, अश्विनीकुमार और देवतुल्य ऋषियों ने पुण्य करने की इच्छा से स्नान किया है। इस कारण तुम भी संयम के साथ पुण्य के द्वारा पुण्य को बढ़ाते हुए इन तीर्थों की यात्रा करो।

९०

१००

महाराज! शुद्ध हृदय, आस्तिक, वेदज्ञ और शास्त्रदर्शी साधु पुरुष तीर्थयात्रा करते हैं। व्रतविहीन, अकृतात्मा, अशुचि, चोर, कुटिल मनुष्य कभी तीर्थ-स्नान नहीं करते। तुमने अपनी सच्चरित्रता से और धार्मिकता से पिता, पितामह, प्रपितामह, ब्रह्मा आदि देवताओं और ऋषियों को सन्तुष्ट किया है। इसलिए तुम्हें वसुलोक की प्राप्ति होगी और इस लोक में तुम्हारी महती अविनाशी कीर्त्ति स्थापित हो जायगी।

१०

नारदजी कहते हैं—भगवान् पुलस्त्य ऋषि यों कहकर वहीं पर अन्तर्द्धान हो गये। शास्त्रतत्त्व के ज्ञाता कुरुश्रेष्ठ भीष्म भी, पुलस्त्य ऋषि के उपदेश के अनुसार, पृथ्वी-पर्यटन करने निकले। उनके जाने के समय से सर्वपापमोचनी पुण्यदायिनी तीर्थयात्रा इस प्रकार प्रचलित हुई। जो व्यक्ति पूर्वोक्त विधि के अनुसार पृथ्वी की प्रदक्षिणा करता है वह परलोक में अश्वमेध यज्ञ का उत्तम फल पाता है। कुरुश्रेष्ठ भीष्म ने जैसा धर्म प्राप्त किया था, उससे अठगुना धर्म तुम प्राप्त करोगे। तुम मुनियों के नेता हो, इस कारण तुमको अठगुना फल होगा। हे भारत, तुम्हारे सिवा और कोई इन राक्षसों से घिरे हुए तीर्थों में नहीं जा सकता। जो कोई सवेरे उठकर इस देवर्षिकथित तीर्थों के वृत्तान्त को पढ़ता है उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। वाल्मीकि, कश्यप, आत्रेय, कुण्डजठर, विश्वामित्र, गौतम, असित, देवल, मार्कण्डेय, गालव, भरद्वाज, वशिष्ठ, उद्दालक, शौनक, शौनक के पुत्र, श्रेष्ठ तपस्वी व्यास, श्रेष्ठ मुनि दुर्वासा और महातपस्वी जावालि, ये सब तपोधन ऋषि तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। तुम उनके साथ पूर्वोक्त
१२ तीर्थों में विचरो। अमित तेजस्वी महर्षि लोमश आवेंगे। उनके और मेरे साथ इन तीर्थों में चलो। हे कौरव, तुम राजा महाभिष की तरह महती कीर्त्ति प्राप्त करोगे। धर्मात्मा ययाति और राजा पुरूरवा की तरह तुम अपने धर्म के द्वारा शोभित हो रहे हो। भगीरथ और सुप्रसिद्ध रामचन्द्र की तरह सब राजाओं से बढ़कर तुम तेजस्वी हो। मनु, इक्ष्वाकु, महायशस्वी पुरु और पृथु की तरह तुम प्रसिद्ध हो चुके हो। पहले समय में इन्द्र ने जैसे शत्रुओं को भस्म कर, निष्कण्टक होकर, त्रैलोक्य का पालन किया है, वैसे ही तुम भी शत्रुओं को जीतकर प्रजा-पालन करोगे। कार्तवीर्य अर्जुन की तरह धर्म के प्रभाव से, अपने धर्म से जीती हुई, पृथ्वी को पाकर तुम प्रसिद्ध होगे।

वैशम्पायन कहते हैं—यों आश्वासन देकर और युधिष्ठिर से विदा होकर देवर्षि नारदजी वहीं पर अन्तर्द्धान हो गये। धर्मात्मा युधिष्ठिर ने भी इसी बारे में विचार करते हुए तीर्थयात्रा
१३२ का पुण्यफल ऋषियों को सुनाया।

छियासी अध्याय

धौम्य के आगे युधिष्ठिर का काम्यक वन में रहने के बारे में अनिच्छा प्रकट करना

वैशम्पायन कहते हैं कि राजा युधिष्ठिर ने भाइयों की और बुद्धिमान् नारद की सम्मति लेकर पितामह-तुल्य धौम्य से कहा—ब्रह्मन्, मैंने उन पुरुषसिंह, महाबाहु, महातेजस्वी अर्जुन को अस्त्रों की प्राप्ति के लिए भेजा है। वे मुझ पर अत्यन्त अनुरक्त हैं; वे बली, कृती और वासुदेव के समान प्रभावशाली हैं। मैं और भगवान् व्यासदेव, दोनों ही, महाप्रभावशाली कृष्ण और

अर्जुन को विशेष रूप से जानते हैं। महर्षि नारद भी उनका वृत्तान्त जानते हैं। वे सदा मुझसे उसका वर्णन किया करते हैं। इन्द्रतुल्य देवसुत अर्जुन को इस प्रकार का शक्तिशाली समझकर ही मैंने इन्द्र के दर्शन करने और उनसे अस्त्र लेने के लिए भेजा है; क्योंकि धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन ने अतिरथ भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और दुर्जय अश्वत्थामा आदि महारथियों को युद्ध में अपनी सहायता के लिए निमन्त्रण दिया है। ये सब महाबली, वेदज्ञ, शूर, सब शास्त्रों में विशारद और सदा अर्जुन से युद्ध करने की इच्छा रखते हैं। दिव्य अस्त्रों के ज्ञाता सूतपुत्र महारथी कर्ण भी प्रलयकाल की भयानक आग के तुल्य हैं। वे अस्त्रवेगरूपी वायु की सहायता पाकर, बाण-जालरूपी शिखाओं (लपटों) से युक्त होकर, क्रोधरूपी धुएँ से व्याप्त और दुर्योधनरूपी आँधी से प्रचण्ड होकर युद्ध में मेरी सेना को घास-फूस के समान भस्म कर सकते हैं। किन्तु सफ़ेद ११ घोड़ेरूपी बगुलों की क़तार, गाण्डीव धनुपरूपी इन्द्रधनु और दिव्यास्त्ररूपी बिजली से शोभित क्रुद्ध अर्जुनरूपी मेघ कृष्णरूपी वायु की सहायता पाकर बाणरूपी वृष्टि से कर्णरूपी प्रज्वलित आग को बुझा देगा। मुझे जान पड़ता है, शत्रुदमन अर्जुन साक्षात् इन्द्र से सब दिव्य अस्त्रों को सीख लेने पर शत्रुओं के लिए अत्यन्त दुर्जय हो जायँगे। हमारे शत्रु लोग इस समय ऐसे सहाय-बल से युक्त हैं कि संग्राम में अर्जुन के सिवा और कोई उनका कुछ नहीं कर सकता। इसमें सन्देह नहीं कि अर्जुन अवश्य ही अस्त्रविद्या प्राप्त करके लौटेंगे; क्योंकि वे किसी काम का भार लेकर कभी सुस्ती नहीं करते।

जो हो, द्रौपदीसहित हमें पुरुपसिंह अर्जुन के बिना इस काम्यक वन में रहना अच्छा नहीं लगता। इसलिए आप और किसी अन्न-फल-पूर्ण, पवित्र-जन-शोभित, रमणीय वन का वर्णन कीजिए। हम उसी स्थान पर ठहरकर—मेघदर्शन के लिए उत्सुक, वृष्टि की इच्छा रखनेवाले लोगों की तरह—सत्यपराक्रमी अर्जुन की प्रतीक्षा करेंगे। मैंने ब्राह्मणों से जैसा सुना है उसी के अनुसार विविध आश्रम, सरोवर, नदी और रमणीय पर्वत आदि का वर्णन कीजिए। हम अन्यत्र जायँगे; क्योंकि अर्जुन के बिना इस काम्यक वन में रहना किसी तरह अच्छा नहीं लगता। २१

सत्तासी अध्याय

पूर्वदिशा के सब तीर्थों का वर्णन

वैशम्पायन कहते हैं कि बृहस्पतितुल्य धौम्य ने पाण्डवों को उत्सुक और दीनचित्त देखकर आश्वासन देते हुए कहा—हे युधिष्ठिर, मैं ब्राह्मणों के अनुमत पवित्र तीर्थ, दिशा, पर्वत और आश्रमों का वर्णन करता हूँ, सुनिए। इसे सुनने से आप द्रौपदी और अपने भाइयों-सहित शोक-मुक्त होकर पुण्य प्राप्त करेंगे। मेरे वर्णन किये हुए स्थानों में जाने से वह यात्रा का पुण्य सौगुना

बढ़ जायगा। हे युधिष्ठिर, मैं पहले राजर्षियों द्वारा सेवित रमणीय पूर्वदिशा के स्थानों का वर्णन करता हूँ। देव-ऋषिगण-पूजित पूर्व दिशा में नैमिष क्षेत्र है। वहाँ देवताओं के सब पवित्र तीर्थ अलग-अलग विराजमान हैं। देवर्षिसेवित परम पवित्र रमणीय गोमती वहाँ बहती है। वहीं पर देवताओं की यज्ञभूमि और सूर्यदेव का पशुबन्धन यूप है। इसी पूर्वदिशा में गय नाम का जो राजर्षिपूजित पवित्र पर्वतराज देख पड़ता है, उसमें देवों और ऋषियों से सेवित मङ्गलमय ब्रह्मसर है। हे पुरुषसिंह, प्राचीन लोग उस गय पर्वत के लिए कहते हैं कि मनुष्य को बहुत पुत्रों की इच्छा करनी चाहिए। उनमें से कोई-न-कोई गया में जाकर, अश्वमेध यज्ञ करके, अथवा नीले रङ्ग का साँड़ छोड़कर अपनी पहले की दस और पीछे की दस पीढ़ियों का
१० उद्धार कर सकता है। इस स्थान पर महानदी, गयशिर स्थान और अक्षयवट है। ब्राह्मणों का कहना है कि वहाँ पितरों का श्राद्ध करने या उनके निमित्त अन्नदान करने से वह अक्षय होता है। इस स्थान पर पवित्र जलवाली महानदी फल्गु और बहुफलमूलशालिनी कौशिकी नदी बहती है। यहीं पर तपोधन विश्वामित्र को ब्राह्मणत्व मिला था। यहीं पर पुण्यमयी भगवती भागीरथी बहती हैं। राजा भगीरथ ने, भागीरथी के किनारे, अनेक प्रकार के बहुत दक्षिणावाले यज्ञ किये हैं।

हे कुरुवंशियों में श्रेष्ठ, पाञ्चालराज्य में जो उत्पलवन है वहाँ विश्वामित्र ऋषि ने अपने पुत्र के साथ महायज्ञ किया था और भगवान् परशुराम ने उनकी वह अमानुषी विभूति देखकर उनकी वंशावली का वर्णन किया था। कान्यकुब्ज देश में विश्वामित्र ने इन्द्र के साथ सोमरस पीकर, क्षत्रियत्व छोड़कर, कहा था कि "मैं ब्राह्मण हूँ।"

हे वीर, जहाँ भागीरथी यमुना के साथ मिली हैं वह लोकप्रसिद्ध, ऋषिगणसेवित, पवित्र और परमपुण्यमय स्थान है। भूतात्मा भगवान् ब्रह्मा ने वहाँ यज्ञ किया था, इसी से उसका नाम प्रयाग है। हे राजेन्द्र, वहाँ अगस्त्य का आश्रम, तापसगणशोभित तापसारण्य, कालञ्जर-
२० गिरि पर स्थित हिरण्यबिन्दु और परम पवित्र मङ्गलप्रद रमणीय अगस्त्य पर्वत है। पहले इस स्थान पर भगवान् ब्रह्मा ने महात्मा भार्गव के महेन्द्र गिरि पर यज्ञ किया था। वहाँ पर पुण्यमयी गङ्गा बहती हैं और सुविख्यात ब्रह्मशाला पुण्यात्माओं से पूर्ण रहती है। उसके दर्शन करने से पुण्य होता है। हे भरतश्रेष्ठ, वहाँ महात्मा मतङ्ग ऋषि का केदार नामक पवित्र, मङ्गल-मय, लोकप्रसिद्ध, मनोहर आश्रम और कुण्डोद नाम का पहाड़ है जिसमें नाना प्रकार के फल-मूल-जल आदि हैं। इसी स्थान पर निषधनरेश नल ने प्यासे होकर जल पी करके शान्ति पाई थी। यहाँ तपस्विसेवित रमणीय देववन और बाहुदा तथा नन्दा नाम की दो पहाड़ी नदियाँ हैं।

महाराज, मैंने पूर्व दिशा के सब तीर्थ, नदी, पर्वत और पवित्र स्थानों का वर्णन किया।
२८ अब अन्यान्य दिशाओं के तीर्थों का वर्णन करता हूँ, सुनिए।

अट्ठासी अध्याय

दक्षिण दिशा के तीर्थों का वर्णन

धौम्य ने कहा—हे युधिष्ठिर, दक्षिण दिशा में जो तीर्थ हैं उनका भी वर्णन अपनी समझ के अनुसार करता हूँ, सुनिए। दक्षिण दिशा में बहुत जलवाली पवित्र गोदावरी नदी है। वह बहुत से वनों से शोभित है। वहाँ बहुत से तपस्वियों के निवासस्थान हैं। पापभय को मिटानेवाली, मृगों और पक्षियों से परिपूर्ण, तपस्वियों के आश्रमों से शोभित वेणा और भीमरथी नाम की दो नदियाँ भी इसी दिशा में हैं। हे भरतश्रेष्ठ, सुरम्य तीर्थस्थली, बहुत जलवाली, विप्रसेवित, राजर्षि नृग की प्रसिद्ध पयोष्णी नदी भी इसी दिशा में है। महायोगी महायशस्वी तपोनिधि मार्कण्डेय ने नृग राजा की वंशावली यहीं पर सुनाई थी। सुना जाता है, महाराज नृग के यज्ञ के समय देवराज इन्द्र सोमरस पीकर मतवाले हो गये थे और ब्राह्मण लोग बहुत सी दक्षिणा पाकर आनन्द से बावले हो उठे थे। जो कोई पयोष्णी के पास वाराह तीर्थ में यज्ञ करता है, अथवा किसी प्रकार पयोष्णी का जल जिसके शरीर से छू जाता है उसके ज़िन्दगी भर के पाप दूर हो जाते हैं। देवादिदेव महादेव ने आकाशस्पर्शी परम-पवित्र अपना विषाण (सींग का बाजा = नरसिंगा) इसी स्थान पर स्थापित किया था। उसके दर्शन से मनुष्य शिवलोक को जाता है। एक ओर गङ्गा आदि सब पवित्र जलाशयों को और दूसरी ओर पवित्र जलवाली पयोष्णी को रखकर तौलने से पयोष्णी ही श्रेष्ठ होगी। हे भरतश्रेष्ठ, वरुणस्रोत नाम के पर्वत पर मङ्गलमय पवित्र फल-मूल से युक्त माठरवन और रमणीय यूप है। १० उसके उत्तरमार्ग पर स्थित पवित्र कण्व ऋषि के आश्रम में प्रवेणी और मुनिगणवर्णित तापसवन देख पड़ते हैं। हे राजेन्द्र, शूर्पारकक्षेत्र में महात्मा जमदग्नि की जो वेदी है वहाँ रमणीय पाषाण तीर्थ, पुनश्चन्द्रा और बहुत से आश्रमों से शोभित अशोक तीर्थ है। हे पार्थ, पाण्ड्य देश में आगस्त्य और वारुण तीर्थ हैं। वहाँ परम भगवद्भक्त रहते हैं। अब ताम्रपर्णी का वर्णन सुनिए। देवताओं ने ऐश्वर्य की इच्छा से यहीं तप किया था। यहाँ गोकर्ण नाम का एक ठण्डे जल का सरोवर है। वह त्रिभुवन में प्रसिद्ध, परम पवित्र, रमणीय और मङ्गलमय है। वहाँ पापी आदमी नहीं जा सकते। वहाँ अगस्त्य के शिष्य का आश्रम पवित्र देवसम पर्वत पर है। उस पर वृक्ष और घास आदि बहुत हैं। बहुविध फल-मूल की भी वहाँ कमी नहीं। वहाँ पर रमणीय मणिमय वैदूर्य-पर्वत और बहुत से फल, मूल, जल आदि से पूर्ण अगस्त्यजी का आश्रम देख पड़ता है।

अब सौराष्ट्र देश के पवित्र स्थान, आश्रम, नदी और सरोवर आदि का वर्णन करता हूँ, सुनिए। विप्रों का कहना है कि वहाँ चमसोद्भेद, देवगण की समुद्र-सीमा के अन्तर्वर्त्ती प्रभास तीर्थ, तापससेवित मङ्गलमय पिण्डारक तीर्थ और शीघ्र फलदायक उन्नत उज्जयन्त गिरि है। इस २१

विषय में देवर्षि नारद की कही हुई पुरानी गाथा सुनिए। जो कोई सौराष्ट्र देश के अन्तर्गत, मृग-पक्षि-सेवित पवित्र उज्ज्यन्त गिरि में तप करता है वह स्वर्ग में पूजनीय होता है। इस स्थान पर पवित्र द्वारका पुरी है। यहाँ साक्षात् पुरातन पुरुष मधुसूदन विराजमान हैं। वे सनातन धर्म स्वरूप हैं। वेदज्ञ और अध्यात्मविद्या के ज्ञाता ब्राह्मण भी उन्हीं को सनातन धर्म कहते हैं। वे सब पवित्र वस्तुओं से बढ़कर पवित्र हैं। वे पुण्य के पुण्य, मङ्गल के मङ्गल, देवदेव, सनातन, अव्ययात्मा, व्ययात्मा, क्षेत्रज्ञ और परमेश्वर कहे जाते हैं। वे अचिन्त्यरूप मधुसूदन हरि इस
२७ द्वारका पुरी में विराजमान हैं।

नवासी अध्याय

पश्चिम दिशा के तीर्थों का वर्णन

धौम्य कहते हैं—अब पश्चिम दिशा में, अवन्ति देश में, जो पवित्र और पुण्यजनक स्थान हैं उनका वर्णन करता हूँ, सुनिए। इसी ओर प्रियंगु और आम्रवनवाली, फले पेड़ोंवाली पवित्र नर्मदा नदी पश्चिमाभिमुख बहती है। हे कुरुश्रेष्ठ, त्रिलोकी के सब पवित्र तीर्थ, स्थान, नदी, वन, पर्वत और ब्रह्मा, सिद्ध, ऋषि, चारण आदि, पुण्यशील देवता नर्मदा में स्नान करने आया करते हैं। यहीं पर महर्षि विश्रवा का पवित्र आश्रम है। इसी स्थान पर नरवाहन धनपति कुबेर ने यज्ञ किया था। इसी दिशा में परम पवित्र श्रेष्ठ पर्वत वैडूर्यशिखर है। वहाँ के वृक्ष लगातार फल, फूल और हरे-हरे पत्तों से शोभित रहते हैं। उसके शिखर पर एक खिले हुए कमलवन से शोभित, देव-गन्धर्व-सेवित पवित्र सरोवर है। उसमें बहुत से अद्‌भुत पदार्थ देख पड़ते हैं। हे भारत, उसी स्वर्गतुल्य देवर्षिगण-सेवित पवित्र प्रदेश में विश्वामित्र के तपोबल से निर्मित एक नदी है। उसमें बढ़िया सीढ़ियाँ लगी हुई हैं। पहले नहुष के पुत्र ययाति इसी नदी के किनारे साधुमण्डली
१० के बीच में गिरे और फिर सनातन धर्मलोक को प्राप्त हुए थे। वहाँ पर सुप्रसिद्ध पुण्य ह्रद, बहुविध फल-मूलों से युक्त मैनाक और असित पर्वत तथा महात्मा कक्षसेन और च्यवन का लोकप्रसिद्ध आश्रम है। हे युधिष्ठिर, इस स्थान पर थोड़ा भी तप करने से सिद्धि होती है। इसी दिशा में शुद्धचित्त ऋषियों के रहने का स्थान, मृग-पक्षि-सेवित जम्बूमार्ग है। उसके बाद ही लगातार तापसगण-सेवित परम पवित्र केतुमाला, मेध्या, हरद्वार और ब्राह्मणगण-सेवित पवित्र सैन्धव वन देख पड़ता है। फिर पुष्कर नाम का पवित्र पितामह सरोवर है। पुष्करक्षेत्र वानप्रस्थियों, सिद्धों और ऋषियों का प्रियतम आश्रम है। हे पुण्यात्मा पुरुषों में श्रेष्ठ, प्रजापति ब्रह्मा ने पुष्करक्षेत्र में आश्रय पाने के लिए यह गाथा कही थी कि जो कोई अपने मन में भी पुष्कर
१८ जाने की इच्छा करता है वह सब पापों से छुटकारा पाकर स्वर्गलोक में आनन्द पाता है।

नब्बे अध्याय

उत्तर दिशा के तीर्थों का वर्णन

धौम्य कहते हैं—हे राजसिंह, उत्तर दिशा के सब पवित्र स्थानों का वर्णन करता हूँ, एकाग्र होकर सुनिए। इसे सुनने से सात्विकी श्रद्धा होती है। इसी दिशा में तीर्थशालिनी पवित्र जलवाली सरस्वती और समुद्रगामिनी महावेगवती यमुना बहती हैं। इस प्रदेश के पवित्रतम प्लक्षावतरण तीर्थ में ब्राह्मणों ने सारस्वत यज्ञ और अवभृथ (=यज्ञ के अन्त का) स्नान किया था। सहदेव ने यहाँ के पवित्र कल्याणमय अग्निशिर तीर्थ में शम्याक्षेप यज्ञ किया था। इस विषय में इन्द्र ने जो गाथा कही है उसे अब तक ब्राह्मण इस तरह गाते हैं कि सहदेव ने शत-सहस्र दक्षिणा देकर अग्नि की उपासना की थी। यहीं पर महायशस्वी राजचक्रवर्ती भरत ने पैंतीस अश्वमेध यज्ञ किये थे। हे भरतश्रेष्ठ, ब्राह्मणों के अभीष्ट को पूर्ण करनेवाला सुप्रसिद्ध शरभङ्ग ऋषि का आश्रम इसी तरफ़ है।

पहले वालखिल्य ऋषियों ने यहाँ के साधुगणसेवित सरस्वती नदी के तट पर यज्ञ किया था। हे युधिष्ठिर, परम पुण्यजननी सुप्रसिद्ध दृषद्वती नदी भी इसी ओर बहती है। यहाँ पर परमयशस्वी महातेजस्वी महात्मा सुव्रत के न्यग्रोध, पुण्य, पाञ्चाल्य, दाल्भ्यघोष और दाल्भ्य नाम के कई एक त्रिलोकप्रसिद्ध पवित्र तीर्थ हैं। इसी स्थान पर अर्ण और अवर्ण नाम के दो सुप्रसिद्ध वेदज्ञ ऋषियों ने पवित्र और प्रधान यज्ञ किये थे। पहले समय में इन्द्र और वरुण आदि देवताओं ने एकत्र होकर यहाँ के विशाखयूप में तप किया था। इसी से यह स्थान परम पवित्र है। महायशस्वी महाभाग जमदग्नि ऋषि ने पवित्र पलाश तीर्थ में यज्ञ किया था; उस समय सब नदियाँ मूर्त्तिमती होकर अपना-अपना जल लेकर वहाँ पर आई थीं। महात्मा विश्वावसु ने जमदग्नि की दीक्षा देखकर स्वयं यह श्लोक कहा था कि महात्मा जमदग्नि ने देवताओं के उद्देश से यज्ञ किया और उसमें नदियों ने आकर मधु के द्वारा ब्राह्मणों को तृप्त किया। १०

इसी दिशा में भागीरथी ने गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और अप्सराओं की निवासभूमि और किन्नरों तथा किरातों के रहने के स्थान पर्वतराज हिमालय को अपने वेग से फोड़ दिया था। इसी से इस स्थान का नाम गङ्गाद्वार है। सनत्कुमार ने इस ब्रह्मर्षिसेवित पवित्र गङ्गाद्वार और कनखल को परम पुण्यस्थान माना है। २१

पुरूरवा की जन्मभूमि पुरु पर्वत और महात्मा भृगु ने जिस स्थान पर तप किया था वह महर्षिगणसेवित महागिरि भृगुतुङ्ग इसी दिशा में है। जो भूत, भविष्य और वर्त्तमान इन तीनों कालों का रूप और नारायण सनातन पुरुषोत्तम कहलाते हैं उन भगवान् का त्रिलोकप्रसिद्ध बदरिकाश्रम भी इसी ओर है। पहले इसी स्थान पर शीतल जलवाली गङ्गा, गर्म जल और

सुवर्ण की वालू से युक्त होकर, वही थीं। यहाँ पर महाभाग महातेजस्वी ऋषि और देवता सदा आकर भगवान् नारायण को नमस्कार करते हैं। जहाँ पर परमात्मा सनातनदेव नारायण विराजमान हैं वहीं पर सारा जगत्, सब तीर्थ और पुण्यस्थान हैं। वही नारायण परमपवित्र और ब्रह्मस्वरूप हैं। वही तीर्थ, तपोवन, परम ब्रह्म और परम देवता हैं। वही सब जीवों के परमेश्वर, परमविधाता, सनातन और परमपद हैं। शास्त्रदर्शी ज्ञानी उन्हें जानकर फिर शोक ३० नहीं करते। जिस स्थान पर आदिदेव महायोगी मधुसूदन हैं वहीं पर सब देवता, ऋषि, सिद्ध और तपोधन रहते हैं। निःसन्देह वही सब पुण्यों के पुण्य हैं।

हे भारत, पृथ्वी पर के पवित्र तीर्थों और स्थानों का वर्णन मैंने कर दिया। इन सबकी यात्रा वसु, साध्य, आदित्य, मरुद्गण, अश्विनीकुमार, देवतुल्य महात्मा और ऋषि किया करते हैं। आप ३४ महाभाग ब्राह्मणों और भाइयों के साथ इन तीर्थस्थानों में विचरकर अपनी उत्कण्ठा दूर कीजिए।

इक्यानबे अध्याय

लोमश महर्षि का आगमन और युधिष्ठिर से बातचीत

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, ब्रह्मर्षि धौम्य इस तरह सब तीर्थों का वर्णन कर ही रहे थे कि महातेजस्वी महर्षि लोमश वहाँ आ पहुँचे। स्वर्ग में देवता जिस तरह इन्द्र की उपासना करते हैं वैसे ही ब्राह्मणों और सभासदों-सहित युधिष्ठिरजी उनकी उपासना करने लगे। इस प्रकार विधिपूर्वक पूजा करके युधिष्ठिर ने लोमशजी से उनके आने का कारण और पृथ्वी-पर्यटन का प्रयोजन पूछा। लोमशजी ने परम प्रसन्न होकर मधुर वचनों से पाण्डवों को प्रसन्न करते हुए कहा—हे युधिष्ठिर, अपनी इच्छा से विचरता हुआ मैं इन्द्रलोक को गया था। वहाँ इन्द्र के दर्शन के बाद आपके भाई अर्जुन को इन्द्र के आधे आसन पर बैठे देखकर मुझे बड़ा अचरज हुआ। फिर देवराज ने मुझे आपके पास आने के लिए कहा। मैं भी इन्द्र और अर्जुन के कहने से, भाइयों-सहित आपको देखने के लिए, यहाँ आया हूँ। मैं इस समय आपको एक बहुत ही प्रिय संवाद सुनाता हूँ। द्रौपदी और भाइयों-सहित आप सुनिए। आपने महाबाहु अर्जुन को जो अस्त्र प्राप्त करने के लिए

आज्ञा दी थी वह अस्त्र उन्हें महादेवजी से मिल गया है। महादेवजी ने भी तपस्या के प्रभाव १० से ब्रह्मशिर नाम का वह अमृतोत्थित रौद्र अस्त्र पाया था। इस समय मन्त्र, संहार, प्रायश्चित्त और मङ्गल-सहित वह अस्त्र अर्जुन के हाथ में आ गया है। अर्जुन ने इन्द्र, वरुण, कुबेर, और यम से वज्र, दण्ड और अन्यान्य दिव्य अस्त्र पाये हैं। विश्वावसु के पुत्र गन्धर्व से उन्होंने विधि से नृत्य, गीत, सामगान और बाजे बजाने की विद्या भी सीख ली है। वे इस प्रकार अस्त्र-शस्त्र पाकर और गान्धर्व वेद सीखकर बड़े सुख से स्वर्ग में हैं। इन्द्र ने जो मुझसे कह देने के लिए कहा है सो सुनिए। उन्होंने मुझसे कहा है कि हे द्विजश्रेष्ठ, आप मनुष्यलोक में जाइएगा। वहाँ जाकर मेरी आज्ञा से युधिष्ठिर से कहना कि आपके भाई अर्जुन अस्त्र-शस्त्र पाकर, देवगण भी जिसे नहीं कर सकते थे वह दुस्साध्य देवकार्य करके, शीघ्र ही आनेवाले हैं। आप भाइयों के साथ तपश्चर्या कीजिए; क्योंकि तपस्या से बढ़कर कुछ नहीं है। तप के प्रभाव से बहुत बड़ा फल मिलता है। मैं महावीर्य महाबली सत्यसन्ध कर्ण के बारे में अच्छी तरह जानता हूँ। वे स्वामि- २० कार्त्तिक के समान महाधनुर्द्धर सूर्यपुत्र कर्ण जैसे महा उत्साही, महायुद्धविशारद हैं वैसे ही अस्त्रविद्या और युद्धविद्या में अद्वितीय हैं। ऊँचे कन्धोंवाले अर्जुन भी स्वभाव से ही अत्यन्त पराक्रमी हैं। संग्राम में कर्ण अर्जुन के सोलहवें हिस्से के बराबर भी नहीं हैं। इस कारण कर्ण से जो आप भीतर ही भीतर डरते हैं सो यहाँ से अर्जुन के लौटकर जाने पर सहज ही आप निडर हो जायँगे। और आपने जो तीर्थयात्रा का विचार किया है सो बहुत उत्तम है। महर्षि लोमश फलसहित उन तीर्थों का वृत्तान्त आपको सुनावेंगे। आप उस पर किसी प्रकार की अश्रद्धा न प्रकट करें। २५

बानबे अध्याय

राजा युधिष्ठिर की तीर्थयात्रा की तैयारी

लोमश कहते हैं कि अर्जुन ने जो कहा है सो सुनिए। उन्होंने कहा—हे तपोधन, आप मेरे भाई युधिष्ठिर को धर्म की ओर लगाइएगा; क्योंकि आप परम धर्म, तप और राजाओं के सनातन धर्म को जानते हैं। परम पावन पुरुष नारायण के विषय में भी आपकी जानकारी यथेष्ट है। आप पाण्डवों को उन्हीं नारायण और तीर्थयात्रा के पुण्य में अनुरक्त और प्रवृत्त कीजिएगा। ऐसी चेष्टा भी कीजिएगा जिसमें युधिष्ठिर तीर्थयात्रा को जायँ और वहाँ गोदान करें। आपके द्वारा सुरक्षित होकर वे सब तरह तीर्थयात्रा करने में समर्थ होंगे। आप दुर्गम और विषम स्थानों में राक्षसों से उनकी रक्षा कीजिएगा। दधीचि मुनि ने जैसे इन्द्र की और अङ्गिरा ने जैसे सूर्य की रक्षा की थी, वैसे ही आप भी राक्षसों से पाण्डवों का बचाव कीजिएगा। आप रक्षा

करेंगे तो पर्वताकार राक्षस धर्मराज आदि के पास भी न जा सकेंगे। हे युधिष्ठिर, मैं इन्द्र के वचन और अर्जुन के कहने से आपको डर से बचाता हुआ तीर्थयात्रा में आपके साथ रहूँगा। हे कुरुनन्दन, मैं इससे पहले दो बार सब तीर्थों के दर्शन कर चुका हूँ। अब आपके साथ तीसरी बार तीर्थयात्रा करूँगा। मनु आदि पुण्यात्मा राजर्षियों ने यह भय-निवारिणी तीर्थ-
१० यात्रा की है। क्रूरप्रकृति, पापी, विद्याविहीन, पाप करनेवाले, कुटिलमति लोग कभी तीर्थ में स्नान नहीं करते। आप धर्मज्ञ, सत्यवादी हैं। आपकी बुद्धि लगातार धर्म के अनुसार बनी रहती है। इसलिए आप राजा भगीरथ, ययाति और गय आदि राजाओं की तरह फिर पापहीन होंगे।

युधिष्ठिर ने कहा—ब्रह्मन्, मैं आनन्द की अधिकता के मारे आपकी बात का उत्तर देने में असमर्थ हो रहा हूँ। जिसे देवराज इन्द्र स्मरण करें उससे बढ़कर और कौन हो सकता है? आपके साथ जिसका सत्सङ्ग हो, अर्जुन जिसके भाई हों और देवताओं के राजा इन्द्र जिसे स्मरण करें, उससे बढ़कर भाग्यवान् कौन हो सकता है? आप मुझे तीर्थयात्रा के लिए आज्ञा दे रहे हैं, सो मैं पुरोहित धौम्य के कहने से पहले से ही इसके लिए निश्चय कर चुका हूँ। मैंने स्थिर कर लिया है कि आप जिस समय तीर्थयात्रा का उचित समय समझें उसी समय मैं चल दूँगा।

वैशम्पायन कहते हैं कि युधिष्ठिर के तीर्थयात्रा के निश्चय को देखकर महर्षि लोमश ने कहा—महाराज, परिवार की संख्या कम कर दीजिए; क्योंकि कम आदमियों को साथ ले जाने से आपको यात्रा में सुभीता होगा।

युधिष्ठिर ने कहा—जो भिक्षा माँगकर भोजन करनेवाले ब्राह्मण और यतिगण भूख-प्यास, राह की थकन, मेहनत और ठण्ड को नहीं सह सकते वे लौटकर अपने-अपने स्थान को चले
२० जायँ। जो ब्राह्मण मिष्टान्न भोजन करते हैं, जो पकान्न, लेह्य, पेय और मांस के प्रेमी हैं तथा जो लोग आहार के लिए रसोइयों के मुँहताज हैं, वे सब लौटकर अपने-अपने स्थान को चले जायँ। मैं जिन्हें यथायोग्य वृत्ति देता हूँ और जो नगरवासी लोग राजभक्ति के मारे मेरे साथ आये हैं, वे सब धृतराष्ट्र के पास चले जायँ। महाराज धृतराष्ट्र उन्हें, उनके उपयुक्त, वृत्ति समय पर देंगे। यदि धृतराष्ट्र उन्हें वृत्ति न देंगे तो पाञ्चालराज द्रुपद, मेरा प्रिय करने के लिए, उनका भरण-पोषण करेंगे।

वैशम्पायन कहते हैं—इस तरह बहुत से नगरवासी, ब्राह्मण और यतिगण दुःख से पीड़ित होकर हस्तिनापुर को चले गये। महाराज धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर के लिहाज़ से, यथोचित रूप से ग्रहण करके, उनका सत्कार किया। इधर राजा युधिष्ठिर थोड़े से ब्राह्मणों और लोमशमुनि के
२७ साथ प्रसन्नतापूर्वक काम्यक वन में तीन दिन तक रहे।

———

तिरानबे अध्याय

पाण्डवों की तीर्थ-यात्रा

वैशम्पायन कहते हैं कि युधिष्ठिर को जाने के लिए तैयार देखकर वनवासी ब्राह्मणों ने उनके पास आकर कहा—राजन्, आप लोमश मुनि और भाइयों को साथ लेकर पवित्र तीर्थों की यात्रा के लिए उद्यत हैं। इस कारण हमें भी साथ लेते चलिए। हम लोग आपके विना कभी उन हिंस्र जीवों से भरे दुर्गम तीर्थों में नहीं जा सकेंगे। थोड़े मनुष्यों के लिए वे तीर्थ अगम्य हैं। हे मनुष्येन्द्र, आपके भाई शूर और धनुर्द्धरों में श्रेष्ठ हैं। वे सदा हमारी रक्षा करेंगे। हम उन तीर्थों में जायँगे, आपके प्रसाद से तीर्थयात्रा का सुखमय फल पावेंगे, आपके पराक्रम से रक्षित होकर तीर्थदर्शन और तीर्थस्नान के द्वारा पवित्र तथा पापमुक्त होंगे। आप भी तीर्थस्नान करके उन लोकों में जायँगे जिनमें महावीर्य कार्त्तवीर्य, अष्टक, राजर्षि लोमपाद और महावीर भरत हैं। राजन्, हम आपके साथ जाकर प्रभास आदि तीर्थों, महेन्द्र आदि पर्वतों, गङ्गा आदि नदियों और प्लक्ष आदि वनस्पतियों के दर्शन की इच्छा रखते हैं। यदि ब्राह्मणों पर १० आपको प्रीति हो तो हमारे इस अनुरोध को मान लीजिए। इससे आपका भला होगा। हे महाबाहो, सब तीर्थों में ऐसे राक्षस भरे पड़े हैं जो तप में विघ्न करते हैं। अतएव राक्षसों से हमारी रक्षा करना आपका कर्त्तव्य है। महात्मा धौम्य, नारद और महातपस्वी लोमश ने जिन तीर्थों का वर्णन किया है, उन तीर्थों की यथाविधि यात्रा करके आप भी—लोमश ऋषि के द्वारा सुरक्षित होकर—हमारे साथ पापमुक्त हूजिए। भीमसेन आदि महाबली भाइयों के साथ बैठे हुए भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिर की ब्राह्मणों ने जब यों प्रशंसा की तब उन्होंने आनन्द के आँसू बहाते हुए उनकी बात मान ली। फिर लोमश और पुरोहित धौम्य से आज्ञा लेकर, सुन्दरी द्रौपदी और भाइयों-सहित, वे तीर्थयात्रा के लिए तैयार हुए।

इसी समय महर्षि नारद और पर्वत के साथ महाभाग व्यासदेव पाण्डवों को देखने के लिए काम्यक वन में आये। राजा युधिष्ठिर ने उनकी विधिपूर्वक पूजा की। पूजा-सत्कार हो

चुकने पर व्यासजी ने युधिष्ठिर से कहा—हे पाण्डवो, तुम हार्दिक सरलता धारण करो; क्योंकि
२० मानसिक पवित्रता और शुद्धि के साथ तुमको तीर्थदर्शन करना होगा। ब्राह्मण लोग शारीरिक नियमों को मानुष व्रत और मानसिक शुद्धि को दैव व्रत कहते हैं। निर्दोष मन का होना ही यथेष्ट पवित्रता है। इसलिए तुम मैत्री बुद्धि धारणकर विशुद्ध भाव से तीर्थ-दर्शन करने जाओ; क्योंकि शारीरिक और मानसिक शुद्धि के साथ ग्रहण करने से ही दैव व्रत का पूरा फल मिलेगा। "जो आज्ञा" कहकर पाण्डवों ने मुनि की बात मान ली। फिर द्रौपदी-सहित पाण्डवों के भले के लिए देवर्षियों और महर्षियों ने स्वस्त्ययनपाठ किया।

इसके बाद पाण्डवों ने महर्षि लोमश, व्यासदेव, नारद और पर्वत ऋषि के चरणों में प्रणाम करके अभेद्य कवच, जटा और वल्कल आदि धारण किये। फिर वे धौम्य और वनवासी ब्राह्मणों के साथ अगहन की पूर्णिमा के दिन पुष्य नक्षत्र में रवाना हुए। इन्द्रसेन आदि चौदह भृत्य, रथ और रसोइये आदि अन्यान्य सेवक उनके पीछे चले। इस तरह धनुष-बाण, तर्कस,
२६ तलवार आदि धारण किये हुए महावीर पाण्डव पूर्व दिशा को चले।

चौरानबे अध्याय

राजा युधिष्ठिर और लोमश ऋषि का संवाद

युधिष्ठिर ने कहा—हे देवर्षिश्रेष्ठ लोमशजी, देखिए, यद्यपि मुझमें दोष ही दोष नहीं हैं फिर भी मैं अन्य राजाओं की अपेक्षा अपने को अधिक दुखी पाता हूँ। मेरे शत्रु गुणों से हीन और अधर्मी हैं। फिर वे किस कारण ऐसे समृद्धिशाली हो रहे हैं?

लोमश ने कहा—हे युधिष्ठिर, अधर्मी पुरुष अधर्म करके समृद्धि पा लेता है, यह देखकर तुम्हें किसी तरह का दुःख न करना चाहिए। अधर्म करने पर मनुष्य का पहले अभ्युदय होता है; वह शत्रुओं को जीतता है और उसका भला होता है; किन्तु अन्त को वह जड़-मूल से नष्ट हो जाता है। राजन्, मैंने दैत्यों और दानवों को अधर्म से बढ़कर फिर मिटते देखा है। पहले देवयुग में भी मैंने यही देखा है। उस समय देवता धर्मपरायण और तीर्थ-तत्पर थे किन्तु असुर लोग धर्म छोड़कर तीर्थसेवा से विमुख थे। इससे उनके शरीर में जो अधर्म से घमण्ड प्रकट हुआ था उससे मान, मान से क्रोध, क्रोध से अकार्य में प्रवृत्ति, उससे निर्लज्जता और उससे उनके चरित्र का नाश हो गया था। इस प्रकार असुर लोग जब निर्लज्ज, व्रतहीन और हीनचरित्र हो गये तब थोड़े ही समय में क्षमा, लक्ष्मी, धर्म आदि ने उनको छोड़ दिया। लक्ष्मी तो देवताओं
१० के पास चली गईं और अलक्ष्मी असुरों के बीच प्रकट हुई। इस प्रकार अलक्ष्मी और अहंकार से असुरों के विवेकहीन होने पर कलियुग उनके शरीर में समा गया। अलक्ष्मी के आधार,

अहङ्कार में चूर, क्रियाहीन, मानी असुर विनाश की दशा में पहुँचे और धीरे-धीरे गौरवहीन होकर जड़-मूल से नष्ट हो गये। किन्तु देवताओं ने इसके विपरीत धर्मशील होकर समुद्र, नदी, सरोवर और अन्यान्य पवित्र स्थानों की यात्रा करते हुए तप, यज्ञ, दान, आशीर्वाद के साथ सब पाप नष्ट करके श्रेय प्राप्त कर लिया।

महाराज, उद्योगी देवताओं ने इस प्रकार पवित्र होकर तीर्थयात्रा करने से ही ऐसा सौभाग्य और ऐश्वर्य प्राप्त किया। आप भी उन्हीं की तरह छोटे भाइयों के साथ तीर्थयात्रा करें तो फिर राजलक्ष्मी पावेंगे। मैंने जो आपसे कहा, यही सनातन मार्ग है। राजा नृग, औशीनर शिवि, भगीरथ, वसुमान्, गय, पूरु, पुरूरवा आदि तीर्थ-स्नान, तपस्या और महात्मा पुरुषों के दर्शन द्वारा पवित्र हुए थे; इन्होंने यश, पुण्य और धन का सञ्चय किया था। वैसे ही आप भी अपरिमित लक्ष्मी पावेंगे। पुत्र और परिवार समेत महात्मा इक्ष्वाकु, मुचकुन्द, मान्धाता और महाराज मरुत् जैसे ऐश्वर्य के स्वामी होकर सुखी हुए थे, और देवताओं तथा देवर्षियों ने तप के प्रभाव से जैसे पवित्र कीर्त्ति प्राप्त की थी, वैसे ही आप भी अमित कीर्त्ति और अत्यन्त सम्पत्ति पावेंगे। धृतराष्ट्र के पुत्र अधर्म और मोह के वशीभूत होकर शीघ्र ही दैत्यों की तरह चौपट हो जायँगे। २२

पञ्चानबे अध्याय

महीधर तीर्थ और गयोपाख्यान का वर्णन

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, इस तरह वे सब वीर उक्त स्थानों में रहकर क्रमशः नैमिषारण्य क्षेत्र में आये। वहाँ उन्होंने गोमती के पवित्र तीर्थों में स्नान किया, ब्राह्मणों को धन दिया, गोदान किये, और पितरों तथा देवताओं का तर्पण किया। फिर वे कन्यातीर्थ, गोतीर्थ, कालकोटि और विषप्रस्थ पर्वत पर रहे; तथा बाहुदा में उन्होंने स्नान किया। फिर देवताओं की यज्ञभूमि जो प्रयाग तीर्थ है उसमें जाकर रहे, स्नान किया और तपस्या की। इसके बाद उन सत्यवादी महात्मा पुरुषों ने गङ्गा-यमुना-सङ्गम में स्नान करके, सब पापों से छूटकर, ब्राह्मणों को धन दिया। फिर वे उन ब्राह्मणों के साथ तपस्वियों की निवासभूमि प्रजापति-वेदी में गये। वहाँ रहकर वे तप करते हुए ब्राह्मणों को जङ्गल के फल-मूल (हविष) द्वारा लगातार तृप्त करने लगे। इसके बाद धर्मात्मा पुण्यशील राजर्षि गय के द्वारा संस्कृत महीधर तीर्थ में गये, जहाँ पर गयशिर नाम का पर्वत है और बेत के वन से भूषित, रमणीय तटों से शोभित, महानदी नाम की नदी बहती है। वहाँ दिव्यकूट से शोभित धरणीधर नाम का पवित्र ब्रह्मसर तीर्थ है जहाँ भगवान् अगस्त्य ने वैवस्वतलोक प्राप्त किया था। सनातन धर्मराज स्वयं वहाँ रहते हैं। राजन्, इसी स्थान पर सारी नदियाँ प्रकट हुई हैं। पिनाकपाणि महादेव यहाँ सदा रहते हैं। चातुर्मास्य व्रत ग्रहण १०

करके पाण्डवोंने वहाँ रहकर ऋषि-यज्ञ किया। एकाग्र चित्त से अक्षयवट के दर्शन और अक्षय फल देनेवाली अक्षय देवयज्ञभूमि में उन्होंने व्रत किया। सैकड़ों तपस्वी ब्राह्मणों ने वहाँ आकर ऋषियों की विधि के अनुसार चातुर्मास यज्ञ का अनुष्ठान आरम्भ किया। फिर विद्या और तप में वृद्ध वेदज्ञ ब्राह्मण सभा में बैठकर विविध पवित्र कथाएँ कहने लगे। तब विद्वान्, व्रतधारी, कुमार-व्रतपरायण महर्षि शमठ ने अमूर्त्तरया के पुत्र राजर्षि गय का उपाख्यान छेड़ दिया।

शमठ ने कहा—हे भरतश्रेष्ठ, राजर्षि गय अमूर्त्तरया के बेटे थे। मैं उनकी पवित्र कीर्त्ति का वर्णन करता हूँ, सुनिए। उन्होंने इस स्थान पर अन्न से भरपूर और बहुत दक्षिणावाले यज्ञ का अनुष्ठान किया था। उस यज्ञ में सैकड़ों-हज़ारों अन्न के पहाड़, सैकड़ों घी और दही-दूध की नदियाँ, हज़ारों बढ़िया व्यञ्जनों के प्रवाह नित्यप्रति याचकों को देने के लिए तैयार रहते थे। ब्राह्मणों के सिवा अन्य अनेक लोग भी सुन्दर स्वादिष्ठ भोजन करते थे। दक्षिणा देते समय आकाश तक गूँजती हुई वेदध्वनि के आगे और कुछ नहीं सुन पड़ता था। वह वेद-ध्वनि इधर-उधर फैलती हुई पृथ्वी पर, सब दिशाओं में और आकाश तथा स्वर्ग में पूर्ण होकर अत्यन्त अद्भुत भाव धारण किये हुए थी। मनुष्यों ने पवित्र भोजन से तृप्त होकर देश-देश में यह गाथा गाई थी। उन्होंने कहा था "हे प्राणियो, तुममें से किसे भोजन की इच्छा है? जिसे हो, वह राजर्षि गय के यज्ञ में जाय। इस समय भी वहाँ पचीस अन्न के पहाड़ बचे हुए हैं।" अमित-तेजस्वी राजर्षि गय ने जैसा यज्ञ किया वैसा यज्ञ पहले किसी ने नहीं किया और आगे भी कोई नहीं करेगा। गय के यज्ञ में हवि भोजन करके देवता जैसे तृप्त हुए वैसे फिर कभी न होंगे। जैसे पृथ्वी की बालू, आकाश के तारागण और वर्षा की बूँदें नहीं गिनी जा सकतीं, वैसे गय के यज्ञ में जो दक्षिणा बाँटी गई उसकी गिनती भी असम्भव है। हे कुरुनन्दन, इसी सरोवर के तट पर राजा गय ने इस तरह के बहुत से यज्ञ किये थे।

छियानवे अध्याय

अगस्त्य ऋषि का उपाख्यान

वैशम्पायन कहते हैं कि फिर बहुत दक्षिणा देनेवाले युधिष्ठिर वहाँ से चलकर अगस्त्य ऋषि के आश्रम में गये और दुर्जया में जाकर रहे। वहाँ उन्होंने महात्मा लोमश से पूछा—हे वक्ता पुरुषों में श्रेष्ठ, महर्षि अगस्त्य ने वातापि दानव को क्यों मारा? मनुष्यों को मारकर खा जानेवाले उस राक्षस का कैसा प्रभाव था? महात्मा अगस्त्य ने उस पर क्रोध ही क्यों किया?

लोमश ने कहा—महाराज, पूर्व समय में मणिमतीपुरी में इल्वल नाम का एक दैत्य रहता था। वातापि उसका छोटा भाई था। एक समय इल्वल दैत्य ने किसी तपस्वी ब्राह्मण से यह

वर माँगा था कि भगवन्, मुझे एक इन्द्रतुल्य पुत्र दीजिए। ब्राह्मण के यह वर न देने पर इल्वल को उन पर क्रोध आ गया। तब से उसने ब्राह्मणों की हत्या का यह उपाय निकाला कि अपने छोटे भाई वातापि को बकरा बनाकर, उसे मारकर, उसी का मांस निमन्त्रित ब्राह्मण को खिला देता था और फिर अपने भाई को पुकारता था। उसका भाई, वरदान के प्रभाव से, ब्राह्मण के पेट में जीकर और ब्राह्मण का पेट फाड़कर बाहर निकल आता था। [फिर दोनों मिलकर ब्राह्मण का मांस खा जाते थे।] इल्वल को यह वर प्राप्त था कि उसके पुकारते ही मरा हुआ प्राणी, शरीर धारण कर, आँखों के सामने आ जाता था।

पहले-पहल इल्वल ने बकरे का रूप रक्खे हुए वातापि को मारकर, उसका मांस पकाकर, उसी ब्राह्मण को खिलाया जिसने इन्द्र-तुल्य पुत्र देने से इनकार कर दिया था। ब्राह्मण जब भोजन कर चुका तब इल्वल ने वातापि को पुकारा। ब्राह्मणों का शत्रु वातापि बड़े भाई का ऊँचे स्वर से पुकारना सुनकर, ब्राह्मण की कोख फाड़कर, हँसता हुआ, बाहर निकल आया। इसी प्रकार दुष्ट मायावी इल्वल बारम्बार बकरे का मांस खिलाकर ब्रह्महत्या करने लगा।

१२

इसी समय भगवान् अगस्त्य ने एक स्थान पर पितरों को गढ़े में मुँह नीचा किये लटकते देखकर पूछा—आप लोगों की किस कारण ऐसी दशा हुई है? काँपते हुए पितृपुरुषों ने उत्तर दिया कि सन्तान न रहने के कारण हमारी यह दशा है और हम तुम्हारे ही पितृपुरुष हैं—सन्तान के लिए गढ़े में पड़े लटक रहे हैं। हे अगस्त्य, तुम जो गुणी पुत्र उत्पन्न कर सको तो नरक से हमारा छुटकारा हो और तुम्हें भी अन्त को दिव्य गति मिले। सत्यधर्मपरायण तेजस्वी अगस्त्य ने कहा—पितृगण, मैं आप लोगों की इच्छा पूरी करूँगा। आप शोक न करें।

फिर भगवान् अगस्त्य ऋषि सन्तति-वृद्धि के लिए उपाय सोचने लगे। किन्तु बहुत खोजने पर भी उन्हें अपने योग्य स्त्री नहीं मिली। तब उन्होंने एक सर्वाङ्गसुन्दरी कन्या विदर्भराज को दी। वे सन्तान के लिए तपस्या कर रहे थे। अगस्त्य की तपस्या के प्रभाव से उत्पन्न २०

वह सुन्दर मुखवाली कन्या विदर्भराज के यहाँ जन्म लेकर बिजली के समान कान्ति से दिन-दिन बढ़ने लगी। कन्या का जन्म देखकर विदर्भराज बहुत प्रसन्न हुए। वे उस कन्या को ब्राह्मणों के आगे ले आये। ब्राह्मणों ने उस कन्या का अभिनन्दन किया और उसका नाम लोपामुद्रा रक्खा। लोपामुद्रा, कमलिनी और अग्निशिखा की तरह, अधिकतर सौन्दर्य और तेज के साथ दिन-दिन बढ़ने लगी।

कल्याणरूपिणी लोपामुद्रा की जब युवावस्था हुई तब सुन्दर गहने पहने हुए एक सौ कन्याएँ और इच्छानुरूप एक सौ दासियाँ उनकी सेवा में नियुक्त हुईं। सैकड़ों कन्याओं (सहेलियों) और दासियों के बीच में लोपामुद्रा की वैसी शोभा हुई जैसी नक्षत्रों के बीच आकाश में रोहिणी की होती है। लोपामुद्रा अब जवान हो गईं। वे सुशीला और अच्छे चरित्र की थीं, तो भी महात्मा अगस्त्य के डर से कोई उन्हें वरण नहीं कर सका। कन्या का अप्सराओं के समान रूप, सत्य और विशुद्ध चरित्र देखकर विदर्भराज और उनके आत्मीयजन अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। कन्या को सर्वाङ्गसुन्दरी और जवान देखकर विदर्भराज सोचने लगे कि
३० यह कन्या किस वर को दूँ?

सत्तानबे अध्याय

अगस्त्य और लोपामुद्रा का विवाह

लोमश कहते हैं कि हे युधिष्ठिर, अगस्त्य ने जब लोपामुद्रा को गृहकार्य के योग्य समझा तब विदर्भराज के पास जाकर कहा—महाराज, मैंने पुत्र उत्पन्न करने का सङ्कल्प किया है। इसी लिए आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे लोपामुद्रा दे दीजिए। अगस्त्य के यों कहने पर विदर्भराज अचेत से हो गये। वे न तो उनको कन्या देना ही स्वीकार कर सके और न उनसे 'नाहीं' की जा सकी। तब वे अपनी रानी के पास गये। उन्होंने रानी से कहा—प्रिये, अगस्त्य मुनि ऐसे क्रोधी हैं कि वे शाप की आग से हम लोगों को भस्म कर सकते हैं। लोपामुद्रा ने अपने पिता-माता को इस प्रकार दुःखित देखकर पिता के पास जाकर कहा—पिताजी, मेरे लिए आप क्यों कष्ट पाते हैं? इसकी ज़रूरत नहीं। आप मुझे अगस्त्यजी को देकर इस विपत्ति से अपना पिण्ड छुड़ाइए। विदर्भराज ने कन्या के कहने से विधिपूर्वक अगस्त्य ऋषि के साथ उसका व्याह कर दिया। अगस्त्य ने लोपामुद्रा को पत्नीरूप में ग्रहण करके कहा—प्रिये, ये सब क़ीमती कपड़े और गहने उतार डालो। विशाल नेत्रोंवाली लोपामुद्रा ने स्वामी की आज्ञा के अनुसार महीन, दर्शनीय और अनमोल सब कपड़े तथा गहने उतार डाले।
१० वल्कल तथा मृगछाला पहन करके वे स्वामी के समान तपस्विनी बन गईं।
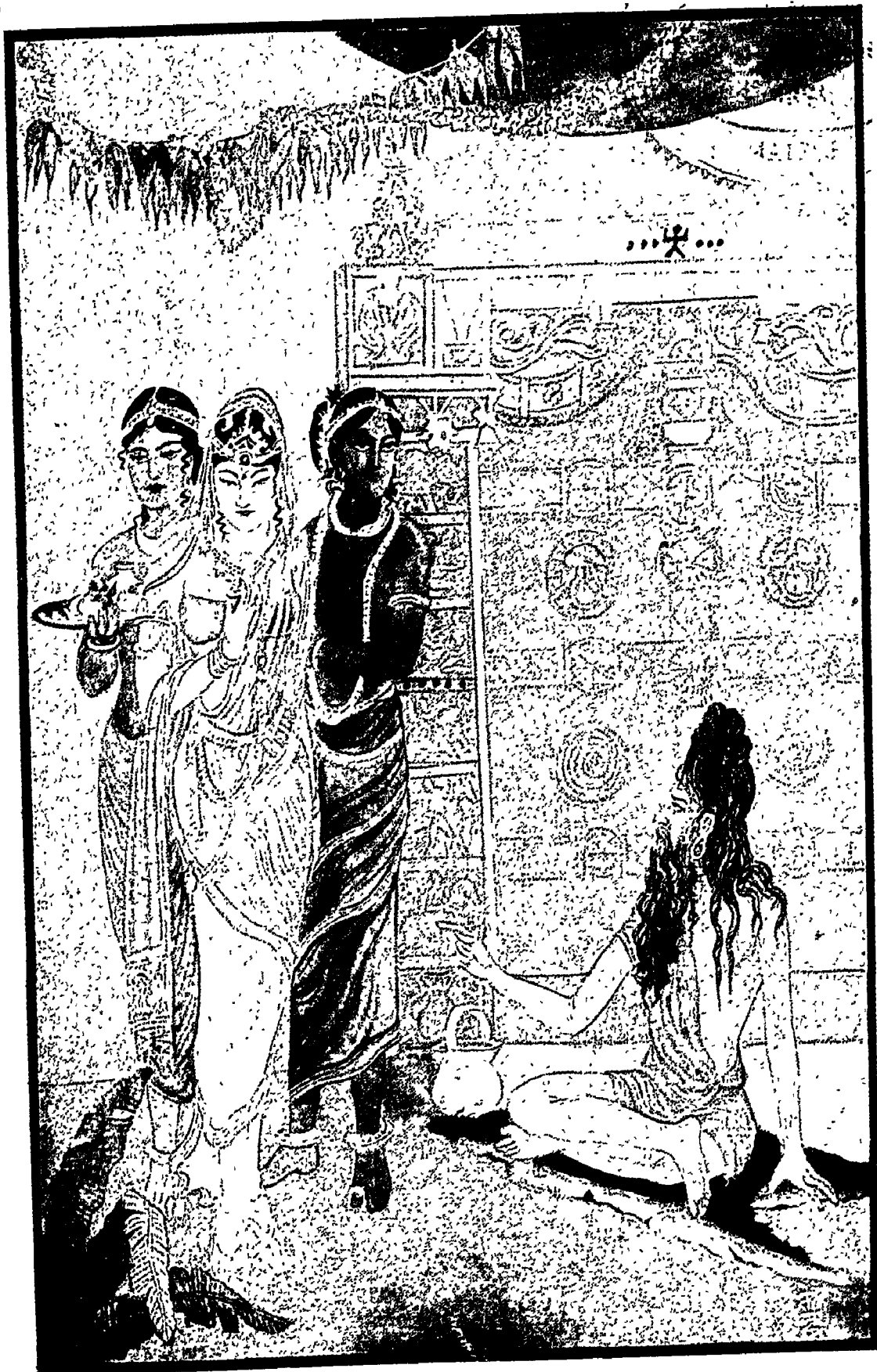
प्रिये, ये सब क़ीमती कपड़े और गहने उतार डालो—पृ० ६०४

अब ऋषिश्रेष्ठ भगवान् अगस्त्य हरद्वार में पहुँचकर अपनी पत्नी के साथ कठोर तपस्या करने लगे। लोपामुद्रा स्वामी को बहुत सम्मान की दृष्टि से देखती थीं। वे प्रसन्नतापूर्वक स्वामी की सेवा करने लगीं। अगस्त्य भी उन पर परम प्रसन्न रहने लगे।

इसी तरह कुछ समय बीतने पर अगस्त्यजी ने तपस्विनी पत्नी को एक दिन ऋतुस्नान किये हुए देखा। लोपामुद्रा की सेवा, शुद्ध चरित्र, विनय और स्वरूप से प्रसन्न ऋषि ने उन्हें सहवास के लिए बुलाया। लोपामुद्रा ने कुछ लज्जित हो हाथ जोड़कर प्रेमपूर्ण स्वर से कहा—भगवन्, इसमें सन्देह नहीं कि सन्तान की इच्छा से ही पति विवाह करता है; किन्तु मैं जैसी प्रीति आप पर रखती हूँ उसके अनुरूप कार्य आपको भी करना होगा। मैं पिता के घर जैसे पलँग पर सोती थी वैसे ही यहाँ भी पलँग पर शयन करना चाहती हूँ। आप भी माला और गहने आदि पहनें। मैं भी दिव्य गहने पहनकर

यथेष्टरूप से आपके समीप आऊँगी। इन गेरुए कपड़ों और वल्कलों को पहनकर मैं आपके पास आने की नहीं। हे ब्रह्मर्षिश्रेष्ठ, मैंने जो आपसे कहा है उससे पूर्वोक्त गहने भी किसी तरह अपवित्र न होंगे। यह सुनकर अगस्त्य ने कहा—हे सुन्दरी, तुम्हारे पिता के पास जैसा धन है वैसा हम लोगों के पास नहीं है। लोपामुद्रा ने कहा—हे तपोधन, इस संसार में जितना धन २० है वह सब का सब आप तपस्या के प्रभाव से दम भर में पा सकते हैं। अगस्त्य ने कहा—तुम्हारा कहना सच है; किन्तु ऐसा करने से तपस्या का फल कम हो जायगा। इसलिए तुम वह करने के लिए मुझसे कहो जिसमें तपस्या में कमी न हो। लोपामुद्रा ने कहा—हे तपोधन, मेरे ऋतुस्नान का समय अब बहुत ही थोड़ा बाकी है। जो मेरे कहने के माफ़िक़ काम न होगा तो मैं आपके पास न आऊँगी। और, किसी तरह आपका धर्म मिटाने की भी मेरी इच्छा नहीं है। इसलिए आपको मेरी इच्छा पूरी करनी चाहिए। अगस्त्य ने कहा—हे सुभगे, जो तुमने यही निश्चय कर लिया है तो मैं अब धन प्राप्त करने को जाता हूँ। तुम इस स्थान में अपनी इच्छा के अनुसार रहकर मेरे आने की राह देखो। २५

अट्ठानबे अध्याय

धन प्राप्त करने के लिए अगस्त्य का जाना

लोमश कहते हैं—हे कुरुश्रेष्ठ, अब अगस्त्य ऋषि धन माँगने के लिए राजर्षिश्रेष्ठ श्रुतर्वा के पास गये। राजा श्रुतर्वा अगस्त्यजी के आने की ख़बर पाकर मन्त्रियों के साथ उनकी अगवानी करने बस्ती के सिमाने पर गये और स्वागत करके सत्कारपूर्वक उनको अपने घर ले आये। फिर अर्घ्य देकर, हाथ जोड़कर, राजा ने उनसे आने का कारण पूछा।

अगस्त्य ने कहा—महाराज, मैं धन की इच्छा से आपके पास आया हूँ। अतएव और किसी को कष्ट न पहुँचाकर यथाशक्ति मुझको धन दीजिए।

लोमश कहते हैं कि राजा श्रुतर्वा ने अपना आमदनी-ख़र्च सब बताकर अगस्त्यजी से कहा—विद्वन्, आपको उचित समझ पड़े तो इसमें से धन ले लीजिए। राजा की आमदनी और ख़र्च को बराबर देखकर अगस्त्य ऋषि ने कहा कि राजन्, इसमें से धन लेने से प्राणियों (प्रजा) को पीड़ा पहुँच सकती है। अब श्रुतर्वा को साथ लेकर अगस्त्यजी राजा ब्रध्नश्व के पास गये। ब्रध्नश्व ने भी उन्हें सादर ग्रहण किया, अर्घ्य और आसन दिया। फिर उनसे आने का प्रयोजन पूछा।

अगस्त्य ने कहा—राजन्, मैं धन की इच्छा से आपके यहाँ आया हूँ। जिससे और किसी का अनिष्ट न हो उस रीति से आप मुझे यथाशक्ति धन दीजिए। ब्रध्नश्व ने भी अपनी आमदनी १० और ख़र्च दिखाकर कहा—इससे जो बचे सो आप विचार करके ले लीजिए। अगस्त्य ने उनकी भी आमदनी और ख़र्च बराबर देखकर सोचा कि इससे धन लूँगा तो प्राणियों को पीड़ा पहुँचेगी।

अब अगस्त्यजी श्रुतर्वा और ब्रध्नश्व को साथ लेकर पुरुकुत्स राजा के पुत्र महाधनी त्रसदस्यु राजा के पास गये। महामनस्वी त्रसदस्यु ने इन लोगों को बड़ी आवभगत से लिया। इन्हें वे अपने घर ले गये। विधिपूर्वक पूजा करके त्रसदस्यु ने इन लोगों से आने का कारण पूछा। अगस्त्य ने कहा—राजन्, हम लोग धन प्राप्त करने की इच्छा से आपके पास आये हैं। किसी को सताये बिना आप हमको यथाशक्ति धन दीजिए।

त्रसदस्यु ने आमदनी-ख़र्च का लेखा दिखाकर कहा—आपकी जो इच्छा हो सो इसमें से ले लीजिए। अगस्त्य ने उनकी भी आमदनी और ख़र्च बराबर देखकर सोचा कि इससे भी धन लेने से प्रजा को पीड़ा पहुँचेगी।

तब तीनों राजा परस्पर देखते हुए अगस्त्यजी से बोले—ब्रह्मन्, इल्वल नाम का दानव इस समय पृथ्वी पर बड़ा भारी धनी है। चलिए, हम सब चलकर उससे धन माँगें। लोमशजी कहते हैं—महाराज, तब सबको इल्वल के पास जाकर धन के लिए प्रार्थना करना ही ठीक जान २० पड़ा। इसलिए सब लोग मिलकर उसी दानव के पास गये।

निन्नानवे अध्याय

अगस्त्य का वातापि को भक्षण करना और लोपामुद्रा को वर देना। राम और परशुराम का वृत्तान्त

लोमश कहते हैं—हे युधिष्ठिर, इल्वल ने महर्षि-सहित तीनों नरनाथों को घर में लाकर विधि-पूर्वक उनकी पूजा की। फिर अपने छोटे भाई वातापि को अच्छी तरह पकाकर मेहमानों को भोजन कराने की तैयारी की।

तीनों राजर्षियों ने जब देखा कि बकरे का रूप रक्खे हुए वातापि को मारकर दुष्ट दानव ने भोजन तैयार किया है तब वे बहुत ही खिन्न और उदास हुए। अगस्त्य ने उनको धीरज देकर कहा—तुम लोग खेद मत करो। मैं इस महाअसुर को खाकर पचाये जाता हूँ। बस, महर्षि अगस्त्य मूल्यवान् आसन पर बैठ गये। तब इल्वल मुसकराता हुआ उनके आगे भोजन की सामग्री परोसने लगा। अगस्त्यजी वातापि का सब मांस खा गये। इल्वल अब वातापि को, नाम लेकर, पुकारने लगा। महर्षि ने मेघगर्जन के समान महाशब्द से अपानवायु छोड़ी। "वातापि, निकल!" कहकर इल्वल वारम्वार चिल्लाने लगा। तब मुनि-श्रेष्ठ अगस्त्य ने हँसकर कहा—हे इल्वल, वातापि भला अब बाहर निकल सकता है? मैंने उसे खाकर पचा डाला।

वातापि को हज़म हुआ देखकर इल्वल बहुत ही दुःखित हुआ और घबराया। मन्त्रियों के साथ हाथ जोड़कर वह कहने लगा—आप लोग किसलिए आये हैं, सो कहिए। आज्ञा दीजिए, मैं क्या करूँ।

१०

अगस्त्य ने हँसकर उत्तर दिया—हे असुर, हम जानते हैं कि तुम बड़े धनी हो। ये राजा लोग भी वैसे धनी नहीं हैं। मुझे भी इस समय धन की बड़ी ज़रूरत है। इसलिए और किसी को कष्ट न पहुँचाकर यथाशक्ति हमें धन दो। तब इल्वल ने महर्षि का आदर करके कहा—मैंने मन में आप लोगों को जो देना विचारा है वह यदि आप बता सकें तो मैं धन दूँगा।

अगस्त्य ने कहा—हे इल्वल, तुमने इन राजाओं में से हर एक को दस हज़ार गायें और उतना ही सोना तथा मुझे उससे दूनी गायें और दूना सोना तथा सुवर्णमय रथ और मन के समान वेगवाले दो घोड़े देने का विचार किया है। पता लगाकर देखो, यह सामने खड़ा हुआ रथ ही सुवर्णमय है। इल्वल ने पता लगाकर जाना कि महर्षि का कहना सच है। वह सामने खड़ा हुआ रथ सुवर्णमय ही था। तब मन में अत्यन्त व्यथित होकर उसने इन लोगों को और भी अधिक धन दिया। विराव और सुराव नाम के दोनों घोड़े उस रथ में जोतकर उसने दम भर में सब धन-सहित उन राजाओं को और महर्षि अगस्त्य को उनके आश्रम में पहुँचा दिया।

अब महर्षि से आज्ञा लेकर वे नरेश अपने-अपने घर चले गये। अगस्त्य ने इस प्रकार लोपामुद्रा की इच्छा पूरी कर दी।

लोपामुद्रा ने अगस्त्य से कहा—भगवन्, आपने मेरे सब मनोरथ पूरे कर दिये। अब मेरे गर्भ से प्रबल प्रभावशाली सन्तान उत्पन्न कीजिए। अगस्त्य ने कहा—प्रिये, मैं तुम्हारी सच्चरि-
२० त्रता से बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। अब मैं सन्तान के सम्बन्ध में जो कहता हूँ सो सुनो। तुम्हारे हज़ार पुत्र या हज़ार के समान सौ पुत्र उत्पन्न होंगे। या तुम सौ के तुल्य दस पुत्र अथवा हज़ार को जीतनेवाला एक पुत्र माँगती हो?

लोपामुद्रा ने कहा—हे तपोधन, मैं हज़ार के तुल्य एक ही पुत्र माँगती हूँ; क्योंकि एक विद्वान् सज्जन पुत्र बहुत से दुर्जन पुत्रों की अपेक्षा श्रेष्ठ होता है। "यही होगा" कहकर अगस्त्य ने प्रतिज्ञा की। फिर यथासमय श्रद्धापूर्वक उन्होंने समान शीलवाली लोपामुद्रा से सहवास किया। गर्भाधान हो चुकने पर अगस्त्यजी वन को चल दिये। अगस्त्य के वन जाने के बाद वह गर्भ क्रमशः सात वर्ष तक बढ़ता ही रहा। सात वर्ष के बाद उस गर्भ से महाकवि दृढस्यु उत्पन्न हुए। उन्हें देखकर जान पड़ता था, मानों वे अपने ही प्रभाव से प्रज्वलित हो रहे हैं और मन ही मन साङ्ग वेदों का पाठ कर रहे हैं। तेजस्वी बालक दृढस्यु लड़कपन में पिता के यहाँ इध्म-भार (लकड़ियों का बोझ) लादकर वन से लाते थे, इसी से उनका नाम इध्मवाह भी पड़ गया। पुत्र को ऐसा तेजस्वी देखकर महर्षि अगस्त्य बहुत प्रसन्न हुए।

हे युधिष्ठिर, अगस्त्य ने यों श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न करके अपने पुरखों को, उनके इच्छानुसार, श्रेष्ठ लोकों में भेज दिया। तब से यह अगस्त्य का आश्रम पृथ्वीमण्डल पर प्रसिद्ध हो गया है। अगस्त्य ने इस प्रकार प्रह्लाद के वंश में उत्पन्न वातापि असुर का नाश किया। यह उनका
३० रमणीय श्रेष्ठ आश्रम है। ये वही देवगन्धर्व-सेवित पुण्यजननी भागीरथी, पवनसञ्चालित पताका की तरह, आकाश-मार्ग में विराजमान हैं। ये क्रमशः नीचे शिखरों पर विचरती हुई अन्त को, समाई हुई नागिन की तरह, शिलाओं के तले घुस रही हैं। ये समुद्र की पटरानी गङ्गा पहले महादेव की जटा से निकली थीं। ये माता की तरह पापों से सबकी रक्षा करती हुई सारी

दक्षिण दिशा को प्लावित कर रही हैं। हे भरतश्रेष्ठ, इस पुण्यरूपिणी श्रेष्ठ नदी में मनमाने गोते लगाकर नहाओ। हे युधिष्ठिर, देखो, यही वह महात्मा भृगु का महर्षिगणसेवित त्रिलोकप्रसिद्ध आश्रम है। परशुरामजी ने इसी स्थान पर स्नान करके रामचन्द्र के द्वारा हरे गये अपने तेज को फिर प्राप्त किया था। हे पाण्डव, आप भी द्रौपदी और अपने भाइयों के साथ इस तीर्थ में स्नान कीजिए और दुष्ट दुर्योधन के द्वारा हरे गये अपने तेज और राज्य का उद्धार कीजिए।

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, युधिष्ठिर ने द्रौपदी और भाइयों के साथ वहाँ स्नान करके देवताओं और पितरों का तर्पण किया। वहाँ स्नान करते ही उनके शरीर की कान्ति और भी अधिक प्रकाशमान और शत्रुओं के लिए दारुण हो उठी। अब राजा युधिष्ठिर ने महर्षि लोमश से पूछा—भगवन्, परशुराम का तेज किस कारण हर लिया गया था और उसे फिर उन्होंने कैसे प्राप्त किया, सो सब वृत्तान्त कृपा करके कहिए।

लोमश ने कहा—राजन्, मैं दशरथ के पुत्र रामचन्द्र और महात्मा परशुराम का वृत्तान्त कहता हूँ, सुनिए। रावण को मारने के लिए विष्णु ने, अपने अंश से, अयोध्यानरेश दशरथ के ४० पुत्र राम के रूप से पृथ्वी पर अवतार लिया था। ऋचीक ऋषि के वंशधर रेणुका के पुत्र परशुरामजी पराक्रमी रामचन्द्र का हाल सुनकर उनके बल-विक्रम की परीक्षा करने को क्षत्रियकुल-नाशन अपना दिव्य धनुष लेकर अयोध्या में आये।

राजा दशरथ ने परशुराम को अपने राज्य में आया हुआ जानकर अपने पुत्र रामचन्द्र को उनके पास भेजा। परशुराम ने जब रामचन्द्र को अस्त्र-शस्त्र लिये अपनी ओर आते देखा तब मुसकुराकर कहा—राजेन्द्र, मैंने यही धनुष लेकर सारे क्षत्रिय-वंश का नाश किया है। जो तुममें शक्ति हो तो यत्नपूर्वक इस धनुष पर डोरी चढ़ाओ। परशुराम के यों कहने पर रामचन्द्र ने कहा—भगवन्, इस तरह आक्षेप करना आपके योग्य बात नहीं है। मैं क्षत्रिय के धर्म में किसी तरह कम नहीं हूँ। ब्रह्मन्, इक्ष्वाकु के वंश में उत्पन्न क्षत्रिय ही अपने अत्यन्त अधिक बाहु-बल का गौरव कर सकते हैं।

परशुराम ने उनके ये वचन सुनकर कहा—राघव, यों बातों में टालने की ज़रूरत नहीं। यह धनुष लो।

तब रामचन्द्र ने कुपित होकर परशुराम के हाथ से वह क्षत्रिय-कुल-नाशक दिव्य धनुष ले लिया और सहज ही उस पर डोरी चढ़ाकर वे गर्व के साथ टङ्कार-ध्वनि करने लगे। वज्र ५० के शब्द के समान उस धनुष की टङ्कार से सब प्राणी डर गये। तब रामचन्द्र ने परशुराम से कहा—ब्रह्मन्! यह लीजिए, मैंने धनुष पर डोरी चढ़ा दी। अब आप क्या करने के लिए आज्ञा देते हैं? यह सुनकर परशुराम ने उनको एक दिव्य बाण देकर कहा कि तुम इसे चढ़ाकर अपने कान तक खींचो। लोमश कहते हैं—परशुराम के वचन सुनकर रामचन्द्र गुस्से के मारे आग

की तरह जल उठे। उन्होंने कहा—हे भार्गव, आप बड़े अहङ्कारी हैं; किन्तु आपके ये अहं-कार-पूर्ण वचन सुनकर भी मैं आपको क्षमा करता हूँ। आपने अपने पितरों की कृपा और वरदान के बल से क्षत्रियों का तेज हर लिया है; इसी से आप मेरा भी तिरस्कार कर रहे हैं। मैं इस समय आपको दिव्य दृष्टि देता हूँ, मेरे स्वरूप को देखिए।

परशुराम ने श्रीरामचन्द्र के शरीर पर दृष्टि डालकर देखा कि उसमें आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, मरुत् और पितृगण, अग्नि, नक्षत्र, ग्रह, गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, नदी, तीर्थ, ब्रह्मा के सदृश तेजस्वी वालखिल्य नामक ऋषिगण, देवर्षि, समुद्र, पर्वत, उपनिषद्, वेद, वषट्कार, यज्ञ, सदेह
६० साम, धनुर्वेद, मेघ, वर्षा और बिजली आदि सारा संसार विराजमान है।

अब रामरूप से पृथ्वी पर प्रकट भगवान् विष्णु ने वह बाण धनुष पर चढ़ाकर छोड़ा। उस समय कठोर वज्रनाद, उल्कापात, मेघों से रक्त और धूल की वर्षा, भूकम्प आदि अनेक उत्पात होने लगे। इस प्रकार वह बाण राम के हाथ से छूटकर परशुराम को विह्वल करता हुआ, उनके तेज को हरकर, फिर राम के पास आ गया। उस समय वह आग के समान तेज से प्रज्वलित हो रहा था। कुछ देर बाद चेत आने पर, पुनर्जीवन पाकर, परशुराम ने विष्णु के अंश राम को प्रणाम किया। फिर रामचन्द्र से आज्ञा लेकर भयातुर और लज्जित परशुराम महेन्द्रा-चल पर जाकर रहने लगे।

एक साल बीतने पर पितरों ने उनको तेज से शून्य, मद से हीन और दुःख से व्याकुल देखकर कहा—वत्स, तुमने विष्णु (राम) के साथ बहुत ही अनुचित व्यवहार किया है। वे त्रिलोकी भर के मान्य और पूजनीय हैं। ख़ैर, अब तुम पवित्र वधूसर नाम की नदी को जाओ। वहाँ के तीर्थ में स्नान करने से तुमको फिर पहले का तेज प्राप्त हो जायगा। इस स्थान पर दीप्तोद नाम का तीर्थ है। तुम्हारे प्रपितामह भृगु ने सत्य युग में यहाँ पर बहुत ही कठिन तपस्या की थी।

हे युधिष्ठिर, पितरों की आज्ञा से परशुरामजी उसी तीर्थ में गये। उसमें स्नान करके उन्होंने फिर अपना तेज प्राप्त कर लिया। पूर्व समय में अद्भुत कर्म करनेवाले परशुराम, विष्णु
७१ के आगे आत्मश्लाघा करने के कारण, इस प्रकार अपमानित हुए थे।

महाभारत के स्थायी ग्राहक बनने के नियम

(१) जो सज्जन हमारे यहाँ महाभारत के स्थायी ग्राहकों में अपना नाम और पता लिखा देते हैं उन्हें महाभारत के अङ्कों पर २५) सैकड़ा कमीशन काट दिया जाता है। अर्थात् १।) प्रति अङ्क के बजाय स्थायी ग्राहकों को १) में प्रति अङ्क दिया जाता है। ध्यान रहे कि डाकखर्च स्थायी और फुटकर सभी तरह के ग्राहकों को अलग देना पड़ेगा।

(२) साल भर या छः मास का मूल्य १२) या ६), दो आना प्रति अङ्क के हिसाब से रजिस्ट्री खर्च सहित १३॥) या ६॥।) जो सज्जन पेशगी मनीआर्डर-द्वारा भेज देंगे केवल उन्हीं सज्जनों को डाकखर्च नहीं देना पड़ेगा। महाभारत की प्रतियाँ राह में गुम न हो जायँ और ग्राहकों की सेवा में वे सुरक्षित रूप में पहुँच जायँ इसी लिए रजिस्ट्री द्वारा भेजने का प्रबन्ध किया गया है।

(३) उसके प्रत्येक खंड के लिए अलग से बहुत सुन्दर जिल्दें भी सुनहरे नाम के साथ तैयार कराई जाती हैं। प्रत्येक जिल्द का मूल्य ।॥) रहता है परन्तु स्थायी ग्राहकों को वे ॥) ही में मिलती हैं। जिल्दों का मूल्य महाभारत के मूल्य से बिलकुल अलग रहता है।

(४) स्थायी ग्राहकों के पास प्रतिमास प्रत्येक अङ्क प्रकाशित होते ही बिना विलम्ब वी० पी० द्वारा भेजा जाता है। बिना कारण वी० पी० लौटाने से उनका नाम ग्राहक-सूची से अलग कर दिया जायगा।

(५) ग्राहकों को चाहिए कि जब किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार करें तो कृपा कर अपना ग्राहक-नम्बर जो कि पता की स्लिप के साथ छपा रहता है और पूरा पता अवश्य लिख दिया करें। बिना ग्राहक-नम्बर के लिखे हज़ारों ग्राहकों में से किसी एक का नाम ढूँढ़ निकालने में बड़ी कठिनाई पड़ती है और पत्र की कार्रवाई होने में देरी होती है। क्योंकि एक ही नाम के कई-कई ग्राहक हैं। इसलिए सब प्रकार का पत्र-व्यवहार करते तथा रुपया भेजते समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए।

(६) जिन ग्राहकों को अपना पता सदा अथवा अधिक काल के लिए बदलवाना हो, अथवा पते में कुछ भूल हो, उन्हें कार्यालय को पता बदलवाने की चिट्ठी लिखते समय अपना पुराना और नया दोनों पते और ग्राहक-नम्बर भी लिखना चाहिए। जिससे उचित संशोधन करने में कोई दिक़्क़त न हुआ करे। यदि किसी ग्राहक को केवल एक दो मास के लिए ही पता बदलवाना हो, तो उन्हें अपने हलके के डाकघर से ही उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिए।

(७) ग्राहकों से सविनय निवेदन है कि मनी-आर्डर या किसी प्रकार का पत्र लिखने के समय यह ध्यान रक्खें कि लिखावट साफ़ साफ़ हो। अपना नाम, गाँव, पोस्ट और ज़िला साफ़-साफ़ हिन्दी या अँगरेज़ी में लिखना चाहिए ताकि अङ्क या उत्तर भेजने में दुबारा पूछताछ करने की ज़रूरत न हो। "हम परिचित ग्राहक हैं" यह सोच कर किसी को अपना पूरा पता लिखने में लापरवाही न करनी चाहिए।

(८) यदि कोई महाशय मनी-आर्डर से रुपया भेजें, तो 'कूपन' पर अपना पता-ठिकाना और रुपया भेजने का अभिप्राय स्पष्ट लिख दिया करें, क्योंकि मनीआर्डरफ़ार्म का यही अंश हमको मिलता है।

सब प्रकार के पत्रव्यवहार का पता—

मैनेजर महाभारत-विभाग, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

Printed and Published by K. Mittra at The Indian Press Ltd., Allahabad.

आवश्यक सूचनायें

(१) हमने प्रथम खण्ड की समाप्ति पर उसके साथ एक महाभारत-कालीन भारतवर्ष का प्रामाणिक सुन्दर मानचित्र भी देने की सूचना दी थी। इस सम्बन्ध में हम ग्राहकों को सूचित करते हैं कि पूरा महाभारत समाप्त हो जाने पर हम प्रत्येक ग्राहक को एक परिशिष्ट अध्याय बिना मूल्य भेजेंगे जिसमें महाभारत-सम्बन्धी महत्त्व-पूर्ण खोज, साहित्यिक आलोचना, चरित्र-चित्रण तथा विश्लेषण आदि रहेगा। उसी परिशिष्ट के साथ ही मानचित्र भी लगा रहेगा जिसमें पाठकों को मानचित्र देख कर उपरोक्त बातें पढ़ने और समझने आदि में पूरी सुविधा रहे।

(२) महाभारत के प्रेमी ग्राहकों को यह शुभ समाचार सुन कर बड़ी प्रसन्नता होगी कि हमने कानपुर, उन्नाव, काशी (रामनगर), कलकत्ता, ग़ाज़ीपुर, बरेली, मथुरा (वृन्दावन), जोधपुर, बुलन्दशहर, प्रयाग और लाहौर आदि में ग्राहकों के घर पर ही महाभारत के अङ्क पहुँचाने का प्रबन्ध किया है। अब तक ग्राहकों के पास यहीं से सीधे डाक-द्वारा प्रतिमास अङ्क भेजे जाते थे जिसमें प्रति अङ्क तीन चार आना खर्च होता था पर अब हमारा नियुक्त किया हुआ एजेंट ग्राहकों के पास घर पर जाकर अङ्क पहुँचाया करेगा और अङ्क का मूल्य भी ग्राहकों से वसूल कर ठीक समय पर हमारे यहाँ भेजता रहेगा। इस व्यवस्था पर ग्राहकों को ठीक समय पर प्रत्येक अङ्क सुरक्षित रूप में मिल जाया करेगा और वे डाक, रजिस्टरी तथा मनीआर्डर इत्यादि के व्यय से बच जायँगे। इस प्रकार उन्हें प्रत्येक अङ्क केवल एक रुपया मासिक देने पर ही घर बैठे मिल जाया करेगा। यथेष्ट ग्राहक मिलने पर अन्य नगरों में भी शीघ्र ही इसी प्रकार का प्रबन्ध किया जायगा। आशा है जिन स्थानों में इस प्रकार का प्रबन्ध नहीं है, वहाँ के महाभारतप्रेमी सज्जन शीघ्र ही अधिक संख्या में ग्राहक बन कर इस अवसर से लाभ उठावेंगे। और जहाँ इस प्रकार की व्यवस्था हो चुकी है वहाँ के ग्राहकों के पास जब एजेंट अङ्क लेकर पहुँचे तो ग्राहकों को रुपया देकर अङ्क ठीक समय पर ले लेना चाहिए जिसमें उन्हें ग्राहकों के पास बार बार आने जाने का कष्ट न उठाना पड़े। यदि किसी कारण उस समय ग्राहक मूल्य देने में असमर्थ हों तो अपनी सुविधानुसार एजेंट के पास से जाकर अङ्क ले आने की कृपा किया करें।

(३) हम हिन्दी-भाषा-भाषी सज्जनों से एक सहायता की प्रार्थना करते हैं। वह यही कि हम जिस विराट् आयोजन में संलग्न हुए हैं आप लोग भी कृपया इस पुण्य-पर्व में सम्मिलित होकर पुण्य-सञ्चय कीजिए, अपनी राष्ट्र-भाषा हिन्दी का साहित्य-भाण्डार पूर्ण करने में सहायक हूजिए और इस प्रकार सर्वसाधारण का हित-साधन करने का उद्योग कीजिए। सिर्फ़ इतना ही करें कि अपने दस-पाँच हिन्दी-प्रेमी इष्ट-मित्रों में से कम से कम दो स्थायी ग्राहक इस वेद-तुल्य सर्वाङ्गसुन्दर महाभारत के और बना देने की कृपा करें। जिन पुस्तकालयों में हिन्दी की पहुँच हो वहाँ इसे ज़रूर मँगवावें। एक भी समर्थ व्यक्ति ऐसा न रह जाय जिसके घर यह पवित्र ग्रन्थ न पहुँचे। आप सब लोगों के इस प्रकार साहाय्य करने से ही यह कार्य्य अग्रसर होकर समाज का हितसाधन करने में समर्थ होगा।

—प्रकाशक

विषय-सूची ।

विषय	पृष्ठ

रंगीन चित्रों की सूची।

——

सौ अध्याय

देवताओं का वृत्रासुर को मारने का उद्योग और वज्र की रचना

युधिष्ठिर ने कहा कि हे द्विजश्रेष्ठ, महर्षि अगस्त्य ने जो-जो काम किये हैं उन्हें मैं फिर विस्तार से सुनना चाहता हूँ। लोमश ने कहा—महाराज! सुनिए, मैं महातेजस्वी अगस्त्य के प्रभाव के अलौकिक वृत्तान्त का वर्णन करता हूँ। सत्ययुग में कालकेय नाम के देवशत्रु दानवों ने वृत्रासुर को अपना स्वामी बनाया और वे अनेक अस्त्र-शस्त्र लेकर चारों ओर से देवताओं पर हमला करने लगे। वृत्रासुर का नाश चाहनेवाले देवता, इन्द्र को अपना अगुआ बनाकर, हाथ जोड़कर भगवान् ब्रह्मा की आराधना करने लगे। तब ब्रह्माजी ने प्रकट होकर कहा—हे देवताओ, मैंने तुम्हारा अभिप्राय समझ लिया। जिस उपाय से तुम वृत्रासुर का नाश कर सकोगे वह मैं बतलाता हूँ। दधीचि नाम से प्रसिद्ध उदारबुद्धि एक महातपस्वी महर्षि हैं। उनके यहाँ जाकर तुम वरदान माँगो। वे महात्मा जब प्रसन्नचित्त होकर वर देने के लिए तैयार हों तब तुम लोग कहना कि आप त्रिलोकी के हित के लिए अपनी हड्डियाँ हमें दे दीजिए। अपना शरीर त्यागकर उनके हड्डियाँ देने पर तुम उन हड्डियों से छः कोनोंवाला, भयानक-ध्वनि-पूर्ण, सुदृढ़ वज्र बनवा लेना। इन्द्र उसी वज्र से वृत्रासुर को मारेंगे। मैंने तुमको यह सलाह दी है। तुम झटपट इसके अनुसार काम करो।

तब नारायण प्रमुख सब देवता, ब्रह्मा की अनुमति लेकर, सरस्वती नदी के उस पार तपोधन दधीचि के आश्रम में पहुँचे। अनेक प्रकार के वृक्षों और लताकुञ्जों से उस तपोवन की अपूर्व शोभा हो रही थी। साम-गान सा करते हुए भौंरे गुंजार कर रहे थे। कोकिलाओं की कूक सुन पड़ती थी। सुअर, भैंसे, नीलगाय और बाघ आदि पशु निडर होकर चारों ओर विचर रहे थे। जिनके कपोलों से मद बह रहा है ऐसे हाथियों के झुण्ड सरोवर में नहा करके हथिनियों के साथ

क्रीड़ा कर रहे थे। कन्दराओं में लेटे हुए शेरों और बाघों का गम्भीर गर्जन चारों ओर प्रतिध्वनित हो रहा था। स्वर्ग के समान शोभायमान उस आश्रम में पहुँचकर देवताओं ने देखा कि सूर्य के समान महर्षि दधीचि, तपोधन ब्रह्मा की तरह, अपने शरीर की कान्ति से प्रकाशित हो

२० रहे हैं। देवताओं ने जाकर उनके चरण छुए और ब्रह्मा का बताया हुआ वर माँगा।

देवताओं की प्रार्थना से परम प्रसन्न होकर महर्षि दधीचि ने कहा—हे देवताओ, मैं आप लोगों का उपकार करना चाहता हूँ। मैं तुरन्त मरने के लिए तैयार हूँ। तुम्हारा माँगा हुआ वर देने से मैं नाहीं न करूँगा। अब परोपकारी महातपस्वी दधीचि ने उसी दम अपना शरीर त्याग दिया। मुनि के मरने पर उनकी हड्डियाँ लेकर प्रसन्नता से सब देवता अद्भुत कर्म करनेवाले विश्वकर्म्मा के पास गये। उन्होंने विश्वकर्मा से जाकर अपना मतलब कहा। सुनकर विश्वकर्मा बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने दधीचि की हड्डियाँ लेकर उनसे भयानक प्रभावाला भीमरूप वज्र बनाया। फिर वह वज्र इन्द्र को देकर उन्होंने कहा—हे सुरराज, इस वज्र के द्वारा आप देवशत्रु असुरों को मारकर देवताओं-सहित सुखपूर्वक राज्य भोगिए। विश्वकर्मा के ये वचन सुन-

२५ कर इन्द्र ने प्रसन्नतापूर्वक वह वज्र ले लिया।

एक सौ एक अध्याय

वृत्रासुर का वध और असुरों का भागकर सलाह करना

लोमशजी कहते हैं—इन्द्र वृत्रासुर पर हमला करने की इच्छा से उसकी ओर वज्र लेकर दौड़े। शस्त्रधारी देवता चारों ओर से उनकी रक्षा करते हुए चले। उधर ऊँचे शिखरोंवाले पर्वतराज के तुल्य, शस्त्र हाथ में लिये, उन्नतशरीर कालकेय राक्षसों के बीच महाअसुर वृत्र आकाश और अन्तरिक्ष को रोके हुए खड़ा था। देवताओं को आगे बढ़ते देखकर असुर लोग क्रोध से अधीर हो उठे। अनेक अस्त्र-शस्त्र उठाकर दोनों दल परस्पर भिड़ गये। घोर संग्राम में परस्पर तलवारें चलाने से टूटे हुए तालफलों के समान देवताओं और दैत्यों के सिर कट-कटकर पृथ्वी पर गिरने लगे। सोने के कवच पहने और परिघ आदि शस्त्र हाथ में लिये कालकेय नाम के असुरों ने देवताओं पर हमला किया। प्रबल पराक्रमी कालकेयगण अभिमान के साथ देवताओं की ओर दौड़े। देवता घबराकर इधर-उधर भागने लगे। उनको भागते और दैत्यों को उनका पीछा करते देखकर इन्द्र उदास हो गये। वे दम भर में सँभलकर वृत्रासुर के डर से बहुत ही सकपकाये और भगवान् नारायण के शरणागत हुए। सब प्राणियों के स्वामी विष्णु ने इन्द्र को व्याकुल देखकर अपना

१० तेज देकर उनकी सहायता की। यह देखकर देवताओं और ब्रह्मर्षियों ने प्रसन्नतापूर्वक अपना-अपना तेज देकर इन्द्र के बल को और भी बढ़ा दिया।

राजा चित्ररथ पद्ममालाएँ पहने हुए स्त्री के साथ जल-विहार कर रहा है।—पृ० १३८
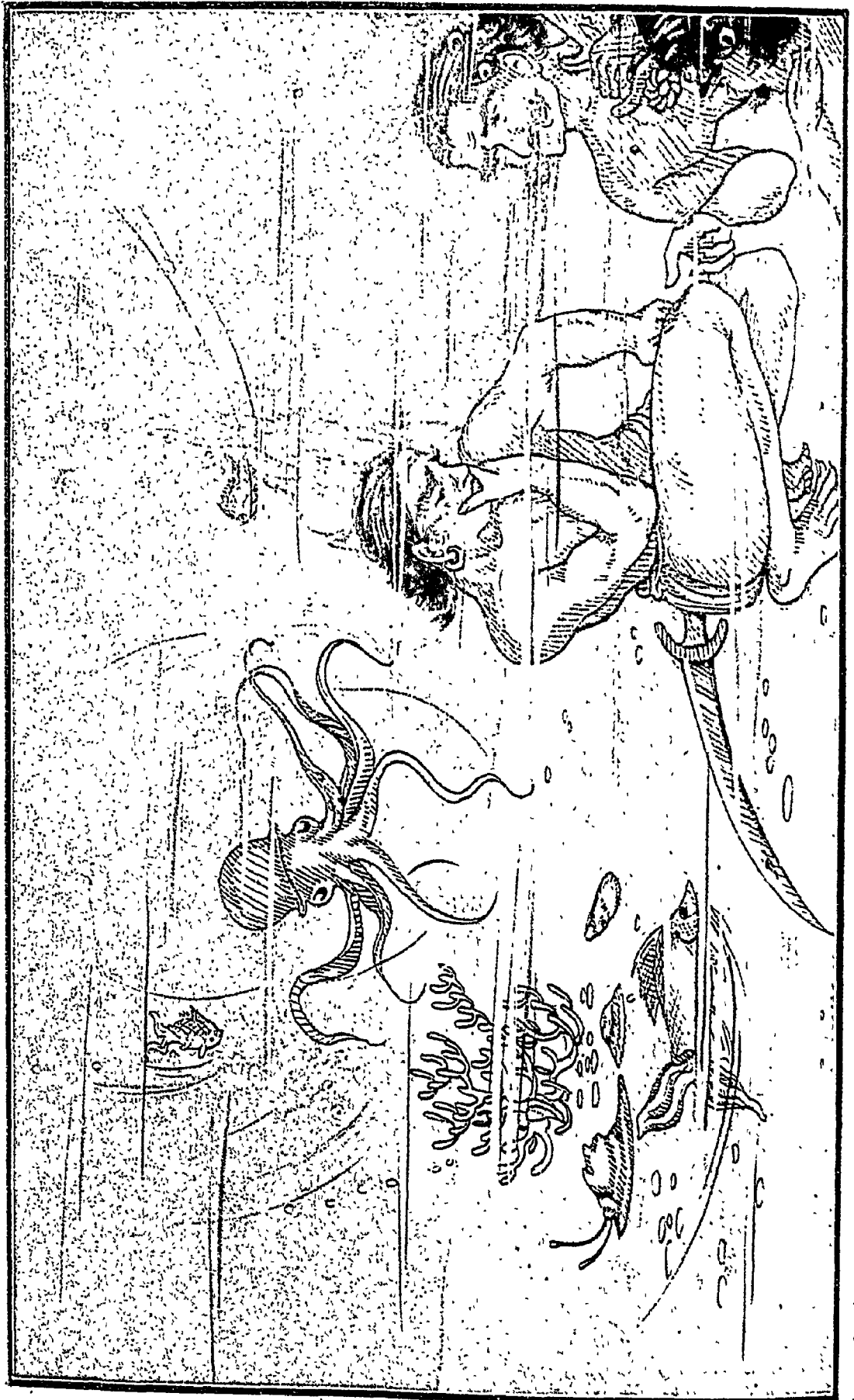
देवताओं से परास्त होने पर भयानक जल-जन्तुओं से पूर्ण समुद्र के भीतर असुरों का सलाह करना।—पृ० ५१३

इन्द्र को विष्णु के तेज से रक्षित देखकर वृत्रासुर बहुत क्रोधित हुआ और वह बारम्बार सिंहनाद करने लगा। उसके चिल्लाने के भयानक शब्द से सब दिशाएँ काँप उठीं और सारा संसार शङ्कित हो गया। वृत्रासुर का शङ्खनाद के समान गम्भीर शब्द सुनकर इन्द्र बहुत ही डरे और चकित हुए। तब उन्होंने वृत्र को मारने के लिए वज्र चलाया।

इन्द्र का वज्र लगते ही सोने की माला पहने हुए महा असुर वृत्र, विष्णु के हाथ से छूटे हुए पर्वतराज मन्दराचल के समान, पृथ्वी पर गिर पड़ा। वृत्रासुर से इन्द्र इतना डरे हुए थे कि उन्हें अपने हाथ से चलाये हुए वज्र से भी वृत्रासुर के मरने में सन्देह बना रहा। तब वे प्राण बचाने के लिए एक सरोवर में घुसने को दौड़े। वृत्रासुर को वज्र की मार से मूर्च्छित और पृथ्वी पर पड़ा हुआ देखकर सब देवता और महर्षि हर्षसूचक शब्द करके इन्द्र की प्रशंसा करने लगे। वृत्रासुर के मर जाने से व्याकुल असुरों को देवताओं ने तुरन्त ही एकत्र होकर मारा। देवताओं के हाथों मार खाकर वे, भयानक जलजन्तुओं से पूर्ण, गम्भीर समुद्र में घुसकर त्रैलोक्य के नाश के लिए आपस में सलाह करने लगे। बहुत देर तक सलाह करने पर यह निश्चय हुआ कि सबसे पहले तपोबलशाली सब शास्त्रों के ज्ञाता लोगों को मारना चाहिए; क्योंकि तपस्या ही लोकरक्षा का प्रधान कारण है। अतएव, आओ, सब एकमत होकर पहले पृथ्वी पर रहनेवाले धार्मिकों और तपस्वियों का ही संहार करें। तभी सारा जगत् नष्ट हो सकेगा। दुस्तर तरङ्गों से पूर्ण दुर्भेद्य समुद्र के दुर्गम दुर्ग (क़िले) में रहकर सब दानव संसार का नाश करने के लिए इस प्रकार सलाह करने लगे। २०–२३

एक सौ दो अध्याय

दानवों का त्रिलोक-संहार के लिए उद्योग और देवताओं का विष्णु की आराधना करना

लोमशजी कहते हैं—राजन्, इस प्रकार समुद्र के भीतर रहकर, त्रिलोक-संहार के लिए तरह-तरह की सलाहें कर, अन्त को कुपित राक्षस लोग रात के समय आश्रमों और पुण्यस्थानों में रहनेवाले ब्राह्मणों को मारकर खाने लगे। दुष्ट राक्षसों ने महात्मा वशिष्ठ के आश्रम में घुसकर एक सौ सत्तानवे ब्राह्मणों और अन्यान्य तपस्वियों को मारकर खा लिया। च्यवन ऋषि के आश्रम में जाकर एक सौ फल-मूलाहारी तपस्वियों का नाश किया। भरद्वाज ऋषि के आश्रम में जाकर केवल जल और वायु के आधार पर तपस्या करनेवाले बीस ब्राह्मणों का नाश कर डाला। वे राक्षस रात को इस प्रकार अत्याचार करते थे और दिन को समुद्र के भीतर छिप जाते थे। इस प्रकार ऋषियों के आश्रमों में कालकेय दानवों के उपद्रव से बेचैनी फैल गई। सैकड़ों ब्राह्मण अकाल में ही काल का कौर बन गये। किन्तु कोई उन दानवों का पता न लगा सका।

दुष्ट दानवों का अत्याचार धीरे-धीरे चारों ओर फैलने लगा। नित्य सवेरे देख पड़ने लगा कि नियत आहार से दुर्बल शरीरवाले मुनियों की ठठरियाँ पृथ्वी पर पड़ी हुई हैं। सब १० तपोवनों में रक्त की धारा, हड्डी, मेदा, मांस और मज्जा आदि देख पड़ने लगा। अग्निहोत्र के स्थान नष्ट-भ्रष्ट देख पड़ने लगे। कहीं कलश और कहीं स्रुवा टूटे पड़े थे। वेदपाठ, वषट्कार की ध्वनि, यज्ञ, उत्सव और अन्य सब कर्मकाण्ड की क्रियाएँ पृथ्वी पर से मानों उठ गईं। इस प्रकार कराल कालकेयों की दुष्टता से सारा जगत् शङ्कित और चिन्तित हो उठा।

दिन-दिन कालकेय दानवों के उपद्रव से मनुष्यों का नाश होते देखकर बचे हुए सब प्राणी अपने प्राण लेकर, स्थान छोड़कर, इधर-उधर भाग गये। कोई पहाड़ों की कन्दराओं में, कोई वन में, और कोई झरनों के पास छिपकर रहने लगे। अनेक लोग मृत्यु के डर से आप ही आप मर गये। केवल दो-एक वीर पुरुष धनुष-बाण हाथ में लेकर दुष्ट दानवों का पता लगाने लगे। पर वे तो मज़े से बेखटके समुद्र के भीतर रहते थे, इस कारण उनका कोई कुछ नहीं कर सका। बल्कि दानवों की खोज में लगातार घूमने के कारण वे ही थककर मर मिटे।

पृथ्वी पर यज्ञ-याग आदि के बन्द होने और मनुष्यों के मारे जाने से देवता अत्यन्त पीड़ित हुए। इन्द्र आदि देवताओं ने मिलकर सलाह की। फिर सब भगवान् नारायण की शरण में गये। हाथ जोड़कर प्रणाम करके विनीत वचनों से वे कहने लगे—हे सनातन जगत् २० के स्वामी, एकमात्र तुम्हीं जगत् की सृष्टि, पालन और नाश करते हो। हे कमलनयन, पहले यह ब्रह्माण्ड समुद्र के जल में डूबा हुआ था। उस समय तुमने वराह का रूप धारण कर जल में डूबी हुई पृथ्वी का उद्धार किया है। तुमने नृसिंह रूप रखकर आदि-दैत्य हिरण्यकशिपु को मारा है। तुमने वामन रूप रखकर उद्दण्ड राजा बलि को त्रिलोकी के राज्य से भ्रष्ट किया है। तुमने सब यज्ञों को मिटानेवाले जम्भासुर को मारा है। हे मधुसूदन, इस प्रकार अनेक अद्भुत काम करके तुमने जगत् का भला किया है। इस कारण इस विपत्ति को दूर करके हम भय-२६ पीड़ित शरणागत देवताओं की, इन्द्र की और संसार की रक्षा करो।

एक सौ तीन अध्याय

देवताओं का विष्णु से प्रार्थना करना और फिर विष्णु की
आज्ञा से अगस्त्यजी के पास जाना

देवताओं ने कहा—हे लोकनाथ, तुम्हारी ही कृपा से चारों वर्ण की प्रजा फूलती-फलती है। वह प्रजा हव्य और कव्य के द्वारा देवताओं को प्रसन्न करती है। हे नाथ, तुम्हारे ही सृष्टि-कौशल से पृथ्वी और स्वर्ग परस्पर की सहायता से बढ़ते और तुम्हारे द्वारा प्रतिपालित होते

हैं। किन्तु इस समय ये दोनों लोक बड़ी भारी विपत्ति में पड़कर चिन्तित हो रहे हैं। नहीं जानते, कौन दुष्ट छिपकर रात को आते हैं और ब्राह्मणों की हत्या करके भाग जाते हैं। इस प्रकार धीरे-धीरे ब्राह्मणों का नाश होने से पृथ्वी चौपट हो जायगी। पृथ्वी के नष्ट होने पर निस्सन्देह स्वर्ग की भी वही दशा होगी। हे विश्वनाथ, तुम्हारी ही कृपा से सब लोकों का पालन और रक्षा होती है। इससे वही कीजिए जिसमें सब लोक नष्ट न हों।

विष्णु ने कहा—हे देवताओ, जिस कारण प्रजा का क्षय हो रहा है सो मैं जानता हूँ। मैं तुम लोगों से वह कारण कहता हूँ, मन लगाकर सुनो। कालकेय नाम से प्रसिद्ध बड़े भयानक कुछ दानव थे। वे वृत्रासुर को अपना अगुवा बनाकर सब जगत् को सताते फिरते थे। इस समय वृत्रासुर को बुद्धिमान् इन्द्र ने मार डाला है। वे राक्षस अपने प्राण बचाने के लिए समुद्र के भीतर भाग गये हैं। मगर-घड़ियाल आदि भयानक जल-जन्तुओं से पूर्ण समुद्र के भीतर रहनेवाले वही राक्षस रात को बाहर निकलकर सारे संसार के नाश के लिए ऋषियों की हत्या करते हैं। इस कारण उनका नाश करना अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु वे अथाह समुद्र के भीतर छिपे हुए हैं, इसलिए उन्हें नष्ट करना सहज नहीं है। समुद्र को सोखना ही उनके नाश का एकमात्र उपाय है। इसलिए ऐसा कोई उपाय खोजना चाहिए जिसमें समुद्र का जल सूख जाय। समुद्र को सुखा सकनेवाले केवल अगस्त्य ऋषि हैं। उनके सिवा ऐसा और कोई नहीं।

१०

विष्णु के ये वचन सुनकर सब देवता ब्रह्माजी से यह हाल कहके अगस्त्यजी के आश्रम को गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा, देवता जैसे भगवान् ब्रह्मा की उपासना करते हैं वैसे ही बहुतेरे ऋषि-महर्षि अगस्त्य की उपासना कर रहे हैं। तपोराशि महात्मा अगस्त्य को आश्रम में बैठे देखकर सब देवता उनके पास गये और उन्हीं के किये कर्मों का वर्णन करके उनकी स्तुति करने लगे। उन्होंने कहा—हे ऋषिश्रेष्ठ, जब राजा नहुप के कार्य से सब लोक घबरा रहे थे तब आपने ही उस लोक-

कण्टक को इन्द्र के ऐश्वर्य से भ्रष्ट करके सब लोकों की रक्षा की थी। सूर्य की गति रोकने के लिए ऊपर को उठा हुआ पर्वतराज विन्ध्याचल आपकी ही आज्ञा से अब तक पृथ्वी पर पड़ा हुआ है; खड़ा नहीं हो सकता। उस समय सूर्य का प्रकाश न पाकर अँधेरे से अत्यन्त पीड़ित प्रजा आपकी कृपा से परम आनन्दित हुई थी। इस कारण भगवन्, आप ही इस समय भयभीत देवताओं की एकमात्र गति हैं। इस समय हम डर से पीड़ित होकर आपसे १८ यही वर माँगने आये हैं।

एक सौ चार अध्याय

विन्ध्याचल का उपाख्यान

युधिष्ठिर ने कहा—हे मुनिवर, विन्ध्याचल क्यों कुपित होकर एकाएक यों बढ़ने लगा था? यह उपाख्यान विस्तार के साथ सुनने को मेरा जी चाहता है। लोमशजी ने कहा—महाराज, भगवान् सूर्य नित्य उदय और अस्त के समय पर्वतराज सुमेरु की प्रदक्षिणा किया करते हैं। यह देखकर विन्ध्याचल ने सूर्यनारायण से कहा कि सूर्यदेव, तुम नित्य जिस तरह सुमेरु की प्रदक्षिणा करते हो उसी तरह मेरी भी प्रदक्षिणा किया करो। विन्ध्याचल के यों कहने पर सूर्य ने कहा—हे पर्वतराज, मैं अपनी इच्छा से सुमेरु की प्रदक्षिणा नहीं करता। जगत् के उत्पन्न करनेवाले ईश्वर ने जो मार्ग मेरे लिए बना दिया है मैं उसी में घूमा करता हूँ।
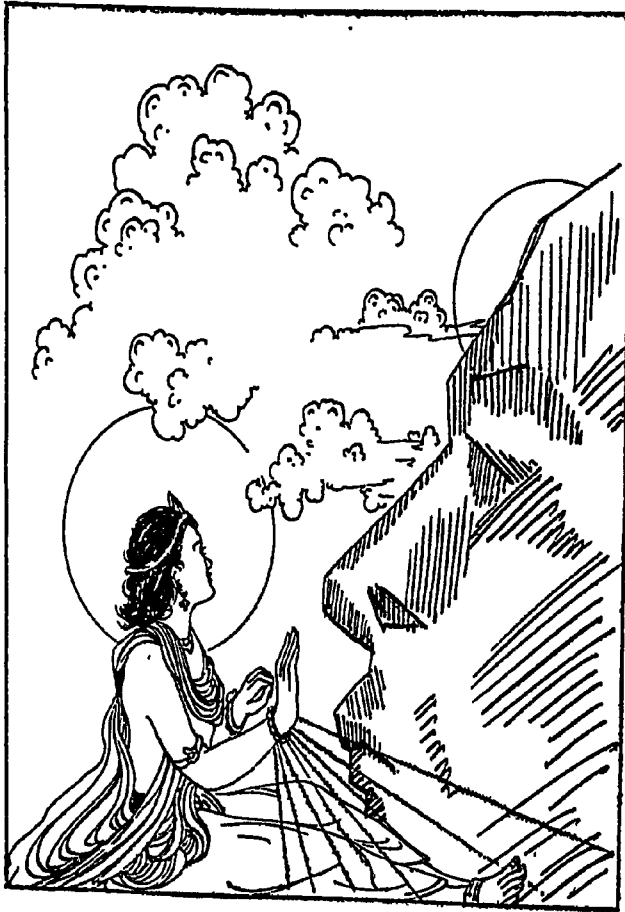
हे धर्मराज, सूर्य के इस कथन से विन्ध्याचल को क्रोध चढ़ आया। वह सूर्य और चन्द्र की गति रोकने के लिए अकस्मात् ऊपर की ओर बढ़ने लगा। यह देखकर सब देवता विन्ध्याचल के पास गये और अनेक उपायों से उसका बढ़ना रोकने का उपाय करने लगे। लेकिन विन्ध्याचल किसी तरह उनका कहना मानने को राज़ी न हुआ।

तब सब देवता मिलकर अत्यन्त अद्भुत पराक्रमवाले, धार्मिकश्रेष्ठ, महातपस्वी अगस्त्य के पास गये। वहाँ सब वृत्तान्त वर्णन करके वे कहने लगे—हे महाभाग, पर्वतराज विन्ध्याचल ने क्रोध से उन्मत्त होकर सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रों की गति रोक ली है। हे द्विज-श्रेष्ठ, आपके सिवा और कोई उसे इस अनर्थ से रोक नहीं सकता, इसलिए उसे रोकिए। देवताओं के ये वचन सुन-कर अपनी स्त्री को साथ लिये अगस्त्यजी विन्ध्याचल के पास गये। वहाँ जाकर उन्होंने विन्ध्याचल से कहा—हे पर्वत-राज, मैं किसी काम से दक्षिण दिशा को जाता हूँ। तुम मुझे जाने की राह दो और जब तक मैं लौटकर न आऊँ तब तक तुम और मत बढ़ो; मेरी आज्ञा को मानो। जब मैं उधर से लौट आऊँ तब तुम अपनी इच्छा के अनुसार जितना चाहो उतना बढ़ना। १०

हे धर्मराज, विन्ध्याचल से यों वादा कराकर महर्षि अगस्त्य दक्षिण दिशा को चले गये; पर वे अभी तक उधर से नहीं लौटे। इस कारण विन्ध्याचल भी तब से अब तक फिर बढ़ नहीं सका। महाराज, जिस कारण अगस्त्य के प्रभाव से विन्ध्याचल बढ़ नहीं सका, सो आपके प्रश्न के अनुसार मैंने कह सुनाया। अब जिस तरह देवताओं ने महर्षि-अगस्त्य से वरदान पाकर कालकेय दानवों को मारा वह वृत्तान्त कहता हूँ, सुनो।

महर्षि अगस्त्य ने देवताओं की स्तुति सुनकर पूछा—आप लोग किसलिए मेरे पास आये हैं? और कैसा वरदान मुझसे माँगते हैं? महर्षि के पूछने पर देवताओं ने कहा—हे महात्माजी, हम आपसे यही प्रार्थना करते हैं कि आप समुद्र का सारा जल पी लीजिए। तब हम देवशत्रु कालकेय नामक दानवों को उनके मित्रों-सहित मारकर निश्चिन्त हो जायँगे।

देवताओं के वचन सुनकर, उनका मनोरथ सिद्ध करने के लिए, मुनि ने उनकी बात मान ली। मुनिवर ने देवताओं से कहा—मैं आप लोगों का अत्यन्त अभीष्ट और सब लोगों के हित का यह काम अवश्य करूँगा। हे धर्मराज, इसके उपरान्त महर्षि अगस्त्य देवताओं और तपस्या से सिद्ध ऋषियों के साथ समुद्र की ओर चले। इस अद्भुत घटना को देखने के लिए मनुष्य, २०

नाग, यक्ष, गन्धर्व और किन्नर महर्षि अगस्त्य के पीछे-पीछे चले। सब लोग समुद्र-किनारे पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि अनेक प्रकार के जलजन्तुओं और पक्षियों से पूर्ण समुद्र हवा २४ की थपेड़ों से लहराता हुआ नाच सा रहा है। फेनराशि देखने से वह हँसता सा जान पड़ता है।

एक सौ पाँच अध्याय

अगस्त्य मुनि का समुद्र के जल को पी जाना और देवताओं का दैत्यों को मारना

लोमश मुनि कहते हैं कि भगवान् महर्षि अगस्त्य ने समुद्र के पास पहुँचकर आये हुए देवताओं और ऋषियों से कहा—मैं संसार के भले के लिए इस समुद्र के जल को पिये लेता हूँ। आप लोगों को जो कुछ करना हो सो तुरन्त करें। अब वे, सब लोगों के आगे, समुद्र का जल पीने लगे। यह देखकर इन्द्र आदि देवता बहुत ही चकराये और अनेक प्रकार के स्तुति-वाक्यों से महर्षि को प्रसन्न करते हुए कहने लगे—आप लोकरक्षक और हम लोगों के प्रतिपालक विधाता हैं। आपकी ही कृपा से आज सब जगत् की रक्षा हुई। इस प्रकार देवताओं के स्तुति-वाक्य सुनते हुए महर्षि ने समुद्र का सारा पानी पी लिया। उस समय देवता स्वर्ग से उनके मस्तक पर फूलों की वर्षा करने लगे। गन्धर्व नाचने लगे। समुद्र को सूखा हुआ देखकर देवता बहुत प्रसन्न हुए और दिव्य अस्त्र-शस्त्र लेकर दानवों को मारने लग गये।

हे भरतश्रेष्ठ, महाबली देवताओं ने जब वेग से हमला किया तब दानव लोग उनको रोकने में बिलकुल असमर्थ हुए। किन्तु इस प्रकार मारे जाने पर भी कुछ देर तक भयङ्कर शब्द करते हुए दानवों ने घोर युद्ध किया। वे राक्षस पहले ही विशुद्ध मुनियों के तपोबल से भस्म हो चुके थे। इस कारण इस समय प्राणपण से यत्न करने पर भी वे अपने को बचा नहीं सके; उनको १० देवताओं ने नष्ट कर डाला। सोने के बहुत से गहने पहननेवाले वे दानव, मारे जाकर, फूले हुए ढाक के वृक्ष के समान देख पड़े। हे नरश्रेष्ठ, मरने से बचे हुए कोई-कोई दानव पृथ्वी खोदकर पाताल को भाग गये। दानवों को विनष्ट देखकर सब देवता महर्षिश्रेष्ठ अगस्त्य की स्तुति करने लगे—हे महाबाहो, आपके प्रसाद से सब लोगों को परम शान्ति मिली। हे लोक-हितैषी, आपने जिस तरह सब जल पीकर समुद्र को सुखा दिया है उसी तरह जल छोड़कर समुद्र को फिर भर दीजिए।

देवताओं ने जब अगस्त्यजी से यों प्रार्थना की तब उन्होंने कहा—हे देवताओ, मैंने समुद्र का सब जल पीकर पचा डाला। इसलिए अब तुम समुद्र को फिर भरने के लिए कोई दूसरा उपाय सोचो। महर्षि का यह उत्तर सुनकर सब देवता बहुत विस्मित और उदास हुए। फिर

अगस्त्य मुनि का समुद्र के जल को पीना।—पृ० ११८

सब लोग मुनि को प्रणाम करके परस्पर विदा होकर अपने-अपने स्थान को चले गये। देवता लोग समुद्र को भरने के सम्बन्ध में बार-बार सलाह करके जब कुछ ठीक नहीं कर सके तब विष्णु को साथ लेकर ब्रह्माजी के पास गये। वहाँ जाकर हाथ जोड़कर उन्होंने सब वृत्तान्त कह सुनाया। २०

एक सौ छः अध्याय

राजा भगीरथ के उपाख्यान का आरम्भ

लोमश मुनि कहते हैं—हे धर्मराज, लोकपितामह ब्रह्मा ने देवताओं से कहा कि देवताओ, इस समय तुम लोग अपने-अपने स्थान को जाओ। बहुत दिनों के बाद महाराज भगीरथ अपने पुरखों को तारने के लिए गङ्गा को पृथ्वी पर लावेंगे। इससे समुद्र भर जायगा। ब्रह्माजी के ये वचन सुनकर सब देवता अपने-अपने लोक को चले गये और उस समय की बाट जोहने लगे।

युधिष्ठिर ने कहा—ब्रह्मन्, महाराज भगीरथ के पुरखा कौन थे? भगीरथ ने किस तरह समुद्र को फिर जल से भर दिया? इसका कारण क्या है? सब बातों को विस्तार के साथ सुनने की मुझे बड़ी इच्छा है। आप कृपा करके उन सब राजाओं के चरित्र का वर्णन कीजिए।

वैशम्पायनजी कहते हैं—धर्मराज युधिष्ठिर ने जब ब्रह्मर्षि लोमश से यों पूछा तब वे इस प्रकार महात्मा महाराज सगर का माहात्म्य वर्णन करने लगे कि इक्ष्वाकु के वंश में सगर नाम के एक अत्यन्त प्रतापी राजा थे। उनके कोई पुत्र नहीं था। उन्होंने हैहय और तालजङ्घ आदि शत्रुओं को जड़-मूल से मिटाकर और अन्य राजाओं को अपने अधीन करके राज्य किया।

वैदर्भी और शैव्या नाम की उनके दो परम सुन्दरी रानियाँ थीं। महाराज सगर पुत्र की इच्छा से दोनों स्त्रियों को साथ लिये कैलास पर्वत के शिखर पर गये और वहाँ तप करने लगे। तप के प्रभाव से उन्हें १० त्रिपुरारि त्रिलोचन महादेव के दर्शन हुए। दोनों रानियों-सहित राजा सगर ने वरदानी शङ्कर को

देखते ही प्रणाम किया और पुत्र पाने के लिए उनसे प्रार्थना की। रानी-सहित राजा पर प्रसन्न होकर शङ्कर ने कहा—राजन्, तुमने ऐसे मुहूर्त्त में मुझसे यह वर माँगा है कि तुम्हारे बड़े पराक्रमी साठ हज़ार पुत्र उत्पन्न होंगे; किन्तु वे सभी एक साथ मर जायँगे। और दूसरी स्त्री के एक, वंश चलानेवाला, शूरवीर पुत्र उत्पन्न होगा। इतना कहकर रुद्रदेव अन्तर्द्धान हो गये। तब राजा सगर बहुत सन्तुष्ट होकर दोनों स्त्रियों के साथ अपनी नगरी को लौट गये। हे धर्मराज, कुछ समय के उपरान्त कमलदल के समान सुन्दर नेत्रोंवाली वैदर्भी और शैव्या, दोनों रानियाँ, गर्भवती हुईं। ठीक समय पर वैदर्भी के गर्भ से एक तूँबी निकली और शैव्या के गर्भ से एक परम
२० सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा ने जब उस तूँबी को फेंक देने का विचार किया तब आकाश से देववाणी सुन पड़ी कि राजन्, पुत्रों का त्याग करना ठीक नहीं है। आप इस तूँबी के सब बीज निकाल लीजिए। साठ हज़ार हिस्से करके उन्हें, घी से भरे और पानी के भीतर रक्खे हुए, घड़ों में रख दीजिए। उनसे आपके साठ हज़ार पुत्र उत्पन्न होंगे। राजन्, शङ्कर ने इसी प्रकार
२३ से आपको साठ हज़ार पुत्रों के होने का वर दिया है। इसलिए आप उलट-पलट न कीजिएगा।

एक सौ सात अध्याय

सगर के पुत्रों का कपिल के क्रोधाग्नि में भस्म होना। असमञ्जस का उपाख्यान। अंशुमान् का राज्याभिषेक

लोमशजी कहते हैं—हे नरश्रेष्ठ, महाराज सगर ने जब आकाश से यह देववाणी सुनी तब उन्होंने श्रद्धापूर्वक उस तूँबी के बीज निकाले। साठ हज़ार हिस्से करके उनको घी से भरे घड़ों में रखवा दिया। हर एक घड़े की देखरेख के लिए एक-एक धाय नियत कर दी। बहुत दिनों के बाद, महादेव के प्रसाद से, उन घड़ों से बड़े पराक्रमी साठ हज़ार पुत्र उत्पन्न हुए। वे पुत्र लड़ाके, क्रूर कर्म करनेवाले, आकाशमार्ग पर चल सकनेवाले और सब मिलकर देव, गन्धर्व आदि सबके साथ झगड़ा करनेवाले हुए। तब सब लोग सगर के पुत्रों के उपद्रव को सहने में असमर्थ होकर देवताओं के साथ ब्रह्माजी के पास पहुँचे। पितामह ब्रह्माजी ने देवताओं से कहा—देवताओ, तुम इन लोगों के साथ अपने-अपने स्थान को जाओ। सगर राजा के पुत्र अपने ही कर्मों के दोष से जल्द नष्ट हो जायँगे। हे धर्मराज, देवताओं से ब्रह्माजी ने जब यों कहा तब वे
१० सब दूसरे लोकनिवासियों के साथ अपने-अपने लोक को चले गये।

बहुत समय बीतने पर तेजस्वी राजा सगर ने अश्वमेध यज्ञ की दीक्षा ली। उनके यज्ञ के घोड़े को लेकर उसकी रक्षा करते हुए उनके पुत्र इधर-उधर पृथ्वीमण्डल पर विचरने लगे। वह घोड़ा सूखे समुद्र के भीतर जाकर ग़ायब हो गया। राजकुमारों ने समझा कि घोड़े को कोई हर

ले गया है। तब उन्होंने पिता के पास आकर उन्हें सब हाल कह सुनाया। राजा ने सुनकर उनसे कहा—तुम लोग जाकर घोड़े का पता लगाओ। सगर के पुत्र पिता की आज्ञा से घोड़े को खोजते हुए पृथ्वी भर में घूम आये किन्तु कहीं घोड़े का, या घोड़े को ले जानेवाले का, पता न लगा। तब सब मिलकर फिर पिता के पास आये और हाथ जोड़कर, सामने खड़े होकर, कहने लगे—महाराज, हम आपकी आज्ञा से समुद्र, नद, नदी, द्वीप, पर्वत, वन, उपवन आदि-सहित सारी पृथ्वी पर ढूँढ़ आये, किन्तु कहीं पता नहीं चला। उनका उत्तर सुनकर क्रोधान्ध और होनहार के वश होकर राजा सगर ने कहा—पुत्रो, तुम फिर जाकर घोड़े का पता लगाओ। २० बिना घोड़े का पता लगाये मेरे सामने मत आना। पिता की यह आज्ञा पाकर साठ हज़ार राजकुमार बारबार पृथ्वीमण्डल पर घूमते हुए घोड़े का पता लगाने लगे।

सूखे हुए समुद्र के भीतर घूमते-घूमते उन्हें एक गढ़ा देख पड़ा। कुदाल आदि से वे उसे खोदने लगे। उनके खोदने से महासमुद्र बहुत ही पीड़ित हुआ। असुर, राक्षस, नाग आदि उसके नीचे रहनेवाले प्राणी सगर के पुत्रों के कुदाल आदि शस्त्र लगने से अत्यन्त दुखी होकर मरने लगे। अनेक प्रकार के प्राणियों के मस्तक कट गये, प्राण निकल गये और हड्डियाँ चूर-चूर हो गईं। इस प्रकार बहुत समय तक सगर के पुत्र सागर के भीतर खोदते रहे, परन्तु घोड़े का पता न चला। तब वे राजकुमार अत्यन्त क्रोधित होकर सागर के पूर्व-उत्तर कोने को खोदने लगे। वहाँ खोदने पर उन्हें देख पड़ा कि उसी स्थान पर घोड़ा विचर रहा है और पास ही प्रज्वलित अग्नि के समान असाधारण तेजस्वी महर्षि कपिल बैठे हुए हैं। महाराज, वे राजकुमार उस घोड़े को देखकर बहुत ही आनन्दित हुए। उनके शरीर में रोमाञ्च हो आया। तब काल की प्रेरणा से वे सगर के पुत्र कुपित होकर ३० महात्मा कपिल को गालियाँ देते हुए घोड़े को लेने के लिए दौड़े। महाराज, मुनिश्रेष्ठ जिन्हें वासुदेव विष्णु का अंश कहते हैं उन मुनिवर महातेजस्वी कपिलजी ने आँखें खोलकर सगर के पुत्रों की ओर देखा। उनकी क्रोधाग्नि से वे दुर्बुद्धि राजकुमार दम भर में भस्म होकर

राख का ढेर हो गये। महातपस्वी महर्षि नारद ने उन्हें भस्म होते देखकर महाराज सगर के पास जाकर सब हाल कह सुनाया। महर्षि नारद के मुँह से यह दारुण समाचार सुनकर पल भर तक महाराज सगर दुःखित रहे और महादेव के वाक्य को याद करने लगे। फिर असमञ्जस के पुत्र और अपने पोते अंशुमान् को बुलाकर उन्होंने कहा—हे निष्पाप, वे बड़े पराक्रमी साठ हज़ार राजकुमार मेरे ही कारण कपिल ऋषि के तेज से भस्म हो गये हैं। मैंने नगरवासियों के हित के लिए और अपने धर्म की रक्षा के लिए तुम्हारे पिता (असमञ्जस) को त्याग दिया है।

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्, महाराज सगर ने किस कारण अपने वीर पुत्र को त्याग दिया था? पुत्र को तो कोई नहीं त्यागता; फिर उन्होंने क्यों ऐसा किया? यह सब विस्तार के साथ आप कहिए। लोमशजी कहते हैं—रानी शैव्या के गर्भ से महाराज सगर के असमञ्जस नाम का एक पुत्र हुआ था। वह नगरवासियों के दुर्बल बालकों को पकड़कर, गला दबाकर, ४० नदी में डुबा देता और दूर बहा देता था। इस कारण डर और शोक से पीड़ित सब नगरवासी महाराज सगर के पास गये और हाथ जोड़कर कहने लगे—महाराज, आप दूसरे राजाओं के हमले से और अन्य प्रकार की आपत्तियों से हमारी रक्षा करते आ रहे हैं। इस समय राजकुमार असमञ्जस से हमें जो क्लेश मिल रहा है उसे दूर करके हमारी रक्षा कीजिए। नगरवासियों के ऐसे कातर वचन सुनकर राजर्षि सगर घड़ी भर उदास रहे। फिर उन्होंने मन्त्रियों से कहा—मन्त्रियो, यदि तुम लोग मेरा प्रिय करना चाहते हो तो राजकुमार असमञ्जस को अभी मेरे राज्य से निकाल दो। हे धर्मराज, जिस तरह और जिस कारण प्रजा के हित के लिए महात्मा सगर ने अपने पुत्र को निकाल दिया था, सो मैंने तुमसे कह दिया। अब मैं वह कहता हूँ, जो उन्होंने अपने पोते अंशुमान् से कहा। मन लगाकर सुनो।

सगर ने कहा—वत्स, तुम्हारे पिता को त्यागने से, साठ हज़ार पुत्रों के अचानक मर जाने से और यज्ञ का घोड़ा न मिलने से मैं बहुत ही दुखी तथा यज्ञ में विघ्न होने से मोहित सा हो रहा हूँ। अतएव अब तुम जाकर घोड़े को लाओ और इस प्रकार नरक जाने से मुझको बचाओ। महात्मा सगर के ये वचन सुनकर अंशुमान् को बड़ा दुःख हुआ। वे वहाँ से उसी स्थान को गये जिसे साठ हज़ार राजकुमारों ने खोदा था। उसी मार्ग से वे सागर के तले जा पहुँचे। ५० वहाँ जाकर अंशुमान् ने उस घोड़े को और वहीं पर महात्मा कपिल को देखा। तेजोराशि महर्षि कपिल को देखकर राजकुमार ने साष्टाङ्ग प्रणाम किया और अपने आने का मतलब कहा। महाराज, महानुभाव धर्मात्मा कपिलदेव ने अंशुमान् के ऊपर प्रसन्न होकर कहा—मैं तुमको वर देने के लिए तैयार हूँ। अंशुमान् ने पहले यज्ञपूर्त्ति के लिए घोड़ा माँगा और फिर अपने साठ हज़ार पितरों के उद्धार की प्रार्थना की। महातेजस्वी कपिलदेव ने उनसे कहा—हे पुण्यात्मन्, तुमने मुझसे जो दो वरदान माँगे वे मैं तुमको देता हूँ। तुममें क्षमा, धर्म और सत्य स्थिर है।

महाराज सगर तुमसे कृतार्थ होंगे। तुम्हारे पिता का पिता होना तुम्हीं से सफल हुआ। सगर के ये साठ हज़ार पुत्र तुम्हारे ही प्रभाव से स्वर्ग की गति पावेंगे। तुम्हारे पौत्र भगीरथ इन अपने पुरखों को तारने के लिए महेश्वर को सन्तुष्ट करके आकाश से पृथ्वी पर गङ्गाजी को लावेंगे। हे नरश्रेष्ठ, तुम्हारा कल्याण हो। तुम इस यज्ञ के घोड़े को लेकर राजा सगर के पास जाओ और उनके यज्ञ को समाप्त करो। महर्षि कपिल ने अंशुमान् से जब यों कहा तब वे उस घोड़े को लेकर राजा सगर के यज्ञ-मण्डप में गये। उन्होंने राजा के चरणों में प्रणाम किया। महात्मा सगर ने प्यार से उनका माथा सूँघा। अंशुमान् ने कपिलजी से जिस तरह सुना था उसी तरह राजकुमारों के नाश का वृत्तान्त सगर को कह सुनाया। यह भी कहा कि यज्ञ के घोड़े को मैं ले आया हूँ।

६०

महाराज सगर ने सब सुनकर, शोक त्यागकर, अंशुमान् की सहायता से यज्ञ समाप्त किया। सब देवताओं से आदर पाकर राजा सगर ने समुद्र को अपना पुत्र माना।

कमलनयन राजा सगर ने बहुत समय तक राज्य किया। अन्त को अपने पोते अंशुमान् को राजगद्दी देकर वे स्वर्गवासी हुए। धर्मात्मा अंशुमान् भी अपने पितामह सगर की तरह राज्य करने लगे। फिर कुछ दिन बीतने पर उनके दिलीप नाम के धर्मात्मा तेजस्वी कुमार उत्पन्न हुए। दिलीप को राज्य देकर अंशुमान् परलोकवासी हुए।

अपने पुरखों के नाश की दारुण कथा सुनकर महाराज दिलीप अत्यन्त दुःखित हुए। वे अपने पुरखों के उद्धार का उपाय सोचने लगे। अन्त को स्वर्ग से पृथ्वी पर गङ्गा के लाने के बारे में उन्होंने सावधानी से अनेक उपाय किये। बहुत उपाय करके भी वे अपने उद्योग में सफल नहीं हुए। हे भरतश्रेष्ठ, कुछ समय में उनके भगीरथ नाम के धर्मात्मा, श्रीमान्, सत्यवादी, द्वेषहीन एक कुमार उत्पन्न हुए। राजा दिलीप भी भगीरथ को राज्य देकर आप वन को चले गये। ठीक समय पर वहाँ तपस्या से सिद्धि पाकर वे स्वर्गलोक को सिधारे।

७०

एक सौ आठ अध्याय

राजा भगीरथ का गङ्गाजी से वरदान पाना

लोमशजी कहते हैं—हे नरेन्द्र, राजचक्रवर्ती महारथी भगीरथ सब लोगों के मन और नेत्रों के आनन्द को बढ़ानेवाले हुए। महाबाहु भगीरथ ने भी सुना कि उनके पुरखे कपिल के कोप की आग में भस्म हो गये हैं और इस अपमृत्यु के कारण वे स्वर्ग को नहीं जा सके। हे नरेन्द्र, तब व्यथित होकर उन्होंने सारे राज्य का भार मन्त्री को सौंप दिया। वे तप के द्वारा पापनाश और गङ्गा की आराधना करने के लिए हिमालय पर्वत पर गये।

वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि रङ्ग-रङ्ग की धातुओं से रङ्गीन अनेक आकार के शिखरों से पर्वतराज की अपूर्व शोभा हो रही है। वायुवेग से इधर-उधर उड़ते हुए मेघ उस पर चारों ओर पानी का छिड़काव कर रहे हैं। उसके ऊपर की नदी, कुञ्ज और कन्दराएँ बड़ी ही सुहावनी हैं। कन्दराओं के भीतर सिंह, बाघ आदि पड़े हुए हैं। हंस, पपीहा, जलकुक्कुट, मोर, शतपत्र, जीवंजीवक, कोकिल, चकोर, खञ्जन आदि विविध विचित्र अङ्गोंवाले पक्षी चारों ओर मधुर स्वर से बोल रहे हैं। भौंरे गुन-गुन करते हुए इधर-उधर फिर रहे हैं। कमलिनी-मण्डित परम रमणीय जलाशयों के किनारे सारसों के झुण्ड मधुर शब्द से बोल रहे हैं। शिलाओं के ऊपर किन्नर और अप्सराएँ टहला करती हैं। किसी ओर भयानक शरीरवाले गजराज अपने दाँतों को वृक्षों पर घिस रहे हैं। विद्याधर चारों ओर विचर रहे हैं। कहीं पर बहुत से रत्न अपनी प्रभा फैला रहे हैं। किसी जगह पर लपलपाती हुई जीभवाले विषैले साँप पड़े हुए हैं। किसी स्थान पर सोने का सा रङ्ग, किसी जगह पर चाँदी का सा रङ्ग और कहीं पर अञ्जन का सा रङ्ग है। महाराज भगीरथ उस पर्वतराज पर रहकर कन्द-मूल-फल खाकर और जल पीकर दिव्य

१०

हज़ार वर्ष तक कठोर तप करते रहे। तब महानदी गङ्गाजी शरीर धारण कर उनके आगे प्रकट हुईं और कहने लगीं—महाराज, तुम मुझसे क्या चाहते हो? माँगो, मैं तुमको वही दूँगी।

गंगावतरण।—पृ० १२१

ये वचन सुनकर महाराज भगीरथ बोले—हे महानदी, मेरे पुरखे अपने पिता सगर के यज्ञ के घोड़े को खोजते-खोजते महात्मा कपिल के कोप की आग में भस्म हो गये हैं। इस अपमृत्यु के कारण उन्हें स्वर्ग की श्रेष्ठ गति नहीं मिली। हे वरदायिनी, आप अपने जल के स्पर्श से जब तक उनके शरीर की भस्म को नहीं पवित्र करेंगी तब तक वे स्वर्ग के अधिकारी न हो सकेंगे। हे महाभागे, मैं उन पूर्वजों के लिए यही प्रार्थना करता हूँ कि आप मेरे पुरखों को तारकर स्वर्ग की गति दीजिए। २०

सब लोक जिनकी वन्दना करते हैं उन गङ्गाजी ने महाराज भगीरथ के वचनों से परम प्रसन्न होकर कहा—महाराज, मैं अवश्य ही तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगी। किन्तु जब मैं आकाशमार्ग से पृथ्वीमण्डल पर गिरूँगी तब नीलकण्ठ महेश्वर के सिवा मेरे उस असह्य वेग को और कोई नहीं रोक सकेगा। इसलिए हे महाबाहो, तुम तप करके सदाशिव को सन्तुष्ट करो तो फिर वे गिरते समय मेरे वेग को अपने माथे पर रोक लेंगे। वे तुम्हारे पुरखों की भलाई के लिए अवश्य ही तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार करेंगे। राजन्, गङ्गाजी के ये वचन सुनकर महाराज भगीरथ कैलास पर्वत पर गये। वहाँ कुछ समय तक घोर तप करके उन्होंने शङ्कर को प्रसन्न किया। फिर पितरों के उद्धार की इच्छा से उन्होंने शङ्कर से गङ्गा के वेग को रोकने का वरदान माँगा। २७

एक सौ नौ अध्याय

राजा भगीरथ का गङ्गाजी को पृथ्वी पर लाना

लोमशजी कहते हैं—राजन्, भगवान् महादेव ने भगीरथ के वचन सुनकर देवताओं का प्रिय कार्य करने के लिए कहा कि हे नृपश्रेष्ठ, तुमने जो कहा उसे मैं अवश्य करूँगा। हे महाबाहो, भगवान शूलपाणि महाराज भगीरथ से यों कहकर अनेक अस्त्र-शस्त्र-धारी गणों के साथ हिमाचल पर गये। वहाँ जाकर उन्होंने राजा भगीरथ से कहा—महाराज, हिमाचलनन्दिनी गङ्गादेवी से पृथ्वी पर आने की प्रार्थना करो। मैं स्वर्ग से गिरती हुई गङ्गा के वेग को रोकूँगा। शिव के ये वचन सुनकर पवित्र और नम्र होकर महाराज भगीरथ गङ्गाजी का ध्यान करने लगे। तब पवित्र जलवाली गङ्गाजी भगीरथ के ध्यान करने पर, सदाशिव को उपस्थित देखकर, एकाएक स्वर्ग से पृथ्वी पर गिरने लगीं। देवता, महर्षि, गन्धर्व, नाग और यक्षगण आकाश से गिरती हुई गङ्गाजी को देखने के लिए जाने लगे। मच्छ, ग्राह आदि जलजन्तुओं से पूर्ण और बड़े-बड़े भँवरों से भरी भगवती गङ्गाजी भी एकाएक वेग के साथ आकाश से गिर रही थीं। इस प्रकार आकाशमण्डल की मेखलारूपिणी गङ्गाजी के गिरने पर महादेव ने मोतियों की माला के समान उनको माथे पर धारण कर लिया। गङ्गाजी गिरकर तीन धाराओं से बहीं। उज्ज्वलफेनयुक्त गङ्गाजी का निर्मल जल हंसों की क़तार के समान जान पड़ता था। कहीं पर गङ्गाजी की धारा नागिन की १०

सी टेढ़ी चाल से जा रही थी; कहीं पर ऊपर से नीचे गिर रही थी और कहीं पर मनोहर शब्द करती हुई मतवाली सुन्दरी के समान जा रही थी।

अनेक प्रकार के आकारों से आकाश से पृथ्वी पर आकर गङ्गाजी ने भगीरथ से कहा—राजन्, मैं तुम्हारा काम करने के लिए पृथ्वी पर आई हूँ। मैं किस राह से किधर चलूँ, सो मुझे दिखा दो। तब गङ्गाजी के पवित्र जल से अपने पुरखों को तारने की इच्छा से महाराज भगीरथ उसी ओर चले जिधर कपिल के कोप से जले हुए सगर-पुत्र पड़े थे। इधर लोकवन्दित भगवान् शङ्कर गङ्गाजी का वेग रोकने के उपरान्त देवताओं के साथ कैलास पर्वत को चले गये। राजा भगीरथ गङ्गाजी के साथ, सूखे हुए सागर के भीतर, गये। समुद्र गङ्गाजल से भर गया। राजा का मनोरथ पूरा हो गया। राजा ने गङ्गाजी को अपनी लड़की मान लिया। उन्होंने भागीरथी में पितरों का तर्पण किया। महाराज, सागर को भरने के लिए त्रिपथगा गङ्गाजी जिस तरह पृथ्वी-मण्डल पर आईं और जिस कारण महात्मा अगस्त्य ने समुद्र को पी लिया और ब्राह्मणों की हत्या करनेवाले वातापि दानव को मारा, सो सब मैंने आपको सुना दिया। २१

एक सौ दस अध्याय

ऋष्यशृंग के उपाख्यान का आरम्भ

वैशम्पायन कहते हैं—हे भरतश्रेष्ठ, यहाँ से चलकर महाराज युधिष्ठिर को क्रमशः नन्दा और अपरनन्दा नाम की पाप और डर को हटानेवाली नदियाँ मिलीं। वहाँ से दिव्य स्थान हेमकूट पर्वत पर जाकर वे अनेक अचिन्तनीय अद्भुत दृश्य देखने लगे। उस स्थान का वायु-मण्डल मेघों को सदा घेरे रहता है। दुबले प्राणी उस पहाड़ पर चढ़ नहीं सकते। वहाँ पर पत्थरों का फ़र्श सा बना हुआ है। सदा पानी बरसता रहता है। लगातार वेदपाठ का शब्द कानों में गूँजता रहता है। शीतल वायु सदा चला करता है। वेदपाठ का शब्द सुन पड़ते रहने पर भी कोई कहीं नहीं देख पड़ता। नित्य सबेरे और शाम को वहाँ पर भगवान् अग्नि के दर्शन होते हैं। वहाँ पर जानेवालों को पहले तप में विघ्न करनेवाली मक्खियाँ काट-काट खाती हैं। लोग उनके दुःख से खीझ उठते हैं और उन्हें अपने घरवालों की याद आ जाती है। पाण्डु के पुत्र महाराज युधिष्ठिर ने उस स्थान पर इन अद्भुत बातों को देखकर महात्मा लोमशजी से उनका कारण पूछा। लोमशजी ने कहा—हे शत्रुदमन, मैंने पहले इसके सम्बन्ध में जो कुछ सुन रक्खा है सो कहता हूँ, चित्त को एकाग्र करके सुनो। महाराज, इस पहाड़ पर हज़ारों वर्ष की परमायुवाले एक महायोगी तपस्वी थे। वे बड़े क्रोधी थे। एक समय कुछ आदमी उनके पास पहुँचकर उनसे बातचीत करने लगे। तब उन योगी ने कुपित होकर पर्वत से कहा—"कोई आदमी अगर यहाँ आकर बातचीत करे तो तुम उस पर पत्थर बरसाया करो।" फिर वायु को

बुलाकर कहा—"तुम यहाँ किसी प्रकार का शब्द मत किया करो।" हे धर्मराज, तब से यहाँ पर अगर कोई बोलता है तो मेघों का गरजना उसे मना करता है। इसी प्रकार उन महर्षि ने १० कुपित होकर यहाँ किसी-किसी काम की मनाही कर दी और कोई-कोई काम करने की स्वाधीनता दे दी है। महाराज, मैंने यह भी सुना है कि पहले एक समय देवता नन्दा नदी में नहाने आये थे। कुछ लोग देवदर्शन की इच्छा से उनके पास गये। तब इन्द्र आदि देवताओं ने उन्हें देखने की इच्छा न करके इस स्थान को पर्वत से घेरकर अत्यन्त दुर्गम बना दिया। तब से इस पर्वत पर चढ़ना तो दूर रहा, कोई इसे देख भी नहीं सकता। राजन्, तपस्या किये बिना न कोई इसे देख सकता है और न इस पर चढ़ सकता है। अब आप मौन हो जाइए।

हे युधिष्ठिर, उस समय देवताओं ने जो प्रधान-प्रधान यज्ञ किये हैं उनके चिह्न अभी तक यहाँ बने हुए हैं। देखिए, यहाँ की दूब आदि घास का आकार कुशों के समान देख पड़ता है। यह स्थान यज्ञ की वेदी के समान जान पड़ता है। इस स्थान के वृक्षों का आकार यज्ञ के यूपों के समान है। देवता और ऋषि अभी तक यहाँ रहते हैं। प्रातःकाल और सन्ध्या को उन्हीं के अग्निहोत्र का अग्नि यहाँ पर देख पड़ता है। यहाँ पर नहाने से सब पाप छूट जाते हैं। हे कुरुश्रेष्ठ, आप भाइयों के साथ, यहाँ पर बहती हुई, नन्दा नदी में स्नान कीजिए। फिर कौशिकी नदी को जाइएगा। वहाँ विश्वामित्रजी ने स्नान करके घोर तप किया है। तब राजा २० युधिष्ठिर भाइयों के साथ नन्दा में नहाकर पवित्र कौशिकी नदी को गये।

लोमशजी ने कहा—हे युधिष्ठिर, यही पवित्र जलवाली देवनदी कौशिकी है। इससे थोड़ी ही दूर पर महर्षि विश्वामित्र का आश्रम देख पड़ता है। वहीं पर महात्मा काश्यप का पुण्याश्रम है। जितेन्द्रिय, तपोनिष्ठ महर्षि ऋष्यशृङ्ग उनके पुत्र थे। महात्मा ऋष्यशृङ्ग की तपस्या का ऐसा प्रभाव था कि अनावृष्टि के समय इन्द्र ने उनसे डरकर पानी बरसाया था। वे महातेजस्वी ऋष्यशृङ्ग काश्यप मुनि के वीर्य और मृगी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। ऋष्यशृङ्ग ने लोमपाद राजा के राज्य में अत्यन्त अद्भुत काम किये थे। उनके प्रभाव से राज्य में अन्न उत्पन्न हुआ। सूर्य ने जिस तरह सावित्री का दान किया था उसी तरह लोमपाद ने ऋष्यशृङ्ग को शान्ता नाम की अपनी बेटी ब्याह दी।

युधिष्ठिर ने कहा—ब्रह्मन्, काश्यप के पुत्र महर्षि ऋष्यशृङ्ग मृगी के गर्भ से किस तरह उत्पन्न हुए? प्रकृति-विरुद्ध योनि से जन्म लेकर भी वे तपस्या के अधिकारी कैसे हुए? वृत्रासुर के मारनेवाले इन्द्र ने कैसे बुद्धिमान् बालक ऋष्यशृङ्ग से डरकर पानी बरसा दिया? व्रतधारिणी होकर मृग के आकारवाले ऋष्यशृङ्ग के मन को हरनेवाली शान्ता का रूप कैसा था? धार्मिक-श्रेष्ठ लोमपाद के राज्य में इन्द्र ने पानी बरसाना क्यों बन्द कर दिया था? यह सब वृत्तान्त ३० सुनने की मेरी बड़ी इच्छा है। आप कृपा करके वर्णन कीजिए।

लोमशजी ने कहा—प्रजापति ब्रह्मा के समान तेजस्वी, बड़े सामर्थ्यवान्, निर्मलचित्तवाले ब्रह्मर्षि विभाण्डक के पुत्र प्रतापी ऋष्यशृङ्ग का जन्म जिस तरह हुआ सो मैं कहता हूँ, सुनो। महातेजस्वी देवतुल्य कश्यप के पुत्र विभाण्डक ऋषि बचपन में महाकुण्ड के भीतर रहकर कठोर तपस्या करने लगे। इस प्रकार बहुत समय बीतने पर एक समय उन्हें उर्वशी देख पड़ी। उर्वशी को देखते ही उनका वीर्य गिर पड़ा। उसी समय उन्होंने जल में ग़ोता लगा लिया। उस समय वहीं पर एक प्यासी मृगी जल पीने को आई थी। पानी के साथ उस वीर्य को भी वह मृगी पी गई। इससे उसके गर्भ रह गया। वह मृगी पहले देवकन्या थी। भगवान् ब्रह्मा ने किसी कारण शाप देकर उससे कहा कि तुम मृगी होकर एक महात्मा ऋषि को उत्पन्न करने के बाद मृगी की योनि से छूट जाओगी। ब्रह्मा का कहा झूठ नहीं हो सकता और होनहार होने को थी। इसी कारण महात्मा विभाण्डक के पुत्र ऋष्यशृङ्ग मृगी के गर्भ से उत्पन्न हुए। उनके मस्तक पर एक सींग था, इसी कारण वे ऋष्यशृङ्ग कहलाये। महातपस्वी ऋष्यशृङ्ग तपस्या करते हुए वन में ही रहते थे। पिता के सिवा और किसी मनुष्य को कभी उन्होंने देखा नहीं, ४० इसी कारण वे जन्म से ही ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे थे।

उसी समय महाराज दशरथ के सखा लोमपाद नामक राजा अङ्ग देश के नरेश थे। उन्होंने जान-बूझकर ब्राह्मण से झूठ कहा और पुरोहित पर अत्याचार किया। इस कारण ब्राह्मणों ने उनको त्याग दिया। इसी से उनके राज्य में पानी बरसाना बन्द करके इन्द्र प्रजा को पीड़ा पहुँचाने लगे। राजन्, जिस उपाय से इन्द्र जल बरसावें उस उपाय के करने में समर्थ ब्राह्मणों बुलाकर लोमपाद ने कहा—ऐसा उपाय सोचिए जिससे इन्द्र जल बरसावें।

राजा की बात सुनकर सब पण्डित अपना-अपना मत प्रकट करने लगे। उनमें से एक प्रधान मुनि ने कहा—हे राजेन्द्र, आप पर ब्राह्मण लोग कुपित हैं। इस कारण पहले ब्राह्मणों के कोप से छुटकारा पाने का यत्न कीजिए। सरल स्वभाववाले, स्त्री जाति से अपरिचित, सदा वन में रहनेवाले, महातपस्वी ऋष्यशृङ्ग यदि आपके राज्य में आवें तो निस्सन्देह तत्काल इन्द्रदेव जल बरसावेंगे। राजन्, पण्डितों के ये वचन सुनकर राजा लोमपाद अपने अपराध को क्षमा कराने के लिए ब्राह्मणों के पास गये। उन्होंने ब्राह्मणों को प्रसन्न कर लिया। फिर वहाँ से वे अपनी ५० नगरी को लौट आये। उनके लौट आने की ख़बर पाकर सब प्रजा अत्यन्त आनन्दित हुई। अब अपने घर में पहुँचकर राजा ने पुराने सलाहकार मन्त्रियों को एकान्त में बुलाया। वे उनसे महर्षि ऋष्यशृङ्ग को लाने के बारे में सलाह करने लगे। सब विषयों को जाननेवाले, नीति-निपुण, शास्त्रज्ञ मन्त्रियों के साथ उपाय निश्चित करके राजा ने चालाक वेश्याओं को बुलवाया और उनसे कहा—हे वेश्याओ, तुम किसी उपाय से अपने ऊपर विश्वास दिलाकर ऋष्यशृङ्ग ऋषि को मेरे राज्य में ले आओ।

वेश्याओं ने सोचा, राजा की आज्ञा न मानेंगी तो राजदण्ड भोगना पड़ेगा और जो मानेंगी तो ऋषि के शाप का डर है। यों सोचकर वे बहुत ही उदास और अचेत सी हो गईं। [फिर उन्होंने राजा से जाकर यह निवेदन किया कि यह काम उनसे न हो सकेगा।] उनमें से एक अधेड़ वेश्या ने राजा से कहा—महाराज, मैं जो-जो सामान माँगूँ वह यदि आप मुझे दिला दें तो मैं ऋषिकुमार ऋष्यशृङ्ग को यहाँ ले आ सकती हूँ। राजा ने उसकी चाही हुई सब चीज़ें उसे देने की आज्ञा की। उसे धन और बहुत से रत्न भी दिये गये। तब वह अधेड़ वेश्या उसी समय कुछ रूपवती नौजवान स्त्रियों को साथ लेकर वन को गई। ५८

एक सौ ग्यारह अध्याय

वेश्या और ऋषिकुमार ऋष्यशृङ्ग की बातचीत

लोमशजी कहते हैं—राजन्, उस वेश्या ने राजा की आज्ञा से उन्हीं के काम के लिए, अपनी बुद्धि के बल से, नाव के ऊपर एक छोटा सा आश्रम बनाया। वेश्या ने उस नाव पर बने अद्भुत आश्रम के आस-पास तरह-तरह के फूलों और फलों के नक़ली पेड़ और लताएँ लगा दीं जिससे वह सुहावना लगे। विभाण्डक ऋषि के आश्रम से थोड़ी ही दूर पर उसने वह नाव जाकर बाँध दी। अब वह अपने आदमियों के द्वारा यह पता लगाने लगी कि विभाण्डक ऋषि किस समय आश्रम से बाहर जाते हैं। जो कुछ करना था सो तो वह सोच ही चुकी थी। जिस समय विभाण्डक ऋषि आश्रम से बाहर गये उसी समय उसने बहुत ही होशियार अपनी लड़की को ऋष्यशृङ्ग ऋषि के पास भेजा।

अत्यन्त चतुर वह वेश्या की बेटी आश्रम में गई। उसने ऋषिकुमार के पास जाकर पूछा—मुनिवर, तपस्वी लोग अच्छी तरह तो हैं? फल-मूल तो अधिकता के साथ तपोवन में पाये जाते हैं? इस आश्रम में आप मज़े में हैं न? तपस्वियों के तप की वृद्धि तो हो रही है? आपके पिता का तेज वैसा ही बना हुआ है न? आप वेदपाठ करते हुए परम प्रसन्न रहते हैं न? मैं इस समय आपके दर्शन पाने की इच्छा से यहाँ आया हूँ।

ऋष्यशृङ्ग ने कहा—महाशय, आप अग्नि के समान प्रकाशित हो रहे हैं। मैं आपको वन्दनीय समझता हूँ। अतएव अपने धर्म के अनुसार मैं आपको पाद्य, अर्घ्य और फल-मूल देता हूँ। आप इस कुशासन पर बिछी हुई मृगछाला पर बिराजिए। ब्रह्मन्, आपका आश्रम कहाँ है? आप देवता के समान जो व्रत धारण किये हुए हैं उसका नाम क्या है? १०

वेश्या की बेटी ने कहा—ब्रह्मन्, इस तीन योजन चौड़े पहाड़ के उस ओर मेरा सुन्दर आश्रम है। प्रणाम लेना या पाद्य-अर्घ्य स्वीकार करना मेरा धर्म नहीं है। मैं आपका वन्दनीय भी नहीं हूँ; आप ही मेरे वन्दनीय हैं। मैं आप ऐसे पुरुषों को गले लगाता हूँ, यही

मेरा व्रत है। ऋष्यशृङ्ग ने कहा—आमलक, करूपक, इंगुदी, बहेड़े आदि पके हुए ये रक्खे हैं, इन्हें अपनी रुचि के अनुसार खाइए।

लोमशजी कहते हैं—उस वेश्या ने ऋषि के दिये फल-मूल आदि न खाकर अपने पास से उनको अनेक स्वादिष्ठ भोजन की चीज़ें दीं। ऋषिकुमार उन रसीली चीज़ों को खाकर प्रसन्न हुए। वेश्या ने उनको स्वादिष्ठ भोजन, सुगन्धित माला, शरबत आदि उत्तम पीने की चीज़ें और विचित्र उज्ज्वल कपड़े दिये। फिर वह हँसी-दिल्लगी करते-करते गेंद लेकर, फल के बोझों से झुकी हुई लता की तरह, हाव-भाव प्रकट करती हुई आश्रम के पास क्रीड़ा करने लगी। कभी वह देह से देह छुआती थी और कभी उनको कसकर छाती से लगा लेती थी। कभी सर्ज, अशोक आदि फूले हुए वृक्षों की डालियाँ झुकाकर, तोड़कर, मस्ती के साथ लज्जा का भाव दिखाती हुई ऋषि-कुमार का मन हरने लगी। ऋष्यशृङ्ग के चित्त में काम का विकार उत्पन्न हुआ देखकर वह बार-बार उन्हें गले लगाकर और कटाक्ष के पैने बाण मारकर अग्निहोत्र करने के बहाने वहाँ से चल दी।

वहाँ से वेश्या के चले जाने पर ऋष्यशृङ्ग कामदेव से पीड़ित और अचेत से हो गये। लम्बी-लम्बी साँसें लेते हुए वे बारम्बार उसी का ध्यान करने लगे। इसी समय सिंह के समान पिङ्गल रङ्ग की दृष्टिवाले, ध्यानपरायण विभाण्डक ऋषि आश्रम में आ गये। उनकी देह में रोम
२० ही रोम थे। पुत्र के पास पहुँचकर उन्होंने देखा, उसके चित्त की गति बिलकुल विपरीत देख पड़ रही है। वह बहुत ही दीन भाव से बैठा हुआ बारम्बार लम्बी साँसें लेता और ऊपर को देखता है। उसकी यह दशा देखकर मुनिवर ने पूछा—बेटा, आज क्या कारण है कि तुम अब तक [कुश और] लकड़ियाँ नहीं लाये? अग्निहोत्र अभी तक क्यों नहीं किया? स्रुक्, स्रुव आदि हवन के पात्रों को अभी तक क्यों नहीं धोया? होम की गाय को अभी तक क्यों नहीं दुहा? पहले तुम्हारी जैसी सूरत थी वैसी इस समय नहीं देख पड़ती। तुम क्यों चिन्ता से पीड़ित, अचेत और
२३ अत्यन्त दीन देख पड़ रहे हो? इसी से पूछता हूँ कि आज क्या कोई यहाँ आया था?

एक सौ बारह अध्याय

ऋष्यशृङ्ग और विभाण्डक ऋषि की बातचीत

ऋष्यशृङ्ग ने कहा—पिताजी, यहाँ आज देवकुमार के तुल्य शोभावाले, सुनहरे रङ्ग के, कमल-नयन एक मँझोले आकार के जटाधारी ब्रह्मचारी आये थे। वे सूर्य के समान तेजस्वी और बहुत ही गोरे थे। उनकी लम्बी-लम्बी काली जटाएँ सुनहरी डोरियों से बँधी हुई थीं। उनके नेत्र बड़े मनोहर और काले थे। उनका कण्ठ आकाश में बिजली के समान चमक रहा था। उनके कण्ठ के नीचे रोमरहित अत्यन्त मनोहर दो मांसपिण्ड थे। उनकी नाभि गहरी, कमर पतली और मेरी इस मूँज की मेखला के समान सोने की मेखला उनके कपड़े के भीतर से

फूले हुए वृक्षों की डालियाँ झुका कर...मस्ती के साथ...ऋषिकुमार का मन हरने लगी। पृ० ९३०

चमक रही थी। उनके चरणों में दर्शनीय, मनोहर शब्द से युक्त और एक चीज़ चमक रही थी। उनके हाथों में मेरी इस अक्षमाला (सुमिरनी) के समान उज्ज्वल कोई वस्तु (कङ्कण) थी। वे जब अपने शरीर को हिलाते-डुलाते थे तब उनके शरीर पर की चीज़ें सरोवर में स्थित मदमत्त हंस के समान शब्द करने लगती थीं। उनके चीर जैसे विचित्र और मनोहर थे, वैसे मेरे नहीं हैं। बातें करते समय उनका मनोहर मुख हृदय को बहुत ही प्रसन्न करता था। उनकी वह कोयल के समान वाणी अब तक मेरे कानों में गूँज रही है। उसे स्मरण करके इस समय मेरे मन को चैन नहीं है। वैशाख के महीने में हवा के चलने से वन जैसा भला लगता है वैसे ही उन ब्रह्मचारी को पवन लगने से पवित्र सुगन्ध फैल रही थी। उनके माथे पर जटाओं के बीच से दो हिस्से किये हुए थे और कानों में चकवा पक्षी के समान दो अद्भुत पदार्थ देख पड़ते थे। वे दाहने हाथ में एक गोल-गोल फल लिये हुए थे। उस फल को जब वे पृथ्वी पर पटकते थे तब अद्भुत ढंग से वह ऊपर को उछलता था। ब्रह्मचारीजी उस फल को पृथ्वी पर पटकते और उछालते हुए हवा के झोंके से हिल रहे वृक्ष के समान देख पड़ते थे। पिताजी, वे देवपुत्र के सदृश हैं। उन्हें जब से देखा है तब से उन पर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई है। उन्होंने मुझे हृदय से लगाकर, जटा पकड़कर, मुँह झुकाकर, मेरे मुँह पर मुँह रखकर जो एक प्रकार का अनिर्वचनीय शब्द किया था उससे मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ था। मैंने उन्हें पाद्य, अर्घ्य और कन्द-मूल-फल दिये किन्तु उन्होंने वह कुछ न लेकर कहा कि मेरा ऐसा ही व्रत है। फिर उन्होंने भी मुझे कुछ फल दिये। मैंने उनके दिये वे फल खाये। उन फलों का रस, गूदा और छिलका जैसा था वैसा रस, गूदा और छिलका हमारे यहाँ के फलों का नहीं होता। उन उदार चित्तवाले ब्रह्मचारी ने पीने के लिए मुझे जो बढ़िया रसीला जल दिया था उसे पीकर मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ और पृथ्वी घूमने सी लगी। वे तपस्वी ब्रह्मचारी रेशमी डोरों में गुही हुई सुगन्धित विचित्र मालाएँ यहाँ डालकर अपने आश्रम को चले गये हैं। यहाँ से उनके चले जाने का विचार करके मैं बेचैन हो रहा हूँ और शरीर में जलन सी हो रही है। उनके पास जाने की मुझे बड़ी इच्छा है और या फिर वही यहाँ पर रहें। पिताजी, मैं उनके पास जाऊँगा। उनका यह ब्रह्मचर्य किस प्रकार का है? उनके साथ घूमने-फिरने को और वे जो तपस्या कर रहे हैं वही तपस्या करने को मेरा जी बहुत चाहता है। मैं यदि उनके दर्शन न पाऊँगा तो मेरे हृदय को बड़ी चोट लगेगी। १९

एक सौ तेरह अध्याय

ऋष्यशृङ्ग का लोमपाद राजा के राज्य में जाना

विभाण्डक ने कहा—बेटा, बड़े पराक्रमी राक्षस लोग अद्भुत सौन्दर्य दिखाकर तप में विघ्न करने को घूमा करते हैं। पुत्र, वे पहले सुन्दर रूप रखकर अनेक उपायों से वनवासी

मुनियों को लुभाते हैं और फिर भयङ्कर रूप रखकर उन्हें सुख और पुण्यलोकों से भ्रष्ट कर देते हैं। जितेन्द्रिय बुद्धिमान् मुनि अपने भले के लिए किसी प्रकार उनका साथ नहीं करते। वे पापी राक्षस लगातार तपस्वियों के तप में विघ्न डालने में ही सुख मानते हैं। तपस्वी लोग उनका मुँह भी नहीं देखते। असाधु पुरुष ही मुनियों के न पीने योग्य उन मधुओं (सुरा) को पीते हैं, जिनका वर्णन तुमने किया। इन विचित्र सुगन्धित मालाओं को ऋषि-मुनि नहीं पहनते। मतलब यह कि वह कोई दुष्ट राक्षस था। इस तरह पुत्र को समझाकर विभाण्डक ऋषि उस वेश्या को खोजने के लिए गये। वे तीन दिन तक खोजते रहे, पर उसका कहीं पता न लगा, तब फिर अपने आश्रम को लौट आये।

फिर जब विभाण्डक ऋषि नित्य-कर्म के लिए फल आदि लेने को गये तब वही वेश्या की बेटी ऋष्यशृङ्ग को लुभाने के लिए उनके पास आ गई। उसे देखते ही ऋष्यशृङ्ग आदर के भाव से उठ खड़े हुए। उसके पास जाकर उन्होंने कहा—चलिए, आश्रम में पिताजी के आने से पहले ही हम लोग आपके आश्रम को चलें।

महाराज, तब उन वेश्याओं ने इस कौशल से महर्षि विभाण्डक के एकलौते बेटे ऋष्यशृङ्ग को नाव पर चढ़ा लिया और नाव खोल दी। अनेक प्रकार से मुनिपुत्र को प्रसन्न करती हुई वे वेश्याएँ अङ्गराज लोमपाद के पास पहुँचीं। जल पर चलती हुई उस नाव को किनारे बाँधकर, आश्रम दिखाने का बहाना करके, ऋष्यशृङ्ग को वेश्याएँ राजा के पास ले गईं। महाराज लोमपाद ज्योंही मुनिपुत्र को अपने रनिवास के भीतर ले गये त्योंही इन्द्र ने ऐसा पानी बरसाया कि पल भर में पृथ्वी पर जल ही जल हो गया। इस प्रकार मनोरथ पूरा होने पर लोमपाद ने अपनी शान्ता नाम की बेटी का ब्याह उनके साथ कर दिया। फिर विभाण्डक ऋषि का क्रोध शान्त करने के लिए उन्होंने यह उपाय किया कि उनके आने की राह में खेती के सब सामान रखवा दिये; बैल आदि पशुओं और पशुपालक वीर पुरुषों को ठहरा दिया। उन पुरुषों से राजा ने कह दिया

कि विभाण्डक ऋषि पुत्र को खोजते हुए इधर आकर जो तुमसे पूछें तो तुम हाथ जोड़कर उनसे कहना—हे ऋषिश्रेष्ठ, ये सब पशु और खेती का सामान आपके पुत्र का ही है। हम सब आपकी आज्ञा के अधीन दास हैं। आज्ञा दीजिए, हम आपका कौनसा काम करें।

उधर अत्यन्त क्रोधी विभाण्डक ऋषि वन से फल-मूल लेकर आश्रम में आये। वहाँ जब उन्होंने पुत्र को नहीं देखा तब वे बहुत ही क्रोधित हुए। क्रोध के मारे उन्होंने सोचा कि यह काम अवश्य ही राजा का है। तब वे नगर और राष्ट्रसहित राजा को भस्म करने के लिए चम्पा नगरी की ओर चले।

कश्यप के पुत्र विभाण्डक जब भूखे और प्यासे होकर उन मालदार पशुपालकों के पास पहुँचे तब वे उनका सत्कार करने लगे। सुखपूर्वक भोजन करके विभाण्डक ऋषि ने राजा के समान आराम से रात बिताई। सत्कार करनेवालों से मुनि ने पूछा—ग्वाला लोगो, तुम किसके राज्य में रहते हो? उन्होंने कहा—मुनिवर, यह सब धन आपके पुत्र महात्मा ऋष्यशृङ्ग का है।
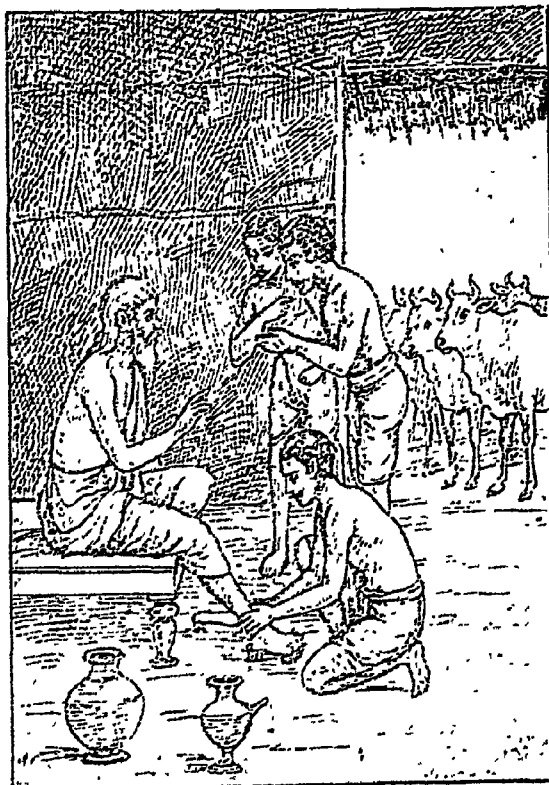
हर एक देश में इस तरह सत्कार होने से और ऐसे ही नम्र मधुर वचन सुनने से मुनि का क्रोध ठण्डा हो गया। तब वे शान्त चित्त से महाराज लोमपाद के पास पहुँचे। राजा ने अच्छी तरह आदर-सत्कार के साथ उनकी पूजा की। मुनि ने अपने बेटे को स्वर्ग में स्थित इन्द्र के समान और अपनी बहू शान्ता को इन्द्राणी (या बिजली) के समान देखा। महाराज! गाँव, नगर, व्रज और राजकुमारी शान्ता को पुत्र ने प्राप्त

किया है, यह देखकर मुनि का सारा क्रोध एकदम शान्त हो गया। वे राजा पर बहुत प्रसन्न
२० हुए। सूर्य और अग्नि के समान प्रभावशाली महर्षि विभाण्डक ने पुत्र को वहीं छोड़कर कहा—
इस समय तुम महाराज के पास रहकर इनका प्रिय करो। फिर जब तुम्हारे पुत्र उत्पन्न हो लें,
तब वन को चले आना।

पुत्र उत्पन्न होने पर ऋष्यशृङ्गजी वन को चले गये। राजन्, जैसे रोहिणी चन्द्रमा के,
अरुन्धती वशिष्ठ के, लोपामुद्रा अगस्त्य के, दमयन्ती नल के, इन्द्राणी इन्द्र के और नारायणी
इन्द्रसेना मुद्गल ऋषि के अधीन रहकर सदा उनकी सेवा करती हैं वैसे ही राजकुमारी शान्ता
महर्षि ऋष्यशृङ्ग की अनुगामिनी होकर उनकी सेवा करने लगीं। उन्हीं पवित्र कीर्त्तिवाले महर्षि
का यह पवित्र आश्रम इस महाकुण्ड की महिमा बढ़ा रहा है। आप इस कुण्ड में स्नान करके
२५ कृतकृत्य और पवित्र हूजिए। फिर अन्य तीर्थों को जाइएगा।

एक सौ चौदह अध्याय

पाण्डवों का अन्य अनेक तीर्थों की यात्रा करना

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, अब महाराज युधिष्ठिर कौशिकी नदी से लेकर उस
तपोवन के और सब तीर्थों में घूमे-फिरे। वहाँ से विचरते हुए वे गङ्गा-सागर-सङ्गम में पहुँचे।
वहाँ पर उन्होंने पाँच सौ नदियों में स्नान किया। हे जनमेजय, फिर महाराज युधिष्ठिर भाइयों
के साथ समुद्र के किनारे होकर कलिङ्ग देश में पहुँचे।

लोमशजी ने युधिष्ठिर से कहा—राजन्, इस स्थान का नाम कलिङ्ग है। यहाँ वैतरणी
नदी है। इसी स्थान पर देवताओं के शरणागत होकर धर्म ने यज्ञ किया था। वह ब्राह्मण-
सेवित पर्वतशोभित, ऋषियों के रहने का यज्ञ-स्थान वैतरणी नदी के उत्तर तरफ़ है। पूर्वकाल
में ऋषि और अन्यान्य महानुभाव पुरुष उस स्थान पर यज्ञ करते थे। वह स्थान देवलोक के जाने
का सुगम मार्ग है। हे राजेन्द्र, उसी स्थान पर रुद्रदेव ने यज्ञ में बलिपशु को स्वीकार करते
हुए कहा था "यह मेरा अंश है"। हे भरतश्रेष्ठ, भगवान् रुद्रदेव जब पशु को हर ले गये तब
देवताओं ने उनसे कहा—भगवन्, आप पराई वस्तु को लेने और यज्ञ के भाग को प्राप्त करने की
इच्छा मत कीजिए। इस प्रकार देवताओं ने जब रुद्रदेव की स्तुति की और इष्टि के द्वारा उन्हें
सन्तुष्ट किया तब, सम्मानित होकर, पशु को छोड़कर वे देव-यान पर सवार हो अपने स्थान को
१० चले गये। हे युधिष्ठिर, इस सम्बन्ध में यह गाथा प्रसिद्ध है कि "देवताओं ने रुद्र से डरकर
उन्हें सब भागों से श्रेष्ठ एक तत्काल-कल्पित भाग सदा देने का सङ्कल्प कर लिया"। जो मनुष्य
उक्त स्थान पर इस गाथा को पढ़कर स्नान करता है उसे स्वर्ग का मार्ग देख पड़ता है।

वैशम्पायन कहते हैं कि फिर पाण्डव लोग द्रौपदी के साथ वैतरणी नदी में उतरे। वहाँ स्नान करके उन्होंने पितरों का तर्पण किया। तब युधिष्ठिर ने कहा—हे ऋषिश्रेष्ठ, मैं तपोबल से इस वैतरणी नदी में विधिपूर्वक स्नान करके मनुष्य भाव से मुक्त हो गया। मैं आपकी कृपा से सब पवित्र लोकों को प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। जप-निरत महात्मा वैखानस ऋषियों के जप का शब्द भी मुझे सुन पड़ रहा है।

लोमशजी ने कहा—हे युधिष्ठिर, आप मौनव्रत धारण कीजिए। जिस स्थान का यह शब्द आप सुन रहे हैं वह यहाँ से तीन लाख योजन पर है। यह जो दिव्य वन दिखाई दे रहा है सो स्वयंभू ब्रह्मा का है। इस स्थान पर विश्वकर्मा ब्रह्मा ने यज्ञ किया था। उन्होंने उस यज्ञ की दक्षिणा में महात्मा कश्यप को पर्वतों और वनों-सहित सारी पृथ्वी दे दी थी। इस पर उदास होकर पृथ्वी ने लोकनाथ ब्रह्मा से कहा—भगवन्, मुझे किसी मनुष्य को देना ठीक नहीं। उससे आपका दान निष्फल होगा; क्योंकि अब मैं रसातल को चली जाऊँगी। २० पृथ्वी जब रसातल को चली गई तब महर्षि कश्यप उसको प्रसन्न करने के लिए तप करने लगे। हे पाण्डव, महर्षि कश्यप की तपस्या से सन्तुष्ट पृथ्वी फिर जल के ऊपर वेदी के रूप से उतराने लगी। राजन्, समुद्र के किनारे यह वही खड़े होने योग्य वेदी देख पड़ रही है। इस पर आप खड़े हो जाइए। खड़े होने से आपका पराक्रम बढ़ेगा, आपका मङ्गल होगा और आप अकेले समुद्र को तर जा सकेंगे। महाराज, मनुष्य ज्योंही इस वेदी को छूता है त्योंही यह समुद्र के भीतर चली जाती है। मैं आपको स्वस्त्ययन-पाठ बताता हूँ। उसे पढ़कर आप इस वेदी पर चढ़ सकेंगे। हे पाण्डव, आप समुद्र के पास जाकर कहिए "हे समुद्र, तुम संसार को अपने में लीन करनेवाले और संसार के अधीश्वर विष्णु हो। तुम्हें प्रणाम है। हे देवेश, तुम इस खारी जल में आओ। तुम्हीं अग्नि, तुम्हीं मित्रावरुण, तुम्हीं जगत् की योनि जल, विष्णु का वीर्य और अमृत की नाभि हो।" यों सत्य वाक्य कहकर आप इस वेदी पर चढ़िए। फिर "अग्नि तुम्हारी उत्पत्ति का स्थान है। इड़ा नाड़ी तुम्हारा शरीर है। तुम विष्णु के वीर्य को धारण करनेवाले और अमृत की खान हो", ये सत्य वाक्य कहकर समुद्र में स्नान कीजिए। हे कुरुकुल-दीपक, मेरे बताये इन मन्त्रों को पढ़े बिना कुश की नोक से भी तुम इस महासागर को मत छूना।

वैशम्पायन कहते हैं—महात्मा युधिष्ठिर लोमशजी के बताये स्वस्त्ययन को पढ़कर समुद्र के समीप गये। लोमशजी के उपदेश से सब काम करके वे महेन्द्र पर्वत पर गये और वहीं रात भर रहे। ३०

एक सौ पन्द्रह अध्याय

परशुरामजी के उपाख्यान का आरम्भ

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, धर्मराज युधिष्ठिर ने रात भर वहाँ रहकर वहाँ रहनेवाले ऋषियों का सत्कार किया। महर्षि लोमश ने भृगु, अङ्गिरा, वशिष्ठ और कश्यप के वंशधर सब ऋषियों का परिचय युधिष्ठिर को दिया। राजर्षि युधिष्ठिर ने उन लोगों के पास जाकर हाथ जोड़कर सबका सम्मान किया। फिर परशुरामजी के अनुचर महर्षि अकृतव्रण से युधिष्ठिर ने पूछा—भगवान्-परशुरामजी किस समय मुनियों को दर्शन देंगे? मैं उसी सुयोग में उनके दर्शन कर लेना चाहता हूँ। अकृतव्रण ने कहा—महाराज, त्रिकालदर्शी परशुरामजी ने यहाँ आपके आने का वृत्तान्त जान लिया है। आप पर भगवान् भार्गव की अत्यन्त प्रीति है। इसलिए वे शीघ्र ही आपको दर्शन देंगे। मुनियों को उनके दर्शन हर चतुर्दशी और अष्टमी को होते हैं। कल चौदस है। केवल आज की रात बीच में है।

युधिष्ठिर ने कहा—आप महाबली परशुराम के आज्ञाकारी भक्त हैं और उनके पहले के किये हुए सब कामों को विशेष रूप से जानते हैं। इसलिए विस्तारपूर्वक मुझे बताइए कि महात्मा परशुराम ने युद्ध में किस तरह और किस कारण क्षत्रियों को हराया है। अकृतव्रण ने कहा—हे धर्मराज, भृगुवंशी जमदग्नि के पुत्र परशुराम और हैहयाधिपति कार्त्तवीर्य अर्जुन १० का विचित्र चरित्र आपसे कहता हूँ, सुनिए। हे पाण्डव, भृगुकुल-भूषण परशुराम ने जिन कार्त्तवीर्य अर्जुन को मारा उनके हज़ार हाथ थे और दत्तात्रेयजी की कृपा से उनके पास एक सोने का विमान था। राजन्, वे अर्जुन पृथ्वी पर के सब प्राणियों पर हुकूमत करते थे। वरदान के प्रभाव से उनका रथ सब जगह जा सकता था। इस कारण वे उस रथ पर चढ़कर सब जगह जाते थे और देवता, यक्ष, ऋषि तथा सब प्राणियों को सताते थे। तब सब देवताओं और तपस्वी ऋषियों ने देवदेव विष्णु के पास जाकर कहा—भगवन्, आप जल्दी कार्त्तवीर्य अर्जुन को मारकर सब प्राणियों की रक्षा कीजिए। अर्जुन ने दिव्य विमान पर चढ़कर मौज करते हुए इन्द्र और इन्द्राणी को भी सताया है। हे धर्मराज, तब भगवान् विष्णु कार्त्तवीर्य अर्जुन के नाश के लिए इन्द्र के साथ सलाह करने लगे। इन्द्र ने कहा कि ऐसा करना चाहिए जिसमें सब प्राणियों का हित हो। भगवान् नारायण, कार्त्तवीर्य अर्जुन के नाश की सलाह मान करके, अपने आश्रम २० रमणीय बदरीवन को चले गये।

महाराज, इसी समय कान्यकुब्ज प्रदेश में बड़े पराक्रमी गाधि राजा राज्य करते थे। वे जब वन को चले गये तब वहाँ उनके अप्सरा के समान सुन्दरी एक कन्या उत्पन्न हुई। भृगुवंशी ऋचीक ऋषि ने व्याह करने के लिए उनसे वह कन्या माँगी। राजा गाधि ने ऋचीक से कहा—हमारे वंश में पूर्वपुरुष जो नियम बना गये हैं उसके विरुद्ध काम मैं नहीं कर सकता। हे द्विज-

श्रेष्ठ, हम लोग कन्या के व्याह में श्यामकर्ण और सफ़ेद रङ्ग के शीघ्रगामी हज़ार घोड़े 'पण' के रूप में वरपक्ष से लेते हैं। हे भार्गव ! आप यह पण दीजिए, यह आपसे कहना ठीक नहीं जान पड़ता। किन्तु आप ऐसे सज्जन पुरुष को कन्या न देना भी हमारा दुर्भाग्य होगा।

ऋचीक ने कहा—श्यामकर्ण सफ़ेद रङ्ग के शीघ्रगामी हज़ार घोड़े मैं आपको दूँगा। आपकी कन्या मेरी पत्नी हो। अकृतव्रण कहते हैं कि शुल्क देना स्वीकार करके ऋचीक ऋषि वरुण के पास गये। उनसे उन्होंने कहा—आप श्यामकर्ण सफ़ेद रङ्ग के शीघ्रगामी हज़ार घोड़े मुझको दीजिए। वरुण ने उसी समय वैसे ही हज़ार घोड़े उनको दे दिये। वे घोड़े जिस स्थान से ऊपर निकले थे वह स्थान अश्वतीर्थ कहलाता है। वैसे हज़ार घोड़े पाकर फिर गाधि राजा ने बराती देवताओं के सामने गङ्गा-किनारे, कान्यकुब्ज देश में, अपनी सत्यवती नाम की कन्या का व्याह ऋषि के साथ कर दिया। द्विजश्रेष्ठ ऋचीक राजकुमारी को धर्मपत्नी के रूप में पाकर उनके साथ यथेष्ट विहार करने लगे। ३०

अब व्याह किये हुए अपने पुत्र के देखने को महर्षि भृगु आये। वे स्त्री-सहित अपने बड़े पुत्र ऋचीक को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। देवताओं से पूजित भगवान् भृगु जब आराम से बैठे तब ऋचीक और उनकी स्त्री, दोनों, उनकी पूजा करके हाथ जोड़कर उनके पास बैठ गये। महर्षि भृगु ने प्रसन्न होकर अपनी बहू से कहा—सुभगे, तुम मुझसे वरदान माँगो। मैं तुमको मुँहमाँगा वरदान दूँगा। सत्यवती ने वर माँगा कि मेरे और मेरी माता के भी पुत्र उत्पन्न हो। तब भृगु ने कहा—भद्रे, तुम और तुम्हारी माता जब पुंसवन के लिए ऋतुस्नान करें तब तुम तो गूलर के वृक्ष से लिपट जाना और तुम्हारी माता पीपल के वृक्ष से लिपट जायँ। मैंने सारे संसार में घूम करके तुम्हारे और तुम्हारी माता के लिए ये दो 'चरु' तैयार किये हैं। तुम सावधानी के साथ इन चरुओं को खा लेना। चरु देकर महर्षि भृगु अन्तर्द्धान हो गये। किन्तु सत्यवती और उनकी माता के लिए भृगु ने जिस वृक्ष से लिपटना और जो चरु खाना बताया था सो न करके दोनों ने उसका उलटा किया।

बहुत दिन बीतने पर भगवान् भृगु दिव्य ज्ञान के प्रभाव से सब हाल जानकर बहू सत्यवती के पास फिर आये। उन्होंने कहा—भद्रे, मैंने चरु खाने और वृक्ष से लिपटने के सम्बन्ध में तुम दोनों को जो आज्ञा दी थी उसके विपरीत काम तुम दोनों ने किया है। इस कारण तुम्हारा पुत्र ब्राह्मण होकर भी क्षत्रिय की वृत्ति करेगा और तुम्हारी माता का बेटा क्षत्रिय होकर भी महात्मा ४० महातेजस्वी और ब्राह्मणों के आचरण करनेवाला होगा। सत्यवती ने बारम्बार प्रार्थना करके भृगु को मनाया और कहा—भगवन्, ऐसी कृपा कीजिए कि मेरा पुत्र ऐसा न होकर पौत्र ऐसा हो।

हे पाण्डव, महर्षि भृगु "यही सही" कहकर सत्यवती को सन्तुष्ट कर चले गये। सत्यवती के ठीक समय पर एक महातेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम जमदग्नि हुआ। महात्मा

जमदग्नि भृगुवंश के आनन्द को बढ़ानेवाले वेदपाठी हुए। महाराज, सूर्य के समान तेजस्वी
४५ जमदग्नि को धनुर्विद्या और सब प्रकार के शास्त्रों का अच्छी तरह ज्ञान हो गया।

एक सौ सोलह अध्याय

परशुराम का पिता की आज्ञा से अपनी माता रेणुका को मार डालना

अकृतव्रण कहते हैं—महातपस्वी जमदग्नि वेद पढ़ते हुए तपस्या करने लगे। नियमानुसार स्वाध्याय करने से सब वेद उन्हें कण्ठस्थ हो गये। इसके बाद उन्होंने प्रसेनजित् राजा के पास जाकर उनसे रेणुका नाम की उनकी कन्या माँगी। राजा ने अपनी बेटी उनको व्याह दी। रेणुका को व्याहकर जमदग्नि अपने आश्रम में ले आये। फिर वे आश्रम में रहकर तप करने लगे। रेणुका के गर्भ से उनके पाँच पुत्र हुए। उनमें परशुरामजी सबसे छोटे होने पर भी गुणों में सबसे श्रेष्ठ हुए।

एक समय पाँचों पुत्र फल लेने के लिए वन को गये। रेणुका भी नदी में नहाने गई। राजन्, रेणुका रास्ते में चली आ रही थी कि एक जगह पर उसने देखा, समृद्धिशाली मार्त्तिकावतक का राजा चित्ररथ पद्ममालाएँ पहने हुए स्त्री के साथ जलविहार कर रहा है। देखते ही राजा के ऊपर रेणुका का चित्त चलायमान हो गया। इस मानसिक व्यभिचार के कारण अचेत, दीन और डरी हुई रेणुका आश्रम में आई। महातेजस्वी जमदग्नि ऋषि उसे धैर्य से भ्रष्ट और

ब्राह्मण के तेज से हीन देखकर धिक्कार देने लगे। इसके बाद रुमण्वान्, सुषेण, वसु और विश्वावसु नाम के चारों पुत्र आये। उनमें से हर एक को अलग-अलग जमदग्नि ने आज्ञा दी कि रेणुका को मार डालो। पिता की यह आज्ञा सुनकर माता के स्नेह के कारण सब पुत्र अचेत और कर्त्तव्यविमूढ़ से होकर कुछ भी उत्तर न दे सके। तब जमदग्नि ने क्रोधित होकर १० उन्हें शाप दे दिया। शाप पाकर वे उसी घड़ी जड़प्राय हो गये। इसके बाद वीरनाशन परशुरामजी आश्रम में आये। महात्मा जमदग्नि ने उनसे कहा—पुत्र, अपनी इस पापिनी माता को

मार डालो। इसे मारने में दुखी न होना। पिता की आज्ञा सुनते ही परशुराम ने फरसा लेकर माता का सिर काट डाला। महाराज, परशुराम ने ज्योंही माता का सिर काट डाला त्योंही जमदग्नि का क्रोध शान्त हो गया। तब उन्होंने परशुराम से कहा—बेटा, तुमने मेरी आज्ञा से यह कठिन काम किया है; इससे प्रसन्न होकर मैं तुमको वरदान देने के लिए तैयार हूँ। जो चाहो सो माँग लो। परशुराम ने कहा—मैं यही वर माँगता हूँ कि मेरी माता फिर जी उठें। उन्हें यह स्मरण न रहे कि मैंने उन्हें मार डाला था। मुझे माता की हत्या का पाप भी न लगे। मेरे भाई पहले की तरह जी उठें। युद्ध में कोई मेरी बराबरी या मेरा सामना न कर सके और मेरी आयु बहुत बड़ी हो। महातपस्वी जमदग्नि ने उनको ये सब वर दे दिये।

राजन्, एक समय जमदग्नि के सब लड़के आश्रम से बाहर चले गये थे, इसी समय अनूप देश के राजा कार्त्तवीर्य अर्जुन जमदग्नि के आश्रम में आये। जमदग्नि की भार्य्या रेणुका ने उनका स्वागत किया। कार्त्तवीर्य को अपने पराक्रमी और योद्धा होने का घमण्ड था। उन्होंने रेणुका की दी हुई सत्कार-सामग्री का अनादर करके आश्रम से होम की गाय के बछड़े को खोल लिया। २० तर्जन-गर्जन करते हुए वे आश्रम के वृक्षों को तोड़-मोड़कर अपनी पुरी को चल दिये। कुछ देर बाद परशुरामजी अपने आश्रम में आये। जमदग्नि ने उनसे सब वृत्तान्त कहा। सब हाल सुनकर और आश्रम की गाय को रोते देखकर वे क्रोधित हो उठे। काल के कवल हो रहे कार्त्तवीर्य अर्जुन के पीछे परशुरामजी दौड़े। मनोहर धनुष लिये हुए परशुराम ने युद्ध में पराक्रम करके पैने फरसे से अर्जुन के हज़ारों हाथ काटकर उसे मार डाला।

अब कार्त्तवीर्य के बेटे और जातिवाले सब परशुराम के न रहने पर जमदग्नि के आश्रम पर चढ़ आये। वे युद्ध में असमर्थ तपस्वी जमदग्नि को अकेले पाकर उन पर हथियार चलाने लगे। महर्षि जमदग्नि अनाथ की तरह आर्त्तस्वर से 'राम! परशुराम!' कहकर चिल्लाने लगे। हे युधिष्ठिर, जमदग्नि को अस्त्रों से मार करके शत्रुनाशन कार्त्तवीर्य के पुत्र अपने स्थान को चले गये। परशुराम लकड़ियाँ लेकर जब आश्रम में आये तब पिता को मरा हुआ और बुरी दशा में पड़ा हुआ देख बहुत ही दुःखित होकर विलाप करने लगे। २९

एक सौ सत्रह अध्याय

परशुरामजी का क्षत्रियकुलको नष्ट करना

परशुरामजी कहने लगे—पिताजी! मूर्ख, नराधम कार्त्तवीर्य के बेटों ने मेरे किये अपराध से क्रोधित होकर, वन में बाणों के प्रहार से मृग की तरह, आपको मार डाला! आप निरपराध, सन्मार्ग पर चलनेवाले और धर्मात्मा थे। आपकी मृत्यु ऐसी न होनी चाहिए। आप तपस्वी और वृद्ध होने के कारण युद्ध करने में असमर्थ थे। इस कारण उन नीचों ने पैने बाणों से आपको मारकर घोर पाप किया है। आप बिलकुल असहाय थे। आपकी हत्या करके वे निर्लज्ज अपने मन्त्रियों और इष्टमित्रों के आगे क्या कहेंगे? महाराज, महातपस्वी परशुरामजी ने यों विलाप करके पिता का दाहकर्म किया।

राजन्, शत्रुनाशन परशुरामजी ने पिता का दाह आदि कृत्य कर चुकने पर सब क्षत्रियों का नाश करने की प्रतिज्ञा की। फिर कुपित होकर परम पराक्रमी काल की तरह वे अकेले हाथ में फरसा लिये कार्त्तवीर्य की नगरी को गये। वहाँ जाकर उन्होंने युद्ध में कार्त्तवीर्य के सब पुत्रों को मार डाला। हे क्षत्रियश्रेष्ठ, जो क्षत्रिय उनके पिछलग्गू थे, उनको भी परशुराम ने मार डाला। इस प्रकार उन्होंने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियों से ख़ाली करके समन्तपञ्चक तीर्थ में रक्त से भरे हुए पाँच कुण्ड बनाये और उनमें पितरों का तर्पण किया। तब उनके पितामह ऋचीक ने उनको दर्शन दिये। ऋचीक ने परशुराम को समझाकर क्षत्रियों की हत्या करने से रोका। फिर महाप्रतापी परशुराम ने महायज्ञ करके इन्द्रदेव को सन्तुष्ट किया और ऋत्विजों को दक्षिणा में सारी पृथ्वी दे डाली। महाराज, उन्होंने चालीस हाथ चौड़ी और छत्तीस हाथ लम्बी, ऊँची एक सोने की वेदी बनाकर कश्यपजी को दी। महर्षि कश्यप की अनुमति पाकर ब्राह्मणों ने उस वेदी के टुकड़े-टुकड़े करके उसका सोना बाँट लिया। इसी से वे ब्राह्मण खाण्डवायन कहलाये। राजन्, क्षत्रियकुल की जड़ काटनेवाले महापराक्रमी परशुराम, कश्यप को पृथ्वी देकर, इसी महेन्द्र पर्वत पर रहने लगे। उन्होंने सारी पृथ्वी को जीत लिया था, इसी कारण पृथ्वी पर के सारे क्षत्रियों के साथ उनका वैर हो गया था। (१०)

वैशम्पायन कहते हैं—फिर महात्मा परशुराम ने चौदस के दिन सब ब्राह्मणों को, धर्मराज युधिष्ठिर को और उनके भाइयों को दर्शन दिये। हे राजेन्द्र, राजर्षिश्रेष्ठ युधिष्ठिर ने अपने भाइयों के साथ महात्मा परशुराम की और अन्य तपस्वियों की पूजा की। परशुरामजी ने भी उनका आदर किया। फिर वे परशुरामजी से आज्ञा लेकर उस रात को महेन्द्र पर्वत पर रहे और सवेरे उठकर दक्षिण दिशा को चल दिये। (१८)

एक सौ अठारह अध्याय

पाण्डवों का प्रभास तीर्थ को जाना और वहाँ कृष्ण-बलदेव से भेंट होना

वैशम्पायन कहते हैं—महानुभाव युधिष्ठिरजी तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग में समुद्र के समीप-वर्त्ती, ब्राह्मणों से शोभित, परम रमणीय स्थानों का दर्शन करने लगे। भाइयों के साथ महाराज युधिष्ठिर उन सब तीर्थों में स्नान करते हुए समुद्रगामिनी प्रशस्ता नदी के पास गये। उन्होंने उसमें स्नान और देवताओं तथा पितरों का तर्पण किया और ब्राह्मणों को बहुत सा धन दिया। वहाँ से वे गोदावरी नदी को गये। राजन्, फिर गोदावरी में स्नान करके सब पापों से मुक्त होकर युधिष्ठिर द्राविड़ देश को गये। वहाँ परम पवित्र अगस्त्य तीर्थ, नारी तीर्थ आदि तीर्थों के दर्शन किये। श्रेष्ठ ऋषियों ने वहाँ उनका आदर किया। उन लोगों से श्रेष्ठ धनुर्द्धर अर्जुन के अलौकिक कार्यों का हाल सुनकर युधिष्ठिर परम प्रसन्न हुए। महाराज, द्रौपदी और भाइयों के साथ उन सब तीर्थों में स्नान करके अर्जुन की प्रशंसा सुनते हुए महाराज युधिष्ठिर वहाँ समुद्र-तट पर घूमने लगे। फिर उस सागर तीर्थ में उन्होंने कई हज़ार गोदान किये। इस प्रकार अन्य अनेक तीर्थों में जाकर पूर्ण-काम युधिष्ठिर ने सूर्पारक नाम के परम पवित्र तीर्थ के दर्शन किये। वहाँ समुद्र से कुछ दूर पर जाकर युधिष्ठिर ने वह परम प्रसिद्ध वन देखा जहाँ पहले देवताओं ने तपस्या की है और राजर्षियों ने अनेक यज्ञ किये हैं। वहाँ पर उन्होंने श्रेष्ठ योद्धा ऋचीक-पुत्र परशुरामजी की वेदी देखी। वहाँ पर अनेक तपस्वी रहते हैं और पुण्यात्मा लोग उस स्थान को परम पूजनीय समझते हैं। १०

राजन्, महाराज युधिष्ठिर ने वसुगण, मरुद्गण, अश्विनीकुमार, वैवस्वत, आदित्य, कुबेर, इन्द्र, विष्णु, विभु, सविता, शिव, चन्द्र, दिवाकर, वरुण, साध्यगण, ब्रह्मा, पितृगण, गणमण्डलीयुक्त रुद्र, सरस्वती, सिद्धगण और अन्य पवित्र देवताओं के अत्यन्त मनोहर पवित्र स्थानों के दर्शन किये। उन स्थानों में व्रत, स्नान, दान आदि पुण्यकर्म करके फिर वे सूर्पारक तीर्थ में आ गये। अब भाइयों और ब्राह्मणों के साथ वे उसी सागर तीर्थ से होकर पृथ्वी भर में प्रसिद्ध प्रभास तीर्थ को गये। द्रौपदी, लोमश ऋषि, ब्राह्मणगण और भाइयों के साथ राजा युधिष्ठिर ने वहाँ स्नान किया; देवताओं और पितरों का तर्पण किया। फिर बारह दिन तक केवल जल और वायु के सहारे रहकर, रात-दिन पानी के ही भीतर पैठकर और पञ्चाग्नि तापकर वे वहाँ तप करने लगे।

वृष्णिवंश के मुखिया यादवश्रेष्ठ कृष्ण और बलराम ने सुना कि राजा युधिष्ठिर प्रभास तीर्थ में आकर उग्र तपस्या कर रहे हैं। तब वे सैन्य-सामन्त-सहित प्रभास तीर्थ में राजा युधिष्ठिर के पास आये। वृष्णिवंशी यादवों ने पाण्डवों को मलिनशरीर और पृथ्वी पर सोते देखा। द्रौपदी को भी वैसी ही अयोग्य दशा में उन्होंने देखा। तब वे दुःखित होकर आर्त्त-

नाद करने लगे। फिर पुरुषार्थी महाराज युधिष्ठिर ने बलराम, श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण के पुत्र साम्ब, २० शिनि के पुत्र सात्यकि और अन्यान्य वृष्णिवंशी यादवों के पास जाकर उनकी पूजा की। यादवों ने भी पाण्डवों का पूजन और सत्कार किया। इसके बाद, देवता जैसे इन्द्र को घेरकर बैठते हैं वैसे ही, वे लोग महाराज युधिष्ठिर को चारों ओर से घेरकर बैठ गये। प्रसन्नचित्त होकर राजा युधिष्ठिर उनके आगे शत्रुओं के चरित्र, अपने वनवास और अस्त्र-प्राप्ति के लिए अर्जुन के इन्द्रलोक जाने का वृत्तान्त कहने लगे। महानुभाव यादवगण युधिष्ठिर के मुँह से सब हाल सुनकर और २३ पाण्डवों को अत्यन्त दुर्बल देखकर दुःख प्रकट करते हुए आँसू बहाने लगे।

एक सौ उन्नीस अध्याय

बलदेवजी की बातचीत

जनमेजय ने पूछा—हे तपोधन, सब शास्त्रों के ज्ञाता और परस्पर मित्रता रखनेवाले महात्मा पाण्डवों और यादवों ने प्रभास तीर्थ में जाकर क्या क्या काम किये? और वहाँ परस्पर उनकी क्या बातचीत हुई? वैशम्पायन ने कहा—महाराज, यादव लोग पवित्र प्रभास तीर्थ में पहुँचकर पाण्डवों को घेरकर वहाँ बैठ गये। फिर दूध, कुन्द के फूल, कमलनाल और चाँदी के समान उज्ज्वल रङ्गवाले बलराम ने श्रीकृष्णचन्द्र से कहा—कृष्ण, जब धर्मपुत्र युधिष्ठिर जटा-वल्कलधारी

होकर वनवास के क्लेशों को भोग रहे हैं तब धर्म का आचरण मनुष्य की उन्नति का कारण और अधर्म का आचरण अवनति का कारण कैसे कहा जा सकता है? दुर्मति दुर्योधन इस विशाल पृथ्वीमण्डल का स्वामी होकर बड़े सुख से राज्य कर रहा है। अब भी पृथ्वी फटकर उसे पाताल नहीं भेज देती। यह देखकर थोड़ी बुद्धिवाला मनुष्य भी यह निश्चय कर लेगा कि धर्म की अपेक्षा अधर्म करना ही अच्छा है। अधर्मी होकर दुर्योधन ने राज्य पाया और धर्म का पालन करने से युधिष्ठिर लगातार क्लेश भोग रहे हैं! यह देखकर मनुष्यों के मन

में यह संशय हुए बिना नहीं रह सकता कि धर्म करना चाहिए या अधर्म। ये धर्मात्मा सत्य-वादी दानी महाराज युधिष्ठिर राज्य और सुख से भले ही भ्रष्ट हो जायँ, पर धर्म से भ्रष्ट होकर भला कैसे फल-फूल सकते हैं! हा! भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, और कुलवृद्ध राजा धृत-राष्ट्र निरपराध पाण्डवों को वनवास देकर किस प्रकार सुखी हो सके? उन कुरुकुल के मुखियों को धिक्कार है! पापबुद्धि धृतराष्ट्र निष्पाप भतीजों को राज्य से भ्रष्ट करके पर-लोक में पितरों के सामने यह किस तरह कहेंगे कि "उन्होंने अपने भतीजों के साथ अच्छा व्यवहार किया है"। १०
धृतराष्ट्र ज्ञान की दृष्टि से यह नहीं देखते कि वे पूर्व जन्म में कौन सा पाप करने के कारण जन्म से ही अन्धे हुए हैं। उनको जो यह विचार होता तो वे शायद कभी निर्दोष पाण्डवों को राज्य-भ्रष्ट करके निकाल न देते। जान पड़ता है, धृतराष्ट्र को मरघट में मरण-सूचक फूले हुए सोने की आभावाले विचित्र पुरुष देख पड़ते हैं। इसी से धृतराष्ट्र ऐसे ओछे काम कर रहे हैं। चौड़े और भरे हुए कन्धों तथा लाल नेत्रोंवाले उक्त पुरुषों से पूछने पर वे अवश्य कुछ सुन पाते होंगे। शङ्कित धृतराष्ट्र ने भाइयों-सहित शस्त्रधारी युधिष्ठिर को जो वनवास दिया सो अच्छा नहीं किया। जो महावीर भीमसेन कुपित होने पर किसी भी शस्त्र के बिना योंही अपने पराक्रम से युद्धभूमि में असंख्य शत्रुओं की सेना को सहज ही चौपट कर सकते हैं और जिनका गम्भीर सिंहनाद सुनकर डरे हुए सैनिकों का मल-मूत्र निकल पड़ता है, जिनके दोनों हाथ बहुत लम्बे हैं, वही महापराक्रमी भीमसेन इस समय भूख और प्यास से पीड़ित और सुस्त हो रहे हैं। मैं समझता हूँ कि ये वनवास के इन अत्यन्त कठिन क्लेशों को याद करके हाथ में शस्त्र लेकर जब युद्धभूमि में पहुँचेंगे तब शत्रुओं को नष्ट कर डालेंगे। पृथ्वी पर जिनके समान वीर कोई नहीं है वे भीमसेन गर्मी-जाड़े-वर्षा-आँधी आदि की पीड़ा से दुबले हो रहे हैं। ये युद्ध में अवश्य ही किसी शत्रु को जीता न छोड़ेंगे। रथ पर बैठकर अनुचरों के साथ जाकर जिन्होंने पूर्व दिशा के सब राजाओं को हराया था वे महाबली भीमसेन वल्कल पहने हुए वनवास के कष्ट उठा रहे हैं। जिन्होंने सिन्धु-तट पर जमा हुए सब दक्षिण दिशा के राजाओं को हराया था वे सहदेव इस समय तपस्वियों के वेश से यहाँ रहते हैं। द्वन्द्वयुद्ध में श्रेष्ठ ये नकुल रथ पर चढ़कर पश्चिम दिशा के सब राजाओं को हरा चुके हैं। शोक है कि वही इस समय वन में फल-मूल खाकर जटाधारी और मलिनशरीर होकर विचरते हैं। अतिरथी महाराज द्रुपद के समृद्धिशाली यज्ञ की वेदी से निकली, सुख-भोग के योग्य द्रौपदी इस समय कैसे कठिन दुःख सह रही हैं। ये पाण्डव २०
धर्म, वायु, इन्द्र और अश्विनीकुमार देवताओं के पुत्र हैं। बड़े खेद की बात है कि ये सुखभोग के अत्यन्त उपयुक्त पात्र होकर भी वनवास के कष्ट भोग रहे हैं। महाराज युधिष्ठिर अपने भाइयों, अनुचरों और स्त्री-सहित परास्त तथा अपमानित हुए और दुष्ट दुर्योधन बढ़कर परम ऐश्वर्य भोग रहा है। यह सब होने पर भी पर्वतों-सहित यह पृथ्वी पाताल को क्यों नहीं चली जाती! २२

एक सौ बीस अध्याय

सात्यकि, श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर की बातचीत

सात्यकि ने कहा—बलदेवजी, यह समय पछतावा करने का नहीं है। यद्यपि युधिष्ठिर कुछ नहीं कहते, किन्तु हम लोगों को तो समयानुकूल उचित काम करना चाहिए। शैव्य आदि राजा जिस तरह राजा ययाति के सब काम करते थे वैसे ही जगत् में जिनके सहायक हैं उन लोगों के कामों को उनके सहायक लोग ही किया करते हैं; वे आप कोई काम नहीं करते। जिनके कामों को सहायक लोग उनकी सम्मति से किया करते हैं वे ही सनाथ वीरगण, अनाथ की तरह, कष्ट नहीं भोगते। मैं, आप, श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न और साम्ब, ये त्रैलोक्य का राज्य हस्तगत कर सकते हैं। हम ऐसे सहायकों के रहते युधिष्ठिर किसलिए अपने भाइयों के साथ वनवास कर रहे हैं? यादवों की सेना अभी बहुत से अस्त्र-शस्त्र लेकर, विचित्र कवच पहनकर, युद्ध-यात्रा कर दे और बन्धु-बान्धवों-सहित दुर्योधन यादवों से परास्त होकर यमराज की पुरी को जाय। बलदेवजी, एक आप ही कुपित होकर सारे पृथ्वीमण्डल का नाश कर सकते हैं। इसलिए इन्द्र ने जैसे वृत्रासुर को मारा था वैसे ही आप सैन्य-सामन्त के साथ दुर्योधन को मारिए। शार्ङ्ग धनुष धारण करनेवाले श्रीकृष्ण को कुछ भी न करना पड़ेगा। श्रीकृष्ण के तुल्य प्रभावशाली अर्जुन मेरे भाई, सखा और गुरु हैं; उनकी भी सहायता की आवश्यकता नहीं। शत्रु का विनाश करने के लिए मनुष्य सुपुत्र, शिष्य और अनुकूल गुरु की इच्छा करते हैं। सो इस कठिन काम को हमारे पुत्र आदि करते हैं। शत्रुओं की अस्त्र-वर्षा को मैं अच्छे-अच्छे अस्त्रों से नष्ट करके सबको युद्ध में जीत लूँगा। हे राम! शत्रु-पक्ष के अस्त्र-शस्त्रों को अपने दिव्य अस्त्रों से नष्ट करके मैं अपने सर्प-विष-अग्नि के तुल्य उत्तम बाणों से शत्रु का सिर काटकर धड़ से अलग कर दूँगा। युद्ध में बलपूर्वक खड्ग से दुर्योधन का सिर काटकर मैं उसके १० कर्ण आदि सब अनुचरों को भी मारूँगा।

हे बलरामजी, मैं अपने अस्त्रों के द्वारा कौरवों के प्रधान-प्रधान वीरों को मारूँगा। इस प्रकार अन्तकाल में आग जैसे सूखे वन को जलाती है वैसे अकेले शत्रु-सेना को नष्ट करते हुए मुझे प्रसन्नचित्त पाण्डवों के पक्षवाले देखें। द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण और विकर्ण आदि वीर प्रद्युम्न के छोड़े हुए बाणों को कभी न सह सकेंगे। आप अभिमन्यु के बल-वीर्य और श्रीकृष्ण के पुत्र साम्ब के रणकौशल को तो अच्छी तरह जानते हैं। महाबली साम्ब सारथी और रथसहित दुःशासन को पकड़कर पृथ्वी पर पछाड़कर परास्त करेंगे। रणचतुर साम्ब युद्ध में क्या नहीं कर सकते? प्रद्युम्न ने बाल्यावस्था में ही शम्बर दानव की सेना को नष्ट किया था। गोल और मोटी जाँघों तथा भुजाओंवाले साम्ब ने युद्ध में अश्वचक्र दानव को मारा है। ऐसा कौन वीर है जो युद्ध में महारथी साम्ब के सामने अपना रथ खड़ा कर सके? मनुष्य जैसे काल के आने पर

यमराज के यहाँ जाकर फिर वहाँ से नहीं लौटता वैसे ही कोई वीर साम्ब के सामने युद्ध के लिए जाकर फिर जीता नहीं लौट सकता। भीष्म, द्रोण तथा पुत्रों-सहित सोमदत्त को और सम्पूर्ण सैनिकों को कृष्णचन्द्र तीक्ष्ण बाणों की आग से क्षण भर में भस्म कर देंगे। वे चक्र और श्रेष्ठ बाणों को लेकर जब युद्धभूमि में खड़े होते हैं तब देवताओं में भी ऐसा कोई नहीं जो उनका सामना कर सके और उनके प्रहार को सह सके। ढाल-तलवार लिये हुए अनिरुद्ध धृतराष्ट्र के पुत्रों को अचेत करके उनके कटे हुए सिरों से पृथ्वी को, कुशों से पूर्ण यज्ञवेदी की तरह, व्याप्त कर देंगे। गद, उल्मुक, बाहुक, भानु, नीथ, कुमार, निशठ, रणपण्डित सारण और चारुदेष्ण, ये यादव-कुँअर अवश्य अपने कुल के योग्य काम करेंगे। शूरवीर वृष्णि, भोज और अन्धकवंश के योद्धा और सम्पूर्ण यादव मिलकर धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारकर संसार में यश पावें। [मेरी तो यही इच्छा और सलाह है।] २०

कुरुश्रेष्ठ धार्मिक महात्मा युधिष्ठिर ने द्यूतक्रीड़ा के समय जो अंगीकार किया था वह जब तक पूरा नहीं होता तब तक अभिमन्यु राज्य करेंगे। हमारे अस्त्र-प्रहार करने पर पृथ्वी जब धृतराष्ट्र के पुत्रों से शून्य हो जायगी और कर्ण मारा जायगा तब धर्मराज निष्कण्टक होकर राज्य करेंगे। यह कार्य हम लोगों के योग्य और यश को बढ़ानेवाला है।

यह सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा—हे महाबाहो, तुमने सच कहा है। हम भी तुम्हारी बात को मानते हैं; किन्तु कुरुकुल-प्रधान युधिष्ठिर दूसरे के बाहु-बल से राज्य प्राप्त करना कभी स्वीकार न करेंगे। धर्मपुत्र युधिष्ठिर, अतिरथी भीम और अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा द्रौपदी, ये कभी काम, भय या लोभ के वशीभूत होकर अपने धर्म को न छोड़ेंगे। पृथ्वी पर अपनी समता न रखनेवाले भीम और अर्जुन जिनके भाई हैं, और नकुल तथा सहदेव जिनके अनुगामी हैं वे युधिष्ठिर क्यों न सारी पृथ्वी का राज्य पाकर उसका पालन कर सकेंगे ? महात्मा पाञ्चाल-राज, केकयराज और चेदिराज के साथ मिलकर हम लोग जब युद्ध में पराक्रम करेंगे, तब अवश्य ही सारे शत्रु जड़-मूल से नष्ट हो जायँगे।

युधिष्ठिर ने कहा—हे यादवश्रेष्ठ सात्यकि, आपने जो कहा वह विचित्र नहीं है। किन्तु सत्य की रक्षा करना मेरा मुख्य कर्त्तव्य है, राज्य की रक्षा करना नहीं। मुझे और मेरी प्रकृति को केवल श्रीकृष्ण ही ठीक-ठीक जानते हैं और मैं भी उनको यथार्थ रूप से जानता हूँ। हे वीर, पुरुषोत्तम कृष्ण जब पराक्रम करने के उपयुक्त समय समझेंगे तब तुम और श्रीकृष्ण दोनों ही धृत-राष्ट्र के पुत्रों को जीत लोगे। हे यादव वीरो, मैं आप लोगों के दर्शन पाकर प्रसन्न हुआ। अब आप लोग अपने भवन को पधारें। आप लोग नरनाथ और मेरे सहायक हैं। ईश्वर चाहेगा तो फिर सब लोग मिलेंगे और मैं सबके दर्शन पाऊँगा। मैं चाहता हूँ कि आप लोग उतावली करके धर्म के मार्ग से भ्रष्ट न हों।

अब एक दूसरे से विदा होकर, बड़े-बूढ़ों को प्रणाम कर, बालकों को आशीर्वाद देकर, बराबरवालों को गले लगाकर यादव लोग अपनी नगरी को और पाण्डव लोग तीर्थ-यात्रा को
३० चल दिये। श्रीकृष्ण से विदा होकर धर्मराज युधिष्ठिर लोमशजी के साथ, भाइयों और अनुचरों-सहित, वहाँ से चलकर विदर्भ देश होते हुए पयोष्णी नदी के पास पहुँचे। उस नदी का जल ऐसा पवित्र है कि यज्ञ में उसका जल पीना सोमरस के पीने के समान माना जाता है। ब्राह्मण
३२ लोग जिन महाराज युधिष्ठिर की सराहना कर रहे थे उन्होंने पयोष्णी का जल पिया।

एक सौ इक्कीस अध्याय

राजा नृग का उपाख्यान

लोमशजी कहते हैं—राजन्, मैंने सुना है कि इसी स्थान पर यज्ञ करके राजा नृग ने इन्द्र को तृप्त किया था। यहीं पर देवताओं और प्रजापतियों ने बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले अनेक याग-यज्ञ किये थे। अमूर्त्तरयस् के पुत्र राजा गय ने यहीं सात अश्वमेध करके सोमरस के द्वारा इन्द्र को तृप्त किया था। यज्ञ में जो सामान लकड़ी और मिट्टी का हुआ करता है वह इन सातों अश्वमेधों में सोने का बना था। इन यज्ञों में चषाल, यूप, चमस, स्थाली, पात्री, स्रुक्, स्रुवा, ये सात सामग्रियाँ जगत्प्रसिद्ध हुईं। उनके इन यज्ञों में हर एक यूप के ऊपर सात-सात चषाल स्थापित हुए थे। हे युधिष्ठिर, उन यज्ञों में समुज्ज्वल सुवर्णमय यूपों को इन्द्र आदि देवताओं ने ख़ुद उठाया था। पृथ्वीनाथ गय के इन श्रेष्ठ यज्ञों में इन्द्र आदि देवता सोमरस पीकर और ब्राह्मण अधिक दक्षिणा पाकर आनन्द के मारे उन्मत्त से हो उठे थे। महाराज, पृथ्वी की बालू के कणों की, आकाश के तारागणों की और वर्षा की बूँदों की चाहे कोई गिनती कर भी ले;
१० परन्तु राजा गय ने सदस्यों को जो धन दिया था उसकी संख्या नहीं की जा सकती। उन्होंने दूर-दूर से आये हुए ब्राह्मणों को विश्वकर्मा की बनाई सोने की गायें देकर सन्तुष्ट किया था। महाराज, राजा गय के स्थापित किये असंख्य चैत्य पृथ्वी भर में फैले हुए थे। वे अपने इन कर्मों के फल से स्वर्गलोक को गये। जो कोई पयोष्णी नदी में नहाता है वह उस लोक को जाता है जिसको राजा गय गये हैं। इसलिए हे राजेन्द्र, आप भाइयों-सहित इस पयोष्णी नदी के जल में स्नान करने से पवित्र हो जायँगे।

वैशम्पायन कहते हैं—हे निष्पाप, नरनाथ युधिष्ठिर ने भाइयों के साथ पयोष्णी नदी में नहाया; फिर वे वहाँ से वैडूर्य पर्वत और महानदी नर्मदा को गये। भगवान् लोमश ने वहाँ के सब तीर्थों का वर्णन किया। युधिष्ठिरजी नियम धारण किये हुए उन सब तीर्थों में गये।
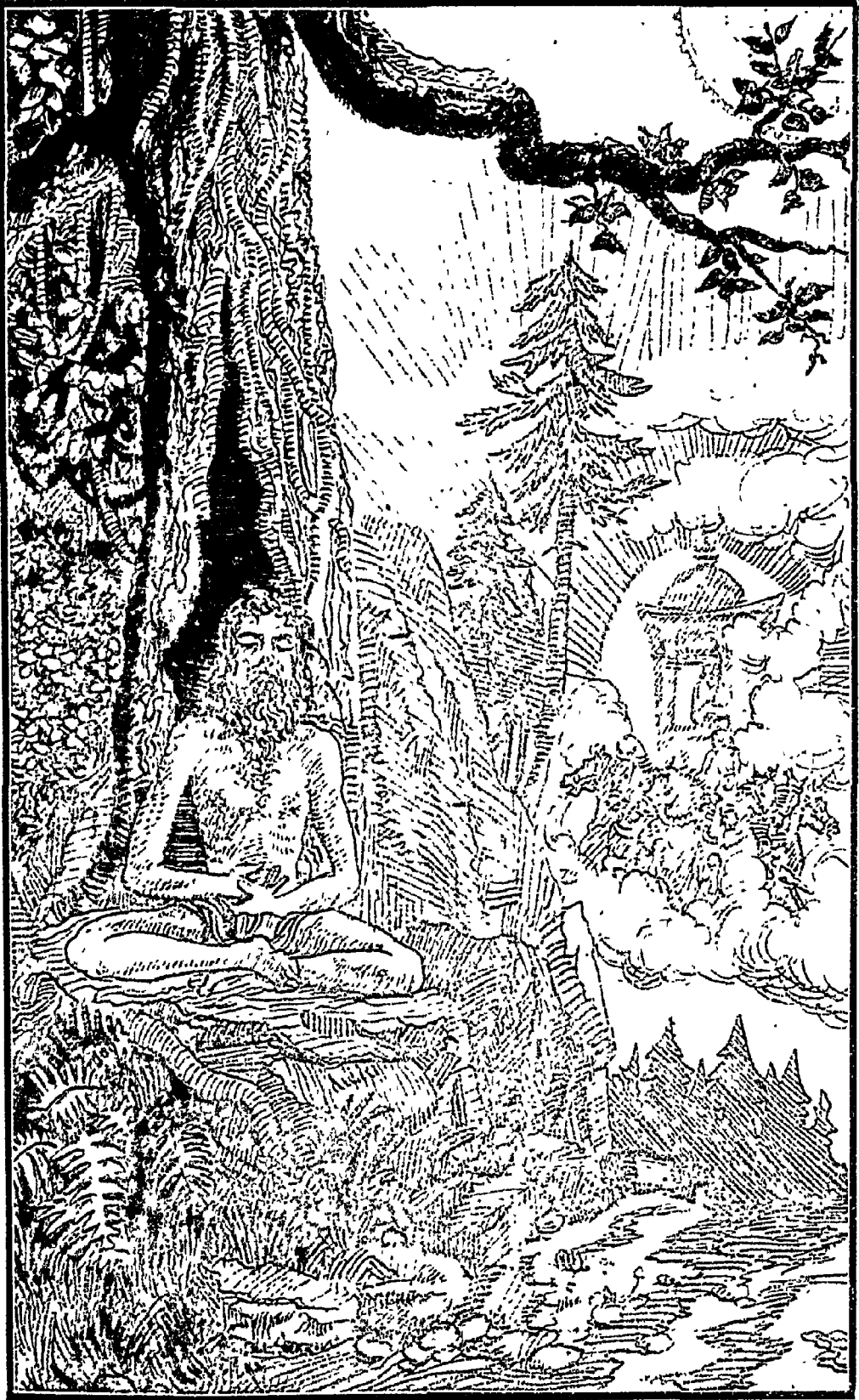
अर्वावसु ऋषि के कठोर तप से प्रसन्न होकर भगवान् भास्कर उनके सामने प्रकट हुए—पृ० १७७

सखियों के सहित रूपवती मदोन्मत्ता सुकन्या पुष्पों से शोभित डालियाँ तोड़ती फिरती थी।—पृ० ६५७

उन तीर्थों में स्नान करके उन्होंने ब्राह्मणों को बहुत सा धन दिया। लोमशजी कहते हैं—हे कौन्तेय, जो मनुष्य वैडूर्य पर्वत के दर्शन करता और नर्मदा नदी में नहाता है उसे देवताओं और राजर्षियों की गति प्राप्त होती है। हे नरेन्द्र, यह स्थान त्रेता युग और द्वापर युग का सन्धिस्थल है। यहाँ आने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाते हैं। राजन्, यह राजा शर्याति के यज्ञ का स्थान देख पड़ता है। यहीं पर इन्द्र ने अश्विनीकुमार के साथ सोमरस पिया था और महातपस्वी भृगुनन्दन च्यवन ने इन्द्र पर कुपित होकर उन्हें जड़प्राय कर दिया था। यहीं पर उन्होंने राजकुमारी सुकन्या को स्त्री-रूप से प्राप्त किया था। २०

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्, महातपस्वी च्यवन ने क्यों कुपित होकर इन्द्र को जड़प्राय बना दिया था? अश्विनीकुमार को यज्ञ का सोमरस ही उन्होंने क्यों पिलाया? आप यह सब वृत्तान्त मुझसे कहिए। २४

एक सौ बाईस अध्याय

च्यवन ऋषि का उपाख्यान

लोमशजी ने कहा—हे युधिष्ठिर, महर्षि भृगु के च्यवन नाम के एक पुत्र थे। महातेजस्वी च्यवन एक सरोवर के किनारे तप करते थे। वे वीर-आसन से एक ही स्थान पर मिट्टी के ढूह की तरह बहुत समय तक बैठे रहे। तपस्या करते हुए बहुत समय तक एक जगह बैठे रहने से उनके शरीर पर मिट्टी ही मिट्टी जम गई, लताएँ उग आईं और चींटियों ने अपने बिल बना लिये। चींटियों के बिलों से व्याप्त मिट्टी के ढूह की तरह रहकर महात्मा च्यवन घोर तपस्या करने लगे। बहुत समय बीतने पर राजा शर्याति [सेना साथ लिये शिकार खेलते हुए] उसी सरोवर के पास पहुँचे जहाँ च्यवनजी तप कर रहे थे। हे भारत, उनके साथ उनकी चार हज़ार रानियाँ और एक परम सुन्दरी बेटी सुकन्या भी थी। वह सुकन्या, बढ़िया गहने पहने, सखियों के साथ घूमती हुई वहाँ पर पहुँची जहाँ तपस्वी च्यवन तप कर रहे थे और उनके शरीर पर मिट्टी की बाँबी बन गई थी। वह वहाँ पर सखियों के साथ रमणीय स्थानों की सैर करती और सब वनस्पतियों को पहचानती फिर रही थी। वह परम रूपवती जवान राजकन्या कामदेव के मद से मतवाली हो रही थी। वह इधर-उधर रमणीय पुष्पों से शोभित वृक्षों की डालियाँ तोड़ती फिरती थी।

एक समय केवल एक वस्त्र पहने, अनेक गहनों से सजी हुई अकेली वह राजकन्या बिजली के समान दमकती हुई इधर-उधर फिर रही थी। उसे देखकर च्यवनजी का चित्त चञ्चल हो उठा। उन्होंने विहार करने की इच्छा जताने के लिए क्षीण स्वर से राजकुमारी को पुकारा किन्तु वह १०

उनके उस धीमे स्वर को सुन नहीं सकी। कुछ देर बाद राजकन्या ने फिरकर उस मिट्टी के ढूह के भीतर से मुनिवर की चमकती हुई आंखें देखीं। बुद्धि-मोह के कारण कौतूहलवश होकर राजकुमारी ने "यह क्या है ?" कहते हुए काँटे से च्यवन की आँखें फोड़ दीं। राजकन्या ने जब यह अनर्थ कर डाला तब मुनि को बड़ी व्यथा हुई। उन्होंने कुपित होकर ऐसा कर दिया कि राजा शर्याति की सारी सेना का मल-मूत्र बन्द हो गया।

इस प्रकार मल-मूत्र के रुक जाने पर सैनिक लोग बहुत ही दुःखित और पीड़ित हुए। राजा शर्याति ने उन्हें पीड़ित देखकर उनसे पूछा—आजकल में यदि तुममें से किसी ने, जानकर या बिना जाने, इन क्रोधी स्वभाववाले ऋषि का कुछ अपराध किया हो तो जल्दी मुझसे कह दो। सैनिकों ने कहा—हम नहीं जानते कि किसी ने ऋषि का कुछ अपराध किया है या नहीं। चाहे जिस उपाय से हो, आप ही इसका पता लगाइए। तब राजा ने अपने इष्ट-मित्रों और अनुचरों को धमकाकर, समझाकर और मित्रता दिखाकर पूछा; परन्तु वे भी कुछ नहीं बता सके। तब राजकुमारी सुकन्या ने सब सैनिकों को मल-मूत्र रुकने से पीड़ित, दुःखित और पिता को चिन्तित देखकर कहा—इस २० वन में घूमते-घूमते एक मिट्टी के ढूह के भीतर मैंने दो चमकते हुए पदार्थ देखे और उन्हें जुगनू समझकर काँटे से छेद दिया था। यह सुनते ही राजा उस स्थान पर आये। वहाँ उन्हें तपो-वृद्ध और वयोवृद्ध च्यवन ऋषि देख पड़े। तब हाथ जोड़कर सैनिकों के लिए प्रार्थना करते हुए राजा ने कहा—प्रभो, मेरी कन्या ने अज्ञानवश जो आपका घोर अपराध किया है उसे क्षमा कीजिए। भार्गव च्यवन ने कहा—तुम्हारी कन्या ने अभिमान के वश होकर अनादर से मेरी आँखें फोड़ डाली हैं। इसी कारण, मैं सच कहता हूँ, तुम्हारी इस कन्या को प्राप्त किये बिना मेरा क्रोध शान्त न होगा।

लोमशजी कहते हैं—ऋषि के ये वाक्य सुनकर राजा शर्याति ने कुछ सोच-विचार किये बिना ही अपनी दुलारी कन्या मुनि को ब्याह दी। उस कन्या को स्त्री-रूप में पाकर महात्मा
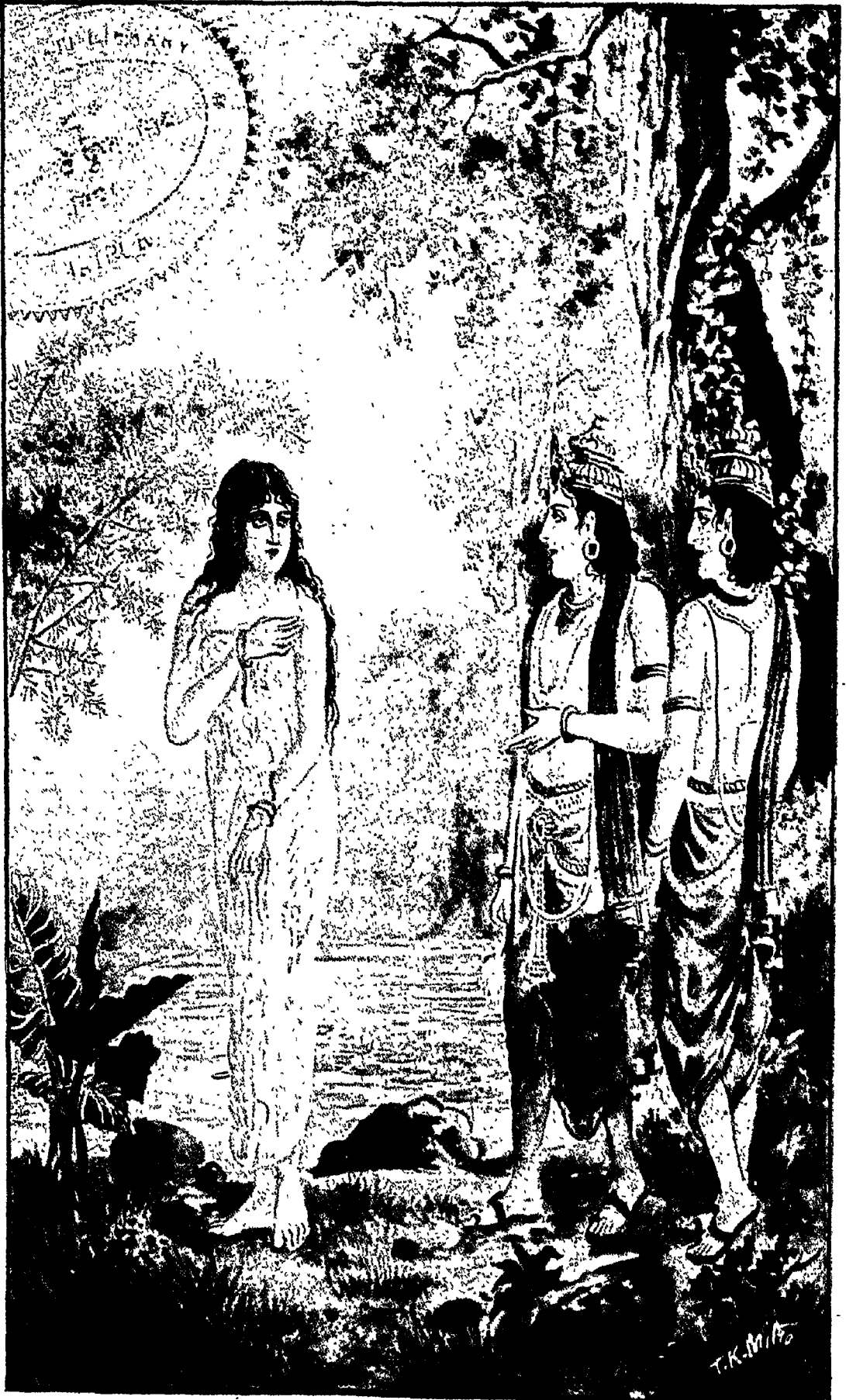
देवकन्या के समान सुन्दरी सुकन्या को देखकर अश्विनीकुमार उसके पास आकर पूछने लगे।—पृ० ६४६

च्यवन राजा पर प्रसन्न हो गये। राजा भी ऋषि को प्रसन्न करके सब सैनिकों के साथ सुख-पूर्वक अपनी नगरी को गये। राजकुमारी सुकन्या भी तपस्वी पति को पाकर असन्तुष्ट नहीं हुई। वह प्रीति और भक्ति के साथ तप, नियमपालन, अतिथि-सत्कार और अग्नि की आराधना करती हुई पति की सेवा करने लगी। २९

एक सौ तेईस अध्याय

महर्षि च्यवन का जवान होना

लोमशजी कहते हैं—महाराज, कुछ दिनों के बाद एक समय अश्विनीकुमार देवों ने स्नान करके नङ्ग-धड़ङ्ग खड़ी सुकन्या को देख लिया। देवकन्या के समान सुन्दरी सुकन्या को देख-कर अश्विनीकुमार उसके पास आकर पूछने लगे—हे सुन्दरी, तुम किसकी कन्या हो? हे शोभने, इस वन में तुम क्या करती रहती हो? यह हम जानना चाहते हैं। सब हाल हमसे कहो। तब सुकन्या ने लज्जित होकर उन देवताओं से कहा—मैं राजा शर्याति की कन्या और महर्षि च्यवन की भार्या हूँ। देवताओं ने हँसकर कहा—हे कल्याणि, तुम्हारे पिता ने इन बूढ़े ब्राह्मण के हाथ में तुम्हें क्यों सौंप दिया? सुन्दरी, तुम इस वन में बिजली के समान दमक रही हो। भामिनी, देवलोक में भी तुम्हारे समान सुन्दरी स्त्री नहीं देख पड़ती। तुम उत्तम कपड़ों और गहनों के बिना भी इस वन को अत्यन्त शोभित कर रही हो। किन्तु उत्तम वस्त्रों और आभूषणों को पहनने से तुम्हारी जैसी शोभा होती वैसी शोभा यों मलिन रहने से नहीं होती है। हे सुन्दरी, ऐसी सुन्दर होकर भी तुम इन बिलकुल बूढ़े, कामभोग और भरण-पोषण में असमर्थ पति की सेवा कर रही हो। तुम च्यवन ऋषि को छोड़कर हममें से किसी एक को स्वीकार कर लो। तुम अपनी इस नई जवानी को निष्फल मत जाने दो। १०

देवताओं के यों कहने पर सुकन्या ने कहा—मैं अपने पति च्यवन ऋषि को ही सोलहों आने चाहती हूँ। आप लोग मेरे बारे में और तरह की शङ्का न करें। सुकन्या के ये वचन सुनकर उन देवताओं ने फिर कहा—हम लोग देवताओं के प्रधान वैद्य अश्विनीकुमार हैं। अपने प्रभाव से हम तुम्हारे पति को अपने ही समान नौजवान और रूपवान् बना देंगे। इसके बाद तुम हम तीनों में से एक को पति बना लेना। हे शुभे, तुम यह शर्त मानकर अपने स्वामी च्यवन को बुला लाओ। उनके वचन सुनकर सुकन्या च्यवन ऋषि के पास गई और अश्विनी-कुमारों ने जो कुछ कहा था सो उनसे कह दिया। यह सुनकर च्यवन ने अपनी स्त्री को वैसा ही करने की अनुमति दे दी। पति की आज्ञा पाकर सुकन्या अश्विनीकुमारों के पास गई। उसने उनसे च्यवन के उस बात पर राज़ी होने का हाल कहा। राजकन्या की बात सुनकर अश्विनी-

कुमारों ने उनसे कहा—तुम्हारे पति इस सरोवर के जल में घुसें। राजन्, तव च्यवन उत्तम रूप और जवानी पाने की इच्छा से उस सरोवर में घुस गये। अश्विनीकुमार भी उनके साथ ही जल के भीतर चले गये। दम भर के वाद दिव्य रूपवान्, उज्ज्वल कुण्डल पहने, नौजवान और चित्त को प्रसन्न करनेवाले तीन पुरुष उस सरोवर के भीतर से निकल आये। उन तीनों पुरुषों ने मिलकर कहा—हे शुभरूपिणी, तुम जिसे चाहो उसे हममें से पति वना लो। सुकन्या को तीनों पुरुषों के रूप में कुछ अन्तर न देख पड़ा। २० तो भी उसने ध्यान से परखकर उनमें से अपने पति च्यवन को छाँट लिया और उन्हीं को पति मान लिया। तव महातेजस्वी च्यवन ऋषि अपनी पत्नी, सुन्दर रूप और नई अवस्था पाकर, प्रसन्न होकर, अश्विनीकुमारों से वोले—मैं तुमसे सच कहता हूँ, तुम्हारे प्रसाद से जवानी, रूप, और भार्या मुझे मिली है; मैं इसके वदले में प्रसन्नतापूर्वक तुमको इन्द्र के साथ यज्ञ में सोमरस पिलाऊँगा। यह सुनकर अश्विनीकुमार प्रसन्नतापूर्वक स्वर्ग को चले गये। २४ महर्षि च्यवन और सुकन्या, दोनों वहीं रहकर देवताओं के समान विहार करने लगे।

एक सौ चौबीस अध्याय

च्यवन ऋषि का इन्द्र के हाथ को निकम्मा कर देना

लोमशजी कहते हैं—शर्याति को जव च्यवन ऋषि के फिर से जवान होने का हाल मालूम हुआ तव वे प्रसन्न होकर रानीसहित, सेना को साथ लेकर, मुनि के आश्रम में गये। च्यवन ऋषि को देवकुमारतुल्य और सुकन्या को देवकन्या के समान देखकर उन्हें वैसा ही आनन्द हुआ, जैसा आनन्द सम्पूर्ण पृथ्वी का साम्राज्य पाने से होता है। च्यवन ऋषि ने रानी और राजा का सत्कार किया। वे वहाँ वैठकर परस्पर वातचीत करने लगे। च्यवन ऋषि ने राजा को मधुर वचनों से सन्तुष्ट करके कहा—राजन्, मैं आपको यज्ञ कराना चाहता हूँ। आप यज्ञ की सामग्री एकत्र कीजिए।

राजा शर्याति ने प्रसन्न होकर यज्ञ के योग्य उत्तम समय में यज्ञमण्डप बनवाया। महर्षि च्यवन ने वहाँ पर उनको यज्ञ की दीक्षा दी। महाराज, इस यज्ञ में जो-जो अद्भुत बातें हुईं उनको मैं कहता हूँ, सुनिए। च्यवन ऋषि ने अश्विनीकुमारों को देने के लिए जब सोमरस का पात्र उठाया तब उनको रोककर इन्द्र ने कहा—मुनिवर, मेरी समझ में अश्विनीकुमार सोमरस पीने के अधिकारी नहीं हैं; क्योंकि वे स्वर्ग में वैद्य का पेशा करते हैं। च्यवन ने कहा—देवराज, ये दोनों देवता महात्मा, उत्साही और सुन्दर हैं। ख़ास कर इन्होंने मुझे देवताओं के समान अजर-अमर बना दिया है। यदि आप और अन्य देवता सोमरस पीने के अधिकारी हैं तो फिर अश्विनीकुमार ही क्यों अयोग्य हैं? हे इन्द्र, आप अश्विनीकुमारों को भी देवता मानिए। इन्द्र ने कहा—वे चिकित्सा करते हैं और इच्छानुसार वेष बनाकर मनुष्यलोक में घूमा करते हैं। इसलिए वे किस तरह सोमपान के योग्य हो सकते हैं? १०

लोमशजी कहते हैं—इन्द्र के बार-बार रोकने पर भी महातेजस्वी च्यवन उनका अनादर करके अश्विनीकुमारों को सोमरस देने के लिए तैयार हुए। तब अश्विनीकुमारों को सोमरस देने के लिए च्यवन को उद्यत देखकर इन्द्र ने कहा—यदि तुम अश्विनीकुमारों को सोमरस दोगे तो मैं इस वज्र से तुमको मार डालूँगा। च्यवन ऋषि ने यों कहनेवाले इन्द्र की ओर मुसकुराते हुए देखकर अश्विनीकुमारों को देने के लिए सोमरस का पात्र उठाया। तब च्यवन ऋषि को मारने के लिए इन्द्र तैयार हुए। ऋषि ने अपने तपोबल के प्रभाव से इन्द्र के दोनों हाथों को निकम्मा कर दिया। इस प्रकार इन्द्र को शक्तिहीन करके च्यवनजी मन्त्र पढ़कर अग्नि में आहुतियाँ डालने लगे।

अब मुनि के तपोबल से मद नाम का एक बड़ा पराक्रमी विशाल शरीरवाला असुर उत्पन्न हुआ। उसका मुँह बहुत बड़ा था, बड़े-बड़े दाँतों की नोकें ख़ूब पैनी थीं। देवता और दैत्य भी उसके शरीर की लम्बाई बताने में असमर्थ हैं। उसका एक ओंठ पृथ्वी पर था और दूसरा ओंठ आकाश में लगा हुआ था। आगे के चार दाँत सौ योजन ऊँचे थे; और सब दाँत दस-दस योजन ऊँचे तथा महलों के कँगूरों के समान थे। उनकी नोकें त्रिशूल की २०

नेकों के समान थीं। उसके दोनों हाथ पहाड़ के समान और दस हज़ार योजन लम्बे थे। दोनों नेत्र चन्द्र-सूर्य के समान चमकदार थे। वे प्रलयकाल की आग के समान लाल थे। वह महाअसुर बिजली के समान लपलपाती हुई जीभ से ओठ चाट रहा था और भयानक नेत्रों से इधर-उधर ताक रहा था। वह मुँह फैलाकर मानों बलपूर्वक सारे जगत् को ग्रस लेना चाहता था। वह क्रोधित भाव से भयानक गर्जन करता हुआ इन्द्र को खा जाने के लिए दौड़ा। उसके २५ शब्द से तीनों लोक काँप उठे।

एक सौ पचीस अध्याय

इन्द्र की प्रार्थना से उन पर मुनि का प्रसन्न होना

लोमशजी ने कहा—हाथ जिनके निकम्मे हो गये हैं उन इन्द्र ने 'मद' दानव को काल के समान मुँह फैलाकर ओठ चाटते हुए भक्षण करने के लिए आते देखा। तब उन्होंने डरकर ऋषि से कहा—हे भृगुनन्दन, आप मुझ पर प्रसन्न हूजिए। मैं सच कहता हूँ, आज से अश्विनीकुमार भी सब देवताओं के समान सोमरस पीने के अधिकारी हुए। आपकी बात मिथ्या न होगी। हे भार्गव, आपने अपने तपोबल से आज अश्विनीकुमारों को सोमरस का अधिकारी बना दिया। आपकी यह अलौकिक शक्ति और राजा शर्याति की कीर्त्ति संसार भर में प्रसिद्ध होगी। इसी लिए मैंने आपके साथ ऐसा व्यवहार किया था। अब आप मुझ पर प्रसन्न हों। आपका मनोरथ सिद्ध हो।

इन्द्र ने जब इस प्रकार स्तुति की तब च्यवनजी का क्रोध शान्त हो गया। उन्होंने इन्द्र की रक्षा की और अपने उत्पन्न किये हुए मदासुर को—चार भाग करके—स्त्रीसङ्ग, मद्य-पान, जुआ और शिकार में स्थापित कर दिया। महर्षि च्यवन ने मदासुर को यों बाँटकर अश्विनी-१० कुमारों को और सब देवताओं को प्रसन्न किया। राजा शर्याति का यज्ञ समाप्त हुआ। संसार में च्यवनजी के तपोबल की महिमा विख्यात हो गई। वे फिर अपने अनुकूल पत्नी के साथ वन में रहकर विहार करने लगे।

राजन्, उन महर्षि च्यवन के अद्भुत तपोबल की घोषणा करनेवाला यह सरोवर देख पड़ रहा है। आप यहाँ पर भाइयों-सहित नहाकर पितरों और देवताओं का तर्पण कीजिए। हे भरतश्रेष्ठ, इस सरोवर को और सिकताक्ष तीर्थ को देखकर सैन्धवारण्य में चलिए और वहाँ की कुल्याओं (नदियों) के दर्शन कीजिए। फिर पुष्करजल को छूकर शिवमन्त्र का जप कीजिए। ऐसा करने से आपको सिद्धि प्राप्त होगी। हे पार्थ, यह सब पापों को नष्ट करनेवाला "त्रेता और द्वापर का सन्धिस्थल" नाम का तीर्थ देख पड़ता है। आप इस तीर्थ में स्नान कीजिए। यहाँ स्नान करनेवाले पर कलियुग का प्रभाव नहीं पड़ता। यह देखिए, आर्चीक पर्वत

है। इस पर महात्मा तपस्वी रहते हैं। इस पर के वृक्ष सदा फलों से लदे रहते हैं और झरनों से साफ़ मीठा पानी बहा करता है। पवित्र शीतल हवा सदा यहाँ रहनेवालों को प्रसन्न किया करती है। हे युधिष्ठिर, ये देवताओं के विविध मन्दिर हैं। यह चन्द्रतीर्थ है। अग्नि के समान तेजस्वी वैखानस, वालखिल्य, आदि ऋषि वायु-भक्षण करते हुए यहाँ रहते हैं। हे नराधिप, ये तीन शिखर और तीन झरने देख पड़ते हैं। आप इन सबकी प्रदक्षिणा करके इच्छानुसार स्नान आदि कीजिए। इसी आर्चीक पर्वत पर राजा शान्तनु, शुनक और नर-नारायण आदि महापुरुष सनातन लोक को प्राप्त हुए हैं। देवता, पितर और महर्षि यहाँ सदा तपस्या किया करते हैं। २० आप उन सबकी पूजा और सत्कार कीजिए। राजन्, इसी स्थान पर वे महर्षि चरु-भक्षण करते थे। यहाँ पर अक्षय स्रोतवाली महानदी यमुना बहती हैं। कृष्ण ने यहीं पर तपस्या की है। हे शत्रुदमन! भीमसेन, नकुल, सहदेव, द्रौपदी और मैं, सब लोग आपके साथ इस स्थान को चलेंगे। हे नरनाथ, यही महेन्द्र का पवित्र झरना है। इसी स्थान पर धाता, विधाता और वरुण ने ऊर्ध्वगति प्राप्त की है। परम धार्मिक और क्षमाशील होकर ये देवता यहाँ रहते थे। सरल स्वभाववाले योगी इस शुभ पर्वत पर रहते हैं। राजन्, यह यमुना नदी है। इस नदी के किनारे महर्षि लोग रहते हैं। इस नदी में स्नान करने से पाप का डर नहीं रहता। इसी स्थान पर श्रेष्ठ धनुर्द्धर राजा मान्धाता, सृंजय के पौत्र और सोमक ने यज्ञ किया है। २६

एक सौ छब्बीस अध्याय

राजा मान्धाता का उपाख्यान

युधिष्ठिर ने कहा—हे ऋषिश्रेष्ठ, त्रिलोकप्रसिद्ध युवनाश्व के पुत्र महाराज मान्धाता का जन्म किस तरह हुआ? किस प्रकार उन्हें पुण्यात्मा पुरुषों में श्रेष्ठ पदवी मिली? किस कारण उनका मान्धाता नाम पड़ा? यह सब हाल सुनने की मेरी बड़ी इच्छा है। अमित पराक्रमी मान्धाता की इन बातों का वर्णन आप बहुत अच्छी तरह कर भी सकते हैं।

लोमशजी ने कहा—राजन्, जैसे उन महात्मा राजा का नाम मान्धाता पड़ा सो एकाग्र होकर सुनिए। महाराज इक्ष्वाकु के वंश में युवनाश्व नाम के एक धर्मात्मा राजा उत्पन्न हुए। उन्होंने एक हज़ार अश्वमेध यज्ञ किये। उनके बाद और भी बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले अनेक यज्ञ उन्होंने किये। युवनाश्व के कोई सन्तान न थी। उन्होंने कुछ समय के बाद मन्त्रियों को राजकाज सौंप दिया और आप संयम से शास्त्रोक्त-विधि के अनुसार वन में जाकर तप और योगाभ्यास करने लगे। राजन्, एक समय राजा युवनाश्व निराहार व्रत से बहुत ही दुखी और प्यास के मारे गला सूख जाने से अत्यन्त विह्वल होकर महर्षि भार्गव के आश्रम को गये। राजन्, महर्षि भृगु के पुत्र ने उसी रात को, राजा के पुत्र होने की इच्छा से, एक यज्ञ का अनुष्ठान किया

था। इस यज्ञ में पहले से ही ऋषियों ने मन्त्र पढ़कर एक जल-पूर्ण कलश स्थापित कर दिया १० था। इसका जल पीने से राजा की स्त्री एक इन्द्रतुल्य पुत्र उत्पन्न कर सकेगी, यह सोचकर ऋषियों ने उस कलश को वेदी पर स्थापित कर दिया था। रात भर जागने के कारण थककर वे सो रहे थे। प्यास से गला सूखने के कारण अत्यन्त व्याकुल राजा सोते हुए मुनियों को लाँघकर आश्रम के भीतर पहुँच गये। राह की थकन और गला सूखने के कारण पक्षी के से धीमे स्वर में राजा ने पीने को पानी माँगा। उस प्रार्थना को सोये हुए मुनियों में से किसी ने सुना नहीं। तब उस जल-भरे कलश को देखकर जल्दी से राजा उसके पास गये और वह ठण्डा पानी पी गये।

बचा हुआ पानी उन्होंने फेंक दिया। इस प्रकार बुद्धिमान राजा ठण्डा पानी पीकर तृप्त और सुखी हुए। उधर सवेरे जागकर मुनियों ने देखा कि उस कलश में पानी नहीं है। तब सबने मिलकर पूछा कि यह काम किसने किया? युवनाश्व ने सत्य का उल्लंघन उचित न समझकर कह दिया कि मैंने इसका पानी पी लिया है। तब भगवान् भार्गव ने कहा—यह कार्य ठीक नहीं हुआ। आपके पुत्र होने के लिए ही हमने इस कलश के जल में अपना तपोबल सञ्चित किया था। राजन्! आपके पुत्र हो, इसके लिए मैंने घोर तप करके इस कलश में ब्रह्म को अभिमन्त्रित कर रक्खा था। अपने पराक्रम से इन्द्र को भी मार डालने की शक्ति रखनेवाला, बल-वीर्यवान्, तपोबलसम्पन्न पुत्र २० उत्पन्न होने की इच्छा से, वैसी ही विधि के अनुसार, यह अनुष्ठान किया गया था। आपने वह जल पीकर बहुत ही अनुचित किया। अब जो हो गया सो हो गया। उसे बदल देने की शक्ति हममें नहीं है। आपका यह कार्य दैवकृत समझना चाहिए। प्यास के मारे आपने मेरे तपोबल से युक्त, विधिमन्त्र से पवित्र, जल को पिया है; इस कारण आप ही वैसा प्रभावशाली पुत्र उत्पन्न करेंगे। अब हम ऐसा परम अद्भुत अनुष्ठान (इष्टि) करेंगे जिसमें आप सहज ही ऐसे पुत्र को उत्पन्न कर सकें। आपको गर्भधारण का क्लेश न उठाना पड़ेगा।

सौ वर्ष पूरे होने पर महात्मा युवनाश्व की बाईं कोख फाड़कर सूर्य के समान महातेजस्वी एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस अद्भुत प्रसव में भी राजा की मृत्यु नहीं हुई। यह अद्भुत घटना

देखने के लिए इन्द्रदेव युवनाश्व के पास आये। देवताओं ने उनसे पूछा—यह बालक क्या पियेगा? तब इन्द्र ने उस बालक के मुँह में अपना अँगूठा देकर कहा कि यह बालक मुझको अर्थात् मेरे इस अँगूठे के रस को पियेगा। इन्द्र के यों कहने के अनुसार ही देवताओं ने बालक का नाम मान्धाता रख दिया। वह बालक इन्द्र के अँगूठे को पीकर तेरह बित्ते बढ़ गया। ध्यान करते ही चारों वेद और सब अस्त्र-शस्त्र उसे उपस्थित हो गये। आजगव धनुष, शृङ्गज बाण और अभेद्य कवच मान्धाता के पास आ गये। महाराज, विष्णु भगवान् ने जिस तरह पराक्रम से त्रिभुवन को जीता था उसी तरह मान्धाता ने अपने धर्मबल से तीनों लोकों को अपने अधीन कर लिया। उन महात्मा की आज्ञा तीनों लोकों में मानी जाती थी। सब रत्न स्वयं उनकी सेवा में आ गये थे। महाराज, यह धनपूर्ण पृथ्वी उन्हीं की है। उन्होंने बहुत से यज्ञ बड़ी-बड़ी दक्षिणाएँ देकर किये थे। इसी पुण्य के बल से उनको इन्द्र का आधा आसन मिला था। महाराज मान्धाता ने एक ही दिन में समुद्रपर्यन्त पृथ्वी को अपने अधिकार में कर लिया था। उनके किये हुए यज्ञों की वेदियाँ और चैत्य सारी पृथ्वी में फैले हुए थे। सुना जाता है, उन महात्मा ने ब्राह्मणों को दस हज़ार पद्म गोदान किये थे। बारह वर्ष तक पानी न बरसने पर उन्होंने इन्द्र के सामने ही अन्न उपजने के लिए पानी बरसाया था। सोमवंशी गान्धारराज उनके बाणों की चोट खाकर मेघ के समान गरजते-गरजते मर गया। अत्यन्त तेजस्वी महाराज मान्धाता ने धर्मपूर्वक चारों वर्णों की रक्षा की और तपोबल से सब लोकों का कल्याण किया। कुरुक्षेत्र के बीच यह अत्यन्त पवित्र स्थान सूर्य के समान तेजस्वी महाराज मान्धाता के यज्ञों की भूमि है। राजन्, महाराज मान्धाता का चरित्र और जन्म का वृत्तान्त आपने पूछा था, सो मैंने आपको सुना दिया। ३० ४०

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, लोमशजी के यों कह चुकने पर युधिष्ठिर ने फिर उनसे सोमक राजा का वृत्तान्त पूछा। ४७

एक सौ सत्ताईस अध्याय

सोमक राजा का उपाख्यान

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्, महाराज सोमक का कैसा बल, वीर्य और प्रभाव था? उनके काम कैसे थे? सब वृत्तान्त मैं सुनना चाहता हूँ।

लोमशजी ने कहा—महाराज, सोमक नाम के एक बड़े धर्मात्मा राजा थे। उनके योग्य उनके एक सौ रानियाँ थीं। बहुत समय बीत गया, किन्तु बहुत उपाय करने पर भी उनकी किसी रानी के सन्तान नहीं हुई। अन्त को बहुत यत्न करने पर बुढ़ापे में सौ रानियों में से

एक रानी के पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम जन्तु रक्खा गया। महाराज, रानियाँ अपना सुखभोग छोड़कर यत्न के साथ उसी पुत्र का लालन-पालन करने लगीं। एक दिन जन्तु के कूले में एक चींटी ने काट खाया। इससे दुखी होकर वह रो उठा। बालक के क्लेश को देखकर रानियाँ उसके पास दौड़ी गईं और उसे घेरकर चिल्लाने लगीं। राजा सोमक अपने पुरोहितों और मन्त्रियों के साथ सभा में बैठे हुए थे। एकाएक वह आर्तनाद उन्हें सुन पड़ा। समाचार जानने के लिए राजा ने द्वारपाल को भेजा। राजपुत्र को चींटी काटने का वृत्तान्त जानकर द्वारपाल ने राजा को ख़बर दी। हे शत्रुदमन, महाराज सोमक यह हाल सुनते ही तुरन्त उठकर मन्त्रियों १० के साथ रनिवास में गये। वहाँ उन्होंने पुत्र को दुलराकर चुप किया। फिर वे रनिवास से सभा में आकर बैठे। राजा ने अपने पुरोहित से कहा—संसार में एक पुत्रवाले आदमी को धिक्कार है। एक पुत्र होने की अपेक्षा पुत्र न होना ही अच्छा है। क्योंकि एक पुत्र का होना सदा रोगी रहने से भी बढ़कर दुखदायक है। प्रभो, मैंने पुत्रों की इच्छा से एक सौ व्याह किये थे किन्तु किसी रानी के पुत्र नहीं हुआ। विशेष यत्न करने पर केवल एक पुत्र हुआ है। इससे बढ़कर दुःख की बात क्या होगी! इस समय मैं और मेरी रानियाँ बूढ़ी हो गई हैं। केवल इसी एक पुत्र के भरोसे हमारा जीवन है। अतएव छोटा हो या बड़ा, सहज हो या कठिन, जिस अनुष्ठान से सौ पुत्र उत्पन्न हों, वह करना चाहिए।

पुरोहित ने कहा—आपके सौ पुत्र उत्पन्न होने के मनोरथ को सिद्ध करनेवाला अनुष्ठान है। उसे जो आप कर सकें तो मैं कहूँ। सोमक ने कहा—वह काम चाहे जैसा कठिन होगा, सौ पुत्र उत्पन्न होने के लिए उसे मैं अवश्य करूँगा। पुरोहित ने कहा—हे सोमक, मैं यज्ञ करूँगा, उसमें जो आप अपने पुत्र जन्तु का बलिदान कर सकें तो तुरन्त आपके श्रीसम्पन्न सौ पुत्र उत्पन्न होंगे। इस यज्ञ में जन्तु की मेदा का हवन करना होगा। रानियाँ उसका धुआँ सूँघेंगी तो अत्यन्त पराक्रमी सौ पुत्र उत्पन्न कर सकेंगी। आपका पुत्र जन्तु भी फिर अपनी ही २१ माता के गर्भ से उत्पन्न होगा और उसके बाईं ओर सुनहरा दाग़ होगा।

एक सौ अट्ठाईस अध्याय

राजा सोमक की गुरुभक्ति का वर्णन

सोमक ने कहा—ब्रह्मन्, जो-जो काम जिस-जिस तरह करना होगा, सो सब आप कीजिए। पुत्र की इच्छा से मैं आपकी कही सब बातें करूँगा।

लोमशजी कहते हैं—जब ऋत्विक् लोग सोमक के पुत्र जन्तु की मेदा से होम करने को तैयार हुए तब जन्तु की माताएँ अत्यन्त शोकाकुल और दयालु होकर "हाय, हम मर गईं!"

कहकर करुण स्वर से रोती हुई, पुत्र का दाहना हाथ पकड़कर, ज़ोर से अपनी ओर खींचने लगीं। उधर पुरोहित भी उस बालक का बायाँ हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचने लगे। अन्त को पुरोहित ने उस बालक को अपनी ओर खींच लिया और वे विधिपूर्वक उसकी मेदा से हवन करने लगे। हे कुरुश्रेष्ठ, पुत्र की मेदा की गन्ध सूँघकर रानियाँ एकाएक पृथ्वी पर गिर पड़ीं; उनके उसी घड़ी गर्भ रह गया। महाराज, फिर दस महीने पूरे होने पर सब रानियों के एक-एक पुत्र उत्पन्न हुआ। जन्तु, बड़े पुत्र के रूप से, अपनी पहली माता के गर्भ से पैदा हुए। उनकी बाईं कोख में एक सुनहरा दाग़ था। वे गुणों में और सब कुँअरों से बढ़कर थे। सब रानियाँ उनको इतना प्यार करती थीं कि उनको अपने-अपने बेटे उतने प्यारे नहीं थे।

महाराज, फिर सोमक के गुरु (पुरोहित) परलोकवासी हुए। कुछ दिनों बाद राजा का भी देहान्त हुआ। राजा ने अपने गुरु को नरक की घोर यातना भोगते देखकर उनसे पूछा— १० आप किस कारण नरक में पड़े हुए हैं?

गुरु ने कहा—राजन्, मैंने आपको जो घोर यज्ञ कराया था उसी का फल भोग रहा हूँ। महात्मा राजा सोमक ने पुरोहित के वचन सुनकर धर्मराज से कहा—धर्मराज, मेरे इन यज्ञ करानेवाले पुरोहित को इस घोर नरक से निकालिए। इनके बदले मैं इस नरक की आग में प्रवेश करूँगा।

धर्मराज ने कहा—राजन्, एक के किये कर्म के फल को कोई दूसरा नहीं भोगता। तुमने जो सत्कर्म किये हैं, उनके फल भोगने के लिए ये शुभ लोक देख पड़ते हैं।

सोमक ने कहा—इन ब्रह्मवादी ब्राह्मण के बिना मैं किसी पवित्र लोक में रहना नहीं चाहता। चाहे स्वर्ग में हो और चाहे नरक में, मैं तो इन्हीं के साथ रहना चाहता हूँ। इनका और मेरा कर्म-फल समान है। इसलिए हम दोनों के पुण्य और पाप का फल समान हो।

धर्मराज ने कहा—राजन्, तुम्हारी जो ऐसी ही इच्छा है तो तुम दोनों मिलकर समान समय तक नरक भोग करो। इसके बाद तुमको सद्गति प्राप्त होगी।

लोमशजी कहते हैं—महाराज, गुरु-भक्त राजा सोमक ने धर्मराज के कहे के अनुसार गुरु के साथ कुछ समय तक नरक भोग किया। फिर पाप क्षीण होने पर नरक से छुटकारा पाकर राजा ने गुरु के साथ अपने धर्म से प्राप्त शुभ लोक प्राप्त किये। राजन्, आगे वह जो पवित्र आश्रम देख पड़ता है सो उन्हीं का है। जो मनुष्य क्षमाशील होकर इस आश्रम में छः रातें बिताता है वह सद्गति को प्राप्त होता है। हे कुरुनन्दन, हम लोग भी संयम के साथ २१ स्वस्थचित्त से यहाँ छः रातें बितावेंगे। इसलिए आप तैयार हो जाइए।

एक सौ उन्तीस अध्याय

पाण्डवों का अनेक तीर्थों की यात्रा करना

लोमशजी ने कहा—महाराज, पहले इस स्थान पर प्रजापति ने इष्टाकृत नाम के हज़ार वर्षों में पूरे होनेवाले यज्ञ का अनुष्ठान किया था। नाभाग के पुत्र अंबरीष ने इसी यमुना के किनारे यज्ञ करके सदस्यों को दस पद्म गोदान किये थे। अनेक यज्ञ और तप करने से उन्हें सिद्धि प्राप्त हो गई थी। यह अपरिमित तेजवाले, इन्द्र से भी बराबरी का दावा करनेवाले, पुण्यकर्मनिरत, यज्ञकर्ता सम्राट् नहुष के पुत्र ययाति की यज्ञभूमि है। देखिए, यहाँ की भूमि तरह-तरह के आकारवाले अग्नि के आधार गढ़ों से भरी पड़ी है। देखने से जान पड़ता है, मानों ययाति के यज्ञों से दबकर ही पृथ्वी नीचे धँसी जा रही है। यह वही एकपत्रा शमी और रमणीय पानपात्र पड़ा हुआ है। यह देखिए, वह रामकुण्ड और नारायणाश्रम है। यह वही चाँदी के समान चमकीले जलवाली नदी बह रही है। योगबल से सारी पृथ्वी पर विचरनेवाले परमतेजस्वी ऋचीक के पुत्र की सञ्चरण-भूमि इसी के पास थी।

इस स्थान पर ओखली जैसे बड़े कर्णफूल पहननेवाली पिशाची ने जो कहा था, वह मैं पढ़ता हूँ, सुनिए। युगन्धर में दही खाकर, अच्युतस्थल में रहकर और भूतिलय में नहाकर पुत्र के साथ इस स्थान पर रहना चाहती है। किन्तु एक रात बसकर फिर दूसरे दिन रहने से, १० दिन को जैसा अनिष्ट हुआ है उससे भी अधिक अनिष्ट रात को होगा।*

---

* इस तीर्थ में एक समय पुत्र-सहित एक ब्राह्मणी नहाने आई थी। उसे देखकर वहाँ रहनेवाली एक पिशाची ने कहा—तुमने युगन्धर देश या युगन्धर पर्वत पर रहकर दही खाया है। वहाँ ऊँटनी, गधी आदि के दूध का दही बनता है। अच्युतस्थल नाम का, वर्णसङ्कर पुरुषों के रहने का, जो गाँव है उसमें तुम रह चुकी हो। भूतिलय नाम के, चोरों के, गाँव में आग से जले हुए मुर्दे जिस नदी में बहाये जाते हैं उसमें तुमने नहाया है। ये तीन दोष तुमको लगे हैं। लिखा है, एक खुरवाले ऊँट आदि का दूध मदिरा के तुल्य होता है। वर्णसङ्करों का संसर्ग होने पर प्राजापत्य व्रत करना चाहिए। यह कुछ तुमने नहीं किया। दोषियों का तीर्थ में रहना दुर्लभ है। पिशाची के यों कहने पर भी उस ब्राह्मणी ने वहाँ नहाया-धोया। तब उसने ब्राह्मणी के बर्तन-भाँड़े फोड़ डाले। पिशाची कहती है—दिन को तो यह हुआ, रात को रहेगी तो और भी अनिष्ट होगा, अर्थात् मैं तेरे पुत्र को भी खा जाऊँगी।

हे भरतश्रेष्ठ, यह स्थान कुरुक्षेत्र का द्वारस्वरूप है। इसी लिए हम यहां एक रात रहेंगे। इस स्थान पर नहुष के पुत्र ययाति ने अनेक प्रकार के यज्ञ किये, ब्राह्मणों को बहुत सी दक्षिणा दी, रत्न दिये और इन्द्र को सन्तुष्ट किया। यह वही प्लक्षावतरण नाम का रमणीय यमुना तीर्थ है। विद्वान् लोग इसे स्वर्ग का द्वार कहते हैं। महर्षि लोग इस स्थान पर यूप और उलूखलिका के साथ सारस्वत यज्ञ करके अवभृथ स्नान करते हैं। महाराज भरत ने इसी स्थान पर बहुत से यज्ञ किये थे और धर्मानुसार पृथ्वी भर को जीतकर, बारम्बार अश्वमेध यज्ञ करके, कृष्णसारङ्ग जाति का पवित्र घोड़ा छोड़ा था। राजा मरुत्त ने महर्षि संवर्त्त के द्वारा रक्षित होकर इस स्थान पर अत्यन्त श्रेष्ठ यज्ञ किया था। राजेन्द्र, इस तीर्थ में स्नान करनेवाला सब लोकों को देख सकता है और सब पापों से छुटकारा पा जाता है। यहाँ स्नान कीजिए।

वैशम्पायन कहते हैं—महर्षियों के मुँह से अपनी प्रशंसा सुनते हुए राजा युधिष्ठिर ने भाइयों के साथ उस तीर्थ में स्नान किया। फिर उन्होंने लोमशजी से कहा—हे सत्यविक्रम, मैं इसी स्थान से, तपोबल के प्रभाव से, सब लोकों को और पाण्डवश्रेष्ठ अर्जुन को देख रहा हूँ।

लोमशजी ने कहा—महाबाहो, महर्षिगण भी इसी तरह सब लोकों को और इन्द्र को देख लेते हैं। अब इस साधुओं की निवासभूमि सरस्वती नदी में स्नान करके सब पापों से मुक्त हूजिए। २० देवर्षियों, ऋषियों और राजर्षियों ने इस स्थान पर बहुत प्रकार के सारस्वत यज्ञ किये हैं। यह वही चारों ओर पाँच योजन चौड़ी प्रजापति की वेदी है और यज्ञ करनेवाले महात्मा कुरु राजा का क्षेत्र है। २२

एक सौ तीस अध्याय

अनेक तीर्थों के माहात्म्य का कीर्त्तन और उशीनर राजा के उपाख्यान का आरम्भ

लोमशजी ने कहा—हे युधिष्ठिर, हज़ारों आदमी मरने की इच्छा से यहाँ पर आते हैं; क्योंकि यहां प्राणत्याग करने से स्वर्ग मिलता है। पहले दक्ष प्रजापति ने यज्ञ समाप्त करने के बाद यह आशीर्वाद दिया था कि जो मनुष्य यहाँ शरीर छोड़ेगा वह स्वर्ग को जीत लेगा।

यह वही बड़े प्रवाहवाली दिव्य सरस्वती नदी और विनशन नाम का निषादराष्ट्र का द्वार है। निषादों के अपराध के कारण सरस्वती नदी उनसे छिपने के लिए यहीं पर पृथ्वी में समा गई है। सरस्वती जहाँ पर फिर प्रकट हुई है उसे चमसोद्भेद कहते हैं। पुण्यदायिनी नदियाँ यहीं पर सरस्वती से मिली हैं।

यह वही महातीर्थ सिन्धु देख पड़ रहा है। हे शत्रुनाशन, लोपामुद्रा ने यहीं पर आकर अगस्त्य को पतिरूप से स्वीकार किया था। इधर इन्द्र को बहुत प्रिय पापनाशन पवित्र प्रभासतीर्थ और विष्णुपद नाम का परम श्रेष्ठ तीर्थ है। यह वही परमरमणीय विपाशा नदी है। भगवान् वशिष्ठ ऋषि पुत्रशोक से दुखी होकर, जान देने के लिए, गले में पत्थर बाँधकर इसी नदी

में फाँद पड़े थे और फिर बन्धनमुक्त होकर ऊपर आ गये थे। सब पुण्यों का कारणरूप महर्षि-
१० सेवित यह काश्मीरमण्डल अपने भाइयों के साथ देखिए। इसी स्थान पर उत्तर दिशा में रहने-
वाले ऋषियों और नहुषनन्दन ययाति का तथा अग्नि और काश्यप का संवाद हुआ था। राजन्,
यह मानसद्वार देख पड़ता है। श्रीमान् रामचन्द्र ने इस पहाड़ पर एक खण्ड बसाया था। वह
विदेह देश के उत्तर में वातिकखण्ड के नाम से प्रसिद्ध है। उसके द्वार को कोई नहीं लाँघ सकता।
यह बड़े आश्चर्य की बात है कि प्रलयकाल के समय इस स्थान पर पार्वती और पार्षदों के साथ
कामरूपी महादेव के दर्शन होते हैं। यज्ञ करनेवाले लोग, परिवार के मङ्गल के लिए, चैत के
महीने में इस सरोवर पर अनेक यज्ञ करके भगवान् शङ्कर की आराधना करते हैं। जितेन्द्रिय
होकर श्रद्धा के साथ इस सरोवर में नहाने से मनुष्य निष्पाप होकर शुभ लोकों को जाता है।

यह वही प्रसिद्ध उज्जानक है। यहीं पर कार्त्तिकेय और अरुन्धती-सहित महर्षि वशिष्ठ
ने शान्ति प्राप्त की थी। सामने कुशवान् नाम के सरोवर में कमल के फूल खिल रहे हैं।
इधर रुक्मिणी का आश्रम है। साध्वी रुक्मिणी ने यहीं शान्ति पाई थी। महाराज, आपने जिस
स्थान पर समाधिस्थ तपस्वियों के रहने की बात सुनी थी, यह वही भृगुतुङ्ग नाम का पर्वत है।

२० महाराज, यह सब पापों का नाश करनेवाली शीतल जलवाली निर्मल वितस्ता नदी देखिए।
ये वे ही यमुना के पास बहनेवाली, महर्षियों के आश्रमों से शोभित, जला और उपजला नाम की
नदियाँ हैं। राजा उशीनर ने इसी जगह यज्ञ करके इन्द्र से भी अधिक प्रतिष्ठा पाई थी। उशीनर
की परीक्षा लेने के लिए इन्द्र और अग्नि, बाज़ और कबूतर का रूप रखकर, एक समय राजसभा
में गये। राजा की यज्ञभूमि में सभा के बीच कबूतर का रूप रक्खे हुए अग्निदेव बाज़ के डर
२४ से व्याकुलता दिखाते हुए राजा के शरणागत हुए। वे राजा की जाँघ पर बैठकर छिप रहे।

एक सौ इकतीस अध्याय

बाज़ और राजा उशीनर का संवाद

यह देखकर बाज़ का रूप रक्खे हुए इन्द्र ने राजा से कहा—महाराज, सब राजा
आपको धर्मात्मा कहते हैं। फिर आप क्यों इस, सब धर्मों के द्वारा अनिश्चित, झगड़े के काम
को कर रहे हैं? देखिए, भूख से मैं बहुत ही व्याकुल हो रहा हूँ। इसलिए आप धर्म के
लोभ से मेरे इस विधिविहित आहार को मत बचाइए। जो आप मेरा यह आहार छीन लेंगे तो
अवश्य आपको अधर्म होगा।

राजा ने कहा—सुनो पक्षिराज, यह कबूतर तुम्हारे डर के मारे प्राण बचाने के लिए
मेरी शरण में आया है। क्या तुम नहीं जानते कि इसे मैं जो न दूँगा—इसे बचा लूँगा—
तो मुझे परम धर्म होगा? यह डर के मारे भागकर मेरी शरण में आया है; इसे छोड़

देना बहुत ही निन्दित काम होगा। जो कोई शरणागत की रक्षा नहीं करता उसे लोकमाता गाय की हत्या और ब्रह्महत्या के समान पाप लगता है।

बाज़ ने कहा—महाराज, सब प्राणी आहार से ही जन्म लेते हैं, आहार से ही बढ़ते हैं और जीते हैं। जिसका त्याग करना बहुत ही कठिन है उस धन का त्याग करके भी बहुत समय तक जीवित रहा जा सकता है; किन्तु भोजन छोड़कर जीते रहना सम्भव नहीं। आज भोजन न मिला तो मैं मर जाऊँगा। मेरी मृत्यु होने पर मेरे पुत्र-स्त्री आदि भी मर जायँगे। इसलिए आज आप एक कबूतर की रक्षा के लिए बहुत से प्राणियों की हत्या कर रहे हैं। जिस धर्म के करने से दूसरी ओर धर्म पर चोट लगे, वह धर्म नहीं कहा जा सकता। अविरोधी धर्म ही धर्म कहे जाने के योग्य है। जब दो परस्पर-विरुद्ध धर्म आकर उपस्थित हों तब उनकी छुटाई-बड़ाई का निश्चय करके बाधाहीन धर्म ही करना चाहिए। इस प्रकार धर्माधर्म का निराकरण करते हुए छुटाई-बड़ाई का विचार करके जिससे अधिक लाभ की आशा हो वही करना चाहिए। १०

राजा ने कहा—हे पक्षिराज, तुम क्या संशयहीन रूप से धर्म के तत्त्व को जानते हो? तुम बहुत अच्छी धर्म की ऐसी विचित्र बातें कह रहे हो, जिनसे जान पड़ता है कि तुम सभी विषय जानते हो। किन्तु शरण चाहनेवाले को विमुख कर देना तुम्हें कैसे युक्तिसङ्गत जान पड़ता है? ख़ैर, तुम आहार के लिए ही तो ऐसा कर रहे हो। सो तुम इस कबूतर को छोड़कर और प्रकार से भी तो अधिक आहार की सामग्री पा सकते हो। अतएव साँड़, मृग, वराह, भैंसे आदि पशुओं में से जिसका मांस तुम चाहो उसका मैं अभी मँगा दूँ।

बाज़ ने कहा—महाराज! मैं वराह, मृग आदि किसी का मांस नहीं खाता। और प्रकार के विविध भोजनों से भी मुझे कुछ प्रयोजन नहीं। विधाता ने जिसे मेरा आहार बना दिया है उस इस कबूतर को ही छोड़ दीजिए। यह सनातन नियम है कि बाज़ कबूतर का शिकार करता और उसे खाता है। इसलिए आप पहले भीतर के सारांश को देखे बिना केले के ऊपर मत चढ़िए। (मतलब यह कि आपका यह शरणागत-रक्षारूपी धर्म निःसार है।) २०

राजा ने कहा—पक्षिराज, मैं तुमको शिविवंश का भरा-पूरा राज्य, या तुम और जो कुछ माँगो, सब देने को तैयार हूँ। किन्तु इस शरण चाहनेवाले कबूतर को मैं किसी तरह नहीं छोड़ सकता। बोलो, तुम इस कबूतर को किस शर्त पर छोड़ सकते हो; मैं अभी उसको पूरी करूँगा। इसे किसी तरह तुमको नहीं दूँगा।

बाज़ ने कहा—महाराज, जो कबूतर पर आपको इतनी दया है तो अपने शरीर का मांस काटकर, इस कबूतर के बराबर तौलकर, मुझे दीजिए। मैं सन्तुष्ट होकर इस कबूतर को छोड़ दूँगा। राजा ने कहा—पक्षिराज, तुमने अपनी यह इच्छा प्रकट करके मुझ पर बड़ी कृपा की। मैं अभी इस कबूतर के बराबर अपने शरीर का मांस काटकर तुमको तौले देता हूँ।

लोमशजी कहते हैं—परमधर्मज्ञ राजा उशीनर ने तराज़ू मँगाकर एक पलड़े पर कबूतर को रक्खा और दूसरे पलड़े पर अपने शरीर का मांस काटकर रख दिया। किन्तु उनका वह उतना मांस कबूतर के बराबर नहीं हुआ। तब राजा ने फिर मांस काटकर उस पर चढ़ाया, तब भी वह कबूतर के बराबर नहीं हुआ। इस प्रकार शरीर का सारा मांस काटकर चढ़ा देने पर भी जब पूरा वज़न नहीं हुआ तब अन्त को राजा ख़ुद उस पलड़े पर बैठ गये। यह देखकर बाज़ ने कहा—महाराज, बस रहने दीजिए। मैं इन्द्र हूँ और ये कबूतर के रूप में अग्निदेव हैं। हम दोनों तुम्हारे धर्मभाव की परीक्षा लेने के लिए तुम्हारे यज्ञमण्डप में आये हैं। तुमने धर्मपालन के लिए अपने शरीर का मांस तक काटकर दे दिया, इससे संसार में तुम्हारी कीर्त्ति अक्षय होगी और तुमको अक्षय स्वर्गलोक प्राप्त होगा। ३०

अब दोनों देवता स्वर्ग को चले गये। धर्मात्मा उशीनर भी पृथ्वी और स्वर्ग में अपने धर्म को प्रसिद्ध करके अन्त को स्वर्गीय तेजवाला दिव्य शरीर पाकर स्वर्गलोक को सिधारे। राजन्, आप मेरे साथ महात्मा उशीनर का यह वही परम पवित्र पापमोचन स्थान देखिए। पुण्यात्मा महात्मा ब्राह्मण इसी स्थान पर देवताओं और सनातन ऋषियों के दर्शन पाते हैं। ३४

एक सौ बत्तीस अध्याय

अष्टावक्र ऋषि का उपाख्यान

लोमशजी ने कहा—महाराज, जो उद्दालक ऋषि के पुत्र श्वेतकेतु संसार में वेदमन्त्रों के पूरे ज्ञाता कहलाते हैं उनका यह बहुत से फलोंवाले वृक्षों से शोभित पवित्र आश्रम देखिए। उक्त महर्षि ने इसी स्थान पर मनुष्यरूपिणी सरस्वती के दर्शन पाये थे। दर्शन पाकर उन्होंने सरस्वती

से यह वर माँगा कि मैं वाणी का जाननेवाला होऊँ। उस युग में कहोड ऋषि के पुत्र अष्टावक्र और उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु, ये दोनों मुनि वेदज्ञानियों में श्रेष्ठ समझे जाते थे। ये दोनों मामा और भानजे थे। दोनों अमित प्रभावशाली और तपस्वी थे। विदेहराज के यज्ञमण्डप में जाकर इन दोनों ने शास्त्रार्थ में वन्दी नाम के विद्वान् को हराया था। शास्त्रार्थ में निपुण, ब्राह्मणों में श्रेष्ठ, बचपन में ही जनक के यज्ञ में विद्वान् बन्दी को शास्त्रार्थ में परास्त करके नदी में डुबानेवाले अष्टावक्र के नाना का यह अत्यन्त पवित्र आश्रम है। आप अपने भाइयों सहित इस आश्रम में चलिए।

युधिष्ठिर ने कहा—ब्रह्मन्, बन्दी को शास्त्रार्थ में परास्त करनेवाले अष्टावक्र ऋषि का कैसा प्रभाव था? और उनका अष्टावक्र नाम क्यों पड़ा? आप यह सब विस्तार के साथ मुझसे कहिए। लोमशजी ने कहा—महाराज, उद्दालक के कहोड नाम के एक शिष्य थे। उन्होंने गुरु-सेवा करके, गुरु के वश में रहकर, बहुत दिनों तक वेद पढ़े और मन-वाणी-काया से गुरु की सेवा की। उनकी सेवा देखकर उद्दालक बहुत प्रसन्न हुए। उद्दालक ने उनको सब वेद पढ़ाकर अपनी सुजाता नाम की बेटी ब्याह दी। कुछ समय में सुजाता के गर्भ रह गया। अग्निसदृश तेजस्वी बालक ने गर्भ के भीतर से ही पिता से कहा—पिताजी, आप रात भर वेद पढ़ते रहते हैं, पर आपका पाठ ठीक नहीं होता। [इस गर्भ में रहकर ही आपके प्रसाद से मैंने सब शास्त्र पढ़ लिये हैं, अङ्गों-सहित वेदों का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। इसी से कहता हूँ, आपका वेद-पाठ ठीक नहीं होता।] १०

शिष्यमण्डली के बीच यों कहने से अपना अपमान समझकर क्रोधित ऋषि ने अपने गर्भ-स्थित पुत्र को शाप देते हुए कहा—तुम गर्भ के भीतर से ही मुझसे यों [टेढ़ी बात] कहते हो, इस कारण आठ जगह से वक्र (टेढ़े) होकर तुम उत्पन्न होगे। मुनि के कहने के अनुसार वह बालक आठ जगह से टेढ़ा होकर उत्पन्न हुआ। उसका नाम अष्टावक्र ही हुआ। श्वेतकेतु अष्टावक्र के मामा थे। दोनों की अवस्था भी बराबर थी।

अष्टावक्र जब गर्भ में ही थे और गर्भ में ही क्रमशः बढ़ते जाते थे तब सुजाता ने, ग़रीबी से पीड़ित होकर धन की इच्छा से, एकान्त में पति के पास जाकर कहा—हे ऋषिश्रेष्ठ, मुझे कोई उपाय नहीं सूझता। मेरा यह दसवाँ महीना आ गया है। आप बिलकुल निर्धन हैं। बालक उत्पन्न होने पर मैं किस तरह इस विपत्ति से छुटकारा पाऊँगी?

सुजाता के यों कहने पर धन की प्रत्याशा से कहोड मुनि राजा जनक के यहाँ गये। वहाँ शास्त्रार्थ करने में चतुर बन्दी ने उन्हें परास्त करके पानी में डुबा दिया। यह वृत्तान्त जब उद्दालक को मालूम हुआ तब उन्होंने सुजाता से कहा कि यह हाल अष्टावक्र से छिपाये रहना। सुजाता ने पिता की आज्ञा का पालन किया। इस कारण जन्म होने पर भी अष्टावक्र को यह हाल नहीं मालूम हुआ। वे उद्दालक को पिता और श्वेतकेतु को भाई समझते थे। इसके

वाद वारह वर्ष वीत गये। एक दिन श्वेतकेतु ने अपने पिता उद्दालक की गोद में बैठे हुए अष्टावक्र को, दोनों हाथ पकड़कर, खींच लिया। जव अष्टावक्र रोने लगे तव श्वेतकेतु ने कहा—यह तुम्हारे पिता की गोद नहीं है। उनके ये कटु वचन सुनकर अष्टावक्र को वड़ा दुःख हुआ। उन्होंने अपनी मा के पास उसी समय जाकर पूछा—माता, मेरे पिता कहाँ हैं? सुजाता ने कष्ट से व्याकुल होकर इस डर से कि कहीं पुत्र शाप न दे दे, आदि से अन्त तक सव वृत्तान्त कह दिया। सव सुनकर रात को ही अष्टावक्र अपने मामा श्वेतकेतु के पास गये। वहाँ जाकर उन्होंने

२० कहा—चलो मामा, राजा जनक के यज्ञ में चलें। सुना है, उनका यह यज्ञ वड़ा अद्‌भुत है। हम वहाँ चलकर ब्राह्मणों के शास्त्रार्थ सुनेंगे और वहुत सा धन पावेंगे। सुन्दर कल्याणमय वेद-पाठ सुनने से हम विचक्षण होंगे। इसके वाद मामा-भानजे दोनों राजा जनक के महायज्ञ को गये। रास्ते में राजा से भेंट हुई

२३ परन्तु द्वारपाल ने अष्टावक्र को भीतर जाने से रोका।

एक सौ तेंतीस अध्याय

द्वारपाल और अष्टावक्र का संवाद

अष्टावक्र ने कहा—महाराज, ब्राह्मण सामने न हो तो पहले यथाक्रम अन्धे, वहरे, स्त्री, वोझ लादे हुए व्यक्ति और राजा को रास्ता देना चाहिए। किन्तु जो ब्राह्मण उपस्थित हो तो पहले उसी को जाने की राह देनी चाहिए। राजा ने कहा—मैं आपको राह देता हूँ; आप मज़े में जाइए। अग्नि कभी छोटा नहीं है। इन्द्र भी सदा ब्राह्मणों को प्रणाम करते हैं। अष्टावक्र ने कहा—हम अत्यन्त कौतूहलवश आपका यज्ञ देखने यहाँ आये हैं। हम अतिथि हैं। भीतर जाने के लिए आपके द्वारपाल से आज्ञा माँगते हैं। राजन्, हमें यज्ञ देखने की

इच्छा है। हम आपको देखने और आपसे बातचीत करने के लिए आये हैं। यह द्वारपाल भीतर जाने की राह नहीं देता, इससे हमारे हृदय में क्रोध भड़क रहा है।

द्वारपाल ने कहा—हे विप्र, मैं पण्डितवर वन्दी की आज्ञा का पालन करता हूँ। मैं जो कहता हूँ सो सुनिए। बूढ़े और चतुर ब्राह्मण ही इस यज्ञ में जाने के अधिकारी हैं; बालकों को इसके भीतर जाने का अधिकार नहीं। अष्टावक्र ने कहा—जो यहाँ बूढ़ों को जाने का अधिकार है तो हम भी भीतर जा सकते हैं; क्योंकि हम ब्रह्मचारी और वेदपाठी होने के कारण ज्ञानवृद्ध हैं। फिर हम तो बड़ों की सेवा करनेवाले, जितेन्द्रिय, ज्ञानी और सब शास्त्रों के पण्डित हैं। इसलिए बालक समझकर हमारा अपमान मत करो। आग थोड़ी होने पर भी छूते ही जला देती है। द्वारपाल ने कहा—ब्राह्मण, जो मालूम हो तो मुनिगण-सेवित एकाक्षरा बहुरूपिणी विराज-वाणी का प्रयोग करो। वृथा अपनी बड़ाई क्या कर रहे हो? अपने को बालक ही समझो। विद्वान् पुरुष बहुत ही दुर्लभ हैं।

अष्टावक्र ने कहा—शरीर के बढ़ जाने से कोई बूढ़ा नहीं होता। सेमर के फल के भीतर की गाँठ, जिसमें रुई ही भरी होती है, जैसे बड़ी होने पर भी असार होती है वैसे ही केवल शरीर का बढ़ जाना है। जो छोटा, फलसम्पन्न और छोटे आकार का है वही वृद्ध है। जो फलहीन है वह वृद्ध भी नहीं है। द्वारपाल ने कहा—बालकों को बूढ़ों से ही ज्ञान प्राप्त होता है। थोड़े समय में ज्ञान प्राप्त कर लेना सबकी शक्ति से बाहर है। इसलिए बालक होकर तुम बूढ़ों की सी बातें क्यों करते हो! १०

अष्टावक्र ने कहा—सिर के बाल सफ़ेद होने से ही कोई बूढ़ा नहीं हो जाता। जो व्यक्ति बालक होकर भी ज्ञानी है, उसे ही देवताओं ने स्थविर (वृद्ध) कहा है। ऋषियों के स्थापित धर्म के अनुसार अवस्था से, बाल पकने से, धन से या बन्धुओं के अधिक होने से, किसी तरह महत्त्व नहीं मिलता। साङ्गोपाङ्ग वेद के जाननेवाले विद्वान् ही महत् और वृद्ध हैं। विद्वान् वन्दी को देखने के लिए हम राजसभा में आये हैं। इसलिए हे द्वारपाल, पुष्करमालाधारी जनक महाराज को हमारे आने की ख़बर दो। तुम देखना, अभी हम शास्त्रार्थ में वन्दी को परास्त करके राजा को, विद्याविशारद ब्राह्मणों को और पुरोहितों को आश्चर्य में डाल देंगे। तब तुम जानोगे, हम बालक हैं या बूढ़े।

द्वारपाल ने कहा—हे ब्राह्मण के बालक, जिस यज्ञ में विद्वान् और शिक्षित लोग ही जाने पाते हैं वहाँ तुम दस वर्ष के बालक कैसे जाओगे? ख़ैर, मैं उपाय करता हूँ जिसमें तुम भीतर जा सको; तुम भी यथाशक्ति प्रयत्न करो।

तब अष्टावक्र ने राजा जनक से कहा—हे महात्मा महाराज जनक, आप सम्राट् हैं और आपके अधिकार में सब प्रकार की समृद्धि है। पूर्व-समय में केवल राजा ययाति ने सब यज्ञ

किये थे और इस समय आप सब यज्ञों को कर रहे हैं। सुना है, आपके यहाँ का वन्दी बड़ा पण्डित और विद्वान् है। वह शास्त्रियों को, शास्त्रार्थ में परास्त करके, वेखटके आपकी आज्ञा से अपने आदमियों-द्वारा जल में डुबवा देता है। यह सुनकर मैं भी ब्राह्मणों के समीप अद्वैत ब्रह्म-वाद के सम्बन्ध में कुछ कहने आया हूँ। बताइए, वह वन्दी कहाँ है ? सूर्य जैसे नक्षत्रों का तेज हर लेते हैं वैसे ही मैं उसे परास्त करूँगा। राजा ने कहा—हे ब्राह्मणकुमार, आप वन्दी के विद्याबल को विना जाने ही उसे परास्त करने की इच्छा कर रहे हैं। जो लोग वन्दी के प्रभाव २० को नहीं जानते वे ही इस तरह कहते हैं। बहुत से वेदपाठी ब्राह्मणों ने उसकी परीक्षा की है। यह निश्चय है कि उसका बुद्धि-विद्या-बल विना जाने ही आप उसे परास्त करने की इच्छा कर रहे हैं। सूर्य का उदय होने पर तारागण जैसे श्रीहीन हो जाते हैं वैसे ही उससे शास्त्रार्थ करके अनेकों ब्राह्मण अपमानित और लज्जित हुए हैं। ज्ञान का अभिमान रखनेवाले लोग वन्दी को हराने की इच्छा से उसके पास आते ही स्वयं हारकर चले जाते हैं; सभा में स्थित और लोगों से फिर बात ही नहीं कर सकते।

अष्टावक्र ने कहा—महाराज, वन्दी ने कभी मुझ ऐसे आदमी से शास्त्रार्थ नहीं किया। इसी से वह सिंह की तरह गरजता है। आज वह मेरे सामने आते ही निहत होकर राह में टूटे छकड़े की तरह निश्चल भाव से पड़ा रहेगा। राजा ने कहा—ब्राह्मण, जो पुरुष तीस अङ्गवाले, बारह अंशवाले, चौबीस पर्ववाले, तीन सौ साठ आरेवाले पदार्थ के अर्थ को जानता है वही सबसे बड़ा पण्डित है। अष्टावक्र ने कहा—महाराज! चौबीस पर्व, छः नाभि, बारह प्रधि और तीन सौ साठ आरेवाला वही शीघ्रगामी कालचक्र आपकी रक्षा करे। राजा ने कहा—जो दो वस्तुएँ घोड़ों के समान संयुक्त और बाज़ पक्षी के समान टूट पड़नेवाली हैं उनका देवताओं में से कौन देवता गर्भाधान करता है ? और वे वस्तुएँ क्या उत्पन्न करती हैं ? अष्टावक्र ने कहा—महा-राज, वे दोनों आपके शत्रु के घर में भी न हों। वायु जिसका सारथी है वह मेघ उनका जन्म-दाता है और वे भी मेघ को उत्पन्न करती हैं। राजा ने फिर पूछा—सोते समय आँखें कौन नहीं मूँदता ? जन्म लेकर कौन नहीं हिलता ? हृदय किसके नहीं है ? और कौन चीज़ वेग के साथ बढ़ती है ? अष्टावक्र ने कहा—मछली सोते समय आँखें नहीं मूँदती। अण्डा उत्पन्न होकर हिलता-डुलता नहीं है। पत्थर के हृदय नहीं है। नदी वेग से बढ़ती है।

राजा ने कहा—हे देवसत्त्व, आप मनुष्य नहीं जान पड़ते। आप बालक भी नहीं हैं। मैं आपको वृद्ध मानता हूँ। वचन-चातुरी में कोई भी आपकी बराबरी नहीं कर सकता। मैं ३० आपको मण्डप के भीतर जाने के लिए राह दिलाता हूँ। देखिए, यह वही बन्दी है।

एक सौ चौंतीस अध्याय

अष्टावक्र और वन्दी का संवाद

अष्टावक्र ने कहा—हे राजेन्द्र, इस सभा में उग्रसेन आदि अद्वितीय प्रतापी राजा लोग आये हैं। उनके बीच मैं पहचान नहीं सकता कि शास्त्रार्थ करनेवालों में श्रेष्ठ वन्दी कौन है। गहरे जल में पड़े हंस की तरह उसे इधर-उधर देखता फिरता हूँ। हे अपने को बड़ा भारी तर्क-शास्त्री समझनेवाले वन्दी, नदी का जल जैसे सूर्य के प्रताप से सूख जाता है वैसे ही मैं तुम्हारी वाक्यधारा को रोक दूँगा। मैं जलती हुई आग के समान तेजस्वी हूँ। इसलिए इस समय मेरे आगे स्थिर हो जाओ। क्रोधित साँप और सोये हुए बाघ को मत छेड़ना। तुम निश्चय जानो कि क्रोधित साँप और सोये बाघ को लात मारकर कोई भी कुशल से नहीं रह सकता। जो व्यक्ति बिलकुल ही दुर्बल है वह पहाड़ को तोड़ने के लिए शेख़ी के मारे यदि उस पर चोट करता है तो उसी के हाथ में चोट आती है, ना.ख़ून दबकर फट जाते हैं, किन्तु पहाड़ का कुछ नहीं बिगड़ता। जैसे मैनाक पर्वत सब पर्वतों में श्रेष्ठ है और वत्सों में गाय का बछड़ा प्रधान है वैसे ही राजा जनक सब नरेशों में श्रेष्ठ हैं। जैसे देवताओं में इन्द्र और नदियों में गङ्गाजी प्रधान हैं वैसे ही महाराज, आप भी सब राजाओं में श्रेष्ठ हैं। इसलिए वन्दी को मेरे सामने लाइए।

लोमशजी कहते हैं कि हे युधिष्ठिर, इस प्रकार क्रोधित अष्टावक्र ने सभा में गरजकर कहा—हे वन्दी, आओ, हम परस्पर उत्तर-प्रत्युत्तर करें। वन्दी ने कहा—एक आग कई प्रकार से जलाई जाती है; सूर्य एक होकर भी सारे जगत् को प्रकाशित करते हैं; एक वीर इन्द्र सब शत्रुओं के नाशक हैं और एक यमराज सब पितरों के स्वामी हैं। अष्टावक्र ने कहा—इन्द्र और अग्नि, ये दोनों सखा एक साथ विचरते हैं; नारद और पर्वत, दोनों देवर्षि हैं; अश्विनीकुमार दो हैं; रथ के पहिये दो होते हैं और विधाता के विधान के अनुसार स्त्री और पति दो जने होते हैं। वन्दी ने कहा—कर्म से तीन तरह के जन्म होते हैं; तीन वेद मिलकर वाजपेय यज्ञ को सम्पन्न करते हैं; अध्वर्युगण तीन तरह के स्नानों की विधि बताते हैं; लोक तीन प्रकार के हैं और ज्योति के भी तीन भेद कहे गये हैं। अष्टावक्र ने कहा—ब्राह्मणों के आश्रम चार प्रकार के हैं; १० चार वर्ण यज्ञ को सम्पन्न करते हैं; दिशाएँ चार हैं; वर्ण चार प्रकार के हैं और गाय के चार पैर होते हैं। वन्दी ने कहा—अग्नि पाँच हैं; पंक्ति छन्द में पाँच चरण होते हैं; यज्ञ पाँच प्रकार के हैं; इन्द्रियाँ पाँच हैं; वेद में चैतन्यप्रमाण, विकल्प, विपर्यय, निद्रा और स्मृति, ये पाँच प्रकार की वृत्तियाँ कही हैं और पञ्चनद देश सर्वत्र पवित्र कहा जाता है। अष्टावक्र ने कहा—अग्न्याधान की दक्षिणा में छः गोदान की विधि है; ऋतुएँ छः हैं; इन्द्रियाँ छः हैं; कृत्तिका छः हैं और सारे वेद में छः साद्यस्क यज्ञ की विधि का वर्णन है। वन्दी ने कहा—ग्राम्य पशु सात प्रकार के होते हैं; जङ्गली पशु भी सात प्रकार के होते हैं; सात छन्दों से एक यज्ञ सम्पन्न होता है; ऋषि सात हैं; पूजनीय

सात हैं और वीणा का नाम सप्ततन्त्री है। अष्टावक्र ने कहा—आठ गोणी का एक शतमान (माप) होता है; सिंह को मारनेवाले शरभ के आठ पैर होते हैं; देवताओं में आठ वसु हैं और सभी यज्ञों में आठ पहल का यूप होता है। वन्दी ने कहा—पितृयज्ञ में नव 'सामिधेनी' होती हैं; नव योगों से सृष्टिक्रिया होती है; बृहती छन्द के चरण में नव अक्षर होते हैं और गणित के अङ्क नव हैं। अष्टावक्र ने कहा—दिशाएँ दस हैं: दस सैकड़ों का एक हज़ार होता है; स्त्रियों का गर्भ दस महीनों में पूरी अवस्था को प्राप्त होता है; तत्त्व के उपदेशक दस हैं, अधिकारी दस हैं और द्वेष करनेवाले भी दस ही हैं। वन्दी ने कहा—इन्द्रियों के विषय ग्यारह प्रकार के हैं; वे एकादश विषय ही जीवरूपी पशु के बन्धन का खम्भा हैं; प्राणियों के विकार ग्यारह प्रकार के हैं और रुद्र ग्यारह प्रसिद्ध हैं। अष्टावक्र ने कहा—वर्ष बारह महीनों में पूरा होता है; जगती छन्द के चरण में बारह अक्षर होते हैं; बारह दिनों में प्राकृत यज्ञ पूरा होता है और बारह आदित्य सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। वन्दी ने कहा—त्रयोदशी तिथि पुण्यतिथि कही गई है; पृथ्वी के तेरह द्वीप हैं—

इतना आधा ही कहकर वन्दी चुप हो रहा। तब उसकी पूर्त्ति करते हुए उसी समय अष्टावक्र ने कहा कि आत्मा के भोग तेरह प्रकार के हैं और बुद्धि आदि तेरह उसकी रुकावटें २० हैं। इसके बाद वन्दी को नीचे मुँह किये चुप होकर सोचते और अष्टावक्र को वाग्विवाद में तेज़ पड़ते देखकर सभा में बड़ा कोलाहल सुन पड़ने लगा। राजा जनक के उस समृद्धिशाली यज्ञ-मण्डप में कोलाहल होने लगा। ब्राह्मण लोग हाथ जोड़कर अष्टावक्र के पास आ गये और सम्मान के साथ उनकी पूजा और प्रशंसा करने लगे। तब अष्टावक्र ने कहा—इस वन्दी ने ब्राह्मणों को विवाद में हराकर पहले पानी में डुबवा दिया है। इसलिए इसे भी पकड़कर शीघ्र जल में डुबा दो। वन्दी ने कहा—मैं वरुण का पुत्र हूँ। वे राजा जनक के समान, इतने ही दिनों का, बारह वर्ष में समाप्त होनेवाला यज्ञ कर रहे हैं। मैंने इसी कारण ब्राह्मणों को जल-मार्ग से वहाँ भेजा है। वे सब ब्राह्मण उनका यज्ञ देखने गये हैं; वहाँ से फिर चले आवेंगे। मैं इन पूजनीय अष्टावक्र ऋषि की पूजा करता हूँ; क्योंकि मैं आज इनकी कृपा से अपने पूजनीय पिता वरुण देव के दर्शन करूँगा।

अष्टावक्र ने कहा—ब्राह्मण लोग जिसके वाक्य या बुद्धि से हारकर समुद्र के जल में डुबाये गये हैं, वन्दी की उस वाक्यावली और बुद्धि को अपनी बुद्धि और वाक्यों से मैंने जिस तरह परास्त किया है सो सभी सज्जनों ने जान लिया।* जातवेदा अग्नि जैसे स्वभाव से ही जलानेवाले होकर भी साधु-सज्जनों के शरीर को छूने से भी नहीं जलाते, वैसे ही बुद्धिमान् लोग बच्चों और अपने बालकों की बातों पर ध्यान नहीं देते। हे जनक, या तो श्लेष्मातकी (एक वृक्ष)

* उस वेदमयी वाणी का, मेधा-सहित—जिसे कि वन्दी ने कुतर्क-रूपी समुद्र में डुबा दिया था—मैंने जिस तरह उद्धार किया है, उसको पण्डित लोग जांचें।

के फलों को खाकर आपकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है (प्रसिद्ध है कि इस वृक्ष का फल खाने से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है) और या लोगों के मुँह से अपनी स्तुति सुनकर आपको मद हो गया है। इसी कारण आप हाथी की तरह आघात पाकर भी मेरी बातों पर ध्यान नहीं देते। जनक ने कहा—हे ब्राह्मणबालक, आप साक्षात् देवरूप हैं। इसी से मैं आपके ये दिव्यरूप अमानुष वाक्य चुपचाप सुन रहा हूँ। आपसे वाद-विवाद में वन्दी परास्त हुए। इसलिए आप अपनी इच्छा के अनुसार उनके साथ व्यवहार कर सकते हैं। अष्टावक्र ने कहा—वन्दी जीवित रहे, तो इससे मुझे कुछ लाभ न होगा। इसलिए जो वरुण इसके पिता हैं तो इसे समुद्र में डुबा दीजिए। ३०

वन्दी ने कहा—मैं वरुणदेव का पुत्र हूँ। इस कारण जल में डूबने से मुझे कुछ खटका नहीं है। अष्टावक्र इसी घड़ी बहुत दिन से खोये हुए अपने पिता कहोड के दर्शन पावेंगे। लोमशजी कहते हैं—इसके बाद जल में पहले के डूबे हुए सब ब्राह्मण महात्मा वरुण से पूजा पाकर जल से बाहर निकले और राजा जनक के पास आये। उनमें कहोड भी थे। उन्होंने राजा से कहा—महाराज, मनुष्य इसी लिए पुत्र की इच्छा करते हैं। मैं जो नहीं कर सका था उसे मेरे पुत्र ने कर दिखाया। मैंने समझ लिया कि निर्बल के बली, अनभिज्ञ के पण्डित और मूर्ख के विद्वान् पुत्र भी उत्पन्न होता है। काल स्वयं पैना फरसा लेकर युद्ध में आपके शत्रुओं के सिर काटता है। आपका भला हो। आपके इस यज्ञ में अच्छी तरह से खूब सोमरस पिलाया गया है, उक्थ्य और साम का गान हुआ है। देवताओं ने परम प्रसन्न हो स्वयं आकर पवित्र यज्ञ के भागों को ग्रहण किया है।

लोमशजी कहते हैं—हे युधिष्ठिर, इस प्रकार जल में डूबे हुए ब्राह्मण और भी अधिक तेजस्वी होकर जल से बाहर निकल आये। तब वन्दी, राजा जनक से आज्ञा लेकर, समुद्र में घुस गया। अष्टावक्र भी वन्दी को हराकर, अपने पिता की पूजा करवाकर और ब्राह्मणों से यथोचित सत्कार पाकर, मामा के साथ अपने पवित्र आश्रम को लौट आये। अब

कहोड ने अपनी स्त्री के सामने अष्टावक्र से इसी समङ्गा नदी में स्नान करने के लिए कहा। अष्टा-वक्र ने स्नान किया। नहाते ही उनका कुबड़ापन दूर हो गया। तभी से यह पुण्यनदी समङ्गा नाम से प्रसिद्ध हुई। इसलिए आप भी भाइयों-सहित और द्रौपदी-समेत इस नदी में स्नान कीजिए और इसका जल पीजिए। इस स्थान पर आप ब्राह्मणों और भाइयों के साथ रहकर ४१ और भी अनेक पुण्यकार्य कीजिए।

एक सौ पैंतीस अध्याय

यवक्रीत के उपाख्यान का आरंभ

लोमशजी कहते हैं—महाराज, यह वही पुण्यजननी समङ्गा नदी वह रही है। यह देखिए, भरत की कर्दमिल नाम की अभिषेक-भूमि है। कहा जाता है कि इन्द्र को वृत्रासुर के मारने से जब हत्या लगी थी तब इसी समङ्गा में स्नान करने से उनका वह पाप दूर हुआ था। यह वही विनशन तीर्थ मैनाक पर्वत के पास है। पहले किसी समय अदिति ने पुत्र की इच्छा से यहीं पर भोजन बनाया था। आप लोग इस पर्वतराज पर चढ़कर अयश का कारण जो अलक्ष्मी है उसके डर से अपने को छुड़ाइए। राजन्, वह सामने कनखल नाम की पर्वतमाला महानदी गङ्गा के साथ देख पड़ती है। इस पर्वतमाला पर अनेक ऋषि रहते हैं। पहले किसी समय भगवान् सनत्कुमार ने इसी स्थान पर सिद्धि प्राप्त की थी। राजन्, यहाँ स्नान करने से सब पाप नष्ट हो जायँगे। हे युधिष्ठिर, मन्त्री-सहित इस पवित्र ह्रद, भृगुतुङ्ग पर्वत तथा उष्णी और गङ्गा नदियों में स्नान कीजिए। यह तपस्वी स्थूलशिरा का रमणीय आश्रम है। आप यहाँ पर अभिमान और क्रोध को छोड़ दीजिए। हे पाण्डव, वह श्रीमान् रैभ्य का आश्रम है। इसी स्थान पर भरद्वाज के पुत्र महाकवि यवक्रीत की मृत्यु हुई थी।

१० युधिष्ठिर ने कहा—ब्रह्मन्, भरद्वाज के पुत्र महातेजस्वी यवक्रीत कैसे योगाभ्यासी तपस्वी थे? किस लिए और क्योंकर उनका नाश हुआ? मैं आदि से अन्त तक यह उपाख्यान सुनना चाहता हूँ; क्योंकि देवतुल्य व्यक्तियों के किये कामों को सुनने से मुझे अत्यन्त आनन्द होता है।

लोमशजी ने कहा—हे युधिष्ठिर, भरद्वाज और रैभ्य दोनों परम मित्र थे। दोनों इस स्थान पर बहुत समय तक परम प्रीति के साथ रहे। रैभ्य के अर्वावसु और परावसु नाम के दो पुत्र हुए और भरद्वाज के यवक्रीत उत्पन्न हुए। रैभ्य और उनके दोनों पुत्र बड़े विद्वान् थे और भरद्वाज केवल तपस्वी थे। बाल्यकाल से ही रैभ्य और उनके पुत्रों की कीर्त्ति दिग्दिगन्त में फैल गई। यवक्रीत अपने तपस्वी पिता का अनादर और रैभ्य तथा उनके पुत्रों का इतना सम्मान देखकर बहुत ही दुखी हुए। वेद का ज्ञान प्राप्त करने के लिए वे घोर तप करने लगे। जलती हुई आग में अपने शरीर को तपाकर उन्होंने इन्द्र को सन्तप्त कर दिया। तब इन्द्र ने उनके पास

आकर पूछा—हे ऋषिकुमार, आप किस लिए ऐसा कठोर तप कर रहे हैं? यवक्रीत ने कहा—हे इन्द्र, मैं उन वेदों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह तप कर रहा हूँ जिन्हें अन्य ब्राह्मणों ने नहीं पढ़ा। मतलब यह कि केवल ज्ञानप्राप्ति के लिए ही मेरा यह अनुष्ठान है। मैं तप के ही प्रभाव से सब ज्ञान-विज्ञान जान लेना चाहता हूँ। गुरु के मुँह से वेद की शिक्षा थोड़े दिनों में नहीं मिल सकती। इसी कारण मैं यह महान् और अद्भुत उद्योग कर रहा हूँ। इन्द्र ने कहा—आपने बिलकुल उलटा मार्ग ग्रहण किया है। इसलिए वृथा आत्महत्या का क्या प्रयोजन है? गुरु के पास जाकर वेद पढ़ लीजिए। २०

लोमशजी कहते हैं—महाराज, यह कहकर इन्द्र चले गये। परम पराक्रमी यवक्रीत फिर तप करने लगे। सुना है कि अत्यन्त घोर तप करके उन्होंने फिर इन्द्र को बहुत सताया। तब इन्द्र उन महर्षि को ऐसा कठोर तप करते देखकर फिर उनके पास आये। उन्हें मना करके इन्द्र ने कहा—हे ब्राह्मण, आपका यह उद्योग बुद्धिमान् का काम नहीं है। इससे कभी आपका यह मनोरथ सिद्ध न होगा। मैं कहे देता हूँ कि आपको और आपके पिता को बिना पढ़े वेदों का ज्ञान न होगा। यवक्रीत ने कहा—हे इन्द्र, आपने मेरा मनोरथ पूरा नहीं किया, इसलिए मैं और भी कठोर नियमों का पालन करके ऐसा तप करूँगा जैसा किसी ने आज तक न किया होगा। मैं अपने सब अङ्ग-प्रत्यङ्गों को काटकर जलती हुई आग में होम कर दूँगा।

लोमशजी कहते हैं—इन्द्र यवक्रीत के इस इरादे का हाल जानकर मन ही मन उन्हें इस उद्योग से रोकने का उपाय सोचने लगे। अन्त को वे कई सौ वर्ष के बूढ़े यक्ष्मारोगी दुर्बल तपस्वी ब्राह्मण का रूप रखकर, भागीरथी के पास यवक्रीत के स्नान के योग्य तीर्थ-भूमि पर, एक बालू का पुल बनाने लगे। ३० इसके बाद ब्राह्मणश्रेष्ठ यवक्रीत ने जब उनके कहे को नहीं माना तब वे उसी बालू को मुट्ठी-मुट्ठी भर लेकर गङ्गा को पाटने के लिए जल में छोड़ने लगे और यवक्रीत को दिखाते हुए गङ्गा में पुल बनाने का उद्योग करने लगे।

मुनिश्रेष्ठ यवक्रीत उनको इस प्रकार गङ्गा का पुल बनाने की चेष्टा में लगे हुए देख मुसकरा-कर कहने लगे—ब्रह्मन्, आप यह क्या कर रहे हैं? आप क्या चाहते हैं? क्यों आप यह निरर्थक प्रयत्न करते हैं? ब्राह्मणवेषधारी इन्द्र ने कहा—हे ब्राह्मण, गङ्गा पार होने के समय लोगों को बड़ा कष्ट होता है। इसलिए मैं गङ्गा पर पुल बाँध दूँगा तो फिर सभी इस पार से उस पार सहज ही जा सकेंगे। यवक्रीत ने कहा—भगवन्, आप इस महाप्रवाह को किसी तरह बाँध नहीं सकेंगे। इसलिए अशक्य काम छोड़कर जो काम हो सकता है उसे करने का प्रयत्न कीजिए। इन्द्र ने कहा—हे विप्र, आप जैसे वेदज्ञान के लिए तप कर रहे हैं और इस प्रकार असाध्यसाधन करना चाहते हैं उसी प्रकार मैंने भी इस असाध्य कार्य को सिद्ध करने का बीड़ा उठाया है। यवक्रीत ने जान लिया कि वे इन्द्र ही हैं। तब उन्होंने कहा—हे देवराज, यदि मेरी यह इच्छा आपको असाध्य जान पड़ती है तो फिर जो आप कर सकते हों वही कीजिए और मैं ४० जिससे अन्य ब्राह्मणों की अपेक्षा श्रेष्ठ हो सकूँ वह वर दीजिए।

लोमशजी कहते हैं—हे युधिष्ठिर, तब इन्द्र ने यवक्रीत की प्रार्थना के अनुसार वर देकर कहा—हे विप्र, तुम पिता और पुत्र दोनों को सम्पूर्ण वेद अच्छी तरह आ जायगा और, तुम्हारी अन्यान्य इच्छाएँ भी सिद्ध होंगी। अब तुम जाओ। इस तरह यथेष्ट वर पाकर, सिद्धकाम हो, यवक्रीत अपने पिता के पास गये। पिता के पास जाकर उन्होंने कहा—पिताजी, मैंने ऐसा वर पाया है कि हम दोनों को समग्र वेद पर अधिकार प्राप्त होगा और हम दोनों सब वेदज्ञों में मुख्य समझे जायँगे। पुत्र के ये वचन सुनकर भरद्वाज ने कहा—बेटा, तुमने इच्छानुसार वर अवश्य पाया है; किन्तु इससे तुमको जो अभिमान होगा वह शीघ्र ही तुमको चौपट कर देगा। इस विषय में देवनगरी में जो गाथा कही जाती है सो सुनो। हे वत्स, पहले किसी समय बालधि नाम के बड़े प्रभावशाली एक मुनि थे। वे पुत्रशोक से पीड़ित होकर अपने एक अमर पुत्र होने की इच्छा से दुष्कर तप करने लगे। उससे उनकी इच्छा पूरी हो गई। देवताओं ने प्रसन्न होकर कहा—तुम्हारा पुत्र सब अंशों में अमरों के तुल्य नहीं होगा, क्योंकि मर्त्यलोक में कोई अमर नहीं है। अतएव उसकी आयु किसी कारण के अधीन होगी। बालधि ने कहा—हे देवगण, यह जो अक्षय पर्वतमाला देख पड़ती है यही मेरे पुत्र की आयु का कारण होगी अर्थात् जब तक इसका नाश न हो तब तक मेरा पुत्र भी अमर रहे। भरद्वाज कहते हैं—इसके बाद यथासमय बालधि के मेधावी नामक एक बड़े क्रोधी मुनि उत्पन्न हुए। पिता के मुँह से सब वृत्तान्त सुनकर वे अभिमान के मारे सब ऋषियों का अपमान करने लगे। इस प्रकार अत्याचार करते हुए सारी पृथ्वी पर घूमते-घूमते महाप्रतापी धनुषाक्ष के पास पहुँचकर उन्होंने उनका अप-५० मान किया। तब उन वीर्यशाली ऋषि ने "भस्म हो जा" कहकर उनको शाप दिया किन्तु वे भस्म नहीं हुए। यह देखकर धनुषाक्ष ने उनके विनाश के लिए भैंसे उत्पन्न किये और उनके

द्वारा उस पर्वतमाला को उखाड़कर फिकवा दिया। इस प्रकार जीवन का कारणरूप वह पर्वतमाला नष्ट होने पर वह बालक भी मर गया। तब बालधि अपने मरे हुए पुत्र को लेकर विलाप करने लगे। वेदज्ञ ऋषियों ने उन्हें बारम्बार व्याकुल भाव से विलाप करते देखकर जो गाथा कही है सो सुनो। ऋषियों ने कहा—"मरणशील मनुष्य कभी किसी प्रकार दैवनिर्दिष्ट विधि को लाँघ नहीं सकता; क्योंकि धनुषाच ने भैंसों के द्वारा पर्वतमाला को उखड़वा डाला।" हे वत्स, तपस्वी बालकगण इस प्रकार वर पाकर अभिमान के मारे शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। तुम भी कहीं अभिमान के मारे उसी तरह विनष्ट न हो जाओ। ये रैभ्य जैसे पराक्रमी हैं वैसे ही उनके दोनों पुत्र भी प्रतापी हैं। इसलिए सावधान हो जाओ; उनके समीप कभी न जाना। क्योंकि महर्षि रैभ्य बड़े ही क्रोधी हैं। क्रुद्ध होने पर वे सहज ही तुम्हें मटियामेट कर सकते हैं।

यवक्रीत ने कहा—पिताजी, मैं आपकी आज्ञा के अनुसार ही काम करूँगा। आप दुःखित न हों। आपकी तरह महर्षि रैभ्य भी मेरे पिता और पूजनीय हैं।

लोमशजी कहते हैं—हे युधिष्ठिर, यवक्रीत अपने पिता को इस तरह परम प्रसन्न करके बेधड़क ऋषियों का अनादर करके परम आनन्द मनाने लगे। ६०

एक सौ छत्तीस अध्याय

यवक्रीत की मृत्यु

लोमशजी कहते हैं—हे युधिष्ठिर, इसके बाद बेखटके विचरते हुए यवक्रीत एक समय वसन्त ऋतु में महर्षि रैभ्य के आश्रम में पहुँचे। उन्होंने देखा, फूले हुए वृक्षों से भूषित वह आश्रम बहुत ही भला देख पड़ रहा है और किन्नरी के समान सुन्दरी रैभ्य के पुत्र की स्त्री वहाँ विचर रही है। उसे देखते ही यवक्रीत ने लोकलज्जा छोड़कर कामदेव के वश हो उस लज्जा-

वती कुलवधू से कहा—हे सुन्दरी, मुझे स्वीकार करो। तब वह सुन्दरी यवक्रीत के क्रोधी स्वभाव का पता पाकर और रैभ्य के तेज का विचारकर बहुत अच्छा कहकर वहाँ से चल दी। उसने सोचा कि स्वीकार न करूँगी तो यवक्रीत अभी शाप दे देंगे। इससे अभी स्वीकार कर लो, फिर रैभ्य के तेज का विचार करके ये कुछ अन्याय न कर सकेंगे। किन्तु यवक्रीत उसके साथ ही रहे और निर्जन स्थान में अपनी इच्छा पूरी करके चल दिये। इसी बीच में महर्षि रैभ्य ने आश्रम में आकर देखा कि उनके पुत्र की स्त्री रो रही है। तब उसे मधुर वचनों से दिलासा देकर उन्होंने उससे रोने का कारण पूछा। उस सुन्दरी ने, सोच-विचारकर, यवक्रीत से और उससे जो बातचीत हुई थी सो सब रैभ्य से कह दिया।

यवक्रीत के इस कुकर्म की बात सुनकर रैभ्य बहुत क्रोधित हुए। उन्होंने अपनी एक जटा उखाड़कर आग में डाल दी। देखते ही देखते उनकी पुत्रवधू के समान सुन्दरी एक स्त्री आग से प्रकट हुई। तब फिर एक जटा उखाड़कर उन्होंने उसी प्रकार आग में छोड़ी। अब एक भयानक रूप और भयङ्कर दृष्टिवाला राक्षस उस आग से प्रकट हुआ। उस राक्षस और स्त्री ने रैभ्य से कहा—ऋषिश्रेष्ठ, कहिए, हम आपका क्या काम करें? ऋषि ने क्रोध से अधीर होकर कहा—जाओ, तुम यवक्रीत को मार डालो। 'बहुत अच्छा' कहकर वे दोनों, यवक्रीत को मारने के लिए, चले। वे जब यवक्रीत के पास पहुँचे तब उस स्त्री ने ऋषि को मोहित करके उनका कमण्डलु उठा लिया। कमण्डलु लेकर जब वह स्त्री चली गई, तब उन्हें उच्छिष्ट और कमण्डलुहीन देखकर वह राक्षस उनकी ओर शूल तानकर दौड़ा। मारने की इच्छा से शूल हाथ में लिये उस राक्षस को अपनी ओर आते देख यवक्रीत उठकर एकाएक सरोवर की ओर दौड़े। किन्तु जब उस सरोवर में पानी न देख पड़ा तब वे दौड़ते हुए इधर-उधर सब जलाशयों के पास गये। परन्तु दुर्भाग्यवश जिस जलाशय के पास वे जाते थे वही सूख जाता था। तब उस भयङ्कर राक्षस के हमले से डरकर वे एकाएक अपने

१०

पिता के अग्निहोत्र-गृह में घुसने लगे। एक अन्धा शूद्र उस अग्निहोत्रशाला की चौकसी किया करता था। उसने यवक्रीत को भीतर जाने से बलपूर्वक रोका। भीतर न जा सकने पर वे बाहर ही द्वार पर खड़े रहे। राक्षस ने उसी बड़ी शूल मारकर यवक्रीत का हृदय फाड़ डाला। वे मरकर पृथ्वी पर गिर पड़े। वह राक्षस भी यवक्रीत को मारकर रैभ्य के पास गया और उनकी आज्ञा पाकर उस स्त्री के साथ वहीं रहने लगा। २०

एक सौ सैंतीस अध्याय

भरद्वाज का विलाप और प्राणत्याग

लोमशजी कहते हैं—हे युधिष्ठिर, इधर महातपस्वी तेजस्वी भरद्वाज स्वाध्यायपाठ और नित्य कृत्य समाप्त करके, लकड़ी आदि सामग्री लेकर, अपने आश्रम को लौटे। पहले अग्निहोत्र के अग्नि उन्हें देखते ही प्रज्वलित हो उठते थे; पर आज वैसा नहीं हुआ। महर्षि ने अग्निहोत्र का यह विकृत भाव देखकर सामने बैठे हुए उस गृहपाल अन्धे शूद्र से पूछा—हे शूद्र, आज ये अग्निहोत्र के अग्नि क्यों पहले की तरह मेरा अभिनन्दन नहीं करते? और तुम भी क्यों पहले की तरह मुझे देखते ही उठकर खड़े नहीं हुए? आश्रम में किसी तरह का अमङ्गल तो नहीं हुआ? मेरा वह थोड़ी बुद्धिवाला पुत्र तो रैभ्य के यहाँ नहीं गया? मुझसे सब हाल जल्दी कहो; मेरा चित्त बहुत व्याकुल हो रहा है।

शूद्र ने कहा—ब्रह्मन्, आपका बुद्धिहीन पुत्र रैभ्य के यहाँ गया था। वह देखिए, बली राक्षस के हाथों मारा जाकर पृथ्वी पर पड़ा हुआ है। राक्षस शूल हाथ में लिये आ रहा था, यवक्रीत आकर अग्निहोत्रशाला में घुसना चाहता था। मैंने दोनों हाथ फैलाकर उसे भीतर जाने से रोका। वह अपवित्र था, इसी से घबराकर पानी खोज रहा था। इसी बीच राक्षस ने आकर वेग से शूल मारकर उसे मार डाला। महर्षि भरद्वाज इस बड़े भारी अप्रिय समाचार को सुनकर अत्यन्त दुःखित हुए और पुत्र की लाश को गोद में लेकर विलाप करने लगे। वे कहने लगे—हाय पुत्र! तुमने ब्राह्मणों के हित के लिए ही तप किया था, जिसमें ब्राह्मणों को बिना पढ़े ही वेदों का ज्ञान हो जाय। तुम ब्राह्मणों में बड़े ही अच्छे स्वभाव के थे। तुम्हारा १० स्वभाव कड़ा अवश्य था, पर तुमने कभी किसी का कुछ अनिष्ट नहीं किया। हाय पुत्र! मैंने तुमको मना किया था कि तुम रैभ्य के आश्रम में न जाना; तो भी तुम उस अपने काल के यहाँ गये। हाय! दुर्मति रैभ्य ने तुमको मेरे इस बुढ़ापे का एकमात्र सहारा जानकर भी क्रोध में आकर यह अनर्थ कर डाला! मुझे रैभ्य के कारण ही यह पुत्रशोक हुआ। हाय पुत्र! मैं तुम्हारे बिना इन प्यारे प्राणों को त्याग दूँगा। मैं जैसे पुत्रशोक से प्राणत्याग करता हूँ वैसे ही रैभ्य भी, बिना अपराध के, अपने बड़े पुत्र के हाथों मारे जायँगे। हाय! इस संसार में जिनके पुत्र नहीं हैं वे ही सुखी हैं। उन्हें पुत्रशोक का अनुभव नहीं होता और वे सुख से

संसार में इच्छानुसार रहते हैं। जो लोग पुत्रशोक से अत्यन्त आकुल होकर परम प्रिय मित्र को भी शाप दे डालते हैं उनसे बढ़कर पापी और कौन है? मैंने एक ओर पुत्र को मरते देखा, दूसरी ओर अपने प्रिय मित्र को शाप दे दिया। एक साथ ही मुझे पुत्रनाश और मित्रनाश का कष्ट सहना पड़ा। मेरे सिवा कदाचित् और किसी पर ऐसी विपत्ति नहीं पड़ी होगी।

लोमशजी कहते हैं—हे युधिष्ठिर, इस प्रकार विलाप करके भरद्वाज ने पुत्र का दाहकर्म १९ किया और फिर वे आप भी आग में जल करके भस्म हो गये।

एक सौ अड़तीस अध्याय

रैभ्य की मृत्यु। रैभ्य, भरद्वाज और यवक्रीत का फिर जी उठना

लोमशजी कहते हैं—हे युधिष्ठिर, इसी समय महाप्रतापी रैभ्य के पुत्र, यज्ञ करते हुए राजा बृहद्युम्न के यहाँ, आचार्य का काम कर रहे थे। रैभ्य के पुत्र अर्वावसु और परावसु को राजा ने अपने यज्ञ में आचार्य का काम करने के लिए बुलाया। दोनों ही, पिता से पूछकर, राजा के यहाँ गये। रैभ्य और परावसु की भार्या, दोनों आश्रम में रहे।

एक समय परावसु अँधेरी रात में आश्रम को देखने गये। काली मृगछाला ओढ़े रैभ्य को, गहरी नींद में सोते, देखकर परावसु ने उन्हें जङ्गली मृग समझकर मार डाला। जब उन्हें मालूम हुआ कि वे उन्हीं के पिता थे, तब उनका सब क्रिया-कर्म करके परावसु यज्ञभूमि में गये। वहाँ जाकर उन्होंने अपने भाई अर्वावसु से कहा—भाई, मैंने हिरन के धोखे से पिता को मार डाला है। उसके लिए ब्रह्महिंसन व्रत करना होगा। किन्तु तुम अकेले किसी तरह इतने बड़े यज्ञ का काम नहीं सँभाल सकोगे, इस कारण तुम्हीं वह व्रत कर डालो। मैं अकेला यह यज्ञकार्य कर लूँगा।

अर्वावसु ने कहा—भाई, तो फिर आप ही बृहद्युम्न को यज्ञ कराइए। मैं जितेन्द्रिय १० होकर आपकी ओर से नियमपूर्वक ब्रह्महिंसन व्रत का अनुष्ठान करूँगा।

लोमशजी कहते हैं कि हे युधिष्ठिर, उस व्रत को समाप्त करके जब अर्वावसु फिर यज्ञमण्डप में आये तब परावसु ने उन्हें देखकर बृहद्युम्न से कहा—राजन्, यह ब्रह्मघाती आपके यज्ञ

में न आने पावे; क्योंकि इस (हत्यारे) को देखना भी आपके लिए दुखदायक होगा। यह सुनकर राजा ने अपने नौकरों से कहकर उनको भीतर आने से रोक दिया। अर्वावसु ने बार-म्बार कहा कि मैंने ब्रह्महत्या नहीं की है, पर किसी ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया, और उन्हें सचमुच ब्रह्महत्या करनेवाला समझ लिया। तब अर्वावसु कहने लगे—मैंने स्वयं ब्रह्महत्या नहीं की; मेरे भाई ने ही यह काम किया है। मैंने व्रत का अनुष्ठान करके इन्हें उस पाप से छुड़ाया अवश्य है। क्रोधित होकर उनके यों कहने पर भी नौकरों ने उन्हें यज्ञशाला से बाहर निकाल दिया। तब वे महातपस्वी महर्षि वन में जाकर कठोर तप करते हुए सूर्य के शरणागत हुए। उन्होंने उसी समय सूर्य-रहस्य नामक एक नया वेद बनाया। भगवान् भास्कर उनके सामने प्रकट हुए। राजन्, तब अग्नि आदि सब देवताओं ने अर्वावसु के इस काम से प्रसन्न होकर उन्हें यज्ञ के कार्य का आचार्यपद दिया और परावसु को उस काम से अलग कर दिया। जब सब देवता वर देने के लिए तैयार हुए तब अर्वावसु ने कहा—हे देवताओ, मेरे पिता फिर जी उठें, भाई को हत्या का दोष न लगे और अपनी हत्या का वृत्तान्त पिता को याद न रहे। भरद्वाज और यवक्रीत भी फिर जी उठें। मेरे बनाये इस सौर वेद की संसार में सब जगह प्रतिष्ठा हो। देवताओं ने 'तथास्तु' कहकर ये सब वरदान उनको दिये। २०

जब सब लोग फिर जीवित हो उठे तब यवक्रीत ने देवताओं से कहा—हे देवताओ, मैंने सब वेद पढ़े और सब व्रत किये; तो भी फिर रैभ्य कैसे, विधि के अनुसार, मेरी हत्या करा सके? देवताओं ने कहा—हे यवक्रीत, तुम जैसा कह रहे हो वैसा वास्तव में नहीं है। तुमने पहले गुरु की सहायता के बिना सहज ही वेद पढ़ लिये हैं। किन्तु रैभ्य ने अपने कर्त्तव्य-पालन से गुरु को सन्तुष्ट करके, क्लेश सहकर, बहुत दिनों में उन वेदों का अध्ययन किया है। इन्द्र आदि देवता यों कहकर, सबको जिलाकर, स्वर्ग को चले गये।

महाराज, यह उन्हीं यवक्रीत का पवित्र आश्रम है। इसके वृक्ष सदा फूले और फले रहते हैं। यहाँ रहने से आप सब पापों से छुटकारा पा जायँगे। २८

एक सौ उन्तालीस अध्याय

गङ्गाजी की स्तुति और मन्दराचल में प्रवेश करने की कल्पना करना

लोमशजी कहते हैं—हे युधिष्ठिर! आप उशीरबीज, मैनाक, श्वेतगिरि और कालशैल पहाड़ों को लाँघ आये। वह देखिए, गङ्गाजी सात धाराओं से शोभायमान हैं। इस निष्पाप पवित्र प्रदेश में अग्निदेव सदा प्रज्वलित रहते हैं। आज तक कोई मनुष्य इस अद्भुत स्थान को नहीं देख सका। अतएव एकाग्र होकर समाधि लगाइए; तभी आपको यहाँ के सब दृश्य देख पड़ेंगे। हे पार्थ, आप जिस देवताओं की क्रीड़ाभूमि कालशैल को लाँघ आये हैं वह अब तक देख पड़ रहा है। अब हम श्वेतगिरि और मन्दराचल के बीच में प्रवेश करेंगे। इस स्थान पर मणिभद्र यक्ष और यक्षराज कुबेर रहते हैं। अट्ठासी हज़ार शीघ्रगामी गन्धर्व, किम्पुरुष और उनसे चौगुने यक्ष अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र लिये, यक्षराज मणिभद्र की सेवा में रहते हैं। वे वेग में वायु के तुल्य और ऐसे तेजस्वी हैं कि इन्द्र को भी परास्त कर सकते हैं। एक तो ये पहाड़ी स्थान योंही दुर्गम हैं, दूसरे बलशाली यक्षों और राक्षसों के द्वारा रक्षित हैं। अतएव आप एकाग्र १० और मौन हो जाइए। हम लोग यक्षराज के मन्त्री को, रौद्र और मैत्र नाम के राक्षसों को देखेंगे।

राजन्, यह छः योजन ऊँचा कैलास पर्वत देखिए। इस स्थान पर बहुत से देवता लोग असंख्य यक्ष, राक्षस, किन्नर, नाग, गरुड़ और गन्धर्वों के साथ कुबेर के भवन में आया करते हैं। महाराज! अब आप मेरी तपस्या, दम गुण और भीमसेन के बल से रक्षित होकर उन्हें देखने के लिए जाइए। आज राजा वरुण, युद्धविजयी यमराज, गङ्गा, यमुना, पर्वत, मरुद्गण, अश्विनीकुमार, नदी, सरोवर, देवता, असुर और वसुगण, ये सब आपका मङ्गल करें।

हे भगवती गङ्गे, मैं इन्द्र के जाम्बूनद पर्वत से तुम्हारे प्रवाह का शब्द सुन रहा हूँ। हे सुभगे, तुम इन अजमीढ़ राजा के वंशधरों-सहित राजा युधिष्ठिर की गिरिदुर्ग से रक्षा करो। हे शैलसुते, ये राजा दुर्गम पर्वतों के भीतर जाना चाहते हैं, इसलिए इनका भला करो। गङ्गा से यों कहकर लोमश ऋषि ने युधिष्ठिर को सावधान रहने की आज्ञा दी।

तब युधिष्ठिर ने कहा—लोमशजी की यह व्यग्रता देखने से मुझे जान पड़ता है कि यह स्थान बहुत ही दुर्गम है। इस कारण सब लोग विशेष रूप से पवित्रता और आचार का पालन करते हुए सावधानी के साथ द्रौपदी की रक्षा करो। वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, युधिष्ठिर ने फिर परम पराक्रमी भीमसेन से कहा कि हे भीम, अर्जुन के पास रहने पर भी सङ्कट के समय द्रौपदी तुम्हारा ही आसरा लिया करती थीं। इसलिए यत्नपूर्वक इनकी रक्षा करो। फिर नकुल और सहदेव के पास जाकर उनका मस्तक सूँघा और शरीर पर हाथ फेरकर कहा—भैया २० नकुल और सहदेव, तुम डरना नहीं। सावधानी के साथ आओ।

एक सौ चालीस अध्याय

गन्धमादन पर्वत पर जाना। भीमसेन और युधिष्ठिर की बातचीत

युधिष्ठिर ने कहा—हे भीम, महाबली महाकाय भूतगण यहाँ छिपे रहते हैं। तप और आग की सहायता के बिना यहाँ जाना बहुत ही कठिन है। इसलिए अपनी इच्छाशक्ति से भूख और प्यास को रोककर बलपूर्वक चतुरता के साथ रहो। ऋषि ने कैलास पर्वत के सम्बन्ध में जो वर्णन किया है सो तुम सुन चुके हो। अब विचार करके यह निश्चय करो कि द्रौपदी यहाँ किस तरह जायँगी; या यत्न करो कि तुम्हारे साथ सहदेव, धौम्य ऋषि, सारथी, पुरवासी, नौकर-चाकर, रथ, घोड़े और अन्यान्य ब्राह्मण लोग—जो कि रास्ते का क्लेश नहीं सह सकते—लौट जायँ। मैं, नकुल और महात्मा लोमश हलका भोजन करके, व्रत धारण करके, जायँगे। मैं जब तक लौट न आऊँ तब तक सावधानी के साथ द्रौपदी की रक्षा करते हुए पवित्रतापूर्वक तुम यहीं गङ्गाद्वार में ठहरो।

भीमसेन ने कहा—राजन्, द्रौपदी यद्यपि थकी और दुःखित हैं, तो भी अर्जुन के दर्शनों की इच्छा से अवश्य चलेंगी। आप एक अर्जुन के बिना तो यों उदास और दुःखित हो रहे हैं, फिर जब द्रौपदी, सहदेव और मैं भी आपके पास नहीं रहूँगा तब आपकी न जाने क्या दशा होगी। इसलिए ये ब्राह्मण, नौकर, सारथी, पुरवासी, और जिसे आप चाहें वह, यहाँ से लौट जाय। इस राक्षसों के स्थान, दुर्गम, पहाड़ी मार्ग में आपको मैं किसी तरह अकेले नहीं छोड़ सकता। हे पुरुषसिंह, सौभाग्यवती पतिव्रता द्रौपदी भी आपको छोड़कर कभी लौटकर जाना न चाहेंगी। ये सहदेव भी आपके बहुत ही आज्ञाकारी हैं। मैं इनके हृदय के भाव को अच्छी तरह जानता हूँ। ये भी नहीं लौटेंगे। मतलब यह कि सभी को अर्जुन के देखने की लालसा है। इसलिए हम सब एक साथ चलेंगे। रथ पर चढ़कर इस बहुत कंदराओंवाले पर्वत पर जाना सहज नहीं है। इसलिए हम सब पैदल चलेंगे। आप उदास न हों। द्रौपदी जहाँ न चल सकेंगी वहाँ मैं उनको कन्धे पर बिठाकर ले चलूँगा। सुकुमार नकुल-सहदेव को दुर्गम स्थानों में असमर्थ देखूँगा तो इन्हें भी उसी तरह ले चलूँगा। आप उदास न हों। १०

युधिष्ठिर ने कहा—भाई, तुम यशस्विनी द्रौपदी और नकुल-सहदेव को लादकर ले चलने के लिए उत्साह प्रकट कर रहे हो; तुम्हारा बल, धर्म, यश और कीर्त्ति बढ़े। कभी सुस्ती और हार तुम्हारे पास न फटकने पावे। तब द्रौपदी ने मुसकराकर कहा—हे आर्यपुत्र, मैं भी आप लोगों के साथ चलूँगी। आप मेरे लिए चिन्ता न करें। लोमशजी ने कहा—हे युधिष्ठिर, तपस्या के प्रभाव के बिना गन्धमादन पर्वत पर चलना कठिन है। इसलिए हम सबको तप करना होगा। तब हम सब अर्जुन के दर्शन पा सकेंगे। २०

वैशम्पायन कहते हैं—इस तरह बातचीत करते हुए वे सब हिमालय के पास सुबाहु-राज्य में पहुँचे। वहाँ हाथी और घोड़े बहुत होते हैं। किरात, तङ्गण, पुलिन्द आदि पहाड़ी जातियाँ वहाँ बहुतायत से बसती हैं। वहाँ बहुत से विचित्र पदार्थ देख पड़ते हैं। पुलिन्दराज सुबाहु इन लोगों को देखते ही प्रसन्नतापूर्वक पूजा करके अपने घर ले गया। वे भी पूजा स्वीकार करके सुख से रात भर वहाँ रहे। फिर महारथी पाण्डव लोग सूर्योदय के समय इन्द्रसेन आदि नौकरों, रसोइयों और अन्यान्य अनुचरों को पुलिन्दराज के यहाँ छोड़कर, अर्जुन से मिलने की इच्छा से, २६ द्रौपदी के साथ धीरे-धीरे वहाँ से हिमालय की ओर पैदल चल दिये।

एक सौ इकतालीस अध्याय

युधिष्ठिर का अर्जुन के लिए सन्ताप करना

युधिष्ठिर ने कहा—हे भाइयो, और द्रौपदी, जो पहले के कर्म हैं उनका नाश नहीं होता, उनका फल भोगना ही पड़ता है। देखो, उसी के कारण हम आज वन-वन फिर रहे हैं। हम लोग थके-माँदे होते हुए भी अर्जुन को देखने की इच्छा से परस्पर सहायता करते हुए इस दुर्गम प्रदेश में चल रहे हैं। किन्तु अभी तक अर्जुन को न देख पाने से रुई के ढेर को जैसे आग जलाती है वैसे ही सन्ताप की आग मेरे शरीर को जला रही है। एक तो मैं भाइयों के साथ वन में आकर अर्जुन के बिना यों ही व्यथित हो रहा हूँ; उस पर वह द्रौपदी को बाल पकड़कर सभा में खींच लाने की बात मुझे और भी जला रही है। अर्जुन को न देखकर मैं बहुत ही दुःखित हो रहा हूँ। अर्जुन के ही देखने की लालसा से मैं तुम्हारे साथ तीर्थों, वनों और सरोवरों में विचर रहा हूँ। पाँच वर्षों से उन्हें न देख पाने के कारण मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है। जो वीर, सत्यसन्ध, अभिमानशून्य हैं; जिन्होंने यज्ञ के लिए बहुत सा धन लाकर मुझे दिया था, जो साँवले, सिंह के समान पराक्रमी, महाबाहु, अस्त्रज्ञ, युद्धचतुर, धनुर्धारियों में श्रेष्ठ और कुरुवंश के शिरोमणि हैं; जो क्रुद्ध काल की तरह—जिसके १० मद बह रहा हो उस हाथी की तरह—समर में शत्रुओं के बीच विचरते हैं; जो धन और वीर्य में इन्द्र से कम नहीं हैं; उन श्वेतवाहन महापराक्रमी अर्जुन को इस समय न देखने से मैं अत्यन्त दुःखित हो रहा हूँ। उन्हें न देख पाने से मुझे चैन नहीं है। मैं उन अजेय उग्रधन्वा अर्जुन को सदा याद किया करता हूँ, इसी से दिन-रात मुझे चिन्ता जलाया करती है। जो क्षुद्र शत्रु के द्वारा अपमानित होने पर भी क्षमा को नहीं छोड़ते; जो न्यायमार्ग पर चलनेवाले लोगों को कल्याण और अभय देते हैं; जो क्रूरमार्ग पर चलनेवाले हिंसापरायण इन्द्र के लिए भी काल और विष के तुल्य हैं; जो शरणागत शत्रुओं पर भी दया करते हैं; जो प्रतापी, अभय देनेवाले, महाबली और हम सबके लिए आश्रयरूप हैं तथा जो समर में शत्रुओं का संहार करते हैं उन समर-

पुलिन्द के राजा तथा नागरिकगण से विदा होकर पाण्डवों का अर्जुन के दर्शनार्थ हिमालय को प्रस्थान।

विजयी अर्जुन से मेरी भेट नहीं होती। जिन्होंने सब रत्न लाकर मुझे दिये और जो सबको सुख देते हैं; पहले जिनके पराक्रम से मैंने वहुत से बहुत प्रकार के दिव्य रत्न प्राप्त किये थे; जिनके बाहु-बल से मेरी सभा रत्नमयी और त्रिभुवन में प्रसिद्ध हुई थी; जो वीर्य में श्रीकृष्ण के समान और युद्ध करने में कार्त्तवीर्य अर्जुन के समान हैं, वे युद्ध में अजेय सङ्ग्रामविजयी अर्जुन मुझे नहीं देख पड़ते। हे भीम, जिनका पराक्रम महावीर बलराम, श्रीकृष्ण और तुम्हारे तुल्य है, २० जिनका बाहु-बल और प्रभाव इन्द्र के समान है, जिनमें वायु के बराबर वेग है—जिनके मुख की सुन्दरता चन्द्रमा के तुल्य है,—जो क्रोध में यमराज के समान हैं, उन अर्जुन को देखने की इच्छा से हम गन्धमादन पर्वत पर जायँगे। जिस स्थान पर नर-नारायण का आश्रम विशाल बदरीवन है उस यक्षों की बस्ती रमणीय पर्वत को देखो। यहाँ से हम कठोर तप करके पैदल ही राक्षस-गण-सेवित रमणीय कुबेर-सरोवर को जायँगे। हे वीर, सवारी पर चढ़कर जानेवाले, नीच, क्रूर, लोभी या अशान्तचित्त पुरुष इस स्थान में नहीं जा सकते। इसलिए हम केवल शस्त्र और खड्ग लेकर, व्रतधारी ब्राह्मणों के साथ, अर्जुन को खोजने वहाँ जायँगे। उस स्थान पर अजितेन्द्रिय पापी ही मक्खी, डाँस, मच्छड़, सिंह, बाघ, साँप आदि से डरते हैं। जितेन्द्रिय पवित्र व्यक्तियों के लिए कोई खटका नहीं है। इसलिए संयमपूर्वक मिताहारी होकर अर्जुन को देखने हम इस गन्धमादन पर्वत पर जायँगे। २८

एक सौ बयालीस अध्याय

नरकासुर का उपाख्यान और वराह अवतार का वर्णन

लोमशजी कहते हैं—हे पाण्डवो, आप लोगों ने सब नगरों, वनों और तीर्थों के दर्शन किये हैं; हाथों से तीर्थों का पवित्र जल छुआ है। अब सब लोग ध्यान लगाकर घबराहट को दूर कर दो। यह रास्ता मन्दराचल को गया है। आप लोगों को देवताओं और पुण्यकर्म करनेवाले ऋषियों की निवासभूमि मन्दर पर्वत पर जाना होगा। यह देखो, वही देवर्षिगणसेवित पवित्र जलवाली नदी बह रही है। यह नदी बदरिकाश्रम से निकली है। आकाशविहारी वालखिल्य ऋषि इसकी पूजा करते हैं और महानुभाव गन्धर्व इसके जल में नहाते हैं। मरीचि, भृगु, पुलह और अङ्गिरा, ऋषियों ने इस स्थान पर पवित्र स्वर से सामगान किया है। देवराज इन्द्र, मरुद्गण के साथ, इस स्थान पर नित्य गायत्री का जप करते हैं। उस समय अश्विनीकुमार और साध्यगण उनका अनुगमन करते हैं। दिन और रात के विभाग के अनुसार चन्द्रमा, सूर्य और ग्रह-नक्षत्रगण इस नदी की उपासना करते हैं। लोकस्थिति के लिए महादेव ने हरिद्वार में इन्हीं पवित्र नदी गङ्गा के जल को मस्तक पर धारण किया है। अतएव आप सब पवित्र हृदय से जाकर गङ्गाजी को प्रणाम कीजिए। १०

धर्मात्मा पाण्डव लोग महात्मा लोमश के ये वचन सुनकर पवित्र अन्तःकरण से गङ्गाजी को प्रणाम करके फिर ऋषियों के साथ आगे चलने लगे। इसके बाद दूर से सुमेरु के समान सुनहरे रङ्ग का, सब दिशाओं में व्याप्त, एक पदार्थ देख पड़ा। उसके बारे में पूछने पर लोमशजी ने कहा—हे पाण्डव! सुनो, यह जो कैलास पर्वत के शिखर के समान रमणीय विशाल पदार्थ देख पड़ रहा है वह महाबली नरकासुर की हड्डियों का ढेर है। पत्थर पर पड़ा होने से वह ढेर पर्वत के समान जान पड़ता है। सनातन देव विष्णु ने इन्द्र का प्रिय करने के लिए इस नरकासुर को मारा था। महाबली नरकासुर ने दस हज़ार वर्ष तक तप करके स्वाध्याय पाठ के प्रभाव से इन्द्रपद पाने की इच्छा की थी। वह बाहुबल और तपोबल से अत्यन्त दुर्द्धर्ष हो उठा था। २० इन्द्र उसके बल और तप के प्रभाव को देखकर बहुत ही डरे और घबराये। तब उन्होंने नारायण का स्मरण किया और सर्वव्यापी सनातन नारायण भगवान् उनके सामने प्रकट हुए। सब ऋषि और देवता उनकी स्तुति करने लगे। तेजस्वी भगवान् अग्नि उन्हें देखते ही, उनके तेज के आगे, फीके पड़ गये। देवताओं के ईश्वर वरदानी विष्णु को देख, हाथ जोड़कर प्रणाम करके, इन्द्र ने उनसे अपने डर का कारण कहा।

विष्णु ने कहा—इन्द्र, मुझे मालूम हो चुका है कि तुम नरकासुर से डरे हुए हो। वह तपस्या से सिद्ध हुए कर्म के प्रभाव से इन्द्रपद माँग रहा है। यद्यपि वह तपस्या से सिद्ध हो चुका है तो भी मैं, तुम्हारी प्रसन्नता के लिए, उसे मारूँगा। तनिक ठहर जाओ। बस, विष्णु ने अपने हाथ से नरकासुर को थप्पड़ मारे। थप्पड़ों की चोट से उसके प्राण निकल गये। वह उसी दम मरकर वज्र की चोट खाये हुए पर्वतराज की तरह पृथ्वी पर गिर पड़ा। यह उसी, माया के द्वारा मारे गये, नरकासुर की हड्डियों का ढेर देख पड़ता है। और, भगवान् विष्णु ने एक दाँतवाले वराह का रूप रखकर पाताल-तल में पहुँच गई पृथ्वी को ऊपर उठाया है। उनकी दूसरी कीर्त्ति यह पृथ्वीमण्डल और जगत् है।

युधिष्ठिर ने कहा—ब्रह्मन्, देवताओं के स्वामी विष्णु ने पाताल में चली गई इस पृथ्वी को ३० फिर किस प्रकार सौ योजन ऊपर उठाया? सब अन्न जिस पर उत्पन्न होते हैं वह पृथ्वी किस तरह ऊपर आकर जल पर स्थिर हुई? किसके प्रभाव से वह सौ योजन नीचे चली गई थी? किस व्यक्ति ने परमेश्वर का यह अद्‌भुत पराक्रम दिखलाया था? मैं यह सब वृत्तान्त आदि से अन्त तक विस्तार के साथ सुनना चाहता हूँ। आप ही इस सम्बन्ध में मेरे प्रधान आश्रय हैं।

लोमशजी ने कहा—राजन्, आपके पूछे हुए इस विषय का मैं वर्णन करता हूँ, सुनिए। पूर्व समय में भयङ्कर सत्ययुग उपस्थित होने पर आदिदेव नारायण स्वयं यमराज के पद पर रहकर उनका सब काम करते थे। उनके अधिकार के समय कोई मरता नहीं था; हाँ, लोग जन्म बराबर लेते जा रहे थे। फल यह हुआ कि पशु, पत्ती, राक्षस, मनुष्य, मृग, गाय, बैल आदि

एक दाँत की नोक पर पृथ्वी को सौ योजन ऊपर उठा लिया।—पृ० ६८३

सब जीव जल की तरह हज़ारगुने-लाखगुने होकर बढ़ने लगे। इस प्रकार बेतरह प्राणियों की बढ़ती होने लगी। प्राणियों के बोझ से यह पृथ्वी पीड़ित और अचेत होकर सौ योजन नीचे धँस गई। तब पृथ्वी ने नारायण की शरण में जाकर कहा—भगवन्, आपकी कृपा से मैं सदा से स्थिर बनी हुई हूँ। किन्तु इस समय प्राणियों के बढ़ते हुए बोझ से दबकर मैं स्थिर नहीं रह सकती। इसलिए आप मेरे इस भार को उतारिए। हे विभो, मैं आपकी शरण में आई हूँ—मुझ पर कृपा कीजिए। ४०

पृथ्वी के कातर वचनों को सुनकर विष्णु भगवान् ने प्रसन्नतापूर्वक मधुर स्वर से कहा—हे वसुन्धरा, डरो मत। मैं अभी तुम्हारे भार को उतारे देता हूँ। भगवान् ने पर्वतमालाधारिणी पृथ्वी को विदा करके एक दाँतवाले वराह का रूप धारण किया। उनकी लाल-लाल आँखें देखकर सबको डर लगता था। उनके शरीर का रङ्ग धुएँ का सा था। वे उसी स्थान पर बढ़ने लगे। इसके बाद उन्होंने प्रकाशमान एक दाँत की नोक पर पृथ्वी को सौ योजन ऊपर उठा लिया।

पृथ्वी को उठाते समय ऐसी हलचल हुई कि देवता, ऋषि, तपस्वी आदि सभी ऐसे विह्वल हो उठे कि स्वर्गलोक, मनुष्यलोक, और अन्तरिक्ष में सर्वत्र हाहाकार मच गया। मनुष्य या देवता कोई भी स्थिर नहीं रह सका। तब देवता और ऋषिगण लोकसाक्षी, तेज की राशि, ब्रह्मा के पास जाकर हाथ जोड़कर कहने लगे—भगवन्, सब लोग घबरा गये हैं और चराचर ५० जगत् व्याकुल हो उठा है। समुद्रों का जल उमड़ चला है। सब पृथ्वी सौ योजन नीचे पाताल को चली गई है। एकाएक यह क्या हो गया? किसके प्रभाव से सारा संसार इस तरह व्याकुल हो उठा? बताइए, हम लोग मोह के मारे अचेत से हो रहे हैं।

ब्रह्मा ने कहा—देवताओ, तुम्हें तो असुरों से कहीं कुछ डर नहीं है। जिस कारण यह हलचल मची है, सो सुनो। अव्ययात्मा विष्णु के प्रभाव से ही देवलोक क्षोभ को प्राप्त हो रहा है। सारी पृथ्वी सौ योजन नीचे चली गई थी; उसे वही भगवान् विष्णु ऊपर उठा लाये हैं। उसको ऊपर लाने में ही यह हलचल मच गई है। हे देवताओ, जिस कारण यह विषम क्षोभ देख पड़ता

है सो तुम जान गये। अब अपने चित्त से संशय को हटा दो। देवताओं ने कहा—भगवन्, वे परम पुरुष किस जगह स्थित होकर पृथ्वी का उद्धार कर रहे हैं ? बताइए, हम वहाँ जायँगे।

ब्रह्मा ने कहा—हे देवताओ, तुम लोगों का भला हो। तुम लोग नन्दन वन में जाओ; वहाँ उनके दर्शन होंगे। वे वराह रूप धारण कर पृथ्वी का उद्धार करते हुए, प्रलय काल के अग्नि ६० का सा तेज धारण किये, वहाँ विराजमान हैं। श्रेष्ठ मणि श्रीवत्स उनके हृदय में स्पष्ट रूप से शोभा पा रही है। हे देवताओ, तुम लोग जाकर उन मङ्गलमय पुरुष के दर्शन करो। लोमशजी कहते हैं—तब सब देवता ब्रह्मा को आगे करके नारायण के पास गये और उनके दर्शन करके वहाँ से बिदा हो अपने-अपने स्थान को गये। वैशम्पायन कहते हैं कि हे जनमेजय, इस वृत्तान्त ६३ को सुनकर पाण्डव लोग प्रसन्नचित्त हो लोमशजी के साथ शीघ्रता से आगे बढ़ने लगे।

एक सौ तेंतालीस अध्याय

पाण्डवों का आँधी आने से विकल होना

वैशम्पायन कहते हैं—हे राजन्, इसके बाद वे श्रेष्ठ धनुर्द्धर परम तेजस्वी पाण्डव धनुष-बाण, तर्कस, ढाल-तलवार आदि लिये, और अंगुलित्राण, शिरस्त्राण आदि पहने, द्रौपदी और ब्राह्मणों को साथ लिये गन्धमादन पर्वत पर गये। उस पर्वत के शिखर पर चढ़ते ही बहुत से पर्वतशिखर, नदी, सरोवर, वन और छायापूर्ण वृक्षों के झुण्ड उन्हें देख पड़े। तब अपने चित्त को एकाग्र करके, फल-मूल का आहार करते हुए वे लोग अनेक प्रकार के मृगों को देखते देखते देवर्षि-गणसेवित, नित्य फूलों और फलों से शोभित, तरह-तरह के ऊँचे-नीचे पहाड़ी स्थानों में घूमने लगे। इस प्रकार वे—देव, ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर आदि के झुण्ड जहाँ घूमा करते हैं उस—गन्धमादन पर्वत पर गये। वहाँ जाते ही प्रचण्ड आँधी चलने लगी। साथ ही उस आँधी में उड़ते हुए पत्तों से और धूल से स्वर्ग, आकाश और मनुष्य-लोक व्याप्त हो गये। आकाश में धूल ही धूल छा जाने पर कोई भी वस्तु पहचानने का कोई उपाय नहीं रहा। अँधेरे में उन सबने आँखें मूँद लीं। हवा के साथ पत्थरों के महीन टुकड़े उड़-उड़कर शरीर पर १० लगने लगे। वे लोग परस्पर न तो किसी को देख सकते थे और न किसी से बातचीत कर सकते थे। हवा के झोंकों से टूट-टूटकर पृथ्वी पर गिरनेवाले वृक्षों का प्रचण्ड शब्द बारम्बार सुनाई पड़ता था। हवा के घोर शब्द से मोहित से होकर वे लोग सोचने लगे कि शायद आकाश फटा पड़ता है, या पृथ्वी अथवा यह पर्वत ही फटा जा रहा है।

इसके बाद वे सब आँधी से डरकर पास के वृक्षों, ढूहों और ऊँचे स्थानों को हाथों से टटोल-टटोलकर उन्हीं को पकड़कर ठहर गये। महाबली भीमसेन हाथ में धनुष लेकर द्रौपदी को अपने साथ लिये एक वृक्ष के नीचे खड़े हो गये। धर्मराज और पुरोहित धौम्य उस वन में

न जाने कहाँ खो गये। अग्निहोत्र लिये हुए सहदेव, महातपस्वी लोमश, अन्यान्य ब्राह्मण तथा नकुल, ये सब एक बड़े वृक्ष के नीचे ठहर गये। धीरे-धीरे जब हवा का ज़ोर कम हुआ और अँधेरा घट गया, तब बड़े ज़ोर से पानी बरसने लगा। विकट कड़कड़ाहट के साथ बिजलियाँ चमकने लगीं। ओलों के साथ पानी की बूँदें, हवा के झोंकों से चारों ओर फैलती हुई, लगातार गिरने लगीं। महाराज, नदियों का जल इधर-उधर फैल गया, गँदला हो गया; चारों ओर फेना देख पड़ने लगा। फेने से भरा हुआ जल का प्रवाह बड़े-बड़े टूटे हुए वृक्षों को बहाकर ले जाता हुआ ज़ोर से शब्द करता बहने लगा। फिर वह शब्द बन्द हो गया, हवा कम हो गई, नदियों का जल भी अपनी हद पर आ गया, सूर्य निकल आये। अब सब लोग निकल-कर एक साथ गन्धमादन पर्वत पर जाने को आगे बढ़े। २०-२३

एक सौ चवालीस अध्याय

द्रौपदी के मोहित होने पर युधिष्ठिर का विलाप

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, महात्मा पाण्डव कोस भर गये होंगे कि द्रौपदी पैदल चलते-चलते थककर वहीं बैठ गई। वह वायु और वर्षा से पीड़ित हो, सुकुमारता के मारे थककर, बहुत दुःखित हो उठी। घबराहट के मारे उसका शरीर काँपने लगा। दोनों हाथों से अपने पैर पकड़कर वह बैठ गई। हाथी की सूँड़ के जैसी दोनों जाँघें पकड़ द्रौपदी केले के पेड़ की तरह काँपती हुई ज़मीन पर गिर पड़ी। महावीर नकुल उसकी यह दशा देखकर दौड़ पड़े और जड़ से उखड़ी हुई लता की तरह पड़ी हुई द्रौपदी को उठाकर उन्होंने युधिष्ठिर से कहा—राजन्, देखिए, पाञ्चाल-राज की कुमारी सुकुमारी कमलनयनी द्रौपदी ने कभी कोई दुःख नहीं सहा। इस समय थकने और दुःख से विकल होने के कारण ये पृथ्वी पर गिर पड़ी हैं। इनको आप धीरज दीजिए।

नकुल के ये वचन सुनकर युधिष्ठिर बहुत दुःखित हुए। वे भीमसेन और सहदेव के साथ दौड़कर द्रौपदी के पास गये। उसे दुर्बल, शिथिल और उसके चेहरे को उतरा हुआ देख-

कर युधिष्ठिर ने गोद में उसका सिर रख लिया। फिर वे करुण स्वर से विलाप करने लगे—हाय! १० जो सुरक्षित भवन में सुकोमल पलँग पर सोती थी वह कैसे इस समय पृथ्वी पर पड़ी हुई है? आज मेरे ही कारण इस सुन्दरी के कोमल चरण ऐसे शिथिल हो गये हैं और मुखमण्डल ऐसा मलिन हो गया है। हाय! मैंने नासमझी से जुए के खेल में आसक्त हो कैसा बेजा काम कर डाला! मैं द्रौपदी को लेकर ऐसे दुर्गम वन में घूम रहा हूँ; इससे बढ़कर मूर्खता और क्या हो सकती है! यही सोचकर राजा द्रुपद ने हमको अपनी प्यारी कन्या दी थी कि पाण्डवों को पति पाकर यह सुन्दरी सब तरह सुखी होगी। किन्तु मेरी बदौलत इसको कोई सुख नहीं मिला और अन्त को श्रम, शोक और राह चलने की थकन से इस समय ऐसी दशा हो गई कि राह में यह इस तरह पड़ी हुई है।

वैशम्पायन कहते हैं—युधिष्ठिर का ऐसा विलाप सुनकर धौम्य आदि पुरोहित ब्राह्मण वहाँ पर आये और आशीर्वाद देकर उन्हें ढाढ़स बँधाने लगे। साथ ही राक्षसों के डर से छुड़ाने-वाले मन्त्रों का जप और अन्य अनेक कर्मों का अनुष्ठान करने लगे। पाण्डव लोग भी बार-बार कोमल सुखदायक स्पर्शवाले हाथों को द्रौपदी के शरीर पर फेरकर पानी से तर पङ्खा डुलाकर उसके मुख पर हवा करने लगे। द्रौपदी सुस्थ होकर धीरे-धीरे होश में आई। उसे मृगछाला पर लिटाकर सब लोग उसकी राह की थकन मिटाने का उद्योग करने लगे। नकुल और सहदेव दोनों भाई ढट्टेदार हाथों से द्रौपदी के सुलक्षणसम्पन्न लाल तलवेवाले पैरों को धीरे-धीरे दबाने २० लगे। धीरे-धीरे द्रौपदी की तबीयत जब ठीक हुई तब युधिष्ठिर ने भीमसेन से कहा—महाबाहो, राह में हिम से दुर्गम बड़े-बड़े विषम पहाड़ हैं। उन स्थानों में द्रौपदी कैसे चल सकेगी? भीम ने कहा—राजन्, मैं अकेला ही आपको, द्रौपदी को और नकुल-सहदेव को लादकर ले चलूँगा। अथवा हिडिम्बा राक्षसी का पुत्र घटोत्कच मेरे ही समान बली है; आप आज्ञा देंगे, तो वह आकर सबको लादकर ले चलेगा। आप चिन्ता न करें। अब युधिष्ठिर की आज्ञा से भीमसेन ने अपने पुत्र घटोत्कच को याद किया। वह उसी समय वहाँ पर आ गया। उसने हाथ जोड़-कर पाण्डवों को और ब्राह्मणों को प्रणाम किया। सबने जब उसका अभिनन्दन किया तब भीम विक्रम प्रकट करते हुए उसने भीमसेन से कहा—पिताजी, स्मरण करते ही मैं आपकी आज्ञा सुनने को शीघ्र यहाँ पर आ गया हूँ। आज्ञा कीजिए, क्या करूँ। मैं आपकी आज्ञा का २८ पालन अच्छी तरह करूँगा। यह सुनकर भीमसेन ने उसे गले से लगा लिया।

एक सौ पैंतालीस अध्याय

पाण्डवों का नर-नारायण के आश्रम में जाना

युधिष्ठिर ने कहा—हे भीम, तुम्हारे वीर्य से उत्पन्न राक्षसश्रेष्ठ घटोत्कच द्रौपदी को लाद-कर ले चले। मैं तुम्हारे बाहुबल का सहारा पाकर द्रौपदी के साथ बेखटके गन्धमादन पर्वत पर

जाऊँगा। भीमसेन ने उनकी आज्ञा पाकर घटोत्कच से कहा—हे वीर, तुम्हारी माता द्रौपदी बहुत ही थक गई हैं; वे चल नहीं सकतीं। तुममें इच्छानुसार जाने की शक्ति है और तुम बलवान् भी हो। इसलिए उन्हें लादकर ले चलो। तुम्हारा भला होगा। तुम कन्धे पर इन्हें लाद लो और ऐसी धीमी चाल से हमारे साथ-साथ आकाशमार्ग होकर चलो जिसमें इन्हें कष्ट न हो। घटोत्कच ने कहा—पिताजी, मैं अकेला ही धर्मराज, धौम्य, द्रौपदी, नकुल और सहदेव को लादकर ले चल सकता हूँ। उस पर इस समय तो मेरे कई सहायक भी हैं। इस समय मेरे साथ और भी अनेक आकाशचारी शूर राक्षस हैं। वे ब्राह्मणों-सहित आप सबको लादकर ले चलेंगे।

अब घटोत्कच द्रौपदी को कन्धे पर बिठाकर पाण्डवों के साथ-साथ आकाशमार्ग होकर चलने लगा। अन्यान्य राक्षसों ने युधिष्ठिर आदि पाण्डवों को अपने कन्धों पर बिठा लिया। महातेजस्वी लोमश मुनि अपने तपोबल के प्रभाव से दूसरे सूर्य के समान सिद्धमार्ग से चलने लगे। अन्यान्य पराक्रमी राक्षस लोग राक्षसराज घटोत्कच की आज्ञा पाकर और-और ब्राह्मणों को लेकर चले। इस प्रकार वे परम रमणीय सब वन उपवन आदि को देखते हुए विशाल बदरिकाश्रम में पहुँचे। शीघ्रगामी महावेगशाली राक्षस लोग लादे लिये जाते थे, इससे उनको दूर की राह थोड़ी सी राह के समान जान पड़ने लगी। म्लेच्छों के रहने के स्थान जो अनेक रत्नों से पूर्ण समुद्र-तट के देश हैं उनको और आसपास के छोटे पहाड़ों को वे लोग जाते-जाते देखने लगे। उन पहाड़ों में अनेक विचित्र धातुएँ देख पड़ रही थीं; विद्याधर, किन्नर, वानर, किम्पुरुष और गन्धर्व विहार कर रहे थे; मोर, चमरी गाय, रुरु, वराह, गवय और भैंसे घूम रहे थे; हिरन, बन्दर और मतवाले पक्षी वहाँ की शोभा बढ़ा रहे थे; नदियाँ बह रही थीं और अनेक फूले-फले वृक्ष लगे हुए थे। ‍ १०

इस प्रकार बहुत से देशों को और उत्तरकुरु प्रदेश को लांघकर उन्होंने अनेक आश्चर्यों से पूर्ण पर्वतराज कैलाश को देखा। उसके पास ही फल-फूल-मूल और दिव्य वृक्षों से शोभित नर-नारायण का आश्रम भी देख पड़ा। फिर उन्होंने मदमत्त गूँजते हुए पक्षियों से पूर्ण, घने कोमल नव पल्लवों से शोभित, विशाल शाखाओं से व्याप्त, अतिविस्तीर्ण, परम रमणीय, शीतल छाँह से मनोहर, मधुर स्वादिष्ठ फलों से युक्त, महर्षिगणसेवित, बड़ी-बड़ी डालियों से घिरा हुआ विशाल बदरीवृक्ष देखा। उसके नीचे स्वाभाविक शान्ति थी। वह स्थान समतल था। वहाँ डाँस-मच्छड़ और काँटे आदि का नाम भी न था। वहाँ बहुत प्रकार के फल-मूल और जल की सुविधा थी। वह स्थान देवता, गन्धर्व आदि के रहने से मनोहर था। वहाँ पर कोमल घास उगी हुई थी। बर्फ़ के कारण वह भूमि कोमल लगती थी। २०

पाण्डव लोग ब्राह्मणों के साथ वहाँ पहुँचकर एक-एक करके राक्षसों के कन्धों पर से उतर पड़े। फिर उनके साथ जाकर नर-नारायण के निवासस्थान शोकनाशन रमणीय आश्रम

को उन्होंने देखा। वहाँ पर सूर्यकिरणों का ताप, भूख-प्यास या जाड़े-गर्मी की बाधा अथवा तमोगुण नाम लेने को भी नहीं है। महर्षिगण सदा उस स्थान के समीप रहते हैं। वहाँ पर ब्राह्मी शोभा (सत्वगुणी प्रकृति) देख पड़ती है। पापी दुराचारी लोग वहाँ नहीं जा सकते। पूजा-पाठ और हवन आदि पुण्य कर्मों के अनुष्ठान से वह स्थान पवित्र है और देवताओं की उपासना से रमणीय हो रहा है। वह स्थान अच्छी तरह लिपा-पुता हुआ है। मनोहर पुष्पोपहार, बड़े-बड़े अग्निकुण्ड, स्रुक्-स्रुव आदि यज्ञपात्र और जल-भरे कलश चारों ओर उस स्थान में रक्खे हुए हैं। वह आश्रम सब प्राणियों को शरण और शान्ति देनेवाला, वेद-पाठ के शब्द से पूर्ण, दिव्य, रहने के योग्य और सब प्रकार के श्रम को मिटानेवाला है। फल-मूल खाकर निर्वाह करनेवाले, मृगछाला पहननेवाले, सूर्य और अग्नि के सदृश तेजस्वी, ब्रह्मवादी, जितेन्द्रिय, मोक्ष की इच्छा रखनेवाले, महाभाग, महातेजस्वी महर्षि वहाँ सदा रहते हैं। ३०

महातेजस्वी युधिष्ठिर पवित्र और एकाग्र होकर उस स्थान पर रहनेवाले ऋषियों के पास गये। दिव्यज्ञानी, स्वाध्याय में लगे हुए ऋषि उन्हें देखकर प्रसन्नतापूर्वक आशीर्वाद देने लगे। उनके आगे आकर सत्कार के लिए उन्होंने पवित्र फल-मूल, फूल और जल आदि सामग्री उनको दी। महर्षियों के किये हुए उस सत्कार को पाकर धर्मराज अत्यन्त आनन्दित हुए। फिर उन्होंने भाइयों, वेदपारग ब्राह्मणों और द्रौपदी को साथ लिये इन्द्रलोक-सदृश परम रमणीय, पवित्र, इन्द्रभवनतुल्य मनोहर, गङ्गातट पर स्थित, देव-देवर्षिगण-पूजित नर-नारायण के स्थान को देखा। ४० उस ब्रह्मर्षिगण-सेवित, मधुर रसवाले फलों से शोभित, रमणीय स्थान को देखकर वे बहुत ही आनन्दित हुए। फिर ब्राह्मणों के साथ बड़ी ही प्रसन्नता से वे वहाँ ठहर गये। इस स्थान पर विविध पक्षियों से पूर्ण और सुनहरे शिखरों से शोभित मैनाक पर्वत तथा परममङ्गल के स्थान बिन्दुसर तीर्थ को उन्होंने देखा। सब ऋतुओं के फूलों से शोभित उस रमणीय वन में वे द्रौपदी-सहित सैर करने लगे। खिले हुए फूलों से शोभित, कोकिलाओं के शब्द से गूँज रहे उस स्थान को फलों के बोझ से झुके हुए वृक्ष अपने चिकने घने पत्तों से शीतल छाँह देते हुए और भी रमणीय बना रहे थे। वहाँ पर कमल आदि के फूलों से शोभित, निर्मल जलवाले मनोहर सरोवरों को देखकर और पवित्र गन्धवाले सुखस्पर्श वायु का सेवन कर पाण्डव परम प्रसन्न हुए। ४९ फिर उन्होंने विशाल बदरीवृक्ष के समीप, दिव्य पुष्पों से पूर्ण, हृदय को आनन्द देनेवाली गङ्गाजी के दर्शन किये। वहाँ घाट में मणि-मूँगा आदि जड़े हुए थे। उस देवर्षियों के रहने योग्य दुर्गम स्थान में भागीरथी के पवित्र जल में स्नान, देव-ऋषि-पितरों का तर्पण, जप आदि करके द्रौपदी की विचित्र क्रीड़ा देखते हुए पाण्डव, ब्राह्मणों के साथ रहकर, असीम आनन्द करने लगे। ५४

एक सौ छियालीस अध्याय

भीमसेन का कमल लेने जाना और उनकी हनुमान् से भेंट होना

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, इस तरह पुरुषसिंह पाण्डवों ने पवित्र होकर अर्जुन को देखने की लालसा से वहाँ छः रातें विताईं। इसी समय वायु ने पूर्व-उत्तर कोण से चलकर अचानक एक सूर्य के समान प्रकाशमान सहस्रदल कमल वहाँ पर पहुँचा दिया। हवा के लाये हुए उस दिव्य-गन्धयुक्त दर्शनीय पुष्प को देखकर और लेकर द्रौपदी बहुत प्रसन्न हुई। उसने भीमसेन से कहा—हे पाण्डव, देखो, यह पुष्प कैसा सुगन्धित, रमणीय और बहुत बढ़िया है! देखते ही इसने मेरे मन को हर लिया है। मैं धर्मराज को यह पुष्प दूँगी। हे पार्थ, जो तुम मुझे प्यार करते हो तो ऐसे बहुत से फूल लाकर मुझे दो। मैं उन फूलों को काम्यक वन में ले जाना चाहती हूँ। द्रौपदी भीमसेन से यों कहकर वह फूल लेकर धर्मराज के पास गई।

महाबाहु भीमसेन, द्रौपदी की इच्छा जानकर उसका प्रिय करने की इच्छा से, कमल लेने के लिए वहाँ से चल दिये। सुवर्ण की पीठवाला धनुष और साँप के आकारवाले ज़हरीले बाण लेकर कुपित केसरी और मत्त मातङ्ग की तरह भीमसेन जिधर से वह हवा आ रही थी उधर ही चल पड़े। महावीर भीमसेन जिधर जा रहे थे उधर के स्थानों के प्राणी महाधनुष और बाण धारण किये भीमरूप भीमसेन को देखने लगे। राह में उदासी, थकावट, डर या घबराहट आदि किसी प्रकार की बाधा उनको इस कार्य में नहीं हुई। वे केवल अपने बाहुबल के भरोसे प्रिया का प्रिय करने की इच्छा से निडर होकर पर्वतराज गन्धमादन पर पहुँच गये। वहाँ उन्होंने देखा कि उस पर्वत-राज पर अनेक रङ्ग की धातुएँ, वृक्ष, मृग, पक्षी, लताएँ, गुल्म और नीले रङ्ग की शिलाएँ फैली हुई हैं। वह पृथ्वी के सब भूषणों से भूषित हाथ की तरह ऊपर उठा हुआ है। उस पर किन्नर इधर-उधर विचर रहे हैं। कोकिलाएँ वहाँ अपनी मीठी बोली सुना रही हैं, भौंरों के

झुण्ड गुञ्जार कर रहे हैं। इस प्रकार के रमणीय गन्धमादन के शिखरों को देखते, अनेक प्रकार के विचार करते और सभी ऋतुओं के फूलों की महक सूँघते हुए भीमसेन चले जा रहे थे। उनके कान वहाँ के विचित्र शब्दों के सुनने में लग गये, आँखें वहाँ के दृश्यों को देखने में लीन हो गईं और चित्त में वे वहाँ के ही दृश्यों के बारे में सोचने लगे। जाते समय तरह-तरह के पुष्पों की सुगन्ध से पूर्ण, शीतल, उस पर्वत का पवन उनके श्रम को दूर कर रहा था। मानों उनके पिता वायु स्नेह के मारे उनके शरीर पर अपना सुखस्पर्श हाथ फेर रहे थे।

महाबाहु भीमसेन इस प्रकार अपने पिता पवन की सहायता से श्रमरहित और स्वस्थ होकर प्रसन्नतापूर्वक उस प्रकार के कमलों की खोज में उस यक्ष, गन्धर्व, देवता, ब्रह्मर्षिगण आदि २० की निवासभूमि पर्वत के शिखरों पर इधर-उधर फिरने लगे। भीमसेन ने देखा, वह पर्वत सुनहरे, सफ़ेद और काले रङ्ग की धातुओं से लिपा हुआ सा है। दोनों तरफ़ मेघों के मँड़राते रहने से जान पड़ता है मानों वह पर्वत पंख फैलाये नाच रहा है। झरनों के गिरने से जो जलकण उड़ रहे हैं वे मोतियों के हार की तरह उसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। चारों ओर रमणीय गुफा, कुञ्ज, झरने और बड़ी-बड़ी कन्दराएँ देख पड़ रही हैं। टहलती हुई अप्सराओं के नूपुरों का शब्द सुनकर मोर उसे बादलों का शब्द समझते हुए ख़ुशी से नाच रहे हैं। वहाँ के शिखर और शिलाएँ जगह-जगह पर गजराजों के दाँतों की रगड़ से घिस गई हैं। बढ़ी हुई नदियों का जल इधर-उधर फैला हुआ उस पर्वत के शिथिल वस्त्र की तरह शोभा दे रहा है। मत्त हाथी के समान लाल आँखोंवाले, मत्त हाथी के समान पराक्रमी और वेगशाली भीमसेन, प्रिया का प्रिय करने के लिए, अपने वेग से लताओं को रौंदते चले जा रहे थे। पास ही टहलते हुए, डर को न जाननेवाले मृग, घास का कौर मुँह में दबाये, स्थिर भाव से कौतुक के साथ भीमसेन को देख रहे थे; अपने प्यारों के पास बैठी हुई यक्षों और गन्धर्वों की स्त्रियाँ एकाग्र भाव से उनकी ओर देख रही थीं; परन्तु भीमसेन उन्हें नहीं देख पाते थे। सुन्दर रूप के नवीन अवतार ऐसे ३० भीमसेन रमणीय गन्धमादन के शिखरों पर घूमने लगे।

दुर्योधन ने जो बहुत से क्लेश दिये थे उन्हें स्मरण करके भीमसेन वनवास के कष्ट सहती हुई द्रौपदी का प्रिय करने के लिए उद्यत हुए थे। वे सोचने लगे कि अर्जुन इन्द्रलोक में हैं; मैं भी इधर फूल लेने चला आया हूँ; आर्य युधिष्ठिर अकेले क्या करेंगे। नकुल-सहदेव उनको बहुत प्यारे हैं, इसी से उन छोटे भाइयों के यथार्थ में महाबली साहसी शूर होने पर भी धर्मराज को उनके बल-विक्रम का विश्वास नहीं है। वे उन्हें अपनी आँखों की ओट कभी न कर सकेंगे। कौन उपाय करूँ कि शीघ्र फूल लेकर यहाँ से चल दूँ? पुरुषसिंह भीमसेन यों सोचते हुए द्रौपदी का प्रिय करने के लिए पर्वत-शिखरों पर शीघ्रता के साथ जाने लगे। उनके पैरों की धमक वज्रपात के समान थी। उससे पृथ्वी तक काँप उठती थी। हाथियों के झुण्ड उन्हें देखकर

डर गये। सिंह, बाघ, मृग आदि को मारते-भगाते, वृक्षों को उखाड़-उखाड़कर फेंकते, वेग से लताओं के जाल खींचते, सीढ़ियों की तरह नीचे-ऊँचे शिखरों पर चलते हुए भीमसेन गजराज के समान जान पड़ते थे। बिजली से शोभित मेघ के समान भीमसेन बीच-बीच में भयानक रूप से गरजते भी जाते थे। उनके उस गम्भीर गर्जन को सुनकर सिंह, व्याघ्र आदि भयानक पशु जागकर कन्दराओं से बाहर निकल पड़े। वनवासी लोग डर के मारे इधर-उधर छिप रहे। पक्षी उड़-उड़कर भागे। मृगों के झुण्ड डरकर भागने लगे। भालू वृक्षों के नीचे से बेतहाशा भागे। भैंसे व्याकुल हो उठे। डरे हुए हाथियों के झुण्ड हथिनियों के साथ भागकर उस वन से दूसरे वन को चले गये। वराह, मृग, सिंह, भैंसे, बाघ, नीलगाय, सियार और लोमड़ी आदि वन के जीव चिल्ला उठे। चक्रवाक, पपीहा, हंस, कारण्डव, प्लव, तोते, कोयल, मैना, क्रौञ्च आदि पक्षी डरकर भाग खड़े हुए। हथिनियों के द्वारा उत्तेजित कोई-कोई हाथी और सिंह-व्याघ्र आदि कुपित होकर भीमसेन की तरफ़ दौड़े। कोई-कोई डर के मारे मल-मूत्र त्याग करते हुए मुँह फैलाकर भयानक शब्द करने लगे। ४०

भीमसेन क्रोधित होकर अपने बाहुबल से आक्रमण करके हाथियों से हाथियों को, सिंहों से सिंहों को और थप्पड़ आदि मारकर अन्य पशुओं को नष्ट करने लगे। भीमसेन के प्रहार से सिंह, व्याघ्र, तेंदुए आदि विह्वल हो गये; वे डर के मारे मल-मूत्र त्याग करने लगे। फिर भीमसेन भयङ्कर शब्द करते हुए वन में घुसे। गन्धमादन पर्वत के शिखर पर उन्होंने कई योजन तक फैला हुआ कदली-वन देखा। उस केले के वन में वे घुस गये। गजराज की तरह वृक्षों को तोड़ते और उखाड़ते हुए भीमसेन वहाँ इधर-उधर फिरने और क्रोधित नृसिंह भगवान् की तरह गरजने लगे। रुरु, वानर, सिंह और भैंसे आदि बहुत से बड़े-बड़े प्राणी प्राणों के डर से जलाशय की ओर भागे। उनके भारी कोलाहल और भीमसेन के सिंहनाद को सुनकर दूसरे वनों के पक्षी और मृग आदि जीव डर के मारे काँप उठे। जल के पास रहनेवाले अन्यान्य पक्षी उस शब्द को सुनकर उड़ने लगे। उनके पर पानी से भीग गये थे। ५०

उन जल में रहनेवाले पक्षियों को देखकर भीमसेन समझ गये कि यहाँ पास ही कोई जलाशय है। उन्हीं पक्षियों को लक्ष्य करके भीमसेन एक परम रमणीय बड़े भारी सरोवर के पास पहुँचे। सुनहरे रङ्ग के केलों के पेड़ों के पत्ते हवा से हिल रहे थे; जान पड़ता था मानों वे भीमसेन को पङ्खा झल रहे हैं। बली भीमसेन उस कमलों से पूर्ण सरोवर में घुस पड़े। गजराज की तरह वे उसके भीतर बहुत देर तक जलक्रीड़ा करते रहे। क्रीड़ा करके वे बाहर निकले। फिर वेग से उस बहुत वृक्षोंवाले वन में घुसकर वे ज़ोर से अपना शङ्ख बजाकर ताल ठोंकने लगे। वह शब्द चारों ओर गूँज उठा। उनकी शङ्खध्वनि, सिंहनाद और ताल ठोंकने के शब्द से कन्दराएँ गूँजने लगीं। कन्दराओं में सोये हुए सिंह उस वज्रपात के समान ताल ठोकने के शब्द को सुनकर ज़ोर से गरजने लगे। हाथियों के झुण्ड भी सिंहनाद से डरकर भयङ्कर शब्द करने लगे। ये सब शब्द पर्वत भर में भर गये। वानरराज हनुमान् भी उसी स्थान पर थे। वे हाथियों की घोर चिल्लाहट से भीमसेन के आने का हाल जानकर उसी राह को रोककर बैठ गये जो उस वन से स्वर्ग को जाती थी। वे चाहते थे कि भीमसेन उस राह में जाकर शापग्रस्त न होने पावें, या किसी प्रकार की हानि न उठाने पावें। वहाँ बैठ-कर वे अलसाये हुए भाव से बारबार जँभाने और पूँछ को पटकने लगे जिससे वज्र के समान शब्द होता था। गरजते हुए साँड़ के ऐसे उस पूँछ पटकने के शब्द को वह पर्वतराज मानों कन्दरारूपी मुँह से प्रकट कर रहा था। पूँछ पटकने के शब्द से वह पर्वतराज चलायमान हो उठा। सब शिखर हिलने और फटने से लगे। वह पूँछ पटकने का शब्द इतना बढ़ा कि हाथियों की चिग्घाड़ छिप गई। पर्वत के शिखरों पर वह शब्द गूँज उठा।
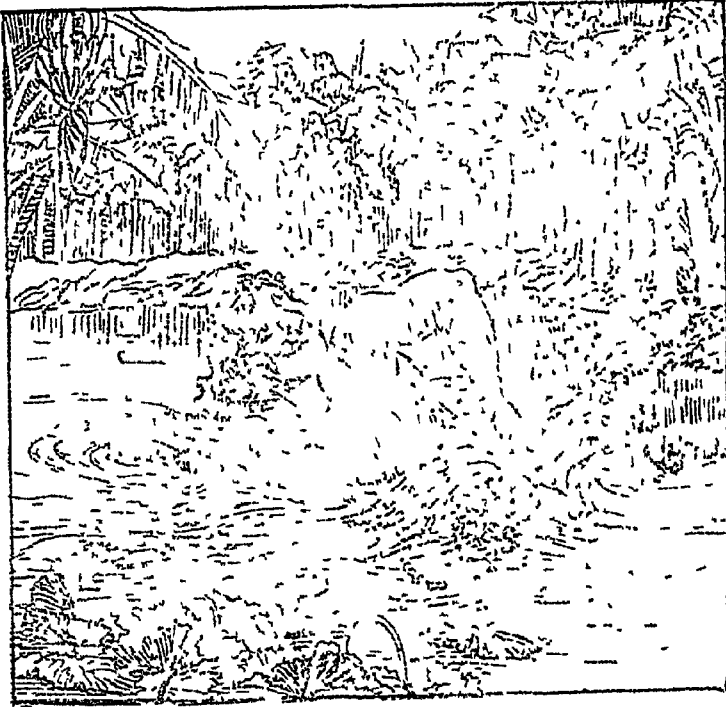
६०

७०

उस शब्द को सुनने से भीमसेन के रोंगटे खड़े हो आये। वे उस शब्द के कारण को खोजते हुए उस कदली-वन में फिरने लगे। कुछ देर बाद उसी वन में उन्होंने देखा कि एक शिला के ऊपर वज्रपात के से भयानक शब्द से गरजते हुए, चञ्चल, पिङ्गलवर्ण, कपिराज हनुमान् लेटे हुए हैं। उनकी मोटी और नाटी गर्दन हाथ के सहारे पर है, पूँछ का सिरा कुछ टेढ़ा

है। वह पूँछ लम्बी और रोमपूर्ण होने के कारण ध्वजा के दण्ड के समान जान पड़ती है। उनके कन्धे चौड़े हैं। कमर पतली है। ओंठ छोटे हैं। दाढ़ें बाहर निकली हैं। चमकते हुए दाँतों से उनका मुख किरणयुक्त चन्द्रमण्डल के समान जान पड़ता है। वे सुनहरे केले के पेड़ों के बीच बैठे हुए हैं। उनका प्रभापूर्ण शरीर प्रज्वलित अग्नि के समान तेज से पूर्ण है। शहद के रङ्ग के पिङ्गलवर्ण नेत्रों से वे भीमसेन की ओर ताक रहे थे। ८०

वानरराज हनुमान् को इस तरह स्वर्ग की राह रोके लेटे देखकर भीमसेन बेधड़क वेग से उनके पास जाकर वज्रपात के समान गम्भीर सिंहनाद करने लगे। उनका वह शब्द सुनते ही सब मृग और पक्षी शङ्कित हो गये। महाबली हनुमान् ज़रा आँखें खोलकर उनकी ओर लापरवाही से देखकर मुसकाते हुए कहने लगे—मैं बीमार हूँ; इस जगह आराम से पड़ा सो रहा था; तुमने क्यों आकर मुझे जगा दिया? तुम बुद्धिमान् हो, इसलिए तुम्हें सब पर दया करनी चाहिए। हम लोग पशुयोनि में उत्पन्न हुए हैं। इस कारण धर्म के विषय में कुछ नहीं जानते। मनुष्य बुद्धिमान् हैं; वे सब प्राणियों पर दया करते हैं। तुम ऐसे लोग वैसे काम नहीं करते जिससे शरीर, मन और वाणी दूषित हो, या धर्म को हानि पहुँचे। तुम शायद धर्म के विषय को बिलकुल नहीं जानते; तुमने पण्डितों की सोहबत भी नहीं की है। इसी से लड़कपन और कम समझ के कारण पशुओं को सताते हो। ९० तुम कौन हो? किसलिए इस निर्जन वन में आये हो? आगे अब कहाँ जाओगे? इस वन के बाद ही वह अगम्य और बड़ी ही कठिनता से चढ़ने योग्य पर्वत का शिखर देख पड़ता है। सिद्धि प्राप्त किये बिना उस पर जाना सहज नहीं है। यह देवलोक का मार्ग है। मनुष्य उधर नहीं जा सकता। मैं करुणा-वश तुमको रोकता हूँ; तुम लौट जाओ। अब आगे नहीं जा सकोगे। हे नरश्रेष्ठ, यदि मेरी यह बात हित की जान पड़े तो आगे न जाकर यहीं ठहरो; ये अमृत के समान स्वादिष्ठ फल खाओ और लौट जाओ। इसी में तुम्हारा भला है। वृथा मौत के मुँह में न जाओ। ९६

एक सौ सैंतालीस अध्याय

भीमसेन और हनुमान् की बातचीत

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, हनुमान् के ये वचन सुनकर भीमसेन कहने लगे—तुम कौन हो? वानर का रूप रखकर यहाँ किसलिए पड़े हो? मैं क्षत्रिय महाराज पाण्डु का पुत्र हूँ। मैं सोमवंशी हूँ। वायु के वीर्य से कुरुकुल में कुन्ती के गर्भ से मेरा जन्म हुआ है। मेरा नाम भीमसेन है।

भीमसेन के ये वचन सुनकर कपिराज हनुमान् ने मुसकाकर कहा—मैं वानर हूँ। तुम जिधर जाना चाहते हो, उधर जाने की राह मैं तुमको न दूँगा। तुम यहाँ से लौट जाओ। जान-बूझकर मौत को न बुलाओ। भीमसेन ने कहा—चाहे मेरी मृत्यु हो चाहे कुछ और, उसके लिए मैं तुमसे नहीं पूछता। तुम उठकर मुझे राह दो। नाहक़ मुझसे वैर ठानकर कष्ट पाने का उपाय न करो। हनुमान् ने कहा—मैं बीमार और सुस्त होकर यहाँ पड़ा हूँ; मुझमें उठने तक की शक्ति नहीं। जो तुम जाना ही चाहते हो, नहीं मानते, तो मुझे लाँघकर चले जाओ। भीमसेन ने कहा—निर्गुण परमात्मा सभी के शरीर में विद्यमान है। मैं जान-बूझकर, उसे लाँघकर, उसका अपमान नहीं कर सकता। जो मैं शास्त्र पढ़कर उस परमात्मा को न जानता तो हनुमान् के समुद्र लाँघ जाने के समान तुमको और इस पर्वत को लाँघ जाता। हनु-
१० मान् ने कहा—जो समुद्र लाँघ गये थे उन हनुमान् को अगर जानते हो तो बतलाओ। भीमसेन ने कहा—हनुमान् मेरे भाई हैं। उनमें प्रशंसनीय गुण हैं। उनमें अमित बुद्धि और पराक्रम है और वे रामायण में परम प्रसिद्ध हैं। वे राम की स्त्री जानकी के लिए सौ योजन लम्बे समुद्र को एक छलाँग में फाँद गये थे। मैं भी बल, विक्रम और वीर्य में, युद्ध करने में, उन्हीं महापराक्रमी भाई के समान हूँ। मैं सहज ही तुमको परास्त कर सकता हूँ। इसलिए उठकर मुझे राह दे दो, नहीं तो मेरे पौरुष को देखो; अभी मैं तुमको यमलोक भेज दूँगा।

तब महावीर हनुमान् भीमसेन को बल के मद से उन्मत्त और बाहुबल के घमण्ड में चूर देखकर मन ही मन हँसकर कहने लगे—हे वीर, प्रसन्न होओ। मैं बुढ़ापे के मारे उठ नहीं सकता। इसलिए कृपा करके मेरी यह पूँछ हटा दो। हनुमान् के यों कहने पर बाहुबल के घमण्ड से भरे हुए भीमसेन सोचने लगे कि यह वानर बिलकुल ही बल-वीर्य से हीन है। इससे पूँछ पकड़कर मैं इसे अभी यमलोक को भेज दूँगा। यह सोचकर उन्होंने अनादरपूर्वक बायें हाथ से हनुमान् की पूँछ पकड़ी; किन्तु वे किसी तरह उसे उस जगह से हटा नहीं सके। फिर दोनों हाथों से वह इन्द्र की ध्वजा के समान उठी हुई हनुमान् की पूँछ उन्होंने पकड़ी; किन्तु
२० फिर भी किसी तरह उसको वे हिला नहीं सके। यद्यपि भीमसेन की भौंहें टेढ़ी हो गईं, आँखें

निकल सी पड़ीं और शरीर थकन के पसीने से तर हो गया; तो भी वे उस पूँछ को टस से मस नहीं कर सके। इस तरह बहुत यत्न करने पर भी जब वे उस पूँछ को हिला नहीं सके तब लज्जित भाव से सिर नीचा करके हनुमान् के पास खड़े हो गये और प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहने लगे—हे वानरराज, प्रसन्न हूजिए। मैंने जो कटु वचन तुमको कहे हैं उनके लिए क्षमा कीजिए। तुम वानर का रूप धारण किये हुए कौन हो? क्या सिद्ध, देवता, गन्धर्व या यक्ष हो? मैं शिष्य की तरह तुमसे पूछता हूँ। जो तुम्हारा वृत्तान्त छिपाने योग्य न हो, मेरे सुनने योग्य हो, तो मुझसे सब कहो।

हनुमान् ने कहा—हे शत्रुदमन, मेरा परिचय पाने के लिए तुमको कौतूहल हुआ है तो मैं विस्तार के साथ कहता हूँ, सुनो। मैं केसरी की स्त्री अंजना के गर्भ से वायु के अंश से उत्पन्न हुआ हूँ; मेरा नाम हनुमान् है। वानरराज और वानरयूथपगण जिन सूर्यपुत्र सुग्रीव और इन्द्रपुत्र वाली के आज्ञाकारी थे उनका मैं मन्त्री था। अग्नि और वायु की जैसी मित्रता है वैसी ही मित्रता मुझसे और सुग्रीव से थी। किसी कारण भाई वाली के अपमान करने पर सुग्रीव मेरे साथ ऋष्यमूक पर्वत पर रहने लगे। उसी समय दशरथ के पुत्र विष्णु के अवतार रामचन्द्र, पिता की आज्ञा का पालन ३० करने के लिए, अपने भाई और स्त्री के साथ दण्डकारण्य को गये। वहाँ राक्षसेन्द्र महाबली रावण पापी ने, सुवर्णमृगरूप मारीच की सहायता से, राम को आश्रम से दूर भेज दिया और आप जनस्थान में सूने आश्रम से सीता को चुरा ले गया। ३४

एक सौ अड़तालीस अध्याय

हनुमान् का संक्षेप में रामायण की कथा कहना

हनुमान् ने कहा—हे वीर, इस प्रकार सीता के हरे जाने पर महावीर रामचन्द्र भाई के साथ उन्हें खोजते हुए चले। राह में पर्वत के शिखर पर उनकी वानरराज सुग्रीव से भेंट हुई।

फिर सुग्रीव के साथ उनकी मित्रता हो जाने पर उन्होंने वाली को मारा और सुग्रीव को राजगद्दी पर बिठा दिया। सुग्रीव ने राज्य पाकर सीता को खोजने के लिए सैकड़ों हज़ारों वानरों को इधर-उधर भेजा। मैं भी करोड़ों वानरों के साथ सीता को खोजने दक्षिण दिशा को गया।

इसके बाद राह में गिद्धों के राजा सम्पाति के मुँह से रावण के घर सीता के रहने की ख़बर पाकर, महात्मा रामचन्द्र का काम सिद्ध करने के लिए, मैं सौ योजन लम्बे समुद्र को लाँघकर रावण के घर गया। वहाँ जाकर मैंने देवकन्या के समान सुन्दरी राम की पत्नी सीता को देखा। फिर उनसे मिलकर मैंने महल, फाटक, दीवार आदि सहित सारी लङ्का को आग लगाकर भस्म कर दिया। इस प्रकार अपना परिचय देकर मैं वहाँ से फिर लौट आया। राम-
१० चन्द्रजी ने मुझसे समाचार पाते ही सोचकर रावण पर चढ़ाई कर दी; समुद्र पर पुल बांधा और वानरों के साथ वे समुद्र के उस पार पहुँच गये। फिर युद्ध में भाई, पुत्र, बन्धु-बान्धव आदि बहुत राक्षसों के साथ राक्षसेन्द्र रावण को रामचन्द्र ने मारा। अपने आज्ञाकारी, भक्त, धर्मात्मा विभीषण को लङ्का की राजगद्दी पर बिठाकर रामचन्द्र ने खोई हुई श्रुति (वेद) के समान सीता को प्राप्त किया। वहाँ से वे अयोध्यापुरी को लौट आये और राजगद्दी पर बैठे। तब मैंने रामचन्द्रजी से वरदान माँगकर कहा—हे शत्रुदमन, जब तक आपकी कथा इस संसार में रहे तब तक मैं जीता रहूँ। उन्होंने मेरी बात मान ली। हे भीम, सीता के प्रसाद से मैं यहीं रहकर इच्छा के अनुसार सब दिव्य भोगों को पाता हूँ। भगवान् विष्णु के अवतार रामचन्द्र ग्यारह हज़ार वर्ष तक राज्य-सुख भोगकर परम धाम को चले गये। हे निष्पाप, अप्सराएँ और
२० गन्धर्व इस स्थान पर बराबर रामचरित गाकर मुझे सन्तुष्ट किया करते हैं। यह मार्ग मनुष्यों के लिए अगम्य है। कोई तुम्हें शाप न दे दे, या तुम्हें किसी से परास्त न होना पड़े, इसी लिए मैं यह स्वर्ग की राह रोककर बैठा था। इस राह से देवता लोग आते-जाते हैं। यहाँ मनुष्य
२२ का अधिकार नहीं है। तुम जिसके लिए आये हो वह सरोवर इसी जगह है।

एक सौ उनचास अध्याय

चारों युगों का वर्णन

वैशम्पायन ने कहा कि हे जनमेजय, हनुमान् के यों कहने पर महाबली भीमसेन ने प्रसन्नतापूर्वक उनसे कहा—हे वानरराज, आज मैं आपके दर्शन पाकर धन्य, अनुगृहीत और सन्तुष्ट हुआ। इस समय आपको मेरा एक प्रिय काम करना होगा। समुद्र को लाँघते समय आपने जो विशाल रूप धारण किया था उसे मैं इस समय देखना चाहता हूँ। आप अपना वह रूप दिखावेंगे तो मैं अत्यन्त सन्तुष्ट होऊँगा और आपके वचनों पर श्रद्धा करूँगा। तब हनुमान् ने हँसकर कहा—हे भीमसेन, तुम या और कोई मेरे उस पहले के भीमरूप को नहीं देख सकता;

क्योंकि तब समय और था, और अब समय और है। सत्ययुग में समय दूसरे प्रकार का होता है। त्रेतायुग में और प्रकार का, और द्वापरयुग में और प्रकार का होता है। इस समय सब प्रकार से हीन समय है। अब मेरा वह रूप नहीं है। भूमि, नदी, पहाड़, सिद्ध, देवता और महर्षि हर एक युग में काल के अनुगामी होते हैं। बल, शरीर और प्रभाव, सभी का कम हो जाता है। इसलिए अब मेरा वह पहला रूप देखने की ज़रूरत नहीं। मैं इस समय युग का अनुगामी हूँ। काल के प्रभाव से कोई नहीं बच सकता।

भीमसेन ने कहा—हे वीर, आप हर एक युग की संख्या, आचार, धर्म, अर्थ, काम, तत्त्व, कर्म, वीर्य, उत्पत्ति और विनाश का पूरा वर्णन कीजिए। हनुमान् ने कहा—भैया भीम, पहले सत्ययुग है। इस युग में सनातन धर्म प्रचलित था। कोई कार्य भी करने के लिए रह नहीं जाता था, अर्थात् सभी काम हो जाते थे। उस युग में धर्म की हानि या प्रजा का क्षय नहीं होता था। इसी कारण उसको कृतयुग भी कहते हैं। अब समय के प्रभाव से उसकी प्रधानता नहीं रही। सत्ययुग में देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और नाग आदि जातियों के विभाग नहीं थे। कोई उपद्रव नहीं था। किसी प्रकार का क्रय-विक्रय नहीं था। चार वेद नहीं थे; एक ही वेद था। खेती आदि मनुष्यों के काम भी नहीं थे। संकल्प से ही सब काम सिद्ध हो जाते थे। संन्यास ही एक मात्र धर्म था। इस युग में कोई व्याधि या बुढ़ापा नहीं था। ईर्ष्या, रोना, घमण्ड, चित्तविकार, लड़ाई-झगड़ा, आलस्य, द्वेष, छल, भय, सन्ताप, डाह आदि दुर्गुण या बुरी बातों का नाम भी न सुन पड़ता था। एकमात्र परब्रह्म ही योगियों की परमगति थे। शुक्लवर्ण नारायण ही सब प्राणियों के आत्मा थे। अपने-अपने कर्म में लगे हुए अपने-अपने धर्म का पालन करनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र प्रजाजन थे। आचार, आश्रय, ज्ञान, कर्म, धर्म, सब बातें सबकी समान थीं। क्रिया, मन्त्र, विधि आदि सब बातें एक थीं। सब लोग एक ही देवता की आराधना करते थे। शम आदि भिन्न-भिन्न धर्मों का पालन करते हुए भी सब एक सनातन धर्म के अनुगामी थे। समयानुकूल चारों आश्रमों के कर्त्तव्य का पालन करते हुए सब लोग एक वेद के अनुगामी होकर सद्गति प्राप्त करते थे। ब्रह्मयोगसम्पन्न धर्म ही सत्ययुग का लक्षण है। सत्ययुग में चारों वर्णों का धर्म चार चरण का अर्थात् पूरा था। उस युग में माया के तीन गुणों का भेदभाव नहीं था। अब त्रेतायुग का वर्णन सुनो।

त्रेतायुग में यज्ञ की विधि प्रचलित हुई। धर्म का एक चरण घट गया। विष्णु का वर्ण लाल हो गया। सब लोग कर्मकाण्डी और सत्य को सर्वोपरि माननेवाले हुए। अनेक धर्मों और कर्मों का चलन तभी से हुआ। भाव और संकल्प से ही क्रिया और दान सफल होते थे। उस युग में सभी लोग तपस्वी, दानी, स्वधर्मनिष्ठ और कर्मनिरत थे। कोई धर्म के मार्ग का उल्लङ्घन नहीं करता था।

द्वापर युग में धर्म के दो ही चरण रह गये। वेद के चार भाग हो गये। विष्णु का वर्ण पीला हुआ। इस युग में कोई चारों वेदों को, कोई तीन वेदों को, कोई दो ही वेदों को और कोई एक ही वेद को पढ़ता था। कोई-कोई बिलकुल ही वेद नहीं पढ़ते थे। इस प्रकार अनेक शास्त्र बनने पर कर्मकाण्ड के भी बहुत से विभाग हो गये। सब प्रजा तप और दान में श्रद्धा रखती थी। लोगों की प्रकृति अधिकतर रजोगुणी थी। एक वेद का ज्ञान कठिन समझने के कारण एक वेद के बहुत से विभाग उपविभाग हो गये। इस युग में सत्वगुण का एक प्रकार से ३० लोप ही हो गया। कोई-कोई सत्यवादी देख पड़ता था। सत्वगुण से भ्रष्ट होने के कारण बहुत सी व्याधियों ने घेर लिया। दैव के द्वारा अनेक प्रकार की इच्छाओं के साथ उपद्रव भी बढ़ने लगे। इस प्रकार मनुष्यों के पीड़ित होने पर कोई उससे छुटकारे के लिए कठोर तप और कोई कामभोग तथा स्वर्गलाभ की इच्छा से यज्ञ करने लगा। इस प्रकार द्वापर युग में अधर्म की बढ़ती से प्रजा का क्षय होने लगता है।

हे भीमसेन, इस समय कलियुग है। इस युग में तमोगुण की प्रधानता है। धर्म का एक ही चरण रह गया है। नारायण का कृष्ण रूप है। वे वेद, आचार, धर्म, यज्ञ, कर्मकाण्ड आदि अब लुप्त हो गये हैं। ईति, तन्द्रा, क्रोध आदि दोष और व्याधि, भूख-प्यास आदि के उपद्रव प्रकट हो रहे हैं। यह युग विनाश का युग है, इस कारण धर्म का क्षय पहले होता है। धर्म के क्षय से लोकक्षय, लोकक्षय से लोकों की स्थिति का कारण जो धर्म का ज्ञान है वह नष्ट हो जाता है। लोकक्षय के कारणरूप जो भाव हैं उनसे मनुष्यों की इच्छा के विपरीत घटनाएँ होती हैं; अर्थात् वे चाहते कुछ हैं और होता कुछ है। हे पवनपुत्र, यही कलियुग का लक्षण है; जो लोग चिरजीवी हैं, बड़ी आयुवाले हैं, वे हरएक युग में उसी युग का अनुसरण करते हैं।

मेरा परिचय प्राप्त करने के लिए तुम्हारा यह कौतूहल व्यर्थ है। ऐसी निरर्थक बातों में समझदार लोग समय नहीं नष्ट करते। तुमने मुझसे युगों के सम्बन्ध में जो पूछा था सो ४० सब मैंने तुमसे कह दिया। अब तुम सकुशल अपने स्थान को लौट जाओ।

महाभारत के स्थायी ग्राहक बनने के नियम

(१) जो सज्जन हमारे यहाँ महाभारत के स्थायी ग्राहकों में अपना नाम और पता लिखा देते हैं उन्हें महाभारत के अङ्कों पर २०) सैकड़ा कमीशन काट दिया जाता है। अर्थात् १।) प्रति अङ्क के बजाय स्थायी ग्राहकों को १) में प्रति अङ्क दिया जाता है। ध्यान रहे कि डाकखर्च स्थायी और फुटकर सभी तरह के ग्राहकों को अलग देना पड़ेगा।

(२) साल भर या छः मास का मूल्य १२) या ६), दो आना प्रति अङ्क के हिसाब से रजिस्ट्री खर्च सहित १३॥) या ६॥।) जो सज्जन पेशगी मनीआर्डर-द्वारा भेज देंगे, केवल उन्हीं सज्जनों को डाकखर्च नहीं देना पड़ेगा। महाभारत की प्रतियाँ राह में गुम न हो जायँ और ग्राहकों की सेवा में वे सुरक्षित रूप में पहुँच जायँ, इसी लिए रजिस्ट्री द्वारा भेजने का प्रबन्ध किया गया है।

(३) उसके प्रत्येक खंड के लिए अलग से बहुत सुन्दर जिल्दें भी सुनहले नाम के साथ तैयार कराई जाती हैं। प्रत्येक जिल्द का मूल्य ।॥) रहता है परन्तु स्थायी ग्राहकों को वे ॥) ही में मिलती हैं। जिल्दों का मूल्य महाभारत के मूल्य से बिलकुल अलग रहता है।

(४) स्थायी ग्राहकों के पास प्रतिमास प्रत्येक अङ्क प्रकाशित होते ही बिना विलम्ब वी० पी० द्वारा भेजा जाता है। बिना कारण वी० पी० लौटाने से उनका नाम ग्राहक-सूची से अलग कर दिया जायगा।

(५) ग्राहकों को चाहिए कि जब किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार करें तो कृपा कर अपना ग्राहक-नम्बर जो कि पता की स्लिप के साथ छपा रहता है और पूरा पता अवश्य लिख दिया करें। बिना ग्राहक-नम्बर के लिखे हज़ारों ग्राहकों में से किसी एक का नाम ढूँढ़ निकालने में बड़ी कठिनाई पड़ती है और पत्र की कार्रवाई होने में देरी होती है। क्योंकि एक ही नाम के कई-कई ग्राहक हैं। इसलिए सब प्रकार का पत्र-व्यवहार करते तथा रुपया भेजते समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए।

(६) जिन ग्राहकों को अपना पता सदा अथवा अधिक काल के लिए बदलवाना हो, अथवा पते में कुछ भूल हो, उन्हें कार्यालय को पता बदलवाने की चिट्ठी लिखते समय अपना पुराना और नया दोनों पते और ग्राहक-नम्बर भी लिखना चाहिए। जिससे उचित संशोधन करने में कोई दिक़्क़त न हुआ करे। यदि किसी ग्राहक को केवल एक दो मास के लिए ही पता बदलवाना हो, तो उन्हें अपने हलके के डाकख़ाने से उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिए।

(७) ग्राहकों से सविनय निवेदन है कि नया आर्डर या किसी प्रकार का पत्र लिखने के समय यह ध्यान रक्खें कि लिखावट साफ़ साफ़ हो। अपना नाम, गाँव, पोस्ट और ज़िला साफ़ साफ़ हिन्दी या अँगरेज़ी में लिखना चाहिए ताकि अङ्क या उत्तर भेजने में दुबारा पूछ-ताछ करने की ज़रूरत न हो। "हम परिचित ग्राहक हैं" यह सोच कर किसी को अपना पूरा पता लिखने में लापरवाही न करनी चाहिए।

(८) यदि कोई महाशय मनी-आर्डर से रुपया भेजें, तो 'कूपन' पर अपना पता-ठिकाना और रुपया भेजने का अभिप्राय स्पष्ट लिख दिया करें, क्योंकि मनीआर्डरफ़ार्म का यही अंश हमको मिलता है।

सब प्रकार के पत्रव्यवहार का पता—

मैनेजर महाभारत विभाग, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

शुभ संवाद! लाभ की सूचना!!

महाभारत-मीमांसा

कम मूल्य में

राव बहादुर चिन्तामणि विनायक वैद्य एम० ए०, एल्-एल० बी०, मराठी और अँगरेज़ी के नामी लेखक हैं। यह ग्रन्थ आप ही का लिखा हुआ है। इसमें १८ प्रकरण हैं और उनमें महाभारत के कर्ता (प्रणेता), महाभारत-ग्रन्थ का हाल, क्या भारतीय युद्ध काल्पनिक है?, भारतीय युद्ध का समय, इतिहास किनका है?, वर्ण-व्यवस्था—सामाजिक और राजकीय परिस्थिति, व्यवहार और उद्योग-धन्धे, आदि शीर्षक देकर पूरे महाभारत ग्रन्थ की समस्याओं पर विशद रूप से विचार किया गया है।

काशी के प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् श्रीयुत बाबू भगवानदासजी एम० ए० की राय में महाभारत को पढ़ने से पहले इस मीमांसा को पढ़ लेना आवश्यक है। आप इस मीमांसा को महाभारत की कुञ्जी समझते हैं। इसी से समझिए कि ग्रन्थ किस-कोटि का है। इसका हिन्दी-अनुवाद प्रसिद्ध लेखक स्वर्गीय पण्डित माधवरावजी सप्रे, बी० ए०, का किया हुआ है। पुस्तक में बड़े आकार के ४०० से ऊपर पृष्ठ हैं। साथ में एक उपयोगी नक़शा भी दिया हुआ है जिससे ज्ञात हो कि महाभारत-काल में भारत के किस प्रदेश का क्या नाम था।

हमारे यहाँ महाभारत के ग्राहकों के पत्र प्रायः आया करते हैं जिनमें स्थल-विशेष की शंकाएँ पूछी जाती हैं। उन्हें समयानुसार यथामति उत्तर दिया जाता है। किन्तु अब ऐसी शंकाओं का समाधान घर बैठे कर लेने के लिए हमने इस महाभारत-मीमांसा ग्रन्थ को पाठकों के पास पहुँचाने की व्यवस्था का संकल्प कर लिया है। पाठकों के पास यदि यह ग्रन्थ रहेगा और वे इसे पहले से पढ़ लेंगे तो उनके लिए महाभारत की बहुत सी समस्याएँ सरल हो जायँगी। इस मीमांसा का अध्ययन कर लेने से उन्हें महाभारत के पढ़ने का आनन्द इस समय की अपेक्षा अधिक मिलने लगेगा। इसलिए महाभारत के स्थायी ग्राहक यदि इसे मँगाना चाहें तो इस सूचना को पढ़कर शीघ्र मँगा लें। उनके सुभीते के लिए हमने इस ४) के ग्रंथ को केवल २॥) में देने का निश्चय कर लिया है। पत्र में अपना पूरा पता-ठिकाना और महाभारत का ग्राहक-नंबर अवश्य होना चाहिए। **समय बीत जाने पर** महाभारत-मीमांसा **रिआयती मूल्य में न मिल सकेगी।** प्रतियाँ हमारे पास अधिक नहीं हैं।

मैनेजर बुकडिपो—**इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।**

आवश्यक सूचनायें

(१) हमने प्रथम खण्ड की समाप्ति पर उसके साथ एक महाभारत-कालीन भारतवर्ष का प्रामाणिक सुन्दर मानचित्र भी देने की सूचना दी थी। इस सम्बन्ध में हम ग्राहकों को सूचित करते हैं कि पूरा महाभारत समाप्त हो जाने पर हम प्रत्येक ग्राहक को एक परिशिष्ट अध्याय बिना मूल्य भेजेंगे जिसमें महाभारत-सम्बन्धी महत्त्व-पूर्ण खोज, साहित्यिक आलोचना, चरित्र-चित्रण तथा विश्लेषण आदि रहेगा। उसी परिशिष्ट के साथ ही मानचित्र भी लगा रहेगा जिसमें पाठकों को मानचित्र देख कर उपरोक्त बातें पढ़ने और समझने आदि में पूरी सुविधा रहे।

(२) महाभारत के प्रेमी ग्राहकों को यह शुभ समाचार सुन कर बड़ी प्रसन्नता होगी कि हमने कानपुर, उन्नाव, काशी (रामनगर), कलकत्ता, ग़ाज़ीपुर, बरेली, मथुरा (वृन्दावन), जोधपुर, बुलन्दशहर, प्रयाग और लाहौर आदि में ग्राहकों के घर पर ही महाभारत के अङ्क पहुँचाने का प्रबन्ध किया है। अब तक ग्राहकों के पास यहीं से सीधे डाक-द्वारा प्रतिमास अङ्क भेजे जाते थे जिसमें प्रति अङ्क तीन चार आना ख़र्च होता था पर अब हमारा नियुक्त किया हुआ एजेंट ग्राहकों के पास घर पर जाकर अङ्क पहुँचाया करेगा और अङ्क का मूल्य भी ग्राहकों से वसूल कर ठीक समय पर हमारे यहाँ भेजता रहेगा। इस अवस्था पर ग्राहकों को ठीक समय पर प्रत्येक अङ्क सुरक्षित रूप में मिल जाया करेगा और वे डाक, रजिस्टरी तथा मनीआर्डर इत्यादि के व्यय से बच जायँगे। इस प्रकार उन्हें प्रत्येक अङ्क केवल एक रुपया मासिक देने पर ही घर बैठे मिल जाया करेगा। यथेष्ट ग्राहक मिलने पर अन्य नगरों में भी शीघ्र ही इसी प्रकार का प्रबन्ध किया जायगा। आशा है जिन स्थानों में इस प्रकार का प्रबन्ध नहीं है, वहाँ के महाभारतप्रेमी सज्जन शीघ्र ही अधिक संख्या में ग्राहक बन कर इस अवसर से लाभ उठावेंगे। और जहाँ इस प्रकार की व्यवस्था हो चुकी है वहाँ के ग्राहकों के पास जब एजेंट अङ्क लेकर पहुँचे तो ग्राहकों को रुपया देकर अङ्क ठीक समय पर ले लेना चाहिए जिसमें उन्हें ग्राहकों के पास बार बार आने जाने का कष्ट न उठाना पड़े। यदि किसी कारण उस समय ग्राहक मूल्य देने में असमर्थ हों तो अपनी सुविधानुसार एजेंट के पास से जाकर अङ्क ले आने की कृपा किया करें।

(३) हम हिन्दी-भाषा-भाषी सज्जनों से एक सहायता की प्रार्थना करते हैं। वह यही कि हम जिस विराट् आयोजन में संलग्न हुए हैं आप लोग भी कृपया इस पुण्य-पर्व में सम्मिलित होकर पुण्य-सञ्चय कीजिए, अपनी राष्ट्र-भाषा हिन्दी का साहित्य-भाण्डार पूर्ण करने में सहायक हूजिए और इस प्रकार सर्वसाधारण का हित-साधन करने का उद्योग कीजिए। सिर्फ़ इतना ही करें कि अपने दस-पाँच हिन्दी-प्रेमी इष्ट-मित्रों में से कम से कम दो स्थायी ग्राहक इस वेद तुल्य सर्वाङ्गसुन्दर महाभारत के और बना देने की कृपा करें। जिन पुस्तकालयों में हिन्दी की पहुँच हो वहाँ इसे ज़रूर मँगवावें। एक भी समर्थ व्यक्ति ऐसा न रह जाय जिसके घर यह पवित्र ग्रन्थ न पहुँचे। आप सब लोगों के इस प्रकार साहाय्य करने से ही यह कार्य्य अग्रसर होकर समाज का हितसाधन करने में समर्थ होगा।

—प्रकाशक

विषय-सूची।

रङ्गीन चित्रों की सूची।

भीमसेन का हनुमान का पर्वताकार भीषण रूप देखकर हर्षित और विस्मित होना।—पृ० ६६६
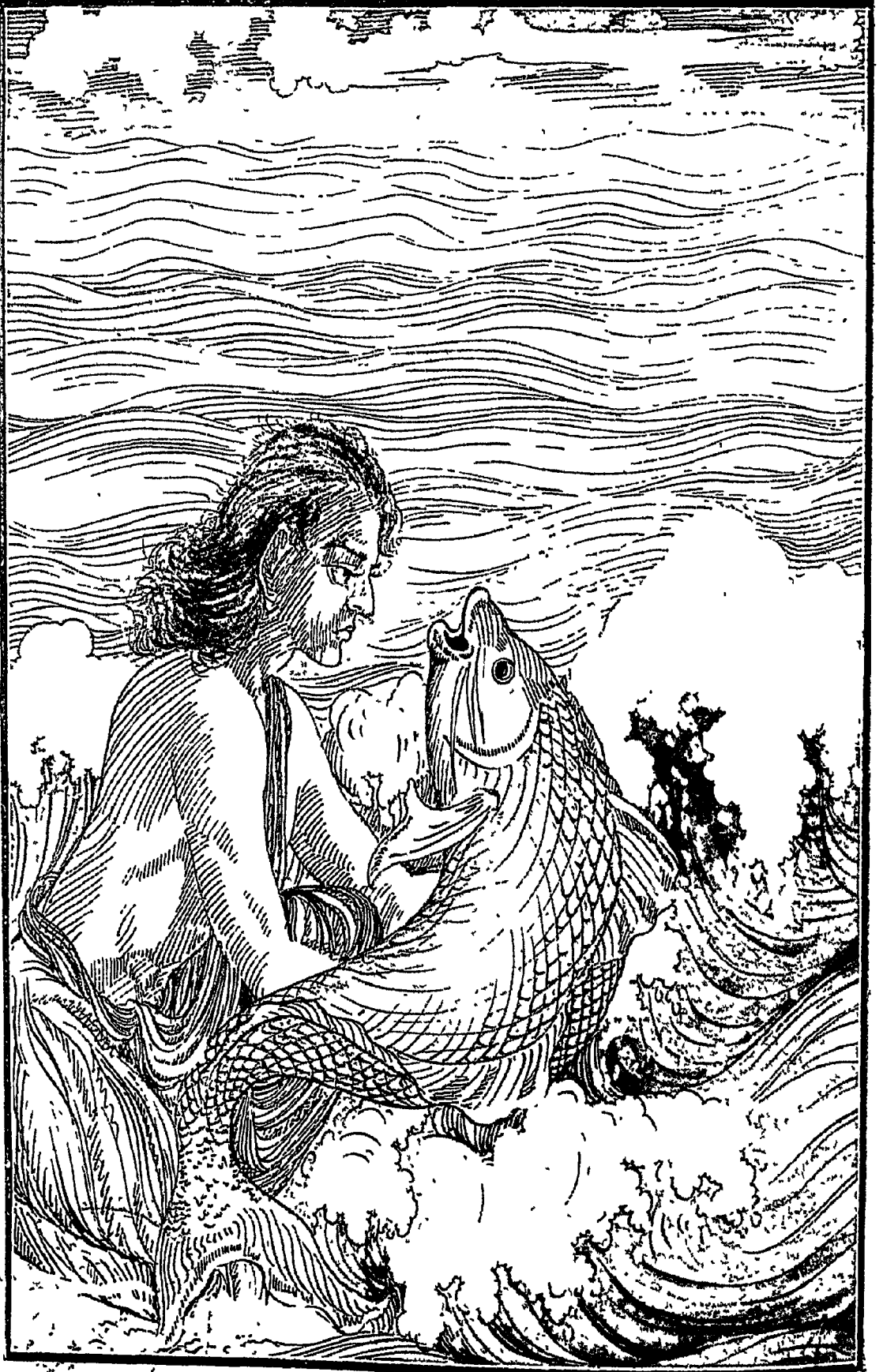
मनु ने उसे गङ्गा से निकाल कर समुद्र में डाल दिया।—पृ० १०७६

एक सौ पचास अध्याय

हनुमान् का अपना पूर्वरूप प्रकट करना और भीमसेन को उपदेश करना

भीमसेन ने कहा—हे महाभाग, मैं आपका पूर्वरूप देखे बिना किसी तरह यहां से न जाऊँगा। इसलिए यदि आप मुझ पर कृपा करते हैं तो अपना पहला रूप दिखाइए। तब हनुमान् ने हँसकर अपने भाई का प्रिय करने के लिए वही विशाल भयानक रूप धारण किया जो समुद्र लाँघने के समय धारण किया था। उन्होंने अपने शरीर को ऐसा बढ़ाया कि उसने अपनी लम्बाई-चौड़ाई से सारे कदली-वन को ढक लिया। उनका वह बड़ा शरीर दूसरे पर्वत के समान जान पड़ने लगा। उनकी आँखें लाल, दाढ़ें तीक्ष्ण, मुखमण्डल टेढ़ी भौंहों से भयानक और पूँछ लम्बी थी। भीमसेन को उनका वह भयानक रूप देखने से बार-बार हर्ष और आश्चर्य हुआ। हनुमान् को सूर्य के समान तेजस्वी और सुमेरु तथा आकाश के समान चमकदार देखकर भीमसेन ने आँखें मूँद लीं। यह देखकर हनुमान् ने मुसकराकर कहा—भीम, मैं जितना चाहूँ उतना बढ़ सकता हूँ। किन्तु तुम केवल मेरा ऐसा रूप ही देख सकते हो। हे निष्पाप, मैं शत्रुओं के बीच में इससे बहुत अधिक बढ़ सकता हूँ।

हनुमान् की वह विन्ध्याचल के समान अत्यन्त अद्भुत भयानक मूर्त्ति देखकर भीमसेन ने हाथ जोड़े। उनको रोमाञ्च हो आया। उन्होंने घबराकर कहा—विभो, मैंने आपका विशाल शरीर देख लिया। अब इसे छोटा कर लीजिए। उदय हुए सूर्य और उठे हुए मैनाक पर्वत के समान आपके इस अप्रमेय, अधर्षणीय शरीर को मैं अब नहीं देख सकता। मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि जब आप रामचन्द्रजी के पास मौजूद थे तब उन्होंने ख़ुद रावण को क्यों मारा! क्योंकि आप तो अकेले ही, अपने बाहुबल से योद्धा और वाहन आदि सहित रावण की लङ्कापुरी को नष्ट कर सकते थे। हे पवन-पुत्र, आपके लिए कुछ भी असाध्य नहीं है। अपनी सेना समेत रावण आपका सामना नहीं कर सकता था। १०

यह सुनकर हनुमान् ने स्नेहपूर्ण गम्भीर स्वर से कहा—भाई, तुम जो कहते हो, सो सच है। वह राक्षसाधम रावण किसी तरह मेरा सामना नहीं कर सकता था; किन्तु जो मैं उस लोक-कण्टक रावण को मारता तो श्रीरामचन्द्र की कीर्त्ति में बट्टा लग जाता; इसी से मैंने अपने हाथ से उसे नहीं मारा। रघुवीर ने ख़ुद उस राक्षसाधम को, उसके भाई-बन्धुओं सहित, मार डाला और अपनी पत्नी को वे अयोध्यापुरी में ले आये। इसी से संसार में उनकी इतनी कीर्त्ति है। भीम, मैं तुमको बहुत प्यार करता हूँ; मैं तुम्हारा सदा हितैषी हूँ। अब तुम निर्विघ्न मार्ग से लौट जाओ। राह में तुम्हारा कुछ अनिष्ट न होगा। वायुदेव तुम्हारी रक्षा करेंगे। हे वीर, इस राह से जाने से सौगन्धिक वन मिलता है। इधर जाने से तुमको कुबेर का बाग़ देखने को मिलेगा। यक्ष और राक्षस उसकी रक्षा किया करते हैं। वहाँ के फूल बलपूर्वक न तोड़ना। २०

मनुष्यों के लिए देवगण सदा सर्वथा माननीय हैं। वे बलि-पूजा, होम, नमस्कार, मन्त्र और भक्ति से प्रसन्न हुआ करते हैं। भाई, साहस के काम छोड़कर अपने धर्म का पालन करो। अपने धर्म में दृढ़ रहकर उसी को श्रेष्ठ समझो और करते रहो। बृहस्पति के समान चतुर व्यक्ति भी धर्म के ज्ञान और बड़े-बूढ़ों की सेवा के बिना धर्म और अर्थ के मर्म को नहीं जान सकते। जिस जगह अधर्म तो धर्म और धर्म अधर्म कहा जाता हो वहाँ विचारपूर्वक धर्म का निर्णय करना चाहिए। मूढ़ लोग ऐसी जगह पर धोखा खा जाते हैं। आचार से धर्म की उत्पत्ति हुई है। धर्म में ही सब वेद प्रतिष्ठित हैं। सब यज्ञ वेदों से प्रकट हुए हैं। देवताओं की स्थिति यज्ञों से ही है। वेदोक्त आचार और विधियुक्त यज्ञ देवताओं के आधार हैं। बृहस्पति और भृगु की कही नीति के आधार पर मनुष्य चलते हैं। सेवा, वनिज, खेती, गाय आदि पशुओं का पालन, यही सब मनुष्यों की जीविका के उपाय हैं। इन्हीं जीविकाओं से अपना पालन ३० करते हुए द्विजाति के लोग धर्म का पालन करते हैं। ब्राह्मण की याजन-अध्यापन आदि त्रयी विद्या, क्षत्रिय की दण्डनीति और वैश्य की सौदागरी, खेती आदि ये तीन प्रकार की विद्याएँ हैं। इन्हीं को जानकर तीनों वर्णों के लोग इन्हीं के द्वारा अपना निर्वाह करते हैं। धर्म के बिना त्रयी विद्या का होना असम्भव है। जो दण्डनीति न होती तो संसार नियमहीन होने से मर्यादाहीन हो जाता। वैश्यों की व्यापारनीति धर्मसंगत न होती तो प्रजा का नाश हो जाता। तात्पर्य यह कि ये तीनों धर्म यथोचित रूप से पाले जाते हैं तो प्रजा की भलाई और अभ्युदय होता है।

अमृतज्ञान अर्थात् तत्त्वज्ञान ब्राह्मणों का एकमात्र धर्म है; उस पर अन्य वर्ण का अधिकार नहीं है। दान, अध्ययन और यज्ञ करना, ये धर्म तीनों वर्णों के साधारण धर्म हैं। यज्ञ कराना, पढ़ाना और दान लेना, ये भी ब्राह्मणों के ही धर्म हैं। पालन क्षत्रियों का धर्म है। पोषण वैश्यों का धर्म है। ब्राह्मण आदि तीनों वर्णों की सेवा ही शूद्रों का धर्म है। गुरु अर्थात् त्रिवर्ण के बीच रहनेवाले शूद्रों को भिक्षा (दान लेने) माँगने का, हवन करने का और ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का अधिकार नहीं है। हे भीम, रक्षा करना ही क्षत्रिय का एकमात्र धर्म है। इसलिए उसका पालन तुम्हें भी करना चाहिए। विनयपूर्ण और जितेन्द्रिय होकर तुम अपने धर्म को ग्रहण करो। मनुष्य बुद्धिमान् होता है तो वह शास्त्र के ज्ञाता, सज्जन और वृद्ध पुरुषों से सलाह लेकर, लोगों का कृपापात्र बनकर, दण्ड के द्वारा शासन करता है। जो किसी व्यसन में लिप्त होता है उसका अपमान होता है। राजा अगर अच्छी तरह अपने कर्त्तव्य का ध्यान रखकर दण्ड देता और कृपा करता है तो लोक में धर्म की मर्यादा ठीक बनी रहती है। इसलिए राजा को चाहिए कि वह अपने जासूसों के द्वारा सदा अपने देश और दुर्ग का तथा शत्रु के देश ४० और दुर्ग का हाल जानता रहे। मित्रों के भी बल को जानता रहे। जो प्राप्त हो चुका है उसकी रक्षा का ध्यान रक्खे। शत्रु-मित्र की वृद्धि और क्षय पर भी दृष्टि रक्खे। जासूस,

बुद्धि, सलाह, पराक्रम, दण्ड और कृपा, ये राजाओं के उपाय हैं। और, निपुणता से ही कार्य सिद्ध होते हैं। साम, दान, भेद, दण्ड और उपेक्षा, ये नीतियाँ एक-एक करके या सब मिलकर राजाओं के कार्यों को सिद्ध करती हैं। हे भरतश्रेष्ठ! नीति और जासूस, इन दोनों की जड़ 'सलाह' है। अच्छी तरह सलाह करके जो कार्य करना होगा उसके बारे में ब्राह्मणों के साथ एकान्त में सलाह करनी चाहिए। स्त्री, मूढ़, बालक, लोभी, नीच या पागल के साथ कभी किसी गुप्त विषय के सम्बन्ध में सलाह न करनी चाहिए। विद्वान् के साथ सलाह, होशियार के द्वारा कार्य सिद्ध कराना और हितैषी पुरुष के साथ नीति की चर्चा करना अच्छा होता है। मूर्खों से सब जगह सदा बचता रहे। धार्मिकों को धर्म-कार्य में, पण्डितों को धन के कार्य में, हिजड़ों को रनिवास में और क्रूरों को क्रूर कर्मों में नियुक्त करना चाहिए। सदा अपने और पराये लोगों से मिलकर कार्य-अकार्य के बारे में निश्चय करना अच्छा है। शत्रुओं के बलाबल को भी सदा जानते रहना योग्य है। विचारपूर्वक शरणागत सज्जन पर कृपा करना और मर्यादा-हीन उद्दण्ड व्यक्ति को दण्ड देना चाहिए। इस प्रकार राजा यदि अच्छी तरह सोच-विचारकर दण्ड देने और कृपा करने में प्रवृत्त होता है तो संसार की मर्यादा बनी रहती है। हे भीम, मैंने यह तुमसे कठिन राजधर्म कह दिया। अब तुम विनयधारणपूर्वक अपनी जाति के धर्म का पालन करो। ब्राह्मण लोग जैसे तप, धर्म, दम और यज्ञ के द्वारा स्वर्ग को जाते हैं और वैश्य जैसे दान, अतिथिसेवा आदि धर्मों का पालन करके सद्गति को प्राप्त होते हैं वैसे ही क्षत्रिय लोग भी काम, द्वेष, लोभ, क्रोध आदि को छोड़कर यथार्थ रूप से दण्ड का प्रयोग करके, निग्रह और प्रजा-पालन करते हुए, स्वर्ग और साधु पुरुषों के लोकों को प्राप्त होते हैं। ५०, ५२

एक सौ इक्यावन अध्याय

हनुमान् और भीमसेन की बातचीत

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, तब हनुमान् ने अपनी इच्छा से बढ़ाये हुए शरीर को छोटा कर लिया और दोनों हाथ फैलाकर भीमसेन को गले से लगा लिया। भीमसेन की सारी थकन दूर हो गई। सब बातें अनुकूल हो गईं। तब उन्होंने अपने को महाबली और अद्वितीय प्रतापी समझा। हनुमान्‌जी स्नेहवश आनन्द के आँसू बहाते हुए गद्गद स्वर से बोले—भाई भीमसेन, तुम अब अपने निवासस्थान को जाओ। जब कभी यह चर्चा चले तब मुझे स्मरण करना, और मेरे यहाँ रहने का हाल किसी के आगे मत कहना। गन्धर्वों की स्त्रियाँ कुबेर के भवन से यहाँ पर आया करती हैं। उनके आने का समय हो गया है। इसलिए तुम शीघ्र यहाँ से चल दो। हे वीर, तुमको देखकर मैं अपने नेत्रों को सफल समझता हूँ। तुम्हारे मनुष्य शरीर का स्पर्श करने से मुझे उन्हीं सीता के मुख-कमल के भ्रमर, रावणरूपी अन्धकार को

नष्ट करनेवाले रघुकुल-सूर्य, लोक-हृदयानन्दन रामरूपी विष्णु का स्मरण हो आया है। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारी यह मुझसे भेंट निष्फल न हो। तुम भाई के स्नेह का विचार करके मुझसे वरदान माँगो! यदि अभी हस्तिनापुर में जाकर दुष्ट धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारने और शिलावृष्टि से सारे नगर को चूर्ण करने के लिए तुम कहो तो मैं वह करने को तैयार हूँ।
१० कहो तो दुर्योधन को बाँधकर अभी तुम्हारे पास ले आऊँ?

यह सुनकर भीमसेन बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—हे वानरश्रेष्ठ, आप मेरा सब काम कर चुके। आपका मङ्गल हो। मैं आपसे यही प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझ पर प्रसन्न हों। हे महाबाहो, आज पाण्डव लोग आपकी सहायता पाकर सनाथ हुए। इसमें सन्देह नहीं कि हम आपके तेज के प्रभाव से ही अपने सब शत्रुओं को जीत लेंगे। भीम के ये वचन सुनकर हनुमान् ने कहा—हे वीर, मैं भ्रातृस्नेह और सौहार्द के कारण तुम्हारा यह प्रिय करूँगा कि तुम शत्रुओं की सेना में घुसकर जब सिंहनाद करोगे तब मैं अपने शब्द से तुम्हारे उस शब्द को बढ़ा दूँगा। और, अर्जुन की ध्वजा के ऊपर रहकर युद्ध-भूमि में मैं ऐसा भयङ्कर शब्द करूँगा कि उसी शब्द से शत्रुओं के प्राण निकल जायँगे। फिर तुम लोग सहज ही उन्हें मार लोगे। इस प्रकार
१९ भीमसेन से बातचीत करके और राह बताकर वानरराज हनुमान् वहीं पर अन्तर्द्धान हो गये।

एक सौ बावन अध्याय

भीमसेन का सौगन्धिक वन में जाना

वैशम्पायन कहते हैं—महावीर हनुमान् के चले जाने पर भीमसेन, उनकी बताई राह से, गन्धमादन पर्वत पर आगे बढ़े। हनुमान् के विशाल शरीर, निरुपम शोभा और रामचन्द्र के माहात्म्य-बल-विक्रम आदि को वे राह में स्मरण करते जाते थे। इस प्रकार सौगन्धिक वन की खोज करते-करते भीमसेन ने देखा कि एक स्थान पर रमणीय वन और उपवन अनेक प्रकार के विचित्र फूलों से शोभित हो रहे हैं। वहाँ किसी जगह पर फूले हुए वृक्षों से शोभित सरोवर मन को हर रहे हैं। किसी स्थान पर वैसी ही शोभायमान नद और नदियाँ बह रही हैं। कहीं पर कीचड़ से सने हुए मत्त हाथी मेघमाला के समान इधर-उधर विचर रहे हैं। किसी जगह चञ्चल दृष्टिवाले मृग घास के कौर मुँह में दबाये हुए मृगियों के साथ क्रीड़ा कर रहे हैं। कहीं पर वराह, भैंसे, सिंह आदि के झुण्ड विचर रहे हैं। यह सब देखते हुए भीमसेन अपनी वीरता और विक्रम के भरोसे बेखटके पर्वत के भीतरी भाग में घुसे। वहाँ अनेक प्रकार के प्रफुल्लित सुगन्धपूर्ण वृक्ष, हवा से हिलकर, अपने लाल-लाल नव पल्लवों को हाथ की तरह फैलाकर मानों भीमसेन को अपनी ओर बुला रहे थे। उन्होंने देखा, राह में मस्त भौंरे जिन पर मँडरा रहे हैं वे कमल के वृक्ष मुकुलित पद्मपुष्परूप हाथ जोड़े खड़े हैं। द्रौपदी की प्रेरणा से जाते हुए भीम-

सेन फूले हुए वृक्षों से शोभित शिखरों पर के वृक्षों को देखते और प्रसन्न होते हुए फ़ुर्ती से आगे बढ़ने लगे। दूसरे दिन सवेरे महाबली भीमसेन उस मृगों से पूर्ण वन में विचरते-विचरते ऐसे स्थान पर पहुँचे, जहाँ एक बड़ी भारी नदी देख पड़ी। उसमें सुनहरे कमल के वृक्ष लगे हुए थे। हंस, कारण्डव, चक्रवाक आदि विविध जलचर पक्षी उस नदी में थे। वह नदी पर्वत के गले में पड़ी हुई कमलों की माला के समान जँचती थी। भीमसेन ने खोजते-खोजते उसी के जल में प्रातः-काल के सूर्य के समान प्रभावाला प्रीतिप्रद सौगन्धिक वन देखा। देखते ही मनोरथ-सिद्ध होने से मन ही मन उन्होंने वनवास के क्लेशों को सहती हुई अपनी प्यारी द्रौपदी को स्मरण किया। १० १४

एक सौ तिरपन अध्याय

कुबेरसरोवर का वर्णन

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, इस प्रकार जाते-जाते भीमसेन कुबेर-सरोवर के पास पहुँचे। कैलासशिखर पर, कुबेर के भवन के पास, पहाड़ी झरनों से यह सरोवर बना है। उसकी रक्षा राक्षस किया करते हैं। उसमें हरे और सुनहरे कमल छाये हुए हैं। घनी छायावाली लताएँ और अनेक प्रकार के पक्षी उस स्थान की शोभा बढ़ा रहे हैं। उसके किनारे के स्थान बड़े ही मनोरम हैं। उसमें कीचड़ का नाम नहीं है। वह सरोवर पर्वतशिखर पर है। उसमें निर्मल जल भरा हुआ है। वह अद्भुत और सुहावना है। उसका जल शीतल, हलका और अमृत के समान स्वादिष्ठ है। भीमसेन ने वहाँ पहुँचकर उसका निर्मल जल ख़ूब पिया। फिर देखा कि वैदूर्य की डंडी और सोने के पत्तेवाले बहुत से विचित्र मनोहर सुगन्धित कमल उसमें खिल रहे हैं। हंस, कारण्डव आदि पक्षियों

के इधर-उधर विचरने से कमलों का विमल सुगन्धित पराग बराबर उड़ा करता है। महात्मा कुबेर उसमें जलविहार किया करते हैं। देवता, गन्धर्व, अप्सरा, ऋषि, यक्ष, किन्नर, किम्पुरुष, राक्षस

आदि यहाँ रहते हैं। उस सरोवर और सौगन्धिक वन को देखते ही भीमसेन बहुत प्रसन्न
१० हुए। महाराज कुबेर की आज्ञा से हज़ारों क्रोधवश नाम के राक्षस विचित्र शस्त्र लिये, विचित्र
पहनावा पहने, उस स्थान की रक्षा किया करते हैं। वे सोने के गहने और मृगचर्म पहने, शस्त्र
धारण किये, खड्ग लिये, कमलों के फूल लेने को बेखटके चले आ रहे भीमसेन को देखकर
परस्पर कहने लगे—ये मृगचर्मधारी सशस्त्र पुरुषसिंह क्या करने के लिए यहां आये हैं, इनसे
अवश्य पूछना चाहिए। अब उस सरोवर के रक्षक लोग भीमसेन के पास आकर पूछने लगे—
हे तेजस्वी पुरुष, तुम कौन हो? तुम्हारा वेष मुनियों का सा होने पर भी तुम क्षत्रियों की तरह
१६ शस्त्र बाँधे हुए देख पड़ते हो। बतलाओ, तुम किसलिए यहाँ आये हो।

एक सौ चौवन अध्याय

भीमसेन का राक्षसों के साथ युद्ध

भीमसेन ने कहा—हे राक्षसो, मैं महात्मा पाण्डु का पुत्र और युधिष्ठिर का छोटा भाई हूँ। मेरा नाम भीमसेन है। मैं भाइयों के साथ यहाँ विशाल बदरिकाश्रम में आया हूँ। एक समय हमारी धर्मपत्नी द्रौपदी ने वहाँ पर एक बहुत ही उत्तम सुगन्धित कमल का फूल देखा। जान पड़ता है, वह यहीं से हवा में उड़कर वहाँ गया होगा। द्रौपदी ने उस तरह के बहुत से फूलों की इच्छा प्रकट की। उन्हीं के लिए फूल लेने को मैं यहाँ आया हूँ।

राक्षसों ने कहा—हे पुरुषश्रेष्ठ, यह स्थान यक्षराज कुबेर की प्यारी क्रीड़ाभूमि है। मरणशील मनुष्य इस स्थान पर नहीं आ सकते। हे भीम! देवता, देवर्षि, यक्ष, अप्सराएँ और गन्धर्व यक्षराज कुबेर से पूछकर इस सरोवर का जल पीते और यहाँ विचरते हैं। जो कोई ढिठाई के मारे यक्षराज का अनादर करके यहाँ आना चाहता है वह अन्यायी शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। तुम यक्षराज का अनादर करके बलपूर्वक कमल के फूल ले जाना चाहते हो; फिर भी अपने को धर्मराज युधिष्ठिर का भाई बता रहे हो! पहले कुबेरजी से पूछ आओ; फिर यहाँ जल पियो और फूल ले जाओ। नहीं तो कमलों के फूल ले जाना तो दूर की बात है, इधर तुम आँख उठाकर देख भी नहीं सकते।

भीमसेन ने कहा—हे राक्षसो, इस समय धनपति कुबेर मुझे यहाँ देख नहीं पड़ते। जो वे देख भी पड़ें तो मैं उनके आगे माँगने की दीनता नहीं प्रकट कर सकता। क्योंकि सदा से प्रचलित सनातन धर्म के अनुसार राजा लोग कभी किसी के आगे हाथ नहीं पसारते। मैं किसी
१० तरह अपनी क्षत्रिय जाति के धर्म को नहीं छोड़ सकता। यह सरोवर भी पहाड़ी झरने से उत्पन्न हुआ है—कुबेर के भवन में नहीं है। इस कारण इस पर कुबेर का जैसा अधिकार है वैसा ही अधिकार सब प्राणियों का है। ऐसी दशा में कौन किससे माँगे?

सबने देखा महात्मा भीमसेन दण्ड हाथ में लिए यमराज के समान खड़े हैं। पृ० १००७

महाबली भीमसेन, राक्षसों से यों कहकर, उस सरोवर के भीतर घुस पड़े। तब वे रक्षक राक्षस चारों ओर से मना करते चिल्लाते हुए उनकी ओर दौड़ पड़े। भीमसेन ने जब उनके चिल्लाने और मना करने पर ध्यान नहीं दिया तब राक्षस कुपित होकर "पकड़ो, मारो, काटो, पकावो, खा डालो" कहते, शस्त्र उठाये, लाल-लाल आँखें निकाले भीमसेन पर आक्रमण करने के लिए झपटे। तब सुवर्ण-मण्डित, यमदण्ड सी भारी गदा उठाकर ठहरो! ठहरो! कहते हुए भीमसेन ने भी बड़े वेग से शत्रु-दल पर आक्रमण किया। क्रोध के मारे किटकिटाये हुए वे राक्षस भीमसेन को मारने के लिए चारों ओर से घेरकर उन पर तोमर, पट्टिश, त्रिशूल आदि अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करने लगे। भीमसेन कुन्ती के गर्भ से वायु के अंश से उत्पन्न, शूर, तपस्वी, बली, शत्रुनाशन, सत्यवादी और धर्मात्मा थे। इसी कारण शत्रु उनका कुछ नहीं बिगाड़ सके। वे रणभूमि में शत्रुओं का नाश करते हुए इधर-उधर विचरने लगे। रखवालों के अस्त्र-शस्त्रों को सहज ही नष्ट करते हुए भीमसेन ने बात की बात में सैकड़ों राक्षसों को यमपुरी भेज दिया। उन राक्षसों ने महाबली भीमसेन का बाहुबल, विद्या और वीरता देखकर एकाएक युद्ध रोक दिया। वे भीमसेन के भीम वेग को नहीं सह सके। भीमसेन के प्रचण्ड प्रहार से पीड़ित और परास्त होकर वे राक्षस आकाशमार्ग से भागकर कैलास पर्वत के शिखर पर पहुँचे। इन्द्र जैसे पराक्रमपूर्वक दानवों का संहार करें वैसे ही शत्रुओं का संहार करके भीमसेन ने सरोवर के भीतर जाकर मनमाने कमल के फूल तोड़े और उसका अमृत तुल्य जल पिया। फिर हरे होकर भीमसेन सौगन्धिक वन के कमलों को फिर भी तोड़ने लगे।

२०

उधर भीमसेन के मारे-पीटे, खिसियाये हुए राक्षस डरकर कुबेर के पास पहुँचे। उन्होंने कुबेर से सब हाल कहा और भीमसेन के बल का वर्णन किया। उनके वचन सुनकर यक्षराज हँसे। उन्होंने कहा—हे राक्षसो, वहाँ कमल लेने के लिए भीमसेन के आने की बात मुझे पहले से ही

मालूम है। वे द्रौपदी को प्रसन्न करने के लिए यह काम करने आये हैं। इसलिए उन्हें इच्छानुसार कमल के फूल चुन लेने दो। तब कुबेर की अनुमति पाकर वे राक्षस शान्त भाव से भीमसेन के २७ पास लौट आये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि भीमसेन उसी सरोवर में क्रीड़ा कर रहे हैं।

एक सौ पचपन अध्याय

भीमसेन के न पहुँचने से युधिष्ठिर का घबराना और भीमसेन का मिलना

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय! भीमसेन ने मूल्यवान्, बहुरूप, विचित्र कमल के फूल तोड़कर जमा किये। इधर बदरिकाश्रम में, जहाँ युधिष्ठिर थे, संग्राम-सूचक कठिन स्पर्श-वाला पवन, धूल बरसाता हुआ, वेग से चलने लगा। उल्कापात और बिजली की कड़क से चारों ओर सब लोग डर से व्याकुल हो उठे। सूर्य फीके पड़कर अँधेरे में छिप गये। भूकम्प और धूल की वर्षा होने लगी। दिशाओं में लाली छा गई। मृग और पक्षी कर्कश शब्द करते हुए दिखाई पड़ने लगे। सब ओर अँधेरा ही अँधेरा छा गया। कुछ भी सूझ या समझ नहीं पड़ता था। इसके सिवा और भी अनेक भयानक उत्पात दिखाई पड़ने लगे। इन अद्भुत घटनाओं को देखकर धर्मराज युधिष्ठिर ने नकुल-सहदेव से कहा—भाइयो, जान पड़ता है, कोई हमें परास्त करने का या हम पर आक्रमण करने का विचार कर रहा है। इसलिए तुम भी तैयार हो जाओ। तुम्हारा भला हो। मुझे ऐसा देख पड़ता है कि हमारे पराक्रम प्रकट करने का यह ठीक समय आ पहुँचा है। अब युधिष्ठिर ने इधर-उधर देखा, और जब कहीं भीमसेन को न देख १० पाया तब द्रौपदी से कहा—हे पाञ्चाली, भीमसेन कहाँ हैं? वे क्या कोई काम करने गये हैं? जान पड़ता है, साहस-प्रिय भीम ने ही कोई साहस का काम किया है। इसी से यह महायुद्ध की सूचना देनेवाली भयानक उत्पातपरम्परा अकस्मात् चारों ओर दिखाई देने लगी है।

तब द्रौपदी ने राजा को अपनी मन्द मुसकान से प्रसन्न करके कहा—राजन्, वह जो विचित्र सुगन्धवाला सुवर्णकमल हवा से उड़कर यहाँ आ गया था उसे मैंने भीमसेन को दिखा-कर कहा था कि जो तुम इस तरह के बहुत से फूल यहाँ कहीं पर पा जाओ तो वे सब मेरे लिए तोड़ लाओ। जान पड़ता है, वे मेरा प्रिय करने के लिए उसी काम से पूर्व-उत्तर कोने को गये हैं। यह सुनकर युधिष्ठिर ने नकुल-सहदेव से कहा—चलो, भीमसेन जिस तरफ़ गये हैं उधर ही चलें। राक्षस लोग इन थके हुए और दुर्बल ब्राह्मणों को लादकर ले चलें। हे देव-तुल्य पुत्र घटोत्कच, तुम द्रौपदी को ले चलो। भीमसेन हवा के समान फुर्तीले और पृथ्वी को लाँघने में गरुड़ के समान वेगशाली हैं। वे सहज ही आकाश में जा सकते हैं, यथेष्ट भ्रमण कर सकते हैं। उन्हें जब इतनी देर हुई तब स्पष्ट ही जान पड़ता है कि वे किसी ओर बहुत दूर
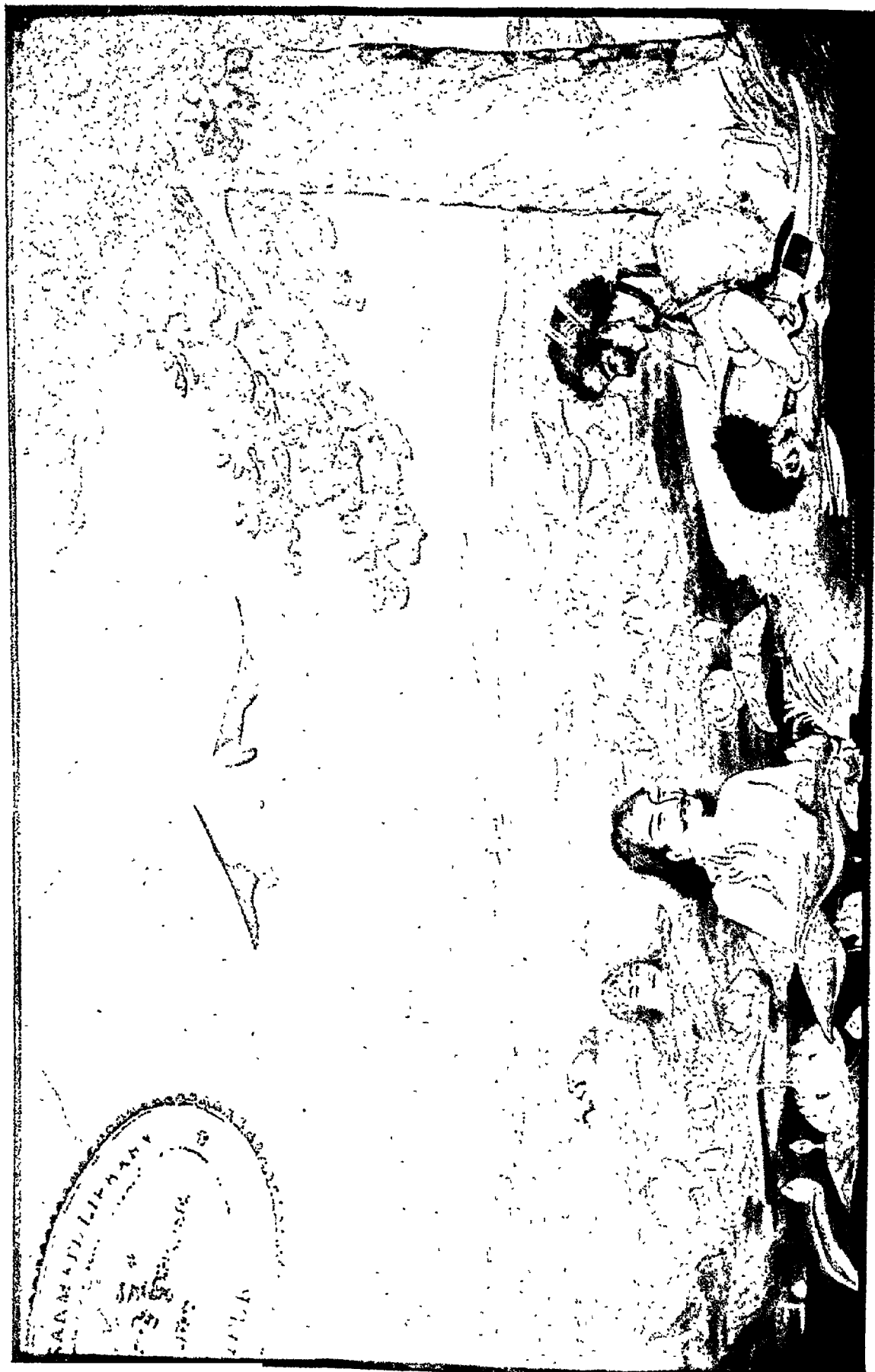
युधिष्ठिर भीमसेन को यों उपदेश करके उस सरोवर में जल-विहार करने लगे ।—पृ० १००७

चले गये हैं। हे निशाचरो, वे ब्रह्मवादी सिद्धों का कोई अपराध न करने पावें; उससे पहले ही हम लोग तुम्हारे प्रभाव से उनके पास पहुँच जायँ। २०

घटोत्कच आदि निशाचर उस कुबेरसरोवर के समीप के स्थान को जानते थे। इसी लिए प्रसन्नतापूर्वक पाण्डवों और सब ब्राह्मणों को लादकर लोमशजी के साथ जल्दी से उसी सौगन्धिक कमलों से शोभित, सुन्दर वनोंवाले परम रमणीय कुबेरसरोवर में पहुँच गये। वहाँ पहुँचकर सबने देखा महात्मा भीमसेन, प्रलयकाल के समय दण्ड हाथ में लिये खड़े यमराज के समान, क्रोध से होंठ चबाते, भीषण गदा लिये सरोवर के किनारे खड़े हैं। सैकड़ों यक्ष और राक्षस मरे हुए पड़े हैं। किसी का शरीर छिन्न-भिन्न हो गया है, किसी का हाथ टूट गया है, किसी की आँखें निकल पड़ी हैं, किसी की जाँघ टूट गई है, किसी की गर्दन दो टुकड़े हो गई है। यह देखते ही धर्मराज ने जल्दी से जाकर भीमसेन को गले से लगा लिया। फिर मधुर स्वर से कहा—भाई, यह तुमने क्या किया? ख़ैर, जो हुआ सो हुआ, अब फिर ऐसा साहस और देवताओं का अप्रिय कभी न करना; नहीं तो मैं तुमसे बहुत अप्रसन्न होऊँगा। भीमसेन को यों उपदेश करके देवतुल्य पाण्डव उस सरोवर के वे फूल लेकर वहीं जलविहार करने लगे। इसी बीच में वहाँ के रक्षक, शस्त्र हाथ में लिये, कुबेर के पास से लौटकर वहाँ आये। वहाँ धर्मराज युधिष्ठिर, महर्षि लोमश, नकुल, सहदेव, और अन्यान्य ब्राह्मणों को देखकर नम्रता के साथ उन्होंने प्रणाम किया। धर्मराज ने सान्त्वना देकर उनको भी प्रसन्न कर दिया। फिर वे पाण्डव, कुबेर की आज्ञा लेकर, अर्जुन के आने की राह देखते हुए कुछ दिन तक उसी गन्धमादन के शिखर पर ठहर गये। ३४

(३० marginal verse number appears beside "लिये, कुबेर के पास से लौटकर वहाँ आये।")

एक सौ छप्पन अध्याय

युधिष्ठिर का आकाशवाणी सुनकर फिर बदरिकाश्रम को लौट जाना

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, एक दिन युधिष्ठिर ने द्रौपदी से, ब्राह्मणों से और भाइयों से कहा—देवता और ऋषि जहाँ की यात्रा कर चुके हैं उन रमणीय वनों और पवित्र मङ्गलमय तीर्थों को हम देख चुके; ऋषियों और राजर्षियों के अनेक मनोहर उपाख्यान भी हम सुन चुके। उन तीर्थों और आश्रमों में जाकर ब्राह्मणों के साथ हमने स्नान किया, जल-पुष्प आदि सामग्री से देवताओं की पूजा की, फल-मूल आदि से पितरों का तर्पण-श्राद्ध और अतिथियों का यथाशक्ति सत्कार किया। हमने महात्मा ब्राह्मणों के साथ रमणीय पर्वत, सरोवर, समुद्र, इला, सरस्वती, सिन्धु, यमुना, नर्मदा आदि पवित्र तीर्थों में स्नान दान आदि पुण्यकर्म किये हैं। हरिद्वार को लाँघकर अनेक प्रकार के रमणीय पर्वत, विविध पक्षियों से पूर्ण हिमालय, नर-नारायण का आश्रम विशाल बदरीवन और सिद्ध-देवर्षि-पूजित सब दिव्य सरोवर भी हम देख चुके। हे ब्राह्मणो, १० इस प्रकार महात्मा लोमश ने हमको क्रमपूर्वक सब पुण्यस्थानों के दर्शन करा दिये हैं। अब हम इस सिद्ध-सेवित पवित्र कुबेर के भवन को किस तरह जाकर देखें, इसका कोई उपाय सोचिए।

धर्मराज यों कह रहे थे कि एकाएक यह आकाशवाणी सुन पड़ी—"राजन्, जिस राह से कुबेर के भवन को जाना होता है वह बहुत ही दुर्गम है। उधर तुम न जा सकोगे। इसलिए जिस राह से आये हो उसी से बदरिकाश्रम को लौट जाओ। हे युधिष्ठिर, वहाँ से सिद्ध-चारण-सेवित फूलों और फलों से पूर्ण रमणीय वृषपर्वा के आश्रम को जाना। वहाँ से आर्ष्टिषेण के आश्रम में जाकर रहना"। इसी समय दिव्य गन्ध से मनोहर सुखदायक शीतल शुद्ध पवन फूलों की वर्षा करने लगा। ऋषि, विप्र और राजा युधिष्ठिर उस आकाशवाणी को सुनकर बहुत चकराये। धौम्य ने कहा—हे युधिष्ठिर, अब हम उत्तर दिशा में यहाँ से आगे नहीं जा सकते; आओ लौट चलें। धौम्य का कहा मानकर भीमसेन आदि भाइयों और लोमश आदि ब्राह्मणों के साथ द्रौपदी को लेकर महाराज युधिष्ठिर लौट पड़े और बदरिकाश्रम में २१ आकर सुखपूर्वक रहने लगे।

जटासुरवधपर्व

एक सौ सत्तावन अध्याय

जटासुर-वध

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, फिर भीमसेन के पुत्र घटोत्कच और अन्यान्य राक्षस युधिष्ठिर से बिदा होकर वहाँ से चल दिये। पाण्डव लोग अर्जुन के आने की राह देखते हुए

उन ब्राह्मणों के साथ बेखटके बदरिकाश्रम के पास पर्वतराज पर रहने लगे। एक समय, जब भीमसेन नहीं थे, एक राक्षस आया और पाण्डवों-सहित द्रौपदी को उठाकर वहाँ से ले जाने के लिए तैयार हुआ। अपने को अच्छा सलाहकार और अस्त्र-शस्त्रों का ज्ञाता ब्राह्मण बताकर वह जटासुर वहाँ, पाण्डवों के पास, पहले से ही रहता था और पाण्डवों के तरकस, धनुष तथा द्रौपदी को हर ले जाने की घात में था। उस दुष्ट पापी राक्षस को युधिष्ठिर ने अपने पास रक्खा और उसका पालन किया था। वे नहीं जानते थे कि यह राख में छिपी हुई आग है। जब भीमसेन शिकार करने चले गये और घटोत्कच अपने अनुचरों-सहित दूर निकल गया तथा लोमश आदि तपस्वी महर्षि भी नहाने-धोने और फूल समिधा आदि लेने के लिए आश्रम से दूर चले गये तब, मौक़ा पाकर, उस कपटवेषधारी राक्षस ने अपना अत्यन्त भयानक असली रूप धारण कर लिया। फिर वह सब शस्त्रों, तीनों पाण्डवों और द्रौपदी को लेकर वहाँ से चल दिया। सहदेव ने यत्न करके अपने को उस दुष्ट के हाथ से छुड़ा लिया और अपना कौशिक नाम का खड्ग भी उससे छीन लिया। फिर वे उस खड्ग को घुमाते हुए उस राह पर चले जिधर भीमसेन गये थे। सहदेव बारम्बार भीमसेन को पुकारने लगे। १०

युधिष्ठिर को राक्षस हरे लिये जा रहा था। युधिष्ठिर ने उससे कहा—अरे मूढ़, तेरा धर्म नष्ट हो रहा है, तू उसे नहीं देखता। मनुष्य, पशु-पक्षी आदि, विशेषकर राक्षस, सभी धर्म की रक्षा करते हैं। धर्म का मूल राक्षस हैं, वे उत्तम रीति से धर्म को जानते हैं। यह सब विचारकर धर्म का पालन करते हुए तुझको हमारे पास रहना चाहिए। हे राक्षस! देवता, पितर, ऋषि, गन्धर्व, नाग, राक्षस, पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े, चींटी आदि अन्यान्य प्राणी मनुष्यों के आश्रय से अपनी जीविका चलाते हैं। वैसे ही हमारे पास रहने से तेरी भी जीविका चलती थी। मनुष्यों की समृद्धि से ही तुम लोगों की वृद्धि होती है। मनुष्य ही हव्य-कव्य आदि के द्वारा देवताओं की पूजा करते हैं और उसी से देवताओं की वृद्धि होती है। मनुष्य जब शोका-

कुल होते हैं तब देवताओं को भी शोक होता है। हे राक्षस, हम लोग राष्ट्र (देश) का पालन और रक्षा करते हैं। जिस राष्ट्र की रक्षा नहीं होती वहाँ सुख-सम्पत्ति कहाँ! बिना किसी अपराध के राजा का अपमान करना कदापि राक्षसों का कर्त्तव्य नहीं है। हे मनुष्याहारी राक्षस, हमने कभी किसी का अपकार नहीं किया। हम तो यथाशक्ति देवताओं और ब्राह्मणों की पूजा २० करके उनके खाने से बचा हुआ अन्न खाते हैं; गुरुओं और ब्राह्मणों को सदा नमस्कार करते हैं। मित्र के साथ, जो अपने ऊपर विश्वास रखता हो उसके साथ, जिसका अन्न खाय और जिसके आश्रय में रहे उसके साथ, कभी विश्वासघात या विद्रोह न करना चाहिए। हे राक्षस, तू हमारे पास सुख और सम्मान के साथ रहा, हमारा अन्न तूने खाया; अब हमें हरकर ले जाना चाहता है! हे दुर्बुद्धि दानव, तेरे इस कुकर्म से कभी तेरा भला नहीं हो सकता। ऐसा कर्म करनेवाले का आचार, बुद्धि और बड़प्पन सब वृथा होता है। तू मरने के ही योग्य है। तू अपनी करतूत की बदौलत अब वृथा मारा जायगा। और जो तेरी बुद्धि ऐसी ही दुष्ट है तो हमारे अस्त्र-शस्त्र हमको देकर युद्ध कर; युद्ध में हमको हराकर द्रौपदी को ले जा। और जो तू अज्ञानवश होकर यह काम करने पर उतारू है तो केवल अधर्म और संसार में अयश ही तेरे हाथ लगेगा। हे राक्षस, तूने द्रौपदी को छूकर आज वैसा ही काम किया है जैसे कोई घड़े में विष घोलकर उसे पिये।

अब युधिष्ठिर ने अपने शरीर को बहुत भारी कर लिया। बोझ से दब जाने के कारण वह राक्षस पहले की तरह तेज़ी से चलने में असमर्थ हो गया। तब युधिष्ठिर ने नकुल, सहदेव और द्रौपदी से कहा—तुम अब डरो मत; मैंने इस अधम राक्षस की तेज़ भागने की शक्ति को हर लिया है और पवनपुत्र भीमसेन भी समीप आ गये हैं। वे अभी आते होंगे; उनके आते ही यह दुष्ट जीता न बचेगा। महाबली सहदेव ने उस राक्षस को मोहाभिभूत देखकर युधिष्ठिर से ३० कहा—महाराज, क्षत्रिय के लिए युद्ध से बढ़कर अच्छा काम और क्या होगा? उसे चाहिए कि सामने युद्ध में लड़कर शत्रु को जीते अथवा अपने प्राण दे दे। राजन्, यह समय और देश युद्ध के लिए उपयुक्त है; यह हमें मार डालेगा या हम इसे मार डालेंगे। हे सत्यपराक्रमी! क्षत्रिय-धर्म प्रकट करने का यह उपयुक्त अवसर हमें मिला है। इसलिए हम युद्ध करके या तो मर जायँगे और या विजयी होंगे। हम दोनों तरह से सद्गति पावेंगे। महाराज, राक्षस जीता रहा और सूर्य अस्त हो गये तो फिर मैं अपने को क्षत्रिय न कहूँगा—यह प्रतिज्ञा करता हूँ। अरे राक्षस, ठहर जा; मैं पाण्डु का पुत्र सहदेव हूँ। या तो तू हमें मारकर द्रौपदी को ले जायगा या हमारे हाथों से मारा जायगा।

सहदेव इस तरह उस राक्षस से कह रहे थे, इसी समय महाबाहु भीमसेन वज्रपाणि इन्द्र की तरह गदा हाथ में लिये टहलते हुए वहाँ पहुँच गये। उन्होंने देखा कि एक राक्षस द्रौपदी,

युधिष्ठिर और नकुल को हर ले जाने के लिए तैयार है। किन्तु कालवश होने के कारण दैव की प्रेरणा से वह सबको लिये वहीं पर चक्कर लगा रहा है, जाता नहीं है; और सहदेव उसे डाँट-फटकार रहे हैं। यह देखकर क्रोधित भीमसेन ने जटासुर से कहा—अरे पापबुद्धि राक्षस, तुझे पहले ही शस्त्रों की परीक्षा करने की चेष्टा करते देखकर जान लिया था कि तू कोई छिपा हुआ राक्षस है। तुझे घास-फूस की तरह तुच्छ जानकर ही मैंने उस समय नहीं मारा। उस समय ४० तू ब्राह्मण का वेष धारण किये, प्रियवादी और प्रिय कार्य किया करता था। तूने कभी हमारा अप्रिय नहीं किया। ख़ासकर उस समय तू ब्राह्मणवेषधारी निरपराध अतिथि था। इसी से मैंने तुझे नहीं मारा। उस दशा में राक्षस जानकर भी तेरी हत्या करने से मुझे नरकगामी होना पड़ता। इसके सिवा जब तक काल नहीं आता तब तक कोई किसी को मार नहीं सकता। अब तेरा काल आ गया है। जो ऐसा न होता तो तू द्रौपदी को हर ले जाने की दुर्बुद्धि के वश में न हो जाता। जल में विचरनेवाली मछली की तरह काल-सूत्र में लगे हुए द्रौपदीरूप काँटे को तू निगल गया है। फिर अब किस तरह जीता रह सकता है? तू जहाँ जाना चाहता था वहाँ तेरा मन ही जा सका है, तू न जा सकेगा। तू उसी राह को जायगा जिस पर बकासुर और हिडिम्बासुर गये हैं।

काल-प्रेरित वह राक्षस भीमसेन के यों कहने पर डर के मारे पाण्डवों को और द्रौपदी को छोड़कर युद्ध के लिए तैयार हुआ। क्रोध के मारे उसके ओठ फड़कने लगे। उसने भीमसेन से कहा—हे पापी, मुझे दिग्भ्रम नहीं हुआ। मैं तेरी ही बाट जोहता था। मैंने सुना है, तूने अनेक राक्षसों को मारा है। तूने अब तक जितने राक्षसों को मारा है उनके सन्तोष के लिए आज तेरे रक्त से मैं उनका तर्पण करूँगा। जटासुर के यों कहने पर भीमसेन क्रोध से ओठ चबाते हुए बाहु-युद्ध करने के लिए यमराज के समान उसकी ओर झपटे। राक्षस भी क्रोधित होकर बारम्बार ओठ चबाता हुआ, मुँह फैलाकर, बलि असुर जैसे इन्द्र पर झपटा था वैसे, युद्ध की इच्छा से भीमसेन पर झपटा। ५०

अब दोनों घोर बाहुयुद्ध करने लगे। नकुल और सहदेव भी अत्यन्त क्रोधित होकर जटासुर की ओर दौड़े। तब हँसकर भीमसेन ने उनको रोक दिया और कहा—देखो, मैं अकेला ही इस राक्षस के लिए काफ़ी हूँ; तुम खड़े-खड़े तमाशा देखो। फिर युधिष्ठिर से भीमसेन ने कहा—राजन्! मैं अपनी, भाइयों की, धर्म की, सत्य की, कर्म की, इष्ट वस्तुओं की सौगन्द खाता हूँ, इस राक्षस को मारे बिना मैं नहीं रहूँगा।

इस प्रकार परस्पर कहकर भीमसेन और जटासुर लाग-डाँट दिखाते हुए कुश्ती लड़ने लगे। दोनों ही क्रोध के मारे एक दूसरे की बातों को न सह सके और परस्पर प्रहार करने लगे। बड़े-बड़े वृक्षों को तोड़कर बादलों की तरह गरजते हुए वे एक दूसरे पर चोट करने लगे। वे बड़े

बलवान् दोनों वीर एक दूसरे को मारने के लिए घुटनों की चोट से पेड़ों को तोड़ डालते थे। पूर्व समय में स्त्री के लिए बाली और सुग्रीव का जैसा युद्ध हुआ था वैसा ही वृक्षों को उजाड़नेवाला

६०

महाभयानक यह युद्ध भी हुआ। दोनों बार-बार गरजते हुए वृक्षों को घुमा-घुमाकर परस्पर चलाते थे। राजन्, इस प्रकार जब सब वृक्ष उजड़ गये तब उन वीरों ने घड़ी भर शिलाओं से युद्ध किया। उस समय वे मेघमाला से ढके हुए पर्वतों के समान जान पड़ते थे। क्रोधवश होकर बड़े वेग से वे एक दूसरे पर शिलाओं के प्रहार कर रहे थे। उनका शब्द वज्र गिरने के समान भयङ्कर होता था। बल के घमण्ड में भरे हुए वे दोनों वीर फिर हाथों से हाथ भिड़ाकर दो गजराजों के समान भिड़ गये। दोनों परस्पर अपनी अपनी ओर खींचकर महाघोर घूँसे चलाने लगे। दोनों के घूँसों की चटचटाहट चारों ओर दूर-दूर तक सुन पड़ने लगी। पाँच सिरवाले साँप के समान पाँचों उँगलियोंवाला एक घूँसा भीमसेन ने बड़े ज़ोर से राक्षस की गर्दन पर मारा। वह घूँसा लगने से उसकी आँखों के आगे अँधेरा सा छा गया। भीमसेन ने देख लिया कि शत्रु थक गया है। चट लपककर उन्होंने उसे उठाकर दे मारा और ख़ूब रगड़ा। घूँसों की मार से उसकी हड्डी-हड्डी चूर करके भीमसेन

७० ने [पशु की तरह उमेठकर] उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। उसका भयानक मुख, होंठ चबाये हुए था और आँखें बाहर निकली हुई थीं। रक्त से भीगा हुआ वह सिर किसी वृक्ष से टपके हुए पके फल की तरह पृथ्वी पर गिर पड़ा। महाबली भीमसेन इस तरह जटासुर को मारकर युधिष्ठिर के पास आ गये। तब मरुद्गण जैसे इन्द्र की स्तुति करते हैं वैसे ही ब्राह्मण

७२ लोग भीमसेन की प्रशंसा करने लगे।

यक्षयुद्धपर्व

एक सौ अट्ठावन अध्याय

पाण्डवों का गन्धमादन पर्वत पर जाना

वैशम्पायन कहते हैं कि जटासुर के मारे जाने पर महाराज युधिष्ठिर फिर नर-नारायण के आश्रम बदरीवन में आकर रहने लगे। यहाँ एक समय उन्हें अर्जुन का स्मरण हो आया। उन्होंने भाइयों को और द्रौपदी को अपने पास बुलाकर कहा—हम चार वर्ष के लगभग कुशल-पूर्वक वनों में विचरते रहे। अर्जुन कह गये थे कि पाचवां वर्ष बीतने पर—जहां देवता और असुर रहते हैं; नीले कमल, और तरह-तरह के कमल खिले हुए हैं; बाघ, वराह, भैंसे, गवय, हरिण, रुरु, सांप आदि जीव-जन्तु घूमा करते हैं; चातक, मोर, कोयल, भौंरे आदि शब्द किया करते हैं; फूले और फले वृक्ष चारों ओर देख पड़ते हैं; उस—पर्वतराज श्वेतगिरि पर मैं तुमसे मिलूँगा। उस पवित्र पहाड़ पर सदा उत्सव सा हुआ करता है। उनसे मिलने के लिए ही हम लोग यहाँ आये हैं। महातेजस्वी अर्जुन यह भी कह गये थे कि मैं विद्या सीखने के लिए पाँच वर्ष तक [इन्द्रलोक में] रहूँगा। हम लोग इसी पर्वत पर देवलोक से अस्त्रविद्या सीखकर आये हुए शत्रु-दमन गाण्डीवधन्वा अर्जुन को देखेंगे। राजा युधिष्ठिर ने द्रौपदी और भाइयों से यों कहकर ब्राह्मणों को अपने पास बुलाया और उनकी पूजा करके सब वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया। "हे पाण्डव, तुम्हारा कल्याण हो", यह कहकर ब्राह्मणों ने उनके कथन का अनुमोदन किया। लोमश आदि ब्राह्मणों ने युधिष्ठिर से कहा—हे कुरुश्रेष्ठ, आप शीघ्र ही क्षात्रधर्म के प्रभाव से वर्तमान क्लेश से छुटकारा पाकर सुखी होंगे और पृथ्वी का पालन करेंगे। १०

राजा युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों के अभिनन्दन को सादर ग्रहण किया। महर्षि लोमश के द्वारा सुरक्षित राजा युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ वहां से चल दिये। घटोत्कच आदि राक्षस भी सहायकरूप से उनके साथ चले। महातेजस्वी युधिष्ठिर किसी जगह पैदल चलते थे और कहीं पर राक्षसों के कन्धे पर बैठकर चलना होता था। राजा युधिष्ठिर इस प्रकार अपने पिछले क्लेशों का स्मरण करते हुए सिंह, बाघ, गजराज आदि से पूर्ण उत्तर ओर ही आगे बढ़े। कैलास, गन्धमादन के आस-पास के सब पर्वत, श्वेतगिरि और अन्य पर्वतों के ऊपर पवित्र नदियों के दर्शन करते हुए पाण्डव सत्रह दिन में पवित्र हिमालय पर पहुँचे। राजन्, पाण्डवों ने वहाँ जाकर, गन्धमादन के पास ही, अनेक वृक्षों और लताओं से पूर्ण पवित्र हिमालय पर वृषपर्वा का पवित्र आश्रम देखा। वह आश्रम फूले-फले अनेक पेड़ों से छाया हुआ सा था। उसमें बहुत से जलाशय थे। अपनी थकन मिटाकर विश्राम कर चुकने पर सब लोग धर्मात्मा राजर्षि वृष-पर्वा के पास गये। प्रणाम ग्रहण करके उन्होंने भी पुत्र का सा स्नेह प्रकट करके सबका अभि- २०

नन्दन किया। पाण्डव आदर से सन्तुष्ट होकर सात दिन वहाँ रहे। आठवें दिन युधिष्ठिर ने वृषपर्वा से अपना वहाँ से चलने का विचार प्रकट किया। फिर अपने साथ रहकर बहुत दिनों से भाई-बन्धुओं का सा सत्कार पानेवाले अनेक ब्राह्मणों को वृषपर्वा के पास, कुछ समय के लिए, छोड़ दिया। यज्ञपात्र, रत्न, आभूषण, [रथ, वाहन] आदि जो कुछ अपने साथ साज-सामान था, सब उन्होंने वृषपर्वा के आश्रम में रख दिया। इसके बाद भूत और भविष्य के बारे में पूरा ज्ञान रखनेवाले और सब धर्मों के ज्ञाता वृषपर्वा ने पुत्रों की तरह पाण्डवों को आवश्यक बातों का उपदेश किया। फिर महात्मा पाण्डव उनसे अनुमति लेकर उत्तर दिशा को चले। राजर्षि वृषपर्वा भी कुछ दूर तक उनको पहुँचाने के लिए उनके साथ गये। फिर आशीर्वाद देकर, अभिनन्दन करके, लोमश-धौम्य आदि के हाथ में पाण्डवों को सौंपकर वृषपर्वा लौट गये।

भाइयों के साथ सत्यपराक्रमी महाराज युधिष्ठिर उसी राह से पैदल जाने लगे जिसमें ३० मृग आदि बहुत से जङ्गली पशु विचर रहे थे। वृक्षों के कुञ्जों से पूर्ण पहाड़ी चोटियों [घाटियों] पर बसते हुए पाण्डव चौथे दिन श्वेतपर्वत पर पहुँचे। उस पर्वत पर जलाशय भरे हुए थे। वे दूर से जल भरे बादलों की घटाओं के समान जान पड़ते थे। उस पर्वत के शिखर मणियों के, सोने के, चाँदी के और सफ़ेद शिलाओं के थे। उसको भी लाँघकर अनेक प्रकार के छोटे-बड़े पर्वतों की श्रेणियाँ देखते हुए पाण्डव वृषपर्वा के बताये हुए मार्ग पर ही लगातार चले जा रहे थे। पर्वत के ऊपर बनी हुई दुर्गम गुफाओं और गढ़ों को ये लोग सहज में ही लाँघ जाते थे। पुरोहित धौम्य, महर्षि लोमश, द्रौपदी और पाण्डव, सब साथ साथ चले जा रहे थे। कोई उदास या थका हुआ नहीं जान पड़ता था। इसी प्रकार चलते-चलते पाण्डव पर्वतराज माल्यवान् के ऊपर पहुँचे। वहाँ कहीं पर मृगों के झुण्ड इधर-उधर चौकड़ियाँ भर रहे थे; कहीं पर पक्षी मनोहर बोलियाँ बोल रहे थे; कहीं पर पद्मपुष्पपूर्ण सरोवर थे और वृक्ष-लता-शोभित, वानर आदि जीव-जन्तुओं के रहने के स्थान महावन दूर-दूर तक फैले हुए थे।

आगे चलकर इन लोगों ने गन्धमादन पर्वत को देखा जहाँ सिद्ध और चारण विचरते थे तथा किंपुरुष आदि देवयोनियाँ विहार करती थीं। उस पर्वत को देखते ही सबको प्रसन्नता हुई। वीर पुरुष पाण्डव द्रौपदी को अपने साथ लिये महात्मा ब्राह्मणों के साथ धीरे-धीरे उस नन्दनवन सदृश परमानन्दजनक गन्धमादन पर्वत [के भीतरी भाग] में घुसने लगे जिसमें जगह-जगह पर विद्याधर और विद्याधरियाँ, किन्नर और किन्नरियाँ चारों ओर विचरते रहते हैं—सिंह, ४० व्याघ्र, शरभ, मृग आदि जीव-जन्तु चारों ओर तरह तरह के शब्द किया करते हैं। सुनते ही हृदय को हरनेवाले, सुखदायक, मनोरम पक्षियों के मधुर शब्द चारों ओर गूँज से रहे थे। उस पर्वत पर अनेक प्रकार के रङ्गीन फूलों से शोभित और फलों के बोझ से झुके हुए आम, आम्रा-तक, नारियल, तिन्दुक, मूँज, अंजीर, अनार, कटहल, लकुच, केला, खजूर अमिलतास, पारा-

वत, चम्पक, कदम्ब, वेल, कैथ, जामुन, कुंकुम, वैर, पकरिया, गूलर, वरगद, पीपल, दूधी, भल्ला-तक, आँवला, हड़, वहेड़ा, इंगुदी, करमर्द और अन्य अनेक प्रकार के वृक्ष थे। ऐसे भी वृक्ष थे, जिनके फलों का स्वाद अमृत के समान था। इसी तरह चम्पा, अशोक, केतकी, मौलसिरी, पुन्नाग, सप्तपर्ण, कनेर, पाटल, कुटज, मन्दार, इन्दीवर, हरसिंगार, कचनार, देवदार, शाल, ताल, ५० तमाल, पीपल, हींग, सेमर, ढाक, इमली आदि के भी वृक्ष देख पड़ रहे थे। चकोर, शतपत्र, भौंरे, तोते, कोकिला, कलविंक, हरियल, जीवंजीवक, प्रियक, चातक और अन्य अनेक पक्षी वृक्षों की डालियों पर बैठे मनोहर शब्द सुना रहे थे। कहीं पर कुमुद, पुण्डरीक, लाल कमल आदि असंख्य फूल फूले हुए थे। कहीं पर हंस, कारण्डव, चक्रवाक, कुरर, जलकुक्कुट, प्लव, वगले आदि जलचर जीव इधर-उधर चल-फिरकर जलाशयों की शोभा वढ़ा रहे थे। कमल के मधु को पीकर मस्त, कमल के पराग से सनकर पीले बने हुए भौंरे फूलों पर घूम-घूमकर गुनगुना रहे थे। आनन्द से मस्त धीमी चाल से चलनेवाले मोर, मोरनियों के साथ, टहल रहे थे। वे ६० मेघों का गरजना सुनकर कामदेव से व्याकुल हो, अपनी विचित्र पूँछें फैलाकर, मधुर शब्द करते हुए नाच रहे थे। कुछ मोर, मोरनियों के साथ, लता-कुञ्जों में घूम रहे थे। कुछ मोर कुटज-वृक्षों की डालियों पर बैठे हुए थे। उनके माथे पर पूँछ का घेरा मुकुट के समान जान पड़ता था। वृक्षों के भीतर के बड़े-बड़े छेदों में कुछ मोर बैठे हुए थे।

पर्वत के शिखर पर सुनहरे रङ्ग के फूलों से शोभित सिन्धुवार (एक प्रकार के कमल) के वृक्ष कामदेव के तोमर-शस्त्र के समान जान पड़ते थे। कहीं पर फूले हुए कनेर करनफूलों के समान देख पड़ रहे थे। कहीं पर फूले हुए कुरुवक के वृक्ष कामदेव के वाणों के समान कामियों के हृदय में विषम वेदना उत्पन्न कर रहे थे। कहीं पर तिलक के वृक्षों की क़तारें देखकर जान पड़ता था कि महावन के मस्तक पर तिलक लगा है। भौंरे जिन पर गूँज रहे हैं ऐसे मञ्जरी-मण्डित आम के पेड़ों की पंक्तियाँ भी कामदेव के वाणों के समान जान पड़ती थीं। वृक्षों में कहीं पर सुनहरे रङ्ग के, कहीं पर जलती हुई आग के रङ्ग के, कहीं पर अञ्जन के रङ्ग के और कहीं पर वैदूर्य मणि के रङ्ग के फूल खिल रहे थे। शाल, ताल, तमाल, पाटल और वकुल आदि के फूले हुए वृक्ष माला ७० की तरह उस पर्वतशिखर की शोभा वढ़ा रहे थे। कहीं पर विल्लौर के समान निर्मल जलवाले, कमलपुष्प-पूर्ण सरोवर देख पड़ते थे; उनमें सारस, कलहंस आदि पक्षी मनोहर शब्द कर रहे थे। कमल, उत्पल, कल्हार, पुण्डरीक आदि अनेक प्रकार के फूलों की सुगन्ध सूँघते हुए पाण्डव क्रमशः आगे वढ़ते जाते थे। वे आश्चर्यपूर्ण दृष्टि से चारों ओर, सुगन्धित फूलों और स्वादिष्ठ फलों से भरे-पुरे, मनोहर वृक्षों और सुन्दर सरोवर आदि की सैर करते हुए उस वन के भीतर घुसे।

तब युधिष्ठिर ने प्रिय भाई भीमसेन से मधुर स्वर में कहा—हे भीम, देखो, यह गन्धमादन पर्वत का वन कैसा विचित्र है! इसमें मनोहर जङ्गली वृक्ष फूले और फले हुए हैं। इधर-उधर

कोयल आदि पक्षी भरे पड़े हैं। इसके भीतर कँटीला या विना फूलों का कोई वृक्ष नहीं देख पड़ता। इस पहाड़ की चोटियों पर वृक्षों के पत्ते चिकने-चिकने हैं। वह देखो, हाथियों के झुण्ड हथिनियों के साथ भ्रमर-परिपूर्ण कमलवन के भीतर घुसकर उसे मथ रहे हैं। वह देखो, कमल-उत्पल आदि फूलों की माला सी पहने साक्षात् लक्ष्मी के समान एक और सरोवर शोभायमान हो रहा है। इस महावन के सुगन्ध-पूर्ण पुष्पयुक्त वृक्षों पर भौंरों के झुण्ड गुनगुना रहे हैं। हे भीम, वह देखो, देवताओं के विहार करने के शुभ स्थान देख पड़ते हैं। हम यहाँ आकर अमानुषी गति को (अर्थात् देवभाव को) प्राप्त हो गये; हम सिद्ध हो गये। हे पार्थ, मनोहर पुष्पपूर्ण वृक्षों की चोटियों पर छाई हुई प्रफुल्लित लताओं से गन्धमादन पर्वत के इन शिखरों की कैसी शोभा हो रही है। सुनो, पहाड़ के कुञ्जों में मोरनियों के साथ ये मोर कैसे प्रसन्न होकर बोल रहे हैं! वह देखो, चकोर, शतपत्र, कोकिला, मैना आदि पक्षी कैसे फूले हुए वृक्षों की एक डाली से दूसरी डाली पर उड़कर जाते हैं। लाल, पीले और गुलाबी रङ्ग के जीवंजीवक पक्षी परस्पर निहार रहे हैं। पहाड़ी झरनों और हरे रङ्ग की नई घास से सुहावने मैदानों के पास सारस पक्षी देख पड़ते हैं। भृङ्गराज, उपचक्र और लोहपृष्ठ आदि पक्षी मधुर ध्वनि सुनाकर मन को प्रसन्न कर रहे हैं। वैडूर्य मणि के रङ्ग के जल से पूर्ण बड़े बड़े सरोवरों के भीतर घुसकर ये चार दाँतोंवाले सफ़ेद हाथी हथिनियों के साथ जलक्रीड़ा कर रहे हैं। पहाड़ी झरनों का जल ताड़ के पेड़ के बराबर ऊँचा होकर शिलाओं पर वेग से गिर रहा है। वह देखो, सूर्य के रङ्ग की और शरद ऋतु के बादलों के रङ्ग की सुनहरी, रुपहली धातुएँ पर्वत पर चमक रही हैं। कहीं पर मैनसिल की बनी कन्दराएँ देख पड़ती हैं। कहीं पर काले रङ्ग की, कहीं पर सोने के रङ्ग की, कहीं पर हरताल के रङ्ग की, कहीं पर हींग के रङ्ग की, कहीं लोध्रवृक्ष के काठ के रङ्ग की, कहीं गेरू के रङ्ग की, कहीं काले-सफ़ेद मेघों के रङ्ग की, कहीं प्रातःकाल के बाल-सूर्य के रङ्ग की चमकीली धातुएँ पर्वतराज की शोभा को दर्श-

नीय बना रही हैं। हे पार्थ, महात्मा वृषपर्वा ने हमको जो बताया था वही हम यहाँ देख रहे हैं। वह देखो, गन्धर्व और किम्पुरुष अपनी-अपनी प्रियाओं के साथ पर्वत के ऊँचे शिखरों पर दिखाई दे रहे हैं। यहाँ पर तान-लय में शुद्ध मनोहर सङ्गीत और पवित्र साम-गान सुन पड़ रहा है। हे भीम, ऋषि और किन्नर जिसके किनारों पर रहते हैं और हंस विचरते हैं उस परमपवित्र महानदी गंगा के दर्शन करो। हे शत्रुदमन! इस पर्वतराज पर धातु, नदी, किन्नर, मृग, पशु-पक्षी, गन्धर्व, अप्सरा और अनेक प्रकार के कीड़े-मकोड़ों की कमी नहीं है। यह अपने वनों की विशेष शोभा से बड़ा ही दर्शनीय है। १००

वैशम्पायन कहते हैं—परमतपस्वी, शूर-वीर, पाण्डव द्रौपदी और महात्मा ऋषियों के साथ उस स्थान पर पहुँचकर, श्रेष्ठ गति पाकर, बहुत ही आनन्दित हुए। पर्वतराज गन्धमादन की शोभा देखकर उनके नेत्रों को किसी प्रकार तृप्ति ही न होती थी। चलते-चलते वे पुष्पों और वृक्षों से शोभित राजर्षि आर्ष्टिषेण के आश्रम में पहुँचे। वहाँ पहुँचकर सब लोग तपस्वी, दुर्बल-शरीर, धर्मशास्त्र के बड़े भारी विद्वान् महर्षि आर्ष्टिषेण के पास गये। १०३

एक सौ उनसठ अध्याय

राजर्षि आर्ष्टिषेण से बातचीत

वैशम्पायन कहते हैं—तप की आग में जिनके सब मल जल चुके हैं उन महर्षिश्रेष्ठ आर्ष्टिषेण के पास जाकर युधिष्ठिर ने अपना नाम लिया और सिर झुकाकर उनको प्रणाम किया। फिर द्रौपदी, भीम, नकुल और सहदेव भी उनको प्रणाम करके युधिष्ठिर के पास खड़े हो गये। पाण्डवों के पुरोहित धर्मज्ञ धौम्य ऋषि ने भी पास जाकर आर्ष्टिषेण को अभिवादन किया। दिव्य दृष्टि से पाण्डवों का हाल जानकर महर्षि आर्ष्टिषेण ने आदर के साथ युधिष्ठिर से बैठने के लिए कहा। राजा युधिष्ठिर जब बैठ गये तब द्रौपदी और अन्य पाण्डव भी बैठे। अतिथि-सत्कार की रीति से युधिष्ठिर की पूजा करके महर्षि ने उनसे उनकी कुशल पूछी।

ऋषि ने कहा—हे पार्थ, तुम अपने मन को झूठ की ओर तो नहीं ले जाते हो? धर्म-पालन में तुम्हारा ध्यान लगा हुआ है न? माता-पिता की भक्ति तो उचित रूप से करते हो? गुरु, वृद्धजन और वेदज्ञ पण्डित तो सदा तुम्हारे यहाँ पूजा पाते रहते हैं? हे धर्मराज, पापकर्मों में तो तुम्हारी मति नहीं है? तुम न्याय के मार्ग पर चलकर पुण्य में प्रवृत्त और पाप से अलग रहते हो न? पाप-पुण्य में गड़बड़झाला तो नहीं होने देते? तुमसे यथोचित सम्मान पाकर सज्जन लोग तो सदा सन्तुष्ट रहते हैं? तुम वनवास में भी अपने धर्म का पालन कर रहे हो न?

१० हे पार्थ, तुम्हारे आचार-व्यवहार से पुरोहित धौम्य को तो किसी तरह की असुविधा नहीं होती? तुम अपने बाप-दादों की तरह दान, धर्म, तप, शौच और सरलता आदि को ग्रहण किये हुए हो न? तुम उसी राह पर चलते हो, जिस पर श्रेष्ठ राजर्षि लोग चलते रहे हैं? हे पार्थ, पितर पितृलोक में रहते हैं। वे अपने कुल में पुत्र या पौत्र उत्पन्न होने पर हँसते और शोक भी करते हैं। वे मन में कहते हैं कि या तो यह अपने अच्छे कामों से हमारा नाम चलावेगा और उससे हमारे कुल का शुभ होगा; और या बुरे आचरणों से हमारा नाम डुबावेगा और उससे हमारे कुल का अशुभ होगा। हे युधिष्ठिर, जो पुरुष माता, पिता, गुरु, अग्नि और अपने आत्मा की पूजा या प्रतिष्ठा (इज़्ज़त) करता है उसके दोनों (पिता के और माता के) कुलों की कीर्त्ति बढ़ती है।

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्, आपने मुझसे जिन धर्म के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में प्रश्न किये उन सबका निर्वाह मैं अपनी शक्ति भर करता रहता हूँ। फिर प्रसन्न होकर आर्ष्टिषेण ऋषि ने कहा—राजन्, केवल जल पीकर या हवा ही खाकर तपस्या करनेवाले ऋषि लोग पर्व आदि के अवसर पर, आकाश-मार्ग से, इस पर्वतराज पर आते हैं। इसके शिखरों पर अपनी प्यारी स्त्रियों के साथ किंपुरुष आदि देवगण कामभोग करने आते हैं। बढ़िया रेशमी कपड़े पहने गन्धर्वों और अप्सराओं के झुण्ड यहाँ दिखाई दिया करते हैं। माला पहने, सुन्दर रूपवाले विद्याधर, नाग, सुपर्ण, चारण आदि भी इस पर विचरा करते हैं। पर्व-उत्सव आदि के अवसर
२० पर इस पहाड़ के ऊपर नगाड़े, झाँझ, शङ्ख, मृदङ्ग आदि बाजों का शब्द सुन पड़ता है। हे कुरुश्रेष्ठ, तुम लोग इसी स्थान पर रहकर इन बातों को देख-सुन सकते हो। आगे जाने का विचार कभी मत करना। इसके आगे देवताओं की विहार-भूमि है। वहाँ मनुष्य की गति नहीं है। हे भरतश्रेष्ठ, यहाँ जो कोई कुछ भी चञ्चलता या ऊधम करता है उसका यहाँ के सब प्राणी अनिष्ट करते हैं; उसे राक्षस सताते हैं। हे युधिष्ठिर, इस कैलास पर्वत का शिखर

लाँघने पर सिद्धों और देवर्षियों की गति मिलती है। यदि कोई कैलास-शिखर को लाँघकर उस मार्ग में जाता है तो राक्षस उसे लोहे के शूल आदि से मार डालते हैं। हे धर्मराज, पर्व के अवसर पर समृद्धिशाली महाराज कुबेर पालकी पर चढ़कर अप्सराओं के साथ इस स्थान पर आते हैं। यहाँ के सब प्राणी पर्वत-शिखर पर बैठे उदित सूर्य के समान तेजस्वी कुबेर के दर्शन करते हैं। हे पार्थ, यह पहाड़ का शिखर देव, दानव, सिद्ध आदि का और कुबेर का उद्यान (बाग़) है। पर्व आदि के अवसर पर तुम्बुरु गन्धर्व आकर यहाँ कुबेर को गाना सुनाता है। [उस समय उसका सामगान सुन पड़ता है।] तात्पर्य यह कि हर एक पर्व के अवसर पर इस पर्वत के ऊपर अनेक अद्भुत घटनाएँ और विचित्र दृश्य देख पड़ते हैं। हे पाण्डवो, जब ३० तक तुमसे अर्जुन की भेंट न हो तब तक तुम मुनियों के आहार फल-मूल आदि खाकर यहीं रहो। पुत्रो, इस जगह किसी तरह की ढिठाई मत करना। यहाँ इच्छानुसार रहो और श्रद्धापूर्वक यहाँ की सैर करो। अन्त को तुम शस्त्र-बल से पृथ्वी को जीतकर राज्यपालन करोगे। ३२

एक सौ साठ अध्याय

यक्षों से युद्ध। भीमसेन का मणिमान् राक्षस को मारना। कुबेर का वहाँ पर आना

जनमेजय ने पूछा—भगवन्, मेरे पूर्व-पितामह दिव्य बल और पराक्रम रखनेवाले महात्मा पाण्डव उस गन्धमादन पर्वत पर [आर्ष्टिषेण मुनि के आश्रम में] कितने दिनों तक रहे? उन परम तेजस्वी वीरों ने वहाँ रहकर क्या-क्या काम किये? वहाँ वे क्या खाते-पीते थे? उस हिमवान् पर्वत पर रहकर भीमसेन ने जो पुरुषार्थ के काम किये हों उनका वर्णन कीजिए। मैं इस कथा को विस्तार के साथ सुनना चाहता हूँ। हे वैशम्पायन, वहाँ यक्षों के साथ भीमसेन का युद्ध तो नहीं हुआ? आर्ष्टिषेण ने कहा था कि पर्व समय पर कुबेर वहाँ आते हैं। उनसे क्या पाण्डवों की भेंट हुई थी? हे तपोधन, मैं यह सब वृत्तान्त विस्तार के साथ सुनना चाहता हूँ। महात्मा पाण्डवों के चरित्र सुनकर मेरा जी नहीं भरता; और भी सुनने को जी चाहता है।

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, कुरुवंश में श्रेष्ठ पाण्डव अपने हितकारी परम तेजस्वी महर्षि आर्ष्टिषेण के मङ्गलमय उपदेश को सुनकर वहीं रहकर तपस्या करने लगे। वहाँ रहकर वे मुनियों के आहार, रसीले फल और सादे बाणों से मारे गये मृगों का मांस खाते थे; अनेक प्रकार के स्वच्छ मधु (शहद) पीते थे और लोमश आदि मुनियों के मुँह से पवित्र विचित्र कथाएँ सुनते थे। इस प्रकार वे हिमालय पर रहने लगे। वहाँ रहकर उन्होंने पाँचवाँ वर्ष भी बिता दिया। १० यहीं पर घटोत्कच यह कहकर चला गया कि काम पड़ने पर [मुझे याद करना;] मैं आ जाऊँगा। पाण्डव लोग आर्ष्टिषेण के आश्रम में अनेक अद्भुत दृश्यों और घटनाओं को देखते

हुए बहुत दिनों तक रहे। इसके उपरान्त विशुद्धचित्त मुनि, चारण और सिद्धगण उनसे मिलने के लिए वहाँ पर आये। पाण्डव भी उनसे मिलकर परम प्रसन्न हुए और उनसे बातचीत करने लगे।

इस प्रकार कुछ समय बीतने पर एक दिन वहां पर गरुड़ ने आकर अकस्मात् एक बड़े भारी कुण्ड में रहनेवाले महानाग को पकड़ लिया। गरुड़ के वेग से वह पहाड़ कांप उठा और बड़े-बड़े वृक्ष टूटकर गिर पड़े। पाण्डवों और अन्य प्राणियों ने उस विचित्र घटना को आश्चर्य के साथ देखा। उस समय पर्वतराज की चोटियों पर से पाण्डवों के ऊपर वायु के द्वारा फूलों की वर्षा होने लगी। मित्रों-सहित पाण्डवों ने और यशस्विनी द्रौपदी ने पांच रङ्ग के सुगन्धित दिव्य फूलों को देखा। तब द्रौपदी ने पर्वत के ऊपर निर्जन स्थान में अकेले सुखपूर्वक बैठे हुए भीमसेन से जाकर कहा—हे भरतकुल-तिलक, गरुड़ के परों की हवा से और भी प्रबल होकर यह २० हवा इन पँचरङ्गे फूलों को बरसा रही है। तुम्हारे भाई सत्यप्रतिज्ञ महात्मा अर्जुन ने खाण्डव वन में सब लोगों के आगे, अश्वरथा नदी के पास गन्धर्व, नाग, राक्षस और साक्षात् इन्द्र को भी परास्त करके मायावी उग्र प्राणियों का नाश किया था। वहीं उन्हें गाण्डीव धनुष मिला था। तुम्हारा भी बाहुबल और तेज अपार है। तुम इन्द्र के समान बलवान् हो। तुम्हारे बाहुबल के वेग को कोई सह नहीं सकता। इसलिए हे भीमसेन, [तुम ऐसा करो कि] तुम्हारे बाहुबल से डरकर सब राक्षस इस पहाड़ को छोड़कर इधर-उधर भाग जायँ, और तुम्हारे मित्र निडर होकर इस विचित्र और कल्याणमय माल्यवान् शिखर को देखें। हे भीम, मैं भी तुम्हारे बाहुबल से रक्षित होकर शैलशिखर को देखना चाहती हूँ।

शान्तस्वभाव गजराज जैसे [अंकुश के] प्रहार को नहीं सह सकता, वैसे ही द्रौपदी के वचनों से उत्तेजित भीमसेन ने उसे एक प्रकार की भर्त्सना समझा—वह उन्हें सहन नहीं हुई। तब सिंह के समान चलनेवाले, सोने के समान गौर वर्ण, मस्त हाथी के समान पराक्रमी, चौड़े कन्धोंवाले, ताड़ के समान ऊँचे महाबाहु भीमसेन ने धनुष, तलवार और बाणों से भरे हुए तरकस लिये। अब वे सिंह के समान प्रचण्ड भाव से, मस्त हाथी की तरह निडर होकर, उस पर्वत के ३० शिखर की तरफ़ चले। वहां के प्राणियों ने धनुष-बाण धारण किये वीर पुरुष भीमसेन को सिंह और मस्त हाथी की तरह आते देखा। गदाधारी पाण्डुपुत्र भीमसेन, द्रौपदी को प्रसन्न करते हुए, बेखटके पर्वत पर पहुँचे। उस समय उनके चित्त में किसी प्रकार की थकन, डर या ईर्ष्या नहीं थी। फिर वे केवल एक आदमी के जाने भर की पहाड़ की तङ्ग घाटी से उस, अगम्य और वृक्ष-लता-मण्डित, बहुत ऊँचे पर्वत-शिखर पर चढ़ने लगे। किन्नर, महानाग, मुनि, गन्धर्व, राक्षस आदि को प्रसन्न करते हुए महाबली भीमसेन पर्वत की चोटी पर चढ़ गये। वहाँ से उन्हें सोने और बिल्लौर के बने महलों से भूषित और चारों ओर सोने की चहारदीवारी से घिरी हुई कुबेर की दिव्य अलका पुरी देख पड़ी। उसमें चहारदीवारी के द्वार और बड़े-बड़े फाटक लगे

गरुड़ ने आकर अकस्मात् महानाग को पकड़ लिया।—पृ० १०२०

हुए थे। उसमें चारों ओर जड़े हुए रत्न जगमगा रहे थे। स्थान-स्थान पर बाग़ थे। वह पुरी पर्वत से भी अधिक ऊँची थी। उसमें जगह-जगह पर वेश्याएँ नाच रही थीं और बड़ी-बड़ी पताकाएँ हवा में फहरा रही थीं। ४०

भीमसेन हाथ टेढ़ा करके, धनुप का सहारा लेकर, खेद के साथ उस कुवेर की पुरी को निहारने लगे। उन्होंने देखा, गन्धमादन पर्वत का सुगन्धित पवन वहाँ के निवासियों को प्रसन्न करता हुआ डोल रहा है; विविध विचित्र मञ्जरियों से लदे हुए वृत्तों की अनिर्वचनीय शोभा हो रही है। महाबाहु भीमसेन यत्त-राचसाधिपति कुवेर के भवन को गदा, खड्ग, धनुप आदि शस्त्र लिये बड़ी देर तक पर्वत की तरह अटल भाव से खड़े देखते रहे। उस भवन में रत्न जड़े हुए थे; और स्थान-स्थान पर विचित्र पुष्पमालाएँ टँगी हुई थीं। फिर उन्होंने शत्रुओं के शरीर में रोमाञ्च उत्पन्न कर देनेवाला शङ्ख बजाया। साथ ही धनुप की डोरी का शब्द बार-बार करके सब प्राणियों को अचेत कर दिया। यत्त, राचस, गन्धर्व आदि के शरीरों में रोंगटे खड़े हो गये। वे उसी शब्द पर लक्ष्य रखकर भीमसेन के पास दौड़ते हुए आये। उनके हाथों में गदा, निस्त्रिंश, त्रिशूल, परशु आदि शस्त्र चमक रहे थे।

अब भीमसेन के साथ उन यत्त-राचस आदि का युद्ध होने लगा। भीमसेन ने भयङ्कर भल्ल बाणों से उनके फेंके शूल, शक्ति आदि सब शस्त्रों को देखते ही देखते काट डाला। फिर ५० वे अपने बाणों से आकाशगामी और पृथ्वी पर खड़े होकर गरजते हुए राचसों को घायल करने लगे। शस्त्रधारी यत्त-राचसों के घायल शरीरों से रक्त के फुहारे छूटने लगे। रक्त से भीमसेन तर हो गये। ज़ोर से चलाये हुए भीमसेन के शस्त्रों के लगने से यत्तों और राचसों के मस्तक और अन्यान्य अङ्ग कट-कटकर गिरने लगे। चारों ओर यत्त-राचसों से घिरे हुए भीमसेन बादलों में छिपे हुए सूर्य की तरह जान पड़ने लगे। जैसे सूर्य नारायण अपनी किरणें फैलाकर सारे जगत् को छा लेते हैं, वैसे ही तीक्ष्ण धारवाले बाणों से भीमसेन ने शत्रु-सेना को छा लिया। राचसों के डपटने और गरजने से भीमसेन को तनिक भी मोह नहीं हुआ। उनसे डरे हुए, घायल यत्त और राचस अस्त्र-शस्त्र छोड़कर बुरी तरह कराहने लगे। वे दृढ़धनुषधारी भीमसेन के डर से गदा, शूल, खड्ग, शक्ति, परशु आदि फेंककर दक्षिण दिशा को भागे। विशाल वत्तःस्थल-वाला, वीर, कुवेर का मित्र मणिमान् नाम का राचस गदा और शूल हाथ में लिये सामने खड़ा रहा। वह नहीं भागा। वह अपना प्रभुत्व दिखाता हुआ, युद्ध से भागते हुए यत्तों से मुसकुराता हुआ, कहने लगा—यह बात तुम लोग कुवेर के भवन में जाकर कैसे उनसे कहोगे ६० कि एक मनुष्य ने अनेक यत्तों और राचसों को मार भगाया? अब वह शक्ति, शूल, गदा आदि शस्त्र लेकर भीम की ओर झपटा। मत्त गजराज की तरह उसको अपनी ओर आते देखकर भीमसेन ने उसकी कोखों में तीन वत्सदन्त नाम के पैने बाण मारे। महाबली क्रुद्ध

मणिमान् ने भी अपनी भारी गदा घुमाकर भीमसेन पर चलाई। बिजली के समान चमकती हुई उस गदा को आते देखकर भीमसेन ने पैने बाणों से आकाश में ही रोकने की चेष्टा की; परन्तु वे सब बाण गदा से टकराकर टूट गये। तब गदायुद्ध-विशारद भीमसेन झुककर उस गदा के प्रहार को बचा गये। जब गदा व्यर्थ हो गई तब बुद्धिमान् मणिमान् ने सोने के दण्डवाली लोहे की बड़ी भयङ्कर शक्ति उठाकर भीमसेन पर चलाई। अग्नि की ज्वालाएँ जिससे निकल रही थीं वह भयानक शब्द करनेवाली घोर शक्ति भीमसेन के दाहने हाथ पर लगकर पृथ्वी पर गिर गई। महापराक्रमी भीमसेन शक्ति के लगने से घायल हो गये। तब अत्यन्त क्रुद्ध होकर उन्होंने सोने ७० के पत्तरों से जड़ी हुई शत्रुओं को डरानेवाली अपनी महागदा उठाई और फिर गरजते हुए वेग से महाबली मणिमान् के ऊपर प्रहार करने के लिए झपट पड़े। मणिमान् ने भी चमचमाता हुआ महाशूल लेकर गरजकर भीमसेन के ऊपर बड़े वेग से फेंका। गदायुद्ध-विशारद भीमसेन ने गदा के अग्रभाग से उस शूल को तोड़ डाला। गरुड़ जैसे साँप को पकड़ने के लिए झपटते हैं वैसे ही भीमसेन मणिमान् के मारने को दौड़े। फिर ऊपर उछलकर एकाएक वह गदा घुमाकर भीमसेन ने उसके मस्तक पर मारी। इन्द्र के चलाये वज्र के समान वह गदा वायुवेग से आकर राक्षस को लगी। तुरंत ही मणिमान् मरकर गिर पड़ा। राक्षस को मारकर, प्राणियों का नाश करनेवाली 'कृत्या' के समान वह गदा नीचे गिर पड़ी। सिंह जैसे साँड़ को पछाड़ता है वैसे ही भीमसेन ने मणिमान्‌को मार डाला। यह देखकर बचे हुए यक्ष-राक्षस भयंकर ७७ आर्त्तनाद करते हुए पूर्व दिशा को भागे।

एक सौ इकसठ अध्याय

कुबेर का आना

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्! इधर अजातशत्रु युधिष्ठिर, नकुल-सहदेव, द्रौपदी, धौम्य, विप्रगण और सब सुहृद् पर्वत कन्दरा में बहुत प्रकार के शब्दों की प्रतिध्वनि सुनकर और भीमसेन को न देखकर बहुत ही घबराये। तब महाधनुर्द्धर महारथी पाण्डव लोग, द्रौपदी को आर्ष्टिषेण के पास छोड़कर, शस्त्र लेकर, पर्वत पर चढ़े। पर्वत की चोटी पर चढ़कर पाण्डवों ने भीमसेन को देखा। उन्होंने देखा कि महाकाय बलवान् यक्ष-राक्षसों में से कोई पृथ्वी पर पड़ा तड़प रहा है, कोई मरा पड़ा है। महाबली इन्द्र जैसे दानवों को मारकर शोभायमान हों वैसे ही बलवान् राक्षसों को मारकर गदा, खड्ग, धनुष आदि लिये भीमसेन खड़े हैं। महात्मा पाण्डवों ने भाई भीमसेन को देखकर प्रसन्नतापूर्वक गले से लगा लिया। अब सब लोग वहीं पर बैठ गये। देवताओं सहित लोकपालों के बैठने से देवलोक की जैसी शोभा होती है वैसे ही पाण्डवों से उस पर्वत-शिखर की शोभा हुई। फिर राजा युधिष्ठिर ने वहाँ से कुबेरभवन को और मरे

हुए यक्ष-राक्षसों को देखकर भीमसेन से कहा—हे भीम! चाहे साहस से हो, चाहे मोहवश, मुनियों के झूठ बोलने के समान, यह यक्षों का वध तुमने बहुत ही अनुचित किया। धर्मात्मा लोगों का कहना है कि राजा से द्वेष नहीं करना चाहिए। तुमने 'राजराज' देवता कुवेर का यह अप्रिय किया, सो अच्छा नहीं किया। जो कोई धर्म और अर्थ का अनादर करके पाप कर्म में मन लगाता है, उसे उसका फल भोगना ही पड़ता है। जो तुम मुझे प्रसन्न रखना चाहते हो तो फिर कभी ऐसा काम मत करना। १०

वैशम्पायन कहते हैं—धर्मात्मा युधिष्ठिर भीमसेन को यों उपदेश देकर थोड़ी देर तक चुपचाप सोचते रहे। उधर मरने से बचे हुए यक्ष लोग जल्दी से कुवेर-भवन में जाकर हाय-हाय करने लगे। वे अस्त्र-शस्त्र फेंक आये थे, थके हुए थे, रक्त से तर हो रहे थे; उनके बाल खुले और उलझे हुए थे। उन्होंने कुवेर से कहा—हे देव! जो लोग गदा, परिघ, तोमर आदि शस्त्रों से युद्ध करते थे, जो यक्षों और राक्षसों में प्रधान समझे जाते थे, उन्हीं आपके वीर योद्धाओं को समर में एक मनुष्य ने मार गिराया है। आपका मित्र मणिमान् भी मारा गया। केवल हम बचकर आपके पास भाग आये हैं। अब जो उचित समझिए सो कीजिए। २०

यक्षराज कुवेर उनके मुँह से यह सुनकर बहुत ही क्रोधित हुए। उनकी आँखें लाल हो आईं। उन्होंने उनसे इस युद्ध का कारण पूछा। भीमसेन का ही अपराध सुनकर उन्हें और भी क्रोध चढ़ आया। उन्होंने तुरन्त रथ तैयार करने की आज्ञा दी। नौकरों ने उसी दम किंकिणीजालमण्डित, सोने की मालाओं से भूषित घोड़ोंवाला, मेघों के से रङ्ग का, पर्वतशिखर के समान ऊँचा रथ लाकर खड़ा कर दिया। अनेक रत्नों से भूषित, सब गुणों से युक्त, उज्ज्वल नेत्रोंवाले, पराक्रमी, तेज़ घोड़े रथ में जुते हुए थे। वे विजयसूचक हिनहिनाहट करने लगे। राजराज कुवेर उस श्रेष्ठ रथ पर चढ़कर चले। देव-गन्धर्व राह में आगे आगे उनकी स्तुति करते चल रहे थे। महात्मा कुवेर को जाते देखकर लाल नेत्रोंवाले, स्वर्णवर्ण, महाकाय, महाबली एक हज़ार से अधिक यक्ष अनेक अस्त्र-शस्त्र

लिये हुए उनके पीछे चले। कुबेर के घोड़े बड़े वेग से आकाश-मार्ग में जा रहे थे। वे मानों आकाश को ही अपनी ओर खींचते हुए जल्दी से गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे। यक्षराज-पालित उन घोड़ों को और यक्ष-राक्षसों-सहित प्रियदर्शन कुबेर को देखकर पाण्डवों के शरीर में रोमाञ्च ३० हो आया। देवकार्य करने की इच्छा रखनेवाले कुबेर भी खड्ग-धनुष आदि धारण किये हुए महात्मा पाण्डवों को देखकर मन ही मन प्रसन्न हुए।

आगे-आगे कुबेर और पीछे-पीछे यक्ष पक्षियों के समान आकाशमार्ग से, बड़े वेग से, पाण्डवों के पासवाले पर्वत के शिखर पर उतरे। कुबेर को पाण्डवों पर प्रसन्न देखकर वे शान्त भाव से खड़े हो गये। तब धार्मिकश्रेष्ठ युधिष्ठिर आदि पाण्डवों ने कुबेर को प्रणाम किया। वे सब अपने को अपराधी समझकर, हाथ जोड़कर, यक्षराज के आस-पास खड़े हो गये। विश्वकर्मा के बनाये विचित्र पुष्पक रथ (विमान) पर यक्षराज कुबेर बैठे थे। उस विमान पर पलँग-आसन आदि सब सामान था। महाकाय, फुर्तीले, शंकुकर्ण हज़ारों यक्ष, राक्षस, गन्धर्व और अप्सराएँ उनको घेरे हुए थीं। वे देवगण से घिरे हुए इन्द्र के समान जान पड़ते थे। गले में सुवर्ण की माला पहने और हाथों में पाश, खड्ग, धनुष आदि लिये हुए भीमसेन खड़े-खड़े ४० कुबेरजी को देखने लगे। राक्षसों के प्रहारों से यद्यपि वे घायल हो गये थे तो भी यक्षमण्डली-सहित कुबेर को देखकर उनके मन में किसी प्रकार की पीड़ा नहीं हुई।

तीक्ष्ण शस्त्र लिये भीमसेन को युद्ध की इच्छा से खड़े देखकर कुबेर ने युधिष्ठिर से कहा—हे पाण्डव, सभी प्राणी तुमको सब जीवों का हितैषी समझते हैं। तुम अपने भाइयों के साथ बे-खटके इस पर्वत के शिखर पर रहो। तुम भीमसेन के ऊपर क्रोध मत करना। ये यक्ष-राक्षस, काल के हाथों, पहले ही मर चुके थे। तुम्हारे भाई तो इनके मरण का केवल निमित्त हैं। इसलिए इनके मरने से तुम अपने को अपराधी समझकर लज्जित मत होना। यक्षों और राक्षसों का यह नाश होना देवताओं को पहले से ही मालूम था। इसलिए भीमसेन पर मुझको रत्ती भर भी क्रोध नहीं है। मैं तो उन पर सन्तुष्ट हूँ।

वैशम्पायन कहते हैं कि यक्षराज ने युधिष्ठिर से यों कहकर भीमसेन से कहा—हे कुरु-श्रेष्ठ, तुमने द्रौपदी को प्रसन्न करने के लिए मेरा और देवताओं का अनादर करके बाहुबल से यक्षों तथा राक्षसों को मारा और साहस का काम किया, इससे मैं तुम पर बहुत ही प्रसन्न हूँ। ५० हे भीम, आज तुम्हारे कारण भयङ्कर शाप से मेरा छुटकारा हो गया। महात्मा अगस्त्य ने किसी अपराध पर कुपित होकर मुझे शाप दिया था। उसके कारण मुझको अनेक कष्ट भोगने पड़े हैं। हे पाण्डव, इसमें तुम्हारा कुछ अपराध नहीं है।

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्, महात्मा अगस्त्य ने आपको किसलिए शाप दिया था? वह वृत्तान्त सुनने की मुझे बड़ी इच्छा है। आप अपने अनुचरों सहित उन महर्षि के क्रोधाग्नि

में पड़कर भस्म होने से बच गये, यही मुझे आश्चर्य जान पड़ता है। कुबेर ने कहा—महाराज, एक समय कुशावती नगरी में सब देवताओं ने मिलकर सलाह की थी। मैं भी निमन्त्रित होकर अनेक शस्त्र लिये भयङ्कर यक्षों के साथ वहीं जा रहा था। राह में मैंने देखा कि पक्षियों और फूले हुए वृक्षों से शोभित यमुनातट पर महर्षि अगस्त्य सूर्य के सामने, ऊपर को हाथ उठाये, खड़े खड़े कठोर तपस्या कर रहे हैं। जान पड़ता था, मानों कुण्ड में आग जल रही है। उसी समय मेरा मित्र मणिमान् मेरे साथ आकाशमार्ग होकर उधर से ही जा रहा था। उसने मूर्खता और अभिमान के वश होकर अगस्त्य महर्षि के सिर पर थूक दिया। तब उन्होंने अत्यन्त क्रोधित होकर मुझसे कहा—कुबेर, तुम्हारे सखा ने बिना अपराध के, तुम्हारे सामने, मेरा अपमान किया; इसलिए यह दुष्ट तुम्हारी इस सारी सेना के साथ मनुष्य के हाथों मारा जायगा। तुम्हें इस सेना के और अपने मित्र के मरने से अत्यन्त कष्ट होगा। अन्त में उस मारनेवाले मनुष्य को देखकर इस पाप और शाप से तुम्हारा छुटकारा हो जायगा। तुम्हारी सेना के सब यक्ष भी फिर जीकर पुत्र-पौत्र आदि के साथ चिरकाल तक तुम्हारी आज्ञा का पालन करेंगे। हे युधिष्ठिर, पूर्व समय में महर्षि अगस्त्य ने इस तरह यह शाप मुझको दिया था। इस समय तुम्हारे छोटे भाई भीमसेन ने मुझे उससे छुड़ा दिया। ६० ६३

एक सौ बासठ अध्याय

पाण्डवों को कुबेर का उपदेश देना

कुबेर ने कहा—हे युधिष्ठिर, संसार में निर्वाह करने के लिए धैर्य, चतुराई, देश, काल और पराक्रम, ये पाँच विधियाँ हैं। सत्ययुग में सब मनुष्य अपने-अपने कार्य में धैर्य, चातुरी और पराक्रम प्रकट करते थे। क्षत्रिय लोग धैर्यशाली, सब धर्मों की विधि के ज्ञाता, देश और काल के जाननेवाले होकर सदा से इस पृथ्वी का शासन करते आते हैं। महाराज, जो मनुष्य इस तरह सब काम करता है वह इस लोक में यश और परलोक में सद्गति पाता है। देश-काल के ज्ञाता इन्द्र ने वसुओं के साथ पराक्रम करके स्वर्ग का राज्य प्राप्त किया है। जो व्यक्ति क्रोध के वश में होकर अपने ऊपर आनेवाले अनिष्ट पर ध्यान नहीं देता वह पापमति केवल पापकार्यों में लगा रहता है। वह कार्य के विभागों से अनभिज्ञ, काल का ज्ञान न रखनेवाला, मन्दबुद्धि, वृथा कार्यारम्भ करनेवाला होकर इस लोक और परलोक में क्लेश ही भोगा करता है। जो लोग साहस करते हैं, छल करते हैं, दुष्ट हैं और [दुष्टता के लिए] सब सामर्थ्य की इच्छा रखते हैं वे मनुष्य पाप के ही भागी होते हैं। महाराज! तुम्हें इन गर्वित, क्रोधी, निर्भय और धर्म का ज्ञान न रखनेवाले भीमसेन को समझाकर दबाव में रखना चाहिए। अब तुम

१० शोक और डर छोड़कर आर्ष्टिषेण के आश्रम को लौट जाओ। यह कृष्णपक्ष वहीं बिताओ। मैं ब्राह्मणों की और तुम्हारी रक्षा के लिए अलकापुरी में रहनेवाले गन्धर्वों, किन्नरों और पर्वत-निवासी राक्षसों को तैनात कर दूँगा। भीमसेन एकाएक उलझ पड़ते हैं। इन्हें तुम ऐसे साहस के काम करने से रोको। अब से सब वन के रहनेवाले प्राणी सदा तुमसे मिलते और तुम्हारी रक्षा करते रहेंगे। हे पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवो, मेरे अनुचर भी सदा तुमको स्वादिष्ठ आहार और जल आदि पहुँचाया करेंगे। हे युधिष्ठिर! जैसे इन्द्र के अर्जुन, पवन के भीम, धर्म के तुम और अश्विनीकुमारों के नकुल तथा सहदेव रक्षा के योग्य हैं, वैसे ही तुम सब पुत्र की तरह मेरे भी रक्षणीय हो। अर्थ-तत्व-चतुर अर्जुन देवलोक में कुशल से हैं। स्वर्ग के सब वैभव जन्म से ही सर्व-लोक-पूजनीय, भीमसेन के छोटे भाई, अर्जुन को प्राप्त हैं। हे कुरुवंशभूषण, दम, दान, २० बल, बुद्धि, लोकलज्जा, धैर्य, तेज आदि सब श्रेष्ठ गुण महाभाग परम तेजस्वी अर्जुन में हैं। अर्जुन मोहवश होकर कभी निन्दित कर्म नहीं करते। उन्होंने कभी किसी से झूठ नहीं बोला। हे कुरु-कुलवर्द्धन! अर्जुन इस समय देवता, पितर, गन्धर्व आदि से आदर पाकर स्वर्ग में अस्त्र-विद्या सीख रहे हैं। धर्म के अनुसार सब राजाओं को जीतकर दिग्विजय करनेवाले तुम्हारे देवलोकवासी महातेजस्वी प्रपितामह महाराज शान्तनु कुलदीपक अर्जुन पर प्रसन्न हैं। जिन महातपस्वी शान्तनु ने पितरों, देवताओं, ऋषियों और ब्राह्मणों की पूजा करके यमुना-तट पर सात अश्वमेध यज्ञ किये थे, वे स्वर्ग-विजयी महाराज इन्द्रलोक में अर्जुन से तुम्हारे कुशल-समाचार पूछा करते हैं।

वैशम्पायन कहते हैं—कुबेर के ये वचन सुनकर पाण्डव बहुत ही प्रसन्न हुए। शक्ति, गदा, खड्ग आदि शस्त्र हाथ में लिये भीमसेन ने धनुष की डोरी उतार-कर कुबेर को प्रणाम किया। भीमसेन को शरणागत देखकर कुबेर ने कहा—हे भीम, तुम शत्रुओं के अभिमान को चूर्ण करते हुए मित्रों की समृद्धि बढ़ाओ। तुम ३० लोग जब अपने घर जाकर रहोगे तब यक्ष तुम्हारी सब इच्छाएँ पूरी करते रहेंगे। अर्जुन अस्त्र-शिक्षा में पारदर्शी होकर, इन्द्र से विदा होकर, जल्दी लौट आवेंगे।

यक्षराज कुबेर पाण्डवों को यों उपदेश देकर अपने घर की ओर लौट पड़े। विचित्र कम्बलों से शोभित, अनेक रत्नों से भूषित, सवारियों पर चढ़कर हज़ारों यक्ष और राक्षस उनके पीछे चले। आकाशमार्ग में पक्षी जैसे कोलाहल करते हैं वैसे ही घोड़ों की हिनहिनाहट से कुबेर-भवन का मार्ग व्याप्त हो गया। मानों वायु भक्षण करते और मेघजाल को खींचते से कुबेर के घोड़े आकाश-मार्ग में फुर्ती से चले जा रहे थे। कुबेर की आज्ञा से यक्षों ने उस पर्वत के शिखर पर से मरे हुए यक्षों की लाशें हटाकर उस स्थान को साफ़ कर दिया। महाराज, महर्षि अगस्त्य ने यक्षों और राक्षसों को यही शाप दिया था। भीमसेन के हाथों मरकर वे भी शाप से छुटकारा पा गये। यक्ष-राक्षस आदि से यों आदर-सत्कार पाकर पाण्डव कई रातों तक वहीं पर रहे। ३८

एक सौ तिरसठ अध्याय

सुमेरु पर्वत के दर्शन करना

वैशम्पायन कहते हैं—हे शत्रुदमन, अब सूर्योदय होने पर महर्षि धौम्य नित्यकर्म करके महर्षि आर्ष्टिषेण के साथ पाण्डवों के पास आये। पाण्डवों ने भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर उनके चरणों में प्रणाम और अन्य ब्राह्मणों का पूजन किया। फिर महर्षि धौम्य ने धर्मराज युधिष्ठिर का दाहना हाथ पकड़कर पूर्व की ओर देखकर कहा—हे धर्मराज, यह जो तुम परम रमणीय पर्वतराज मन्दराचल देख रहे हो वह समुद्र तक पृथ्वी पर फैला हुआ है। हे पाण्डव, इन्द्र और कुबेरजी पर्वतमालाशोभित, वनपूर्ण इस दिशा की रक्षा करते हैं। सब धर्मों के ज्ञाता विचार-शील मुनि लोग इस पर्वत को महेन्द्र और कुबेर का निवास-स्थान कहते हैं। ब्राह्मण, सिद्ध, साध्यगण, देवगण इसी दिशा में उगते हुए सूर्य की उपासना करते हैं।

सब जीवों के प्रभु धर्मराज यम इस दक्षिण दिशा के स्वामी हैं। इस दिशा में मरे हुए लोग (पितर) रहते हैं। वह देखो, प्रेतराज की परम समृद्धिशालिनी अत्यन्त अद्भुत संयमनीपुरी देख पड़ती है। सब भुवनों को प्रकाशित करनेवाले भगवान् सूर्य नियमित रूप से उदित होकर पृथ्वी की परिक्रमा करते हुए, सत्य नियम के अनुगामी होकर, जिस पर्वत पर विश्राम करते हैं वह यही अस्ताचल है। राजा वरुण इस पर्वत पर और महासागर में रहकर सब प्राणियों १० की रक्षा करते हैं। हे महाभाग, वह ब्रह्मज्ञानियों का परम गति-स्वरूप, परम मंगलदायक, महा-मेरु उत्तर दिशा में चमक रहा है। यहाँ जगत् की सृष्टि करनेवाले प्रजापति ब्रह्माजी रहते हैं। दक्ष आदि उनके मानस पुत्र भी यहीं पर बे-खटके रहते हैं। वशिष्ठ आदि सप्तर्षि यहीं पर उदित होकर फिर अस्त होते हैं। वह रजोगुण से रहित रमणीय सुमेरु का शिखर देखो। इसी स्थान पर पूर्णकाम देवताओं के साथ पितामह ब्रह्माजी रहते हैं। पञ्चभूतमयी प्रकृति के कारण-स्वरूप,

अनादि, अनन्त, सब प्राणियों के ईश्वर नारायण का निवासस्थान इस सुमेरु के पूर्व भाग में ब्रह्मलोक से भी श्रेष्ठ है। यह परम तेजस्वी सूर्य और अग्नि से भी बढ़कर दीप्तिशाली है। इसकी प्रभा को देवता और दानव भी अच्छी तरह नहीं देख सकते। यहाँ पर भूतभावन ब्रह्मा सब जगत् को
२० प्रकाशित करते हुए विराजमान हैं। हे कुरुश्रेष्ठ, यहाँ जाने का अधिकार ब्रह्मर्षियों को भी नहीं है; फिर महर्षि लोग किस तरह जा सकते हैं? हे पाण्डव, इस स्थान में किसी प्रकार के तेजस्वी पदार्थ का प्रकाश नहीं है। वही सबसे श्रेष्ठ भगवान् ज्योतिर्मय रूप से प्रकाशमान हैं। जो तपस्वी यति, अचल भक्ति के साथ, नारायण के दर्शन को जाते हैं उन्हें फिर मनुष्यलोक में नहीं आना पड़ता। यह ईश्वर का सनातन अक्षय स्थान है। तुम इसे प्रणाम करो। हे कुरुनन्दन, सूर्य और चन्द्रमा नित्य इस सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करते हैं और सब ज्योतिष्क-मण्डल भगवान् भास्कर के आकर्षण से सुमेरु के चारों ओर फिरता रहता है। सब प्राणियों के
३० हितैषी भगवान् सूर्य अस्त होकर सन्ध्या के बाद उत्तर दिशा को जाते हैं। फिर उसकी शेष सीमा तक जाकर पूर्व दिशा को जाते हैं। सूर्यनारायण इस प्रकार सुमेरु की प्रदक्षिणा करके पर्वसन्धि और काल के विभाग से बारह महीनों का विभाग करते हैं। वे सारे जगत् में प्रकाश फैलाकर फिर मन्दर पर्वत को जाते हैं। सब प्राणियों के जीवनरूप चन्द्रमा भी नक्षत्र-मण्डली के साथ सुमेरु की प्रदक्षिणा करते हैं। अन्धकार को मिटानेवाले भगवान् सूर्यदेव जगत् भर में अपनी किरणें फैलाते हुए इसी बाधाहीन मार्ग में सदा घूमते रहते हैं। फिर जब सब चीज़ों को शीतल (तापहीन) करना चाहते हैं तब बर्फ़ पैदा करने के लिए दक्षिणायन में चले जाते हैं; तभी जाड़े की ऋतु होती है।

फिर सूर्यनारायण दक्षिण दिशा से लौटकर अपने तेज के प्रभाव से सब चराचर वस्तुओं के तेज को खींच लेते हैं। उस समय गर्मी होती है। तब सब जीव बहुत ही मुरझा जाते हैं, शरीर से पसीना बह चलता है, आलस और नींद सताती है। प्राणी सदा नींद के वश रहते हैं। भगवान् सूर्य इस प्रकार अन्तरिक्ष में घूमकर संसार की सुख-समृद्धि को बढ़ाते हुए फिर वर्षा ऋतु को प्रकट करते हैं। भगवान् सूर्य अमृततुल्य जल बरसाते, मन्द-मन्द हवा चलाते और सुखदायक धूप फैलाते हुए हरएक ऋतु में चराचर जगत् को पालते हैं—उसकी बढ़ती करते हैं।
४० उनकी गति कभी नहीं रुकती। जड़ पदार्थ की तरह वे कभी एक जगह पर स्थिर नहीं रहते। वे सबके तेजवाले अंश को लेकर फिर उसे फेर देते हैं। वे सबकी आयु का निर्देश और कार्यों के समय का विभाग करते हैं। दिन, रात, कला, काष्ठा आदि समय के अंगों का ज्ञान भी
४२ उनकी गति से ही होता है।

एक सौ चौंसठ अध्याय

अर्जुन के लिए पाण्डवों का चिन्ता करना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! सत्यव्रतपरायण महात्मा पाण्डव लोग, अर्जुन से मिलने की इच्छा से, प्रसन्नतापूर्वक उस पर्वत पर बाट जोहने लगे। बहुत से गन्धर्व और महर्षि बड़ी प्रसन्नता से उन वीर्यशाली धीर महात्मा पाण्डवों के पास आते और उनसे मिलते थे। जैसे स्वर्ग को पाकर मरुद्गण प्रसन्न होते हैं वैसे ही फूले हुए वृक्षों से शोभित उस पर्वतराज के ऊपर पहुँचकर महारथी पाण्डवों को आनन्द हुआ। वे उस पर्वतराज की ऊँची चोटी पर चढ़कर मोर, हंस आदि के मनोहर शब्द सुनते और तरह-तरह के रङ्गीन फूलों-फलों से पूर्ण शिखरों को देखते और बड़ा ही आनन्द पाते थे। उन्होंने वहाँ पर स्वयं कुबेर के बनवाये अनेक सुन्दर सरोवर देखे। उनमें हंस-कारण्डव-चक्रवाक आदि जलचर पक्षी थे और अनेक प्रकार के कमल खिले हुए थे। वहाँ के क्रीड़ा-कुञ्ज विविध पुष्पमालाओं और अनेक रत्नों से शोभायमान थे। वे ऐसे सुन्दर थे मानों कुबेर के हों। सुगन्ध और कुसुमों से शोभित, अनेक प्रकार के वृक्षों से पूर्ण, उस शिखर पर मुनि लोग स्वच्छन्द होकर विचरते रहते हैं। उस शिखर पर बादल छाये रहते हैं।

हे पुरुषश्रेष्ठ, एक तो वह पहाड़ ही बहुत चमकीला है और फिर उस पर की दिव्य ओषधियाँ जगमगाती रहती हैं। इस कारण वहाँ पता ही नहीं चलता कि दिन है या रात। जिनके तेज की सहायता से रात को अग्निदेव सारे जगत् को प्रकाशित करते रहते हैं उन्हीं जगत् के अधिष्ठाता सूर्य का उदय और अस्त वहाँ से पाण्डव लोग नित्य देखा करते थे। सूर्य की किरणों से सब जगत् को प्रकाशित होते देखकर वे लोग भी सूर्य की आराधना, स्वाध्यायपाठ आदि करते थे। पवित्र और ब्रह्मचारी रहकर वे लोग वहाँ सत्यवादी अर्जुन के आने की बाट   १० जोह रहे थे। "हम सब शीघ्र ही अस्त्र-विद्या सीखकर लौटे हुए अर्जुन को देखकर आनन्द प्राप्त करें", इस प्रकार की बातचीत करते हुए युधिष्ठिर आदि पाण्डव वहाँ रहकर तपस्या और योगाभ्यास करने लगे। उस पर्वत के विचित्र वनों [और अद्भुत दृश्यों] को देखने पर भी सदा अर्जुन की चिन्ता बनी रहने के कारण एक दिन और एक रात एक वर्ष से भी बढ़कर बीतती थी। जब महात्मा धौम्य की अनुमति से जटा धारण करके अर्जुन अस्त्र प्राप्त करने के लिए गये थे तभी पाण्डवों का मन उदास हो गया था। उन सबका चित्त अर्जुन में ही लगा रहता था। इस कारण उस दिव्य स्थान में रहने पर भी उनको चैन न था। मतवाले गजराज की सी चालवाले अर्जुन जब से काम्यक वन से बड़े भाई की आज्ञा लेकर [इन्द्र-भवन को] गये तभी से उनके वियोग का शोक पाण्डवों को विह्वल बनाये हुए था। उन्होंने एक महीना, उस पर्वत पर रहकर, अर्जुन की चिन्ता में बड़े कष्ट से बिताया।

उधर अर्जुन ने भी इन्द्रलोक में पाँच वर्ष बिताकर, अग्नि, वरुण, चन्द्र, वायु, विष्णु, इन्द्र, परमेष्ठी ब्रह्मा, पशुपति, यम, धाता, सविता, त्वष्टा, कुवेर आदि देवताओं के सब दुर्धर्ष अस्त्र प्राप्त कर, अपने भाइयों से जाकर मिलने की इच्छा प्रकट की। इन्द्र की प्रदक्षिणा करके, उनसे अनुमति लेकर, प्रसन्नता के साथ अर्जुन वहाँ से चल दिये और शीघ्र ही गन्धमादन पर्वत २० पर आ पहुँचे।

निवातकवच-युद्धपर्व

एक सौ पैंसठ अध्याय

अर्जुन का स्वर्गलोक से लौटकर आना

वैशम्पायन कहते हैं—पाण्डव लोग इस तरह अर्जुन के लिए चिन्ता कर ही रहे थे कि बिजली के समान प्रभापूर्ण, मातलि के हाथों हाँका जाता हुआ इन्द्र का रथ, मेघों के बीच जाती हुई बड़ी उल्का की तरह, जलती हुई आग की लौ की तरह, आकाश को प्रकाशित करता वहाँ पर आ गया। किरीट, माला और अनेक नये गहने पहने हुए, इन्द्र के समान प्रभावशाली, वीर अर्जुन उस रथ पर बैठे हुए वहाँ आ पहुँचे। उस पर्वत पर अर्जुन को उपस्थित देखकर पाण्डवों को बड़ा आनन्द हुआ। अर्जुन ने रथ से उतरकर पहले धौम्य के, फिर युधिष्ठिर और भीमसेन के, पैर छुए। नकुल और सहदेव ने उनके पैर छुए। फिर अर्जुन द्रौपदी से मिलकर, दिलासा देकर, नम्र भाव से युधिष्ठिर के पास खड़े हो गये। अतुल बलवान् अर्जुन से मिलकर सब लोगों को ऐसा आनन्द हुआ जिसका
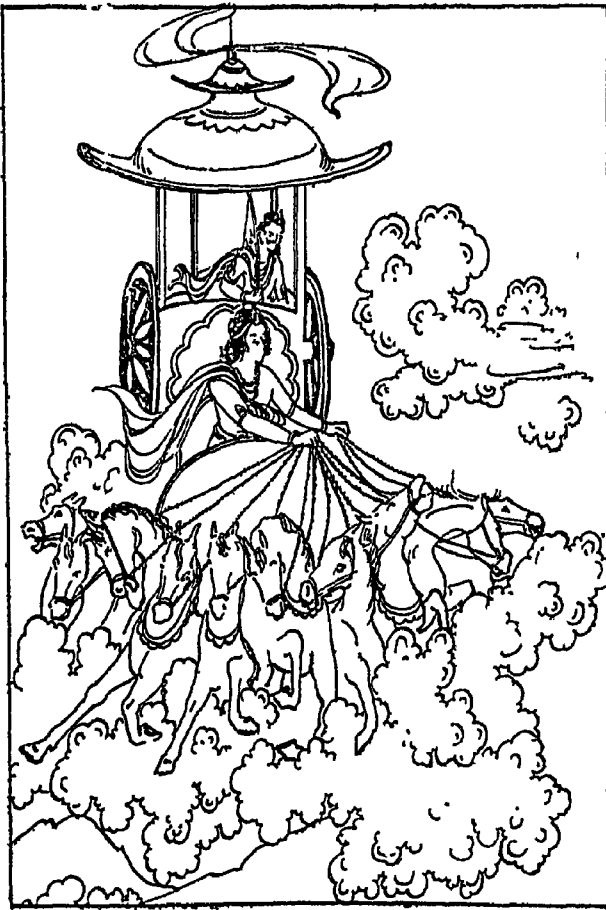
वर्णन नहीं हो सकता। सबसे मिलकर और राजा युधिष्ठिर के दर्शन करके अर्जुन को भी अपार आनन्द हुआ। नमुचि दैत्य को मारनेवाले इन्द्र ने जिस पर चढ़कर दैत्यों के सात दलों को

नष्ट किया था उस रथ के समीप जाकर पाण्डवों ने उसकी प्रदक्षिणा की। फिर बड़ी प्रसन्नता से इन्द्र के सारथी मातलि का यथोचित सत्कार किया और देवताओं के सम्बन्ध में मातलि से अनेक प्रकार के कुशल-प्रश्न पूछे। पिता जैसे पुत्र को उपदेश करता है वैसे ही मातलि ने पाण्डवों को अच्छी बातों का उपदेश किया। फिर पाण्डवों का अभिनन्दन करके, परम प्रभापूर्ण दिव्य रथ पर चढ़कर, मातलि सारथी इन्द्र के पास लौट गया।

मातलि के चले जाने पर, इन्द्र के शत्रुओं के काल, नरश्रेष्ठ अर्जुन ने प्रियतमा द्रौपदी को इन्द्र के दिये हुए सूर्य के समान चमकीले महामूल्य रत्न-आभूषण दिये। फिर जिस तरह साक्षात् महादेव, इन्द्र और वायु से उन्हें अस्त्र मिले, जिस तरह स्वर्ग में जाकर सदाचारी रहकर एकाग्रता के साथ उन्होंने इन्द्र आदि देवताओं को सन्तुष्ट किया, सो सब वृत्तान्त सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी ब्राह्मणों और पाण्डवों के आगे बैठकर, संक्षेप में उन्होंने कह सुनाया। फिर नकुल और सहदेव के साथ एक जगह रहकर उन्होंने वह रात बिताई। १०, १४

एक सौ छाछठ अध्याय

इन्द्र से युधिष्ठिर आदि की भेंट का वृत्तान्त

वैशम्पायन कहते हैं—प्रातःकाल होने पर अर्जुन ने भाइयों के साथ उठकर युधिष्ठिर के चरणों में प्रणाम किया। इसी समय अन्तरिक्ष में देवताओं का बड़ा कोलाहल सुन पड़ने लगा। इसके बाद अनेक प्रकार के वाहनों के शब्द, रथों के पहियों की घरघराहट और अनेक प्रकार के बाजों के शब्द अलग-अलग सुन पड़ने लगे। सूर्य-सदृश विमानों पर विराजमान गन्धर्वों और अप्सराओं के झुण्ड इन्द्र के पीछे-पीछे आ रहे थे। उसी सुवर्णरत्न-मण्डित प्रभाशाली रथ पर

चढ़े हुए इन्द्रदेव पाण्डवों के पास आकर उतर पड़े। उन्हें देखते ही भाइयों-सहित युधिष्ठिर ने आगे बढ़कर उनकी अगवानी की। फिर विधि से उनकी पूजा की। महातेजस्वी अर्जुन भी प्रणाम करके, बहुत ही नम्र अनुचर की तरह, उनके पास खड़े हो गये। तपस्वी पापहीन अर्जुन को देखकर युधिष्ठिर पहले से ही अत्यन्त आनन्दित हो रहे थे। इस समय उन्हें इन्द्र के आगे
१० विनीत भाव से खड़े देखकर वे और भी अधिक प्रसन्न हुए।

इन्द्र ने कहा—हे धर्मराज, तुम निःसन्देह इस सारी पृथ्वी का राज्य करोगे। इस समय निर्विघ्न भाव से उसी काम्यक वन में जाओ। अर्जुन ने मुझसे सब दिव्य अस्त्र सीख लिये हैं। इन्होंने मेरा प्रिय कार्य करके मुझे बहुत प्रसन्न किया है। इस कारण मैं वर देता हूँ कि त्रिलोक में कोई भी इनको न जीत सकेगा। युधिष्ठिर से यों कहकर, मुनियों के मुँह से अपनी स्तुति सुनते हुए, इन्द्र स्वर्ग को चले गये। महाराज, जो कोई पुरुष एक वर्ष तक ब्रह्मचारी, नियमधारी, व्रतकारी होकर एकाग्र भाव से पाण्डवों के साथ इन्द्र की इस भेंट का वृत्तान्त पढ़ेगा उसे कभी
१७ विघ्नों का सामना न करना पड़ेगा। वह बड़े सुख के साथ सौ वर्ष की आयु बितावेगा।

एक सौ सड़सठ अध्याय

अर्जुन का अपने पाशुपत अस्त्र पाने का वृत्तान्त कहना

वैशम्पायन कहते हैं—इन्द्र जब अपने लोक को चले गये तब अर्जुन ने युधिष्ठिर और अन्य भाइयों को तथा द्रौपदी को सन्तुष्ट किया। एक बार अर्जुन ने आकर युधिष्ठिर को भक्ति के साथ प्रणाम किया। युधिष्ठिर ने स्नेह से उनका माथा सूँघा। फिर हर्ष-गद्गद स्वर से वे कहने लगे—हे अर्जुन, तुमने किस तरह इतना समय स्वर्ग में बिताया? किस तरह ये सब दिव्य अस्त्र प्राप्त किये और किस तरह इन्द्र को सन्तुष्ट किया? तुमने क्या सोलहों आने सब अस्त्र सीख लिये हैं? इन्द्र और रुद्र ने क्या प्रसन्न होकर ये अस्त्र तुमको दिये हैं? इन्द्र और शङ्कर ने किस प्रकार तुमको दर्शन दिये? किस प्रकार तुमने उनसे अस्त्र पाये? किस तरह तुमने आराधना करके उन्हें सन्तुष्ट किया, यह सब वृत्तान्त हमसे कहो। तुमने इन्द्र का कौनसा काम कर दिया है जिसके लिए वे तुमको यहाँ प्रियकारी कह गये हैं?

अर्जुन ने प्रसन्नतापूर्वक कहा—हे शत्रुदमन, जिस उपाय से मैंने इन्द्र और रुद्र के दर्शन पाये हैं, सो कहता हूँ, सुनिए। मैं आपसे वह विद्या पाकर आपकी आज्ञा से तप करने को चल
१० दिया था। मैं भृगुतुङ्ग पर्वत पर जाकर तप करने लगा। वहाँ एक रात रहने पर राह में एक ब्राह्मण से भेंट हुई। उन्होंने पूछा—हे पार्थ, तुम कहाँ जाओगे? मैंने सब वृत्तान्त उनसे कह दिया। उन्होंने आदरपूर्वक प्रसन्नता प्रकट करते हुए मुझसे कहा—हे अर्जुन, तुम तप करो।

शीघ्र ही इन्द्र से तुम्हारी भेंट होगी। उनके कहने से मैं हिमालय पर जाकर तप करने लगा। एक महीने तो फल-मूल खाये, दूसरे महीने केवल जल पीकर रहा, तीसरे महीने निराहार ही रहा और चौथे महीने हाथ को ऊपर उठाकर रहने लगा। इस तरह मैंने घोर तप किया। आश्चर्य है कि इतने पर भी मेरे प्राण नहीं निकले।

इसके बाद पाँचवाँ महीना लगने पर पहले ही दिन एक बड़ा भारी वराह अपने थूथन और पैरों से पृथ्वी को खोदता और चक्कर खाता घुरघुराता मेरे पास आया। उसके पीछे ही किरातरूपी और एक महापुरुष धनुष, बाण, खड्ग आदि शस्त्र लिये चले आ रहे थे। उनके साथ स्त्रियाँ भी थीं। मैंने अपने अक्षय तरकसों से बाण निकालकर धनुष पर चढ़ाकर उस २० वराह पर चलाये। किरातरूपी उक्त महापुरुष ने भी मेरे साथ ही धनुष पर बाण चढ़ाकर उसको ऐसे ज़ोर से मारा कि मेरा दिल दहल सा गया। फिर उन महापुरुष ने मुझसे कहा—तुमने शिकार के धर्म को छोड़कर मेरे पहले से ही तके हुए इस शिकार पर बाण क्यों चलाया? ठहर जाओ, मैं पैने बाणों से अभी तुम्हारे घमंड को चूर कर दूँगा। अब वे महाकाय पुरुष मेरी ओर झपटे। उन्होंने अपने बाणों की वर्षा से वैसे ही मुझे ढक दिया जैसे पर्वत को बरसात की बूँदें छा लेती हैं। मैंने भी उसी तरह उन्हें बाणों से छिपा दिया। पर्वत पर वज्र-पात की तरह मेरे अभिमन्त्रित तथा प्रज्वलित बाण उनके शरीर पर गिरने लगे। देखते ही देखते उन्होंने सैकड़ों-हज़ारों रूप धारण कर लिये। मैंने उनके सभी रूपों को अपने बाणों से घायल किया। तब फिर सब रूप लुप्त हो गये, एक ही रूप रह गया। वे कभी बहुत ही सूक्ष्म, कभी स्थूल, कभी बड़ा और कभी छोटा, कभी एक और कभी अनेक, रूप रखकर मेरे साथ युद्ध करने लगे। महाराज, मैं जब बारंबार बाण मारकर भी उन्हें परास्त नहीं कर सका, तब मैंने धनुष पर अभिमन्त्रित करके वायव्य अस्त्र चढ़ाया; पर वह भी उनका कुछ नहीं कर ३० सका। यह देखकर मुझे बड़ा अचरज हुआ। फिर मैंने स्थूणाकर्ण, वारुण, शालभ आदि भीषण बाणों की वर्षा और शिला-वर्षा से उन्हें पाट दिया परन्तु उनका कुछ नहीं हुआ। सब अस्त्र उनके ऊपर निष्फल हो गये। तब मैंने ब्रह्मास्त्र चलाया। उससे अनन्त अग्नि-तुल्य अनेक बाण निकलकर चारों ओर फैल गये। वे (किरात) अस्त्र के तेज से और भी बढ़ गये। मेरे अस्त्र के तेज से उस समय सारा संसार तप गया, आकाश और सब दिशाएँ जलने लगीं। उन महातेजस्वी पुरुष ने उस समय मेरे अमोघ ब्रह्मास्त्र को भी तुरन्त काट गिराया। ब्रह्मास्त्र के भी नष्ट होने पर मैं बहुत ही डर गया। तब अपने अक्षय तरकस और धनुष लेकर मैंने उन पर प्रहार किया। उन सबको भी उन्होंने बेकाम कर दिया। इस प्रकार सब अस्त्र-शस्त्र उनके पास चले जाने पर मैं उनसे भिड़कर कुश्ती लड़ने लगा। फिर हम दोनों घूँसों और थप्पड़ों से लड़ने लगे। जब मैं किसी तरह उन्हें परास्त नहीं कर सका, तब बेदम होकर

४० पृथ्वी पर बैठ गया। अब हँसते हुए किरात-रूप-धारी महेश्वर मुझे अचम्भे में डालकर स्त्रियों के साथ उसी जगह अन्तर्द्धान हो गये। उसी क्षण वे महापुरुष किरात का वेष छोड़कर मेरे सामने आ गये। मैंने देखा, विचित्र कपड़े पहने भगवान् शंकर भगवती के साथ सामने खड़े हैं। उनके अंगों में आभूषणों की जगह पर सांप शोभायमान हैं। मैं उस समय भी युद्ध करने के लिए सामने खड़ा था। शंकर ने पास आकर मुझे मेरे तरकस, धनुष और सब अस्त्र-शस्त्र दे दिये। फिर उन्होंने कहा—हे अर्जुन, मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। कहो, मैं तुम्हारा क्या प्रिय करूँ? अमर होने के सिवा और जो कुछ तुम्हें माँगना हो, माँग लो। मैं वही तुमको दूँगा। अपनी इच्छा पूरी होने का अवसर देखकर मैंने हाथ जोड़े और कहा—भगवन्, मुझे देवताओं के सब दिव्य अस्त्र प्राप्त करने की बड़ी इच्छा है। इसलिए जो आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे यही वर दीजिए।

शंकर ने कहा—मैंने तुमको
५० देवताओं के सब दिव्य अस्त्र दिये। मेरा रौद्र पाशुपत अस्त्र भी सदा तुम्हारे पास रहेगा। अब उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक अपना वह पाशुपत अस्त्र मुझको दिया। फिर उन्होंने कहा—वत्स, यह अस्त्र मनुष्य के ऊपर कभी न चलाना; क्योंकि किसी शक्तिहीन पर चलाने से यह सारे संसार को भस्म कर देगा। यदि कोई अमानुष व्यक्ति सतावे अथवा किसी शत्रु ने कोई अस्त्र छोड़ा हो तो उसे नष्ट करने के लिए ही इसको काम में लाना।

देवाधिदेव महादेव के यों कहने पर सब अस्त्रों को रोकनेवाले, शत्रुओं को चौपट करने-वाले, शत्रुओं की सेना को काटनेवाले और जिनके तेज को देवता, दानव, राक्षस आदि कोई भी नहीं सह सकते, वे अप्रतिहत दिव्य अस्त्र सदेह आकर मेरे पास खड़े हो गये। महादेव की
५७ आज्ञा से मैं वहीं रहा। महादेवजी मेरे सामने ही अन्तर्द्धान हो गये।

एक सौ अड़सठ अध्याय

लोकपालों के आने, स्वर्ग जाने, इन्द्र से बातचीत होने और निवातकवच दानवों को मारने के उद्योग का वर्णन

अर्जुन कहते हैं—इस प्रकार महादेवजी की प्रसन्नता पाकर मैं बहुत आनन्दित हुआ और वह रात वहीं बिताई। दूसरे दिन सवेरे प्रातःकृत्य आदि करके मैं बैठा था, कि उन्हीं पूर्व परिचित ब्राह्मण के दर्शन हुए। मैंने उनको महादेव से भेंट होने का हाल कह सुनाया। उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—अर्जुन, तुम्हारे समान इस तरह आज तक किसी मनुष्य ने महादेवजी के दर्शन नहीं पाये। तुम्हें यमराज आदि सब लोकपालों के साथ इन्द्र के भी दर्शन शीघ्र ही मिलेंगे। उनसे तुम्हें सब अस्त्र प्राप्त होंगे। इतना कहकर बारंबार मुझे गले से लगाकर वे तेजस्वी ब्राह्मण देवता वहाँ से चले गये।

उसी दिन, तीसरे पहर, सब लोगों में नई स्फूर्ति लानेवाली हवा हिमालय के आसपास चलने लगी। दिव्य सुगन्ध चारों ओर फैल गई और साथ ही आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी। चारों ओर इन्द्र की स्तुति और बाजों का शब्द सुन पड़ने लगा। इन्द्र के आगे गन्धर्व गा रहे थे और अप्सराएँ नाच रही थीं। इन्द्र के सेवक, अन्यान्य साथी, सभी दिव्य विमानों पर चढ़कर आने लगे। इन सबके साथ इन्द्र भी, इन्द्राणी को लिये, देवताओं के साथ वहाँ पर आये। उनके रथ में हरे रङ्ग के घोड़े जुते हुए थे। १०

इसी बीच में दिव्य श्री-युक्त नरवाहन कुबेर, यम और वरुण भी वहीं आ गये। वे अपनी-अपनी दिशा में यथास्थान स्थित थे। उन सबने मुझे सान्त्वना देकर कहा—हे अर्जुन, देखो, हम लोकपाल हैं। भगवान् शंकर ने, देव-कार्य सिद्ध करने के लिए, तुमको दर्शन दिये हैं। हम लोगों से भी ये सब दिव्य अस्त्र लो। राजन्, तब मैंने पवित्र होकर, सबको प्रणाम कर, विधिपूर्वक वे अस्त्र ग्रहण किये। फिर सब देवता अपने-अपने स्थान को चले गये। देवराज इन्द्र दर्शनीय रथ पर बैठे हुए थे। उन्होंने मुझसे कहा—हे अर्जुन, तुमको स्वर्ग चलना होगा। यहाँ तुम्हारे आने के पहले से मैं तुम्हें जानता हूँ; भेंट तो पीछे हुई है। हे भरत-श्रेष्ठ, तुम पूर्वजन्मों में अनेक बार तीर्थस्नान कर चुके हो और अब भी तुमने यह कठिन तप किया है। इसी से तुम स्वर्ग जाओगे। तुम्हें फिर तप करना होगा। तुम निस्सन्देह स्वर्ग जाओगे। मेरी आज्ञा से मातलि सारथी तुम्हें स्वर्ग ले जायगा। देवता, महात्मा और मुनियों में तुम प्रसिद्ध हो। २०

मैंने कहा—भगवन्, मैं अस्त्र सीखने के लिए आपको आचार्य मानता हूँ। आप प्रसन्नता से यह प्रार्थना स्वीकार कीजिए। इन्द्र ने कहा—हे पार्थ, तुम अस्त्र सीख लेने पर क्रूरकर्मा हो जाओगे। जिस काम के लिए तुम अस्त्र सीखना चाहते हो वह तुम्हारा मतलब अच्छी तरह पूरा

होगा। मैंने कहा—भगवन्, मैं शत्रु के अस्त्रों को नष्ट करने के समय ही उन दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करूँगा; अन्य समय पर नहीं। मुझे दिव्य अस्त्र दीजिए। मैं उनके प्रभाव से सबको परास्त कर अपने अधिकार में कर लूँगा। इन्द्र ने कहा—अर्जुन, तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए ही मैं ऐसा कहता था। तुम मेरे ही पुत्र हो। इस कारण तुम्हारा मुझे अपना आचार्य बनाना ठीक ही है। हे अर्जुन, तुम मेरे लोक में जाओगे तब अग्नि, वायु, वसु, वरुण, मरुद्गण, साध्य-
३० गण, पितामह, गन्धर्व, नाग, राक्षस सब तुमको अपने-अपने दिव्य अस्त्र देंगे। वैष्णवास्त्र, नैर्ऋ-तास्त्र, और मेरे पास के सब दिव्य अस्त्र भी तुमको मिल जायँगे। यह कहकर इन्द्र वहीं पर अन्तर्द्धान हो गये।

सब लोकपाल भी चले गये। इसके बाद दिव्य घोड़ों से जुते, मायामय, पवित्र, इन्द्र के रथ को लिये मातलि सारथी वहाँ आया। उसने कहा—हे महातेजस्वी, इन्द्र तुमको देखना चाहते हैं, इसलिए कर्तव्य कार्य करके चलने के लिए जल्दी तैयार हो जाओ। अभी सदेह स्वर्ग को चलकर तुम पुण्यात्माओं के दर्शन करना। इन्द्र ने तुमको बुलाया है।

मातलि के यह कहने पर मैं हिमालय से बिदा होकर और उसकी प्रदक्षिणा करके उस दिव्य रथ पर सवार हुआ। अश्वविद्या के पूरे ज्ञाता मातलि ने मन और हवा के समान तेज़ घोड़ों को हाँक दिया। रथ चलने लगा। तब मातलि ने मेरे मुँह की ओर देखकर अचरज के साथ कहा—आज मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ; क्योंकि घोड़े जब इस रथ को लेकर भागने लगते हैं तब इन्द्र भी अपने आसन से कुछ डिग जाते हैं; परन्तु तुम इस रथ पर उस समय
४० भी दृढ़ आसन से बैठे रहे; तनिक भी हिले-डुले नहीं। मुझे तुम सब बातों में इन्द्र से भी बढ़कर जान पड़ते हो।

अब मातलि आकाश-मार्ग में पहुँचकर मुझे देवताओं के भवन और विमान दिखाने लगा। वह रथ ऊपर उठता जाता था और [राह के लोकों में मिलनेवाले] देवता और ऋषिगण पूजा कर रहे थे। फिर मैंने देवर्षियों के लोक देखे। गन्धर्वों और अप्सराओं का प्रभाव भी मैंने देखा। इन्द्र के सारथी मातलि ने देवताओं के नन्दन आदि वन और उपवन भी मुझे दिखाये।

फिर इन्द्र की अमरावती पुरी मुझे देख पड़ी। सब ऋतुओं में फूलने-फलनेवाले वृक्ष और रत्न उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। वहाँ न तो जाड़ा है, न गर्मी और न सूर्य का उत्ताप। वहाँ बुढ़ापे का नाम भी नहीं। शोक, दुःख, दीनता, दुर्बलता, सुस्ती, क्रोध, लोभ अथवा रजोगुण के और विकार या पीड़ाएँ भी वहाँ नहीं हैं। देवलोक के रहनेवाले प्राणी सदा सन्तुष्ट रहते हैं। वहाँ के वृक्ष नित्य फूले-फले रहते हैं। उनमें सदा हरे-हरे पत्ते लगे रहते हैं। वहाँ के सरोवरों
५० में अनेक प्रकार के सुगन्धित कमल लगे हुए हैं। वहाँ शुभ शीतल सुगन्धित हवा चला करती है।
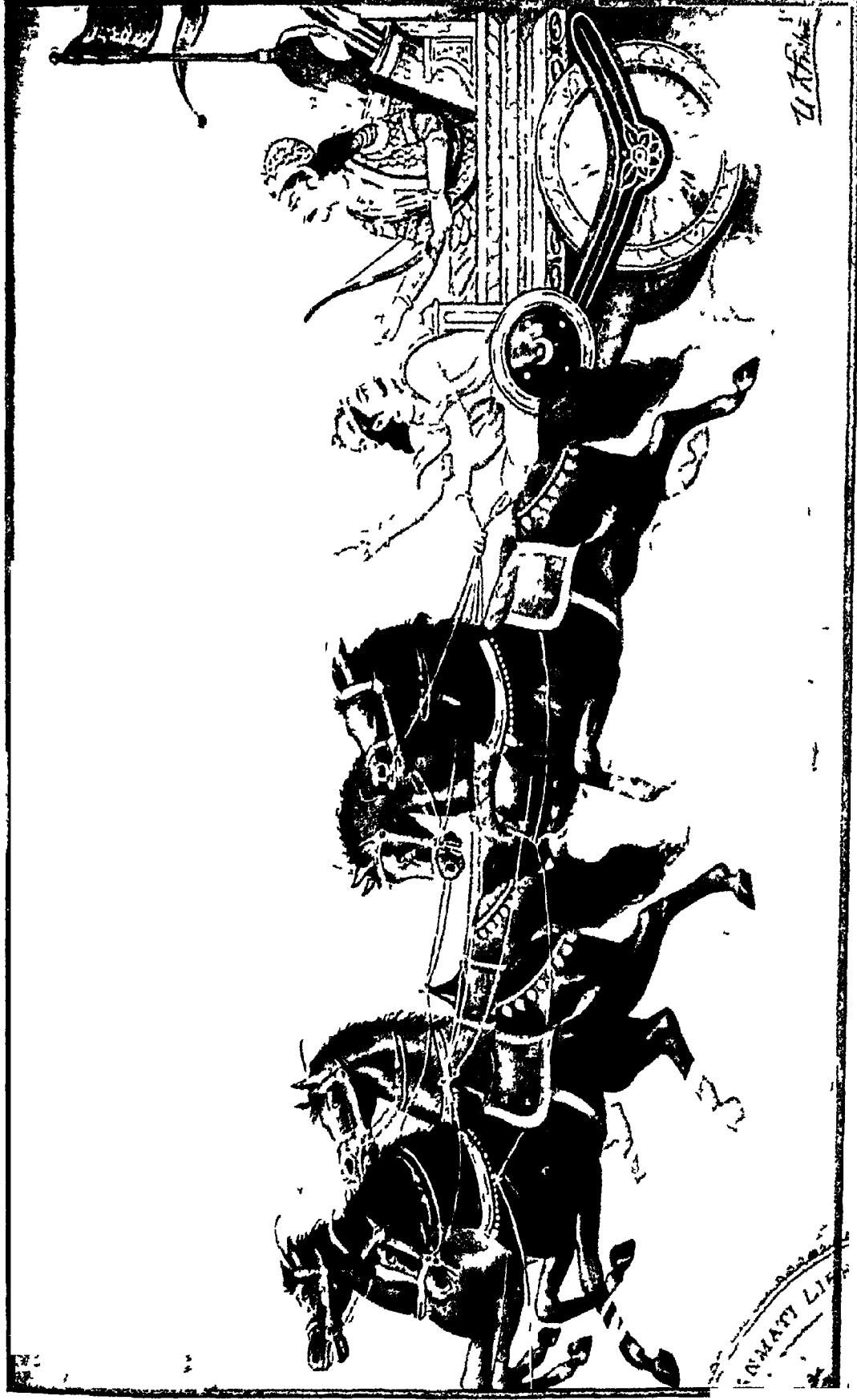
अब मातलि मुझे देवताओं के भवन दिखाने लगा।—पृ० १०३६

वहाँ की भूमि रत्नमयी और विचित्र है। उस पर फूल बिखरे पड़े रहते हैं। मधुर स्वरवाले पक्षी और मृग इधर-उधर विचरते देख पड़ते हैं। आकाश में विमानों पर सैर करनेवाले बहुत से देवता देख पड़ते हैं। फिर मैंने वहाँ आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, मरुद्गण और अश्विनीकुमारों को देखकर उनका पूजन और सत्कार किया। उन्होंने यह कहकर मुझे आशीर्वाद दिया कि वीर्य, यश, तेज, अस्त्र और युद्ध में विजय प्राप्त हो।

फिर मैं उस देवगन्धर्व-पूजित दिव्य नगरी में गया। हाथ जोड़े हुए मैं इन्द्र के पास पहुँचा। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक मुझे अपने ही आसन पर बिठा लिया और मेरे शरीर पर हाथ फेरकर मुझे बहुत मान दिया। महाराज, फिर मैं अस्त्र-शिक्षा प्राप्त करता हुआ वहाँ उन देवताओं और गन्धर्वों के साथ रहने लगा जिन्होंने बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञ करके उस लोक को प्राप्त किया है। विश्वावसु के पुत्र चित्रसेन गन्धर्व के साथ मेरी गहरी मित्रता हो गई। उन्होंने मुझे गन्धर्वों की सब विद्या बता दी। राजन्! अस्त्र पाकर, कृतकृत्य होकर, बड़े सुख से मैं इन्द्रलोक में रहा। वहाँ सब लोग मेरा बड़ा आदर करते थे। वहाँ मैं कभी तरह-तरह के गाने और बजाने का आनन्द लूटता था और कभी अप्सराओं का बढ़िया नाच देखता था। यद्यपि मैं वहाँ की सभी बातों को सादर देखता-सुनता था तो भी अपनी ही धुन में मस्त रहकर बड़ी लगन से अस्त्र-शिक्षा को ही अपना मुख्य उद्देश्य समझे हुए था। मेरी इस तत्परता को देखकर देवराज मुझसे बहुत प्रसन्न रहते थे। राजन्, इस तरह मैंने इतना समय स्वर्ग में बिताया है। ६०

अस्त्र-विद्या सीखकर जब मैं अत्यन्त विश्वासपात्र हो गया तब एक दिन इन्द्र ने स्नेहपूर्वक मेरे सिर पर हाथ फेरकर कहा—तुम युद्ध में अद्वितीय हो चुके हो। तुम्हारा कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता। तुम्हारे बल का पार नहीं है। मनुष्य-लोक में रहनेवाले दुर्बल मनुष्यों की कौन कहे, देवता भी तुमको युद्ध में नहीं जीत सकते। हे वीर, अस्त्र-युद्ध में कोई तुम्हारी बराबरी या सामना न कर सकेगा। तुम सत्यवादी, जितेन्द्रिय, सदा सावधान, सब बातों में निपुण, ब्राह्मणों के भक्त, शूर और अस्त्र-विद्या में पारंगत हो। तुमने पाँच प्रकार के प्रयोगों के साथ पन्द्रह अस्त्रों की शिक्षा प्राप्त की है। तुम्हारे साथ किसी की तुलना नहीं हो सकती। तुम प्रयोग, उपसंहार, बारंबार प्रयोगोपसंहार, प्रायश्चित्त (अस्त्र की अग्नि से जले हुए निरपराध मनुष्यों को जिला देना) और प्रतिघात (पराये अस्त्र से अभिभूत अपने अस्त्र को फिर उद्दीप्त करना) आदि को अच्छी तरह जान गये हो। अब यह गुरुदक्षिणा देने का समय है। पहले तुम उसे देने का वादा करो, तब मैं तुमसे कहूँगा कि तुमको क्या करना होगा।

मैंने कहा—जो काम मेरी शक्ति से हो सकता है उसे मेरे द्वारा किया हुआ ही समझिए। इन्द्र ने हँसकर कहा—हे निष्पाप, इस समय त्रिभुवन में ऐसा कोई काम नहीं जिसे तुम न कर सको। मेरे शत्रु निवातकवच नाम के तीन करोड़ दानव समुद्र-दुर्ग में रहते हैं। वे सब रूप, ७०

बल और कान्ति में एक से हैं। मैं तुमसे यही गुरु-दक्षिणा माँगता हूँ कि तुम समुद्र-दुर्ग में जाकर उन सबका नाश करो।

फिर इन्द्र ने मुझे मनोहर शोभावाला रथ दिया। उसमें मोर के रंग के घोड़े जुते हुए थे; मातलि सारथी उसे हाँकता था। उसकी चमक आँखों में चकाचौंध पैदा कर रही थी। इन्द्र ने मेरे माथे पर अपने हाथ से यह सुन्दर किरीट बाँध दिया। अपने ही ऐसे दिव्य गहने भी दिये। यह सब अंगों को सुख पहुँचानेवाला अभेद्य कवच दिया। गाण्डीव धनुष पर चढ़ाने के लिए यह दिव्य डोरी भी दी। यह डोरी किसी के काटे नहीं कट सकती। इन्द्र ने जिस पर बैठकर विरोचन के पुत्र बलि को जीता था उसी रथ पर बैठकर मैं वहाँ से चला। उस रथ के शब्द को सुनकर देवता लोग मुझे, इन्द्र समझकर, देखने के लिए जमा होने लगे। मुझे देखकर उन्होंने कहा—अर्जुन, तुम क्या करने जा रहे हो? मैंने कहा—हे देवताओ, मैं इन्द्र के वैरी निवातकवच दानवों को मारने जा रहा हूँ। आप लोग मुझे शुभ आशीर्वाद दीजिए।

८० तब सब देवता सन्तुष्ट होकर इन्द्र की तरह मेरी भी स्तुति करते हुए कहने लगे—हे निष्पाप! इस रथ पर बैठकर इन्द्र ने युद्ध में शंबर, नमुचि, बल, वृत्र, प्रह्लाद, नरकासुर आदि हज़ारों-लाखों-करोड़ों दैत्यों को मारा और जीता है। तुम भी इस रथ के प्रभाव से, उन्हीं इन्द्र की तरह, युद्ध में अपना पराक्रम दिखाकर निवातकवच दानवों को मारोगे। हम तुमको यह शङ्ख देते हैं। इस शङ्ख के प्रभाव से इन्द्र ने त्रिलोकी का प्रभुत्व पाया है। तुम भी इस शङ्ख के प्रभाव से सब दानवों को जीत लोगे। बस, वह शङ्ख देकर वे लोग मेरी जय की इच्छा प्रकट करने और आशीर्वाद देने लगे। देवताओं के दिये (देवदत्त) उस शङ्ख को लेकर, कवच-धनुष-

८६ बाण आदि से भूषित, मैं युद्ध की इच्छा से उन दानवों के दुर्ग की ओर चला।

एक सौ उनहत्तर अध्याय

अर्जुन का निवातकवच दानवों के स्थान पर पहुँचना

अर्जुन कहते हैं—रास्ते में अनेक स्थान मिले। वहाँ महर्षियों ने सत्कार और स्तुति से मुझे सन्तुष्ट किया। फिर मैंने भयानक अपार महासागर के दर्शन किये। उसमें फेना फैला हुआ था। उसकी लहरें कभी इधर-उधर बिखर जाती थीं, कभी आपस में टकराती थीं और कभी ऊपर को उठने से चलते हुए ऊँचे पहाड़ के समान जान पड़ती थीं। रत्नों से भरी हुई हज़ारों नावें (जहाज़) उसके भीतर [घूम रही] थीं। तिमिङ्गिल, कच्छप, तिमि-तिमिङ्गिल और मगर आदि जीव जल में डूबे हुए पहाड़ों के समान देख पड़ते थे। जल में डूबे हुए हज़ारों शङ्ख हलके बादलों से ढके हुए तारागण के समान जान पड़ते थे। और भी अनेक रत्न

उसके ऊपर तैर रहे थे। वहाँ हवा बड़े ज़ोर से चल रही थी। समुद्र का वह दृश्य मुझे बड़ा अद्‌भुत मालूम हुआ।

अथाह समुद्र की शोभा देखते-देखते मैं अनेक दानवों से पूर्ण दैत्यपुरी के पास पहुँच गया। रथ चलाने की विद्या में निपुण मातलि उसी दम रथ लेकर पाताल में पहुँचा। रथ के शब्द को सुनकर उस पुरी के निवासी डर गये। आकाश में मेघगर्जन के समान उस रथ की घरघराहट को सुनकर दानवों ने मुझे इन्द्र समझा। इससे वे बहुत घबराये। फिर धनुष, बाण, खड्ग, शूल, परशु, गदा, मूसल आदि शस्त्र लिये द्वारों को रोककर, भीतर जाने की राह रोके हुए, वे पुरी की रक्षा करने लगे। मुझे वहाँ अपने सामने कोई नहीं देख पड़ा। तब मैं उस 'देवदत्त' शङ्ख को हाथ में लेकर बजाने लगा। उस शङ्ख का शब्द स्वर्ग तक गूँज उठा। आसपास चारों ओर उसकी प्रतिध्वनि छा गई। बड़े-बड़े बलवान् प्राणी भी डरकर इधर-उधर छिपने लगे। इसी बीच में, सुन्दर गहने और कवच पहने, लोहे के महाशूल, गदा, मूसल, पट्टिश, करवाल, रथचक्र, शतघ्नी (तोप), भुशुण्डी (बन्दूक़) और जड़ाऊ विचित्र खड्ग आदि शस्त्र लिये हुए हज़ारों निवातकवच दानव मुझे सामने आते देख पड़े। ११

तब मातलि सारथी बड़ी सावधानी के साथ घोड़ों को चलाने लगा। वे घोड़े इतने वेग से जा रहे थे कि मेरी दृष्टि किसी पदार्थ पर नहीं ठहरती थी। इससे मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। उधर दानव भी विकृत स्वर और रूपवाले तरह-तरह के मारू बाजे बजाने लगे। उन बाजों के और दैत्यों के घोर शब्द को सुनकर पहाड़ ऐसे डील-डौलवाले सैकड़ों हज़ारों मच्छ आदि जल-जन्तु बहुत घबराये और इधर-उधर भागने लगे। २०

अब वे दानव सैकड़ों-हज़ारों तीक्ष्ण बाण बरसाते हुए मेरी ओर दौड़े। मैं भी निवातकवचों को नष्ट करने के विचार से उनके साथ घोर युद्ध करने लगा। उस महायुद्ध को देखने के लिए देवर्षि, ब्रह्मर्षि, दानवर्षि और सिद्धगण वहाँ पर आ गये। बृहस्पति की भार्या तारा को हर लेने पर जब उसके कारण दारुण सङ्ग्राम हुआ तब इन्द्र की जैसे स्तुति की गई थी, वैसे ही मेरी जय की इच्छा से मुनि लोग मधुर वचनों से स्तुति करने लगे। २४

एक सौ सत्तर अध्याय

निवातकवच दानवों के साथ अर्जुन का युद्ध

अर्जुन कहते हैं—हे धर्मराज! तब सब दानव एकत्र हो, शस्त्र लेकर, वेग से मेरी ओर दौड़े। वे चिल्लाने लगे। उन्होंने मुझे चारों ओर से घेर लिया। मेरे रथ की राह रोककर वे मुझ पर घोर बाण बरसाने लगे। कुछ महाबली दानव शूल, पट्टिश, भुशुण्डि आदि शस्त्र

बरसाने लगे। गदा, शक्ति, शूल आदि हज़ारों शस्त्र मेरे रथ के ऊपर लगातार गिरने लगे। पैने शस्त्र-अस्त्र हाथ में लिये, प्रहार करते हुए, कालरूप, घोर निवातकवच दानवों को अपने
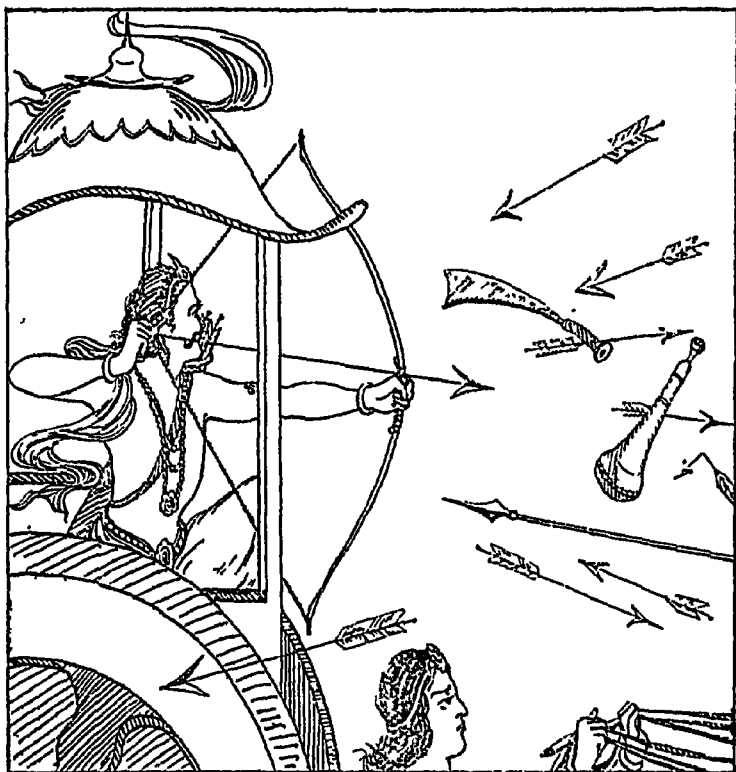
ऊपर झपटते देखकर मैं भी गाण्डीव धनुष चढ़ाकर एक-एक शत्रु को दस-दस बाणों से घायल करने लगा। मेरे पैने बाणों की चोट न सह सकने के कारण उनमें से बहुतेरे युद्ध से भाग खड़े हुए।

फिर घोड़ों को हाँककर मातलि तरह-तरह के कौशल दिखाने लगा। वे घोड़े भी युद्ध-भूमि में अपनी टापों से दानव-सेना को मथते हुए अनेक मण्डलों और गतियों से चारों ओर विचरने लगे। इन्द्र के रथ में दस हज़ार घोड़े जुते हुए थे। मातलि ऐसे कौशल से उनको हाँक रहा था कि वे बहुत होने पर भी थोड़े से जान पड़ते थे। घोड़ों की टापों और पहियों के नीचे कुचलकर तथा मेरे बाणों से मरकर अनेक असुर नष्ट होने लगे। किसी-किसी असुर का सारथी मारा गया और वह स्वयं भी मर गया; घोड़े उसके रथ को इधर-उधर घसीटने लगे। तब फिर वे दानव चारों ओर से घेरकर मुझ पर शस्त्रों की वर्षा और आक्रमण करने लगे। उनके प्रबल आक्रमण से [दम भर के लिए] मैं भी व्यथित हो गया। उस समय मैंने मातलि का अद्-भुत पराक्रम और कौशल देखा। उसने बड़े वेग से जाते हुए घोड़ों को सहज ही अपने क़ाबू में रखकर रथ को चलाया। मैं भी फ़ुर्ती के साथ जानेवाले विचित्र अस्त्रों से उन दानवों के चलाये अस्त्र-शस्त्रों को काटकर उन्हें भी एक साथ सैकड़ों-हज़ारों की संख्या में मारने लगा। इन्द्र का सारथी मातलि मुझे इस प्रकार शत्रुओं के संहार में सब तरह तत्पर देखकर बहुत सन्तुष्ट हुआ।

१०

कुछ असुरों को घोड़ों ने अपने पैरों से रौंद डाला; कुछ असुर उस महान् रथ के पहियों के नीचे दबकर मर गये; कुछ को मैंने मार डाला और कुछ अपनी जान लेकर भाग खड़े हुए। फिर और निवातकवच आ गये और वे होड़ सी लगाकर बाणों की वर्षा करके मुझे सताने लगे। मैं भी ब्रह्मास्त्र से अभिमन्त्रित बाण चलाकर दैत्यों को मारने लगा। मेरे बाणों से पीड़ित वे दानव भी क्रुद्ध होकर, मिलकर, मुझ पर शूल, शक्ति, खड्ग आदि की वर्षा करने और पीड़ा पहुँ-

चाने लगे। तब मैंने इन्द्र के परम प्रिय गान्धर्व नाम के अस्त्र का प्रयोग किया। यह अस्त्र मधु दैत्य को मारने के लिए बनाया गया था। इस अस्त्र की सहायता से मैंने दैत्यों के चलाये हुए २० असंख्य खड्ग, त्रिशूल, तोमर आदि शस्त्रों के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। इस प्रकार उनके शस्त्रों को काटने के बाद मैंने कुपित होकर उनमें से हर एक को दस-दस बाण मारे। उस समय गाण्डीव धनुष से भौंरों की पाँति के समान तीक्ष्ण बाण निकलने लगे। मातलि ने यह फुर्ती देखकर मेरी बड़ाई की। [निवातकवच करोड़ों थे, इसलिए टिड्डी-दल की तरह] उनके भी बाण मेरे ऊपर आने लगे। मैंने उनके बाणों को काट डाला। मैं निवातकवचों को अपने बाणों और दिव्य अस्त्रों से मार रहा था। वे बारम्बार आक्रमण करते हुए मुझ पर चारों ओर से बाणों की वर्षा कर रहे थे। मैं भी शत्रु के अस्त्रों को नष्ट करनेवाले अस्त्रों की सहायता से उनके बाणों को निष्फल कर रहा था। अत्यन्त कुपित होकर मैं आग के समान जलते हुए बाणों से उन दानवों को घायल करने लगा। वर्षाकाल में जैसे पर्वत के शिखरों से जलधारा बहती है वैसे ही अङ्ग कट जाने से उनके शरीरों से रक्त बहने लगा। वेग के कारण सीधे जानेवाले, वज्रतुल्य मेरे बाणों की चोट खाकर वे दानव बहुत घबराये। दानव जब बहुत घायल हो गये, उनके शस्त्र चुक गये और शक्ति भी क्षीण हो गई, तब वे मुझसे माया-युद्ध करने लगे। २६

एक सौ इकहत्तर अध्याय

दानवों के माया-युद्ध का वर्णन

अर्जुन कहते हैं—महाराज, इसके बाद चारों ओर से मुझ पर पत्थरों की वर्षा होने लगी। उन पर्वताकार बड़ी-बड़ी शिलाओं से पीड़ित होने पर मैंने इन्द्रास्त्र का सहारा लिया। वज्र-सदृश दृढ़ बाण मेरे धनुष से छूटकर एक-एक शिला के सौ-सौ टुकड़े करने लगे। इस प्रकार पत्थरों के टुकड़े-टुकड़े होकर रगड़ खाने से एकाएक आग जल उठी। आग की चिनगारियाँ जिससे निकल रही थीं ऐसा पत्थर का चूरा बरसने लगा। उस उपद्रव को भी जब मैंने अस्त्र की सहायता से मिटा दिया तब, रथ के धुरे के समान मोटी, मूसलाधार वर्षा होने लगी। आकाश से गिरनेवाली ऐसी जलधाराओं से दिशा, उपदिशा और अन्तरिक्ष व्याप्त हो गया। धाराओं के गिरने, आँधी के चलने और बादलों तथा दैत्यों के गरजने से ऐसा हो गया कि कुछ भी नहीं जान पड़ता था। उस लगातार घोर जलवर्षा ने आकाश और पृथ्वी को छा लिया; इससे मैं मोहित सा हो गया। तब मैंने इन्द्र के बताये विशोषण अस्त्र का प्रयोग करके उस जलराशि को सुखा दिया।

अब दैत्यों ने मायाबल का सहारा लेकर आग और हवा पैदा कर दी। मैंने भी वारुण अस्त्र से अग्नि को और पर्वतास्त्र से वायु के वेग को शान्त कर दिया। तब युद्ध करने में मतवाले १०

दानव एक साथ बहुत सी माया प्रकट करके घोर, रोमाञ्चकारी अनेक अस्त्रों की, अग्नि की, वायु की और पत्थरों की वर्षा करने लगे। चारों ओर घना अँधेरा छा जाने से घोड़े चल न सके और मातलि भी विचलित हो उठा। उसके हाथ से सुवर्णमय चाबुक गिर पड़ा। वह डरकर बार-म्बार मुझसे कहने लगा कि अर्जुन, तुम कहाँ हो? मैं भी उस समय घोर माया के प्रभाव से पीड़ित हो रहा था। मातलि की यह दशा देखकर मैं डर गया। अचेत की तरह मातलि ने मुझे डरा और घबराया हुआ देखकर कहा—हे भरतश्रेष्ठ, पहले अमृत के लिए देवताओं और दानवों का जो भयङ्कर संग्राम हुआ था वह मैं देख चुका हूँ। शम्बरासुर को मारने के समय जो संग्राम हुआ था, उसमें भी मैं इन्द्र का सारथी था। वृत्रासुर-वध के युद्ध में भी मैंने ही इन्द्र के रथ को हाँका था। राजा बलि और इन्द्र का दारुण युद्ध भी मैंने देखा है। मतलब यह कि २० मैं सभी घोर युद्धों में था; परन्तु मैं कभी इस तरह अचेत नहीं हुआ। जान पड़ता है, विधाता जगत् को चौपट करने के लिए तैयार हैं। प्रलयकाल के सिवा ऐसा युद्ध होना असम्भव है।

मातलि के ये वचन सुनकर और उसे डरा हुआ देखकर मैं सँभल गया। फिर दैत्यों के माया-बल को मिटाकर उन्हें मोहित करने की इच्छा से मैंने कहा—मातलि, डरो नहीं; मेरे बाहुबल को, अस्त्रों के और गाण्डीव धनुष के प्रभाव को देखो। मैं अभी अपने अस्त्रों की माया से दानवों की इस दारुण माया को और घने अँधेरे को मिटाये देता हूँ। तुम स्थिर होकर अपने आसन पर बैठो। अब मैंने देवताओं के हित की इच्छा से सब प्राणियों को मोहित करनेवाली अस्त्र-माया प्रकट कर दी। उसके प्रभाव से पहले की मायाओं को नष्ट होते देखकर वे पराक्रमी दानव फिर तरह-तरह की माया प्रकट करने लगे। कभी उजाला हो जाता था और कभी घना अँधेरा छा जाता था। कभी कुछ न देख पड़ता था और कभी सब स्थान जल में डूबा हुआ देख पड़ता था। उजाला होते ही मातलि ने घोड़ों को हाँका। वह रथ को चारों ओर फिराने लगा। तब फिर उग्र निवातकवच दानवों ने सामने आकर मुझ पर घोर आक्रमण किया। मैं भी मौका पाकर उन्हें मार-मारकर यमलोक भेजने लगा। इस प्रकार घोर युद्ध करके जब मैं ३० निवातकवचों का नाश करने लगा तब वे माया के बल से एकाएक अदृश्य हो गये।

एक सौ बहत्तर अध्याय

निवातकवच दानवों का वध

अर्जुन ने कहा—दैत्य लोग माया के प्रभाव से अदृश्य होकर युद्ध करने लगे। तब मैं भी अदृश्य अस्त्रों की सहायता से युद्ध में प्रवृत्त हुआ। मेरे गाण्डीव धनुष से छूटे हुए बाण उनके सिरों को काट-काटकर इधर-उधर गिराने लगे। अस्त्र के प्रभाव से मेरे बाण ठीक उसी जगह पर

पहुँचते थे, जहाँ से छिपकर वे युद्ध कर रहे थे। इस प्रकार जब मैं संहार करने लगा तब सब निवातकवच माया छोड़कर एकाएक अपने नगर में चले गये।

दैत्य जब चले गये और माया नष्ट हो गई तब मैंने देखा कि सैकड़ों-हज़ारों दैत्य मरे पड़े हैं। उनके शस्त्र, गहने, कवच और अङ्ग-प्रत्यङ्ग ढेर के ढेर कटे-फटे और पिसे हुए पड़े हैं। उनके मारे घोड़ों के लिए चलने की राह नहीं थी। तब मेरे रथ के घोड़े आकाश-मार्ग में चलने लगे। असंख्य निवातकवच दानव फिर आकाश में आकर अदृश्य भाव से मेरे ऊपर पत्थर बरसाने लगे। कुछ दानवों ने पृथ्वी के भीतर से मेरे रथ के पहियों को और घोड़ों के पैरों को पकड़ लिया। इस प्रकार रथ और घोड़ों को रोककर चारों ओर से वे मुझ पर और मेरे रथ पर पहाड़ गिराने लगे। उन्होंने इतने पर्वत बरसाये कि उनके जमा होने से वह स्थान, जहाँ पर मैं था, एक गुफा के समान जान पड़ने लगा। लगातार पर्वतों की वर्षा होने से और रथ की गति रुक जाने से मैं बहुत पीड़ित और भयभीत हुआ। मुझे डरा हुआ देखकर मातलि ने कहा—अर्जुन, डरो नहीं; वज्रास्त्र का प्रयोग करो। मातलि के वचन सुनकर मैं सँभल गया। फिर गाण्डीव धनुष हाथ में लेकर, उसमें वज्रास्त्र को अभिमन्त्रित करके, मैं भयानक तीक्ष्ण बाण छोड़ने लगा। वे लोहे के बने वज्र-सदृश बाण धनुष से निकलकर दैत्यों की सेना में जाने लगे। अस्त्र के प्रभाव से दैत्यों की माया नष्ट हो गई। वज्र के प्रहार से मरकर पहाड़ ऐसे दानव एक दूसरे से लिपटे हुए पृथ्वी पर गिरने लगे। पृथ्वी के भीतर घुसकर जिन दानवों ने घोड़ों को और रथ के पहियों को पकड़ लिया था उन्हें भी, उन बाणों ने वहाँ जाकर, उसी दम मार डाला। फटकर गिरे हुए पहाड़ ऐसे, मरे हुए, निवातकवच दानवों की लाशों से वह स्थान पट गया। महाराज, यह एक विचित्र बात देख पड़ी कि उस युद्ध में मुझे, मातलि को, रथ को या घोड़ों को कुछ भी हानि नहीं पहुँची। १०

अब मातलि ने हँसकर मुझसे कहा—हे अर्जुन, देवताओं में भी तुम्हारे समान वीर योद्धा कोई नहीं देख पड़ता। देखो, तुम्हारे प्रभाव से असुर मर गये। शरद् ऋतु के बादलों के गरजने के समान नगर में चारों ओर दैत्यों की स्त्रियों के रोने का शब्द सुन पड़ रहा है। महाराज, फिर मैं रथ के पहियों की घरघराहट से निवातकवचों की स्त्रियों को डराता हुआ मातलि के साथ उस दानवपुरी के भीतर गया। मोर के रङ्गवाले दस हज़ार घोड़ों से युक्त उस सूर्य-सदृश रथ को देखकर दानवों की स्त्रियाँ इकट्ठी होकर भागने लगीं। भागते समय उन स्त्रियों के गहनों का शब्द सुनने से ऐसा जान पड़ता था, जैसे पर्वत के ऊपर शिलाओं की वर्षा हो रही है। डरकर भागी हुई वे स्त्रियाँ अपने-अपने घरों में घुस गईं। उनके घर सोने और रत्नों से शोभित थे।

मुझे वह दानवपुरी देवनगरी अमरावती से भी बढ़कर अद्भुत देख पड़ी। मैंने विस्मित होकर मातलि से पूछा—हे सूत, यह असुर-नगरी मुझे शोभा और संपत्ति में अमरावती से भी

बढ़कर जान पड़ती है। तो देवता इसमें क्यों नहीं रहते? मातलि ने कहा—हे अर्जुन, पहले यह नगरी इन्द्र के ही अधिकार में थी। उसके बाद इन बली निवातकवचों ने हराकर देवताओं को यहाँ से निकाल दिया। इन निवातकवच दानवों ने तप करके ब्रह्मा को प्रसन्न किया और उनसे रहने के लिए यह नगरी तथा युद्ध में देवताओं से अभय माँग लिया। यह देखकर इन्द्र ने अपने हित की इच्छा से ब्रह्माजी से कहा कि भगवन्, आप इन दुष्ट दैत्यों के नाश का कोई उपाय ३० कीजिए। ब्रह्मा ने कहा—हे इन्द्र, दैव के विधान के अनुसार तुम्हीं दूसरा शरीर धारण करके इन दैत्यों को मारोगे। इनका नाश तुम्हारे ही हाथ से बदा है। [हे अर्जुन, तुम इन्द्र के पुत्र हो। इसी कारण] इन्हीं दैत्यों के नाश के लिए देवराज ने तुमको दिव्य अस्त्र दिये हैं। तुमने जिन दैत्यों को मारा है उन्हें देवता भी नहीं मार सकते थे। हे भरतश्रेष्ठ, इन दैत्यों का अन्तकाल आ गया था, इसी से काल-रूप होकर तुम यहाँ आये। अब तुम अपना कर्तव्य पूरा कर चुके। इन्द्रदेव ने केवल इन असुरों को मारने के लिए ही तुमको दिव्य अस्त्रों की शिक्षा दी थी।

अर्जुन कहते हैं—महाराज, इस प्रकार निवातकवच दानवों को मारकर, और उनकी ३५ अद्भुत पुरी में शान्ति स्थापित करके, मैं फिर मातलि के साथ इन्द्र-लोक को चल दिया।

एक सौ तिहत्तर अध्याय

पौलोम और कालकेय दैत्यों का वध

अर्जुन कहते हैं—हे धर्मराज, वहाँ से लौटते समय मैंने और एक सोने का बना हुआ नगर देखा। वह नगर सूर्य और अग्नि के समान जगमगा रहा था। वह नगर कामचारी, अर्थात् जहाँ चाहो वहाँ जा सकता था। वहाँ बहुत से फूल-फलवाले रत्नमय वृक्ष, नगरद्वार, अटारी और मधुर बोली बोलनेवाले पक्षी थे। पौलोम और कालकेय नाम के दानव प्रसन्नतापूर्वक उस नगर में सदा रहते थे। अनेक प्रकार के रत्नों का संग्रह होने के कारण वह नगर देखने में ३० बहुत ही भला मालूम होता था। शूल, खड्ग, मूसल, धनुष-बाण और मुद्गर आदि अनेक शस्त्र हाथ में लिये घोर असुर चारों ओर उसकी रक्षा कर रहे थे। उसके चारों फाटक सुरक्षित और शत्रुओं के लिए अगम्य थे। दैत्यों के उस विचित्र और श्रेष्ठ नगर को देखकर अचरज के साथ मैंने मातलि से पूछा—हे मातलि, यह क्या देख पड़ रहा है? यह किसका नगर है?

मातलि ने कहा—अर्जुन, दिति की पुलोमा और कालका नाम की दो कन्याएँ थीं। उन दोनों श्रेष्ठ दानवियों ने दिव्य हज़ार वर्ष तक बहुत ही कठोर तप किया। तप से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी उनके पास आये और वर देने को तैयार हुए। उन दोनों राक्षसियों ने यह वर माँगा कि हमारे पुत्रों को बहुत कम दुःख भोगना पड़े; और उन्हें देवता, राक्षस, नाग आदि कोई न

मार सकें। ब्रह्मा ने उनको यथेष्ट वरदान के साथ ही यह अत्यन्त रमणीय, आकाशचारी, प्रभायुक्त, सब रत्नों से पूर्ण नगर भी दिया। देवता, महर्षि, यक्ष, गन्धर्व, नाग, असुर, राक्षस आदि कोई भी इस नगर पर आक्रमण नहीं कर सकते। सब प्रार्थनीय गुणों से युक्त यह नगर १० ब्रह्मा के भवन से भी श्रेष्ठ है। इसको हिरण्यपुर कहते हैं। इसके भीतर देवता भी नहीं जा सकते। केवल पौलोम और कालकेय दानव ही इसमें रहते हैं; वे ही इसके रक्षक हैं। हे पार्थ, यह नगर आकाश-मार्ग में फिरता रहता है। इसमें रहनेवाले असुरों को देवता भी नहीं मार सकते; इसी से वे बेखटके आनन्द के साथ इसमें रहते हैं। ब्रह्मा ने इनकी मृत्यु मनुष्य के ही हाथ से लिखी है। तुम इन महाबली असुरों को भी वज्रास्त्र से मार डालो।

उस नगर में रहनेवाले दानवों को, देवताओं और दैत्यों के हाथ से अवध्य जानकर, प्रसन्नतापूर्वक मैंने मातलि से कहा—तुम झटपट इस नगर के भीतर चलो। इन इन्द्र के शत्रु दानवों को भी मैं मारूँगा। जिसे मैं न मार सकूँ ऐसा देवताओं का शत्रु तीनों लोकों में दुर्लभ है। हे धर्मराज, इसके बाद मातलि उस दिव्य रथ-सहित मुझे हिरण्यपुर के पास ले गया। वे दैत्य मुझे देखते ही युद्ध की तैयारी करने लगे। विचित्र कपड़े, गहने और कवच पहनकर, रथों पर चढ़कर, बड़े वेग से वे लोग मेरे सामने आये और क्रुद्ध होकर भयानक पराक्रम प्रकट करते हुए नालीक, नाराच, भल्ल आदि बाण और शक्ति, ऋष्टि, तोमर आदि शस्त्र बरसाने लगे। मैं भी अस्त्र-विद्या के बल से बाण-वर्षा करके उनके शस्त्रों को रोकने २० लगा। उस दिव्य रथ पर बैठा हुआ मैं युद्धभूमि में चारों ओर फिरकर अपने पराक्रम और अस्त्र-बल से उन्हें मोहित करने लगा। मेरे अस्त्र से मोहित होकर वे आपस में ही मारकाट और आक्रमण करने लग गये।

मैं भी उसी अवसर में प्रज्वलित बाणों के द्वारा उनके सिर काट-काटकर गिराने लगा। इस प्रकार मेरे हाथ से अपना नाश होते देखकर वे अपने नगर के भीतर चले गये और फिर दानवी माया का सहारा लेकर नगर-सहित आकाश में भाग गये। मैंने असंख्य बाणों की वर्षा करके उनकी राह और उनकी गति रोक दी। पर ब्रह्मा के वरदान के प्रभाव से वे लोग उस सूर्य-सदृश, दिव्य, आकाशचारी, यथेष्ट स्थान में जा सकनेवाले नगर को सहज ही रोके रहे। वह नगर कभी पृथ्वी पर आ जाता था, कभी आकाश में चला जाता था, कभी इधर-उधर तिरछे चला जाता था और कभी पानी के भीतर डूब जाता था। हे शत्रुदमन, तब मैं दिव्य अस्त्र का प्रयोग करके लोहे के बने हुए अनेक प्रकार के बाण चलाने लगा। उन बाणों से छिन्न-भिन्न होकर वह अमरावती सदृश कामचारी नगर उन असुरों-सहित पृथ्वी पर गिर पड़ा। वज्र के ३० समान वेग से छूटे हुए बाणों की चोट खाकर, काल के वश में पड़े हुए, वे दानव भी चक्कर खा-खाकर धरती पर गिरने लगे।

मातलि भी आकाश से उतरकर पृथ्वी पर रथ को ले आया। तब क्रुद्ध होकर युद्ध की इच्छा से साठ हज़ार, रथों पर सवार, असुरों ने आकर मुझे घेर लिया। मैंने भी गृध्रपक्षवाले तीक्ष्ण बाण चलाकर उस रथों के घेरे को तोड़-फोड़ डाला। वे असुर समुद्र की लहरों के समान बारम्बार मुझ पर चढ़ाई करने लगे। तब मैंने सोचा कि मनुष्य-युद्ध से मैं इन्हें परास्त न कर सकूँगा। इससे मैं दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करने लगा। पर वे दानव भी विचित्र युद्ध में निपुण थे। रथों पर सवार उन दानवों ने मेरे दिव्य अस्त्रों को निष्फल कर दिया। वे महाबली दानव विचित्र गतियों से रथ चलाते हुए चारों ओर देख पड़ने लगे। विचित्र मुकुट, कवच, भूषण और विचित्र ध्वजावाले रथों से शोभित उन दानवों को देखकर मुझे बड़ा उत्साह और प्रसन्नता हुई। वे अस्त्रविद्या के जानकार और चतुर थे। मैं अस्त्रों से अभिमन्त्रित बाण चलाकर उन्हें पीड़ा नहीं पहुँचा सका, बल्कि वे ही मुझे पीड़ा पहुँचाने लगे।

उस महायुद्ध में पीड़ित और भय से व्याकुल होकर मैंने उस समय पवित्र और एकाग्र
४० हृदय से महादेव का ध्यान किया और फिर 'सब प्राणियों का भला हो' कह करके सब शत्रुओं का संहार करनेवाले महादेव के घोर पाशुपत अस्त्र को धनुष पर चढ़ाया। उसी समय तीन सिर, तीन मुँह, नव आँखें और छः भुजाओं से शोभित एक उग्र पुरुष मेरे आगे प्रकट हुआ। उसके केश सूर्य और अग्नि के समान चमकीले थे और मस्तक पर जीभ लपलपाते हुए बड़े-बड़े नाग देख पड़ रहे थे। मैंने उस प्रत्यक्ष अस्त्र को देखकर देवदेव महादेव को प्रणाम किया और फिर दुष्ट दानवों के संहार की इच्छा से वह अस्त्र छोड़ दिया। छोड़ते ही उस अस्त्र ने—मृग, सिंह, बाघ, रीछ, भैंसे, नाग, गाय, शरभ, हाथी, वानर, ऋषभ, वराह, बिलाव, भेड़िये, प्रेत, भुरुंड, गिद्ध, गरुड़, चमरी, देव, ऋषि, गन्धर्व, पिशाच, यक्ष, असुर, गुह्यक, नैऋ‍ॅत, गजमुख मत्स्य, उलूक, गदा, मुद्गर, खड्ग आदि अनेक शस्त्र लिये, घोड़े और मछली के आकार के—
५२ राक्षस आदि झुण्ड के झुण्ड अनेक प्रकार के प्राणियों के रूप धारण करके सारे जगत् को छा लिया। तीन मस्तक, चार दाँत, चार मुख और चार भुजावाले, विचित्र, बहुरूप, मांस-मेदा-हड्डी-चर्बी आदि से युक्त अनेक प्राणी भी उस अस्त्र से प्रकट हुए। वे दानव उन प्राणियों के आक्रमण से मरकर यमपुर जाने लगे। मैं भी सूर्य और अग्नि के समान प्रज्वलित, वज्रतुल्य, पर्वतखण्ड सदृश भारी बाणों के प्रहार से उन दानवों को मारने लगा।

गाण्डीव धनुष के प्रभाव से उन दानवों को मरकर पृथ्वी पर गिरते देख मैंने फिर सब जगत् के विधाता महेश्वर को प्रणाम किया। देव-सारथि मातलि भी उन दिव्य भूषणों से भूषित दानवों को पाशुपत अस्त्र के प्रभाव से विनष्ट हुआ देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और मेरी बड़ाई करने लगा। उसने प्रसन्नतापूर्वक हाथ जोड़कर मुझसे कहा—हे वीर, आज तुमने वह काम किया है जिसे सब देवता, इन्द्र और दैत्य भी नहीं कर सकते थे। यह आकाश में विचरनेवाली

नगरी ब्रह्मा के वरदान के कारण देव-दानव आदि के हाथों से नष्ट नहीं हो सकती थी; पर तुमने अपने पराक्रम और तप के प्रभाव से इसे नष्ट कर दिया। ६०

महाराज, इस प्रकार उस आकाशचारी पुर और दानवों के नष्ट हो जाने पर उनकी स्त्रियाँ बहुत ही दुःखित और व्यथित होकर कुररी पक्षी की तरह चिल्लाकर रोने लगीं। वे बाल खोले हुए नगर के बाहर निकल आईं। पिता, पुत्र, भाई आदि को याद करके, शोक से विह्वल होकर, वे पृथ्वी पर गिरकर छाती पीटने लगीं। उनकी मालाएँ, कपड़े और गहने इधर-उधर गिर पड़े। गन्धर्वनगर के समान रमणीय उस हिरण्यपुर में शोक, दुःख और उदासी छा गई। नाग से ख़ाली कुण्ड की तरह, सूखे हुए वृक्षोंवाले वन की तरह, उस नाथ-हीन नगर की शोभा जाती रही।

अपना काम सिद्ध करके मैं बहुत ही आनन्दित हुआ। मातलि मुझे लेकर अमरावती में पहुँचा। इन्द्र के पास आकर उसने हिरण्यपुर के नाश, मायाओं के रोकने, महाबली निवातकवच दानवों के वध आदि सब कामों का आदि से अन्त तक वर्णन किया। मातलि के मुँह से मेरे सब कामों का परिचय पाकर इन्द्रदेव सन्तुष्ट हुए। देवताओं-सहित उन्होंने बड़ाई करके मेरा बहुत सम्मान किया। देवताओं ने और स्वयं इन्द्र ने बारम्बार मधुर वचनों से मेरी बड़ाई की। इन्द्र ने कहा—हे पार्थ, युद्ध-भूमि में तुमने जो काम किया है उसे देवता या दैत्य कोई नहीं कर सकते थे। मेरे घोर शत्रुओं को मारकर तुमने यथोचित गुरु-दक्षिणा मुझे दे दी। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम युद्ध के मैदान में कभी विचलित न होगे; व्याकुलता से बचकर मेरे बताये हुए सब अस्त्रों का ठीक-ठीक प्रयोग और संधान कर सकोगे। युद्ध में तुम्हारे वेग को देवता, दानव, राक्षस, यक्ष, असुर, गन्धर्व, पक्षी और नाग आदि कोई भी न रोक सकेंगे। धर्मपुत्र युधिष्ठिर तुम्हारे बाहुबल से सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल को जीतकर उसका पालन करेंगे। ७० ७५

एक सौ चौहत्तर अध्याय

युधिष्ठिर और अर्जुन के संवाद की समाप्ति

अर्जुन कहते हैं—महाराज, [इस तरह शत्रुओं का नाश करने से] देवराज का मैं बहुत ही विश्वासपात्र बन गया। एक दिन मेरे शरीर के सब घाव अच्छे हो जाने पर उन्होंने अभिनन्दन करके मुझसे कहा—हे वीर, सब दिव्य अस्त्र तुम्हारे अधिकार में हैं। अब मनुष्य-लोक में कोई मनुष्य तुमको हरा नहीं सकेगा। युद्ध में भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, शकुनि और अन्य सब महारथी राजा तुम्हारी तुलना में सोलह आने में एक आने भर भी न ठहरेंगे। फिर उन्होंने मुझे अभेद्य दिव्य कवच, सोने की माला और महा शब्द करनेवाला देवदत्त नाम

का शङ्ख दिया। उन्होंने अपने हाथ से यह सुन्दर दिव्य किरीट मेरे सिर पर बाँध दिया। ये सुन्दर दिव्य वस्त्र और गहने भी उन्होंने दिये। मैं उसी तरह बड़े सुख और आनन्द के साथ इन्द्रभवन में रहने लगा। गन्धर्वों के लड़के मेरे साथी थे।
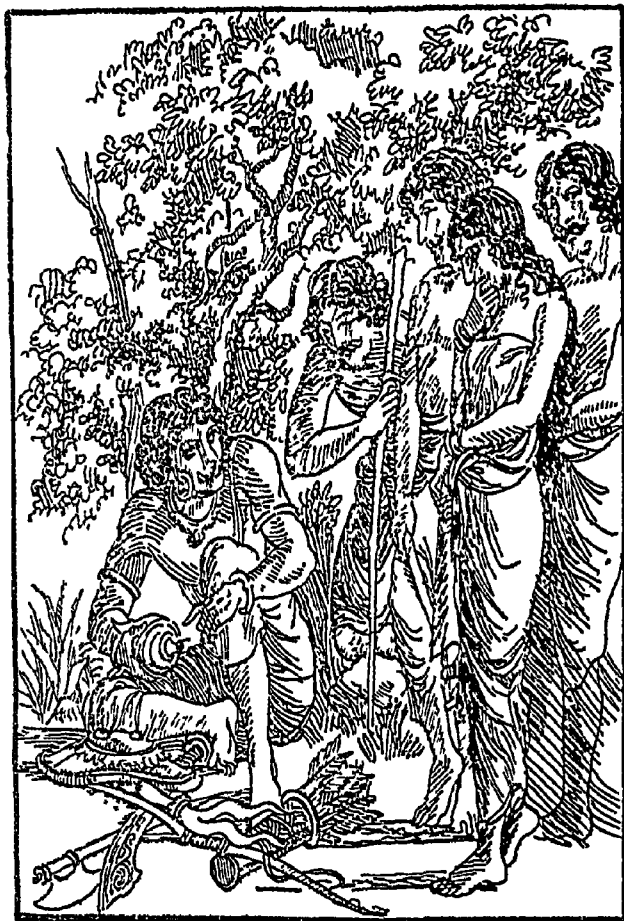
महाराज, [कुछ समय और बीतने पर एक दिन] देवमण्डली के बीच विराजमान इन्द्र ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए मुझसे कहा—पुत्र अर्जुन, तुम्हारे भाई तुमको याद कर रहे हैं। अब तुम्हारे जाने का समय आ गया। हे भरतश्रेष्ठ, मैं इस तरह पाँच वर्ष तक इन्द्रलोक में रहा हूँ, पर वह जुए का झगड़ा एक दिन भी, घड़ी भर के लिए भी, मुझको नहीं भूला। महाराज, इसके बाद इन्द्रलोक से चलकर मैं इस गन्धमादन पर्वत पर आया। यहाँ मैंने आपको भीमसेन, नकुल और सहदेव के साथ देखा। १०

युधिष्ठिर ने कहा—हे अर्जुन, बड़े भाग्य की बात है कि देवताओं के राजा इन्द्र की आराधना करके तुमने सब दिव्य अस्त्र प्राप्त कर लिये। यह भी बड़े भाग्य की बात है कि युद्ध में सन्तुष्ट करके तुमने देवादिदेव महादेव और पार्वती देवी के दर्शन कर लिये। तुम्हारा भाग्य ही इसका कारण है, जो सब लोकपाल तुम्हें प्रत्यक्ष देख पड़े। कृतकृत्य होकर लौटकर तुम हमसे मिले, इसे भी मैं सौभाग्य की बात समझता हूँ। मैं इस समय यही समझ रहा हूँ कि नगरों-सहित सारी पृथ्वी पर मेरा अधिकार हो गया और धृतराष्ट्र के पुत्र भी मेरे अधीन हो गये। भाई अर्जुन, तुमने जिन दिव्य अस्त्रों की सहायता से महाबली निवातकवच आदि दानवों को मारा है, उन अस्त्रों के देखने को मेरा बहुत जी चाहता है।

अर्जुन ने कहा—राजन्, भयङ्कर निवातकवच दानवों को जिन अस्त्रों की सहायता से मैंने मारा है, उन्हें मैं आपको कल दिखाऊँगा। वैशम्पायन कहते हैं कि इस तरह स्वर्ग में जाने, रहने और वहाँ से आने का वृत्तान्त कहकर अर्जुन ने वह रात अपने भाइयों के साथ वहीं बिताई। १७

एक सौ पचहत्तर अध्याय

नारद का आना और अर्जुन को अस्त्र दिखाने से रोकना

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय! रात बीतने पर भाइयों-सहित धर्मराज ने उठकर, स्नान-सन्ध्या आदि कामों से छुट्टी पाकर, अर्जुन को उन असुर-नाशक दिव्य अस्त्रों के दिखाने की आज्ञा दी। तब अर्जुन पहले सब प्रकार से शुद्ध हुए; फिर उन्होंने दिव्य कवच पहना। इसके बाद देवदत्त शंख और गाण्डीव धनुष लिया। फिर वे पृथ्वीरूप रथ पर सवार हुए। पर्वत ही उस रथ का धुरा थे; पैर ही उसके पहिये थे; सुन्दर बाँस के वृक्ष ही उसका त्रिवेणु (रथ का एक अङ्ग) थे। महाबाहु अर्जुन इस तरह सुसज्जित होकर जब उन अस्त्रों का प्रयोग दिखाने को तैयार हुए तब उनके पैरों के दबाव से पृथ्वी काँप उठी; नदियों-समेत महासागर चंचल हो गया; सब पर्वत मानों फटने लगे। वायु का चलना बंद हो गया; सूर्य की प्रभा फीकी पड़ गई; आग बुझ सी

गई; ब्राह्मणों को वेद भूल से गये। हे जनमेजय, पृथ्वी के नीचे रहनेवाले सब प्राणी पीड़ित होकर बाहर निकल आये। अस्त्रों के तेज से जलते हुए वे प्राणी, चारों ओर से अर्जुन १० को घेरकर, हाथ जोड़कर, उनसे प्रार्थना करने लगे। डर के मारे वे काँप रहे थे। उनके चेहरों पर मुर्दनी सी छाई हुई थी। पल भर में देवर्षि, महर्षि, ब्रह्मर्षि, सिद्ध, देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पक्षी और पृथ्वी तथा आकाश में विचरनेवाले अन्य प्राणी अर्जुन के पास आ गये। पितामह ब्रह्मा, सब लोकपाल और अपने गणों के साथ भगवान् शंकर वहाँ आकर उपस्थित हुए। महाराज, तब हवा अर्जुन के ऊपर विचित्र पुष्प-माला आदि की वृष्टि करने लगी। देवताओं की प्रेरणा से गन्धर्व लोग गाथाएँ गाने लगे। झुण्ड की झुण्ड अप्सराएँ नाचने लगीं।

इसी समय देवर्षि नारद वहाँ पर आ गये। उन्होंने, देवताओं की प्रेरणा से, अर्जुन से ये मधुर वचन कहे—हे पाण्डव, तुम इस तरह अकारण इन दिव्य अस्त्रों का प्रयोग मत करो।

बिना किसी लक्ष्य (निशाने) के इनका प्रयोग नहीं किया जाता। यदि लक्ष्य भी हो तो अपने ऊपर बिना कोई संकट आये, या यों कहो कि किसी के द्वारा बिना सताये गये, इन अस्त्रों का प्रयोग करना ठीक नहीं। क्योंकि जब तक अपने ऊपर कोई संकट न आ पड़े तब तक
२० अकारण इनका प्रयोग करने से बड़ा दोष होता है। अर्जुन, ये अस्त्र विधिपूर्वक रक्षित रहने से क्रमशः प्रबल और समय पर सुख देनेवाले होंगे। और, यदि तुम अकारण इनका प्रयोग करोगे तो इनके तेज से सारा जगत् चौपट हो सकता है। इसलिए कभी इस तरह इनके प्रयोग का इरादा न करना। हे युधिष्ठिर, तुम इस समय इन अस्त्रों का चमत्कार देखने का विचार छोड़ दो। समय पड़ने पर जब अर्जुन शत्रुओं को मारने के लिए युद्ध में अस्त्रों का प्रयोग करेंगे तब तुम इनका रूप और प्रभाव देख लेना।

वैशम्पायन कहते हैं—इस तरह अर्जुन के रुक जाने पर सब देवता अपने-अपने लोक को
२५ चले गये। पाण्डव लोग भी द्रौपदी के साथ प्रसन्नतापूर्वक उसी वन में रहने लगे।

आजगरपर्व

एक सौ छिहत्तर अध्याय

पाण्डवों का गन्धमादन पर्वत को छोड़ना

जनमेजय ने वैशम्पायन से कहा—भगवन्, महारथी वीर अर्जुन इस प्रकार इन्द्रलोक से अस्त्र-विद्या सीखकर जब लौट आये, तब पाण्डवों ने और क्या-क्या काम किये? कृपा करके कहिए। वैशम्पायन ने कहा—राजन्, युधिष्ठिर आदि महावीर पाण्डव इन्द्र-तुल्य पराक्रमी अर्जुन के साथ रमणीय गन्धमादन पर्वत पर यक्षराज कुबेर की क्रीड़ा-भूमि में विचरने लगे। धनुषधारी अस्त्रज्ञ अर्जुन वहाँ के उत्तम भवन और विविध वृक्षों से शोभित क्रीड़ाकुञ्ज देखते हुए विचरा करते थे। कुबेर की कृपा से प्राप्त उस स्थान में रहनेवाले पाण्डवों को मनुष्यलोक का ऐश्वर्य और सुख तुच्छ जान पड़ता था। वह समय उनके लिए परम सुखदायक हुआ। अर्जुन के साथ रहने से युधिष्ठिर आदि पाण्डवों को बड़ा सुख मिलता था। वे लोग वहाँ चार वर्ष तक रहे; पर उन्हें उतना समय एक दिन के समान जान पड़ा। पहले छः वर्ष बीत चुके थे, चार वर्ष फिर बीते; [सब मिलाकर] दस वर्ष हो गये। ये दसों वर्ष उन्होंने वनवास में बड़े सुख से बिताये।

एक दिन महाराज युधिष्ठिर के पास भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव, ये चारों भाई बैठे हुए थे। वे युधिष्ठिर से प्रिय और हित के वचन कहने लगे कि हे धर्मराज, हम आपका

प्रिय करने के विचार से, आपको प्रतिज्ञा-पाश से छुड़ाने के लिए, दुर्योधन को उसके साथियों-सहित मारने नहीं जाते। [नहीं तो जो हम चाहें तो आज इस वन से जाकर सहज ही शत्रुओं को उनकी करनी का मज़ा चखा सकते हैं।] हम लोग वास्तव में सुख भोगने के योग्य हैं; पर सुयोधन ने हमारे सब सुख छीन लिये हैं। इस दशा में रहते हमें दस वर्ष बीत गये, यह ग्यारहवाँ वर्ष है। राजन्, आपकी आज्ञा से अपने मान का विचार छोड़कर हम बेखटके वन-वन घूमते फिरते हैं। अब उस अधम बुद्धि और स्वभाववाले दुर्योधन को धोखा देकर हम एक वर्ष अज्ञातवास करेंगे; उसके बाद सुख प्राप्त करेंगे। अब तक हम उससे थोड़ी ही दूर पर रहे हैं, इसलिए वह धोखे में है। एकाएक हम कहीं दूर जाकर अज्ञातवास करेंगे तो फिर दुर्योधन हमारा पता नहीं लगा सकेगा। इस प्रकार अज्ञातवास का वर्ष बिता चुकने पर हम उससे उस वैर का बदला लेंगे [जो उसने हमारे साथ ठान रक्खा है]। उस नराधम को साथियों-समेत मारकर आप सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल का राज्य प्राप्त कीजिएगा। हे नरदेव, इस १० समय हम लोग इस स्वर्ग-तुल्य रमणीय स्थान में रहते हैं; यहाँ हम वनवास के दुःख और शोक को सहज ही भुला सकते हैं। पर यदि हम यहाँ के सुख में पड़कर शत्रु से बदला लेना भूल जायँ तो आपकी पवित्र और उज्ज्वल कीर्त्ति पृथ्वीमण्डल से लुप्त हो जायगी। इसी कारण हमारा यह कहना है कि आप शत्रुओं को मारकर कौरवों के राज्य पर अपना अधिकार स्थापित करें। इससे आपका यश बढ़ेगा, और आप यज्ञ आदि महत् कर्म कीजिएगा। हे नरेन्द्र, यह जो कुबेर से आपको मिल रहा है इसे तो आप सदा पा सकेंगे। हे भरतश्रेष्ठ, इसलिए आप अपराधी शत्रुओं को मारने का निश्चय कर लीजिए। यदि भाई समझकर आप उन्हें जान से मार डालना न चाहें तो क़ैद ही कर लीजिए। आपसे युद्ध ठानकर साक्षात् इन्द्र भी पार नहीं पा सकते—आपके उग्र तेज को नहीं सह सकते। आपको चिन्ता किस बात की है? गरुड़ध्वज श्रीकृष्ण और महाबली सात्यकि आपका काम सिद्ध करने को सदा तत्पर रहते हैं। ये दोनों वीर अद्वितीय बलवान् हैं। ये दोनों आपके लिए देवताओं से भी युद्ध करने में पीछे हटने के नहीं। यादवों के साथ जैसे श्रीकृष्ण आपका कार्य सिद्ध करने में लगे हुए हैं, वैसे ही हम भीमसेन, अर्जुन और अस्त्रों के प्रयोग में निपुण नकुल तथा सहदेव भी आपके अधीन हैं। महाराज, इस प्रकार हम सब मिलकर आपकी कार्य-सिद्धि, धनलाभ और राज्य-विभव की वृद्धि के लिए या तो शत्रुओं का नाश करेंगे या समझौता कर लेंगे।

वैशम्पायन कहते हैं—राजा युधिष्ठिर ने भाइयों की इन बातों का अनुमोदन किया। अब युधिष्ठिर ने गन्धमादन पर्वत से जाने का विचार करके राजराजेश्वर कुबेर के स्थान की प्रदक्षिणा की। फिर वहाँ के भवन, नदी, सरोवर और उस पर्वत की रक्षा करनेवाले राक्षसों से युधिष्ठिर ने बिदा माँगी। जिस राह से पर्वत पर आये थे उधर, और उस पर्वत की ओर बारंबार

निहारकर युधिष्ठिर ने कहा—हे पर्वतराज, मैं अपने मित्रों के साथ जाकर, शत्रुओं को मारूँगा २० और राज्य पाकर फिर तप करने के लिए आकर तुम्हारे दर्शन करूँगा।

अब महाराज युधिष्ठिर अपने भाइयों और साथ रहनेवाले ब्राह्मणों के साथ उसी मार्ग से नीचे उतरे जिससे कि पर्वत पर चढ़े थे। जहाँ पर पहाड़ी झरने और दुर्गम स्थान थे वहाँ पर घटोत्कच आकर उन सबको लाद लेता था। पुत्र-तुल्य पाण्डवों को वहाँ से जाते देखकर महर्षि लोमश ने पिता की तरह अनेक अच्छे उपदेश किये। फिर वे पाण्डवों से विदा होकर पवित्र देवलोक को चले गये। आर्ष्टिषेण और लोमश के उपदेशों को शिरोधार्य करके रमणीय तीर्थ, २३ तपोवन और बड़े-बड़े स्वच्छ सरोवर आदि की सैर करते हुए पाण्डव वहाँ से चल दिये।

एक सौ सतहत्तर अध्याय

पाण्डवों का अनेक स्थानों में ठहरना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! अनेक झरने, दिग्गज, किन्नर और विचित्र पक्षियों से पूर्ण, सुखमय निवासभूमि गन्धमादन पर्वत को छोड़कर जाने में पाण्डवों को बड़ा कष्ट हुआ। आगे चलकर कुबेर के प्रिय कैलास पर्वत को देखकर वे फिर प्रसन्न हुए। वह पर्वत देखने में सफ़ेद मेघ के समान जान पड़ रहा था। धनुष और खड्ग आदि शस्त्र धारण किये हुए पुरुषश्रेष्ठ पाण्डव पृथ्वी के ऊँचे-नीचे भाग, सिंहों के रहने की गुफाएँ, गिरि-सेतु (पहाड़ी पुल), झरने, नीची जगहें, मृग और पक्षियों के रहने के स्थान महावन आदि की सैर करते और प्रसन्न होते हुए आगे बढ़ने लगे। रात हो जाने पर रमणीय वन, नदी, सरोवर, पर्वत-कंदरा आदि स्थानों में टिक भी रहते थे। इस तरह बहुत से दुर्गम प्रदेशों में ठहरते हुए पाण्डव क्रमशः कैलास पर्वत को लाँघकर वृषपर्वा के अत्यन्त रमणीय आश्रम में पहुँचे। महर्षि ने उन्हें देखकर उनका यथोचित स्वागत किया। पाण्डवों ने वहाँ ठहरकर अपनी थकन मिटाई और महर्षि को गन्धमादन पर रहने का सारा हाल विस्तार के साथ कह सुनाया।

उस पवित्र आश्रम में देवता और ऋषि रहते थे। उसमें एक रात सुख से रहकर पाण्डव लोग नारायण भगवान् के निवासस्थान बदरिकाश्रम में फिर पहुँचकर रहने लगे। देवता और सिद्धगण जहाँ आते-जाते रहते हैं उस कुबेर के प्रिय सरोवर के दर्शन से शोक-रहित १० होकर उस स्थान पर वे उसी तरह रहने लगे जिस तरह नन्दन वन में देवता विहार करते हैं।

एक महीने बदरीवन में बड़े सुख से रहकर फिर वे पूर्व-परिचित मार्ग से किरातराज सुबाहु के राज्य की ओर गये। धीरे-धीरे चीन, तुषार, दरद और अनेक रत्नों से पूर्ण कुलिन्द

देश तथा हिमालय के दुर्गम स्थान लाँघने पर सुबाहु का नगर उन्हें देख पड़ा। सुबाहु ने महा-बाहु पाण्डवों के आने का समाचार पाकर प्रसन्नतापूर्वक आगे बढ़कर उन्हें लिया और अभिनन्दन किया। सुबाहु से मिलकर और एक रात उनके यहाँ टिककर पाण्डव आगे बढ़े। वहाँ से उन्होंने घटोत्कच को विदा कर दिया। फिर विशोक, इन्द्रसेन आदि सेवकों तथा रसोइयों को और डेरे आदि लेकर आगे चलनेवाले नौकर-चाकरों को लिये हुए पाण्डव रथों पर बैठकर यमुना नदी के समीपवर्ती पर्वतराज की ओर चले। उस प्रस्रवण पर्वत पर पहुँचकर पाण्डवों ने देखा कि तरह-तरह के झरने झर रहे हैं; ऐसा जान पड़ता है कि पीले और लाल रङ्ग के शिखर बर्फ़ के कपड़े पहने हुए हैं। फिर विशाखयूप नाम से प्रसिद्ध स्थान पर पाण्डवों ने कुछ दिन तक निवास किया। वहाँ कुवेर के चैत्ररथ वन के तुल्य महावन में—सुखपूर्वक वराह, मृग आदि का शिकार करते हुए—वे एक साल तक ठहरे। उस वन में विचरते विचरते एक दिन भीमसेन ने पर्वतकन्दरा में पड़े हुए, मृत्यु के समान उग्ररूप, महाबली और भूखे विशाल अजगर को देखा। वह अजगर भीमसेन की देह में लिपट गया। उसके आक्र-मण से भीमसेन खेद और मोह के वश होकर बहुत पीड़ित हुए। पीछे धर्मराज युधिष्ठिर ने आकर उन्हें उसके मुँह से छुड़ाया।

इस तरह विचरते-विचरते बारहवाँ वर्ष जब लगा तब दिव्यशोभायुक्त धनुर्वेद के ज्ञाता पाण्डव उस चैत्ररथवन-सदृश वन से चलकर क्रमशः मरुभूमि और सरस्वती नदी के तट पर पहुँचे। वहाँ से द्वैतवन में रहने के लिए आगे बढ़े। सरस्वती के किनारे का वन पकरिया, २१ रुद्राक्ष, बेत, बेर, खैर, मौलसिरी, बेल, इंगुदी, पीलु, शमी और करीर आदि के वृक्षों से परम रमणीय देख पड़ता था। पाण्डवों को वहाँ पर आये देखकर तपस्वी, जितेन्द्रिय, आचार-परायण, समाधिनिष्ठ, आसन और कमण्डलु लिये, अनेक ऋषि-मुनि उनके पास आने लगे। उन ऋषियों के दाँत बुढ़ापे के मारे गिर गये थे, इससे वे पत्थर से कूटकर कन्द-मूल-फल खाते थे। पाण्डव-गण द्वैतवन में पहुँचकर बहुत प्रसन्न हुए। देवता, यक्ष, गन्धर्व, महर्षिगण के प्रिय निवासस्थान सरस्वती-तट पर पहुँचकर पाँचों पाण्डव बड़े आनन्द से रहने और विचरने लगे। २४

एक सौ अठहत्तर अध्याय

अजगर के उपाख्यान का आरम्भ

जनमेजय ने कहा—ब्रह्मन्, परम पराक्रमी भीमसेन में दस हज़ार हाथियों का बल था; तब फिर उस अजगर से उनके डरने का कारण क्या था? जिन्होंने बाहु-बल के अभिमान से

उत्साहित होकर पुलस्त्य के पुत्र कुवेर को भी युद्ध के लिए ललकारा, जिन्होंने यक्ष-राक्षस आदि रक्षकों को मारकर सौगन्धिक कमलों से पूर्ण दिव्य सरोवर को मथ डाला, उन्हीं भीमसेन के बारे में आप कहते हैं कि वे अजगर की विपत्ति में पड़कर डर से व्याकुल हो गये! इसलिए यह वृत्तान्त विस्तार से सुनने के लिए मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है।

वैशम्पायन ने कहा—महाराज, सुनिए। उग्र धनुष धारण करनेवाले महात्मा पाण्डव वृषपर्वा ऋषि के आश्रम से चलकर उस वन में आये और रहने लगे। उस वन में अनेक विचित्र पदार्थ, देखनेवाले को, आश्चर्य से चकित कर देते थे। एक दिन कमर में तलवार लगाकर, धनुष-बाण हाथ में लेकर, भीमसेन उस वन की सैर करने निकले। वे अकेले ही टहलते-टहलते हिमालय के मनोहर वनों के भीतर घुस पड़े। उन्होंने देखा कि उस हिमालय के ऊपर अनेक स्थानों में देवता, ऋषि, सिद्ध, अप्सरा आदि विचर रहे हैं। चकोर, उपचक्र, जीवंजीवक, कोकिल, भृङ्गराज आदि पक्षी जगह-जगह पर अपनी बोलियाँ सुना रहे हैं। नित्य फूलने-फलनेवाले, घनी छायावाले, बर्फ़ की ठण्डक से हरे-भरे अनेक वृक्ष मन और नेत्रों के आनन्द को बढ़ा रहे हैं। पहाड़ी झरनों के, वैडूर्यमणि के समान, स्वच्छ ठण्डे पानी में हंस तथा कारण्डव पक्षी तैर रहे हैं। हरिचन्दन, कालागुरु और देवदारु के वृक्षों के वन दूर से बादलों की घटा के समान जान
१० पड़ते हैं। इस प्रकार पर्वत की अपूर्व शोभा देखते हुए भीमसेन शिकार की खोज में आगे बढ़ते चले जा रहे थे। वे बाण चलाकर अनेक मृगों का शिकार करते हुए मरुभूमि के समतल स्थान में पहुँचे और वहाँ घूमने लगे। भीमसेन में दस हज़ार हाथियों का बल था। वे सैकड़ों बली मनुष्यों को मारनेवाले, सिंह और शार्दूल के समान पराक्रमी तथा बलवान् माने जाते थे। इस समय महाबली भीम [सिंह, वराह, मृग, भैंसे आदि जानवरों को मारने के लिए पीछा करते समय] कभी वृक्षों को वेग से उखाड़कर—तोड़कर—इधर-उधर गिरा देते थे; कभी पहाड़ों के शिखरों की शिलाओं को पैरों से रौंदकर चूर-चूर कर डालते थे; कभी ताल ठोंककर, गरजकर अपने सिंहनाद से उस निर्जन वन को और आसपास के स्थानों को प्रतिध्वनित करते फिरते थे। [वे इधर से उधर कूदते-फाँदते फिरते थे।] महाबली सिंह और हाथी भीमसेन के भयङ्कर शब्द से घबरा उठे। वे डर के मारे पर्वत की कन्दराओं से निकलकर इधर-उधर भागने लगे। वनचर मृगों की खोज में पैदल चलते-चलते भीमसेन कभी खड़े हो जाते थे, कभी बैठ
२० जाते थे और कभी फिर दौड़ पड़ते थे। फिर उन्होंने भयानक सिंहनाद किया। उस अद्भुत शब्द को सुनकर वन के सब प्राणी डर गये। गुफाओं में पड़े हुए बड़े-बड़े अजगर और विषैले साँप भी निकलकर भागने लगे। भीमसेन भी मृगों का पीछा करने लगे।

देवतुल्य महाबली भीमसेन ने कुछ दूर आगे जाकर देखा कि एक बहुत बड़ा भयङ्कर अजगर एक दुर्गम पहाड़ी स्थान में पड़ा हुआ है। उसका शरीर इतना बड़ा और मोटा है कि

सारी गुफा उससे भरी हुई है। उसका शरीर पहाड़ ऐसा है; अङ्ग चित्र-विचित्र हैं। रङ्ग हल्दी का सा है। मुँह गुफा के समान है। उसमें चार दाँत हैं। दोनों आंखें चमकीली और लाल हैं। वह अजगर भयानक फुफकार से मानों सब जीवों को डराता हुआ यमराज की तरह जीभ लपलपा रहा है। उसे देखकर कोई भी ऐसा नहीं जो डर न जाय। वह भूखा अजगर भीमसेन को देखते ही उन पर झपट पड़ा। उसने बलपूर्वक भीमसेन के दोनों हाथ लपेट लिये। वरदान के कारण, उस अजगर ने ज्योंही भीमसेन को छुआ त्योंही वे अचेत से हो गये। दस हज़ार हाथियों का बल रखनेवाले भीमसेन के हाथों की शक्ति जाती सी रही। तेजस्वी भीमसेन उस अजगर के वश में होकर अपने को उसके बन्धन से नहीं छुड़ा सके। महाबाहु, सिंह के ऐसे ऊँचे ३० और दृढ़ कन्धोंवाले भीमसेन, बलहीन और मोहित से हो गये। इधर-उधर फड़ककर उन्होंने छूटने की बहुत चेष्टा की, पर सब व्यर्थ हुई। ३३

एक सौ उन्नासी अध्याय

युधिष्ठिर का घबराकर वहाँ जाना और भीमसेन की दशा देखना

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, तेजस्वी भीमसेन को जब अजगर ने पकड़ लिया तब उसके अद्भुत बल को देखकर वे बहुत चकराये। भीमसेन ने उससे कहा—हे अजगर, हे श्रेष्ठ नाग, तुम कौन हो? मुझे पकड़कर क्या करोगे? मैं धर्मराज का छोटा भाई, पाण्डु का पुत्र, भीमसेन हूँ। मुझमें दस हज़ार हाथियों का बल स्वाभाविक है। मैंने बड़े-बड़े बली सिंह, बाघ, हाथी, भैंसे आदि प्राणियों को मार डाला है। महाबली नाग, राक्षस और निशाचर मेरे वेग और बाहुबल को नहीं सह सकते। आश्चर्य है कि तुमने मुझे किस तरह अपने वश में कर

लिया। मैं बार-बार चेष्टा करता हूँ, परन्तु तुम्हारे हाथ से नहीं छूट पाता। क्या तुममें किसी विद्या या वरदान का बल है? मुझे मालूम हो गया, मनुष्य का बल असत्य और निकम्मा है; क्योंकि तुमने मेरे प्रचण्ड बल को सहज ही नीचा दिखा दिया।

भीम-पराक्रमी भीमसेन के यों कहने पर उस अजगर ने उनके दोनों हाथ छोड़कर उनके सारे शरीर को जकड़ लिया। अब वह कहने लगा—हे महाबाहु, मैं बहुत दिन से भूखा था; बड़ी बात हुई जो मेरे आहार के लिए देवताओं ने तुमको यहाँ भेज दिया। क्योंकि प्राणियों को अपने जीवन पर बड़ी ममता होती है; वे बिना दैव की प्रेरणा के आपसे काल के मुँह में १० नहीं जाते। हे शत्रुदमन, मुझे जिस तरह यह साँप की योनि मिली है सो सुन लेना तुम्हारे लिए बहुत आवश्यक है। वह सब हाल कहता हूँ, सुनो। एक महर्षि के कोप से मेरी यह दशा हुई है। उस शाप का अन्त होने की इच्छा से मैं अपना सब हाल कहता हूँ। तुमने प्रसिद्ध राजर्षि नहुष का नाम तो अवश्य सुना होगा। मैं ही वह तुम्हारे पूर्वपुरुष आयु का पुत्र नहुष हूँ। होनहार के कारण ब्राह्मणों का अपमान करने से, महर्षि अगस्त्य के शाप से, मुझे यह नीच योनि मिली है। तुम बहुत ही प्रियदर्शन और मेरे वंश के लड़के हो, परन्तु मैं तुम्हें भक्षण करूँगा; दैव का विधान ही ऐसा है। मेरा यह नियम है कि दिन के छठे हिस्से में हाथी, भैंसा आदि जो प्राणी मिल जाता है उसे मैं नहीं छोड़ता, खा जाता हूँ। मैंने केवल अपने बल से तुमको नहीं पकड़ा है, तुम तो वरदान के प्रभाव से ही मेरे हाथ में आ गये हो। मैं [अपने अपराध के कारण] शाप पाकर जब इन्द्र के आसन से भ्रष्ट होकर स्वर्ग के विमान से नीचे गिरने लगा तब मैंने शाप से अपने छुटकारे के लिए महर्षि अगस्त्य से प्रार्थना की। महा-तेजस्वी अगस्त्य को मुझ पर दया आ गई। उन्होंने मुझसे कहा—राजन्, कुछ समय बीतने पर शाप से तुम्हारा छुटकारा हो जायगा। मुनि के यों कह चुकने पर मैं मनुष्य-लोक में गिर पड़ा, पर मेरी स्मरण-शक्ति नष्ट नहीं हुई। इसी कारण मैं अपने पुराने इतिहास को २० अभी तक नहीं भूला। महर्षि ने कहा था कि जो कोई प्राणी, धर्म और अधर्म का निर्णय करके, तुम्हारे प्रश्नों का ठीक उत्तर दे सकेगा वही तुमको शाप से छुड़ावेगा। इसके सिवा असाधारण बलवान् प्राणी को भी जो तुम पकड़ लोगे तो उसी घड़ी उसका सारा बल जाता रहेगा। प्रीति और करुणा के कारण इतना कहकर वे मुनिवर चले गये। भीमसेन, मैं बड़ा ही पापी हूँ। तब से सर्प योनि पाकर, शाप से छूटने के समय की राह देखता हुआ, इस अपवित्र नरक में पड़ा हुआ हूँ।

तब भीमसेन ने कहा—हे महासर्प, मैं न तो तुम पर रोष करता हूँ और न मुझे [यहाँ आने की अपनी मूर्खता का ही] पछतावा है; क्योंकि मनुष्य को जो सुख या दुःख मिलनेवाला होता है, वह टाले नहीं टल सकता। इसलिए दुःख मिलने पर या सुख नष्ट होने पर खेद न

करना चाहिए। दैव (होनहार) के आगे पौरुष काम नहीं दे सकता, मैं दैव को ही श्रेष्ठ समझता हूँ; पौरुष व्यर्थ है। देखो, इस प्रकार मेरा बाहुबल नष्ट होने का और अकारण इस शोचनीय अवस्था में मेरे पड़ने का कारण दैव ही है। मैं अपने नष्ट होने के लिए शोक नहीं करता। मुझे तो दुःख इस बात का है कि राज्य से भ्रष्ट भाइयों को मैं वन में छोड़ आया हूँ। यह हिमवान् पर्वत अत्यन्त दुर्गम है और इसमें बड़े भयानक यक्ष तथा राक्षस भरे पड़े हैं। मेरे भाई मेरी बाट जोहते-जोहते बहुत ही विकल हो जायँगे। वे मेरा पता लगाने के लिए चारों ओर दौड़ते फिरेंगे और जब मेरे मरने की ख़बर पावेंगे तब दुःखित होकर राज्य पाने की आशा और उद्योग छोड़ देंगे। वे सब धर्मात्मा हैं; मैंने ही उन्हें राज्य पाने का उद्योग करने के लिए अब तक उत्साहित कर रक्खा था। या अर्जुन मेरे मरने से खेद न करेंगे; क्योंकि वे बुद्धिमान् और सब अस्त्रों के ज्ञाता हैं। सब देवता, गन्धर्व, और राक्षस मिलकर भी उनको परास्त नहीं कर सकते। वे महाबली महाबाहु इन्द्र को भी सहज ही उनके राज्य से भ्रष्ट कर सकते हैं। कपटी, सब लोगों के द्वेषी, दंभ और मोह के वशीभूत दुर्योधन को राज्य-भ्रष्ट कर देना तो उनके लिए कोई बड़ी बात नहीं; पर मुझे सबसे बढ़कर चिन्ता माता कुन्ती की है। वे सदा की दुखिया हैं। पुत्रों में ही उनके प्राण धरे हुए होंगे। वे सदा चाहती हैं कि हम लोग औरों (दुर्योधन आदि) से अधिक महत्व प्राप्त करें। हे सर्प, उन अनाथ कुन्ती के वे मनोरथ मेरे न रहने पर कैसे पूरे होंगे ? उनके सिवा छोटे भाई नकुल और सहदेव का भी मुझे बड़ा ख़याल है। वे बड़े भाइयों के आज्ञाकारी हैं। मेरे बाहुबल से रक्षित होने के कारण वे भी पौरुष के कामों में उत्साह दिखाया करते हैं। मेरे न रहने से वे भी उत्साह, वीर्य और पराक्रम से हीन हो जायँगे। हे जनमेजय, भीमसेन इस प्रकार विलाप करने लगे। ३०

सर्प ने भीमसेन को इतना जकड़ लिया था कि वे हिल-डुल नहीं सकते थे। उधर महाराज युधिष्ठिर अनेक अमङ्गलसूचक घोर उत्पातों को देखकर बहुत ही व्याकुल हुए। उन्होंने देखा, दिशाओं में आग सी लग रही है। डरी हुई सियारी, उनके आश्रम के पास दाहनी तरफ़, रो रही है। एक पंख, एक नेत्र और एक चरणवाली, घोर रूपवाली वत्तक सूर्य की ओर देखकर मुँह से ख़ून उगल रही है। रूखी, प्रचण्ड, कंकड़ उड़ाती हुई हवा ज़ोर से चल रही है। दाहनी ओर अशुभसूचक मृग और पक्षी विकट शब्द कर रहे हैं। पीछे की ओर काले रंग का कौआ 'जाओ जाओ' कहता हुआ काँव-काँव कर रहा है। बीच-बीच में शुभसूचक दाहना हाथ भी फड़कता जाता है। दिल धड़कता है और बायाँ पैर काँपता सा है। अनिष्टसूचक बाईं आँख का फड़कना भी देख पड़ता है। ४०

बुद्धिमान् धर्मराज इन भयसूचक लक्षणों को देखकर घबरा गये। उन्होंने द्रौपदी से पूछा—पाञ्चाली, भीमसेन कहाँ हैं ? द्रौपदी ने कहा—भीमसेन को गये तो बड़ी देर हुई।

द्रौपदी के ये वचन सुनकर युधिष्ठिर ने अर्जुन को द्रौपदी की रक्षा का भार सौंपा, और नकुल तथा सहदेव को ब्राह्मणों की रक्षा करते रहने की आज्ञा दी। फिर वे भीमसेन को खोजने के लिए पुरोहित धौम्य के साथ चले। उस आश्रम से भीमसेन के पैरों के निशान देखते-देखते, उन्हीं के सहारे, वे घोर वन के भीतर पहुँचे और वहाँ भीमसेन को ढूँढ़ने लगे। पूर्व ओर जाने पर उन्होंने बहुत से हाथियों को देखा। वहाँ सैकड़ों सिंह और हज़ारों मृग मरे पड़े थे। वहीं पर भीमसेन ५० के पैरों के चिह्न देख पड़े। युधिष्ठिर उधर ही आगे बढ़े। शिकार खेलते समय भीमसेन के दौड़ने से टूटे हुए पेड़ राह में इधर-उधर पड़े थे। इन्हीं चिह्नों से पता चलाते हुए युधिष्ठिर उस गुफा में पहुँच गये। वह स्थान बहुत ही विकट था। वहाँ रूखी और गर्म हवा चल रही थी। वहाँ के वृक्ष पत्तों से ख़ाली सूखे ठूँठ थे। वह ऊसर और निर्जन स्थान कँटीले वृक्षों से भरा हुआ था और पत्थरों तथा बिना शाखाओं के छोटे वृक्षों से दुर्गम था। युधिष्ठिर ने देखा, भीमसेन के शरीर ५४ में एक बड़ा अजगर लिपटा हुआ है जिसके मारे वे हिल-डुल नहीं सकते।

एक सौ अस्सी अध्याय

युधिष्ठिर और अजगर का संवाद

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, बुद्धिमान् धर्मराज अपने प्यारे भाई भीमसेन को इस दशा में देखकर कहने लगे—हे भीमसेन, तुम इस विपत्ति में कैसे पड़ गये? और, पहाड़ ऐसे डील-डौलवाला यह अजगर कौन है?

बड़े भाई युधिष्ठिर को देखकर भीमसेन ने आदि से अन्त तक अपने बन्धन का वृत्तान्त कह सुनाया। भीमसेन ने कहा—हे आर्य, इस महासर्प ने मुझे खा डालने के लिए पकड़ा है। ये महाप्रतापी राजर्षि नहुष हैं।

तब युधिष्ठिर ने [सर्परूपधारी नहुष से] कहा—हे बड़ी आयुवाले, तुम हमारे इन पराक्रमी भाई को छोड़ दो। हम तुम्हारी भूख मिटाने के लिए और तरह का आहार देंगे।

साँप ने कहा—हे धर्मराज, चङ्गुल के भीतर आये हुए आहार के रूप में मैंने इस राजकुमार को पाया है। इसलिए तुम यहाँ न ठहरो, चले जाओ; नहीं तो कल तुमको भी खा जाऊँगा। मेरा नियम यही है कि जो मेरे अधिकार के इस देश में आवेगा, उसे मैं खा जाऊँगा। तुम भी मेरे अधिकृत स्थान में आने के कारण मेरा आहार हो चुके हो। बहुत दिनों के बाद खाने के लिए मैंने तुम्हारे भाई को पाया है, इस कारण मैं इसको नहीं छोड़ सकता। और, अन्य आहार के लिए भी मेरी रुचि नहीं है।

युधिष्ठिर ने कहा—हे साँप, मैं तुमसे पूछता हूँ; सच कहो, तुम देवता, दैत्य या साँप, कौन हो? तुम मेरे भाई को निगल जाने के लिए क्यों तैयार हो? क्या लाकर देने से या क्या जानने से तुम सन्तुष्ट हो सकते हो? मैं तुमको क्या आहार दूँ? किस तरह तुम भीमसेन को छोड़ सकते हो? १०

साँप ने कहा—हे निष्पाप, मैं तुम्हारा पूर्वपुरुष राजा नहुष हूँ। मैं चन्द्रमा से पाँचवीं पीढ़ी में पैदा हुआ था। मेरे पिता का नाम आयु था। यज्ञ, तप, स्वाध्याय, इन्द्रियदमन और पराक्रम के प्रभाव से मुझे त्रिलोकी का ऐश्वर्य अर्थात् इन्द्रपद प्राप्त हुआ था। उस ऐश्वर्य को पाने से मुझे ऐसा घमण्ड हो गया कि मैं एक हज़ार ब्राह्मणों के कन्धे पर पालकी में बैठकर चलने लगा। मैं ऐश्वर्यमद में ऐसा अन्धा हो गया कि ब्राह्मणों का अनादर करने लगा। फल यह हुआ कि महर्षि अगस्त्य ने क्रोध करके मेरी यह दशा कर दी। मुझे उसका स्मरण अभी तक बना हुआ है। उन्हीं महात्मा अगस्त्य की कृपा से अभी तक मुझे अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त याद है। उन्हीं अगस्त्य के अनुग्रह से मैंने दिन के छठे भाग में तुम्हारे भाई को आहार के रूप में पाया है। मैं इसे नहीं छोड़ूँगा। इसके बदले मैं और आहार भी नहीं चाहता। हाँ, मैं तुमसे कुछ प्रश्न करता हूँ; जो तुम उनका ठीक उत्तर दे सकोगे तो मैं तुम्हारे भाई भीमसेन को छोड़ दूँगा।

युधिष्ठिर ने कहा—हे अजगर, तुम जो चाहे प्रश्न करो। मैं उत्तर दूँगा। सम्भव है, मैं उन उत्तरों से तुमको प्रसन्न कर सकूँ; किन्तु पहले यह बताओ कि ब्राह्मण के लिए जिसे जानना ज़रूरी है उस केवल अद्वितीय पुरुष को तुम जानते हो या नहीं? तुम्हारा उत्तर सुनकर मैं तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दूँगा।

अजगर ने कहा—बातों से तो तुम अलौकिक बुद्धिमान् जान पड़ते हो। इसलिए पहले २० यह बताओ कि ब्राह्मण कौन है और उसके लिए जानना क्या ज़रूरी है? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—सत्य, दान, क्षमा, शील, आनृशंस्य, तप और दया आदि सद्गुण जिसमें देख पड़ें, वही ब्राह्मण (ब्रह्मविद्) है। और, हे सर्प, जिसे जान लेने से मनुष्य शोकशून्य हो जाता है, वह सुख-दुःख-रहित परब्रह्म ही जानने की वस्तु है। अब तुम अपने प्रश्न कहो। सर्प ने कहा—हे धर्मराज, अभ्रान्त वेद चारों वर्णों का हित करता है। वह वेद जिनका प्रतिपादन करता है ऐसे सत्य, दान, क्षमा, आनृशंस्य, अहिंसा, दया आदि सद्गुण शूद्र में भी देख पड़ते हैं। तो फिर ब्राह्मण और शूद्र में विशेषता क्या रही? और, तुमने कहा है कि सुख-दुःख-रहित पदार्थ जानने की वस्तु है किन्तु सुख-दुःख से रहित तो कोई पदार्थ देख ही नहीं पड़ता।

युधिष्ठिर ने कहा—हे सर्प, जिस शूद्र में पहले कहे गये सत्य आदि गुण हैं, वह शूद्र शूद्र नहीं है। और जिस ब्राह्मण में वे गुण नहीं हैं, वह ब्राह्मण ब्राह्मण ही नहीं। मतलब यह कि केवल वंश से जाति का निश्चय नहीं होता। हे सर्प, सत्य आदि वेदोक्त लक्षण जिस ब्राह्मण में नहीं हैं वह यथार्थ में शूद्र है। और जिस शूद्र में वे लक्षण देख पड़ें वह यथार्थ में ब्राह्मण है। तुमने यह कहा कि सुख-दुःख से रहित कोई वस्तु नहीं है, क्योंकि सुख और दुःख सर्वत्र देख पड़ते हैं। किन्तु जैसे शीत (जल) के भीतर गर्मी और उष्ण (अग्नि) के भीतर ठण्डक नहीं होती, वैसे ही सुख और दुःख से हीन वस्तु भी, जिसका अनुभव साधारणतः नहीं होता, कहीं है। तुम चाहे जो समझते हो, पर मेरी समझ तो यही है कि जैसे ठण्डक और गर्मी-रहित, अनुभव से परे, किसी पदार्थ की सत्ता स्वीकार की जाती है, वैसे ही सुख-दुःख-शून्य ज्ञेय पदार्थ का होना भी स्वीकार करना पड़ेगा।

सर्प ने कहा—हे आयुष्मन्, यदि वेदोक्त आचार से ही ब्राह्मणत्व सिद्ध होता है, तो ३० फिर जब तक मनुष्य में उस आचार के पालन की शक्ति नहीं आती, तब तक जातिविभाग वृथा है।

युधिष्ठिर ने कहा—हे बुद्धिमान् सर्प! जन्म, मरण, भाषा और मैथुन आदि में सब मनुष्य समान हैं। सभी सब स्त्रियों में सदा सन्तान उत्पन्न किया करते हैं। इस कारण, मेरे मत में, सब वर्णों का इस प्रकार का संकर (मिश्रण) होने के कारण जाति की परीक्षा होनी अत्यन्त कठिन है। ऋषियों का कहना है कि यज्ञ करनेवाले ही ब्राह्मण हैं। इसी कारण तत्त्वदर्शी लोगों ने चरित्र को ही प्रधान यज्ञ माना है। 'नाल' काटने के पहले पुरुष का जातकर्म संस्कार

कर दिया जाता है। उस समय उस बालक की माता सावित्री और पिता आचार्य कहा जाता है। इस जातिसम्बन्धी सन्देह के समय के लिए ही स्वायंभुव मनु ने व्यवस्था दी है कि पुरुष जब तक वेद नहीं पढ़ता—गायत्री का उपदेश नहीं पाता—तब तक शूद्र के समान रहता है। हे सर्प, यदि विधिपूर्वक यज्ञोपवीत आदि संस्कार हो जाने पर भी मनुष्य वेद में कहे गये आचार का पालन नहीं करता तो उसमें वर्णसङ्कर के भाव को ही प्रबल मानना चाहिए। इसी से मैं पहले कह चुका हूँ कि जो वेदोक्त आचार का पालन करता है—जिसका चरित्र पूर्ण रूप से शुद्ध है—वही ब्राह्मण है।

सर्प ने कहा—हे युधिष्ठिर, मैंने तुम्हारा कथन सुन लिया। मैं जान गया कि जो कुछ जानना चाहिए उसे तुम अच्छी तरह जानते हो। इसलिए [प्रसन्न होकर, प्रतिज्ञा के अनुसार,] मैं तुम्हारे भाई को छोड़े देता हूँ। ३८

एक सौ इक्यासी अध्याय

युधिष्ठिर का नहुष से उपदेश लेना

युधिष्ठिर ने कहा—हे सर्प, सब वेदों और वेदाङ्गों को तुम बहुत अच्छी तरह जानते हो। इसलिए बताओ, कौन सा कर्म करने से अच्छी गति मिलती है?

सर्प ने कहा—हे भरतश्रेष्ठ, मेरी समझ से तो जो मनुष्य सुपात्र को दान करता है, सत्य और प्रिय वचन बोलता है और चाहे अपने प्राण चले जायँ पर जीवहिंसा नहीं करता, वही स्वर्ग को जाता है।

युधिष्ठिर ने पूछा—हे सर्प, दान और सत्य इन दोनों में कौन मुख्य है? अहिंसा और प्रिय बोलने में किसका दर्जा बड़ा है?

सर्प ने कहा—हे आयुष्मन्! कार्य देखकर ही दान, सत्य, अहिंसा, प्रिय वचन बोलना आदि तत्त्व विषयों का गौरव या लाघव बताया जा सकता है। कहीं पर दान की अपेक्षा सत्य की, और कहीं सत्य की अपेक्षा दान की महिमा पाई जाती है। कहीं प्रिय वाक्य बोलने की अपेक्षा अहिंसा का और कहीं अहिंसा की अपेक्षा प्रियवादी होने का महत्त्व देखा जाता है। इस प्रकार कार्य के अनुसार ही इन सद्गुणों की प्रधानता निर्दिष्ट की जाती है। राजन्, तुम्हें यदि और कुछ पूछना हो तो पूछो, मैं उत्तर देने के लिए तैयार हूँ।

युधिष्ठिर ने कहा—हे सर्प, यह देह छूट जाने पर मनुष्य स्वर्ग में जाकर किस तरह अपने कर्म से मिली हुई बुरी या भली योनि में जाता है? शब्द आदि विषयों का उपभोग ही किस तरह करता है?

सर्प ने कहा—हे युधिष्ठिर, अपने कर्मों के फल से मनुष्ययोनि, स्वर्गवास अथवा पशु-पक्षी-कीड़े आदि की योनि, ये तीन गतियाँ मिलती हैं। जो कोई हिंसा और आलस्य छोड़कर १० दान आदि सत्कार्य करता है उसे स्वर्गलोक मिलता है। यदि मनुष्य के पुण्य और पाप बराबर होते हैं तो उसे मनुष्ययोनि मिलती है और पाप अधिक होते हैं तो कीट-पतङ्ग आदि की तिर्यग्योनि। इसमें विशेषता यह है कि जो सदा काम-क्रोध-हिंसा-लोभ आदि बुरी प्रवृत्तियों के वशीभूत रहता है वह मनुष्यत्व से भ्रष्ट होकर तिर्यग्योनि में जन्म लेता है। बहुत जीव तिर्यग्योनि से छुटकारा पाकर मनुष्ययोनि में जन्म लेते हैं। कुछ गाय, घोड़े आदि जीव पशु-योनि से एकदम देवयोनि भी पा जाते हैं। धर्मराज, यह जीव कर्मानुसार अपने को ऊपर पहुँचाता है और नीचे भी ढकेल देता है। देहाभिमानी आत्मा फल की इच्छा से बारबार जन्म लेता है और देह के साथ फल भोगता है। किन्तु जो ज्ञानी पुरुष हैं वे विषयवासना से बचकर एकमात्र नित्य परमेश्वर में ही आत्मा को स्थापित करते हैं; अर्थात् मुक्ति चाहते हैं।

युधिष्ठिर ने पूछा—हे सर्प, आत्मा किस तरह शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का अलग-अलग भोग करता है? तुम क्या एक साथ सब विषयों का उपभोग नहीं करते?

सर्प ने कहा—हे युधिष्ठिर, यह आत्मा स्थूल और सूक्ष्म शरीरों का आश्रय लेने पर इन्द्रियों से युक्त होकर, ईश्वरीय विधान के अनुसार, विषय-भोग करने में समर्थ होता है। ज्ञान, बुद्धि, मन, ये ही तीन आत्मा के भोगसाधन का सामान 'करण' अर्थात् अन्तःकरण हैं [इन्हीं को सूक्ष्म शरीर भी कहते हैं]। जीवात्मा अपने आश्रयस्थान 'हृदय' से निकलकर, इन्द्रिया-२० सक्त मन की सहायता से, इन सब विषयों को ग्रहण करता है। विषयों का ग्रहण करने के लिए मन को नियुक्त करना बुद्धि का काम है। इसी कारण एक साथ सब विषयों का उपभोग किसी तरह सम्भव नहीं है। बुद्धि भी स्वाधीन नहीं है। जीवात्मा दोनों भौंहों के बीच की जगह में रहकर विविध विषयों में श्रेष्ठ और निकृष्ट बुद्धि को लगाता है; तथापि बुद्धि के साथ जीवात्मा का कोई संबंध नहीं है। दोनों अलग-अलग हैं; क्योंकि युक्ति और अनुभव के द्वारा किसी विषय को समझने के बाद ही जिस ज्ञान का उदय होता है, उसी से जीवात्मा का अस्तित्व अलग प्रमाणित होता है।

युधिष्ठिर ने कहा—हे नागराज, आपकी बातें सुनने से जान पड़ता है कि आप मन और बुद्धि का निरूपण करना अध्यात्म-विद्या के ज्ञाताओं का मुख्य काम समझते हैं। इसलिए बताइए कि मन और बुद्धि क्या हैं?

सर्प ने कहा—बुद्धि तो आत्मा की नितान्त अनुगत और आश्रित है। आत्मचेतना से युक्त होकर बुद्धि, कार्य द्वारा, आत्मा के वश में हो जाती है*। विषय और इन्द्रिय जब परस्पर

* जीवात्मा पर जब माया अपना प्रभाव डालती है तब वह बुद्धि का आश्रय लेता है।

संयुक्त होते हैं तब वे अच्छी या बुरी बुद्धि पैदा करते हैं। किन्तु इस तरह मन की सृष्टि करनेवाला कोई नहीं है। बुद्धि में सुख या दुःख पैदा करने की कोई सामर्थ्य नहीं है; यह सामर्थ्य तो मन में ही है। इस प्रकार मन में और बुद्धि में जो अन्तर है वह स्पष्ट समझ में आ जाता है। धर्मराज, तुम भी बुद्धिमान् हो। बताओ, इस विषय में तुम्हारी सम्मति क्या है?

युधिष्ठिर ने कहा—सर्प, तुम्हारा ज्ञान और बुद्धि सब मनुष्यों की अपेक्षा उन्नत है; इसी कारण जानने योग्य विषयों में तुम्हें यथेष्ट जानकारी भी है। फिर मुझसे इस विषय में सम्मति क्यों लेते हो? मुझे एक बड़ा ही आश्चर्य मालूम पड़ता है। वह यह कि सर्वज्ञ और स्वर्गवासी होने पर भी तुमसे यह भूल कैसे हो गई? [मुझे विश्वास नहीं होता कि तुमने ब्राह्मणों का अनादर किया होगा। ऐसा अनुचित कर्म तुमसे कैसे बन पड़ा?]

साँप ने कहा—हे धर्मराज, मैं समझता हूँ कि अत्यन्त शूर और बुद्धिमान् पुरुष भी ऐश्वर्य के मद में अन्धे हो जाते हैं। ख़ासकर विषय-सुख के वशीभूत हो जाने पर हर एक व्यक्ति को भले-बुरे का ज्ञान नहीं रहता। इसलिए धन और ऐश्वर्य के मद में उन्मत्त होकर मेरा ऐसा ३० काम कर बैठना कुछ विचित्र नहीं। इस समय ऐश्वर्य से भ्रष्ट होने पर मुझे ज्ञान हुआ है; इसलिए मैं तुमको भी सावधान किये देता हूँ कि ऐश्वर्य पाकर सदा सावधान रहना। हे युधिष्ठिर, [तुम्हारा चरित्र बहुत ही अच्छा है।] आज मुझे इस दारुण शाप से छुड़ाकर तुमने मेरा बड़ा भारी उपकार किया। मैं पूर्वजन्म में, विमान पर चढ़कर, स्वर्ग में विचरा करता था। ऐसा ऐश्वर्य पाकर मैं मदान्ध हो उठा। मैंने किसी की परवा नहीं की। देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नाग, ब्रह्मर्षि आदि त्रैलोक्य की सब प्रजा मुझे 'कर' देती थी। मैं असाधारण दृष्टिशक्ति के प्रभाव से देखते ही सब प्राणियों के तेज को हर लेता था। हज़ारों ब्रह्मर्षि मेरी पालकी उठाते थे। उसी दुर्नीति के कारण मैं इस तरह श्री-भ्रष्ट हो गया हूँ।

एक समय महर्षि अगस्त्य मेरी पालकी में लगे हुए थे। मैंने उनको लात मार दी, तब उन्होंने क्रोध करके मुझे शाप दे दिया। कहा, तू शीघ्र श्री से भ्रष्ट होकर अजगर हो जा। मैं उसी दम श्री-भ्रष्ट होकर विमान से नीचे गिर पड़ा। गिरते समय मुझे सर्पयोनि मिली, तब मुझे होश आया। मैं महर्षि से गिड़गिड़ाकर कहने लगा—भगवन्, बुद्धि भ्रष्ट हो जाने के कारण मुझसे यह अपराध हो गया है। इसलिए क्षमा करके मुझे शाप से छुड़ा दीजिए। दयालु मुनि ने कहा—धर्मराज युधिष्ठिर तुमको शाप से छुड़ावेंगे। राजन्, तुम्हारे घोर अभिमान पाप का

४० प्रायश्चित्त होने पर शाप से छुटकारा होगा और तुम फिर स्वर्ग में आ जाओगे।

उस समय उनका तपोवल देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य मालूम पड़ा था। इसी कारण मैंने तुमसे ब्रह्म और ब्राह्मण के बारे में पहले प्रश्न किया था। राजन्! मनुष्य सत्य, इन्द्रिय-दमन, तपस्या, दान, अहिंसा और नित्य धर्म का आचरण करने से ही अपने अभीष्ट को सिद्ध कर सकता है; जाति या कुल से कुछ नहीं होता। अब मैं स्वर्ग को जाता हूँ। तुम्हारा और भीमसेन का भला हो।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, अब राजर्षि नहुष ने वह अजगर का शरीर छोड़ दिया। वे दिव्य शरीर धारण करके स्वर्गलोक को चल दिये। धर्मराज युधिष्ठिर भी भीमसेन और धौम्य पुरोहित के साथ अपने आश्रम को लौट गये। उन्होंने वहाँ जाकर सब भाइयों और ब्राह्मणों के आगे सब हाल कहा। अर्जुन, नकुल, सहदेव, द्रौपदी और सब ब्राह्मण यह हाल सुनकर बहुत लज्जित हुए। पाण्डवों के हित की इच्छा रखनेवाले ब्राह्मणों ने भीमसेन के इस दुस्साहस की निन्दा करके कहा—अब कभी ऐसा मत करना। विपत्ति से छूटे हुए भीमसेन को पाकर सब

४९ पाण्डव प्रसन्न हुए और उनके साथ वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे।

मार्कण्डेयसमास्यापर्व

एक सौ बयासी अध्याय

पाण्डवों का काम्यक वन को जाना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, ग्रीष्म ऋतु बीतने पर सब प्राणियों को सुख पहुँचाने-वाली वर्षा ऋतु आ गई। तम्बुओं की तरह शोभायमान वर्षा के काले मेघ आकाश और दिशाओं को घेरकर ज़ोर से गरजते हुए दिन-रात पानी बरसाने लगे। सूर्य का प्रकाश छिप गया; इधर-उधर बादलों में बिजली चमकने लगी। पानी से भीगी हुई पृथ्वी हरी-हरी नई घास से छा गई। डाँस, मच्छड़ और कीड़ों-पतंगों का उपद्रव बढ़ गया। पृथ्वी पर इतना पानी भर गया कि बराबर, ऊँचा और ख़ाली, नदी और स्थल, कुछ स्पष्ट रूप से नहीं जान पड़ता था। शीघ्रगामी बाण की तरह बहती हुई नदियों के प्रवाह से किनारे के वनों की भूमि शोभित हो गई। सुअर,

मृग, पक्षी आदि जीव पानी की बौछार में भीगकर वनों में तरह तरह की बोलियों से आनन्द प्रकट करने लगे। पपीहा, मोर, कोयल आदि पक्षी मस्त होकर उड़ने लगे। मेंढक भी ऐंठ के मारे गढ़ों में 'टरटर' करने लगे। पाण्डवों ने वहाँ बड़े सुख से वर्षा का समय बिताया।

इसके बाद रमणीय शरद ऋतु आ गई। क्रौंच, हंस आदि जलचर पक्षी प्रसन्न होकर इधर-उधर विचरने लगे। जङ्गलों में और पहाड़ों पर घास निकली हुई थी। नदियों का जल स्वच्छ हो गया। आकाश निर्मल रहने से चन्द्रमा और नक्षत्रों का प्रकाश भी उज्ज्वल हो उठा। शरद ऋतु पाण्डवों के लिए सुखदायक हुई। धूल का नाम न था; बादल कहीं देखने को न थे। ग्रहों और नक्षत्रों सहित चन्द्रमा का उदय होने से रातें बहुत मनोहर मालूम होने लगीं। शीतल जल से भरी हुई नदियों में कुमुद, सफ़ेद कमल आदि के फूल खिलने लगे। वेतस-लताओं से पूर्ण और नीलरेखा के रूप में दीखते हुए किनारों से मनोहर, आकाश के समान शोभायमान सरस्वती नदी देखनेवालों के हृदय में हर्ष का सञ्चार करने लगी। शरद की सुन्दर शोभा देखकर पाण्डव प्रसन्न हुए। १०

हे जनमेजय, पाण्डव लोग नारायण के आश्रम में ही थे कि कार्त्तिक की पूर्णिमा आ गई। तब वे वहाँ से चलने का उद्योग करने लगे। पुण्यात्मा महाबली पाण्डव महर्षि धौम्य, सूत, अनुचरों आदि के साथ काम्यक वन को चले। १८

एक सौ तिरासी अध्याय

श्रीकृष्ण का युधिष्ठिर के पास आना। श्रीकृष्ण के कहने से मार्कण्डेय का पुराण-कथा कहना

वैशम्पायन कहते हैं—युधिष्ठिर आदि पाण्डव काम्यक वन में पहुँच गये। ऋषियों ने उनका अतिथिसत्कार किया। द्रौपदी-सहित पाँचों पाण्डव जब सुखपूर्वक वहाँ बैठे तब वे

ब्राह्मण भी उन्हें घेरकर बैठ गये। एक ब्राह्मण ने कहा—हे पाण्डवो! अर्जुन के प्रिय सखा, महाबाहु, उदारबुद्धि श्रीकृष्ण सदा तुम लोगों की भलाई चाहते हैं। उन्हें सदा तुमसे मिलने की और तुम्हें देखने की चाह रहती है। उन्हें तुम्हारे यहाँ आने की ख़बर मिल गई है, और वे शीघ्र यहाँ तुमसे मिलने आवेंगे। बड़ी आयुवाले, तप और स्वाध्याय में तत्पर, महात्मा मार्कण्डेय ऋषि भी तुम्हारे पास आवेंगे।

उस ब्राह्मण की बात पूरी भी न होने पाई थी कि शैव्य, सुग्रीव नाम के श्रेष्ठ घोड़ों से युक्त रथ पर बैठे हुए कृष्ण भगवान् वहाँ पर आ गये। इन्द्र के साथ इन्द्राणी के समान उनके साथ सत्यभामा भी थीं। पाण्डवों को देखने के लिए आये हुए श्रीकृष्ण ने रथ से उतरकर धर्म-राज, भीमसेन और पुरोहित धौम्य के पैर छुए। नकुल और सहदेव ने कृष्ण को प्रणाम किया।

फिर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को १० बारबार गले से लगाकर द्रौपदी को मधुर वचनों से ढाढ़स बँधाया। श्रीकृष्ण की प्यारी रानी सत्यभामा ने भी पाण्डवों की पटरानी द्रौपदी को गले से लगाया। पूजा-सत्कार करने के उपरान्त द्रौपदी, पुरोहित धौम्य और पाँचों पाण्डव श्रीकृष्ण के चारों ओर बैठ गये। कृष्ण भगवान् अर्जुन से मिलकर कार्त्तिकेय-सहित भगवान् शङ्कर के समान शोभित हुए। अर्जुन ने श्रीकृष्ण से वन में और स्वर्ग में रहने का सब हाल कहकर सुभद्रा और अभिमन्यु के कुशलसमाचार पूछे।

अर्जुन, द्रौपदी और पुरोहित धौम्य का सत्कार करके युधिष्ठिर की बड़ाई करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा—राजन्, राज्य पाने की अपेक्षा धर्म श्रेष्ठ है। धर्म के लिए तप किया जाता है। आपने सत्य और सरलता के साथ अपने धर्म का पालन करके इस लोक और परलोक दोनों को जीत लिया। आपने ब्रह्मचर्य के समय सब धनुर्वेद सीखा, फिर क्षत्रियधर्म के अनुसार धन कमाया। उसके बाद विधिपूर्वक प्राचीन महायज्ञ भी किये। हे नरेन्द्र, आप विषय-भोग में उचित से अधिक आसक्त नहीं हैं। किसी कार्य को आप इच्छा के वशीभूत होकर नहीं करते;

अर्थसिद्धि के लोभ से कभी धर्म को नहीं छोड़ते। इसी से आपको पृथ्वी पर सब लोग धर्मराज कहते हैं। हे पार्थ! आप राज्य, धन और अनेक प्रकार की उपभोग की सामग्री पाकर भी दान, तप, सत्य, श्रद्धा, बुद्धि, क्षमा, धैर्य आदि पर सदा प्रेम रखते हैं। आपके शत्रुओं ने सभा के बीच, कुरुजाङ्गल और अन्य अनेक देशों के लोगों के सामने, द्रौपदी को लाकर नङ्गी करना चाहा था। उनके उस धर्मविरुद्ध निन्दित काम को आपके सिवा और कौन सह सकता था? अब २० आपका मनोरथ शीघ्र ही पूरा हो जायगा और आप धर्म से प्रजा का पालन करेंगे। धर्मराज, यदि आपकी प्रतिज्ञा की अवधि पूरी हो गई हो तो कहिए, मैं अभी दुष्ट दुर्योधन-सहित कुरुवंश का नाश कर डालूँ। अब धौम्य आदि की ओर देखकर श्रीकृष्ण ने कहा—महावीर अर्जुन आप लोगों के भाग्य से ही अस्त्रविद्या प्राप्त करके प्रसन्नतापूर्वक देवलोक से लौट आये हैं।

फिर अपने इष्टमित्रों-सहित यदुनाथ श्रीकृष्ण ने द्रौपदी से कहा—पाञ्चाली, तुम्हारा सौभाग्य है कि अर्जुन लौटकर आ गये। द्वारका में रहनेवाले तुम्हारे सुशील पुत्र इस समय बड़ी लगन से धनुर्वेद सीख रहे हैं। वे सदा सत्सङ्ग में रहने के कारण सज्जनों के योग्य सदाचार की बातें भी सीख गये हैं। हे द्रौपदी, तुम्हारे पिता और भाइयों ने उनको कई बार बुला भेजा, और राज्य आदि का भी लालच दिया; पर उन्हें नाना या मामा के पास रहना नहीं भाता। वे द्वारकापुरी में यादवों के पास बड़े सुख से रहते हैं और युद्धविद्या सीखते हैं। वे द्वारका को छोड़कर देवताओं के पास रहना भी पसन्द नहीं करते। आर्या कुन्ती और तुम जिस तरह उन्हें सच्चरित्रता सिखातीं [और उनके लालन-पालन में स्नेह दिखातीं,] उसी तरह सुभद्रा उन्हें सदाचार सिखाती और स्नेह करती है। अनिरुद्ध, अभिमन्यु, सुनीथ और भानु का जिस प्रकार प्रद्युम्न शिक्षक और रक्षक है उसी प्रकार वह तुम्हारे पुत्रों का भी है। शिक्षा देने में चतुर, आलस्यहीन कुमार अभिमन्यु तुम्हारे पुत्रों को गदायुद्ध, ढाल-तलवार का युद्ध, अनेक अस्त्रों का प्रयोग और रथ चलाना सिखाते रहते हैं। अनेक अस्त्र-शस्त्र देकर और अच्छी तरह उनका प्रयोग सिखाकर प्रद्युम्न ने उन्हें होशियार कर दिया है। वह तुम्हारे पुत्रों के और अभिमन्यु के पराक्रम को देखकर बहुत प्रसन्न होता है। हे पाञ्चाली, तुम्हारे बालक जब शिकार ३० वग़ैरह खेलने जाते हैं तब उनकी सवारी के साथ हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेना जाती है।

अब श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा—हे धर्मराज! कुक्कुर, अन्धक आदि वंशों के वीर यादव, जहाँ आप कहें वहाँ जाकर, आपकी आज्ञा का पालन करने को तैयार हैं। हे नरेन्द्र, बलदेव जिसके सेनापति होंगे वह मथुरानिवासी यादवों की चतुरङ्गिणी सेना धनुष-बाण आदि अस्त्र-शस्त्र लेकर आपकी सहायता करने को तैयार है। हे पाण्डुपुत्र, आप महापापी दुर्योधन को उसके सहायकों और इष्टमित्रों के साथ वहीं भेज दीजिए जहाँ भौमासुर और शाल्व आदि गये हैं। सभा में आप जो प्रतिज्ञा कर चुके हैं उसके पूर्ण होने की अवधि तक ठहरे रहिए।

यादववंश के योद्धा उसके बाद शत्रुपक्ष का नाश करेंगे और हस्तिनापुर का सिंहासन आप पावेंगे। अभी क्रोध और पाप से बचकर आप चाहे जहाँ रहिए, और प्रतिज्ञा पूरी होने की राह देखिए। समय बीतने पर आप शोक छोड़कर समृद्धियुक्त और साम्राज्य-सहित सिंहासन के अधिकारी होकर हस्तिनापुर में जाइएगा।

पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण की सलाह जानकर युधिष्ठिर ने उनकी बड़ाई की और फिर हाथ जोड़कर कहा—हे केशव, इसमें सन्देह नहीं कि आप ही पाण्डवों की एकमात्र गति हैं; पाण्डव आपके ही शरणागत हैं। प्रतिज्ञा की अवधि बीतने पर जब समय आवेगा तब अवश्य आप अपने इस कथन के अनुसार सब काम करेंगे। केशव, प्रतिज्ञा के अनुसार वन में रहकर हम बारह साल बिता चुके हैं। इसके बाद अज्ञातवास का एक वर्ष बिताकर हम लोग आपका ही आश्रय लेंगे। श्रीकृष्ण, आपके आश्रय में रहनेवाले हम पाण्डवों की ऐसी ही बुद्धि बनी रहे; हम सत्य और धर्म को कभी न छोड़ें। हम सत्पथ पर चलनेवाले, दान और धर्म में तत्पर ४० रहकर स्त्री-पुत्र-बान्धव आदि सहित आपकी ही शरण में रहें।

वैशम्पायन कहते हैं—हे भरतश्रेष्ठ, श्रीकृष्ण और धर्मराज यह बातचीत कर ही रहे थे कि श्रेष्ठ रूप और गुणों से शोभित, धार्मिकश्रेष्ठ, महातपस्वी मार्कण्डेय मुनि वहाँ देख पड़े। वे चिरजीवी हैं। इतने प्राचीन होने पर भी देखने में पचीस वर्ष के जवान जान पड़ते हैं। सब ब्राह्मणों, पाण्डवों और श्रीकृष्ण ने विधिपूर्वक उनका पूजन और सत्कार किया। पूजा ग्रहण करके आसन पर बैठकर जब ऋषि कुछ विश्राम कर चुके तब पाण्डवों और ब्राह्मणों की इच्छा के अनुसार श्रीकृष्ण ने कहा—हे मार्कण्डेयजी, आप वयोवृद्ध हैं; इस कारण ये ब्राह्मण, पाण्डव, द्रौपदी, सत्यभामा और मैं, सभी आपके मुँह से पुरावृत्त, पुण्यकथा, राजा-रानी और ऋषियों के सदाचार सुनना चाहते हैं। आप कृपा करके हमारी इच्छा पूरी कीजिए।

महाराज, श्रीकृष्ण के यह कह चुकने पर विशुद्ध-हृदय देवर्षि नारद भी पाण्डवों से मिलने के लिए वहाँ आ गये। पाण्डवों ने पाद्य, अर्घ्य, आसन आदि देकर उनकी पूजा की।

वहाँ के सब लोगों को मार्कण्डेय के मुँह से इतिहास-कथा सुनने के लिए उत्सुक देखकर नारदजी ने उसका अनुमोदन किया। तब समय का ज्ञान रखनेवाले श्रीकृष्ण ने मार्कण्डेय से कहा—हे ब्रह्मर्षिवर, आप पाण्डवों को जो सुनाना चाहते हैं सो सुनाइए। ५०

मार्कण्डेय ने कहा—यह कथा बड़ी लम्बी-चौड़ी है; इस कारण उसे सुनाने का एक समय निश्चित कर लो। तब पाण्डवों ने दोपहर का समय ठीक किया। वैशम्पायन कहते हैं कि धर्मराज ने मुनिवर को कथा का प्रारम्भ करने के लिए तैयार देखकर कहा—भगवन्! आप देवता, दैत्य, महात्मा ऋषि, राजर्षि आदि के चरित्रों को अच्छी तरह जानते हैं। आपकी और श्रीकृष्ण की सेवा और उपासना करना हमारा कर्त्तव्य है, क्योंकि दोनों ही हमें प्रिय हैं। मेरा सौभाग्य है कि आप लोग यहाँ मुझे दर्शन देने आये हैं। मैं इस समय अपने को दुःख सहते और दुराचारी दुष्ट सुयोधन को दिन-दिन अधिक समृद्धिशाली होते देखकर यह सोचता हूँ कि पुरुष किस तरह शुभाशुभ कामों का कर्त्ता होकर उनका फल भोगता है? न्यायी ईश्वर को क्या उस शुभाशुभ फल का देनेवाला स्वीकार कर लिया जाय? मनुष्य के सुख-दुःख का कारण क्या है? मनुष्य उन कर्मों का फल इस लोक में भोगता है या परलोक में? शुभाशुभ कर्मों का फल इस लोक या परलोक में किसके सहारे रहता है? ६०

मार्कण्डेय ने कहा—हे युधिष्ठिर, तुमने यह प्रश्न बहुत ठीक किया। सब जानने योग्य विषयों को तुम जानते हो। इस समय केवल लोकाचार की रक्षा और अन्य लोगों की जानकारी के लिए तुम यह प्रश्न कर रहे हो। मनुष्य इस लोक या परलोक में जिस तरह सुख-दुःख भोगता है सो मैं कहता हूँ, एकाग्र होकर सुनो। हे कुरुश्रेष्ठ, प्रजापति ब्रह्मा ने शरीरधारियों का शरीर निर्मल, पवित्र और धर्मतन्त्र बनाया था। पहले के मनुष्य सुव्रत (सच्चरित्र), सत्यवादी, ब्रह्मनिष्ठ और सफल संकल्पवाले होते थे। वे सहज ही देवताओं के साथ आकाश में जा सकते और वहां से पृथ्वी पर आ सकते थे। वे स्वच्छन्द गतिवाले मनुष्य निर्भय और निरुपद्रव थे। जब चाहते थे तब उनकी मृत्यु होती थी। उनके कामों के सिद्ध होने में कोई रुकावट न पड़ती थी। वे देवताओं और ऋषियों से भेंट कर सकते थे। सब धर्मों को वे प्रत्यक्ष सा देख लेते थे। वे जितेन्द्रिय थे, उनमें मत्सर या ईर्ष्या न थी। उनकी आयु हज़ार वर्ष की होती थी और पुत्र भी हज़ारों उत्पन्न होते थे।

इसके बाद समय बीतने पर पृथ्वी पर रहते-रहते उनके हृदय में काम-क्रोध आदि के भाव उत्पन्न हुए, और वे कपट के व्यवहार से अपनी जीविका चलाने लगे। तब उस पहले के शरीर की अपेक्षा हीन शरीर पाकर वे निन्दनीय कर्म करने लगे; साथ ही पापग्रस्त होकर तिर्यग्योनियों और नरकों में जाने लगे। फल यह हुआ कि वे संसार में बारम्बार जन्म-मरण का दुःख भोगने लगे। उनके मानसिक संकल्प और ज्ञान विफल होने लगे। प्रायः सभी लोग ७०

निन्दनीय काम और आचरण करने लगे। वे लोग बुरे घरानों में उत्पन्न होकर रोगग्रस्त, दुरात्मा, प्रभावहीन, पापी, अल्पायु, कामभोग में लिप्त, भिन्नरुचि और कच्ची समझवाले तथा नास्तिक होने लगे। हे युधिष्ठिर, इस संसार के सब जीव मरने के बाद अपने कर्मों का फल भोगते हैं। अब यह सुनो कि ज्ञानी और अज्ञानी पुरुषों के कर्मफल कहाँ रहते हैं और वे जीव कहाँ रहकर अच्छे और बुरे कामों के फल भोगते हैं?

ईश्वर के सिरजे हुए आदिशरीर के द्वारा मनुष्य, शुभ और अशुभ, काम करता है। आयु समाप्त होने पर उस क्षीणप्राय शरीर को छोड़कर उसी घड़ी वह अन्य स्थूल शरीर पा जाता है और दूसरी योनि में जन्म लेता है। जीव क्षण भर भी देह के बिना नहीं रहता। इस समय अपने किये कर्मों से बना हुआ अदृष्ट (भाग्य) छाया की तरह उसके साथ रहता है। उसी से जीव सुख-दुःखमय फल भोगने का अधिकारी होता है। ज्ञानी पुरुषों ने कहा है कि काल के अधीन जीव अपने शुभाशुभ करने से उत्पन्न सुख या दुःख को टाल नहीं सकता। हे युधिष्ठिर, ८० अज्ञानी पुरुषों की जो गति होती है सो मैं कह चुका; अब ज्ञानियों की श्रेष्ठ गति का हाल सुनो।

ज्ञानी पुरुष प्रायः दूसरे जन्म में तप और स्वाध्याय में तत्पर, सच्चरित्र, सत्यपरायण, गुरुसेवक, सुशील, योगाभ्यासी, तेजस्वी, क्षमाशील, जितेन्द्रिय और श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होते हैं। वे जितेन्द्रिय होने के कारण स्वाधीन, पवित्र रहने के कारण नीरोग और दुःख-भय न रहने के कारण उपद्रव से बचे रहते हैं। वे अपनी और दूसरों की उन सब बातों को ज्ञान-दृष्टि से जानते हैं, जो हो चुकी हैं, जो हो रही हैं और जो होनेवाली हैं। वे प्रत्यक्षदर्शी महात्मा ही ऋषि कहाते हैं। वे इस कर्मभूमि में आकर फिर स्वर्गलोक को चले जाते हैं। राजन्, मनुष्य कुछ फल दैववश, कुछ फल अचानक और कुछ अपने कर्मों के कारण पाते हैं। इसलिए इस बारे में तुम और तरह का कुछ विचार मत करो।

हे युधिष्ठिर, मैं इस विषय का एक उदाहरण सुनाता हूँ। मनुष्य जिसे परम श्रेय (भलाई) समझते हैं वह किसी को इस लोक में मिलता है, परलोक में नहीं मिलता; किसी को परलोक में मिलता है, यहाँ नहीं मिलता; किसी को इस लोक और परलोक दोनों में मिलता है; और किसी को इस लोक या परलोक, किसी लोक में नहीं मिलता। जो लोग बड़े ऐश्वर्य-वान् होकर, उत्तम वेश-भूषा—ठाट-बाट—से रहकर मौज किया करते हैं, वे इस लोक में सुख भोगते हैं; किन्तु परलोक में उन्हें सुख नहीं मिलता। जो लोग तप और स्वाध्याय में लगे रहते हैं, इन्द्रियों को वश में रखते हैं, प्राणियों की हिंसा नहीं करते, मन मारकर या तप के कष्ट सह-९० कर देह को जीर्ण करते हैं, वे इस लोक में नहीं, परलोक में सुख भोगते हैं। जो लोग पहले ब्रह्मचर्य, वेदपाठ आदि से धर्म उपार्जन करते हैं, फिर धर्म की राह से धन का उपार्जन और यथा-समय ब्याह करके गृहस्थाश्रम में आते हैं तथा यज्ञ आदि करके देवताओं की आराधना करते हैं

वे इस लोक और परलोक, दोनों में सुख भोगते हैं। जो मूढ़ पुरुष विद्याभ्यास, तप, दान आदि भी नहीं करते और पुत्र उत्पन्न करने का यत्न या सुखभोग की इच्छा भी नहीं करते, उनके लोक परलोक, दोनों मिट जाते हैं। हे युधिष्ठिर! तुम लोग बड़े बली, पराक्रमी, तेजस्वी, सुदृढ़-शरीरवाले, शूर और सब विद्याओं में विशारद हो; तपस्वी, जितेन्द्रिय और सदाचारी सच्चरित्र भी हो। तुमने सब श्रेष्ठ और बड़े बड़े यज्ञ आदि कार्य करके पितरों, देवताओं और ऋषियों को सन्तुष्ट कर दिया है। तुम अपने कर्मों के फल से स्वर्ग पाओगे, जहाँ पुण्यात्मा महापुरुष रहते हैं। हे कौरवेन्द्र, तुम वर्त्तमान क्लेश को देखकर छड़को मत। देवताओं का काम सँभालने के लिए तुम लोग पृथ्वी पर आये हो। यह दुःख तुम्हें आगे मिलनेवाले सुख का कारण है। ६५

एक सौ चौरासी अध्याय

अरिष्टनेमा और हैहयवंशी राजाओं के संवाद का वर्णन

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, महर्षि मार्कण्डेय से युधिष्ठिर आदि पाण्डवों ने कहा कि हे ऋषिवर, आप हमें श्रेष्ठ ब्राह्मणों का माहात्म्य सुनाइए। सब शास्त्रों के ज्ञाता, महातेजस्वी, मार्कण्डेय मुनि कहने लगे—राजन्, हैहयवंश में एक परपुरञ्जय नाम के बड़े रूपवान् राजकुमार थे। एक समय वे शिकार खेलने के लिए वृक्ष-लता और घास से भरे एक वन में गये। काले मृग की खाल ओढ़े हुए एक मुनि को कृष्णसार मृग के धोखे से उक्त राजकुमार ने बाण चलाकर मार डाला। पास जाने से जब उन्हें ब्रह्महत्या का हाल मालूम पड़ा तब बहुत ही शोक से व्यथित और दुःखित होकर वे हैहयवंश के राजाओं के पास गये। वहाँ उन्होंने सब हाल कह सुनाया। मुनिवर की मृत्यु

का वृत्तान्त सुनकर हैहयवंश के राजा वन में गये और वहाँ उनकी लाश पाकर बहुत ही दुःखित हुए। तब वे पता लगाने के लिए चारों ओर फिरने लगे कि मृत महापुरुष किसके पुत्र हैं।

खोजते-खोजते वे काश्यप के पुत्र अरिष्टनेमा के आश्रम में पहुँचे। उन महात्मा मुनि को प्रणाम करके वे सामने खड़े हो गये। महर्षि ने उनका आदर-सत्कार किया। तब उन्होंने कहा—
१० मुनिवर, हम ब्रह्महत्या कर चुके हैं इसलिए आपसे सत्कार पाने के योग्य नहीं हैं।

अरिष्टनेमा ने कहा—आपने किस तरह ब्रह्महत्या कर डाली? वह मृत ब्राह्मण कहाँ है? मैं इसी समय आप लोगों को अपना तपोबल दिखाता हूँ। उन राजाओं ने ब्रह्महत्या का वृत्तान्त आदि से अन्त तक कह सुनाया; फिर वे उन्हें उस जगह ले गये जहाँ ब्राह्मण की लाश छोड़ आये थे; परन्तु उस स्थान पर उन्हें वह लाश नहीं देख पड़ी। उन्हें यह सब सपना सा जान पड़ने लगा। वे अपनी असावधानी के लिए लज्जित और अचेत से हो गये। तब महर्षि ने उनसे कहा—हे राजाओ, देखो, यह वही ब्राह्मण है जिसे तुमने मार डाला था।

यह तपस्वी मेरा ही पुत्र है। जब मुनि ने उस मृत ब्राह्मण को जीवित अवस्था में दिखा दिया तब वे राजा "कैसा आश्चर्य है!" कहकर बड़े अचम्भे में पड़ गये। उन्होंने अरिष्टनेमा से कहा—भगवन्, ये मृत महर्षि कैसे फिर जीकर यहाँ आ गये? ये क्या तप के प्रभाव से फिर जी उठे? हे विप्र, हम इन प्रश्नों का उत्तर सुनना चाहते हैं। यदि हमारे सुनने योग्य बात हो तो कृपा करके कहिए।

अरिष्टनेमा ने कहा—राजन्, मृत्यु हम तपस्वियों के आगे अपना प्रभाव नहीं प्रकट कर सकती। आपसे संक्षेप में हम इसका कारण कहते हैं। हम ब्राह्मण केवल सत्य के ही वशवर्त्ती हैं; हमारा मन कभी मिथ्या की ओर नहीं जाता। हम सदा अपने धर्म के अनुकूल आचरण किया करते हैं, इसी कारण हमें मृत्यु का डर नहीं है। हम ब्राह्मणों की भली बातें ही प्रकट करते हैं, उनके बुरे कामों को हम प्रकट नहीं करते, इसलिए हमें मौत का डर नहीं है। हम लोग पहले खाने-पीने की सामग्री से अतिथियों का सत्कार करते हैं, फिर जिनके भरण-पोषण का भार हमारे सिर पर है उन्हें तृप्त और सन्तुष्ट करके अन्त
२० में स्वयं भोजन करते हैं; इसी से हमें मृत्यु का डर नहीं है। हम शान्त, जितेन्द्रिय, और

क्षमाशील हैं; हम तीर्थयात्रा और दान करते हैं तथा पवित्र देश में रहते हैं; इसलिए हमें मृत्यु का डर नहीं है। हम तेजस्वी पुरुषों के पास रहते हैं, इस कारण हमें मृत्यु का खटका नहीं है। यह अपने मृत्यु-भयहीन होने का कारण हमने संक्षेप में कह दिया। अब आप लोग प्रसन्नतापूर्वक अपने घर को जाइए; ब्रह्महत्या के पाप का डर न कीजिए। मुनि की आज्ञा मानकर राजा लोग प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थान को चले गये। २३

एक सौ पचासी अध्याय

अत्रि ऋषि का उपाख्यान

मार्कण्डेय कहते हैं—राजन्, ब्राह्मणों की और भी महिमा सुनाता हूँ, सुनो। हमने सुना है कि एक समय वेन के पुत्र राजर्षि पृथु ने अश्वमेध यज्ञ की दीक्षा ली। अत्रि ऋषि ने धन माँगने की इच्छा से उनके पास जाने का विचार किया; किन्तु उन्होंने ब्राह्मण के धर्म—सन्तोष—की रक्षा करने के विचार से उस विचार को छोड़ दिया। अन्त को विशेष रूप से विचार करके उन्होंने वन जाने का ही निश्चय किया। तब अपनी धर्मपत्नी और पुत्रों को बुलाकर कहा—चलो, हम सब चलकर वन में रहें। वहाँ हमें अत्यन्त श्रेष्ठ, बाधाहीन फल (तप) प्राप्त होगा। इसलिए तुम वन में चलना पसन्द कर लो। उनकी स्त्री ने धर्म पर ध्यान देकर कहा—आप महानुभाव राजा पृथु के पास जाकर उनसे बहुत सा धन माँगिए। वे राजर्षि यज्ञ कर रहे हैं; अवश्य ही आपको बहुत सी

सम्पत्ति देंगे। वहां से धन लाकर, पुत्रों को और जिनके भरण-पोषण का भार आपके सिर पर है उनको बाँटकर आप चाहे जहाँ जाइए। यह आपका कर्त्तव्य है। धार्मिक पुरुषों ने यही धर्म बताया है।
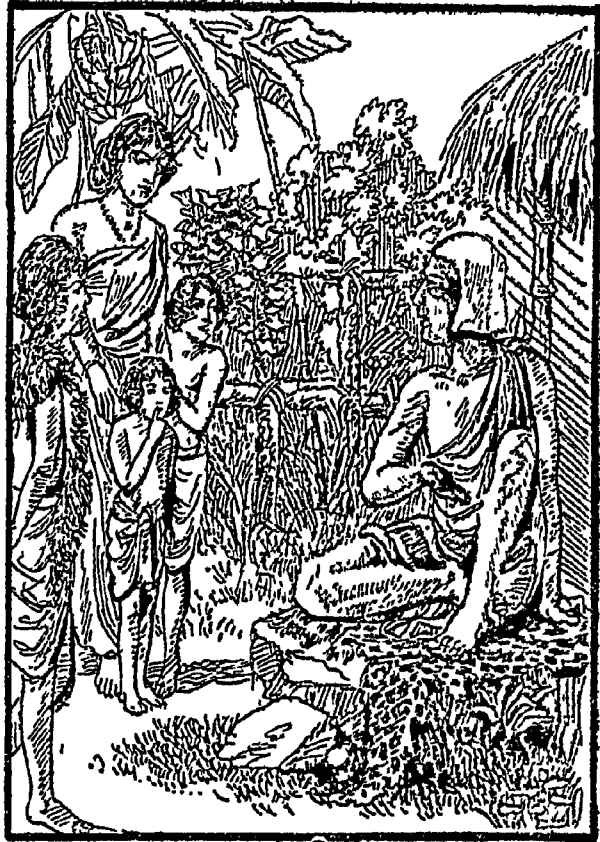
अत्रि ने अपनी पत्नी से कहा—हे सुन्दरी, महात्मा गौतम से मुझे मालूम हुआ है कि राजा पृथु धर्मार्थ-परायण और सत्यव्रत हैं; किन्तु उनकी सभा में कुछ ऐसे ब्राह्मण भी हैं जो मुझसे शत्रुता रखते हैं। गौतम की इस बात के कारण वहाँ जाने को मेरा जी नहीं चाहता। १० वहाँ मेरे विद्वेषी ब्राह्मण मेरे कहे धर्मार्थयुक्त वचनों को निरर्थक बतावेंगे, कुछ का कुछ कहेंगे; परन्तु तुम्हारे कहने से अब मैं अवश्य उनके यहाँ जाऊँगा। राजा पृथु प्रसन्न होकर मुझे गायें और बहुत सा धन अवश्य देंगे।

महात्मा अत्रि शीघ्र ही पृथु की सभा में पहुँचे। उचित सत्कार करके मङ्गलमय वचनों से वे राजा की स्तुति करने लगे—हे पृथु! आप धन्य, ईश्वर (समर्थ) और पृथ्वी के सबसे पहले राजा हैं। मुनि लोग भी इसी से आपकी स्तुति, अर्थात् आपके गुणों का बखान, करते हैं। आपसे बढ़कर धर्मज्ञ कोई नहीं है। इस प्रकार अत्रि के स्तुति करने पर महर्षि गौतम ने क्रोधित होकर उनसे कहा—हे अत्रि, तुम्हारी बुद्धि ठीक नहीं जान पड़ती। अब ऐसे वचन कभी मत कहना। महेन्द्र और प्रजापति चन्द्र हमारे प्रथम राजा तथा पालन करनेवाले हैं।

तब अत्रि ने कहा—हे गौतम, महाराज पृथु विधाता, इन्द्र और प्रजापति सब कुछ हैं। गौतम, तुम प्रज्ञाहीन और मोहवश होने के कारण ऐसी बात कह रहे हो। गौतम ने कहा—मैं भली भाँति जानता हूँ कि मुझे मोह ने नहीं दबा रक्खा है; मोह में तो तुम्हीं स्वार्थवश पड़े हुए हो। राजा से भेंट करने को मोहवश सभा के बीच ऐसी ख़ुशामद कर रहे हो। न तो तुम श्रेष्ठ धर्म को जानते हो, और न तुम्हें उससे कुछ प्रयोजन ही है। अवस्था में वृद्ध होने पर भी तुम मूढ़ हो, तुम्हारी बुद्धि बालकों की सी है।

मार्कण्डेय कहते हैं कि दोनों मुनियों को इस प्रकार परस्पर लड़ते-झगड़ते देखकर राजा के यज्ञ में दीक्षा लिये हुए अन्य महर्षियों ने कहा—ये यहाँ क्यों आये हैं? राजा पृथु की यज्ञ- २० सभा में इन्हें भीतर किसने आने दिया? ये यहाँ इस तरह क्यों चिल्ला रहे हैं? तब सब धर्मों के ज्ञाता महर्षि काश्यप ने दोनों मुनियों के पास जाकर उनके उस झगड़े का कारण पूछा।

महर्षि गौतम ने सब सदस्यों से कहा—हे मुनिवरो, हमारे झगड़े (बातचीत) का कारण सुनो। ये अत्रि राजा पृथु को विधाता कहते हैं, पर मैं नहीं मानता; मुझे इसके ठीक होने में सन्देह है।

गौतम के ये वचन सुनकर सब मुनि इस सन्देह को दूर करने के लिए महात्मा सनत्कुमार के पास गये। उक्त महात्मा उनके मुँह से सब हाल सुनकर इस प्रकार धर्मसङ्गत वचन कहने लगे—जैसे आग को हवा की सहायता मिलने से बड़ा भारी वन भस्म हो जाता है वैसे ही ब्रह्मतेज के साथ क्षत्रिय का तेज मिलने से वह सब शत्रुओं का नाश कर सकता है। राजा धर्म को स्थापित करनेवाला, नीतिमार्ग को दिखानेवाला और प्रजा का प्रतिपालक होता है। इसी कारण राजा शक्र, बृहस्पति और विधाता का रूप है क्योंकि वह रक्षक, नीतिज्ञ, पिता के तुल्य और हित का उपदेश करनेवाला है। प्रजापति, सम्राट्, विराट्, क्षत्रिय, भूपति आदि शब्दों से जिसकी स्तुति की जाती है, उसकी पूजा कौन नहीं करेगा? राजा धर्म और स्वर्ग की राह दिखाता है। वह लोक-रक्षा का प्रधान कारण है। वह संग्राम में विजय पाता है, सत्य का प्रचार करता है, और ईश्वर तथा विष्णु का रूप है। वह स्वयं निर्भय होकर सबकी रक्षा करता है। पहले अधर्म के भय से डरे हुए महर्षियों ने क्षत्रियों को बहुत बलवान् बनाया है। सूर्य जैसे अपनी किरणें फैलाकर स्वर्ग में देवताओं के अँधेरे को दूर करते हैं, वैसे ही राजा पृथ्वीमण्डल के सब लोगों के अधर्म को मिटाता रहता है। इस कारण शास्त्र का प्रमाण देखने से राजा की ही प्रधानता माननी पड़ती है। जिन मुनि ने राजा को श्रेष्ठ और प्रधान कहा है उन्हीं का कहना ठीक है। ३०

मार्कण्डेय कहते हैं कि तब महात्मा पृथु ने इस सिद्धान्त को सुनकर, सन्तुष्ट होकर, स्तुति करनेवाले अत्रि से कहा—हे द्विजश्रेष्ठ, आपने मुझे देवता-सदृश और मनुष्यों में श्रेष्ठ कहा है, इस कारण मैं आपको बहुत सा धन, कपड़े, गहने, हज़ार दासियाँ, दस करोड़ सुवर्णमुद्रा और चाँदी के ढेर देता हूँ, लीजिए। हे ब्रह्मर्षिश्रेष्ठ, आप सब कुछ जानते हैं। आप मुझे मान्य हैं।

इस प्रकार राजा से सत्कार और सम्पत्ति पाकर, धन और गोधन लेकर, महर्षि अत्रि प्रसन्नतापूर्वक अपने घर आये। उन्होंने वह सम्पत्ति पुत्रों को बाँट दी और फिर आप तप करने के लिए वन को चले गये। ३७

एक सौ छियासी अध्याय

सरस्वती और तार्क्ष्य का संवाद

मार्कण्डेय ने कहा—हे युधिष्ठिर, तार्क्ष्य अर्थात् काश्यप ऋषि के यही प्रश्न करने पर सरस्वती ने जो उत्तर दिया है, सो सुनो। एक समय तार्क्ष्य ने सरस्वती से कहा—भद्रे, इस लोक में मनुष्य का श्रेय (ध्येय) क्या है? कैसा आचरण करने से मनुष्य धर्म-भ्रष्ट नहीं होता? मैं किस समय, किस प्रकार अग्निहोत्र और देवपूजा करूँ? क्या करने से धर्म का

नाश अर्थात् अधर्म नहीं होता? हे सुभगे, यह सब कहो। वह उपदेश करो जिससे मैं रजोगुण के प्रभाव से बचकर पवित्र लोकों में जाऊँ। मार्कण्डेय कहते हैं कि हे युधिष्ठिर, उत्तम बुद्धिवाले प्रसन्नचित्त ब्रह्मर्षि के यों प्रश्न करने पर सरस्वती ने कहा—जो कोई पवित्र, सावधान, स्वाध्याययुक्त होकर गुरु के उपदेशानुसार परब्रह्म को जानता है, वही देवलोक को जाता है और वहाँ देवताओं के साथ रहकर प्रसन्न होता है। देवलोक में बहुत चौड़े, रमणीय, पवित्र, फूले हुए कमलों से शोभित सरोवर हैं। मछलियाँ और सोने के सहस्रदल कमल उन सरोवरों में हैं। उनमें कीचड़ नाम लेने को भी नहीं है। पुण्यात्मा महापुरुष उनके किनारे पवित्र सुगन्ध, अलङ्कार और सुनहरे रङ्ग से शोभित अप्सराओं के साथ बैठते और विहार करते हैं। गोदान करनेवाले पुरुषों को उत्तम लोक मिलते हैं। वृषभ-दान करनेवाले सूर्य-लोक को जाते हैं। कपड़े का दान करनेवाले चन्द्रलोक में आनन्द भोगते हैं और सुवर्णदान करने से देवयोनि मिलती है। सीधी, दुधार, अच्छे रङ्ग की, बच्चेवाली गाय देनेवाला मनुष्य उतने ही असंख्य वर्षों तक देवलोक में रहता है, जितने रोएँ उस गाय के शरीर में होते हैं। जवान, हल चलाने में समर्थ, बली, १० धुरा (जुआ) धारण करनेवाला एक बैल देने से दस गाय देने का फल होता है। जो कोई धन, दक्षिणा, कपड़ा और काँसे की दोहनी के साथ कपिला गऊ दान करता है वह जब स्वर्ग में जाता है तब पूर्वोक्त गुणोंवाली गाय, कामधेनु के रूप से, उसके पास आ जाती है। उस पुरुष के पुत्र, पोते, सारा कुल और पहले की सात पीढ़ियाँ गोदान के पुण्य से तर जाती हैं। उस गाय के जितने रोएँ होते हैं उतना अनन्त फल (पुण्य) मनुष्य को मिलता है। ऐसे ही जो पुरुष दक्षिणा, काँसे की दोहनी, द्रव्य, कपड़ा आदि सामग्री के साथ सोने के सींगों सहित तिल की धेनु देते हैं उन्हें वसुलोक की गति सुलभ होती है। काम, क्रोध आदि असुरों के अधीन होकर जो मनुष्य बुरे काम करता है और मरकर उन्हीं बुरे कामों के कारण अन्धकारमय घोर नरक में गिरने लगता है उसे परलोक में गाय वैसे ही उबार लेती है जैसे समुद्र में डूबते हुए मनुष्य को जहाज़ उबार लेता है। जो ब्राह्म-विधि से कन्यादान करता है, ब्राह्मण को विधिपूर्वक भूमिदान और अन्य दान करता है उसे इन्द्रलोक मिलता है। हे तार्क्ष्य, जो कोई सदाचारी सज्जन सात वर्ष तक नियम से अग्निहोत्र करता है वह अपने पुण्य के बल से सात पहले की और सात पीछे की पीढ़ियों को तार देता है।

तार्क्ष्य ने कहा—भगवती, वेदोक्त अग्निहोत्र व्रत की विधि क्या है? कृपा करके कहिए। आपके उपदेश से अग्निहोत्र के सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त कर मैं कृतार्थ हो जाऊँगा।

सरस्वती ने कहा—हे तार्क्ष्य! अशुद्ध, हाथ न धोये हुए, ब्रह्मविद्या से अनभिज्ञ, अविद्वान् व्यक्ति को अग्निहोत्र का अधिकार नहीं है; क्योंकि अन्तर्यामी देवता शुद्धि चाहते हैं; वे श्रद्धाहीन अशुद्ध पुरुष के दिये हुए हव्य को ग्रहण नहीं करते। जो श्रोत्रिय अर्थात् वेदपाठी नहीं है,

तार्क्ष्य-सरस्वती-संवाद।—पृ० १०७६

दल के उस बाण ने पुत्र श्येनजित् को मार डाला।—पृ० ११०२

उसे देवहव्य के कार्य में नियुक्त न करना चाहिए। उसका किया हुआ हवन व्यर्थ होता है। अश्रोत्रिय ब्राह्मण अधूरा माना गया है; इसी से उसको अग्निहोत्र का अधिकार नहीं है। जो लोग श्रद्धापूर्वक, सत्य-व्रत धारण करके, अग्निहोत्र करते हैं और उससे बची हुई सामग्री से अपना निर्वाह करते हैं वे सत्यस्वरूप परम देव विष्णु के दर्शन पाते हैं और गोलोक को जाते हैं। २०

तार्क्ष्य ने फिर पूछा—हे देवि, आप परलोक के भावों को क्षेत्रज्ञ आत्मा की तरह जानती हैं और बुद्धि के समान कर्मकाण्ड के मर्म को भली भाँति जानती हैं। हे सुभगे, मेरे विचार से आप प्रज्ञा हैं। अब मैं आप से पूछता हूँ कि आप कौन और क्या हैं?

सरस्वती ने कहा—ब्रह्मर्षियों के सन्देह दूर करने के लिए मैं अग्निहोत्र से आई हूँ। तुमको मैंने यह यथार्थ बात बता दी।

तार्क्ष्य ने कहा—हे देवि, आपके समान कोई नहीं है। आप साक्षात् लक्ष्मी के समान दिव्य शोभावाली हैं। आपका रूप दिव्य और कान्ति अनन्त है। हे सुभगे, आप ही प्रज्ञा देवी को धारण करती हैं। सरस्वती ने कहा—हे द्विजेन्द्र, ऋत्विक् लोग यज्ञ में जिन लकड़ी, लोहे और मिट्टी के पात्रों का उपयोग करते हैं और जिन श्रेष्ठ कर्मों का सम्पादन करते हैं, उन्हीं से रूपवती होकर मैं बढ़ती हूँ। हे विद्वन्, मेरे उस दिव्य रूप और प्रज्ञा से ही सिद्धि मिलती है।

तार्क्ष्य ने कहा—श्रद्धालु मुनि लोग जिस मोक्ष को सबसे बढ़कर मानते और जिसकी प्राप्ति के लिए इन्द्रिय-दमन आदि कठोर व्रत करते हैं, उस शोक-रहित मोक्ष का स्वरूप मुझे बताइए। सांख्ययोगशास्त्र के ज्ञाता जिसे पुरातन और श्रेष्ठ समझते हैं उस परमात्मा को भी मैं अच्छी तरह नहीं जानता। इसलिए इस विषय को भी बताइए। इस प्रश्न के उत्तर में सरस्वती ने कहा—हे तार्क्ष्य, स्वाध्यायनिरत वेदार्थ के ज्ञाता लोग शोक और विषयवासना छोड़कर व्रत, पुण्य कर्म और योगाभ्यास के द्वारा जिस पुरातन परम पुरुष को प्राप्त करते हैं वही परब्रह्म है। उस परम पुरुष के भीतर सहस्र-शाखाशोभित, पुण्य गन्धवाली, विशाल वेतसलता है।[1] उसके मूल से मधुर पानी के बहाववाली पवित्र नदियाँ बहती हैं।[2] उसकी हर एक शाखा में सिकता-शययुक्त, धानापूपविशिष्ट, मांसशाकवती, पायसकर्दमपरिपूर्ण महानदियाँ जाती हैं।[3] जहाँ अग्नि, इन्द्र, मरुद्गण आदि देवताओं ने श्रेष्ठ यज्ञ किये हैं वही परम पद है। हे तार्क्ष्य, मेरी स्थिति का स्थान भी वही है। मैं विद्यारूपिणी सरस्वती हूँ। ३०

---

(१) शाखा = भोगस्थान। पुण्यगन्ध = शब्द आदि विषय। वेतसलता = ब्रह्माण्ड।

(२) मूल = अविद्या। मधुर पानी के बहाव = तृप्तिजनक भोग। नदियाँ = भोग-वासनाएँ।

(३) सिकताशय = बालू के कणों की तरह परस्पर विच्छिन्न। धाना = भुने जव, जिनमें अंकुर उत्पन्न करने की शक्ति नहीं रहती। अपूप = बहुत से छेदोंवाला खाने का पदार्थ, पुआ। मांस = हिंसा से प्राप्त। शाक = निःसार। पायस = पहले देखने में सुन्दर पर अन्त में गरिष्ठ। कर्दम = कलुषमयी। महानदी = पुत्र-धन आदि की इच्छा।

एक सौ सत्तासी अध्याय

वैवस्वत मनु और मत्स्यावतार का उपाख्यान

वैशम्पायन कहते हैं कि हे जनमेजय, इसके बाद राजा युधिष्ठिर ने मार्कण्डेय से कहा—ब्रह्मन्, अब आप वैवस्वत मनु का चरित्र कहिए। मार्कण्डेय ने कहा—महाराज, विवस्वान् (सूर्य) के पुत्र, मनु के नाम से प्रसिद्ध, एक बड़े ही प्रतापी महर्षि थे। वे प्रजापति के समान तेजस्वी थे। बल, तेज, कान्ति, दीप्ति और तप में वे अपने पिता सूर्य और पितामह कश्यप से भी बढ़कर थे। उन्होंने बदरिकाश्रम में दस हज़ार वर्ष तक उर्द्ध्वबाहु होकर एक पैर से खड़े रहकर घोर तप किया। इस दशा में वे नीचे सिर किये रहते और आँखों की पलकें न गिरने देते थे।

वे एक दिन चीरिणी नदी में नहा करके तप कर रहे थे। उनके कपड़े और सिर की जटाएँ गीली थीं। इसी समय एक छोटी सी मछली ने आकर उनसे कहा—भगवन्, बड़े और बली मच्छ दुर्बल, छोटी मछलियों को खा जाते हैं। यही पुराना नियम है। मैं दुर्बल छोटी मछली हूँ, बड़े मच्छों से मुझे डर लगता है। उनके भय से आप मेरी रक्षा कीजिए। मैं डर के महासागर में डूब रही हूँ; आप कृपा करके मुझे उससे उबार लीजिए। आप मेरा यह उपकार करेंगे तो मैं भी बदले में आपका उपकार करूँगी।

महात्मा वैवस्वत मनु को मछली के वचन सुनकर उस पर दया आ गई। उन्होंने अपने हाथ में उसे ले लिया। उस मछली को निकालकर उन्होंने चन्द्रमा के समान सफ़ेद रङ्गवाले अलिञ्जर (मिट्टी के घड़े) में डाल दिया। वह मछली मनु की देख-रेख में रहकर उस बर्तन में बढ़ने लगी। मनु उस पर अपने पुत्र का सा स्नेह रखने लगे। कुछ समय के बाद वह मछली इतनी बढ़ी कि उस छोटे बर्तन में उसका रहना कठिन हो गया। तब उसने फिर मनु से कहा—भगवन्, मेरे लिए और कोई जगह ठीक कीजिए। मनु ने उस जीव को अलिञ्जर से निकालकर दो योजन लम्बे और एक योजन चौड़े एक जलाशय

(बावली) में रख दिया। वह मछली बहुत वर्षों तक उस जलाशय में बढ़ती रही। फिर वह बढ़कर एक बड़ा भारी मच्छ हो गई और उस जलाशय में भी समा न सकी। एक दिन फिर उस मच्छ ने मनु से कहा—भगवन्, मुझे इसमें बड़ा कष्ट है। मुझे हिलने-डुलने के लिए भी इसमें जगह नहीं। इस कारण समुद्र की पत्नी गङ्गा में ले जाकर मुझे छोड़ दीजिए अथवा आप जो उचित समझिए सो कीजिए। मैं कुछ भी बुरा न मानकर आपकी आज्ञा का पालन करता रहूँगा; क्योंकि आपकी ही कृपा से मैं इतना बड़ा हुआ हूँ। मच्छ के ये वचन सुनकर मनु उसे गङ्गाजी में डाल आये। हे शत्रुदमन, कुछ दिन गङ्गा में रहकर फिर वह मच्छ इतना बढ़ गया कि वहाँ रहना भी असम्भव हो गया। मनु जब उसे देखने गये तब उस मच्छ ने उनसे कहा—प्रभो, मेरा शरीर इतना बढ़ गया है कि मैं गङ्गा में स्वच्छन्दता के साथ चल-फिर नहीं सकता। मुझ पर प्रसन्न हूजिए और मुझे समुद्र में ले चलिए। मनु उसे गङ्गा से निकालकर पूर्वसमुद्र में ले गये। इतना बड़ा होने पर भी मनु के उठाने पर वह मच्छ ऐसा हलका हो जाता था कि वे उसे मज़े में उठा ले जाते थे; इसके सिवा उसकी गन्ध और स्पर्श भी सुखदायक था। २०

मनु ने उसे ज्योंही समुद्र के भीतर छोड़ा त्योंही उसने मुसकाकर कहा—भगवन्, आपने सब तरह कृपा करके मेरी रक्षा की है। समय आने पर मैं जो आपका उपकार करूँगा सो मुझसे सुनिए। हे महाभाग, यह पृथ्वी और चराचर जगत् शीघ्र ही, प्रलय होने से, नष्ट हो जायगा। यह समय सब पदार्थों के नाश का आ गया है। इसी लिए मैं आपको हित की बात बता रहा हूँ। आप एक दृढ़ नाव बनवा लीजिए और उसमें मज़बूत रस्सी भी रख लीजिए। प्रलय के समय सप्तऋषियों के साथ आप उस नाव पर सवार हो जाइएगा। पहले आपको जिस तरह द्विजों ने बताया है उसी तरह पृथ्वी भर के सब विभाग के बीजों को रख लीजिएगा और उनकी सब तरह रक्षा कीजिएगा। हे ऋषिश्रेष्ठ, उसी नाव पर बैठकर आप मेरे आने की राह देखना। मैं उस समय आपकी सहायता करने आऊँगा। मेरे मस्तक पर एक सींग होगा। यही मेरी पहचान रहेगी। जो मैंने कहा है, उसे उसी तरह कीजिएगा। अब मैं जाता हूँ। याद रहे, मेरी सहायता के बिना आप इस घोर आपत्ति से बच नहीं सकते। हे तापस, आप मेरे इन वचनों में तनिक भी सन्देह न कीजिएगा। वैवस्वत मनु ने कहा—अच्छा, मैं वही करूँगा। मीन और मनु दोनों परस्पर इस तरह कहकर इच्छा के अनुसार चल दिये। ३०

महाराज! अब प्रलयकाल उपस्थित होने पर, मच्छ के कहने के अनुसार, सब बीज उस नाव पर रखकर मनुजी उस भयानक महासमुद्र में उसी मच्छ के आने की राह देखने लगे। समुद्र में पहाड़ की सी बड़ी-बड़ी लहरें उठ रही थीं। राजन्, मनु को अपने आगमन के लिए चिन्तित और उत्कण्ठित जानकर वह मच्छ उसी समय उनके पास आ गया। समुद्र के जल में सींगवाले उस पर्वताकार मच्छ को देखकर मनु प्रसन्न हुए। उन्होंने उसी रस्सी से मच्छ के सींग

४० में वह नाव बाँध दी। वह मच्छ अपने सींग में बँधी हुई नाव को खींचता हुआ बड़े वेग से उस खारी समुद्र में चलने लगा। समुद्र का दृश्य बड़ा ही भयानक था। लहरों के देखने से जान पड़ता था मानों वह नाच रहा है; लहरों का शब्द सुनकर जान पड़ता था मानों वह डाँट बताता हुआ गरज रहा है। आँधी के झोकों और लहरों की टक्करों से वह नाव मदोन्मत्त चञ्चल स्त्री की तरह लटपटाने और घूमने लगी। उस समय पृथ्वी, दिशा, उपदिशा, आकाश आदि कुछ भी नहीं देख पड़ता था; सब तरफ़ जल ही जल था। उस जलमय दृश्य में केवल मनु, सप्तर्षिगण, नाव और मच्छ, यही देख पड़ रहे थे।

वह मच्छ लगातार बहुत वर्षों तक उस जल के भीतर नाव को खींचता फिरता रहा। आलस्य या थकन का नाम भी न था। कुछ दिन बाद पर्वतराज हिमालय की सबसे ऊँची चोटी देख पड़ी। वह विचित्र मच्छ नाव को उसी ओर खींच ले गया। फिर उसने मुसका-कर नाव पर बैठे हुए मनु और ऋषियों से कहा—आप लोग झटपट नाव को इस पर्वत के शिखर में बाँध दें। हे युधिष्ठिर, उस मच्छ के कहने से उन्होंने उसी बरेत (रस्सी) से हिमालय की
५० चोटी में नाव बाँध दी। ऋषियों ने हिमालय के जिस शिखर से नाव बाँधी थी, वह अब तक 'नौबन्धन' के नाम से प्रसिद्ध है।

इसके बाद उस अद्‌भुत मच्छ ने कहा—मैं प्रजापति ब्रह्मा हूँ। तुम्हें इस डर से बचाने के लिए ही मैंने यह मत्स्यरूप धारण किया है। मैं ही इस ब्रह्माण्ड में सबसे श्रेष्ठ हूँ; मेरे सिवा और कोई नहीं। हे मनु! तुम देवता, मनुष्य, असुर आदि सब चराचर जीवों की सृष्टि करो। तीव्र तप के बल से तुम्हें सृष्टि-रचना की प्रतिभा प्राप्त होगी। मेरी कृपा से सृष्टि-रचना में तुमको न तो मोह होगा और न तुमसे भूल होगी; तुम यथार्थ रूप से सृष्टि-रचना कर सकोगे। इतना कहकर मत्स्यरूपधारी भगवान् ब्रह्मा अदृश्य हो गये।

महाराज, तब वैवस्वत मनु ने प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा की; परन्तु वे यह निश्चय न कर सके कि उसे किस ढङ्ग से किस रूप में करें। बुद्धि के मोहित होने पर मनस्वी मनु ने

अत्यन्त घोर तप किया। हे भरतश्रेष्ठ! उसमें सिद्धि पाकर, तपोबलयुक्त होकर, मनु ने ठीक तौर से सृष्टि का आरम्भ किया। राजन्, सब पापों को दूर करनेवाली यह कथा मैंने तुमको सुना दी। यह उपाख्यान मत्स्यपुराण के नाम से प्रसिद्ध है। जो कोई इस मनु के चरित्र को नित्य आदि से अन्त तक सुनता है, उसके सब मनोरथ पूरे होते हैं; वह सुखी होकर सब लोकों में जाने की शक्ति पाता है। ५८

एक सौ अट्ठासी अध्याय

सत्ययुग आदि चारों युगों के धर्म का वर्णन। प्रलय का वर्णन

वैशम्पायन कहते हैं कि हे जनमेजय, युधिष्ठिर ने यशस्वी मार्कण्डेय से विनयपूर्वक कहा—हे मुनिवर, आप हज़ारों युगों का अन्त देख चुके हैं। महात्मा ब्रह्मा के सिवा और कोई प्राणी इस जगत् में आपकी इतनी आयु का नहीं देख पड़ता। प्रलयकाल में, जब इस लोक में और अन्तरिक्ष में कोई देवता, मनुष्य या दानव आदि प्राणी नहीं रह जाते तब आप ही प्रजापति ब्रह्मा की आराधना करते हैं। प्रलय समाप्त होने पर, पितामह जागकर जब दिशाओं को वायुरूप बनाकर और समुद्र के जल को यथास्थान हटाकर—जरायुज (मनुष्य), अण्डज (पक्षी), स्वेदज (जूँ-लीख आदि) और उद्भिज (वृक्ष)—चार प्रकार के प्राणियों की सृष्टि करते हैं, तब आप उस सृष्टि-रचना को देखते हैं। हे द्विजवर, आपने समाधि लगाकर लोकगुरु ब्रह्मा की आराधना की है। आप अद्वितीय तप करके मरीचि आदि प्रजापतियों से भी बढ़ गये हैं। आप शेषशायी नारायण के समीपवर्ती भक्त हैं, इसलिए लोग आपकी विशेष बड़ाई और स्तुति करते हैं। आपने योगबल से हृदयकमल को खोलकर, योग और वैराग्य की आँखों से, हृदय में स्थित, कामरूपी, विश्व के स्रष्टा, स्वयंभू ब्रह्मा के दर्शन अनेक बार किये हैं। ब्रह्मन्! १० उन्हीं कमलयोनि ब्रह्मा की कृपा से, शरीर को नष्ट करनेवाला, बुढ़ापा आप पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकता और न काल या मृत्यु ही आपके शरीर को नष्ट कर सकती है। जिस समय सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, स्वर्ग, पृथ्वी, देवता, दानव, नाग आदि सहित सब चराचर जगत् नष्ट हो जाता है, चारों ओर जल ही जल देख पड़ता है, उस समय एक आप ही पद्म पर सोते हुए सब प्राणियों के ईश्वर ब्रह्मा की आराधना करते हैं। हे द्विजोत्तम, सृष्टि और प्रलय की सब बातें आपने प्रत्यक्ष देखी हैं [त्रिभुवन में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे आप न जानते हों] इसी लिए मैं आपसे यह सब कथा सुनना चाहता हूँ।

मार्कण्डेय ने कहा—राजन्! मैं उन्हीं पुराण-पुरुष, अनादि, अविनाशी, अव्यक्त, अत्यन्त सूक्ष्म, निर्गुण और गुणमय जगदीश्वर को प्रणाम करके यह सब वृत्तान्त कहता हूँ। ये जो तुम्हारे पास पीताम्बरधारी कमलनयन जनार्दन कृष्ण बैठे हैं, यही कर्त्ता, विधाता, सब प्राणियों

में व्याप्त और उनका निर्माण करनेवाले हैं। ये अचिन्त्य, महान् आश्चर्य और पवित्र हैं। ये आदि और अन्त से रहित, विश्वरूप, अव्यय और अक्षय हैं। ये सबका कारण हैं, इनका कारण
२० कोई नहीं है। यही सबके पौरुष का कारण हैं। वेद और देवता भी जिन परमपुरुष को नहीं जानते उन्हें, अर्थात् ब्रह्म को, ये जानते हैं।

हे पुरुषसिंह, प्रलयकाल में सबका संहार हो जाता है। फिर सृष्टि का समय आने पर यह आश्चर्यमय सब जगत् उन्हीं आदि-पुरुष से प्रकट होता है। सृष्टि के उपरान्त सत्ययुग का आरम्भ होता है। सत्ययुग का परिमाण चार हज़ार वर्ष का है। सत्ययुग की सन्ध्या और सन्ध्यांश दोनों का परिमाण चार-चार सौ वर्ष का है। त्रेतायुग की आयु तीन हज़ार वर्ष है। उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश भी तीन-तीन सौ वर्ष के हैं। द्वापरयुग का परिमाण दो हज़ार वर्ष का है। उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश भी दो दो सौ वर्ष के हैं। कलियुग की आयु एक हज़ार वर्ष की है। उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश सौ-सौ वर्ष के हैं। ये वर्ष दिव्य अर्थात् देवताओं की आयु के समझने चाहिएँ। [मनुष्य की आयु का एक वर्ष देवताओं की आयु का एक दिन-रात है।] महाराज, कलियुग का क्षय होने पर फिर सत्ययुग आता है। चारों युगों की आयु का परिमाण बारह हज़ार वर्ष है। इस तरह की एक हज़ार चौयुगी बीतने पर ब्रह्मा का एक दिन पूरा होता है। उसे कल्प भी कहते हैं। हरएक कल्प में लोकों का प्रलय हो जाता है।

हे भरतश्रेष्ठ, हज़ार वर्ष की आयुवाले कलियुग का कुछ अंश जब बाक़ी रह जाता है तब सब मनुष्य प्रायः मिथ्यावादी हो जाते हैं। उस समय यज्ञ, दान और व्रत कोई नहीं कर सकता,
३० इसलिए उनके स्थान पर प्रतिनिधि-कर्म प्रचलित हो जाते हैं। उस युगान्त के समय ब्राह्मण लोग शूद्रों के काम करने लगते हैं और शूद्र लोग क्षत्रियों की वृत्ति से अथवा वैश्यों की वृत्ति से धन पैदा करने लगते हैं। कलियुग में ब्राह्मण लोग तप और स्वाध्याय छोड़कर, दण्ड-मृगचर्म आदि को त्यागकर सर्वभक्षी हो जायँगे। ब्राह्मण लोग जप आदि अपने कर्म छोड़ देंगे और शूद्र लोग जप आदि कर्म करने लगेंगे। पृथ्वी पर इस तरह जब विपरीत भाव देख पड़ने लगे तब उसे प्रलय की पूर्व सूचना समझना चाहिए। राजन्, कलियुग के अन्त समय में आन्ध्र, शक, पुलिन्द, यवन, काम्बोज, वाह्लीक, शूर और आभीर आदि म्लेच्छ जातियों के राजा राज्य करेंगे। वे मिथ्यावादी, पापी होकर अधर्म से राज्य का शासन करेंगे। उस समय कोई भी ब्राह्मण अपने धर्म का पालन नहीं करेगा। क्षत्रिय और वैश्य भी अपने कर्मों को छोड़कर धर्म-विरुद्ध काम करने लगेंगे। मनुष्यों की आयु, बल, वीर्य, पराक्रम, सारांश और शरीर आदि घट जायँगे। वे सत्य बहुत कम बोलेंगे। बस्तियाँ सूनी हो जायँगी। दिशाओं में मृग और साँप आदि हिंसक जीव अधिकता से देख पड़ेंगे। अनुभव न होने के कारण मनुष्य वृथा ब्रह्मवाद का ढोंग रचेंगे। शूद्र लोग ब्राह्मणों को 'तुम' कहेंगे और ब्राह्मण लोग शूद्रों को 'आप' कहेंगे। हे पुरुष-

सिंह, चारों ओर मनुष्यों की कमी और जीव-जन्तुओं की बढ़ती देख पड़ेगी। सुगन्ध की वस्तुओं में वैसी सुगन्ध नहीं रहेगी। रसीली चीज़ों में रस न रह जायगा। मनुष्यों के बाल-बच्चे बहुत अधिकता से होंगे। सबके शरीर छोटे हो जायँगे। सुशीलता और सदाचार मिट जायगा। स्त्रियाँ मुख से भग-कार्य करेंगी। बस्तियों में अन्न का अभाव होगा। चौराहों पर वेश्याओं और धूर्तों की भीड़ रहा करेगी। स्त्रियाँ निर्लज्ज हो जायँगी। गायों का दूध घट जायगा। वृक्ष कम फूलें-फलेंगे और उन पर कौए आदि पक्षी अधिकता से बैठे देख पड़ेंगे। ब्राह्मण लोग लोभ और मोह के वश में हो जायँगे, दिखावे के लिए धर्म के चिह्न धारण करके ढोंग रचेंगे। ब्रह्महत्या आदि पापों के करनेवाले मिथ्यावादी राजाओं के पास जाकर ब्राह्मण लोग उनसे दान लेंगे। भिक्षावृत्ति का सहारा लेकर ब्राह्मण लोग गली-गली मारे-मारे फिरेंगे। गृहस्थ लोग राजा के लगाये कर (टैक्स) के बोझ से दबकर चोरी और बेईमानी पर उतारू हो जायँगे। ब्राह्मण लोग मुनियों का वेष बनाकर छिपे-छिपे बनिज-बैपार करेंगे। धन के लोभ से झूठे ब्रह्मचारी बने हुए ब्राह्मण नख और केश बढ़ावेंगे। चारों आश्रमों के लोग आचार का ढोंग रचेंगे। मद्यपान और गुरुशय्यागमन का पाप बहुत बढ़ जायगा। लोग इस लोक के सुखों में लिप्त रहकर केवल रक्त और मांस बढ़ाने की चेष्टा करेंगे। चारों आश्रमों के लोग तरह-तरह के पाखण्ड रचेंगे और पराया अन्न खाकर उसके गुणों का बखान करेंगे। भगवान् इन्द्र वर्षाकाल में ठीक समय पर जल नहीं बरसावेंगे और बीजों में उपजाऊ शक्ति नहीं रहेगी। धर्म का फल सर्वत्र हीन हो जायगा, अर्थात् धर्म का फल पूर्णरूप से होता न देख पड़ेगा। लोग अपवित्र और हिंसा पर विशेष रुचि रखनेवाले देख पड़ेंगे। अधर्म करनेवालों का भला होते देख पड़ेगा।

हे नरेन्द्र, उस समय धार्मिक पुरुष अल्पायु होते देख पड़ेंगे; कोई धर्म न रह जायगा। सौदा बेचनेवाले लोग कम तौलेंगे और बेईमानी करेंगे। धोखेबाज़ी का चलन बहुत बढ़ जायगा। धर्म के बल की हानि और अधर्म के बल की वृद्धि होगी। इसी से धार्मिक लोग दुर्बल, अल्पायु, दरिद्र और हीनदशा से पीड़ित देख पड़ेंगे। अधर्मी पापी लोग दीर्घायु, समृद्धिशाली, प्रबल और बढ़ रहे देख पड़ेंगे। ये लोग व्यवहार में अधर्मयुक्त उपायों का आश्रय लेंगे। लोग थोड़ा ही धन पास होने पर धनाढ्यों की तरह मदान्ध हो उठेंगे। अगर कोई विश्वास करके किसी के पास धरोहर के तौर पर अपना धन रख देगा तो उसे धोखा दिया जायगा। पापाचारी लोग दूसरे की धरोहर हज़म करने में सङ्कोच नहीं करेंगे; जिसका धन होगा उससे निर्लज्ज होकर कहेंगे कि तूने हमारे पास धन रक्खा ही नहीं। नगरों के विहारस्थानों और देवस्थानों में भेड़िये, व्याघ्र, मांसभक्षी पक्षी और मृग सोवेंगे। राजन्, उस समय सात-आठ वर्ष की स्त्रियाँ गर्भवती होंगी और दस-बारह वर्ष के पुरुष लड़के के बाप बन बैठेंगे। सोलह वर्ष की अवस्था में ही पुरुषों के बाल पकने लगेंगे। इस तरह शीघ्र ही बुड्ढे होकर लोग यमपुर सिधार जायँगे। जवान

बुड्ढे से हो जायँगे और बुड्ढों का स्वभाव जवानों का सा बना रहेगा। स्त्रियाँ अपने धर्म के विपरीत पूज्य पतियों को धोखा देकर दासों और पशुओं तक के साथ कुकर्म करेंगी। साधारण स्त्रियाँ और वीरों की स्त्रियाँ भी जीते हुए पतियों को धोखा देकर परपुरुषों से प्रीति करेंगी।

महाराज, इस प्रकार हज़ार वर्ष की कलियुग की आयु समाप्त होने पर बहुत वर्षों तक पानी नहीं बरसेगा। अन्न आदि उत्पन्न न होने के कारण कलियुग के सारहीन प्राणी भूख से मरने लगेंगे। इस प्रकार अधिकांश प्राणियों का संहार हो जाने पर सात प्रचण्ड सूर्य एक साथ तपकर समुद्र, नदी आदि का सब जल सोख लेंगे। तब सूखी और गीली घास तथा लकड़ियाँ जल उठेंगी और भस्म हो जायँगी। फिर संवर्तक नाम का अग्नि, प्रचण्ड वायु की सहायता से, बढ़कर सूर्य के सुखाये हुए सब भुवनों को भस्म करने लगेगा। वह पृथ्वी को जलाकर पृथ्वी के नीचे रसातल तक पहुँच जायगा; जिसे देखकर वहाँ के निवासी देवता, दानव, यक्ष
७० आदि डर के मारे घबरा जायँगे। वह अग्नि नीचे पाताल लोक तक जलाता हुआ पृथ्वी के सब पदार्थों को क्षण भर में भस्म कर डालेगा। उस अग्नि के द्वारा बीस हज़ार सौ योजन तक का स्थान राख का ढेर बन जायगा। अशुभ कठोर हवा की सहायता से वह संवर्त्तक अग्नि देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नाग आदि प्राणियों सहित सब जगत् को एक साथ भस्म कर डालेगा।

इसके बाद हाथियों के झुण्ड के समान विचित्र आकारवाले महामेघ आकाशमण्डल में छा जायँगे। उनमें विकट बिजलियाँ चमकने लगेंगी। कुछ नीले कमल के रङ्ग के, कुछ कोकाबेली के फूल के रङ्ग के, कुछ कमल-केसर के रङ्ग के, कुछ केसरिया रङ्ग के, कुछ पीले रङ्ग के, कुछ कौए के अण्डे के रङ्ग के, कुछ कमल के पत्ते के रङ्ग के, कुछ हींग के रङ्ग के, कुछ अञ्जन के रङ्ग के, कुछ हाथियों के आकार के, कुछ पुर के आकार के और कुछ मगर के आकार के मेघ चारों ओर छा जायँगे। अनेक बिजलियों से जगमगाते हुए घोर मेघ भयङ्कर शब्द से गरजने लगेंगे। विधाता की प्रेरणा से वे मेघ जल बरसाकर पर्वत, वन, खान आदि सहित पृथ्वीमण्डल को डुबा
८० देंगे। बड़े बड़े पर्वत भी उस जलराशि में बह जायँगे। वे बादल बेहद पानी बरसाकर उस प्रलयकाल के अमङ्गलरूप अग्नि को बुझा देंगे।

महाराज, इस तरह वे बादल लगातार बारह वर्ष तक मूसलाधार पानी बरसाते रहेंगे; तब समुद्र अपनी मर्यादा छोड़कर उमड़ पड़ेगा। पर्वत फट जायँगे और पृथ्वी भी फटकर रसातल में डूब जायगी। फिर वे बादल एकाएक आकाश में चक्कर लगाकर वायु के वेग से फटकर नष्ट हो जायँगे। तब आदिदेव भगवान् ब्रह्मा उस पवन को पीकर जल में शयन करेंगे।

राजन्! उस घोर प्रलय के समय देवता, यक्ष, राक्षस, असुर, मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, अन्तरिक्ष आदि में से कुछ भी नहीं बच रहेगा। चारों ओर जल ही जल देख पड़ेगा। मैं अकेला उस अपार जलराशि में विचरता हुआ जल के सिवा और कुछ न देख पाऊँगा। नीचे से

ऊपर तक जल ही जल देखकर मैं बहुत ही व्याकुल होऊँगा। महाराज, मैं ऐसे ही एक बीते हुए प्रलय का हाल कहता हूँ; सुनिए। मैं बहुत समय तक इसी तरह मारा मारा फिरता रहा। मुझे विश्राम करने के लिए कहीं कुछ आधार नहीं मिला। इतने में पानी में बहते-बहते एकाएक उसी जलराशि के बीच मैंने एक विशाल बर्गद का पेड़ देखा। उस वृक्ष की एक बड़ी भारी शाखा पर, एक पलँग पर, सुन्दर साफ़ और कोमल बिछौने बिछे हुए थे। उस पलँग के ऊपर मुझे कमल जैसे नयन और पूर्ण चन्द्रमा के समान मुखवाला मनोहर बालक देख पड़ा। उसे देखकर मुझे बड़ा अचरज हुआ। मैं मन में कहने लगा—अहो कैसा आश्चर्य है! सब लोक नष्ट हो गये हैं, फिर यह सुन्दर बालक कैसे यहाँ पर विराजमान है! महाराज, तीनों काल का जाननेवाला होकर भी, बार-

९०

बार ध्यान के द्वारा विचारकर भी, मैं जान न सका कि वह बालक कौन है और कैसे प्रलय के नाश से बच रहा है। उस बालक का रंग अलसी के फूल का सा श्याम था। श्रीवत्स-चिह्न उसकी शोभा बढ़ा रहा था। वह साक्षात् लक्ष्मी अर्थात् शोभा और ऐश्वर्य की खान जान पड़ता था।

उस कमलनयन, तेजस्वी, श्रीवत्स-चिह्नधारी बालक ने कानों को सुख देनेवाले मधुर स्वर से मुझसे कहा—"हे मार्कण्डेय, मैं तुमको जानता हूँ। तुम थककर विश्राम के लिए मेरे पास आये हो। इसलिए मेरे शरीर के भीतर प्रवेश करके जब तक जी चाहे, विश्राम करो। हे मुनिश्रेष्ठ, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ।" हे युधिष्ठिर, उस बालक के ये वचन सुनकर मुझे अपने मनुष्य और चिरजीवन होने के बारे में ग्लानि मालूम पड़ी। इसके बाद उस बालक ने अपना मुँह फैलाया और मैं विवश सा होकर उसके मुँह के भीतर चला गया। १००

महाराज, उस विचित्र बालक के पेट में जाकर मैंने राज्यों और नगरों सहित समूचा पृथ्वीमण्डल देखा। उसके भीतर गङ्गा, शतद्रु, सीता, यमुना, कौशिकी, चर्मण्वती, वेत्रवती, चन्द्रभागा, सरस्वती, सिन्धु, विपाशा, गोदावरी, वस्वोकसारा, नलिनी, नर्मदा, ताम्रा, वेणा, पुण्यतोया, शुभावहा, सुवेणा, कृष्णावेणा, महानदी, इरामा, वितस्ता, कावेरी, शोण, विशल्या,

किंपुना और पृथ्वीमण्डल की अन्य अनेक नदियाँ मैंने देखीं। भीतर फिरते-फिरते मैंने जल-जन्तुओं से पूर्ण रत्नाकर समुद्र को देखा। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, तारागणसहित प्रकाशमान आकाशमण्डल भी मैंने वहाँ देखा। विविध वनों, पर्वतों और द्वीपों सहित सम्पूर्ण पृथ्वी-मण्डल भी दृष्टिगोचर हुआ। उस अद्भुत बालक के पेट के भीतर ही मैंने देखा कि ब्राह्मण लोग विविध यज्ञ कर रहे हैं; क्षत्रियगण सब वर्णों का पालन कर रहे हैं; वैश्य लोग खेती और बनिज १० आदि अपनी वृत्तियों में लगे हुए हैं और शूद्र लोग तीनों वर्णों की सेवा कर रहे हैं। इधर-उधर विचरकर उसी के भीतर मैंने हिमालय, हेमकूट, निषध, चाँदी का सफ़ेद पहाड़, गन्धमादन, मन्दराचल, नील पर्वत, सुवर्णमय मेरु पर्वत, महेन्द्र, विन्ध्याचल, मलयगिरि और पारियात्र आदि सभी रत्नपूर्ण पर्वत देखे। पृथ्वी पर सिंह, बाघ, वराह आदि जितने प्राणी पाये जाते हैं वे सब

मुझे उस बालक के पेट में विचरते हुए देख पड़े। इन्द्र आदि सब देवता, साध्यगण, रुद्रगण, आदित्यगण, गुह्यक, पितृगण, साँप, नाग, सुपर्ण, वसुगण, अश्विनीकुमार, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, ऋषिगण, देवताओं के वैरी दैत्य, दानव, नाग, असुर आदि सब त्रिलोक के निवासी मुझे उस बालक के २० पेट के भीतर देख पड़े। [अधिक कहाँ तक कहूँ,] पृथ्वी पर जो कुछ चर और अचर पदार्थ मैंने देखे थे वे सब वहाँ मुझे देखने को मिले। केवल फलाहार करता हुआ मैं उस बालक के पेट में कुछ अधिक सौ वर्ष तक फिरता रहा, किन्तु मुझे उसके असीम शरीर की सीमा न मिली। तब मैं सर्वश्रेष्ठ वरदायक परमेश्वर का ध्यान और स्तुति करता हुआ उसी परम-पुरुष की शरण में गया।

राजन्, फिर जम्हाई लेकर उस बालक ने मुँह खोला और मैं उसके पेट के बाहर आ गया। बाहर आकर मैंने देखा कि वे महातेजस्वी, श्रीवत्सधारी, पीताम्बर-शोभित बाल-मुकुन्द सब जगत् को अपने में लीन किये हुए उसी बरगद की शाखा पर वैसे ही विराजमान हैं। तब प्रसन्नतापूर्वक मुसकाते हुए मेरी ओर देखकर बालरूपी हरि ने कहा—हे मुनिवर मार्कण्डेय, तुम

क्या मेरे इस शरीर के भीतर रहकर और घूमकर थक गये हो? बालमुकुन्द के यों पूछने पर मुझे १३० नई दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई। मैं ईश्वरी माया के फेर से छुटकारा पाकर मानों होश में आ गया।

तब बालमुकुन्द के अच्छी तरह रक्खे हुए चरणों पर सिर रखकर मैंने प्रणाम किया। उन पैरों के तलवे लाल थे। कोमल, लाल, सुडौल उँगलियाँ उनकी शोभा बढ़ा रही थीं। उन बालमुकुन्द के अपरिमेय प्रभाव को देखकर, पास जाकर, नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर मैंने अपने को धन्य समझा। फिर मैंने प्रणाम करके, हाथ जोड़कर, उनसे कहा—हे देव, मैं आपको और आपकी अद्भुत माया को जानना चाहता हूँ। आपके मुख से शरीर के भीतर जाकर वहाँ मैंने सब लोकों को और देव, दानव, राक्षस, यक्ष, गन्धर्व, नाग आदि सब प्राणियों को—चराचर जगत् को—देखा है। आपके शरीर के भीतर शीघ्रता से घूमने पर भी मेरी स्मृतिशक्ति बनी रही। प्रभो, अपनी अभिलाषा न रहने पर भी आपकी इच्छा से मैं बाहर निकल आया हूँ। हे कमलनयन, आपको अच्छी तरह जानने के लिए मैं फिर यत्न करूँगा। भगवन्, कृपा करके यह बताइए कि सब ब्रह्माण्ड को अपने में लीन करके इस बालक के रूप से आप यहाँ पर क्यों विराजमान हैं? चराचर जगत् को आपने अपने शरीर के भीतर क्यों लीन कर रक्खा है? ४० आप इस रूप से इस तरह यहां पर कब तक रहेंगे? नाथ, यह सब मैं विस्तार के साथ आपके श्रीमुख से सुनना चाहता हूँ; क्योंकि ब्राह्मण वही है जिसे आपका और आपकी माया का ज्ञान हो। मैं इस ज्ञान को प्राप्त कर ब्राह्मण बनना चाहता हूँ। ईश्वर, यह जो कुछ मैंने देखा है वह बहुत बड़ा और गूढ़ विषय है। हे युधिष्ठिर, मेरे यों कहने पर वे परम तेजस्वी, श्रीमान्, देवदेव, भगवान् सान्त्वना देते हुए मुझसे यों कहने लगे। १४३

एक सौ नवासी अध्याय

बालमुकुन्द का मार्कण्डेय को उनके प्रश्नों का उत्तर देना

बालमुकुन्द ने कहा—हे विप्र, जानने की इच्छा रखने पर भी देवगण मेरे यथार्थ तत्व को नहीं जान पाते। किन्तु तुम पर मैं बहुत प्रसन्न हूँ, इस कारण तुम्हारे सन्तोष के लिए मैं तुमको वह क्रम सुनाता हूँ जिस क्रम से मैं इस सृष्टि की रचना करता हूँ। हे मुनिवर, तुम पिता के भक्त और मेरे शरणागत हो। साथ ही बहुत समय तक तुमने ब्रह्मचर्य धारण किया है। इसी कारण तुमको मेरे साक्षात् दर्शन प्राप्त हुए हैं। मैंने पहले जल को 'नार' नाम दिया था। वह नार अर्थात् जल मेरा आश्रय है, इसी से मैं लोक में नारायण के नाम से प्रसिद्ध हूँ। मैं सबका अनादि कारण और अविनाशी हूँ। हे द्विज, मैं सब प्राणियों का विधाता और संहारकर्ता हूँ। विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, राजा कुवेर, प्रेतराज यम, शिव, चन्द्र, प्रजापति कश्यप, धाता, विधाता और यज्ञ आदि सब मैं ही हूँ। अग्नि मेरा मुख है, पृथ्वी मेरे पैर है, चन्द्र और सूर्य मेरे नेत्र हैं।

आकाश सिर है। दिशाएँ कान हैं। जल पसीना है। महादिशाएँ और महाकाश मेरा शरीर है और वायु मेरा मन है। मैंने बहुत बड़ी-बड़ी दक्षिणाएँ देकर कई सौ महायज्ञ किये हैं। वेद का अर्थ जानने की इच्छा रखनेवाले ब्राह्मण, देवलोक की इच्छा रखनेवाले क्षत्रिय और वैश्य यज्ञ आदि से मेरी ही आराधना करते हैं। मैं ही शेषनाग का रूप रखकर सुमेरु, मन्दराचल आदि
१० पर्वतों-सहित चार समुद्रों से भूषित पृथ्वीमण्डल को धारण किये हुए हूँ। मैंने ही पहले युग में वराह अवतार लेकर, अपने पराक्रम के प्रभाव से, प्रलयसागर के जल में डूबी हुई पृथ्वी का उद्धार किया है। हे द्विज, मैं वड़वामुख अग्नि के रूप से सम्पूर्ण जल को सोखकर फिर बरसाता हूँ। ब्राह्मण मेरा मुख हैं, क्षत्रिय मेरी भुजाएँ हैं, वैश्य मेरी जाँघें और शूद्र मेरे पैर हैं। ऋक्, यजुः, साम और अथर्व, ये चारों वेद मुझसे उत्पन्न होते और मुझमें ही लीन हो जाते हैं। शान्तिपरायण, काम-क्रोध आदि से रहित, निर्भय, पापशून्य, अहङ्कारहीन, अध्यात्म विद्या में निपुण, जितेन्द्रिय, मोक्ष की इच्छा रखनेवाले ब्राह्मण ध्यानयोग से मेरी ही उपासना करते हैं। मैं ही प्रलय करनेवाला अग्नि हूँ; मैं ही प्रलय करनेवाला यम हूँ; मैं ही प्रलय करनेवाला सूर्य हूँ और मैं ही प्रलय करनेवाला वायु हूँ। आकाश में देख पड़नेवाले तारागण मेरे रोमछिद्र हैं। रत्नाकर समुद्र और दिशाएँ मेरे वस्त्र, शयन और निलय (निवासस्थान) हैं। देवताओं के कार्य और प्रयोजन की सिद्धि
२० के लिए मैंने ही इनको अलग-अलग स्थापित किया है। काम, क्रोध, मोह, डर, हर्ष, मनुष्यों के मङ्गल का साधन सत्य; दान, उग्र तप, प्राणियों से अहिंसा का व्यवहार आदि सब भाव मेरे रोम हैं और मेरे ही शरीर में स्थित हैं। मेरे ही विधान के अनुसार सब प्राणी इन भावों का आश्रय ग्रहण करते हैं, अपनी स्वतन्त्र इच्छा से नहीं। अच्छी तरह वेद का अध्ययन और उसके अर्थ का अनुशीलन करनेवाले, अनेक यज्ञ करनेवाले, शान्तहृदय और क्रोध को जीतनेवाले ब्राह्मण ही मुझे पा सकते हैं। कुकर्म करनेवाले (दुराचारी), लोभी, अनार्य, कृपण और अपने मन को वश में न रख सकनेवाले लोग मुझे नहीं पा सकते। योगी लोग जिसको ग्रहण करते हैं वह मेरा मार्ग मूढ़ अज्ञ जनों के लिए अत्यन्त दुर्लभ है। उसी मार्ग पर चलनेवाले को महाफल (मुक्ति) मिलता है।

हे मुनिवर, जब-जब अधर्म बढ़ने से धर्म घटने लगता है तब-तब मैं अपने को प्रकट करता हूँ। जब देवताओं के लिए अवध्य राक्षस और दैत्य उत्पन्न होकर पृथ्वी पर हिंसा आदि भयङ्कर कर्म करते हैं तब मैं मनुष्यरूप से पुण्यात्माओं के घर जन्म लेता हूँ और दैत्यों को मारकर उनका उपद्रव शान्त करता हूँ। मैं अपनी माया के प्रभाव से देवता, मनुष्य, गन्धर्व, नाग, राक्षस आदि सब चराचर
३० प्राणियों को उत्पन्न करके यथासमय उनका संहार करता हूँ। लोक में धर्म की मर्यादा स्थापित करने के लिए या देवताओं के काम करने की आवश्यकता से मैं मनुष्य-शरीर धारण करता हूँ।

मेरा सत्ययुग में श्वेत वर्ण, त्रेतायुग में पीत वर्ण, द्वापर में रक्त वर्ण और कलियुग में कृष्ण वर्ण है। कलियुग में अधर्म के तीन भाग होते हैं। पहले में अधर्म की उत्पत्ति, दूसरे में वृद्धि

और तीसरे में अत्यन्त वृद्धि होती है। जब कलियुग का अन्तसमय होता है तब अत्यन्त दारुण काल का रूप रखकर अकेला मैं ही इस चराचर जगत् का नाश करता हूँ। मैं त्रिवर्त्मा हूँ अर्थात् मेरे तीन मार्ग हैं। मैं विश्वरूप, सब प्राणियों को सुख देनेवाला, सर्वव्यापी, अजित, अनन्त, हृषीकेश, कालचक्र को चलानेवाला और रूपरहित हूँ। मैं सृष्टि-स्थिति-संहार आदि के समयों में सदा अपना काम करने के लिए तैयार रहता हूँ।

हे मुनिवर, इस प्रकार अपनी माया से ही छिपा हुआ मैं सब प्राणियों के हृदय में आत्मा-रूप से स्थित हूँ; पर मुझे कोई नहीं जान सकता। सब लोकों में जो मेरे भक्त हैं वे मेरी पूजा और आराधना किया करते हैं। हे द्विजश्रेष्ठ, तुमने मेरे पेट के भीतर जो कुछ कष्ट पाया है उसको तुम अपने सुख के उदय और भावी कल्याण का कारण समझो। इस लोक में जो कुछ चर और अचर पदार्थ तुमने देखे हैं उन सबको तुम मेरा ही रूप समझो। देखो, सब लोकों के पितामह ब्रह्मा मेरे शरीर का आधा भाग हैं। मैं शङ्ख-चक्र-गदा-धारी नारायण हूँ। एक हज़ार युग तक मैं सब लोकों के पितामह ब्रह्मा के रूप से, सब प्राणियों को मोहित करके, शयन करता हूँ। जब तक ब्रह्मा नहीं जागते तब तक मैं, पुरातन पुरुष होकर भी, इसी बालरूप से यहां रहता हूँ। सृष्टि के समय प्रकट होनेवाला सब चराचर जगत् तब तक मेरे पेट में लीन रहता है। ४०

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ, मैंने प्रसन्न होकर ब्रह्मा के रूप से कई बार तुमको श्रेष्ठ वर दिये हैं। जलमय, एकाकार, प्रलय-सागर में चराचर जगत् को डूबा हुआ देखकर तुम व्याकुल हो उठे थे। यह जानकर मैंने तुमको अपने पेट के भीतर सब जगत् दिखा दिया। मेरे पेट के भीतर पहुँचकर जब तुमने सब जगत् को देखा था तब आश्चर्य के मारे तुम कुछ भी नहीं समझ सके थे। इसी से मैंने तुमको अपने मुख के द्वारा पेट के भीतर से झटपट बाहर निकाल दिया। देवता और दैत्य भी मेरे जिस तत्त्व को नहीं जान सकते, वही अपने रूप का तत्त्व मैंने तुमको सुना दिया। अब जब तक भगवान् कमलयोनि ब्रह्मा योगनिद्रा से नहीं उठते तब तक तुम यहीं सुखपूर्वक बेखटके विचरते रहो। ब्रह्मा के उठने पर उनमें लीन होकर मैं अकेला आकाश, पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल और अन्य चराचर प्राणियों को उत्पन्न करूँगा।

मार्कण्डेय कहते हैं—हे धर्मात्मा पुरुषों में श्रेष्ठ युधिष्ठिर, वह परम अद्भुत रूप धारण करनेवाले देव मुझसे यों कहकर वहीं पर अन्तर्द्धान हो गये। उसके बाद सब विचित्र प्रजा की सृष्टि हुई और उसे मैंने देखा। इस प्रकार मैंने प्रलय के समय अद्भुत दृश्य देखा है। मैंने उस समय जिन कमलनयन नारायण को देखा था वही ये तुम्हारे सम्बन्धी जनार्दन कृष्ण हैं। हे कुन्ती के पुत्र, इन्हीं के वरदान से उस प्रलयकाल की याद मुझे बनी हुई है। बड़ी आयु और स्वच्छन्द मृत्यु भी मुझे इन्हीं के वरदान से मिली है। ये जो वृष्णिवंशी महापुरुष मनुष्यलोक में प्रकट होकर लीलाएँ कर रहे हैं सो वही अचिन्त्यरूप हरि और पुराणपुरुष विभु हैं। ये ५०

धाता, विधाता, संहार करनेवाले, सनातन, श्रीवत्सचिह्नधारी, गोविन्द, ब्रह्मा आदि प्रजापतियों के स्वामी, प्रभु, आदिदेव और जन्म-रहित हैं। इन कृष्णचन्द्र को देखकर ही मुझे यह पूर्वजन्म की याद आ गई है। ये पीताम्बरधारी पुरुष ही जिष्णु, विष्णु, आदिदेव, सब प्राणियों के पिता (उत्पन्न करनेवाले) और माता (पालन करनेवाले) हैं। हे कुरुवंशियों में श्रेष्ठ पाण्डवो, इन्हीं शरणागतवत्सल श्रीकृष्ण का आश्रय ग्रहण करो।

वैशम्पायन कहते हैं—मार्कण्डेय के मुँह से यह कथा सुनकर द्रौपदी-सहित पाण्डवों ने श्रीकृष्ण को प्रणाम किया। हे पुरुषसिंह, माननीय कृष्णचन्द्र ने भी उनके सम्मान को स्वीकार ५९ करके मधुर वंचनों से उन्हें आश्वासन दिया।

एक सौ नब्बे अध्याय

कलियुग के कृत्यों का वर्णन

वैशम्पायन कहते हैं कि हे जनमेजय, जगत् की आगे की गति जानने के लिए युधिष्ठिर ने मार्कण्डेय से पूछा—भगवन्, आपके मुँह से मैंने युग के आरम्भ के समय का, उत्पत्ति और विनाश के सम्बन्ध का, अत्यन्त अद्भुत वृत्तान्त सुना। अब कलियुग का हाल सुनने के लिए मेरा बहुत जी चाहता है। इसलिए आप अब कलियुग की करनी का बखान कीजिए। इस कलिकाल में सब धर्मों के पीड़ित होने पर अन्त को क्या होगा ? कलियुग में मनुष्यों का बल, वीर्य, आहार, विहार, आयु और पहनावा कैसा होगा ? फिर किस समय सत्ययुग का आरम्भ होगा ?

महाराज युधिष्ठिर ने मार्कण्डेय से जब यह प्रश्न किया तब यदुकुलतिलक श्रीकृष्ण और पाण्डवों की प्रसन्नता के लिए उन्होंने कहा—महाराज, मैंने जो पहले प्रलयकाल में देखा था वह तो सब आप सुन चुके। अब मैं कलियुग का वह भविष्य वृत्तान्त कहता हूँ जिसका अनुभव अभी से श्रीकृष्ण की कृपा के कारण मुझे प्राप्त हो गया है। राजन्! सत्ययुग में कपट, लोभ आदि न होने के कारण धर्म चारों चरणों से मनुष्यों में स्थित था। धर्म के, बैल की तरह, चार चरण थे, इसी से उसका एक नाम वृष भी है। त्रेतायुग में धर्म के तीन चरण रह गये। एक १० चरण को अधर्म ने कमज़ोर बना दिया। द्वापर में धर्म के दो ही चरण रह गये। [उसके दो चरणों को अधर्म ने हीन कर दिया।] कलियुग में धर्म का एक ही चरण रह गया। [अधर्म के तीन चरण मनुष्यों में प्रबल हो उठे।] कलियुग में मनुष्यों में तीन भाग अधर्म और एक भाग धर्म रह जाता है। ज्यों-ज्यों धर्म घटता जाता है त्यों-त्यों हर युग में मनुष्यों की आयु, वीर्य, बुद्धि, बल और तेज घटता रहता है। कलियुग में ये बातें बहुत ही कम हो जाती हैं। उस युग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र दिखावे के लिए धर्म करेंगे; धर्म का जाल फैलाकर लोगों को ठगेंगे। पण्डित होने का अभिमान रखनेवाले मनुष्य सत्य का संहार करेंगे। सत्य की हानि होने के कारण मनुष्य अल्पायु होंगे। अल्पायु होने के कारण वे अच्छी तरह विद्या-

भ्यास करने में समर्थ न होंगे। विद्या की कमी होने से लोभ, लोभ से क्रोध और क्रोध से मोह की उत्पत्ति होगी। इस प्रकार सब मनुष्य काम, क्रोध, लोभ और मोह के अधीन होकर वैरभाव उत्पन्न कर लेंगे और परस्पर एक दूसरे को मार डालने की चेष्टा में लगे रहेंगे।

युग के अंत का समय जब आवेगा तब ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के आचरण शूद्रों के से हो जायँगे। वे तप और सत्य को छोड़ देंगे। अन्त्यज जातियाँ अपने को क्षत्रिय बताकर उन्हीं का सा व्यवहार करने पर उतारू होंगी। सन के कपड़े और 'कांदों' अन्न उत्तम वस्त्र और आहार समझे जायँगे। पुरुष स्त्रियों के भक्त होकर उन्हीं को अपना सबसे बड़ा मित्र समझेंगे। गायों का नाश हो जाने से बड़े बड़े व्रतधारी भी बकरियों और भेड़ों का दूध पियेंगे। २० लोग मछलियां खाने में कुछ संकोच न करेंगे। सब मनुष्य लोभी होकर परस्पर एक दूसरे को ठगेंगे; चोरी और हिंसा करने में भी नहीं हिचकेंगे। लोग जप-तप नहीं करेंगे; चोर और नास्तिक बन जायँगे। नदी-तट पर कुदाल से खोदकर ओषधियाँ (अन्न) बोई जायँगी, और उनमें भी फल (फ़सल) कम होंगे। श्राद्ध आदि पितृकर्म और पूजा-पाठ में लगे हुए मनुष्य भी लोभ के वशीभूत होकर एक दूसरे का धन छीन लेंगे। पिता पुत्र के धन को और पुत्र पिता के धन को हर लेने की चेष्टा करेगा। खाद्य-अखाद्य का कुछ विचार नहीं किया जायगा। ब्राह्मण लोग चरित्र और आचार-विचार से हीन होकर वेद-विद्वेषी होंगे और वृथा की बहस में मोहित होकर यज्ञ, होम आदि शुभ कर्मों पर श्रद्धा नहीं रक्खेंगे—नीच और हीन कामों को पसन्द करेंगे और उन्हीं में अपनी उन्नति समझेंगे। नीची जगहों में खेती करेंगे; गायों से और एक साल के बछड़ों से भी बोझ ढोने का काम लेंगे। पिता को पुत्र की हत्या और पुत्र को पिता की हत्या करने में कुछ हिचकिचाहट न होगी। इस प्रकार की हत्या करनेवाले भी बढ़-बढ़कर बातें करेंगे; उनकी कोई निन्दा नहीं करेगा। सब लोगों के आचरण म्लेच्छों की तरह हो जायँगे। वे कर्मकाण्ड के काम और दान आदि नहीं करेंगे। कहीं आनन्द और उत्सव का नाम नहीं रहेगा। दीन-ग़रीब, इष्टमित्र, नातेदार और विधवा अनाथ आदि का धन हर लेने से भी लोग न चूकेंगे। सब आदमी थोड़े बल-वीर्यवाले, जड़, लोभ और मोह के ३० अधीन, और ऐसे ही लोगों के कहे पर चलनेवाले होकर छल-कपट का व्यवहार करेंगे।

हे युधिष्ठिर, उस समय के पापी राजा लोग भी मूर्ख और अपने को पण्डित माननेवाले होंगे। वे लोककण्टक क्षत्रिय एक दूसरे के गले पर छुरी चलावेंगे। वे लोभी, अभिमान और अहंकार से भरे हुए, केवल दण्ड देने की ही रुचि रक्खेंगे; किसी की रक्षा नहीं करेंगे। निर्दय राजा लोग सज्जनों को सतावेंगे; उनकी सम्पत्ति और स्त्रियों को छीनकर अपने काम में लावेंगे। सज्जनों को रोते-कलपते देखकर भी उन्हें तरस न आवेगा। न तो कोई किसी से विवाह के लिए कन्या माँगेगा और न कोई कन्यादान ही करेगा। कन्याएँ आप मर्द ढूँढ़ लेंगी।

मूढ़ बुद्धिवाले राजा सन्तोष छोड़कर तरह-तरह के उपायों से प्रजा का धन हरने लगेंगे। सब जगत् म्लेच्छ हो जायगा। सगा भाई भाई को धोखा देगा, या यों कहिए कि अपना ही एक हाथ दूसरे हाथ से दग़ा करेगा। अपने को पण्डित माननेवाले लोग सत्य की हत्या करेंगे। वृद्धों की बुद्धि बालकों की सी हो जायगी। बालक अपनी समझ को वृद्धों से बढ़कर समझेंगे। कायर लोग अपने को वीर कहकर डींग हाँकेंगे और शूरों को कायर बन जाना पड़ेगा। कोई ४० किसी का विश्वास नहीं करेगा। खान-पान का भेद-भाव न रहेगा। लोभ मोह के प्रभाव से अधर्म की बढ़ती होगी और धर्म का क्षय होगा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ये तीनों वर्ण मिटकर सब एकवर्ण अर्थात् शूद्र हो जायँगे। पिता पुत्र को और पुत्र पिता को क्षमा नहीं करेगा। स्त्री अपने पति की सेवा नहीं करेगी। जव-गेहूँ आदि अन्न जहाँ पैदा होते होंगे, उन्हीं देशों का आश्रय सब लोग ग्रहण करेंगे। स्त्री और पुरुष मनमाने खान-पान और आचरण को पसन्द करेंगे। कोई किसी का शासन सहने के लिए तैयार न होगा। हे युधिष्ठिर, कोई पितरों के लिए श्राद्ध-तर्पण और देवताओं के लिए पूजा-पाठ नहीं करेगा। कोई किसी की बात नहीं सुनेगा। कोई किसी को गुरु नहीं मानेगा। सब लोग अज्ञान के अँधेरे में रहेंगे। लोगों की आयु सोलह वर्ष से अधिक न होगी। सोलह वर्ष के बाद वृद्ध होकर लोग मरने लगेंगे। पाँच या छः वर्ष की बालिका बच्चे जनेगी; सात या आठ वर्ष का बालक बच्चों का बाप बन जायगा।

राजन्, उस युगान्त के समय में स्त्री को स्वामी से और स्वामी को स्त्री से सन्तोष न ५० होगा। धनहीन लोग धनियों का सा ठाठ दिखावेंगे। हिंसा और डाह बहुत बढ़ जायगी। कोई किसी को कुछ देना न चाहेगा। दान-पुण्य एकदम उठ जायगा। नगरों और गाँवों में अन्न का अकाल होगा। चौराहों पर कुलटाओं और धूर्तों का जमाव रहेगा। स्त्रियाँ धन के लिए अपना सतीत्व बेचेंगी। महाराज, कलियुग के पिछले समय में लोग म्लेच्छाचारी, सर्व-भक्षी और दारुण कर्म करनेवाले होंगे। लोभ के दास लोग बेचने-ख़रीदने में ठगविद्या से काम लेंगे। जिसके सम्बन्ध में कुछ ज्ञान नहीं है उन कामों को भी लोग बेधड़क करने लगेंगे। सब लोग स्वेच्छाचारी हो जायँगे। स्वभाव से ही लोगों की रुचि क्रूर कर्मों की ओर होगी। सब एक दूसरे की निन्दा करेंगे। हरे-भरे वृक्षों को और बाग़ों को भी निष्ठुर लोग काट डालेंगे। लोगों को सदा जीवन के लिए खटका लगा रहेगा। लोभी राजा धन के लिए ब्रह्महत्या तक कर डालेंगे। ब्राह्मण लोग शूद्रों से सताये जाकर हाहाकार करते हुए इस पृथ्वी पर मारे-मारे फिरेंगे; उन्हें कोई रक्षा करनेवाला नहीं मिलेगा। जब लोग क्रूर और हत्या करनेवाले अधिकता से देख ६० पड़ेंगे, दया का नाम न रह जायगा, तब कलियुग का अन्त होगा। ब्राह्मण आदि द्विजवर्ण के लोग डर के मारे भागकर नदियों, पर्वतों और भयङ्कर स्थानों में आश्रय लेंगे। दस्यु लोग सतावेंगे और धर्मविरुद्ध आचरण करनेवाले राजा लोग 'कर' के बोझ से पीड़ा पहुँचावेंगे। तब,

उस दारुण समय में, धैर्य को छोड़कर ब्राह्मण लोग काकवृत्ति का आश्रय लेंगे, अपना धर्म छोड़कर शूद्रों की सेवा करेंगे। शूद्र धर्म का उपदेश करेंगे और ब्राह्मण उसे सुनेंगे, उनकी ख़ुशामद करेंगे और उनकी बात को 'प्रमाण' मानेंगे। सब जगह सब बातें उलटी देख पड़ेंगी। उच्च जाति के लोग नीच और नीच जाति के लोग उच्च बन जायँगे। लोग देवताओं की पूजा छोड़कर क़बरों की पूजा करेंगे। ब्राह्मण सेवक और शूद्र प्रभु बनेंगे। पृथ्वी पर देवमन्दिर नहीं देख पड़ेंगे। महर्षियों के आश्रमों में, ब्राह्मणों की बस्तियों में, देवस्थानों में, चैत्य और नागों के भवनों में हड्डी से चिह्नित स्थान देख पड़ेंगे। ये सब युगान्त के लक्षण हैं। जब लोग भयानक स्वभाववाले, धर्मभाव से हीन, मांसभोजी और मद्यपान में आसक्त होंगे, तब कलियुग का अन्त होगा। जब फूल पर फूल और फल पर फल पैदा होगा, तब कलियुग का अन्त होगा। उस समय मेघ असमय वर्षा करेंगे। मनुष्यों के काम क्रम से नहीं होंगे। शूद्र लोग ब्राह्मणों से विरोध करेंगे। पृथ्वी शीघ्र ही म्लेच्छों से भर जायगी। प्रजा 'कर' के बोझ से घबराकर इधर-उधर भागी-भागी फिरेगी। सब लोगों के आचार और पहनावे एक से हो जायँगे। बेगार के डर से लोग जङ्गलों में जाकर बसेंगे और वहाँ फल-मूल खाकर अपना गुज़र करेंगे। इस प्रकार सब लोगों के व्याकुल होने पर किसी बात की कोई मर्यादा न रह जायगी। शिष्य लोग गुरु के उपदेश को न मानेंगे और अप्रिय आचरण करेंगे। धनहीन आचार्य धन के लिए शिष्यों को डाँट बतावेंगे। मित्र, नातेदार और भाई आदि सब धन के साथी होंगे। ७०

उस युगान्त के समय सभी प्राणियों का नाश देख पड़ेगा। सब दिशाओं में आग सी लगी हुई देख पड़ेगी। नक्षत्रों की प्रभा फीकी पड़ जायगी। सब ज्योतियाँ धुँधली देख पड़ेंगी। हवा रूखी और आँधी सी चलेगी। महाभय की सूचना देनेवाले उल्कापात अधिकता से होंगे। छः और सूर्यों के साथ प्रचण्ड रूप धारण करके सूर्य तपेंगे। दिग्दाह देख पड़ेगा। बिना मेघ के आकाश में बिजली की कड़क सुन पड़ेगी। उदय और अस्त के समय सूर्य को राहु छिपा लेगा। इन्द्र भगवान् कुसमय में जल बरसावेंगे। बोने पर भी अन्न नहीं उगेगा। स्त्रियाँ कठोर और क्रूर वचन कहेंगी, बात-बात पर रोने लगेंगी और अपने स्वामी का कहा न मानेंगी। पुत्र अपने मा-बापों को और स्त्रियाँ अपने पतियों तथा पुत्रों को मार डालने में नहीं हिचकेंगी। अमावस के सिवा और दिन भी सूर्य को राहु ग्रसेगा। सब तरफ़ आग लगने का उत्पात ज़ोर पकड़ेगा। बटोही प्यास से व्याकुल होकर गृहस्थ के द्वार पर जाकर पानी माँगेंगे तो उन्हें पानी या भोजन कुछ नहीं मिलेगा। किसी के द्वार पर टिकने के लिए जगह न पाकर बटोही राह में पड़े रहेंगे। कौए, साँप, पक्षी और मृग आदि कठोर शब्द सुनावेंगे। पेट भर खाने को न मिलने से लोग अपने मित्र, नातेदार, भाई-बन्धु आदि को छोड़कर दूर के देशों, नगरों और गाँवों को चले जायँगे। हाय पिता! हाय पुत्र! आदि दारुण शोकजनक वाक्य कहते-चिल्लाते लोग पृथ्वी पर सब जगह देख पड़ेंगे। ८०

हे युधिष्ठिर, इस प्रकार दारुण दृश्य उपस्थित होने पर कलियुग का अन्त हो जायगा और फिर क्रमशः ब्राह्मण आदि वर्णों की स्थापना होगी। कालान्तर में फिर दैव अनुकूल होगा, फिर सत्ययुग का आरम्भ होने से लोगों का अभ्युदय होने लगेगा। चन्द्रमा, सूर्य और बृहस्पति
९० ये तीनों ग्रह जब पुष्य नक्षत्र में आकर एक राशि में स्थित होंगे तब सत्ययुग का आरम्भ होगा। सत्ययुग में ठीक समय पर मेघ बरसेंगे, नक्षत्र शुभ फलदायक होंगे। ग्रहों की गति अनुकूल हो जायगी। सर्वत्र क्षेम, सुभिक्ष और आरोग्य देख पड़ेगा।

कालान्तर में कलियुग के नाश और सत्ययुग के सञ्चार के लिए विष्णु का कल्की अवतार होगा। सम्भल ग्राम में विष्णुयश ब्राह्मण के घर महाबल-पराक्रम-बुद्धि आदि से युक्त कल्की भगवान् अवतार लेकर ज्योंही स्मरण करेंगे त्योंही उनके विविध अस्त्र-शस्त्र, कवच, वाहन आदि आकर उपस्थित हो जायँगे। वे धर्म को विजय दिलानेवाले भगवान् अधर्म से पीड़ित पृथ्वी पर शान्ति की स्थापना करके स्वयं सम्राट् होंगे। ब्राह्मणवंश में उत्पन्न, तेजस्वी कल्की भगवान्
९७ अपने पराक्रम से सब म्लेच्छों को मारेंगे और ब्राह्मणों में उनके धर्म की स्थापना करेंगे।

एक सौ इक्यानबे अध्याय

युधिष्ठिर को मार्कण्डेय का धर्मोपदेश

मार्कण्डेय कहते हैं—हे युधिष्ठिर, पवित्र यशवाले कल्की भगवान् सनातनधर्म के विरोधी, चोर-वृत्तिवाले, म्लेच्छ राजाओं का संहार करके महायज्ञ अश्वमेध करेंगे। यज्ञ की दक्षिणा में वे सब पृथ्वी ब्राह्मणों को दे देंगे। इस प्रकार ब्रह्माजी की बनाई धर्म की मर्यादा को स्थापित करके भगवान् कल्की तप करने के लिए वन को चले जायँगे। पृथ्वी पर के सब लोग उन्हीं के चरित्र के अनुगामी होकर पुण्य-कार्य करेंगे और कल्याण को प्राप्त होंगे। ब्राह्मण वंश में उत्पन्न कल्की भगवान् ब्राह्मणों के भले के लिए जब चोर-म्लेच्छों का संहार कर डालेंगे तब सर्वत्र कुशल और शान्ति का राज्य हो जायगा। ब्राह्मणश्रेष्ठ कल्की भगवान् जीते हुए देशों में काली मृगछाला आदि ब्राह्मण के चिह्नों की और शक्ति, त्रिशूल आदि क्षत्रिय के चिह्नों की स्थापना करते हुए पृथ्वी-मण्डल पर घूमेंगे। अर्थात् जहाँ-जहाँ वे अधर्मी शत्रुओं को मारेंगे वहाँ-वहाँ ब्राह्मण और क्षत्रिय के धर्मों की स्थापना करेंगे। जहाँ-जहाँ वे जायँगे वहाँ-वहाँ ब्राह्मण लोग उनकी स्तुति और पूजा करेंगे। दस्यु राजा लोग हाय पिता! हाय माता! हाय पुत्र! कहकर ऊँचे स्वर से रोते-चिल्लाते हुए कल्की भगवान् के तीक्ष्ण, भयानक निष्ठुर खड्ग के प्रहार से कट-कटकर गिरते जायँगे।

हे धर्मराज, फिर सत्ययुग होने पर धर्म की वृद्धि और अधर्म का नाश होगा। सब लोग क्रियावान् और कर्त्तव्यनिष्ठ होंगे। अनेक स्थानों में बाग़, चैत्य, तालाब, धर्मशाला, सरोवर, देवमन्दिर आदि बनेंगे। लोग अनेक यज्ञ और पुण्य कर्म करेंगे। पृथ्वी पर सच्चे ब्राह्मणों,

साधुओं और मुनियों की अधिकता हो जायगी। पहले के पाखण्डियों के आश्रमों में सत्यवादी, धर्मात्मा लोग रहने लगेंगे। लोगों के हृदयों से पुराने कुसंस्कारों की जड़ उखड़ जायगी। राजन्, सब ऋतुओं में सब अन्न उत्पन्न होंगे। सब मनुष्य दान और व्रत आदि करेंगे तथा चरित्र की रक्षा में तत्पर होंगे। ब्राह्मण लोग जप, यज्ञ, धर्म में निरत होकर अपने छः कर्म करेंगे और सन्तोषी होंगे। क्षत्रिय लोग पराक्रमी होंगे। राजा लोग धर्म से पृथ्वी का पालन करेंगे। वैश्य भी अपने कर्मों में श्रद्धा दिखावेंगे। शूद्र लोग तीनों वर्णों की सेवा करेंगे। १०

महाराज! सत्ययुग, त्रेता और द्वापर में धर्म की जो दशा होती है उसका वर्णन कर दिया गया। कलियुग का धर्म और सब लोगों का जाना हुआ युगों का परिणाम पहले ही कह चुका हूँ। हे पाण्डव, ऋषियों द्वारा प्रशंसित वायुपुराण के अनुसार यह सब भूतकाल और भविष्यकाल का हाल मैंने तुम्हारे आगे वर्णन किया है। राजन्, मैं चिरजीवी हूँ; इसलिए संसार की दशा का यह परिवर्तन अनेक बार देख चुका हूँ। धर्म-सम्बन्धी संशय मिटाने के लिए अब और भी कुछ कहता हूँ। भाइयों के साथ एकाग्र होकर सुनो। हे धार्मिकश्रेष्ठ, सदा धर्म में अपना मन लगाना; क्योंकि धर्मात्मा पुरुष दोनों लोकों में परम सुख पाते हैं। हे निष्पाप, ब्राह्मण का अनादर भूलकर भी न करना। ब्राह्मण कुपित होने पर सहज ही सब लोकों को भस्म कर सकते हैं। २०

वैशम्पायन कहते हैं कि कुरुकुलश्रेष्ठ बुद्धिमान् युधिष्ठिर ने मार्कण्डेय के वचन सुनकर पूछा—मुनिवर, मैं किस धर्म के अनुसार प्रजा का पालन करूँ? कैसा व्यवहार करने से मैं अपने धर्म से भ्रष्ट न होऊँगा?

मार्कण्डेय ने कहा—राजन्, तुम सब प्राणियों का हित करनेवाले, दयालु, प्रजा पर अनुराग रखनेवाले, ईर्ष्या से रहित, सत्यवादी, कोमल स्वभाववाले, शान्त, प्रजा-पालन में तत्पर होकर, अधर्म से बचकर, धर्म का आचरण करो। देवताओं और पितरों की पूजा और आराधना करो। यदि भूल से कोई बुरा काम बन पड़े तो दान आदि सत्कर्मों से उसकी शान्ति कर डालो; अभिमान छोड़कर सदा सबसे नम्रता का व्यवहार करो। इस प्रकार सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने वश में करके सुख भोगो। राजन्, मैंने यह तुम्हारे आगे, बीते हुए और आनेवाले, समय के धर्मों का वर्णन कर दिया। तुम स्वयं भी भूत और भविष्यकाल के सब धर्मों को जानते हो। इसलिए पुत्र, तुम इस वर्त्तमान क्लेश को क्लेश मत समझो। विज्ञ पुरुष समय के द्वारा पीड़ित होकर भी घबराते नहीं हैं। हे महाबाहु, देवताओं पर भी ऐसा क्लेशदायक समय पड़ता रहता है। साधारण प्रजा, समय के द्वारा सताई जाकर, खेद और मोह को प्राप्त होती है; तुम ऐसे बुद्धिमान् और असाधारण पुरुष नहीं होते। हे निष्पाप, मैंने जो तुमको उपदेश किया है उसमें सन्देह न करना। मेरी बातों पर सन्देह करने से तुम्हारा धर्म नष्ट होगा। हे भरतश्रेष्ठ, तुमने प्रसिद्ध कुरुवंश में जन्म लिया है; इस कारण मन-वाणी-काया से मेरे उपदेश का पालन करो। ३०

युधिष्ठिर ने कहा—हे मुनिवर, आपने मनोहर वचनों से जो उपदेश मुझे दिया है उसके अनुसार मैं यथाशक्ति कार्य करूँगा। हे विप्रेन्द्र! लोभ, मोह या ईर्ष्या के भाव मेरे हृदय में नहीं हैं। आपने मुझे जो आज्ञा दी है, उसका पालन मैं अवश्य करूँगा।

वैशम्पायन कहते हैं—श्रीकृष्ण, पाण्डव और आये हुए सब ब्राह्मण बुद्धिमान् महर्षि ३५ मार्कण्डेय के मुख से यह मङ्गलदायिनी पुण्य-कथा सुनकर बहुत प्रसन्न हुए।

एक सौ बानबे अध्याय

वामदेवचरित का वर्णन

जनमेजय ने कहा—हे वैशम्पायन! महातपस्वी, महर्षि मार्कण्डेय ने पाण्डवों के आगे जो ब्राह्मणों की महिमा कही, उसे आप दुबारा कहिए।

वैशम्पायन ने कहा कि राजन्, धर्मराज ने भी फिर मार्कण्डेय से ब्राह्मणों की महिमा वर्णन करने के लिए कहा। तब मार्कण्डेयजी बोले—हे धार्मिकश्रेष्ठ युधिष्ठिर! सुनो, मैं तुम्हारे आगे अत्यन्त अद्भुत ब्राह्मण-माहात्म्य कहता हूँ। अयोध्या के राजा, इक्ष्वाकुवंश के यश को

बढ़ानेवाले, महाराज परीक्षित् एक समय शिकार खेलने के लिए वन को गये। घोड़े पर चढ़े हुए राजा एक मृग का पीछा करते-करते वन में बहुत दूर निकल गये। राह चलने से थके और भूख-प्यास से व्याकुल राजा को सामने नीले रङ्ग का और भी गहन वन मिला। राजा ने उस वन के भीतर जाकर एक सुन्दर सरोवर देखा। वे घोड़े पर बैठे ही बैठे उस सरोवर के जल में घुस गये। स्नान और जलपान से तबियत ठिकाने होने पर वे घोड़े पर से उतर पड़े। घोड़े के आगे खाने के लिए कमल की जड़ें डालकर वे किनारे पर विश्राम करने लगे। इसी बीच में उन्हें किसी का गाना सुन पड़ा। उस महावन में एकाएक मधुर गीत सुनकर राजा सोचने लगे कि इस स्थान पर किसी मनुष्य की गति नहीं देख पड़ती, फिर यह गाने का मधुर शब्द किसका है?

राजा ने उससे पूछा—हे भद्रे ! तुम कौन हो।—पृ० १०१७

वे यों सोच ही रहे थे इसी समय उन्होंने देखा कि एक परम सुन्दरी कन्या फूल चुनती हुई गाती जा रही है। नयनों को आनन्द देनेवाली वह ललना धीरे-धीरे राजा के पास पहुँच गई। तब राजा ने उससे पूछा—भद्रे, तुम कौन हो? किसकी स्त्री हो? उस कन्या ने कहा—राजन्, मैं कन्या हूँ; अभी मेरा विवाह नहीं हुआ। राजा ने कहा—हे सुन्दरी, तो तुम मुझे अपना पति बना लो। १० कन्या ने कहा—यदि आप एक प्रतिज्ञा कर सकें तो मैं आपके साथ ब्याह कर सकती हूँ। राजा ने पूछा—वह प्रतिज्ञा क्या है? कन्या ने कहा—आप मुझे जल मत दिखाइएगा। राजा ने यह शर्त मान ली। उसके साथ ब्याह करके राजा वहीं आनन्द से विहार करने लगे। इसी समय पीछे छूटी हुई राजा की सेना वहाँ आ गई। राजा को पाकर उनके अनुचर और सैनिक बहुत प्रसन्न हुए।

अब राजा उस सुन्दरी को पालकी पर चढ़ाकर सेना-सहित अपनी राजधानी में आये। घर आकर वे एकान्त में उसी सुन्दरी के साथ आनन्द से क्रीड़ा करने लगे। राजा उसपर ऐसे लट्टू हो गये कि रनिवास से बाहर निकलना उनके लिए कठिन हो गया। मन्त्री, पुरोहित आदि कर्मचारियों को उनके दर्शन दुर्लभ हो गये। एक दिन प्रधान मन्त्री ने राजा के पास रहनेवाली रानी की सहेलियों से पूछा—यहाँ तुम लोग क्या काम करती हो? उन्होंने कहा—यहाँ एक विचित्र बात हमें देख पड़ती है। महाराज के निवास-भवन में जल ले जाने की मनाही है। हम इसी बात की चौकसी रखती हैं कि कोई जल लेकर भीतर न जाने पावे।

उनके ये वचन सुनकर मन्त्री ने एक बाग़ लगवाया जिसमें अनेक वृक्ष और फूल-फल थे। बाग़ के भीतर, ऊपर से बन्द, एक बावली बनवाई। उसमें भीतर अमृत सदृश मीठा पानी भरा था। वह ऊपर से मोतियों से ढकी हुई थी। अब मन्त्री ने एकान्त में राजा के पास जाकर कहा—महाराज, यह उपवन बड़ा ही सुन्दर है; इसमें पानी का नाम भी नहीं है। आप इसी में नई रानी के साथ कुछ दिन रहिए और सैर कीजिए। राजा ने मन्त्री की प्रार्थना स्वीकार कर ली। वे उस स्त्री के साथ उसी बाग़ में जाकर रहने और रमण करने लगे। एक दिन विहार करते-करते राजा को भूख

और प्यास लगी। इधर-उधर देखने पर उन्हें पास ही एक माधवी लता का कुञ्ज देख पड़ा।
२० रानी के साथ उस कुञ्ज के भीतर जाने पर राजा को वहीं निर्मल जल से भरी बावली देख पड़ी। उसे देखकर राजा अपनी प्रतिज्ञा को भूल गये और उसी बावली के किनारे गये। राजा ने रानी से कहा—देवी, आओ इस बावली में घुसकर जल-विहार करें; बड़ी गर्मी और प्यास मालूम पड़ती है। राजा के कहने से रानी उसके भीतर घुस गई; पर गोता लगाकर वह छिप गई। रानी को, उसके बाहर निकलते न देखकर, राजा ने बहुत ढूँढ़ा किन्तु कुछ पता न चला। वह बावली भी फिर नहीं देख पड़ी। उसी स्थान पर, एक छेद के मोहरे पर, केवल एक मेंढक देख पड़ा। राजा ने अपनी रानी के नाश का कारण उस मेंढक को समझकर सब मेंढकों की हत्या करने की आज्ञा दे दी। राजा ने कह दिया कि जो कोई मुझसे प्रार्थना करने आवे वह एक मरा हुआ मेंढक भेंट करे; उसकी इच्छा पूरी की जायगी।

इस प्रकार चारों ओर मेंढकों को मार डालने की आज्ञा फैल जाने पर मेंढक बहुत डरे। उन्होंने अपने राजा मण्डूकराज के पास जाकर आदि से अन्त तक अपनी विपत्ति का हाल कहा। सब सुनकर, तपस्वी ब्राह्मण का रूप रखकर, मण्डूकराज राजा के पास गया। उसने कहा—महाराज, आप क्रोध छोड़कर शान्तभाव धारण कीजिए। निरपराध मेंढकों की हत्या कराना आपके योग्य काम नहीं है। यह आपका कर्त्तव्य भी नहीं है। मेरी बात मानिए, क्रोध शान्त करके मेंढकों की हत्या बन्द करा दीजिए। मेंढकों की हत्या करने से धन घटता है। आप निश्चय जानिए, मेंढकों की हत्या कराने से आप अपनी प्रियतमा के वियोग-शोक को भूल नहीं सकते। व्यर्थ मेंढकों की हत्या करने से, पाप बटोरने के सिवा, आपके हाथ और क्या लगेगा?

प्रियतमा के शोक से पीड़ित राजा परीक्षित ने मण्डूकराज के वचन सुनकर कहा—मैं मेंढकों को कभी क्षमा न करूँगा। मेंढक ही मेरी प्रियतमा को खा गये हैं। इस कारण मैं पृथ्वी पर एक भी मेंढक को
३० न रहने दूँगा। हे द्विजश्रेष्ठ, आप इस बीच में पड़कर मुझसे कुछ न कहिए। राजा के वचन

मण्डूकराज ने कहा—सुन सुशोभना! महाराज की सेवा करती रहना। पृ० १०६६

सुनकर व्यथितहृदय मण्डूकपति ने फिर कहा—राजन्, शान्त और प्रसन्न हूजिए। मैं मेढकों का राजा हूँ; मेरा नाम आयु है। आपकी प्यारी रानी मेरी ही बेटी है। उसका नाम सुशोभना है। बुरा स्वभाव होने के कारण आपसे पहले भी वह इसी तरह कई राजाओं को धोखा दे चुकी है। यह सुनकर राजा ने कहा—मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ, वह अपनी कन्या मुझे दे दो।

राजा की प्रार्थना स्वीकार करके मण्डूकराज ने वह अपनी कन्या उन्हें दे दी, और कह दिया—"सुन सुशोभना, महाराज की सेवा करती रहना"। इसके बाद कुपित मण्डूकराज ने उसे यह शाप भी दिया—तेरा स्वभाव दुष्ट है, और तूने अनेक राजाओं को धोखा दिया है, इस कारण तेरे जो पुत्र होंगे वे ब्राह्मणों को न मानेंगे।

सुशोभना की रतिकला पर रीझे हुए राजा उसे पाकर ऐसे प्रसन्न हुए मानों उन्हें तीनों लोकों का राज्य मिल गया हो। मण्डूकराज को प्रणाम-सत्कार आदि से सन्तुष्ट करते हुए उन्होंने गद्गद वाणी से कहा—आपने मुझ पर बड़ी कृपा की। कन्या से विदा होकर मण्डूक-राज अपने स्थान को चल दिया।

कुछ दिन के बाद सुशोभना के गर्भ से राजा के शल, दल और बल नाम के तीन पुत्र पैदा हुए। बुढ़ापे की अवाई देखकर राजा ने बड़े पुत्र शल को राज्य दे दिया। शल को राजा बना-कर वे तप करने के विचार से वन को चले गये।

इधर महाराज शल एक दिन रथ पर चढ़कर शिकार खेलने के लिए वन को गये। वहाँ उन्होंने एक मृग का पीछा किया और सारथी से कहा—जल्दी रथ चलाओ। सारथी ने कहा—इस मृग को पकड़ने के लिए आपका इतना आग्रह व्यर्थ है। आप इसे नहीं पकड़ सकते। यदि आपके रथ में दोनों वाम्य घोड़े जुते होते तो आप इस मृग को पकड़ सकते थे। राजा ने पूछा—वाम्य घोड़े कौन और कहाँ हैं? अब तो सारथी बहुत डरा। यदि नहीं बताता है तो राजा से भय है, और बताये देता है तो वामदेव ऋषि से शाप का डर है। अन्त में उसने राजा को बता दिया

कि वाम्य अर्थात् वामदेव ऋषि के रथ के घोड़े बहुत बढ़िया हैं और वे हवा तथा मन की तरह तेज़ चलते हैं। तब राजा ने उससे कहा—अच्छा, तो वामदेव के आश्रम में मुझे ले चलो। सारथी शल को वामदेव के पास ले गया। शल ने जाकर मुनि से कहा—भगवन्, एक मृग मेरे बाण से घायल होकर भी भागा जा रहा है। कृपा करके अपने दोनों घोड़े मुझे दे दीजिए, मेरे इन घोड़ों में इतनी चाल नहीं है कि उसका पीछा कर सकें। महर्षि ने कहा—मैं तुमको अपने दोनों घोड़े इस शर्त पर दिये देता हूँ कि काम हो जाते ही मुझे लौटा देना। ऋषि की इस शर्त पर राज़ी होकर, उन घोड़ों को अपने रथ में जुतवाकर, राजा ने फिर उस मृग का पीछा किया। राह में राजा अपने सारथी से कहने लगे कि सारथी, ये दोनों घोड़े तो सचमुच अमूल्य रत्न हैं; किन्तु ये हम राजाओं के योग्य हैं, न कि वनवासी वामदेव के। इसलिए मैं ये घोड़े लौटाकर न दूँगा। उस घायल मृग का शिकार करके राजा अपनी राजधानी को चले आये। उन दोनों घोड़ों को उन्होंने अस्तबल में बँधवा दिया।

उधर वामदेव ऋषि मन में कहने लगे कि हा, कैसे कष्ट की बात है! वह नौजवान राजपुत्र मेरे बढ़िया घोड़ों को अपने यहाँ रखकर उनसे काम ले रहा है। अपने वादे का ख़याल न रखकर उसने अभी तक मेरे घोड़े नहीं लौटाये। एक महीना पूरा हो जाने पर वामदेव ने अपने शिष्य आत्रेय से कहा—पुत्र, तुम राजा शल के पास जाकर उनसे कहो कि जो उनका काम हो चुका हो तो मेरे दोनों घोड़े फेर दें। आत्रेय ने अपने आचार्य की आज्ञा के अनुसार राजा के पास जाकर दोनों घोड़े फेर देने के लिए कहा। राजा ने उत्तर दिया—ऐसे बढ़िया घोड़ों की ब्राह्मणों को क्या ज़रूरत? वे घोड़े तो राजाओं के ही योग्य हैं। आप लौट जाइए और अपने गुरु से यही कह दीजिए।

[राजा के ये वचन सुनकर आत्रेय वामदेव के पास लौट गये और सब हाल उनको कह सुनाया। राजा की बेईमानी देखकर] वामदेव को क्रोध आ गया। उन्होंने राजा के पास जाकर अपने घोड़े फेर देने के लिए कहा। राजा ने उनको भी वैसा ही उत्तर दिया और घोड़े न देने का विचार प्रकट किया। वामदेव ने कहा—राजन्! देखो, तुम्हारा काम हो चुका, अब मेरे दोनों घोड़े फेर दो। इसी में कुशल है। ऐसा न करो कि वरुणदेव घोर पाशों में बाँधकर तुम्हें मार डालें। ब्राह्मण और क्षत्रिय के अन्तर को मत भूलो।

राजा ने कहा—वामदेव, मैं तुम्हें ये सीधे शिक्षित बली बैल देता हूँ। ब्राह्मण के योग्य यही सवारी है। इनको रथ में जोतकर जहाँ जी चाहे जाओ। हे ऋषिवर, आप ऐसे ऋषियों के लिए वेदों में ऐसे ही वाहन की व्यवस्था है; उस व्यवस्था को तुम मेट नहीं सकते। वामदेव ने कहा—राजन्, हम ब्राह्मण लोग वेदविधान के अनुसार परलोक में बैल की सवारी पर जाते हैं। किन्तु इस लोक में, हम ऐसे ब्राह्मणों की और क्षत्रियों की भी सवारी घोड़े ही हैं। राजा ने कहा—तो तुम अपने रथ में चार गधे, या हवा की तरह तेज़ चलनेवाले बढ़िया खच्चर अथवा

५०

और घोड़े ही अपनी सवारी के लिए पसन्द कर लो। वे तुम्हारे रथ को लेकर चलेंगे। ये घोड़े क्षत्रियों की सवारी के ही योग्य हैं। इसलिए इनको अब अपनी चीज़ न समझकर मेरी समझो। वामदेव ने कहा—राजन्, तुम ब्राह्मण के धन को हर लेना चाहते हो, यह तुम्हारा काम बुरा है, अर्थात् इसका फल अच्छा नहीं हो सकता। जो तुम मेरे घोड़े न लौटाओगे तो मेरी आज्ञा से चार भयङ्कर राक्षस तीक्ष्ण लोहे के शूलों से तुम्हारे शरीर के चार टुकड़े कर डालेंगे। राजा शल ने कहा—तुम मुझे मारने की बात कह रहे हो; किन्तु उससे पहले मेरे ही आदमी, मेरी आज्ञा पाकर, पैनी तलवारों और शूलों से तुमको और तुम्हारे शिष्यों को मार डालेंगे। मन-वाणी-काया से मेरी आज्ञा का पालन करनेवाले लोग ब्राह्मण जानकर तुम्हें छोड़ न देंगे।

वामदेव ने कहा—राजन्, तुमने मुझसे घोड़े लेते समय उन्हें फेर देने की प्रतिज्ञा की थी। इसलिए यदि जीवित रहना चाहते हो तो मेरे दोनों घोड़े फेर दो। राजा ने कहा—हे ब्राह्मण, [ये दोनों घोड़े शिकारियों के लायक़ हैं और] ब्राह्मण लोग शिकार नहीं करते। इसी से मैं दोनों घोड़े तुमको नहीं देता। [इन घोड़ों के लिए हठ न करो।] मैं तुम्हारे कहे कठोर और मिथ्या वचनों को क्षमा करता हूँ। इसके सिवा और जो कुछ आज्ञाएँ तुम करो उन्हें, पुण्य लोक पाने की इच्छा से, मानने को मैं तैयार हूँ। वामदेव ने कहा—राजन्! मन, वाणी या काया से सम्बन्ध रखनेवाला कोई भी दण्ड ब्राह्मण को नहीं दिया जा सकता। इसके सिवा जो कोई तप करके ब्राह्मण जाति के महत्व को जानता है वही श्रेष्ठ विद्वान् है; ब्राह्मण की सेवा करनेवाला वही पुरुष जीवित रहता है।

मार्कण्डेय कहते हैं—महर्षि वामदेव के यों कहते ही त्रिशूल हाथ में लिये घोर रूप चार राक्षस वहाँ पर प्रकट हो गये। वे जब मारने को तैयार हुए तब राजा ने ज़ोर से चिल्लाकर कहा—सब इक्ष्वाकुवंश के लोग, मेरा छोटा भाई और अन्य सब मेरे आज्ञाकारी लोग चाहे मुझे छोड़ दें, पर मैं वामदेव को घोड़े न दूँगा; क्योंकि ऐसे लोग धर्मात्मा कभी नहीं होते। राजा शल के यों

कहते ही उन राक्षसों ने उन्हें मार डाला। राजा पृथ्वी पर गिर पड़े। तब इक्ष्वाकुवंश के लोगों ने राजा के मरने की ख़बर पाकर उनके भाई दल को राज्यासन पर बिठाया। अब वामदेव ऋषि

ने दल के पास जाकर कहा—राजन्, तुम जानते हो कि ब्राह्मण को देना राजा का सर्वथा कर्त्तव्य है,
६० यह बात शास्त्रों में लिखी है। इसलिए जो तुमको अधर्म का डर है तो मेरे घोड़े मुझे लौटा दो।

वामदेव के वचनों से अत्यन्त क्रुद्ध होकर दल ने अपने सारथी से कहा—सूत, एक विचित्र ज़हरीला बाण तो ले आ। मैं उससे वामदेव को मार डालूँगा। इनको कुत्ते नोच-नोचकर खायँगे। वामदेव ने कहा—राजन्! मैं जानता हूँ, तुम्हारी रानी के गर्भ से उत्पन्न, श्येनजित् नाम का, एक दस वर्ष का बालक है। तुम जो बाण मुझ पर चलाना चाहते हो वह तुम्हारे उसी बालक को लगेगा। मार्कण्डेय कहते हैं—हे धर्मराज, महर्षि के यों कहते ही दल के उस बाण ने रनिवास में जाकर उनके पुत्र को मार डाला। यह हाल सुनकर दल ने कहा—हे इक्ष्वाकुवंश के लोगो, एक और तेज़ बाण लाओ; मैं उससे इस ब्राह्मण को मारकर तुम्हारा प्रिय करूँगा। तुम मेरा पराक्रम देखो। इस पर वामदेव ने कहा—तुम जो ज़हरीला बाण मुझे मारने के लिए धनुष पर चढ़ाते हो उसे न तो तुम धनुष पर चढ़ा सकोगे और न छोड़ ही सकोगे। [वामदेव के वचनों के प्रभाव से ऐसा हो गया कि राजा उसे छोड़ ही नहीं सके।] बाण चलाने में असमर्थ होकर राजा ने कहा—इक्ष्वाकुवंशियो! देखो, यह हाथ में लिया हुआ बाण मैं वामदेव पर चला नहीं सकता। अब मैं वामदेव को मारना नहीं चाहता। ये आयुष्मान् वामदेव जीवित रहें। वामदेव ने कहा—महाराज, इस बाण को रानी के शरीर में छुआ दो तो इस ब्रह्महत्या के पाप से छुटकारा पा जाओगे।

महाराज दल ने, मुनि की आज्ञा से जाकर, रानी के शरीर में वह बाण छुआया। तब रानी ने वामदेव से कहा—ब्रह्मन्, मैं नित्य इस कठोर प्रकृति के स्वामी को शुभ उपदेश देकर ब्राह्मणों की बड़ाई करती हुई उनके अनुकूल बनाने की धुन में लगी रहती हूँ; इसके फल से मैं पवित्र लोक को जाऊँ। वामदेव ने कहा—हे कमलनयनी, तुमने इस राजकुल को ब्रह्मकोप से बचा लिया। तुम मुझसे अपनी इच्छा के
७० अनुसार वर माँगो; मैं तुमको वही वर दूँगा। तुम इक्ष्वाकुवंश और राज्य का शासन करो।

रानी ने कहा—भगवन्, जो आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मैं आपसे यह वर माँगती हूँ कि मेरे स्वामी पाप से छुटकारा पा जायँ। अपने पुत्र और भाई-बन्धुओं के साथ मैं सकुशल जीवित रहूँ। मार्कण्डेय कहते हैं—हे धर्मराज, रानी के यों कहने पर वामदेव ने उसे ये दोनों वर दे दिये। पाप से
७२ छुटकारा पाकर महाराज़ दल ने मुनि को प्रणाम किया, और प्रसन्नतापूर्वक वे दोनों घोड़े दे दिये।

महाभारत के स्थायी ग्राहक बनने के नियम

(१) जो सज्जन हमारे यहाँ महाभारत के स्थायी ग्राहकों में अपना नाम और पता लिखा देते हैं उन्हें महाभारत के अङ्कों पर २०) सैकड़ा कमीशन काट दिया जाता है। अर्थात् १।) प्रति अङ्क के बजाय स्थायी ग्राहकों को १) में प्रति अङ्क दिया जाता है। ध्यान रहे कि डाकखर्च स्थायी और फुटकर सभी तरह के ग्राहकों को अलग देना पड़ेगा।

(२) साल भर या छः मास का मूल्य १२) या ६), दो आना प्रति अङ्क के हिसाब से रजिस्ट्री खर्च सहित १३॥) या ६॥।) जो सज्जन पेशगी मनीआर्डर-द्वारा भेज देंगे, केवल उन्हीं सज्जनों को डाकखर्च नहीं देना पड़ेगा। महाभारत की प्रतियाँ राह में गुम न हो जायँ और ग्राहकों की सेवा में वे सुरक्षित रूप में पहुँच जायँ, इसी लिए रजिस्ट्री द्वारा भेजने का प्रबन्ध किया गया है।

(३) इसके प्रत्येक खंड के लिए अलग से बहुत सुन्दर जिल्दें भी सुनहले नाम के साथ तैयार कराई जाती हैं। प्रत्येक जिल्द का मूल्य ।॥) रहता है परन्तु स्थायी ग्राहकों को वे ॥) ही में मिलती हैं। जिल्दों का मूल्य महाभारत के मूल्य से बिलकुल अलग रहता है।

(४) स्थायी ग्राहकों के पास प्रतिमास प्रत्येक अङ्क प्रकाशित होते ही बिना विलम्ब वी० पी० द्वारा भेजा जाता है। बिना कारण वी० पी० लौटाने से उनका नाम ग्राहक-सूची से अलग कर दिया जायगा।

(५) ग्राहकों को चाहिए कि जब किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार करें, तो कृपा कर अपना ग्राहक-नम्बर जो कि पता की स्लिप के साथ छपा रहता है और पूरा पता अवश्य लिख दिया करें। बिना ग्राहक-नम्बर के लिखे हज़ारों ग्राहकों में से किसी एक का नाम ढूँढ निकालने में बड़ी कठिनाई पड़ती है और पत्र की कार्रवाई होने में देरी होती है। क्योंकि एक ही नाम के कई-कई ग्राहक हैं। इसलिए सब प्रकार का पत्र-व्यवहार करते तथा रुपया भेजते समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए।

(६) जिन ग्राहकों को अपना पता सदा अथवा अधिक काल के लिए बदलवाना हो, अथवा पते में कुछ भूल हो, उन्हें कार्यालय को पता बदलवाने की चिट्ठी लिखते समय अपना पुराना और नया दोनों पते और ग्राहक-नम्बर भी लिखना चाहिए। जिससे उचित संशोधन करने में कोई दिक़्क़त न हुआ करे। यदि किसी ग्राहक को केवल एक दो मास के लिए ही पता बदलवाना हो, तो उन्हें अपने हलके के डाकख़ाने से उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिए।

(७) ग्राहकों से सविनय निवेदन है कि नया आर्डर या किसी प्रकार का पत्र लिखने के समय यह ध्यान रक्खें कि लिखावट साफ़ साफ़ हो। अपना नाम, गाँव, पोस्ट और ज़िला साफ़ साफ़ हिन्दी या अँगरेज़ी में लिखना चाहिए ताकि अङ्क या उत्तर भेजने में दुबारा पूछ-ताछ करने की ज़रूरत न हो। "हम परिचित ग्राहक हैं" यह सोच कर किसी को अपना पूरा पता लिखने में लापरवाही न करनी चाहिए।

(८) यदि कोई महाशय मनी-आर्डर से रुपया भेजें, तो 'कूपन' पर अपना पता-ठिकाना और रुपया भेजने का अभिप्राय स्पष्ट लिख दिया करें, क्योंकि मनीआर्डरफ़ार्म का यही अंश हमको मिलता है।

सब प्रकार के पत्रव्यवहार का पता—

मैनेजर महाभारत विभाग, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।